



॥ श्रीः ॥

काशी-संस्कृत-ग्रन्थमाला ॥

१६०

॥ श्रीः ॥

# योगरत्नाकरः

'विद्योत्तिनी' हिन्दी टीका सहितः

टीक्यार

प्रायुपेदाचार्य

पैद्य श्री लक्ष्मीपति शास्त्री

सम्पादक

भियमल श्री ब्रह्मशङ्कर शास्त्री



चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस-१

प्रकाशक—

जयकृष्णदास हरिदास गुप्त,  
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज-ऑफिस,  
पो० बाक्स न० ८, बनारस

( अत्युत्तम पुनर्मुद्रणादिक संशोधन प्रकाशकालीन )

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.

P O. Box 8, Banaras.

1955

संपूर्णप्रतिस्य मूल्य १८)

## प्राक्प्रयोग

कायचिकित्सा विषयक उपलब्ध ग्रन्थग्रन्थों में योगरत्नाकर सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सक के लिये ज्ञानय गभी भावग्रन्थ विषयों का संग्रह इन्हीं में किया गया है। पाद-शुद्ध ( मिरहू, वैषम्य, परिचारक और रोगी ) का विधिवत् वर्णन करने के उपरान्त रोगिणीका के व्यावहारिक सूत्र स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किए गए हैं। नाडी, मूत्र, मल, शब्द, स्पर्श, रूप-रस, सुख-त्रिडा एवं दश परीक्षा तथा त्रिदोष विज्ञान का वर्णन संश्लेषित शैली में किया गया है। रोग निनिधन का व्यावहारिक रूप विंग प्रचार इन ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है, वेला किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं है। दिनचर्या-रात्रिचर्या-श्रुतचर्या, पान्य-प्ल-शाक-जात-मिद्वान-जन-रूप-दधि-तन-गृतादि-जर्म पर दैनिक उपयोग के अन्य आहार पदकों तथा त्रिकुटा-त्रिकुटा-शुद्धात आदि प्रमुख औषधियों का वर्णन भी संग्रहित है। वैद्य परिमाण, पथविष कषाय कल्पना, अवलेह, स्नेहपाक, आसवारिह, धानुषधनुषों का शोषन-मारण-सत्त्व पातन आदि रगामा विषय भी उपयोगिता की बसीदी पर कसे होने के कारण धारा की सूत्र निरीक्षण इति स ओमल नहीं हो सके—उनका भी सिद्ध क्रिया-क्रम निर्दिष्ट है। जमा-विदेयनादि पत्रकर्म सम्बन्धी सभी ज्ञानय विषय एवं मायबोक ग्रन्थ से सभी रोगों का विधान एवं विस्तृत चिकित्सा का वर्णन तो योगरत्नाकर का ही अपनी विशेषता है। इन्हीं वर्णित चिकित्सा क्रम बहुत ही व्यावहारिक एवं दृष्ट फल हैं, दूसरे ग्रन्थों के समान सभी प्रकार के दृष्ट-शुभ योगों का 'पीन फलेवर' समग्र मात्र नहीं हैं। सत्त्व में केवल योगरत्नाकर का विधिवत् अध्ययन करके मनस्वी 'पकि यशस्वी चिकित्सक बन सकता है।

इतने उपयोगी ग्रन्थ का प्रणेता कितना निस्पृह एवं उत्सर्गशील था कि ग्रन्थ में कहीं मूल कर भी आत्मविषयक कुछ उल्लेख नहीं आने पाया है। प्रारम्भ में शक्ति एवं पुत्र गुरु हर-हरि-ब्रह्म-विदेवों तथा गुरु की बदना और अन्त में 'यावच्चन्द्र दिवाकर' सदैवों द्वारा योगरत्नाकर के अध्ययन की कामना—जस यही उस महात्मा तपस्वी का आत्मनिवेदन है। ग्रन्थ में भावप्रकाश के उद्धरण होने से आचार्य भावमित्र से परवर्ती होने का तथा दाक्षिणात्य जनपद से ही सभी हस्त लिखित प्रतियों की उपलब्धि एवं वहाँ विशेष प्रचार होने से विद्वान्

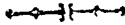


अनुसन्धान कर्त्ताओं को केवल काल पत्र स्याम का कुछ अनुमान हो सका है। मजा तिम महापुरुष ने इतने विगल ग्रन्थ में अपना नामोल्लेख तक नहीं किया—जानकर ही नहीं किया—उसका परिचयानुसंधान घुटता नहीं तो और क्या है ? उस परम माहेश्वर महारामा का सच्चा परिचय उसके ग्रन्थ का अधिक से अधिक अनुशीलन और प्रसार है। यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषा बहुत ही सरल पत्र सुबोध है, किन्तु वर्त्तमान समय में दन्दाणी के अध्येता कम होते जा रहे हैं, अल्प श्रम पत्र सुविधा की खोज में ऐसे ग्रन्थ रत्नों का अध्ययन कम होना जा रहा है। इसी दृष्टि से ग्रन्थ का अधिक से अधिक प्रसार करने के लिए चौसन्धा संस्कृत पुस्तकालय के स्वत्वाधिकारी परम भागवत बानू जयकृष्णदास—हरिदाम गुप्त ने 'विद्यो-तिनी' हिन्दी भाषा टीका का प्रकाशन किया है। भाषा टीका में यथाशक्ति ग्रन्थ की मौलिकता सुरक्षित रखते हुए बिना किसी लाग-लपेट या विमर्श के केवल भाषान्तर मात्र सरल हिन्दी में किया गया है, जिससे पाठकों को बिना 'प्रक्षेप' के ग्रन्थ कर्त्ता के मूल विषय का सत्सादा दान हो सके। यदि भाषा टीका के आकर्षण से पाठकों के मानस में मूल ग्रन्थ के अध्ययन एवं मनन की अभिरुचि जाग्रत हो जाय तो प्रकाशकों का श्रम सार्थक हो जायगा—क्योंकि रत्न राज की विक्रमण शक्ति उसकी छाया में नहीं हो सकती—और तब 'तावत्तमद्भिन्नं पठन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम्' यह निरुद्ध तपस्वी की एकमात्र स्पृहा भी स्पृहणीय न रहगी। 'साधु समान भनिति सनमानू' की आशा में—

विनीत—

धामशाहूर मिश्र

# विषयानुक्रमणिका



विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
मगटापरण	१	कन्द-मूल के गुण	२४
पेष प्रस्तावि	"	फलों के गुण	३५
पेष का कर्तव्य	"	तमागू के गुण	३०
रोगममकालिक चिकित्सा	२	मांस के गुण	"
कर्मदोषत्र व्याधियों के भेद	"	मरुपादि के गुण	३३
चिह्नित्वा का निषेध	"	मित्र अघादि के गुण	३५
रोग-परीक्षा की सैली	"	शूप के गुण	३६
पादपण्डुप का लक्षण	३	दाह के गुण	३७
दूतपरीक्षा	"	पापक के गुण	३८
रोगी के यहाँ जाने का निषिद्ध समय	"	गिषधी के गुण	"
पेष के द्रुम दाहना का लक्षण	"	पायस के गुण	३९
रोगियों के आठ स्थानों की		पुदी आदि के गुण	"
निरीक्षण विधि	४	बर्षी के गुण	४०
मादो-परीक्षा	"	पानक के गुण	४१
मूत्र-परीक्षा	८	गुरम्या का लक्षण और गुण	४२
मल-परीक्षा	१०	रसात्तादि के गुण	"
दाह-परीक्षा	११	आयु का विचार	४३
स्पर्श-परीक्षा	"	निरपवृत्त्य ( दिनचर्या ) विधि	४६
रूप-परीक्षा	"	रात्रिचर्या विधि	७१
दृश-परीक्षा	१२	ब्राह्मणचर्या विधि	७७
आस्य परीक्षा	"	जल के गुण	८०
जिह्वापरीक्षा	१३	दूध के गुण	८२
कालज्ञान	"	दही के गुण	८७
गतायुष का लक्षण	"	तक्र के गुण	८८
साध्य रोगी के लक्षण	१४	मषण के गुण	९०
देग का लक्षण	"	पूत के गुण	"
वातादि त्रिदोष प्रकोपक मासादि	"	सैल के गुण	९१
त्रिदोष के कर्म	१५	मधु के गुण	९३
त्रिदोष के शामक कर्म	"	दृष्ट ( गद्या ) का गुण	९४
त्रिदोष प्रकोप का समय	१६	गुड़, चीनी आदि के गुण	९५
आम व्याधि का लक्षण और प्रतीकार	"	मूत्राटक के लक्षण-गुण	९६
वातादिक प्रकृतिक मनुष्यों के लक्षण	१७	त्रिफला, त्रिकटु और पंचकोल के	
आरोग्य के लक्षण	"	लक्षण-गुण	९७
मानपरिमापा	१८	पहूपण और चतुरूपण के लक्षण-गुण	"
मागधमान की परिमापा	"	दशमूलादि के लक्षण-गुण	"
कलियामान की परिमापा	१९	सन्तर्पण के लक्षण-गुण	९८
घान्य के गुण	२१	महासुगन्ध के लक्षण-गुण	९९
शाकादि के गुण	२७	केसर का नाम और गुण	"

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
पद्मस के लक्षण गुण	९९	उपविष के भेदादि	१४३
चारत्रयादि के लक्षण गुण	१००	पुरु, हाङ्गुली, गुजा, ह्यारि, विप-	
लक्षणत्रयादि के लक्षण-गुण	"	तिद्रुक और जैपाल के शोधन,	
चन्दन के लक्षण-गुण	"	गुणादि	१४४
गुदूचीसख के लक्षण-गुण	१०१	घटर और अहिपेन के गुणादि	१४५
स्वरस-कल्पना	"	सर्पविष में गाढहादि मय	"
पुटपाक-कल्पना	१०२	अन्नक-तालक-सायपातनादि	१४६
कक-कल्पना	"	चारवरपना	"
छाय-कल्पना	१०३	धमाववर्ग	१४७
चूर्ण-कल्पना	१०४	धमन प्रकरण	१५०
घटक-कल्पना	१०५	विरेचन प्रकरण	१५१
अवलोक-कल्पना	"	रेचन प्रकरण	१५२
आसयारिष्ट-कल्पना	१०७	मेघनादरेचन रस	१५३
स्वर्णादि सप्त घातुओं के		नस्य-कर्णपूरण-रक्षुति आदि	१५४
शोधन-भारणादि	१०९	स द्रा, जून्मा, छम, चयपु, आलस्य,	
उपघातुओं का परिगणन	१२०	उत्सलेश, ग्लानि, गौरवादि के	
अन्नक के शोधन-भारणादि	"	लक्षण	१५६
स्वर्णमाक्षिक के शोधन-भारणादि	१२४	हस्तास के लक्षण	१५७
रौप्यमाक्षिक के शोधन-भारणादि	१२५	ज्वरादि रोगों की गणना	"
हरताल के शोधन-भारणादि	१२६	ज्वराधिकार	"
मन शिला के शोधन-भारणादि	"	घात-पित्तादि ज्वरलक्षण	१५८
स्रोतोञ्जन के शोधन-भारणादि	१२७	सखिपातज्वरलक्षणभेदादि	१५९
सुत्य और स्पर्श के शोधन-भारणादि	"	आगन्तुकज्वरलक्षणादि	१६३
पारद के भेद, गुणादि	"	विषमज्वरलक्षणादि	१६४
गन्धक के भेद, गुणादि	१३६	ज्वरचिकित्सा	१६७
हिंगुल के भेद, गुणादि	"	सखिपातज्वरचिकित्सा	१८१
घञ्ज के भेद, गुणादि	१३७	आगन्तुकज्वरचिकित्सा	१८१
वैकान्त के भेद, गुणादि	१३८	विषमज्वरचिकित्सा	१९४
रसा के शोधन-भारणादि	"	सुदर्शनादि चूर्ण प्रकरण	१९७
शिलाजतु के शोधन-भारणादि	१३९	फुरण्टकादि ऐह प्रकरण	२०१
सिन्दूर के शोधन-भारणादि	१४०	पञ्चतिष्ठादि घृण प्रकरण	२०२
समुद्रफेन के शोधन-भारणादि	"	पटसम्प्रदि तैल प्रकरण	२०३
गैरिक के शोधन भारणादि	"	सेवनपादि पाक प्रकरण	२०६
परुषदीप का शोधन	"	मज्जरेभाङ्गुलादि रस प्रकरण	२०६
मरीच का शोधन	"	सप्तधातुगतज्वरलक्षणादि	२१३
विष्पली का शोधन	"	मध्यज्वरलक्षणादि	२१४
हिंगुल का शोधन	१४१	दुर्जलानितज्वरचिकित्सा	२१५
दांत के शोधन, गुणादि	"	पटोलादि घाय	"
भूनागम्माव और मयूरपक्षसाय के गुण	"	ज्वर में नप्यारण्य	"
कर्पूर का शोधन	"	श्रुतिसारनिर्दा	२१८
रङ्गुण का शोधन	"	अतिमार के पर्यल्प की चिकित्सा	२२१
विषों के भेद, गुणादि	१४२	भ्रामातिमार चिकित्सा	२२२
गैरिक पाषाण के भेदादि	१४३		

विषय	पृष्ठाङ्क
पक्षातिमार चिकित्सा	२२५
त्रिकानिसार चिकित्सा	२२६
रक्षातिमार चिकित्सा	२२७
श्लेष्मातिमार चिकित्सा	२२९
सङ्घिषातातिसारादि चिकित्सा	२३०
श्वरातिसार चिकित्सा	२३३
दाहिसापशुद्धादि	२३५
शङ्कोदरादि रसादि	२३७
अत्रिमार में पच्यारप्य	२३८
प्रद्वणीनिदान	२३९
प्रद्वनी चिह्नित्ता	२४२
विषकादिगुटिकादि	२४४
कषयागहापभेदपूर्णादि	२४५
विषादि घृत, आमष, रसादि	२४७
सुषर्गस पर्यव्यादि	२४९
प्रद्वणी रोग में पच्यारप्य	२५२
श्वशनिदान	"
अर्शरोगचिकित्सा	२५७
मिष्टादिमोदकादि	"
काँकायनगुटिका	२५८
सूरणादि मोदक	२५९
अवलेह, आमष, चूर्णादि	२६०
पच्यारि विविध घृत	२६३
ऐष-पूसादि	२६४
निर्योदित रसादि	२६५
अर्श में पच्यारप्य	"
अग्निमात्रनिदान	२६६
अग्निमात्रचिकित्सा	"
भस्मकुरोगनिदानादि	२६७
अजीर्णनिदान	२६९
अजीर्णचिकित्सा	२७१
पच्यारिचूर्णादि	२७२
सञ्जीवनी गुटिकादि	२७४
अवलेह, यषागू, क्वाथादि	२७६
अजीर्णकुलकण्ठनाग	२७७
अजीर्णहर रसादि	२७८
विस्फिकादि चिकित्सा	२८३
पच्यारप्य	२८४
क्रिमिरोगनिदान	"
क्रिमिचिकित्सा	२८६
क्रिमिग्न रसादि	२८८

विषय	पृष्ठाङ्क
क्रिमिरोग में अपच्य	२८८
पाण्डुरोगनिदान	२८९
पाण्डुरोग चिकित्सा	२९१
पाण्डुरोग चूर्ण, घटी आदि	२९३
पाण्डुरोग में पच्यारप्य	२९८
रक्तपित्तनिदान	"
रक्तपित्तचिकित्सा	३००
रक्तपित्त में पच्य	३०१
रक्तपित्तघृत, चूर्ण, गुटिकादि	३०६
राजयक्ष्मादिनिदान	३१०
राजयक्ष्माचिकित्सा	३१४
पच्यारप्य	"
राजयक्ष्मानाशक चूर्ण	३१६
राजयक्ष्मानाशक लौह, गुटिका, घृत, सैल, मोदक रसादि	३१८
फासनिदान	३४३
साध्यामाष्यता	३४५
फासचिकित्सा	३४५
हृद्भ्रूजकामचिकित्सा	३४८
अपच्यकासचिकित्सा	३४९
सामान्यकासचिकित्सा	३५१
पच्यारप्य	३६२
द्विगानिदान	"
द्विगचिकित्सा	३६४
द्विगानाशक सामान्य प्रतीकार	३६५
श्यासनिदान	३६७
महाश्वासलक्षण	"
ऊर्ध्वश्वास यातजादि	३६८
विच्छिन्नश्वास यातजादि	"
समकश्वास यातजादि	"
पुद्गलवातवातजादि	३६९
श्यासचिकित्सा	३७०
पच्यारप्य	३७३
स्वरमेवनिदान	३७४
स्वरभेदचिकित्सा	३७५
पच्यारप्य	३७७
श्वरोचकनिदान	"
श्वरोचकचिकित्सा	३७८
पच्यारप्य	३८३

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
छुर्विनिदान	३८३	घातरक्तनिदान	४७१
छुर्विचिकित्सा	३८५	घातरक्त-चिकित्सा	४७४
घातजादि छुर्वि-चिकित्सा	३८६	घातरक्तन तैलादि	४७७
सामान्य छुर्विचिकित्सा	३८८	पथ्यापथ्य	४८०
पथ्यापथ्य	३९२	उरुस्तम्भनिदान	"
तृष्णानिदान	३९२	उरुस्तम्भचिकित्सा	४८१
तृष्णा-चिकित्सा	३९५	स्यदलेपनसेधनादि	४८३
घातजादि तृष्णाचिकित्सा	"	पथ्यापथ्य	४८४
तृष्णा की सामान्य चिकित्सा	३९८	श्रामघातनिदान	"
पथ्यापथ्य	३९९	साध्यासाध्यत्व	४८५
मूच्छ्रांरोगनिदान	"	श्रामवातचिकित्सा	४८६
मूच्छ्रांश्रमतन्द्रानिद्रामेद	४०१	घृतकफकावलेपनादि	४९०
मूच्छ्रां चिकित्सा	४०२	पथ्यापथ्य	४९२
मूच्छ्रां रोग में पथ्यापथ्य	४०४	शूलनिदान	४९३
पानात्पथ्यनिदान	"	शूल की उत्पत्ति	"
पानात्पथ्यादि-चिकित्सा	४०९	घातिकादिशूल	"
पथ्यापथ्य	४११	शूलचिकित्सा	४९५
दाहनिदान	"	घातशूलचिकित्सा	"
दाह-चिकित्सा	४१२	पित्तशूलचिकित्सा	४९६
पथ्यापथ्य	४१६	कफशूलचिकित्सा	४९७
उन्मादनिदान	"	त्रिदोषशूलचिकित्सा	४९८
उन्माद-चिकित्सा	४१९	श्रामशूलचिकित्सा	"
पथ्यापथ्य	४२२	हृज्जशूलचिकित्सा	"
भूतोन्मादनिदान	"	सामान्यशूलचिकित्सा	"
भूतोन्माद-चिकित्सा	४२५	पथ्यापथ्य	४१५
अपस्मारनिदान	४२६	परिणामशूलनिदान	"
अपस्मार-चिकित्सा	४२८	परिणामशूलचिकित्सा	४१७
पथ्यापथ्य	४३१	कफ, भरम, घटी, मण्डूरादि	४०४
घातव्याधिनिदान	"	उदायर्तनिदान	४०६
आपेयकादिरोग	४३५	उदायर्तचिकित्सा	४०६
घातव्याधि में नहीं कहे गये घात		उदायर्त की सामान्य चिकित्सा	४१०
रोगों का समूह	४४१	आनाहनिदान	४१३
घातव्याधि-चिकित्सा	४४२	आनाहचिकित्सा	४१६
अस्ती प्रहार के घातरोगों की		पथ्यापथ्य	४१९
संज्ञित चिकित्सा	४४४	शुल्मनिदान	४६०
हनुमहादि घातरोग-चिकित्सा	४४९	शुल्मचिकित्सा	"
सभी घातरोगों की सामान्य		मातृलगादि योग	रोग ४६८
चिकित्सा	४५०	पथ्यापथ्य	रोग ४६९
घातनाशक तैलादि	४५५	विद्युत्पथचिकित्सा	४७१
पथ्यापथ्य	४७०	कफगुणचिकित्सा	४७३





॥ श्री ॥

# योगरत्नाकरः

## [ उत्तरार्द्धम् ]

अथ शूलनिदान व्याख्यास्यामः ।

शूल का रोग—

अनङ्गतापाय हरप्रियुष्णं शुमोच कोपामहरष्वजस्र ।  
तामापत्तं महमा निरीष्य भयार्दितो विष्णुानु प्रविष्टः ॥ १ ॥  
स विष्णुदुह्वारपिमोदितात्मा पपात्त भूर्मी प्रथितः स शूलः ।  
स पद्मभूतागुगलं शरीरं प्रचूपयवस्य दि पूयवृष्टिः ॥ २ ॥

शूल की उत्पत्ति—वाग्देव व माग के लिये महरषत्र पर कोप वर के छोटे दुष् शिव जी के विष्णु की आज्ञा हुआ सदृशा देस कर भय से दीक्षित होकर विष्णु के शरीर में वद (महरषत्र) प्रविष्ट हो गया। इस पर विष्णु ने दुंकार दिया जिस दुंकार से मूर्च्छित होकर वद (विष्णु) भूमि पर गिर पड़ा और वही शूल नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पंचभौतिक शरीर को घुसता है। वही शूल की प्राथमिक उत्पत्ति है ॥ १-२ ॥

शूलरोगणयत्पीडा यस्याः कस्मात्प्रजायते । शिथूलसम्भवं चैन शूलमाहुः पुराविदुः ॥ ३ ॥

जिसमें शूल रूढ़ाने के समान अकारमात्र पीडा हो अथवा छे ने के समान शाठ हो उसे शिथूल से उत्पन्न शूल रोग पुरातन विद्वानों ने कहा है ॥ ३ ॥

पादुस्फोटनयत्स्य यस्मात्पीडा च वेदना । शूलसत्तस्य भवति कस्माच्छूलमिदोप्यते ॥ ४ ॥

इस रोग में शूल स्थान को छोड़ने के समान तीव्र पीडा होती है इसलिये इसे 'शूल' कहते हैं ॥ ४ ॥

तस्य सप्तधामाह—

पृथग्दोषैः समस्तामहन्तैः शूलोऽप्या भवेत् । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनं प्रमुः ॥ १ ॥

शूल का निदान—वातादिक पृथक् २ दोषों से, त्रिदोष से आम से और दो-दो दोषों के एकत्र कोप से (द्वन्द्व कोप से) शूलरोग आठ प्रकार का होता है। इन सब प्रकार के शूलों में प्राय वायु की ही प्रधानता रहती है ॥ १ ॥

वातिकशूलस्य कारण लक्षण भाह—

ध्यायामयानादतिमैथुनाथ प्रगागराच्छीतजलातिपानात् ।

फलायमुन्नाडकीकोरदूपादत्यर्थरूपाप्यशानामिघातात् ॥ १ ॥

कषायतिक्तातिविस्तृताद्यविरुद्धवत्खुरकशुष्कशाकात् ।

विट्शुभ्रमृशानिलियेगरोधाराख्याकोपवासादतिहास्यमाप्यात् ॥ २ ॥

वायुः प्रवृद्धो जनयेदि शूल हृत्पारश्वपृष्ठत्रिकषस्थिवेदो ।

जीर्णं प्रदोषे च घनागमे च क्षीते च कोपं समुपैति शाठम् ॥ ३ ॥

वातज शूल—अधिक ध्यायाम, अधिक यान (घोड़े-दाधी आदि की सवारी) और अति मैथुन करने से अधिक आगने से, अधिक शीतल जल पीने से, मटर, मूँग, अरहर, कोदो और अति रुख पदार्थ का सेवन, अभ्यसन (भोजन कर चुकने पर पुनः भोजन) करने से, आपात



लगने से, अधिक कपाय निकल तथा अति रुध ( कठिन ) अत्रादि पदार्थ, विरुध ( प्रकृति विरुध, संयोग विरुध तथा ऋतु ( समय ) विरुध ) पदार्थ, वस्त्र ( छत्रे हुए मास ) तथा छत्रे हुए शाकादि के सेवन से, मल, गुक, मूत्र तथा वात के रोग का अवरोध करने से, अधिक शीत, उपवास तथा अधिक हँसने और बोलने से बड़ा दुःखा ( कुपित ) वायु उष्ण, पान्न, पीठ, त्रिकदंश और मूयाशय में शूल उत्पन्न कर देता है । वह गूल जीर्ण में ( मोहन के पचने पर ) प्रदीप काल में ( संध्या में ), वर्षा ऋतु में तथा शीतकाल में अधिक तीव्र होता है ॥ २ ३ ॥

सुदुर्गुणोपशामप्रकोपी विद्ववातसस्तम्भनतोदभेदः ।

सस्वेदनाभ्यङ्गनमर्दनाद्यै स्निग्धोष्णामोज्यैश्च शामं प्रयाति ॥ ४ ॥

बार २ शूल शमन होता है और बार २ गूल का रोग बंद जाता है और मल तथा अपीवायु का अवरोध और यह चुमाने ( जेदने ) के समान पीडा ये सब लक्षण होते हैं । तथा वह ( वातज ) शूल स्वेद कर्म, अभ्यङ्ग ( तैलमर्दनादि ) तथा स्निग्ध पत्र तथा पदार्थों के मोहन करने से शांत होता है । ये उपरोक्त निम्न तथा लक्षण वातज शूल के हैं ॥ ४ ॥

पेक्षितस्य कारणं लक्षणं चार—

चारातितोषणोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्यावकुल्ययूषा ।

फट्यग्लसौधीरसुराधिकारैः फोषामलायासरविप्रतापैः ॥ १ ॥

प्राग्भातियोगाद्दाहमैविदग्धं पित्तं प्रकुप्वाऽऽशु करोति शूलम् ।

घृण्मोहवाहादार्तिकर हि नाभ्यां सस्येदमूर्च्छांममसोपमुष्णम् ॥ २ ॥

पिचन शूल—अधिक क्षार युक्त पदार्थ, अति तीक्ष्ण-उष्ण और दाहकारक पदार्थ, तेल, सेम तिल की छत्रो, कुलथी का दूध, अति फट्ट अम्ल, कांजी, सुरा आदि के मक्षण से अधिक प्रोष करने से, अति सेवन, अधिक परिश्रम तथा पूष सेवन से, अधिक मैथुन करने और मोहन के विदग्ध होने से, पित्त शीघ्र कुपित हो कर शूल रोग को उत्पन्न कर देता है, जिससे दवा, मोह, दाह और नाभिस्थान में पीडा, स्वेद, मूर्च्छा, भ्रम और शोष होता है ॥ १-२ ॥

मध्यन्दिने कुप्यति चार्धरात्रे निदाघकाले जलदायये च ।

शीते च शीतौ समुपैति दान्ति सुस्यादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ३ ॥

इस शूल का बोध मध्याह्न, आधीरात, शुष्म और शरद ऋतु में अधिक होता है । यह ( पिचन ) शूल शीतकाल में, शीत उपचारों से और रसातु ( मधुर ) तथा शीतल पदार्थों के मोहन से शान्त होता है ॥ १-३ ॥

श्लेधितस्य कारणं लक्षणं चार—

आनूपपारिजकिलाटपत्रिकारैर्मांसेषुपिष्टहारातिलनाशुलीभिः ।

अन्वेषलासजलकैरपि हतुमिध श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ १ ॥

ककूठ शूल—आनूपदंश क जीर्णों के मांस, वल्च ( मारवादि ) जीर्णों के मांस, बर्षे-फटे दूध का रोषा, दूध के विहार दही आदि के अधिक सेवन, मांस-ईस, पिठ्ठी आदि, सिपरी, तिक, पूरी आदि क अधिक सेवन तथा अग्न्याय इसी भीति के ककूठवर्षक कारणों से ककूठ प्रसिद्ध होकर शूल उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

दृष्यलामकाससद्वनादक्षिसम्प्रसेकैरामाशय रितामिषयोहशिशोर्गुण्यैः ।

सुकं सदैव हि स्थं कुक्कुटऽविमात्रं सूयोदपेऽप निगिरे बुभुनागम च ॥ २ ॥

इस ( ककूठ ) गूल में द्वासास ( उपचार ), कास शिथिलता, अरवि, ललासास, आमाशय में भारता ओष तथा मिर में गुरता आदि लक्षण होते हैं । यह शूल सरा मोहन करने पर, एतदप के समय, शिशिर ऋतु तथा वसन्त ऋतु में अधिक पीडा करनेवाला होता है । कर्कश ये निम्न तथा लक्षण ककूठ शूल के हैं ॥ २ ॥

सन्निपातिन्माद—सर्वेषु शोषेषु च सर्पटिङ्गे विद्यान्निवृत्सर्वमयं हि शूलम् ।

सुकुटममं विषयज्ञानुषयं विषयज्ञीयं प्रवर्द्धितं तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥

सन्निपातज शूल—विषय शूल में सब दोषों के समी प्रकार के लक्षण वर्तमान हो उसे शूल

उपिपन्न एव जाने । एव एव विष तथा एव के समान एव शक्य है । एते विट देव एवम्  
करोते है । एते कि एव एवम् है ॥ १ ॥

आमकमाह—आग्नेयहृत्पातधमीगुणधरतैमिपधानादृक्कमगेवैः ।

कृत्वापि तिष्ठेत्सामान्तिह्रमात्मोत्थं शूलमुदाहरति ॥ १ ॥

आमक सूत्र—शिम सूत्र में आरोग्य ( देह में शुद्धिप्राप्त ) परबार्ध, कर्म, एतरीर की प्रकृता  
एतरीर पर भार्ये एव एतरीर दुःख के समान हास्य होना, आमाह, एव का सुम ती शक्य होता, ये  
सब एवम् हो तथा कृत्वा सूत्र के लक्षणों के समान कृत्वा में शुद्ध हो एते आमक सूत्र  
करोते है ॥ १ ॥

शिरोवज्रमाह—

शिरोपलपनैतैर्विष्णुपुच्छं शिरोवज्रम् । कर्त्तुं ह्यक्षय्यार्यपु म शूलः कथयति ॥ १ ॥

शिरोवज्र सूत्र—शिम सूत्र में शी-शी शी के सम्बन्धित लक्षण ही एते ह्यक्षय और  
शिम सूत्र में मुष्णय, ह्यद एव और शरीरदेव एव एवम् में शूल होने एते शक्य-कथन  
सुल जानना चाहिये ॥ १ ॥

कुची ह्यमिमप्ये च म शूलः कृत्वेति ॥ श्वादन्यकरा घोरो विष्णो वातपैति ॥ २ ॥

शिम सूत्र में कुक्षिपान, ह य और नाभि कर्मण्य में शूल होने एते कृत्-पैति नामना  
चाहिये । शिम सूत्र में शीर दाह तथा वरत हो एव शक्य शिन्द जानना चाहिये ॥ २ ॥

तत्राठरे—वातामकं परितगतं वदन्ति विष्णामकं चापि वदन्ति नाम्नाम् ।

ह्यार्यपुच्छी कृत्वापि विष्टं सर्वेषु देशेषु च तत्रिपान्तात् ॥ १ ॥

तत्रान्तर से शिरोवज्र, शिरोवज्र सूत्र—ओ सूत्र मुष्णय में हो वर वातन कर। माता दे,  
ओ नाभिरपात में हो वर शिष्य कर। जाग दे तथा ओ ह्यद-नार्य देव तथा शीर में हो  
वर कथन कहा जाग दे तथा ओ शूल एवम् में हो वर तत्रिपान्त कहा जाग दे ॥ १ ॥

साप्यासाप्यार्यमाह—

पृक्दोषोपियतः साप्यः कृत्वाप्यो शिरोवज्रः । सर्वदोषोपियतो धारस्यमाप्या भूर्मुपद्रवः ॥

साप्यासाप्यना—एव दोष से उत्पन्न दुभा सूत्र शक्य होता है, दो दोषों से उत्पन्न दुभा  
कृत्वाप्य और सब दोषों से उत्पन्न दुभा सूत्र तथा अनेक उपद्रवों से सुल सूत्र शक्य कथन  
तथा शक्य है ॥ १ ॥

नष्टकानाह—

वेदनातिरुपा मूर्च्छां दानाहो गौरवाहृत्ती । भ्रमो ज्वरः कृत्वाप्य च वलहागिरतयेव च ॥ १ ॥

कासा श्वासश्च हिष्ठा च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १ ॥

शूल के उपद्रव—शूल रोग में यदि अतिशय, घृणा, मूर्च्छा, माताह, प्रकृता भयति, भ्रम,  
ज्वर कृत्वा, वल की हाति, कास, श्वास और हिष्ठा हो तो एते उपद्रव जानना चाहिये ।

अथ सामान्यतः शूलचिकित्सा ।

ममन एहन स्वेद पाचनं फलवर्तयः । शारभूणश्च गुटिकाः शस्यन्ते शूलदान्तये ॥ १ ॥

सामान्यतः शूल चिकित्सा—शूल रोग की शान्ति के लिये ममन कर्म, एहन कर्म स्वेदन  
कर्म, पाचन, फलवर्तन, शार चूर्ण और शार गुटिका आदि का प्रयोग उत्तम होता है ॥ १ ॥

अथ घातशूलचिकित्सा माह—

ज्ञाप्या तु घातज शूल स्नेहस्वेदपाचनेत् । पायसै कृत्वापिपिष्टैः स्निग्धैर्वा विशितोक्तैः ॥ १ ॥

आशुकारी हि पवनस्त्वस्मात्तं त्वरया जयेत् । तस्य शूलानिपक्षस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ २ ॥

घातशूल चिकित्सा—घातजशूल जान कर उसके लिये स्नेहन कर्म और स्वेदन कर्म करना  
चाहिये और शीर, लिचड़ी और स्निग्ध ( स्नेह युक्त ) मास रस आदि पिलाना चाहिये । यह  
घात आशुकारी ( शीघ्रता करने वाला ) है इसलिये इसे शीघ्रता से जीतना चाहिये ( शमन करना  
चाहिये ) इस घातज शूल से युक्त रोगी के लिये स्वेद कर्म सुखकर है ॥ १-२ ॥

तिलकस्वस्वेद—

तुपवारिचिनिष्पिष्टतिलकश्चोष्णपोटली । अमिता जठरस्योर्ध्वं मुहुः शूलं विनाशयेत् ॥ १ ॥

तिलकल्क रवेद—कांजी के साथ तिल को पीस कर बत्क बना कर घोटली में बांध कर गरम कर उदर के ऊपर बाए २ घुमाने से शूल को (वातिक शूल को) नष्ट करता है ॥ १ ॥

छेपतेकी—

नामिलेपाज्येच्छूल मर्दनं काञ्जिकान्वितम् । वित्त्यैरुण्डतिलैर्वाऽपि पिष्टैरभ्येन घोटली ॥ १ ॥

छेप और सैक—मैन कुछ को कांजी के साथ पीस कर छेप बना कर नामि स्थान पर छेप करने से भयवा बेल की छाल, परण्डगूल की छाल और तिल इनको समान केकर कांजी के साथ पीस कर घोटली में बांध कर पेट पर करने से वातिक शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुलत्पादिभूष—पातामक हृन्वधिरण शूल स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्पाद्यभूषः ।

ससैधयो भ्योपयुतः सलाधः सहिहुसौवर्षलदादिमाहव ॥ १ ॥

कुलत्पादि भूष—सेन्धा नमक, सोंठि और अनार दाना इनके चूर्णों से युक्त कुत्थी के बूट में स्नेह (घन मिश्रकर घिलाने से वातिक शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

बलादिवाप—

पलापुनर्नयैरुण्डपृहतीद्वयगोदुरैः । फाय सहिहुगुलपणः पीतो वातरुजं जयेत् ॥ १ ॥

बलादि वाप—बरीभारा, पुनर्नवा परण्डगूल, छोटी पटरी, बड़ी कटेरी और गोखरु समभाग केकर बांध कर इसमें शुद्ध हींग और सेन्धा नमक के चूर्ण का प्रयोग देकर पान करने से वातन शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

श्याधरा-नागरादि—

नागरैण्डयोः फायः फाय हृन्त्रयपरय या । हिङ्गुपीवर्षलपेतो पातशूलीयाणः ॥ १ ॥

नागरादि वाप—सोंठि और परण्डगूल भयवा द्रव्यो का वाप बना कर उसमें (दोनों काथों में) शुद्ध हींग और सौवर्षल नमक के चूर्ण का प्रयोग देकर पान करने से वातन शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

करजादिचूर्णम्—करजसौवर्षलनागराणां सरामठानां सममागिकानाम् ।

चूर्णं कटुष्णेन जलेन पीतं समीरशूलं विनिद्वित्त सधः ॥ १ ॥

करजादि चूर्ण—करज, सौवर्षल नमक, सोंठि और शुद्ध हींग का द्रव्यो को समभाग केरु चूर्ण कर भोके गरम जल के अनुमान से पान करने से वातन शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

राजिपयदिलेप—

राजिफाशिमुकुक च गोतप्रेण च वेपितम् । तेन लेपेन हाप्याशु मूल वातसमुद्भयम् ॥ १ ॥

राजिवादि लेप—राई और महिजन की छाल को गाय के तर्क के साथ पीसकर बत्क बना कर उदर पर छेप करने से शोथ वात से उत्पन्न शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिलवादिसेप—

हिङ्गु सैल सलघणं गोमूत्रेण विपाचितम् । नागिरयाने प्रयातर्ष्यं वरय शूलं सवेदनम् ॥ १ ॥

हिंग्वादि लेप—हींग, तिल का तेल और सेन्धानमक इनको गोमूत्र में घिलाने काथों में पीस के साथ वातिकशूल को उसके नागिरयान पर कर करना चाहिये । इनसे वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

एतेतारोप—

सैलमेरुण्डजं वाऽपि दशमूलस्य यावित् । पीतं मिद्वन्ति साटोपं हिङ्गुसौवर्षलान्वितम् ॥ १ ॥

शूल और साटोप में विद्विस्ता—परण्ड का सैल दशमूल के काथ में मथिष कर भयवा शुद्ध हींग और सौवर्षल नमक के चूर्ण को दशमूल के काथ में मथिष कर पान करने से श्रायेश सदिश वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सामाह ।

वामपेन्पित्तशूलार्थं पटोलेद्वरसादिभिः । पलाद्विरेषदेतस्यमिपणगुहमविशनेः ॥ १ ॥

पित्तशूल चिकित्सा—प्रथम पित्तशूल के रोगी को दरकर के पत्र और बँस के रस आदि से (आदि पद से अन्य वामदयोग से) बमन कराना चाहिये । पलाय पित्त शूल में बरदुप विरेक भोगों के द्वारा बट्टीमैत्रि विरेपन कराना चाहिये ॥ १ ॥

शतावरीविषय — शतावरी सपष्टवाह्या पाटवाह्युत्तमोद्भूतः ।

शतशीत विषेणोय सगुह्यौद्भवाकर्मम् । पित्तशूलापवाह्यं द्विधाऽपरमिषिद्धम् ॥ १ ॥

शतावरीदि काय—शतावरी, जेठीमधु, बरिभारा, कुश, गोदरू सग भाग लेकर काय बनाकर शीतल कर वसमें गुह्य पुराना भीर मधु इसका प्रथेप देकर पान करने से पित्तजशूल, रक्तोष (राव), दाह, दिक्का, उर और बगन नष्ट होगा है ॥ १ ॥

घृहत्यादिकाय—

घृहतीगोष्ठैरुण्डकुदाकाशोष्ठवाहका । पीताः पित्तमय शूल सघो हन्युः सुदारणम् ॥ १ ॥

घृहत्यादिकाय—बड़ी कटेरी, गोदरू, परण्टमूल कुश की जड़, काम (राही) की जड़ रंग की जड़, गुणधवाला समान भाग लेकर काय कर पान करने से कठिन से कठिन पित्तजशूल शीघ्र नष्ट होगा है ॥ १ ॥

त्रिफलारग्यभाषि—

त्रिफलारग्यभाषायाः शार्कराशौद्रसयुत । रक्षपित्तहरो दाहपित्तशूलनियारणः ॥ १ ॥

त्रिफलारग्यभाषि काय—भाबला, हरी, बदेदा और अमलतास समभाग लेकर काय कर शीतल होने पर शक्कर और मधु का प्रथेप देकर पान करने से रक्षपित्त दाह तथा पित्तशूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलादि —

त्रिफलारिष्टयष्टवाह्यद्विद्वारग्यधैः शृतम् । पापयेन्मधुममिधं दाहशूलापशात्तये ॥ १ ॥

त्रिफलादि काय—भाबला, हरी, बदेदा, नीम की छाल, जेठीमधु, कुटकी, अमलतास का गुदा सम भाग छन्द काय कर शीतल होने पर मधु का प्रथेप देकर पान करने से दाह और शूल को शमन करता है ॥ १ ॥

शतावरीस्वरस वृद्धाद्—

शतावरीरसं शौद्रयुक्तं प्रातः विषेण । दाहशूलोपशान्त्यर्थं सपपित्तमयापहम् ॥ १ ॥

शतावरी स्वरस—शतावरी स्वरस में मधु का प्रथेप देकर प्रातः काल पान करने से दाह और शूल शान्त होकर सब प्रकार के पित्तजशूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

घाभ्यादिवीग —

घाभ्या रसं विद्वार्यां वा प्रायन्तीगोस्तनाग्मुना । विषेसशार्करं सद्यः पित्तशूलनिवारणम् ॥ १ ॥

घाभ्यादि वीग—आंबले का स्वरस अथवा विद्वारीकन्द वा स्वरस तथा प्रायमाण और मुनका इनके काय शकरा के प्रथेप को देकर पान करने से पित्तजशूल शमन होता है ॥ १ ॥

धात्रीचूर्णादि—

प्रलिङ्गापित्तशूलान् धात्रीचूर्णं समाधिकम् । सगुह्यं घृतसम्मिधं मधुवेद्दा हरीतकीम् ॥ १ ॥

धात्रीचूर्ण—आंबले के चूर्ण को मधु के साथ देह बनाकर अथवा हरी के चूर्ण को पुराने गुह्य और घृत के साथ मिलाकर भक्षण करने से पित्तजशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुणादिवीग—

गुह्यालियवधीर सर्पिदुग्ध विरेचनम् । जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनः ॥ १ ॥

गुणादिवीग—गुह्य पुराना, शालिधान, जी और दूध इनका खीर पिलाने से, तथा दूध में घृत मिलाकर पिलाने से, विरेचन देने से, जागल जीवों के मांस वा रस पिलाने से पित्तजशूल शमन होता है ॥ १ ॥

अथ कफशूलचिकित्सांमाह ।

शाक्यन्म जाङ्गल मांसमरिष्टं कटुक रसम् । मद्यानि जीर्णगोधूम कफशूले प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

कफ शूल चिकित्सा—कफशूल में शालिधान्य, जांगल जीवों का मांसरस, नीम, कट्टरसवाले पदार्थ, मधु और पुराने गेहूँ का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

त्रिलवणादिचूर्णम्—

शुक्लवर्णसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् । सुखोष्णेनाग्मसा पीतं कफशूलहरं परम् ॥ १ ॥

त्रिलवणां चूर्ण—सेधानमक, सोधर नमक (सौवर्षक), विघ्नमरु, पीपदि, विपरागूल, चण्ड, त्रिवर्गगूल सोठि और शुद्धहींग, समभाग छेकर चूर्णकर उष्णोष्ण के अनुपान से खवा करने से शूल बी नष्ट करने के लिये उत्तम है ॥ १ ॥

त्रिदोषशूलचिकित्सामाह ।

उष्णचूर्णयोग—

शुद्धचूर्ण सलवणं सहिद्व्यु व्योषसयुतम् । उष्णोष्णके सत्पीठं हन्ति शूल त्रिदोषाम् ॥ १ ॥

उष्णचूर्णयोग—उष्णमरु, सेधानमक, शुद्धहींग, सोठि, पीपदि और मरिच सम भाग छेकर चूर्णकर उष्णोष्ण के अनुपान से खान करने से त्रिदोषक शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

मण्डूराबलेह—

गोमूत्रसिद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहमघुसर्पिर्म्यो शूल हन्ति त्रिदोषाम् ॥ २ ॥

मण्डूराबलेह—गोमूत्र के योग से सिद्ध किया हुआ मण्डूरमरु और इर्रा-बदेरा तथा ओबला इनका चूर्ण, सब समान भाग लेकर मधु और घृत के अनुपान से खेवन करने से त्रिदोषक शूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ आमशूलचिकित्सामाह ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी । दोषमाहुरं सर्वं यद्यदग्निविवर्धनम् ॥ १ ॥

आमशूल चिकित्सा—आम से उत्पन्न शूल में कफशूल को नष्ट करने वाली सम्पूर्ण क्रियायें तथा आम को नष्ट करनेवाली सम्पूर्ण आय क्रिया (ओषध पध्यादि) और जो २ अग्निवर्धक क्रियायें हैं उन्हें करनी चाहिये ॥ १ ॥

चित्रकारिकाय—

चित्रकप्रयिकैरुष्णद्विधाण्यजै शूलम् । सहिद्व्युसैधपविदमाहुरशूलहरं परम् ॥ १ ॥

चित्रकां चित्रकामूल, विपरागूल, परण्डमूल, सोठि, धनिया और श्यामपत्राणा सम भाग लेकर काश कर उनमें शुद्धहींग, सेधानमक और विघ्नमरु का प्रथेय देकर खेवन करने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

परण्डादिवाय—परण्डविषवृहतीद्वयमातुलुङ्गपापणमिधिरुडुमूलकृतः कषायाः ।

सप्तरदिगुलवणोह्युतैलमिध्रः श्लेष्मसपृष्टद्वयस्तनरुपयः ॥ १ ॥

परण्डादि वाय—परण्डमूलक, बेल की छाल, छोटी बटेरी, बड़ी बटेरी, बिबीरा नीदू, पत्परचूर, सोठि, पीपदि, मरिच, सम भाग लेकर काश कर इसमें यवासार, शुद्धहींग, सेधानमक और परण्डतेल का प्रथेय देकर खान करने से भोगि, असदेनु, पीठ, इरय और रजन को पीड़ा दाना होती है ॥ १ ॥

परण्डादिवाययोग—परण्डतेलं पद्भाग एशुनरय तथाहकम् ।

एक हिद्व्यु त्रिमिधूर्णं सयमवय मवपय् । त्रिनिष्कं भवयेद्यानु क्षामशूलप्रदान्तर्य ॥ १ ॥

परण्डतेलादियाग—परण्ड का तल १ भाग, शुद्ध लहसुन आठभाग, शुद्धहींग एक भाग, सेधानमक तीन भाग, छेकर चूर्णकर योग्य मात्रा अनुपान के द्वारा (उष्णोष्ण से) १ निष्क ( ३ पाण ) की मात्रा से [ कड़ी १ ण्ड श्रा को मात्रा भी है ] खेवन करने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिद्व्युत्रिमिधूर्णमैधयं तस्मात्त्रिगुणतैलमेरुण्डम् । सपिगुजरसोनरस शुभमोदापर्वशूलाम् ३२१

शुद्ध हींग १ भाग, सेधानमक ३ भाग, परण्डतेल १ भाग, लहसुन का रस १० भाग इन सबको एकत्र मिलाकर एकदोष्य मात्रा से खेवन करने से शुभ्र बनावरी और शूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ अक्षयशूलचिकित्सा ।

अक्षयशूलचिकित्सा—त्रिविधिका सुहादी च पुनःकातोष्णालकाः ।

अर्द्धैरुष्णमूर्धं च धारिणा सह पाचयेत् । विषेभारकरौर्धुं शूले रिक्तानिदानके ॥ १ ॥

अक्षयशूलचिकित्सा—छोटी बटेरी, बड़ी बटेरी, दुध की बड़, काश की बड़, बेल की बड़,

मधुपबाण, गोतरु भीर परण्डमूल सम भाग लेकर कापकर शीतल होने पर दाकर भीर मधु का प्रक्षेप देकर पात्र बरने के लिये विषम वातम विमित द्रव्य मूल में देना चाहिये ॥ १ ॥  
पटोलादि —

पटोलत्रिफलारिणामृत चौद्रयुतं विधेत् । पित्तश्लेष्मोत्तरणदिवाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

पटोलादि काय—परवर का पत्रा, हर्षा, भांवरा, बहेरा, गोम की छात्र, गुग्गुलु समभाग लेकर कापकर शीतल होनेपर मधु का प्रक्षेप देकर विष-कफन दाल, उबर, बमन, दाह और दाल में पान करने के लिये देना चाहिये । इससे ये रोग शमन होते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षादिषाम् —

द्राक्षादिरूपयोः कायः श्लेष्मपित्तराजं जपेत् । पित्तश्लेष्मोन्नाय शूल विरेक्यमनैजयेत् ॥ १ ॥

द्राक्षादि काय—दाग भीर अरुक्ता समान भाग लेकर काय कर सेवन करने से कफ-विषय दाल को नष्ट करता है । विष-कफज दाल को विरौजन तथा बमन कराकर शीतना चाहिये ॥ १ ॥  
क्षाराम्बुयोग —

क्षारोदकं विधेयुष्णं पिप्पलीलवणाश्वितम् । वातरश्लेष्मोन्नाय शूल पुचिशूल च मादायेत् ॥ १ ॥

क्षाराम्बुयोग—क्षार का जल ( यवाक्षारदिकों का घोल ) उष्णकर उसमें पीपलि के चूर्ण और से-पामक मिलाकर पान करने से वात-कफज दाल और कुक्षिशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

शूले साधारणविधिः ।

त्रिफलादिविरेचनम्—

त्रिफलाकायगोमूयचौद्रघोरसै शृषक् । परण्डतैट्टिगुणैर्हित शूले विरेचनम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि विरेचन—समा मिलात्रिफला का काय, गोमूय, मधु, दूध भयवा मांसरस इनमें से कोई एक द्रव्य दो भाग और परण्डतैल एकत्र कर सेवन करने से विरेचन होकर शूल शमन होता है ॥ १ ॥

बीजपूरादिवरस —

बीजपूररसः पानामधुपारयुतो जपेत् । पार्श्वद्वद्वस्तिशूलानि कोष्ठवायु च दाह्यम् ॥ १ ॥

बीजपूरादि वरस—बिजौरा नीबू के रस में मधु और क्षार ( यवाक्षार ) मिलाकर पान करने में पार्श्व, दृश्य और बस्ति का दाल शमन होता है और कोष्ठ का कठिन वात भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यादिषाम् —पथ्यासदाप्रयपुष्करमूलयुक्तां निष्काष्यद्विहृगुजटिलातिविषासमेताम् ।

पीत्वा सुतोष्णमथ वातवृत्तं सशूलमामोन्नाय कफवृत्त च निहत्य वृणम् ॥ १ ॥

पथ्यादि काय—हर्षा, द्रव्यौ और पुदकरमूल समभाग लेकर काय कर उसमें शुद्धहींग, पीपलि और अशीस के चूर्ण का प्रक्षेप देकर कुछ गरम रहे तभी पीने से वातजदाल आमशल और कफज दाल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मातुलुहादि —

मातुलुहरसोवाऽपि शिमूहायस्तथा पराः । सपारो मधुना पीतः पार्श्वद्वद्वस्तिशूलहा ॥ १ ॥

मातुलुहादि योग—बिजौरा नीबू के रस भयवा सहिजन के कवाय में यवाक्षार और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से पार्श्व, दृश्य और बस्ति दाल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अन्यथ—मातुलुहरसे सर्पिः सहिहृ लयणान्वितम् ।

सुश्लोष्ण पाययेत्तद्वि विहृषियन्धानुलोमनम् । कुचिद्वपार्श्वशूलेषु येदना चोपशान्यति ॥ १ ॥

बिजौरा नीबू के रस में गोशय, शुद्ध हींग और सेपानमक मिलाकर कुछ गरम कर पिलाने से मलाबरोप नष्ट होता है और वायु का अनुलोमन होता है तथा कुक्षि दृश्य और पार्श्वदेश के दाल को पीड़ा शमना होती है ॥ १ ॥

विश्वमूलादि—

विश्वमूलमयैरण्ड चित्रक विश्वमेपजम् । हिङ्गुसै चवसंतुक्तं सद्य शूलनिवारणम् ॥ १ ॥

विश्वमूलादि कवाय—बेहू को जड़, परण्डमूल चित्रकमूल, सोंठि इनके कवाय में शुद्ध हींग और सेपा नामक का प्रक्षेप देकर सेवन करने से शीघ्र दाल शमन होता है ॥ १ ॥

हरीतकीयोग—

मूत्रान्तपाचितां शुष्कां छोटचूर्णसमन्विताम् । सगुहामनया दद्यात्सर्वशूलोपशान्तये ॥३॥

हरीतकी योग—गाय क मूत्र में हरक को पाक कर गुहा एवं रसने समान होकर मूल और गुद मिला कर सेवन करने से सब प्रकार के शूल शान्त होते हैं ॥ १ ॥

छोइत्रिकलायोग—

सीक्यापरचूर्णसयुक्त त्रिकलाचूर्णमुत्तमम् । प्रयोग्यं मधुसर्पिर्म्यां सर्वशूलनियारणम् ॥ १ ॥

छोइत्रिकला योग—तीक्ष्ण छोट क मूल में सम भाग त्रिकला का चूर्ण मिला कर-मधु और गीघृत के अनुपात से सेवन करने पर सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

तत्राग्ने हुम्बुवापंच चूर्णम् ।

चूर्णं हुम्बुद्रामठत्रिलपणसाराजमोदाभयावेहम्यूपणपुष्कराद्द्वयकृतं कुम्भप्रिमानान्वितम् ।

मन्दोष्णो जलेन पीतमल्लिख शूल सगुहमोदरा

ध्मानाजीर्णविद्यधमामपवनानाहो च शीघ्र जयेत् ॥ १ ॥

हुम्बुवादि चूर्ण—तेजबल का पल, गुद-हींग, सेंधानमक, सोंचर नमक, विट्नमक, यवासार, जवाबल, हरी, बायमीरंग, सोंठि, मरिच, पीपरि और पुइकर मूल प्रत्येक एक २ भाग और दही का मूल ३ भाग लेकर चूर्ण कर थोड़े उष्णजल से सेवन करने (पान करने से) सम्पूर्ण शूल, शुष्म, उदर, आम्भान, अजीर्ण, विरग्ध (बात एवं मल का अवरोध) आगवात और आनाहरीग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दिशारापम्—विश्वोरस्कृदसामूलयथाम्मसा तु द्विपारद्विहृगुलवणप्रयपुष्कराणाम् ।

चूर्णं विवेक द्दयपृष्ठकटिप्रहामपकाशपातिभृदाह्वरगुहमन्दूली ॥ १ ॥

दिशाराणि योग—सोंठि, परण्डमूल, ददामूल को एक २ दसो ओषधियों और भी समान लेकर बवाब कर उसमें यवासार, सक्तीसार शुद्ध हींग, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विट नमक, तथा पुष्करमूल क चूर्ण का प्रयोग देकर पान करने से हृदय पीठ, कटिप्रह आमाशय और पक्वाशय का कठिन गल, ज्वर तथा शुष्म शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्विहृग्वादि—द्विहृग्मूलप्रिपट्टमपट्टदुदाटीपृष्ठाभ्दहीप्यालकं

पाठाजापजगधमूलहपुपाद्विपारसाराभयम् ।

द्विध्माध्मानविद्यधधर्म्मकसनधाम्नाप्रिवादादधि

प्लीहाशौंलिखशूलगुहमगलहृद्रोगारमपाण्डमशुम् ॥ १ ॥

द्विहृग्वादि चूर्ण—गुद हींग, अम्बलेन, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विट्नमक, बघ, पिपरि, विपरामूल, चम्प, चिगकमूल सोंठि, कानो मरिच कपूर, वृषाण्य (काकम, शुक्र अथवा अमलुद्रा)-अमवाता, अकरका, पुरहन पानो, जीरा, बनबशारन की अद्, हाइरेट, यवासार, सक्तीसार, छोइभरम और हरी समान लेकर प्रथम सब ओषधियों का चूर्ण बना कर तब छोइभरम मिश्रण मली-भौंठि मरिच कर इस चूर्ण को बघा काष्प माया से सेवन करने से द्विहृग्, आम्भान, विरग्ध बुद्धि, कस, दवात, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, अर्श सब प्रकार के शूल, शुष्म, गन्तोग, द्रोण, अरमरी और पाण्डु ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नारापचूर्णम्—

कर्पमाया भवेत्पृष्ठा त्रिभुतं ह्यापलोम्नितम् । सपकापलं च विज्ञेय चूर्णमेकत्र कारपत् ॥१॥

कर्पोम्नितं छिद्रहृत्तरीत्रेणाध्माननामानम् । पात्रशिक्रेदरकफरिच्छमूलाणि मादापत् ॥२॥

नाराप चूर्ण—पीपरि का चूर्ण १ कर्बु निजीव चूर्ण तथा लम्बर एक २ पल सबको एकत्र मर्दन कर इस चूर्ण को १ कर्बु की माया से मधु के अनुपात से पानने से आम्भान रोग, मन्त्र की कठिनता, उदर और कफ विष के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शङ्खपदी—

विज्ञाकारं पद्मपलं छपगानि पलं पलम् । सम्पूर्णं विविधेन्द्रयहृषैजभीरपरिभिः ॥ १ ॥

बाह्यं दशापलं तप्या निक्षितोत्सवारता । तत्तमस्तं विद्योप्याय दिक्षु स्योर्षं चतुष्पलम् ॥१॥  
 बलिघृतविपाङ्गाग्न्यलार्षं च पृथक्पृथक् । पृतत्तमस्तं सम्मर्षं जम्बीराम्ळेदिनप्रयम् ॥ ३ ॥  
 बदरासियप्रमाणेन घटिकां कारयेद् शुषः । पृष्ठीकां मचयेत्प्रातः कोष्णतोय विषेवतु ॥ ४ ॥  
 सर्वशूलं हरेद्गुहममजीर्णं परिणामजम् । अतिसारगर्वं हन्याद्भ्रष्टणीं च विशेषतः ॥ ५ ॥

घाह्वरी—इगली वा दार ५ पल, पाचो १मक पृथक् २ एक एक पल लेकर पूर्ण कर जमीरी  
 गीबू के दो प्रत्य रस में मिला देवे पश्चात् इसमें शुद्ध चूरा १० पल लेकर अग्नि पर तथा २  
 कर सात बार घुसावे, फिर इसकी भली-भाँति मर्दा कर गुला कर इसमें शुद्ध हींग सौंठि,  
 गरिच, पीपरी इनका पूर्ण ४-४ पल मिलावे और शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध विष हारो  
 आधा २ पल लेकर पारद गन्धक को कञ्जली कर फिर विष उसके साथ मर्दन पर सबको एकत्र  
 कर जमीरी गीबू के रस में १ दिन तक मर्दा कर बैर को गुलठी के प्रमाण धो यटी बना कर  
 प्रातःकाल एक २ बटी कण्ठीदक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शूल गुहम अजीर्ण,  
 परिणाम शूल, अतिसार रोग और विशेष कर प्रहणी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

यस्यप्रभाबरी—स्योपमन्ययचाग्निद्विगुजरणद्द विषं निगुक्-

द्रापैराद्रंबजे रसेर्विगुदितं शुष्यं मरीचोपमा ।

कर्तव्या घटिकाज्घ सा दिग्गुले भुक्ता कषोप्याम्बुता ।

शूल खण्डविध निहन्ति सद्यमा सूर्यप्रभा नामतः ॥ १ ॥

यस्यप्रभाबरी—सौंठि, पीपरी, गरिच, विपरामूल, चच, चित्रकमूल शुद्ध हींग, जीरा और कृष्ण  
 जीरा, शुद्ध मीठा विष, लेकर उचम धूर्ण कर जमीरी गीबू के रस में मर्दा कर फिर अद्रक के  
 रस में मर्दन कर गरिच के समान यटी बना कर प्रातःकाल कण्ठीदक के अनुपान से सेवन करने  
 से आठों प्रकार के शूलो यद् 'यस्यप्रभा' नाम की बटी सहसा नष्ट कर देती है ॥ १ ॥

खण्डविष्यली—

कणाचूर्णं तु शुद्धयं पट्पल हविपरतथा । पलपोढनाक खण्डं क्षतायर्षाः पलाएकम् ॥ १ ॥

श्रीरमरथद्वये साधे ऐहीभूसे तदुद्धरेत् । शिजातमुस्तघायाक शुण्टीमांसीद्विजीरकम् ॥ २ ॥

अमयाऽऽमलकं चैव चूर्णं द्वादशकापिकम् । तदध गरिच भागं सारं सादिरमेव च ॥ ३ ॥

मधुत्रिपलसयुक्तं प्रादेशिद्धं यथापलम् ।

शूलारोचकहृदलासप्टद्विपिचाम्लरोगानुत् । अमिसन्दीपनी हृद्या खण्डविष्यलिका मत्ता ॥४॥

खण्डविष्यली योग—पीपरी या चूर्ण एक कुटव ( आधामानी ) गोघृत ६ पल, शर्करा १६ पल  
 शताभरि स्वरस ८ पल और गोघृथ २॥ प्रस्थ इनकी लेकर अथलेह पाक की विधि से पाक करे  
 अब छेद् सिद्ध हो जावे तब उतारकर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, धनियाँ  
 सौंठि, अटामासी, जीरा और कृष्णजीरा, इराँ और आँबला इन द्रव्यों का उचम चूर्ण पृथक् २  
 बारद २ कर्षं लेवे और गरिच का चूर्ण ६ कर्षं, रैर का चूर्ण १२ कर्षं लेकर एकत्र मिलाकर  
 मर्दन कर शीतल होने पर मधु १ पल मिलाकर रस लेवे । इस अथलेह को अग्निबल के अनुसार  
 सेवन करने से शूल, अश्चि, उबबांधं, बमन और अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं और यह छेद् अक्षि  
 की दीप्त करता है और हृदय का हितकर है । इसका नाम खण्डविष्यली ( लेह ) है ॥ १-४ ॥

घृतम्—

घृतासुतुर्गुणो देवो मातुलङ्गरसो घृधि । शुष्कमूलककोलाम्लकपायो वाहिमाम्मसा ॥ १ ॥

विहङ्गलघणचारं पञ्चकोलययानिभिः । पाठामूलककककेन सिद्धं शूले घृतं मतम् ॥ २ ॥

हृत्पाशर्वेणालु वै श्वास कास हिक्कां रथैव च । धर्मगुहमप्रमेहाशौघातव्याधीश्च नाशयेत् ॥३॥

घृत प्रकरण—गाय का मूच्छित घृत एक प्रस्थ और घृत से चौगुना मातुलङ्ग ( विजोरा )  
 गीबू का रस, दही, शुष्कमूलक ( पञ्जीमूली ) का काय बैर के फल अथवा अम्लवत के फल का  
 काय और अनार का रस प्रत्येक ४ प्रस्थ लेकर पृथक् २ पाककर इसमें वामीरंग, सेधानमक यथाशुद्ध  
 पीपरी, विपरामूल, चच, चित्रकमूल, सौंठि, अजवाइन, पुरहनपाटी की जड़, समान मिलित  
 ३ प्रस्थ लेकर कल्ककर उपयुक्त औषधियों में मिलाकर घृत सिद्ध कर उतार घानकर इस घृत का



सेवन करने से शूल में उत्तम लाभ करता है । और अन्य तथा पार्श्वशूल, भ्रूण, काष्ठ, दिकंता, पक्षिरोग, गुन्म, प्रमेह, भर्त्स और वात-श्याभियों को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ रसौ ।

शूलगजकेसरीरस —

रसत्रियग चक्रपर्वपारेण सिन्धुविष्यलीविधौ । अद्विवक्ष्यन्मुविपूष्टः शूलेमहरिर्हिगुणोऽयम् ॥

शूलगजकेसरीरस—शुद्धपारद, शुद्धमीठा विष, शुद्धगन्धक, कीड़ीमरम, यबागार, संधानमक, पीपरि का चूर्ण और सौंठि का चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्वली कर फिर सबको एकत्र मिलाकर पान के रस में मग्न कर २ रत्नी के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह शूलगजकेसरी नामक रस शूल तथा अन्य कई प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अन्यथा—पारं कपवाङ्घ्रिपसैधवी च श्योप च सम्मर्ष मुजङ्गवक्ष्या ।

रसेन गुणाम्रमितः प्रद्विष्टः समीरशूलेमहरिः प्रचण्डः ॥ १ ॥

यबागार, कीड़ीमरम, शुद्धमीठा विष, संधानमक, सौंठि, मरिच, पीपरि, समान भाग लेकर उत्तमचूर्ण कर पान के रस के साथ मर्दन कर १ रत्नी के प्रमाण की बटी बनाकर सेवन करने से शूल नष्ट होता है इसका नाम 'समीरशूल गजकेसरी' है ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पटोल कारयेष्टल च वास्तुक क्षिप्रज तथा । सामुद्रं लक्षुन वाऽथ कालिः संदासरोचित ॥ १ ॥

परणदतैल सुरमीजलं च सप्तगुणु जम्बीररसाऽपि कुष्टम् ।

लघुनि च चाररजांसि चेति वर्गो हितः शूलगदाद्रितेभ्यः ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—परदर, करेली, बडुआ, सहिगन, सामुद्रनमक, लक्षुन, एक पर्व का पुराना जालिधान का पाकल, परणदतैल, गोमूत्र, सप्तादल, जमीरी नीबू का रस, कुट, लघु पदार्थ और चार चूर्णदि ये सब शूल के रोगियों के लिये हितवर्ग (हितकर अथवा पथ्य) कहे गये हैं ॥ १-२ ॥ विद्वान्पथ्यापथ्यानि जागरं विपमानम् । रूपतिष्ठकपायाणि शीतलानि शुल्गि च ॥ ३ ॥ श्यामं मैथुनं मद्य वैदुलं कटुकानि च । पंगरोष श्लथ श्लेथ यज्ज्वेष्टलवाहरः ॥ ४ ॥

विद्वद भोजन, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रुच, तिष्ठ, कषाद, शीतल और शुभ पदार्थ, श्यायाम, मैथुन, मदिरा, दाल, बडु पदार्थ, योगारोष (मूत्रमलादि का अरोष), शोक और श्लथ य सब शूल का रोगी श्याम दे अर्थात् ये अथ्य हैं ॥ ३-४ ॥

अथ परिणामशूलनिदानप्रारम्भः ।

स्वैनिदानैः प्रकृषितो वायुः सन्निरिहस्तदा । कफपित्ते समापृत्य शूलकारी भवेद्दृष्टी ॥ १ ॥

परिणाम शूल का निदान—जबने प्रकीर्ण कारणों से कुशित हुआ बलवान वायु कफ और पित्त में श्याम होकर शूल को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २ ॥

समान्तरे—

पलासा प्रच्युत श्यामान्पित्तो सह मूर्च्छित । वायुमादाय सुश्लो शूलं क्षीयति भोजने ॥ १ ॥ कृषी अटारपारवेषु माम्बा परसौ स्तमान्तरे । पृष्टमूलप्रदेवेषु सर्वेष्वेषु वा पुनः ॥ २ ॥

जब कफ ज्वरो श्याम श्युन होकर पित्त के साथ मूर्च्छित हो जाता है तब वायु बलाको ले जाकर भोजन के पक्ष से समय में शूल को उत्पन्न करता जिससे बीमों में उत्तर में, पार्श्वत्वा में, श्यामि रदन में, मूषागद में, रत्नी में पृष्टमूल (जिह्व देह) भाग में शूल होता है ॥ १-२ ॥ शुष्कमाश्रेऽप्याथ श्यामो जीर्णं श्यामो प्रदाम्भ्यनि । पटिकमीदिनाटीनामोद्भवेन च वर्धते ॥ ३ ॥

भोजन कर देने पर, बदन हो श्यामि पर तथा अन्न के जीर्ण हो जाने पर शूल में श्यामि का जानी है । साठी रान और जालिधान के भाग के सेवन से बढ़ता है ॥ ३ ॥

सन्धीजामर्जं शूलं दुर्विज्ञेयं महागम् । आहाररमयादानां शोथसौ दुष्टिवेगुक्म् ॥ ४ ॥

जब शूल की आहार के रत्नी को बदन करने वाली जादियों के दुष्टि होने के कारण उत्पन्न हुआ दुर्विज्ञेय महारोग को परिणाम शूल कहते हैं ॥ ४ ॥

केचिद्वज्रयं प्राहुरन्ये सत्यक्तिदोषजम् । पक्षिशूलं वदन्त्येके केचिद्वज्रविदाहजम् ॥ ५ ॥

होर् २ भाचार्य उसे अन्नद्रव शूल अथवा पक्षिदोष से उत्पन्न ( पक्षिशूल ) कहते हैं तथा बोर् २ भाचार्य 'अन्नविदाहज शूल' कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

मुक्ते जीर्यति यश्चूलं तस्यैव परिणामजम् । तस्य लक्षणमेतद्भिः समासेन प्रकीर्त्यते ॥ १ ॥

परिणाम शूल के सामान्य लक्षण—जिस शूल में भोजन के पचने के समय शूल हो उसे 'परिणामज शूल' कहते हैं । उसका लक्षण यही संक्षेप से कहते हैं ॥ १ ॥

घातिक्रमाह—

आप्मानाटोपविण्मूत्रविषन्धारतियेपमैः । रिग्घोष्णोपदानं प्रायो घातिकं तद्द्वन्द्विपक् ॥ १ ॥

वातादिक परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में आप्मान, पेट में आटोप, मलमूत्र का अवरोध हो, मा रिग्घ्न रश्, कम्पन हो तथा और रिग्घ्न उष्ण प्रक्रिया से प्रायः शूल क्षान्त हो जाय उसे घातिक परिणाम शूल कहते हैं ॥ १ ॥

पैथिकमाह—

सृष्णादाहारचिरेवेदकट्वम्ललपणोत्तरम् । शूलं क्षीतशामं प्रायः पैथिकं तद्द्वन्द्विपक् ॥ १ ॥

पैथिक परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में सूषा, दाह, अरुचि, रश्म आदि शूल के समय होय, और कटु, अम्ल तथा लवणरस के व्यवहार से शूल में वृद्धि हो और प्रायः बरके क्षीतल पदार्थ के सेवन से शूल क्षान्त हो जाय उसे वैथिक परिणाम शूल' कहते हैं ॥ १ ॥

दलेपिकमाह—

सृष्टिद्वेषलाससम्मोहरपणपरन्दीघसत्तति । कटुतिक्तोपदान्तं हि सद्यः श्रेयः कषामकम् ॥ १ ॥

कषत्र परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में यमन, दृक्कास, मोह, मन्द २ शूल हो तथा चिरकाल तक शूल का वेग बना रहे प्व ओ शूल कटु और तिक्त पदार्थों के सेवन से क्षान्त हो उसे 'कषत्र परिणाम शूल मानना चाहिये ॥ १ ॥

द्विदोषजमाह—ससृष्टलक्षणं शुद्ध्या द्विदोषं परिकल्पयेत् ।

द्विदोषज परिणाम शूल—दो दोषों के मिलित लक्षण जिस परिणाम शूल में हों उसे द्विदोषज जानना चाहिये ॥

साश्रिपात्रिकमाह—द्विदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसपलानलम् ॥ १ ॥

सान्निपातिक परिणाम शूल—तीनों दोषों के मिलित लक्षण जिसमें हों वह द्विदोषज है । वह त्रिदोषज तथा जिस परिणाम शूल में रोगी के मांस, बल और अग्नि क्षीण हो गये हों, ये दोनों असाध्य हैं ॥ १ ॥

अन्नद्रवाख्यम्—

'क्षीर्णे जीर्यत्यजीर्णे च यच्छूलमुपजायते । सद्यप्यसाध्यं निरयत्वादुक्तं वैद्यविशारदैः ॥ १ ॥

अन्नद्रव शूल—जो शूल अन्न के पचने पर तथा पचने के समय अथवा अजीर्ण में भी उत्पन्न हो जाता है वह नित्य है अत एव असाध्य है । ऐसा वैद्य विशारदों ने कहा है ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा । न क्षामं घाति नियमात्सोऽन्नद्रव्य उदाहृत ॥ २ ॥

जो शूल पथ्य करने पर अथवा कुपथ्य करने पर अथवा भोजन करने पर या नहीं करने पर किसी भी प्रकार से नहीं शांत होता है वह शूल 'अन्नद्रव' कहलाता है ॥ २ ॥

अयामं प्रायेण त्रिदोषविकृतित्वात्साध्यं —

अनाहो गौरवं क्षुर्धर्मस्तृष्णा ज्वरोऽरुचिः । कृशार्यं घलहानिद्य वेदनाऽतिप्रवर्तते ॥ १ ॥

उपद्रव्या दशैषैते शूले च परिणामजे । सोपद्रवोऽप्यसाध्यः स्यात्कृच्छ्रेण निरुपद्रवः ॥ २ ॥

त्रिदोष के विकार से दोष प्रायः शूल में—अनाह, गृहता यमन, भ्रम, सूषा, ज्वर, अरुचि, कृशता, बल की हानि और अधिक पीडा होना, ये दस परिणाम शूल के उपद्रव हैं । उपद्रव सहित परिणाम शूल भी त्रिदोषज की भाँति असाध्य है और उपद्रव रहित परिणाम शूल—कष्ट साध्य है ॥

अथ तच्चिकित्सा ।

लह्वनं प्रथमं कुर्याद्भ्रमनं च विरेचनम् । यस्तिकर्म परं चात्र पक्षिशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

परिणाम दूल् चिकित्सा—परिणामदूल् में प्रथम लक्षण, वमन और विरेचन करा कर शक्ति कर्म कराने से दूल् शमा हो जाता है ॥ १ ॥

घातज स्नेहयोगेन विसर्जं रेषतादिना ।

कफजं वमनाद्यैश्च पक्षिशूलमुपाचरेत् । इन्द्रजं स्नेहयोगेन तत्रियोगेन सूर्यजम् ॥ २ ॥

घातजनित परिणाम दूल् को स्नेह युक्त योगों से, पित्तजनित को रेवनादि से, कफजनित को वमनादि से शमन करे और इन्द्रा परिणाम दूल् को स्नेह युक्त योगों से तथा हीनों दोषों में कइ गये योगों से त्रिगोत्र को विषाद पूर्वक चिकित्सा करके शमन करे ॥ २ ॥

कृत्वा —

विष्णुक्रान्ताप्रदाकफक सितार्णोद्भूतैर्युक्त । परिणामभय शूल नाशयोरससिद्धिर्निर्मा ॥ ३ ॥

कफक प्रहरण—विष्णु प्राता ( अमराशिता ) की जल के कफक में चर्करा-मधु और घृत मिला कर सेवन करी से सात दिन में परिणाम दूल् नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

शुण्ठीतिलगुणै कफक बुधेन सह योजयेत् । परिणामभय शूलमामवातश्च नश्यति ॥ ४ ॥

सौंठि, तिल और पुराना गुड़ इनको समान लेकर कफक दूध के अनुपात से सेवन करी से परिणाम दूल् और आमवात नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

नागरतिलगुणैश्चैकं पयसा तसाप्य यः पुमानघात् ।

उग्रं परिणतिशूल सप्ताहागजयति ध्यावश्यम् ॥ ५ ॥

सौंठि, तिल और पुराने गुड़ के कफक को दूध के साथ पाककर जो सेवन करता है उसका अतिबिठि परिणामदूल् सात दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

शम्भूकमरमयोगः—

शम्भूकजं मरम पीतं जलेनोष्णेन सारणाय । पक्षिजं विनिहन्नाद्य शूल विष्णुशिवामुरान् ॥ ६ ॥

शम्भूकमरम योग—शम्भूक ( पौधा ) के मरम को कण्ठजल के अनुपात से सेवन करी से शीघ्र पक्षिदूल् रसा प्रवार नष्ट होता है जिस प्रकार विष्णु भगवान से भय नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

शम्भूनादिषटिका—

शम्भूकमूषण शैष पञ्चैव लषणानि च । सर्मासा गुटिकां कृत्वा कल्पगुकरसेन च ॥ ७ ॥

प्रातर्भोजनकाले या भक्षयेद्यथायत्नम् । शूलाङ्गिमुषयते क्षन्तुः सहसा परिणामघात् ॥ ८ ॥

शम्भूनादि षटिका—शम्भूक मरम, मरिच, धूपदू २ पांचोनिमक समान लेकर कूटकर कल्पमुक ( करमी ) के पसे कर रस के साथ मर्दनकर बची बनाकर प्रातःकाल भयना भोजन के समय ब्रह्म-नुसार मात्रा से सेवन करी से मनुष्य परिणामदूल् से ( बढाव ) अवश्य मुक्त हो जाता है ॥७-८॥

धीरमन्दूर—

लोहविट्ट पलाश्यही गोमूत्रार्धादके पसेत् । परिणामभय शूल सद्यो हन्ति न सदायः ॥ ९ ॥

धीर मन्दूर—८ पल नुदमन्दूर को २ प्रथ गोमूत्र में मिलाकर विधिपूर्वक पाककर गाढ़ा ही खान पर बढाकर पशुवोग्य मात्रा से सेवन करने से शीघ्र तथा निश्चय ही परिणाम दूल् नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

भारमन्दूर —

विदहं विप्रकं चर्मं त्रिपला श्मूपगानि च । नवमासानि चैतानि लोहविट्टयमानि च ॥ १० ॥

गोमूत्रं त्रिगुणं दद्यात् शूलाङ्गिमुषयको शुक् । सार्णैर्हृदिना पत्रवत्वा सुमिदं विष्वक्तो गतम् ॥

स्त्रिपत्रमाग्नं विनिष्ठिष्य भक्षयत्कोट्यमात्रेण । प्राणायामात्कर्मणैव भोजनस्य प्रयोचितः ॥ ११ ॥

योगोऽयं रामपर्याय पक्षिशूल मुद्राद्यन्तम् ।

कामलो पाण्डुरोगं च शोथमहीनिहार्णवाम् । शूलतातो कृपादेवोत्तारया प्रकटीकृतः ॥ १२ ॥

भारमन्दूर—शारीर चित्रमन्दूर चर्म, मांसा, हरी, बरदा, गोठि, मरिच, शीशिर, प्रायेक एक २ पाग छेव और मन्दूर शुद्ध १ माग, गोमूत्र कटाव माग और पुराना गुड़ १६ माग लेकर नवमास गोमूत्र मन्दूर और गुड़ को पकड़ कर शुद्धकर विधि से पाक मिला कर उग्रमे उग्रोत्त १ ओषधियों के द्वारा पूर्ण को निवारण विष्व के समान हुए जात और चोरे को निवारण वाय में

रस लेवे । इसको १ कर्ष के प्रमाण की मात्रा से भोजन के आदि मध्य और अन्त में सेवन करने से यह योग कठिन परिश्रम को क्षीण करना है और कामला, पाण्डुरोग, शीघ्र, मैदरोग, वातव्याधि तथा मर्दरोग को नष्ट करता है । शूल से पीड़ितों पर हृद्य हरके ताराने इस योग को प्रकट किया है । इसलिये इस योग का नाम 'तारामण्डूर' है ॥ १-२ ॥

भीममण्डूरः—

मधुशारकणाशुष्ठीकोष्ठप्रन्धिकषिप्रकात् । प्रत्येकं पलमाहाय प्रस्थ छोटस्य क्लृप्तः ॥ १ ॥

दानेः पचदयस्पात्रे पायर्ष्वाम्लेपेनम् । दत्त्वाऽष्टगुणगोमूर्धं क्लृष्टाप्तुद्राद्विषपण ॥ २ ॥

तातोऽपमाप्रान्वटकान्यो जयेत्सत्तराप्रतः ।

आदिमप्यावसानेषु भोजनस्योपित्तस्य वै । स भीमवटको ह्येव परिणामरुगतक ॥ ३ ॥

भीममण्डूर—ब्यातार, पीपरि, सौंठि, बेर, विपरामूल और चित्रकमूल प्रत्येक एक २ पल शुद्ध मण्डूर एक प्रथम लेकर प्रथम मण्डूर को अठगुने गोमूत्र के साथ विधि पूर्वक लोहे के पात्र में मन्दाग्नि से पार करे गाढ़ा होने पर उसमें उपयुक्त जावागारादि से द्रव्य चूर्ण को मिलाकर एक कर्ष के प्रमाण की बटी बना पर सात रात तक भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह भीममण्डूर परिणाम शूल को निश्चित नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

शतावरीमण्डूरः—

संज्ञाप्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलायकम् । शतावरीरसरयाष्टौ दध्नाद्य पयसस्तथा ॥ १ ॥

पलान्वादाय चाप्यारि तथा गण्यस्य सर्पिणः । विषयेऽसर्वमेकस्यं पायविण्ढवमाप्नुयात् ॥ २ ॥

सिद्धं तु भक्षयेत् मध्ये प्राप्ते मुषट्टय चाप्रतः । वातात्मक पित्तभय शूल च परिणामजम् ॥ ३ ॥

निहत्येष द्वि घोमोऽयं मण्डूरस्य न संशय ।

शतावरी मण्डूर—शुद्ध मण्डूर का चूर्ण शतावरी का रस, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, और गाय का घृत ४ पल, सबर एकत्र कर विधि पूर्वक पाक करे जब विण्ट बंधने लग तब उताट कर रस लेवे और इसको भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से वातम शूल, विषम शूल और परिणाम शूल नष्ट होते हैं । मण्डूर का यह योग निश्चित ही शूल को नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १-३ ॥

दुग्धे निर्वापण कार्यं यद्वा बहुसुतारसे । अथवा चोभयोरेव लोहकिल्टस्य सप्तधा ॥ ४ ॥

इसी गन्धः द्युभः पाके यतिः स्वाद्यवि मर्वेनात् । तद्वा पाकं विजानीया मण्डूरस्य निपरवराः ॥

मण्डूर पाकविधि—मण्डूर को तथा कर दूध में अथवा शतावरी के रस में अथवा दोनों में सात २ बार दुग्धादि इस प्रकार की क्रिया करे पर जब मण्डूर का रस और गन्ध द्युभ हो जावे और पाक मर्दन करने पर बची के समान हो जावे तब मण्डूर का पाक उत्तम हुआ जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

लोहगुग्गुलु —

त्रिपला मुस्तकं व्योषं विद्वद्दौर्ध्वं यथा । चित्रकं मधुक चैव पलांस श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १ ॥

अयोमसम पलान्यष्टौ गुग्गुलुस्तावदेव तु । सर्पिणा मेलयित्वाऽयं कपमाप्रवटीकृतम् ॥ २ ॥

अद्यादु पुष्येकोष्णं धारि शूलाद्रिमुष्यसे । जीर्णाससम्भयात्पाण्डोः कामलाया हलीमकात् ॥

लोह गुग्गुलु—अंबरा, हर्षा, बहेरा, नागरमोषा, सौंठि, पीपरि, मरिच, बायमीरग, पुष्करमूल, बच, चित्रकमूल, मुल्हठी, एक-एक पल लेकर उत्तम चूर्ण कर उसमें लोहमस तथा शुद्ध गुग्गुलु ८-८ पल लेकर मिलाकर उसमें घन पर्वत मात्रा में मिलाकर कूटकर एक कर्ष के प्रमाण की बटी बना लेवे । इसको खाकर उष्ण जल का अनुपान पीवे तो शूल से मुक्त हो जाता है और अन्न द्रव्यशूल, पाण्डु, कामला और हलीमक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

विद्वद्वायो मोदक —

विद्वद्गतण्डुल व्योषं त्रिवृद्धती सधिप्रकम् । सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि फारयेत् ॥ १ ॥

शुषेभ मोदका कृत्वा मध्ययेत्पातकृत्यतः ।

उष्णोष्कानुपानेन दद्याद्दग्निविवर्धनम् । जयेत्त्रिदोषज शूल परिणामसमुद्भवम् ॥ २ ॥

विद्वद्वादि मोदक—बायविद्वग का चानल सौंठि, पीपरि, मरिच, निशोध, दन्तीमूल, चित्रक

मूल, सम भाग लेकर उत्तम पूर्ण कर पुराना गुण मिलार विविपूर्वक मोदक ( बटी ) बनाकर यथा योग्य मात्रा से मात्र उपोदक के अनुपान से ( सबन करने से ) अग्नि की वृद्धि होती है और विशेषतः शूल तथा परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

परप्लादिभरतयोग -

परप्लादिद्विदाम्युक्तवर्षामुसोष्टरं समम् । अन्तर्दग्ध्या विपेद्विदग्ध्यामि- शूलशान्तय ॥ १ ॥

परप्लादि भरत योग--परप्लमूल, चित्रकमूल, गुग्गुलु भरत, गरुड पुराना, भोज्य सम भाग लेकर कूट कर पर मिट्टी के पात्र में रस गुग्गु बन्दर चुरिहका यन्त्र के द्वारा भरत कर रसोप शीत हो जाने पर यथा योग्य मात्रा से सप्लोक्त के अनुपान से सेवन करने से शूल उपन होता है ॥

पष्पापलोहम् -

पष्पापलोहरज शुष्ठी तत्पूर्णा मधुसर्पिषा । परिणामभय दन्ति वातविषकफारामकम् ॥ १ ॥

पष्पादि लोह--हरा का पूर्ण, छोड़ भरत और गोशुत के अनुपान से सेवन करने से विशेषतः परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृष्णाप लोहम् -

कृष्णापलोहचूर्णं विट्तिहन्मधुसर्पिषा । परिणामभय शूल तपो दन्ति शुद्धाणाम् ॥ १ ॥

कृष्णादि लोह--पीपरि का पूर्ण, हरा पूर्ण और लोहभरत सम भाग लेकर मधु और एत के अनुपान से चाटने से कठिन परिणाम शूल शीत नष्ट होता है ॥ २ ॥

चतु समलोहम् -

गन्धं ताग्रं रसं लोहं प्रत्येक मारितं पलम् । सर्वमेतत्समाहाय विपयोक्तुण्डो भिषक् ॥ १ ॥

जाये पलद्वादशके दुग्धे दातपसे घरे । पक्ववा तत्र विपेष्यपूर्णं मुपतं घनतां पयस ॥ २ ॥

विट्प्रभ्रिप्लवावृद्धिविट्प्रभां तथैव च । विप्या पलोन्मितनेताम्यथा समिधस्तां भवेत् ॥ ३ ॥

ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे रथापयेद्य विचक्षणः । आरामनः दोभने धत्ते पूजयित्वा रविं शुभम् ॥ ४ ॥

यूतेन मधुना मर्षं मधुपेन्मापसमितम् । अष्ट भाषाः कृष्णाघवम्मात्रां संलग्नभवेद्यतः ॥ ५ ॥

अज्ञापान च युग्धेन नारिकेलोहकेन वा । क्षीर्णशाहपत्रमुश्रास सितामालसरसाद्यः ॥ ६ ॥

रसानामविहृद्दानि पानाघ्रायपि मधुपेत् । हृष्यशूल पारयशूलं च सामवातं कटिघ्नहम् ॥ ७ ॥

शुभमशूल च सर्वं च पश्यत्पलीहा विशेषतः ।

अग्निमान्द्यं चमः कुपुं आसकासविषयिकाः । भरमरी मूत्रहृष्यं च योगेमानन क्षाम्यति ॥ ८ ॥

चतु समलोह--शुद्ध गन्धक, ताग्र-भरत, शुद्ध पारद लोहभरत प्रत्येक एक एक एक लेकर प्रथम पारद गन्धक की कम्बली कर फिर लोह-ताग्र मिला कर गर्दन कर २३ पल गोघृत में तथा १०० पल गो दुग्ध में रूपक २ पाक करे सिद्ध हो जाये पर उत्तमै चायविद्य, हरद, बहदा आंबला, चित्रकमूल, सोंठ, पीपल और मरिच, प्रत्येक एक एक एक लेकर उत्तम पूर्ण कर मिलादेवे फिर सबको पीस कर एक अच्छे ( निरख ) पात्र में रस देवे । रस योग की शुभ दिन में धूप तथा गुग्गु की पूजा कर पूज और मधु के अनुपान से एक माष की मात्रा से प्रारम्भ कर आठ माषा तक क्रम से बढ़ा कर सेवन करे । पथ्य में भक्षणन धार रूप के साथ मञ्जु करे, नारिकेल का खल पीके पुराने शालिधान के चावल, मूंग, उखैर, मांशरत आदि का और रसमवा में बहदुष्ट भरतव का पानादि का स्वाग कर देवे तो इत योग से हरप शूल, पार्वदका आनराज, कटिघ्न, तब घट्टर के शुभ, शूल तथा विशेष करके यक्ष्म और प्लोहा का शूल, मन्दागि, छप, कुड, मन्थ काम विषयिहा, भरमरी, मूत्रहृष्य आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

मासुदसं पूर्णम् -

मासुदं मेघपर्वं पारो दृष्यकं रोमकं विद्यम् । कन्ती लोहरय किट्टं त्रिहृगुमूलं समम् ॥ १ ॥

दधिगोमूत्ररयसा मधुपापकशापिनम् । तद्यथाभिषक्तं पूर्णं विपेदुत्तमैव पाणिना ॥ २ ॥

वीर्यं श्रीर्यं च मुञ्जति मांसादि क्षासापिनम् । शान्तिशूलं च हृष्यशूलं शुभमण्योदहनं च यत् ॥ ३ ॥

विशुष्यतिहृष्यं दन्ति कफपाशोद्धवं तथा । अक्षयं नारविशुभकीर्णं इहस्यैरिदि ॥ ४ ॥

सासुदशप पूर्ण--सासुद भरत, घोषा कन्द बहवार, सखीखर, कपक मन्द, रोमक

नमक, बिह्वनमक, इन्दीमूल, लोह-गरम, शुद्ध मण्डूर, शिथोप और घृतनकन्द का सब औषधियों को समान लेकर उद्यम पूर्ण कर, दही, गोमूत्र और दूध में पूवक् २ मन्दाग्नि पर पाक कर घृत खाने पर पूर्ण कर अग्निबल के अनुसार मात्रा से उद्यम कर के अनुपात से पीये और भोजन पचा रहे अथवा नहीं पचा रह पर भोजन के समय घृतादि से सिद्ध किया हुआ गांसादि का भोजन करे। इससे नाभि शूल, हृदय शूल, गुस्म का शूल प्लीहा का शूल, विद्रधि और अजीर्ण का शूल आदि और कफ-शूल से उद्यम शूल, मानद्रव शूल, अजीर्ण और महणी रोग नष्ट होत है ॥ १-४ ॥

शूलागामपि क्षयंपामोषध मासपयः परम् । परिणामसमुपस्य विशेषेणान्तक मतम् ॥ ५ ॥

सब शूलों की ओ अथ औषधियों नहीं गये है उनमें इससे उद्यम की ओ औषध नहीं है। किन्तु परिणाम शूल को नष्ट करने की यह विशेष औषध है ॥ ५ ॥

विष्वक्पादिवोग —

समागधीगुहं सर्पिः प्रस्य शीरं घृत्तुगुणम् । पक्व पीत्या जयत्याशु पक्विशूल समुद्रतम् ॥ १ ॥

विष्वक्पादि वोग— पीपरि का कल्क, पुराना गुड़ दो-दो पल, मूँच्यत गोघृत १ प्रस्थ और घृत से चतुर्गुण ( ४ प्रस्थ ) गो दुग्ध मिला कर घृत पाक की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार घात कर सेवन कराने से रोग बढ़ा हुआ पक्वि शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिपुरभैरवो रस —

भागी रसस्य भागध द्वेनः पिट विधाय च । तथा द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि ह्येषेत् ॥१॥

ऊर्षाघो गन्धर्ष द्रव्या पलमात्रं समन्ततः । चारस्य मृगशृङ्गस्य पूर्णं योज्य समन्ततः ॥२॥

सिद्धेन्मास्यादिनीरेण रूपा यामघृतपयम् । पचेच्छूलहरं सूतो भयेत्त्रिपुरभैरव ॥ ३ ॥

त्रिपुरभैरव रस—शुद्ध पारद २ भाग, सुवर्ण शुद्ध एव भाग दोनों को गरल में मर्दन कर, शुद्ध ताप के पत्र १२ भाग लेकर उस पर इसे रेष करदे, फिर शुद्ध गन्धर्ष का पूर्ण एव पल लेकर उक्त स्वर्गादि लिप्त ताप पत्र के ऊपर नीचे ( गन्धर्ष को ) एक गूपात्र में रग कर उसके चारों ओर बनासार और मृगशृङ्ग के पूर्ण को देवर मत्स्याडी ( मट्टी ) के स्वरस से मलीमोति सिद्धि कर ( भिजा कर ) पात्र का मुँह कपर मिट्टी द्वारा बन्द कर अग्नि पर रत कर चार पहर अग्नि पर विधिपूर्व पाक कर स्वांगशोथ होने पर उतार कर रखलेवे। यह 'त्रिपुरभैरव रस' शूलनाशक है ॥ १-३ ॥

मापो मध्वाज्यसंयुक्तो ह्योऽस्य परिणामजे । अन्येष्वेवण्णतेलेन कटुघ्नययुतो हितः ॥ ४ ॥

इसे परिणाम शूल में १ मापा की मात्रा से गणु और घृत के अनुपात से और अन्य शूलों में एरण्णतेल तथा मिहुट क पूर्ण के अनुपात से देना चाहिये ॥ ४ ॥

शूलदावानल , सारसंमहादं—

शुद्धसूत विषं गन्धं पलांशं मध्वेद्दृढम् । मरीच विष्वक्ली शुण्ठी हिङ्गु सौवर्चल ह्ययम् ॥१॥

पलाएक पट्टनां च चिन्नाचार पलाएकम् । सस्यार शङ्खमसम जग्धीरागले निषेचयेत् ॥ २ ॥

पलाएक च सयोग्य सारसर्वं निम्बुकदये । दिन मर्घं कोलमात्र मच्चयोसर्वशूलनुत् ॥ ३ ॥

शूलदावानल रस—शुद्ध पारद, शुद्ध मोठा विष, शुद्ध गन्धर्ष इनको एक २ पल लेकर पारद गन्धर्ष की कजली कर विष मिला कर मलीमोति मर्दन करे। फिर मरिच पीपरि, सोंठि, शुद्ध होंग, सौवर्चल नमक प्रत्येक दो २ पल लेकर पूर्ण करले, और मिलित पाचो नमक इपली का छार, और शह की मसम प्रत्येक ८-८ पल लेकर जमीरी नीबू के रस में सातवार गरम करके बुझा कर पश्चात् सब औषधियों को एकत्र कर नीबू के रस के साथ दिनभर मर्दन कर आधा वष के प्रणाम की मात्रा से खाने से सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

अजीर्णादिरमन्दाग्निमसाध्यमपि साधयेत् । शूलदावानलाख्योऽस्य रसोऽजीर्णादिरोगहा ॥४॥

अजीर्ण, उदर रोग, मन्दाग्नि, आदि यदि असाध्य भी हो गये हों तो भी उनको यह 'शूलदावानल रस' नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

पम्पापप्यम्—माषादिशिम्बीधान्यानि मघानि धनिता हिमम् ।

आतपं क्षारं क्रोधं हृत्वं सम्घानममलकम् । अर्जयेत्पक्विशूलात्सर्वस्याऽजीर्णं तिलानपि ॥ १ ॥

व्याधयन्—उदर आदि सिन्धीबान्ध मय, क्षीप्रसंग, शीत सेवा, पूर्व, आगरण (रात्रि आगरण) क्षोभ, घोर, सिरहा तथा यक्षी आदि अन्ध पदार्थ को एवं अर्धोर्ध्व भोजन और तिल को परिणामरूप का रोगी त्याग देवे ॥ २ ॥

### अथोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रज्वरमासुचयोत्रारवसीन्द्रियैः । दृष्टृष्णोष्णपित्तनिद्राणां एषोदावर्तमम्य ॥१॥

उदावर्त के निदान—अधीवासु, मल, मूत्र ज्वर, अर्ध, शीत, उदर, वमन, शीर्षं गुषा, एषा, उच्छ्वास और निद्रा का बेगी को रोकने से उदावर्त रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ २ ॥

तथा क्रमेण लक्षणान्याह, अथायातवाताकरोधजमाह—

वातगृह्यपुरीषाणां सङ्गोष्मत्वं बलमो उदरः । जठरे वातजाभ्रान्ये रोगाः स्युर्वातनिद्राश्च ॥२॥

उदावर्त के लक्षण—अधीवासु रोकने में जो उदावर्त होता है उसमें अधीवासु-मूत्र और पुरीष का अवरोध हो जाता है और आध्मान, बर्धात, उदर, उदर में वातजित्त रोग तथा अन्ध भी उदर रोग हो जाते हैं ॥ २ ॥

पुरीषावरोधजमाह—आधोपशूलैः परिकृत्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथाप्यवातः ।

पुरीषमास्याद्यथा निरति पुरीषयोगेऽभिदृष्टे गरस्य ॥ ३ ॥

मल के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें पत्र में उपशूल, दूध, गुहा में फहरने के समान पीड़ा, मल का अवरोध और उर्ध्वबाण हो जाता है और अभी २ गुण से मल भी निकलने लगता है ॥ ३ ॥

मूत्रनिद्राजमाह—

यत्तिमेहनयोः शूलं मूत्रहृष्टं निरोदजा । त्रिनासो घृष्टगानाहः स्याद्विद्वग्मूत्रनिद्राश्च ॥ ४ ॥

मूत्र के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मूत्राशय और शिदन में शूल होता है, मूत्र घृष्ट, सिर में पीड़ा, शरीर का तम जाना ( झुक जाना या नष्ट हो जाता ) और बल्य का शूल जाता ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

ज्वरभविषात्रजमाह—मयागलस्तम्भशिरोपिकारा ज्वरभविषात्रावापयनामकाः स्युः ।

तथादिनासावकुनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सद्यः कर्णरागीः ॥ ५ ॥

ज्वर के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मया और गले में ज्वर होता है, सिर में पीड़ा तथा अन्य सिर के विकार, वात विकार और ज्वर, नासिका, गुण का रोग तथा तीव्र कर्ण रोग होते हैं ॥ ५ ॥

अहृषियात्रजमाह—आनन्दं ज्ञं माउप्यथ शोकरं वा नेशोदकं मासमगुद्यतो हि ।

निरोगुल्य नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सद्यः पीनमेन ॥ ६ ॥

अहृषियात्र के लक्षण—आनन्द से अथवा शोक से बढ़ते हुए अर्थ के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें सिर में भारीपन, नेत्ररोग तथा तीव्र पीन रोग होता है ॥ ६ ॥

द्विषानिरोधजमाह—

मन्यास्तम्भ-सिर-शूलमद्विषाधीवनेदकी । इन्द्रियाणां च दीर्घस्य चषयोः स्याद्विषाणात् ॥ ७ ॥

द्विषा के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्यास्तम्भ शिर-शूल, अद्विष, अधीवनेद ( अक्षयवारी ) और इन्द्रियों को दुर्बलता ( इन्द्रियों के कार्य में मूलनय ) आदि होते हैं ॥ ७ ॥

उद्गातविषात्रजमाह—कृष्णारवपूर्णपसठीय सोदः कृष्णध चापारयथा प्रहृषिः ।

उद्गातपयोऽभिदृष्टे मवन्ति पोरा विकाराः पयनमशुताः ॥ ८ ॥

उद्गात के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें कृष्ण और गुणमत्ता रोग है ( विषा द्रव्य भोजन गुण कृष्ण से मत्ता रङ्ग के समान जान होता है ) अथवा सोद रोग ( मशुतां शरीर में शर्त पुमाने के समान पीड़ा होना ), कृष्ण रोग ( धीरे में रङ्ग होना ) वायु का रङ्ग जाना और मन्यान्ध भी वातजित्त दोर विकार होते हैं ॥ ८ ॥

अतिनिद्राजमाह—

कृष्णकोटावधियन्त्रोपचारद्वामय-परा । कृष्णकोटावधियन्त्रोपचारद्वामय-परा ॥ ९ ॥

धमन के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें कण्ठ, मण्डल, अरवि, श्वेत (शार्दि) शीघ्र, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, दन्तास (उबकार) और विषय आदि रोग होते हैं ॥ ९ ॥

शुभविभारण्यमाह—मूत्राशये ये शुभमुष्कपोष दोषो दृजा मूत्रविनिग्रहः ।

शुभारमरी उत्पण्ण भवेद्य ते से विकारामिहिते च शुभे ॥ १० ॥

शोथ के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें मूत्राशय, गुदा और अण्डकोष में शोथ और पीड़ा होती है, एवं शोथस्तन तथा शयान्य शोथ सम्बन्धी विचार भी होते हैं ॥ १० ॥

शुभावरोधनमाह—

तद्गद्गमर्द्विरपि धमद्य श्लेष्मिणाघातृदाता च हृष्टे ॥ ११ ॥

शूरा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें तद्रा, देह का टूटना, अरवि, धम और वृष्टि में कमी होती है ॥ ११ ॥

तृष्णानिरोधनमाह—कण्ठाशयशोथ ध्रषणायरोधरतृष्णामिधातात् हृद्यम्बधा च ॥ १२ ॥

तृषा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें कण्ठ और गुदा घटाता है, भ्रमणशक्ति का अवरोध होता है और हृदय में पड़ा दोषों है ॥ १२ ॥

श्यासावरोधनमाह—धान्तस्य निष्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोदायय चाऽपि गुणसः ॥ १३ ॥

श्यासि से उत्पन्न श्वास (उच्छ्वास) के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें हृद्रोग, मोह भ्रमना शुरू होता है ॥ १३ ॥

निद्रानिग्रहनाह—पृग्माहमर्द्विदितरोतिजाडव निद्राविघाताद्य चाऽपि तादा ॥ १४ ॥

निद्रा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें जम्हाद, शरीर का टूटना, नेत्र तथा सिर में स्तम्भता भ्रमना तद्दारोग होता है ॥ १४ ॥

स्थमोननजनितविकारमाह—

वायु कोष्ठानुगोरुचकपायकटुतिक्रै । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १५ ॥

स्थ, कपाय, कटु और तिष्ठरस बाल पदार्थों के अति सेवन करने से कुपित हुई कोष्ठ की वायु शीघ्र उदावर्तरोग उत्पन्न कर देता है ॥ १५ ॥

तरय सम्प्राप्तिमाह—

घातमूत्रपुरीषाशुक्लफमेदोपहानि चै । श्लोतांस्युदावर्तं पति पुरीष चातिपसंयेत् ॥ १६ ॥

घातों दृढशिवशूलार्तो हृष्टासारतिपीडितः । घातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १७ ॥

श्यासकासप्रतिशयायदाहमोहत्पाज्वरान् ।

यमिहिषातिरोगमनश्चयणविभ्रमान् । यहनन्याश्च लभते विकाराचातकोपजान् ॥ १८ ॥

उदावर्त की सम्प्राप्ति—यह कुपित हुआ वायु-अधोवायु, मूत्र, मल, आँसू, कफ और मेद को बहान करने वाली नादियों को अवरोध करता है तथा पुरुष को भी सुखा देता है । जिससे हृदय, श्लेष्मि इनके शूल से अधिक पीड़ा होती है, दशास और हृदयोद्देग से पीड़ा होती है, और अधोवायु-मूत्र और मल उस मनुष्य को बड़े कष्ट देते हैं, तथा श्वास-कास-प्रतिशयाय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, धमन, शिक्का, शिरीरोग होते हैं और मन तथा अचणमें भ्रम होता है, (अर्थात् चित्त में स्थिरता तथा अचणशक्ति की न्यूनता होती है) तथा अय भी अनेक प्रकार के घात के कोप से उत्पन्न होने वाले विकार होते हैं ॥ १६-१८ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

तृष्णाद्विषं परित्रिलष्ट शीण शूलरूपमुत्तम् । बाहूद्धमन्त मसिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १ ॥

उदावर्त के असाध्य लक्षण—जिस उदावर्त में रोगी तृषा-तथा श्लेष्म से पीडित हो, शीण हो, शूल से पीडित हो, तथा उसके मुख से मल निकलता हो उसे बुद्धिमान् वैद्य त्याग देने अर्थात् यह असाध्य है ॥ १ ॥

अथ उदावर्तचिकित्सा ।

सर्वेव्येतेषु भिषजा श्लेष्मवर्तयु कृत्स्नदाः । वायोः क्रिया विघातय्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥१॥

उदावर्त चिकित्सा—सब प्रकार के उदावर्तरोगों में वैद्य विगुणित (दूषित) वायु को अपने मार्ग पर ले जाने की (वायु को प्रकृतिरूप करने की) क्रियाओं को करे ॥ १ ॥



आह्वयार्थं माह्वये स्निग्धस्विन्ने विनोदकः । पुरीचने तु कृताप्यो विधिरामाहकोदितः ॥१॥  
 वातजनित ( वातावरोध ) उपावर्तन में विशेष करके स्नेह और स्वेदन करने आह्वयार्थन  
 कर्म कर ( आह्वयार्थन कर्म देखे ) और पुरीचन ( पुरीचावरोध ) उपावर्त में आह्वय रोग में  
 कहीं दूर सब क्रियाओं को व्यवहार में लाय ॥ १ ॥

सौवर्चन्गि—

सौवर्चलाङ्गी मर्दिरा मूत्रे त्वमिहते पियेत् । प्लुं वाऽप्यय मस्यपन्नं चौरं वाऽप्य पराशु वा ॥  
 सौवर्चन्गि योग—मूत्र ( मूत्रावरोध ) उदावर्त में सौवर्चन ममक पनुर प्रमाण में  
 मिलाकर मद्यपान करे अथवा छोटी इलायची मर्दिरा में मिलाकर पान करे अथवा दही के पाणी  
 के साथ अथवा जल अथवा दूध पीवे अथवा त्रिफला का काथ वा जल ( रस ) पीवे ॥ १ ॥

उर्वाहवीजाग्निगो—

उर्वाहवीजं सोयेन पियेद्वा लक्षणाश्वितम् । पञ्चमूर्तीशुं चौरं ज्ञापारमगयापि वा ॥ १ ॥  
 उर्वाह वीजादि योग—ककड़ी के बीज ( जल के साथ पीसकर ) रस में ममक मिला पान  
 करने से अथवा पञ्चमूल के साथ पकाया हुआ दूध पीने से अथवा द्राक्षा का रस पान करने से  
 मूत्र उदावर्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

यवघ्राताग्निगो—

यवघारं सितायुक्तं पियेद्वा मृत्तिकारसैः । यरिमून्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पियेद्यथ ॥ १ ॥  
 यवघ्रादि योग—यवात्तार में अथवा द्राक्षा के रस में अथवा उदावर्त और श्वेत कुम्भाट  
 के रस में शर्बत मिलाकर पान करने से मूत्र उदावर्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूषकारिगो—

मूषकस्य विशा लेप घस्तेदपरि वा चोत् । किञ्चुडामां प्रलेपो वा कपोल्लो मूत्ररोधहा ॥१॥  
 मूषाग्नि योग—मूषे की विष्ठा का मूषाशय पर लेप करने से अथवा पक्षात् के मूषे की  
 पीत गरम कर मूषाशय पर लेप करने से मूत्रावरोध ( अथवा मूत्र निरोध उदावर्त ) नष्ट  
 होता है ॥ १ ॥

विष्ठा खर्षुष्ठाच्छमूषिकाविष्टेर्वाहवीजाग्नि मृत्तिकारिगो ।  
 आलिप्पमानानि ममानि घस्ती मूत्राय निष्यन्दकरानि सप्तः ।  
 अथ सर्वं प्रयुज्जित मूत्रशुद्धात्मरीपिधिम् ॥ १ ॥

गोचर के पत्र, मूषे की विष्ठा और ककड़ी को बीजों को ममान लेहर कर्मों में पीस कर  
 करिण पर हन करने से शीघ्र मूत्र आ जाता है अर्थात् मूत्रावरोध मिट जाता है । इस मूत्र  
 वरोध में मूषकशुद्ध और अन्मरीगो में कहीं दूर सब क्रियाओं को करना चाहिये ॥ १ ॥

अथाघटोपाणां चिकित्सा ।

स्नेहस्यैवैरुदावर्तं कुम्भात्तं समुपाधेत् । अशुमोचोऽशुभ्र कार्यः स्निग्धरिवद्धस्य देहिना ॥१॥  
 उपावर्त के सामान्य चिकित्सा—कुम्भाट के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग को रोग और  
 स्नेह के उपचार से दमन करे । शीघ्र के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग को स्नेहन और स्वेदन  
 कराकर अशुभ्र उपाणां चाहिये ॥ १ ॥

मरीचाघटनैर्भूमैरादित्याप्यलोकैः । सुवसे सुवपन्नेयं प्रागभ्येताऽनपत्तयम् ॥ १ ॥  
 शीघ्र निवृत्तन के लिये मरिच मारि हीरा पराशों का अथवा अण्डना मूषे में शीघ्र  
 ही और हीरा आदि कर्म करना चाहिये । शीघ्र के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग में अथवा  
 ( शीघ्र के लिये वापि कर्म ) को नष्ट में शीघ्र हीरा आदि अथवा अण्डना आदि मरिच में  
 लयकर शीघ्रना चाहिये ॥ १ ॥

उद्गारसे तमोपेतं र्भूमैर्दिकं पूनमाधेत् । मघदेनुचकं सार्धं शण्डं वा मयिनाश्वितम् ॥ १ ॥  
 उद्गार के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग में शीघ्र पराशों का ( र्भूमैर्दिकं ) मूषान अथवा  
 चाहिये और ममक तथा अण्डना में शीघ्र मिलाकर अथवा दही के मरिच ( कट्टे ) के साथ  
 अण्डना करे ॥ १ ॥

यस्या धान्तं यथाशेषं नश्यतोदादिभिर्जयेत् । परित्यज्जिह्वरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ४ ॥  
 भाषारिनाशाकधितं पीतयन्तं प्रकामतः । रमयेषु म्रिया नार्यः द्युषोदापतिर्न नरम् ॥ ५ ॥  
 रम्या के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में शोध के अनुसार वमन कराये तथा तस्य कर्म और स्नेहादि कर्म करावे । दूध के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में बस्ति को पुद्ग करने वाले द्रव्यों के साथ पीण्डा जल मिलाकर दूध सिद्ध करे (पराधे) और जब केवल दूध मात्र उपर रक्ष तब उक्त दूध को सेवन कराकर रोगी को म्रिय त्रियों के साथ रम्या करावे । (इस म्रिया तथा भीषण से द्युकोदावर्त नष्ट होता है) ॥ ४-५ ॥

सस्याम्यहोऽपगादध मदिराव्यरणाधुषाः । दालिः पयो निरूहाद्य दितं मैथुनमेव च ॥ ६ ॥  
 द्युकोदावर्त के रोगी को अश्वक्क (तेल मर्दन), अवगाहन (नदी आदि में रना), गणपान, पुस्तकृत्मांस भक्षण, दालिभान का खावल, दूध, निरूद्धबस्ति और मैथुन करना हितकर होता है ॥ २ ॥

दृष्टिघातं दितं स्निग्धं रुष्यमरुषं च भोजनम् । दृषाघाते पिपेन्मघं ययागूं स्यादुत्तीतलम् ॥  
 दुषा के अवरोध करने से भी उदावर्तरोग होता है उसमें स्नेहयुक्त, रक्षिकारक और अल्प प्रमाण में भोजन करना चाहिये । दुषा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मय तथा मयुर और शीतल यथागू पीना चाहिये ॥ ७ ॥

वसेनाघातु विध्यातः भ्रमभासाद्रितो मर । निद्राघाते पिपेद् दुग्धं मादिसं रजनीमुषे ॥ ८ ॥  
 तिलतैलेन सम्गुज्य भूतले दायनं चरेत् ।

उदावर्तिनमभ्यक्त स्निग्धगात्रमुपाचरेत् । यतिंकारुषापास्येद्यद्वरितरेचनकर्मणा ॥ ९ ॥  
 भ्रमभास के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मांस रस पिलाना चाहिये । निद्रा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में सध्या समय (रात्रि के प्रारम्भ में) भैस या दूध पिला कर तिल के तेल से शरीर को मर्दि पराकर भूमि पर शयन कराना चाहिये । अश्वक्क क्रिये दूध उदावर्त रोगी को विस्तार शरीर स्निग्ध हो गया है उसको पलवर्ति, आरुषापन, स्वेदा, बस्ति कर्म तथा विरेचन कर्म करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

### अथ सामान्यधिधि ।

श्यामादिकषायो वृदाद—श्यामा दन्ती द्रवती स्तुह्महारयामाऽमृता त्रिष्टुत् ।  
 ससला द्वादिनी श्येता राजपृष्ठ सपिष्वक ॥  
 ऋग्पिष्वक करञ्जश्च हेमक्षीरीत्यय गणाः । सर्पिस्तैलरजफायककप्ययतमेपु च ॥  
 उदावर्तद्वरानाह्विपगुह्मविनाशनः ॥ २ ॥

श्यामादि कषाय—श्यामालता (कृष्ण-सारिवा) छोटी दन्तीमूल, बड़ी दन्तीमूल, मूद्गर (सिद्ध), महाश्यामा लता (बड़ी सारिवा), गुरुचि, निशीथ, ससला (सिद्ध का भेद), दक्षप्रुष्पी, श्येता (श्वेत सारिवा), अमलतास, बेल, कबीला, करञ्ज, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) इस गण के साथ (इन औषधियों के कल्क के साथ) घृतपाक करे अथवा तैलपाक करे अथवा इनका चूर्ण करे या कषाय करे अथवा कल्क बनावे, इनके सेवन करने से उदावर्त, उदर, आनाह, विपरीग और गुल्म इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

### वृदादाटयादियूषः—

घाट्या चूपेण पिपश्या मूलकानां रसेन वा । भुक्षत्या स्निग्धमुदावर्तं वातगुणमाह्निमुष्यते ॥ १ ॥  
 घाटयादियूष—बरि और से प्रस्तुत विषे दूध से अथवा पीपरि तथा मूली के रस से स्निग्ध भोजन करने से उदावर्त तथा वात गुल्म से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

### घाटयाणि —

घाट्यापरित्तैः सेव्यं यच्च घातानुलोमनम् । घातघ्नैलवणाघैश्च रसाद्यैश्चाज्ञमाचरेत् ॥ १ ॥  
 परिओर से सिद्ध क्रिये दूध अथवा परिओर के रस को सेवन करे तथा अन्य वात का अनुलोमन करने वाले पदार्थों अर्थात् वातनाशक लवणादि और मांस रसादि से युक्त अन्न का सेवन करे । इससे उदावर्त नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

### आनाहचिकित्सा ।

आनाहऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्तदरौ क्रियाम् ।

विशेषमाह—

त्रिद्वन्द्वरीतकीरयामाः स्नुहीचरिण भावयेत् । घटिका मूत्रपीतास्ताः श्लेष्मास्त्वानाहभेदिकाः ॥  
आनाह चिकित्सा—आनाह रोग में मो उदावर्त रोग नो नष्ट करन घाटी क्रिया करनी चाहिये । निशोध, हर्ता, दधाना ( कृष्ण सारिका ), इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर शूर के दूध की भावना देकर बटो बना कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करे । यह आनाह को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

हिङ्गूमग धाविदशुण्डपञ्जाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।

भागोत्तरं चूर्णितमेतद्विष्टं गुणमोदरानाहविपूचिकासु ॥ २ ॥

भागोत्तर इन्द्रि क्रम से हींग २ भाग बब २ भाग, बिट् स्वग २ भाग, सौंठि ४ भाग, जोरा ५ भाग, हर्ता ६ भाग, पुष्करमूल ७ भाग और कूट ८ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से गुस्म-रोग, उदररोग, आनाहरोग और विषचि का रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

घृषासदाचिप्रकयापशूका सपिप्पलीकातिविषान् सकुण्डान् ।

उष्णाशुनाऽऽनाहविमूषवावान्पीत्वा जपेद्याद्यु रसौदनाशी ॥ ३ ॥

बब, हर्ता, चिप्रकमूल, यवाग्वार, पीपरि, अतीस और कूट सम भाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आनाह रोग तथा विमूषवाग शीघ्र ही नष्ट होता है । इस औषध के साथ मर्म-रस और चावल का भात पच्य देना चाहिये ॥ ३ ॥

रादधूमाम्बिवति—

रादधूमाम्बिवत्योपगुडमूत्रयिषाचिता । रादेऽङ्गुष्ठममा यतिर्विधेयाऽऽनाहशूलनुष ॥ १ ॥

रादधूमाम्बिवति—राद फल, गूदधूम, बिट् स्वग, सौंठि विपरि, मरिच गुड पुराना और गोमूत्र समान भाग लेकर पक्व कर यथा विधि पाक कर हाथ के अंगूठे के प्रमाण मोटी बत्ती विधिवत् बनाकर धन लगाकर गुदा में देने से आनाह शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

विषाध्य मूषाम्बरसेन दन्तीविण्डीतकृष्णाविद्वृष्णाधूमैः ।

घर्षितं कराद्गुष्ठमिमां घृताक्षां गुदे रजानाहहरीं विदध्यात् ॥ २ ॥

दन्ती मूल, विण्डीत ( काला मैनफल ), विपरि, विष स्वग, कृष्ण ससौ ( सोरी ) और गूदधूम ( घर में लगा हुआ धूम का झाला ) समान भाग लेकर गोमूत्र और कौजी के साथ पाक कर पूर्वोक्तरीति से बत्ती बनाकर उसमें धन लगाकर गुदा में देने से शूल और आनाह को नष्ट करती है ॥ २ ॥

पथ्यापथ्यम्—

विष्टमभीनि विष्टद्धानि कपायाणि गुरणि च । उदावर्ते प्रयत्नेन चर्मयेत्सतत नरा ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—विष्टम् करने वाल पदार्थ, विरुद्ध मोन, कपाय रम जैसे पदार्थ और गुद पदार्थ इन द्रव्यों को अर्धवर्त और आनाह का रोगी यत्न पूर्वक निरन्तर त्याग देवे चर्मों कि ये अपथ्य हैं ॥ १ ॥

उदावर्ते द्वितं सर्वं पाचनं लहनं तथा । आनाहे तु यथायोग्यं सेवयेन्मत्तिमाद्य ॥ २ ॥

उदावर्त रोग में सब प्रकार के द्रव्य और लहन करना हितकारक है और आनाह रोग में कुट्टिमार् मज्ज्म को यथा योग्य ( दोषानुसार ) पच्य आदि विचार कर सेवन करना चाहिये ॥

अद्यातो शुल्मनिदानं व्याख्यास्यामः ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

दुष्टा पातापयोश्चर्षं मिष्याहारविहारतः ।

कुर्वन्ति पञ्चधा गुहमं कोहान्त्वर्मन्यस्त्रिगम् ॥ १ ॥

गुहम का निदान—मिष्या आहार और विहार से अत्यन्त दूषित ( कुपित ) हुए वाग्निदिक दोष कोठे में जाकर मन्त्रि ( गाठ ) की भाँति पाच प्रकार के गुहम रोग को उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

तेषां स्थानान्माह—सस्य पञ्चविधं स्थानं पार्यद्विभक्तिरस्यः ।

गुश्म के स्थान—गुश्म ५ पांथ स्थान है—पार्यद्वय, हरय, नाभि और वरिण ।  
सस्य लक्षणमाह—

द्विभक्तिरन्तरे प्रथिः सञ्चारी यदि पाञ्चलः । युताध्यापययपाम्म गुश्म इति कीर्तितः ॥२॥

गुश्म के लक्षण—हरय और नाभि के मध्य में चलने वाली अधवा अधल, गोल तथा बटने वाली प्रथि ( गाठ ) को 'गुश्म' कहते हैं ॥ २ ॥

विशेषलक्षणं यरके—

गुष्माण्वरपरीतस्य दाहस्येदाग्निमार्यैः । शुद्धिनामरुचौ चापि रक्तमेवापसेचयत् ॥ ३ ॥

तथा ज्वर, दाह, र्वेद, मन्नाभि हो और गुश्म में अग्नि भी हो तो रोगी को रक्षामोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

मद्दारवहरिश्चन्द्र—

स्त्रीणामार्तवजो गुश्मो न पुंसामुपजायते । अन्यस्त्वस्त्रमयो गुश्म स्त्रीणां पुंसो च जायते ॥

स्त्रियों को आर्तव के कारण जो गुश्म रोगा है वह पुरुषों को नहीं होता, किन्तु अन्य कारणों से दूषित हुआ रक्तम गुश्म स्त्री और पुरुष दोनों को होता है ॥ ४ ॥

निरुद्धमूलप्रभवो हि कोष्ठे स्थित स्यत्प्रः परसंश्रयो वा ।

स्पर्शापलम्भः परिपिण्डितत्वाद्गुश्मो यथा क्षोपमुपैति नाम ॥ ५ ॥

स प्यस्तैर्जायते क्षोपे समस्तैरपि चोत्प्लूतेः । पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्षेन चापरः ॥६॥

त्रिस प्रथि ( गुश्म ) या निरुद्ध ( रुद्ध ) है, कोष्ठ स्थान अधवा अ य स्थान में स्वनत्र रहता हो, स्पर्श करने से प्राप्त होता हो ( स्पष्ट जात हो जाता हो ), पिण्ड के समान ( गोल ) हो, यदि इस प्रकार का गुश्म होतो क्षोप के अनुसार उसका विभिन्न नाम है। यह गुश्म पृथक् २ वातादिकों के दूषित होने से वातज, पिचज और कफज गुश्म कहा जाता है। और तीनों दोषों के मिलित प्रक्षोप से होने से सानिपातिक गुश्म कहा जाता है। तथा एक और गुश्म रक्त से होता है जो पुरुष स्त्री दोनों को होता है। ( रससे परे आर्तव जय गुश्म भी स्त्रियों को होता है ) ॥५-६॥  
तस्य पूर्वरूपमाह—उद्गारवाद्गुश्मपुरीषघ्न्यवृष्यघ्नमत्वान्त्र विवृज्जनानि ।

आटोपमाष्मानमपक्तिरक्तिरासद्यगुश्मस्य यदन्ति पिष्टम् ॥ ७ ॥

गुश्म के पूर्वरूप—गुश्म रोग जब होने को होता है तब उसके पहले टकार बहुत होता है और मल का अवरोध मोहन में अनिच्छा, सहन शक्ति की न्यूनता, आँतों में गों, गों शब्द आटोप, ( गुद् १ शब्द ) आष्मान और पाचन शक्ति की न्यूनता ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

सर्वगुश्माणां सामान्यलक्षणमाह—

अरुचिः कृच्छ्रविष्मूत्रं वाताम्रप्रतिष्मजनम् । आनाहं क्षोर्ध्ववातस्य सर्धगुश्मेषु लक्षयेत् ॥ ८ ॥

गुश्मी के सामान्य लक्षण—अरुचि, मल मूत्र और वायु आदि का कष्ट सं होना, आँतों में कृजन ( शब्द ), आनाह, और ऊर्ध्ववात होना ये सब लक्षण प्रायः सब प्रकार के गुश्मों में होते हैं ॥ ८ ॥

वातजमाह—रूक्षाधपान विपमतिमात्रं विचेष्टन वेगविनिग्रहश्च ।

शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरक्षता चानिलगुश्महेतुः ॥ ९ ॥

वातज गुल्म—रूक्ष भोजन और रूक्ष पयाद के अति सेवन करने से और विपम अन्नपान तथा अति मात्रा में अन्न पान करने से और विचेष्टा ( परिश्रम—स्त्री प्रसंसादि ) करने से, वेग ( मलादिकों ) के धारण करने से, अधिक शोक से, अभिघात से, मल के क्षय होने और अधिक उपवास करने से वातज गुल्म होता है। अर्थात् इन कारणों से वात दूषित होकर गुश्म उत्पन्न कर देता है ॥ ९ ॥

यं स्थानसंस्थानरुजाविकल्प विहघातसङ्गं शल्वक्षत्रशोपम् ।

श्यायारुण्यत्वं क्षिशिरज्वरं च हृत्कुचिपाशोसशिरोरुज च ॥ १० ॥

करोति क्षीर्णोऽभ्यधिक प्रकोपं सुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ।

वातास्य गुश्मो न च सप्र रूष कषायत्तिक कट्ट क्षोपशोते ॥ ११ ॥

जिस शुष्म रोग में स्थान, प्रमाण तथा वेदना आदि का विफल रहे ( अर्थात् इसका कुछ ठिकाना नहीं रहे कि किस स्थान पर रहता है, कितने प्रमाण में है और कमी पीड़ा कम होती है कमी अधिक ) और मल तथा अधोवायु का अवरोध हो जाये, गला और मुँह सूखता रहे, शरीर का वर्ण ध्याम अथवा ताम्र हो जाये, शीत ज्वर हो और हृदय, कोष्ठ, पाश्वदेश, स्कन्ध और सिर में पीड़ा हो, भोजन के पच जाने पर अधिक प्रकोप हो और मोटा कफ छेने पर शान्त हो जाये उसे घात से होने वाला शुष्म जानना चाहिये । इसमें स्थूल, कपाय, तिक्त और कटु पदार्थ सेवन करने से शमन नहीं होता, किन्तु बढ़ जाता है ॥ १०-११ ॥

पैत्तिकमाह—फट्बम्बलतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षप्रोधातिमघाकृद्गुताशसेवा ।

आमामिघातो रुचिरं च दुष्ट पित्तस्य गुणस्य निमित्तमुक्तम् ॥ १२ ॥

पित्तज शुष्म—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही और रूक्ष पदार्थों के अति सेवन करने से, क्रोध अधिक करने से, अधिक मद्य पीने से, अधिक धूप तथा अग्नि के पास रहने से, आमन्त्रण से अमिघात से और रक्त दूषित होने से पित्तज शुष्म होता है ॥ १२ ॥

ज्वरः पिपासा ध्वनाङ्गनाग क्षुलं महज्जीर्यति भोजने च ।

स्येदो विदाहो मणवष्य गुणम स्पर्शासहः पैत्तिकगुणमरूपम् ॥ १३ ॥ ।

जिस शुष्म रोग में ज्वर, पिपासा, मुल और शरीर में लालिमा, मोहन पचते समय अत्यन्त क्षुल ( पीड़ा ), श्वेद और दाह हो, मग के समान शुष्म का स्पर्श सहन नहीं हो ये सब पैत्तिक शुष्म के लक्षण हैं ॥ १३ ॥

ह्लैभिकमाह—क्षीत गुद स्निग्धमचेष्टन च समूरण प्रस्यपन विधा च ।

गुणस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वथ दुष्टो निचयारमकस्य ॥ १४ ॥

कफज शुष्म—अति-शीतन, गुरु और स्निग्ध पदार्थों के सेवन से निवृत्त रहने से, (परिधम आदि नहीं करने से) पेट का निरन्तर मरा रहना दिन में सोना इन कारणों से कफज शुष्म होता है । और संनिपाज शुष्म में सभी वातादिक दोष दुष्ट होता है ( यह प्रसङ्ग वश कहा गया है ) ॥ १४ ॥

स्तैनिश्वसीतज्वरगाग्रमावृद्धस्तसकासारुचिगीरवाणि ।

क्षीर्यं रगस्या कठिनोद्धतस्य गुणस्य रूपा णिकपात्मकस्य ॥ १५ ॥

जिस शुष्म में आर्द्रता, शीत ज्वर, अंगों की विविलता, दृढास ( उबकार ), नास, अरुचि, शरीर का भारीपन, शीतलता, शुष्म में पीडा की कमी, शुष्म का कठिन तथा दन्त होना ये सब लक्षण हैं उसे कफज शुष्म जानना चाहिये ॥ १५ ॥

द्वित्रिदोषजेषु हेतुलक्षणनिर्देशार्थमाह—

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य शुष्मे द्विदोषजे क्षोपयलायलं च ।

व्यामिश्रलिङ्गानपरास्तु शुष्माखोनादिदोषोपधकल्पनार्थम् ॥ १६ ॥

द्वन्द्व तथा त्रिदोषज शुष्म—दो दोषों के मिलित कारण और लक्षण दोषों के बराबर के अनुसार जानना चाहिये अर्थात् जहाँ दो दोषों के मिलित कारण और लक्षण दिखाई दें उसे द्वन्द्व और मिश्रित तीनों दोषों के कारण और लक्षण जिसमें हो उसे त्रिदोषज जानना चाहिये । फिर विक्रिस्ता करने के लिये द्वन्द्वज तीन प्रकार का समझना चाहिये ॥ १६ ॥

त्रिदोषजव्यामाप्यवामाह—

महार्जुं धाहपरीतमरमवद्वनोन्नतं क्षीग्रविदाहिरुक्षम् ॥

मनः क्षीरामिषलापदारिण त्रिदोषज शुष्ममसाप्यमादिदोष ॥ १७ ॥

जिस शुष्म में अत्यन्त पीडा हो, दाह हो, परत के समान कठिन तथा उन्नत हो, क्षीम दाह करने वाला हो, महारादन ( दुरदायी ) हो बल का क्षीन करने वाला हो तो यह त्रिदोषज शुष्म असाध्य कहा जाता है ॥ १७ ॥

खीनां रक्तशुष्मरव सम्प्राप्तिमाह—

मध्वप्रसृताऽहितभोजना या या चाऽऽमगर्भं विषृजेत्ती या ।

यापुहिं सरयाः परिगृह्य रक्तं करोति शुष्मं सदृजं सदाहम् ॥ १८ ॥



वातनाशक काथादि से परिपूर्ण माष युक्त ( जिधवा मुँह टुक कर काप किया गया हो ) कुम्भी या घट से स्वेद देवे ( भाप से सेंके ), और पिण्ड स्वेद करे ( उबूद आदि पोत कर पिण्डी बना कर गरम कर उससे स्वेद देवे ) अथवा इट बो अग्नि में तपा कर बाण नाशक काथादि से सिंचन कर उस भाक से स्वेद देवे अथवा शास्वण-नेशवार आदि योगों से कुशल वैष गुग्म से स्वेद कर्म करे ॥ ४ ॥

गुग्मस्त्वाने रक्तमोक्षो घाहुमण्ये शिराम्यघः । स्वेदानुलोमन चैव प्रशस्तं सर्वगुणिताम् ॥ ५ ॥

गुग्म के स्थान में रक्त मोक्षण कराना चाहिये, बाहु के मध्य की सिरा का रक्तमोक्षण कराना चाहिये ( बाहु के मध्य की मध्या वा बड़ी सिरा बचा कर छोटी सिरा का रक्त मोक्षण कराना चाहिये क्योंकि बाहु का मध्य गर्मस्थान कहा गया है ) और स्वेद धर्म तथा वात वा अनुलोमन करने वाली क्रिया सब गुग्म रोग वालों के लिये उत्तम कही गयी है ॥ ५ ॥

अथ वातगुग्मचिकित्सा—प्रागेव घातजे गुग्मे सुस्निग्ध स्वेदित नरम् ।

रेचित स्नेहरेकैश्च निरुद्धैः सानुषामनैः । उपाधरेक्षिष्वप्राज्ञो मात्राकालविशेषतः ॥ १ ॥

वात गुग्म चिकित्सा—वातज गुग्म में रोगी को प्रथम मछी भोजित स्निग्ध कर, स्वेदित करे, और स्निग्ध विरेचनों से रेचित करे, फिर निरुद्ध बस्ति तथा अजुवासन बस्ति देवे । इन सब कर्मों को विद्वान वैष मात्रा, काल आदि का विशेष विचार कर करे ॥ १ ॥

मातुलुहादियोग—

मातुलुहात्से द्विदु द्वादिम थिहसैन्धवम् । सुरामण्डेन पातप्यं घातगुग्मरुजापहम् ॥ १ ॥

मातुलुहादि योग—विम्वीरा नीबू के रस में गुद्द हींग, अनार दाना, बिड्मनक, सेंधा नमक मिला कर घृता मण्डक साय साय मिलाकर पान करने से वातिक गुग्म की पीड़ा को हरण करता है ॥ १ ॥

शुद्राप्रारादि—नागरार्धपल पिष्ट द्वे पले लुक्षितस्य च ।

तिष्ठस्यैकं गुहपल शीरेजोष्णेन पाययेत् । पातगुग्ममुदावर्तं योनिशूलं च नादायेत् ॥ १ ॥

नागरादि कर्क—सौंठि आधा पल, गुद्द क्रिये द्वय तिष्ठ दो पल और पुराना गुद्द एक पल लेकर सबको पीस कर लण्ण दूध के साथ पान करने से वातज गुग्म, उदावर्त और योनि शूल नष्ट होता है । ( इसकी मात्रा रोग बलानुसार विचार कर देनी चाहिये ) ॥ १ ॥

द्विगुपञ्चकम्—

द्विदुसै धवष्टुषाम्भराजिकानागारैः समैः । पूर्णं गुग्मप्रशामनं स्यादेतद्विगुपञ्चकम् ॥ १ ॥

द्विगुपञ्चक—गुद्द हींग, सेंधा नमक, शुष्काम्भ ( कोकम ) रत्न और सौंठि एक २ भाग लेकर पूर्ण कर सेवन करने से यह 'द्विगुपञ्चक' पूर्ण गुग्म को शमन करता है ॥ १ ॥

केतकीघारयोग—

स्वजिकाकुष्ठसहितं घारा केतकिसम्भयः । पीतरसेलेन दामयेद्वातगुग्मं सुदारुणम् ॥ १ ॥

केतकीघार योग—सज्जी, कूठ और केतकी के पौधे का छार तीनों को समान लेकर लेह के साथ पान करने से भयकर वातज गुग्म शान्त होता है ॥ १ ॥

दरुणद्वैतैर्योग—

पिपेनेरुणद्वैतैलं वा घादणीमण्डमिधितम् । तद्यं तैलं पयसा वातगुग्मं विवेधरः ॥ १ ॥

दरुणद्वैतैर्योग—सुरामण्ड में अथवा दूध में दरुण तैल मिलाकर पान करने से वातज गुग्म वाले रोगी को लाभ होता है ॥ १ ॥

शुन्द्राद्युषाम् पृथक्—

दुषुषामाजिपृष्ठीकापिप्पलीमूलादिचक्रः । शीरमूलककोलाणां रसैश्च विपद्येत् पृथक् ॥ १ ॥

वातगुग्मरुधिरवासशुष्काण्डहरार्शसाम् । ग्रहणीयोनिद्वोषाणां पृथमेतद्विघारणम् ॥ २ ॥

दुषुषाम पृथ—शुद्धवेर, जीरा, बड़ी हलायची विपरासूल और चित्रकमूल समान लेकर कर्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना गोदूध और दूध के समान मूटो का ज्ञाय और सती के समान बेर का बाध क्रम से मिलाकर बिबि पूर्वक घृत पाक करे जब घृत मात्र दोष रहे तब लताए छान कर सेवन करने से वातज गुग्म, करचि, दवाश, घण्ट, कानाश, ज्वर, भर्त, ग्रहणी और योनि दोष नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

चित्रकार्यं घृतम्—

चित्रकवोपसिम्भूपृष्ठीकाचम्पदादिभिः । शीघ्रकप्रन्थिकाजामीहपुवाधाम्यकैः समैः ॥ १ ॥  
दुष्पारनालपवरमूलकस्वरसैर्पृतम् । पत्स्या पियेद्वातगुणमद्वैर्यदवाटोपदालुनुत् ॥ २ ॥

चित्रकारि घृत—त्रिजम्बूक, सोढि, पीपरी, मरिच, सेंधा नमक, बड़ी इलायची, चषप भनारदाना, जवारन, पिपरा मूल, जीरा (स्वेत), दाऊदेर और धनिर्षा सम भाग लेकर बल्ल करे, निताना बरक हो उसके चौगुना मूँदित गोघृत और घृत से चौगुना दही और दही के समान कांजी और कांजी के ही समान बैर की अड़वा काथ और उसी के समान गूली का स्वरस क्रम से मिलाकर पाक करे जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार छान कर पान करने से वातज गुल्म, दुर्बलता, आटोप और दल हो नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

पथ्यम्—

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुम्भकुटान्कौश्लपर्तिकान् । सर्पिः शालिमप्रप्रांश्च पातगुल्मे च योजयेत् ॥१॥

वातजगुल्म में पथ्य—तित्तिर, मोर, कुम्भकुट, कौष पक्षी और बटर इनके मांस रस को घृत तथा शालिपान्य (भात के) साथ मिलाकर वातज गुल्म में पथ्य खाना चाहिये ॥ १ ॥

पातगुणमप्रतीकारे प्रकुप्यति यदा कफः । शस्त्रमुत्तेराम तत्र चूर्णाचारश्च कफापहाः ॥ २ ॥

वातज गुल्म की निश्चिन्ता करने से यदि कफ दोष बढ़ जावे तो उस अवस्था में उल्लसत कर्म तथा कफनाशक चूर्ण आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

यदि कुप्यति वा पित्त विरेकस्तत्र भेषजम् । दोषधनैरप्यशान्ते च गुल्मे शोणितमोक्षणम् ॥३॥

यदि वातज गुल्म की चिकित्सा करते २ पित्त कुपित हो जावे तो उस अवस्था में विरेचन देना चाहिये । पित्त कफ आदि दोषों को नष्ट करने वाली औषधियों के सेवन करने पर भी यदि गुल्म शान्त न होवे तो गुल्म से रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ पित्तगुल्मचिकित्सा ।

त्रिवृच्चूर्णम्—

पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातस्य त्रिफलाशुना । विरेचनाय ससितं कम्पिष्ठ च समाचिकम् ॥

त्रिवृच्चूर्ण—पित्तज गुल्म में निशोष का चूर्ण त्रिफला के जल से विरेचन के लिये पान करना चाहिये और बबूला का चूर्ण शर्करा तथा मधु सं चयाना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षाभियोगः—

द्राक्षाभयारस गुल्मे पैत्तिके सगुह पियेत् । सदाकर्ं वा विलिह्वेन्निफलाचूर्णमुत्तमम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि योग—पैत्तिक गुल्म में दास और हर्षा का स्वरस निकाल कर गुह मिलाकर पीना चाहिये अथवा त्रिफला का उत्तम चूर्ण शर्करा के साथ खाना चाहिये ॥ १ ॥

पथ्याघ घृतम्—

रसेनाऽऽमलकेच्छणां घृतपाद् विपाचयेत् । पथ्याचारश्च पियेत्सपिस्तस्मिद् पित्तगुल्मनुत् ॥१॥

पथ्याघ घृत—बाँवले का रस और उसी के समान ईँख का रस और मूँदित गोघृत चतुर्थांश तथा रस के समान ही हर्षा का काथ इनके साथ क्रम से ( एक २ के साथ पृथक् २ ) घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से पित्तज गुल्म नष्ट होता है ॥१॥

द्राक्षाघ घृतम्—

द्राक्षामधुकण्वजूरं विदारीं सशतावरीम् । परुपकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसग्मिताम् ॥ १ ॥

जलाहके पाद्दशोपे रसमामलकस्य च । घृतमिष्टरस शीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ २ ॥

साधयेत्तद् घृत विद्म शकराक्षौद्रपादिकम् । प्रयोग पित्तगुल्मघ्नः सर्पगुल्मविकारनुत् ॥ ३ ॥

द्राक्षादि घृत—दास, मुलहठी, खनूर का पल, विदारीकन्द शतावरी, पालसा, अंवरा, हर्षा, बड़ेका प्रत्येक एक २ पल लेकर कुद्व कूट कर एक आदक ( ४ प्रस्थ ) जल के साथ चतुर्थांशवशेष काय उतार छानकर रस लेवे, बाँवले का स्वरस ( एक प्रस्थ ), ईँख का रस, गी का दूध प्रत्येक निताना काथ हो उसके समान ( एक प्रस्थ ) और मूँदित, गो घृत, एक कुद्व ( ३ प्रस्थ ) तथा हर्षा का कल्क १ पल लेकर क्रम से विधिपूर्वक पृथक् २ स्वरसादिकों का पाक करते हुए



मन्द २ भनिन पर घृत सिद्ध करे जब घृत मात्र शेष रह जावे तब चतार-छानकर शीतल होने पर घृत के चतुर्थांश शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से पैक्षिक गुल्म नष्ट होता है तथा गुल्म के अन्य सब विकार नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

पथ्यम्—शालि गोद्यागदुग्ध च पटोल घृतमिधितम् ।

दाक्षां परुपक घात्री खजूर दाढिम सिताम् । पथ्यार्थं पैक्षिके गुल्मे यथातोय च योजयेत् ॥

पिचनगुल्म में पथ्य—शालिधात का चावल, गो तथा बकरो का दूध, परवर का शर्करा ( घृत में सिद्ध किया हुआ ) दास, फालसा, भाँवला, खजूर का फल, अनार, शर्करा और बरियारे का खरस अथवा ताम ये सब पिचन गुल्म में पथ्य के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

अथ श्लेष्मगुल्मचिकित्सा ।

स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णघ्नसन्धस्तिभिः । योनिश्च वातगुहमोक्षैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥१॥

कफज गुल्मचिकित्सा—कफज गुल्म में स्नेहपान, उपनाह कम, स्वेद कर्म, तीक्ष्ण सन बस्ति तथा वातगुल्म में कहे हुए योगों का व्यवहार कराकर निश्चिन्ता करनी चाहिये ॥ २ ॥

तिलादिस्वेद —

तिलैरण्यातसीर्शमसपपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥१॥

तिलादि स्वेद—तिल, परण्ड बीज, ( उपरहित ) तीली और ससों इनको पीस कर गुल्म ( कफज गुल्म ) पर लेप कर लोह के पात्र को कुछ तथा कर ( सहने योग्य ) उससे गुल्म को स्वेद देवे । इससे कफज गुल्म शमन होता है ॥ १ ॥

यवाद्यादि—

यवानां चूर्णित्वां सक्ने विठेन लयणीकृताम् । श्लेष्मगुल्मे पिपेद्वातमूत्रवर्धोनुलोमनीम् ॥१॥

यवान्यादि योग—जवाहन तथा विठनमक के चूर्ण को मट्ठे में मिलाकर पान करने से कफज गुल्म में वात-मूत्र-पुरीष का अनुलोमन होता है अर्थात् कफज गुल्म में लाभ होता है ॥१॥

श्रीरक्ष-पर घृतम्—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचप्यचित्रफनागरे । पलिकैः सययचारैघृतप्रस्थ विपाचयेत् ॥ १ ॥

श्रीरक्षस्थेन ससर्पिर्हन्ति गुल्म कफासमकम् । प्रहणीपाण्डुरोगघ्न प्लीहकासज्वरापहम् ॥२॥

श्रीरक्ष-पर घृत—पीपरी, पिपरामूल चप्य चित्रमूल और सोंठ तथा यवाहार इनको एक-एक-एक लेकर पाक करे, मूर्च्छित गोघृत और गोदुग्ध प्रत्येक एक-एक प्रस्थ एकत्र कर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से कफज गुल्म, प्रहणी, पाण्डुराग, प्लीहा, कास रोग और ज्वर को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मिश्रस्नेह —

त्रिवृता मिश्रला वृन्ती दद्यामूल पलोन्मितम् । जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्मासावधोपिते ॥ १ ॥

सर्पिरेरण्डतैलं च श्रीरक्षैकत्र साचयेत् । ससिद्धो मिश्रकस्नेहः सचौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ २ ॥

मिश्रक स्नेह—निशोप, भाँवरा, हरी, बहेरा, दन्तोमूल तथा दशमूल ओषधियों को एक-एक एक २ पल के प्रमाण से लेकर चौगुने जल के साथ चतुर्थांशावध हाथ पर उतार-छानकर जितना भाय हो उसके समान भाग मूर्च्छित गोघृत, परण्ड तैल और दूध ( गाव का ) लेकर एकत्र कर पाक करे और जब फेवण स्नेह ( घृत-तैल ) मात्र शेष रह तब चतार-छानकर रख देवे । इसे 'मिश्रक स्नेह' कहते हैं । इसको मधु मिलाकर सेवन करने से कफज गुल्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यम्—

कुलरथाभीर्गशाडीक्ष पटिकायवजाहलान् । मधं तैल घृत ताम्रः कफगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

कफज गुल्म में पथ्य—कलज गुल्म में कुलवी, पुराने शालिधान का भावर साठी बी, जगिष्ठ जीवों का मातरस, मध तेल, घी और महुआ इन सब द्रव्यों का पथ्य में प्रयोग करना चाहिये ॥

अथ त्रिवेपगुल्मचिकित्सा ।

बहुगादिक्रवायस्तु गुल्मं दोषप्रदोत्थितम् । हन्ति ह्यपार्श्वशुलाटव सोपद्रवमसंवापय ॥ १ ॥

त्रिवेप गुल्म चिकित्सा—बहुगादि कबाय पान करने से त्रिवेप गुल्म, हृन्ध का शूल, पारबंश और अचान्य गुल्मों के सभी उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

घातपराद्वेषादिकाय —

घरुणा घकपुष्पश्च विष्णवापामार्गचिप्रकाः । अग्निमन्धद्वयं विप्रुद्वयं च वृहतीद्वयम् ॥ १ ॥  
 सैरेमकप्रय गूर्यां मेपश्याती विरातक । अजगृही च विग्धी च करज्ज्वल क्षतापरी ॥ २ ॥  
 घरुणादिगणधाय कषमेदोहरः स्मृतः । हन्ति गुल्म विरःशूल तथाऽभ्यन्तरविद्रघ्नीम् ॥३॥  
 घरुणादि वनाथ—घरुणा की छाल, अमरस्य का पूर, बेर की छाल, अपामार्ग की जड़, चित्रक की जड़, गन्धिया रौटा, गन्धिया बड़ा, सहिजन और रक्त सहिजन, खीरी कटरी, बड़ी कटरी, बटसरेवा देवगुष्प की, नील पुष्प की तथा पीत पुष्प वाली तीनों वृषन् २ भूर्वांमूल, मेदा सिंगी, चिरेता, अजगृही, बिम्बी फल, करज और क्षतापरी ये बहणादि हैं । इनको समान लेकर साथ कर सेवन करने से कफ, भेज, गुस्म रोग, शिरःशूल और अन्तर्विद्रधि को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ रक्तगुल्मप्रतीकारः ।

वित्तयद्रक्तगुल्मिया नार्याः कार्या यथाविधि । प्रतिगन्धस्त्रिघ्नकोष्ठाया योज्य स्नेहविरचनम् ॥  
 रक्तगुल्म चिकित्सा—रक्त गुल्म पाठी क्लिषी की चिकित्सा विघ्न गुल्म के समान करनी चाहिये । पहले स्नेह पान करा कर क्रोध को श्नेदन करे, फिर स्निग्ध विरेचन देये ॥ १ ॥

क्षताद्यादिवन्ध —

क्षताद्याधिरिषियवत्पद्मार्गार्होऽङ्गोऽयम् । कषक पीतो जयेद् गुल्मं तिलकायेन रक्तजम् ॥  
 क्षताद्यादि वन्ध—सौर, नाटा बरम्भ की छाल, देवशर, भारङ्गी और पीपरी सम भाग लेकर बन्ध कर तिल के काष क अनुपान से पान करने से रक्तज गुल्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिलकाय—

तिलकायो गुहपूतम्योपमार्गार्होऽजोन्वितः । पान रक्तजये गुल्मे नष्टे पुष्ये च योपितः ॥  
 तिलकाय—तिल के काष में पुराना गुड़, धन, सोठ, पीपरी, मरिच और बमनेठी इनके समान मिलित चूर्ण का प्रोप देकर पान करने से रक्तगुल्म नष्ट होता है और रजोवरोध में देने से मासिक धर्म गुल्म जाता है ॥ १ ॥

सुशुतातिलमूलादि चूर्णम्—तिलमूल च क्षिप्रु च प्रह्लादपृष्ठीयमूलकम् ।

सुशुयधीप्रिकटुकैर्युत चूर्णमुपासयेत् । पुष्परोधे घातगुल्मे स्त्रीणां सद्य सुखायहम् ॥ १ ॥  
 तिलमूलादि चूर्ण—तिल की जड़, सहिजन की छाल, बमनेठी, मूली, जेठीमधु, सोठ, पीपरी और मरिच की सम भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से रजोवरोध और घातज गुल्म में क्लिषी को लाभ करता है ॥ १ ॥

मार्गार्होदिचूर्णम्—

मार्गार्होऽङ्गोऽयम् अन्धिकाकाररक्तजम् । चूर्णं तिलानो कायेन रक्तगुल्मरुजावहम् ॥ १ ॥  
 मार्गार्होदि चूर्ण—बमनेठी, पीपरी, करज की छाल, पिपरांमूल, देवदार की छाल प्रत्येक एक २ भाग लेकर चूर्ण कर तिल के काष के साथसेवन करने से रक्त गुल्म की पीड़ा नष्ट होती है ॥

दन्त्यादिगुटिका—दन्तीहिन्दुगुवचाराण्युधीजकणागुटाः ।

स्नुहीचरिण गुटिका सर्वयो कर्षमाश्रिका । मञ्जिता रक्तगुल्मघ्नी रुधिरस्त्रावकारिणी ॥ १ ॥  
 दन्त्यादि गुटिका—दन्तीमूल, शुक्र हींग, यवाखार, कडुगुम्बी का बीज, पीपरी, पुराना गुड़ एक २ भाग लेकर स्नुही क्षीरमर्दन कर बटी बनावे एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से रक्तजगुल्म और रजोवरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

अर्कपुष्पयोग—पक्व सैलेऽर्कजं पुष्प रुधिरस्त्रावकारि च ॥ १ ॥

अर्कपुष्पयोग—मदार के फूल को तेल के साथ पाक कर पात्र करन से रुधिर का क्षाव होता है ( रजोवरोध नष्ट होता है ) ॥ १ ॥

पलाशक्षारघृतम्—

पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्बद्ध । यस्मिन्नपसरे क्षारतोयसाध्यघृताद्विधु ॥ १ ॥  
 पेनोद्गमस्य निर्वृत्तिर्नष्टदुग्धसमाहृति । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ २ ॥  
 पलाश क्षार घृत—पलाश के क्षार का जल ४ भाग और सूक्ष्म गोघृत १ भाग के साथ घृत सिद्ध करे, जब घन मात्र शेष रहे तब उत्तार—क्षानकर को को पिलाने से रक्तज गुल्म नष्ट

होता है और जो मासिक धर्म बन्द हो गया है वह होने लगता है । भिन्न समय धार के जल से पूत्र पाक किया जाता है उम समय फेन उसमें अधिक होता है और फटे हुए दूध के समान वह देखने में हो जाता है वही लक्षण घृत के उचित पाक होने का समझना चाहिये । यदि इस रूप का नहीं हो तो पाक ठीक नहीं हुआ, यह जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

शुद्धान्मुण्ड्यादि—

मुण्डीरोचनिकापूर्णं शर्करामाषिकान्वितम् । विदधीताशुद्धिमन्यां मलसरोचनाय च ॥ १ ॥

मुण्ड्यादि पूर्ण—मुण्डी और बंशलोचन दोनों को समभाग लेकर पूर्ण कर शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से रक्तगुल्म वाली कियों के मल का रचन हो कर रक्तगुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

उष्णीषां भेदयेन्निने विधिर्वाऽसृग्दुरो हितः । अतिप्रवृत्तमर्च्छं तु मिन्ने गुणमे निवारयेत् ॥२॥

उष्ण द्रव्यों से रक्त गुल्म का भेदन करें और जब भेदन से रक्त निकल भावे तब उसमें रक्त मंदर में कहीं हुई विधि हितकारक है । गुल्म के भेदन होने के कारण यदि रक्त का अधिक स्राव होने लगे तो उसका अवरोध भी करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ क्षामान्यधिधिः ।

चित्रकादिकाय —

चित्रकप्रमिथकैरुण्डशुण्ठीकायः परं हितः । शूलानाहविषण्णेषु सहिहृग्विहसैधयः ॥ १ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चित्रकमूल, पिपरामूल, परण्डमूल और सोंठ समभाग लेकर पाय कर शुद्ध होंग, विघ्नमक और सेंधा नमक के पूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से शूल, आनाह और बिभक्ष रोग में अत्यन्त हितकारी होता है ॥ १ ॥

दिहृग्वादिचूर्णम्—

दिहृग्प्रमिथकधान्यजीरकवचाघट्टामिपागसटी घृष्टाम्ल लघणप्रय त्रिकटुक चारद्वयं वाचिमम् । पथ्यापुष्करवत्साम्लहृषुपाआज्यस्तदेभिः कृतं पूर्णं भाषितमेतद्दार्ढकरसे स्याद्रीमपरस्य च ॥

आध्मानग्रहणीविकारगुब्जाम्गुणमाहुदावर्तकान्  
प्रयाध्मानगद् तथाऽरमरिसुतं तृनिहृयारोचकान् ।  
ऊरुस्तम्भमतिभ्रम च मनसो वाधिर्षमष्टौलिकां  
प्रयष्टौलिकिकामयापहरते शक्यतीतमुष्णाम्पुता ॥ २ ॥

द्वारकुचिबहुणकटीजठरान्तरेषु वसितस्तनासफलकेषु च पारव्यथोक्ष ।

शूलानि नाशयति पातयल्लसजानि दिहृग्वादि मान्द्यनिवृत्ताधिनसंहितायाश्च ॥ ३ ॥

दिहृग्वादि चूर्ण—गुड होंग, पीपरामूल, धनिया, जीरा, बच, चाव, चित्रकमूल, पुररन, पाद्री, पचूर, बृहाम्ल (कीकम), सेंधानमक, सोचनमक, विघ्नमक सोंठ, पीपरि, मरिच, पीपल, यथाधार, सग्नीसार, अनारदाना, हरी, पुष्करमूल, अम्बुवेन, हाऊबेर, नीलाबेल, लम माग ( एक २ भाग ) लेकर पूर्ण बना कर आद्रक के स्वरस से भावना देवे, फिर अमीरी नीबू के स्वरस से भाषित कर चणोदक के अनुपान से पीने से आध्मान, ग्रहणी, अर्श, गुल्म, वदावर्त, प्रत्याध्मान, अरमरी, शूलि, माली, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, मतिभ्रम ( भ्रमरोग ) मानस रोग ( ठन्नादादि ) बधिरता, अष्टौला, प्रयष्टौला आदि रोग, दृश्य, कुक्षि, वक्षग कटि, उदर, वसिष्ठ, स्तन, स्कन्ध दोनों, तथा दोनों पाशों के शूल और बात कप से उत्पन्न शूल इन सब को तथा मन्दाग्नि को भी नष्ट करता है । भाषित संहिता में इस चूर्ण का नाम 'दिहृग्वादि चूर्ण' है ॥ १-३ ॥

दिहृग्वादिचूर्णम्—

दिहृग्पुष्करमूलाणि तुगुसुखि हरीतकी । स्यामा विदं सैधयं च यवचारं महौषधम् ॥ १ ॥

यवकायोदकेनेतद् घृतशृष्टेन पाययेत् । तैगास्य भिद्यते शुषमः सशूलः सपरिमद् ॥ २ ॥

दिहृग्वादि चूर्ण—गुड होंग, पुष्करमूल, मीठबल के फल, हरी, कृष्ण सारिका, विघ्नमक, सेंधानमक, यथाधार और सोंठ इत्येक साथ चित्रकियों को सम भाग लेकर पूर्ण कर रखे, पुना इन के साथ भूय केवे फिर एव के साथ के अनुपान से उपरोक्त चूर्ण को ठेकन करने से शूल तथा उपद्रवों सहित गुल्मरोग फूट जाता है ॥ १-२ ॥

भास्करलवणाद्यपूर्णम्—

सामुद्रलवणं प्राद्यमष्टकर्मितं बुधैः । पूर्वं सौवर्चलं प्राद्य विष्टसैम्घयधान्यकम् ॥ १ ॥  
त्रिप्ली विप्लीमूलं चाम्यं जीरकपत्रकम् । नागकेसरतालीसमम्लपेतसकं तथा ॥ २ ॥  
द्विकर्षमाप्राप्येतानि प्रात्येकं कारयेद् बुधः । मरीच जीरकं विष्टमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ३ ॥  
द्वाष्टिमस्य चतुष्टयं त्र्यगोला चार्धकर्मिका । पृथक्पूर्णांकृतं सर्वं लवणं भारकराभिघम् ॥ ४ ॥

भास्कर लवणाद्य पूर्ण—बुद्धिमान वेप सामुद्र तानक और सोचर नगक ८ कर्ष और विप्लनमक, संपानमक, धनिगा, पीपरि, पिपरामूल, चम्य, श्वेत, जीरा तेजपात, नागकेसर, तालिस-पात्र, अम्बेत, प्रत्येक दो २ कर्ष तथा मरिच, जीरा और सोंठि, एक २ कर्ष, अनारदाना ४ कर्ष, दाल-चीनी आधा कर्ष और छोटी इलायची के दाने आधा कर्ष सबको एकत्र पूर्ण कर लेवे यह 'भास्कर लवणाद्य पूर्ण' कहा जाता है ॥ १-४ ॥

शागप्रमाणं देयं तु मस्तुतकसुरासयै । वातरलेप्पममप गुहम प्लीहानमुदरं पतम् ॥ ५ ॥  
अर्शोसि प्रह्णीं कुष्ठ विषाधं च भगन्दरम् । शोथ शूल रवासकासमामदोषं च हृद्गुजम् ॥ ६ ॥  
मन्दाग्निं मादायपेतदीपन पाचनं परम् । सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा ॥ ७ ॥

इस पूर्ण को एक शान ( ४ भाषा ) के प्रमाण की मात्रा से दही के पानी, तक्र, मय अथवा आसब के अनुपान से सेवन करने पर वातरक्त से उत्पन्न गुहम, प्लीहा, उदर, स्तरोग, अर्श, प्रह्णी, कुष्ठ, विषाध, भगन्दर, शोथ, शूल, दबास, कास, आमदोष हृदय की पीड़ा, मन्दाग्नि इन सब रोगों को नष्ट करता है। यह पूर्ण अत्यन्त दीपन तथा पाचक है। इस पूर्ण को संसार के परलोक के लिये पहले भास्कर ने कहा था इसीसे इसका नाम 'भास्कर लवण' है ॥ ५-७ ॥

धारद्वयादि—

चारद्वयानलम्बोपनीलीलवणपत्रकम् । पूणित सर्पिषा पेय सर्वगुहमोदरापदम् ॥ १ ॥

धारद्वयादि योग—याबागार, सज्जीचार, चित्रकमूल, सोंठि पीपरि, मरिच, नील, संपानमक, सोंचरामक, विप्लनमक, समुद्रनमक और उज्ज्विनमक सम भाग लेकर पूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुल्मरोग तथा उदरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अग्निमुरारस —

हिष्ठगुमागो भयेदेको यथा च द्विगुणा भयेत् । विप्ली त्रिगुणा श्रेया श्रद्धयेर चतुर्गुणम् ॥  
चयानिका पद्मगणा पद्गुणा च हरीतकी । धिग्रकं सप्तगुणितं कुष्ठ चाष्टगुण भयेत् ॥ २ ॥  
शकहातहर पूर्णं पीतमात्रं प्रसजया । विघ्नेह्ना मस्तुना या सुरया कोष्णवारिणा ॥ ३ ॥

उदावर्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा ।

अह्नानि यस्य क्षीर्यन्ते विष या येन भक्षितम् । अर्शाहरो दीपनश्च शूलप्रो गुहमनाशनः ॥ ४ ॥

अग्निमुल रस—शुद्ध हींग एक भाग, बच दो भाग, पीपरि तीन भाग, सोंठि ४ भाग, जवाहन ५ भाग, हर्त ६ भाग, धित्रकमूल ७ भाग, कूट ८ भाग लेकर पूर्ण बना कर प्रसजा, दही, दही के पानी, सुरा अथवा शण्णोदक के अनुपान से सेवन करने पर वात को तथा उदावर्त, अजीर्ण प्लीहा और उदररोग को नष्ट करता है तथा जिसके अन्न शिथिल हो गये हों अथवा जिसने विष भक्षण किया हो उनमें लाभ करता है तथा अर्शरोग, शूल रोग और गुल्मरोग को भी नष्ट करता है। यह दीपन है ॥ ४ ॥

कासं श्वासं निहन्त्याद्यु तथैव चयमाधानं । पूर्णो अग्निमुस्तो नाम्ना न क्वचिप्रविहन्त्यते ॥

यह 'अग्निमुल' नामक पूर्ण कास और क्षय को भी शीघ्र नष्ट करता है। यह पूर्ण अपने नाम के प्रभाव को नष्ट नहीं होने देता अर्थात् उपयुक्त सभी रोगों में अवश्य लाभ करता है ॥ ५ ॥

काङ्गायनशुटिका—

यवामी जीरक घान्यं मरिच गिरिकर्णिका । अजमोदोपकुञ्जी च चतुःशाणा पृथक् पृथक् ॥  
हिष्ठगु पद्मशाणिकं कार्यं चारी लवणपत्रकम् । त्रिष्टुष्टाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कषपयोसुधीः ॥  
चुन्ती चाटी पौष्करं च विहङ्गं द्वाष्टिमं शिवा । चिद्रोम्बवेतसा शुष्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥  
बीजप्रसेनैर्वां शुटिकां कारयेद् बुधः । पृथेन पयसा चाम्ले रसैरुष्णोदकेन वा ॥ ४ ॥  
विघ्नेकाङ्गायनमोक्षा शुटिका गुहमनाशिनी । मघेन चात्तिकं गुहमं शोषीरेण च पैत्तिकम् ५५ ॥

मूत्रेण कफगुल्म च वृद्धाम्लैस्त्रिदोषजम् । उन्नीकुम्भेन नारीणां रक्तगुल्म निवारयत् ॥ ६ ॥  
 हृद्दोषा ग्रहणीशूल हृत्मान्नीसि नाशयेत् ॥ ७ ॥

वाङ्मायन गुटिका—पवारन, भीरा, धनिर्वा, मरिच, इन्द्रायण, अजमोदा, कृष्ण जीरा प्रत्येक चार २ शाण ( १६-१६ मापा ) पुद्गु हींग १ शाण, यवात्वार, सज्जीखार, सैषा नमक, विड नमक सौंघा नमक, सामुद्र नमक, उन्निद नमक और निशोष पृथक् पृथक् आठ २ शाण और दंतोमूल, कचूर, पुद्गुकरमूल, नारीरंग, अनारदाना, इर्रा, चित्रकमूल, अम्लवेत, सोठि प्रत्येक १६-१६ शाण लेकर चूर्ण कर विजौरा नीबू के रस में मर्दन कर बटो बना लवे इस बटो को घृत, दूध, अम्लरस ( काजी आदि ) अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से यह फाङ्गावा बटो गुल्म को नष्ट करती है । मद्य के अनुपान से वातिक गुल्म, गोदुग्ध से पेषिक गुल्म, गोमूत्र से कफज गुल्म, दध्नमूल के काथ से त्रिदोषज गुल्म और कॅटनी के दूध के अनुपान से खियों के रक्त गुल्म, हृद्दोष, ग्रहणी, शूल, कृमि तथा अर्श को नष्ट करती है ॥ १-७ ॥

चित्राक्षारादिचक्षुष्यटी—

चित्राक्षारं स्नुहीक्षारमर्कषार पल पलम् । द्विपल शङ्खज मसम रामठ च पलार्धकम् ॥ १ ॥  
 छयणानि च सर्वाणि पलमात्राणि योजयेत् । क्षारद्वय पलार्धं च सर्वमेकत्र योजयेत् ॥ २ ॥  
 जम्बीरकसरसैर्मर्द्यमनलप्य दिनप्रथमम् । शृङ्गराजस्य निर्गुण्डभास्रैव पृथग्भूयै ॥ ३ ॥  
 आर्द्रकस्य रसेनैव प्रत्येकं दिनमर्दितम् । यन्त्रीधीजमात्रास्तु घटकात् कारयेद्विषम् ॥ ४ ॥

चित्राक्षारादि चक्षुष्य बटो—इमलो का क्षार, सद्दुध का क्षार, मन्गर का क्षार एक २ पल, चक्षु मसम दो पल शुद्ध हींग आधा पल ( २ कर्प ) पाचो नमक मिलित एक पल, यवात्वार और सज्जी खार दोनों मिलित आधा पल लेकर सबको एकत्र मर्दन कर जमीरी नीबू के रस तथा चित्रकमूल के स्वरस के साथ पृथक् २ तीन २ दिन तक मर्दन करे । फिर भांगरे के रस, निर्गुण्डी के रस गुण्डी के रस और अद्रक के रस के साथ पृथक् २ एक २ दिन मदन कर धैर के बीज के समान ( प्रमाण ) बटो बना कर वैद्य रख लवे ॥ १-४ ॥

एकैक भक्षयेत्प्रातः पञ्च गुणमान्मयपोहति । सर्वं शूल निहग्न्याशु अजीर्णं च विपूषिकाम् ॥१॥  
 मन्दाग्निं नाशयेच्छीघ्रं पथ्य सैलाग्लवर्जितम् । चित्राक्षारवटी नाम ग्रहणीरोगहरवरा ॥ ६ ॥

इसकी एक २ बटो प्रातः काल सेवन करने से पाचो प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं और सब प्रकार के शूल रोग, अजीर्ण विपूषिका और मन्दाग्नि शीघ्र नष्ट होते हैं । इसके साथ पथ्य में केवल तेज और छाटाई वर्जित है । यह चित्रा क्षार चक्षुष्य बटो नामक भोवधि ग्रहणी रोग को नष्ट करने में उत्तम करी गयी है ॥ ५-६ ॥

पञ्चक्षार—

सामुद्र सैंधव काथ यमक्षार सुवर्धलम् । टङ्गुर्णं स्वर्जिकाक्षार तुल्य चूर्णं प्रकल्पयत् ॥ १ ॥  
 अर्केशरैः स्नुहीशरैः शोषयेदातये श्यहम् । अर्कपत्रं छिपेत्तेन हृद्भ्या भाण्डे पुटे पचत् ॥२॥  
 स चार चूर्णयित्वाऽथ म्यूपण त्रिकलारजः ।

जीरफ रजनी घट्टिनवकस्य समं सतः । क्षारार्धं योजयेत्सम्यगेकौश्टय विचूर्णयत् ॥ ३ ॥  
 पञ्चक्षारमिमं शुद्ध स्वयं प्रोक्त विनाकिमा ॥ ४ ॥

पञ्चक्षार—सामुद्र नामक, सैषा नमक, काथ नमक, यवात्वार, सौंघा नमक, शुद्ध टङ्गु और सज्जीक्षार सम माग लेकर चूर्ण कर मन्गर के दूध और सेंदुध के दूध के साथ पृथक् २ तीन दिन तक भावना देवे फिर मन्गर के पत्थों में छदेठ कर एक हाड़ी में रर कर गुप्त बन्द कर अग्नि पर जला कर भरय कर ऋवे और मर्दन कर इस मसम में सोठि, जीपरि, मरिच आंबला, इर्रा, बड़दा, नीरा, इरदी, चित्रकमूल इन भी द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण कर मसम ( क्षार ) जितना हो उसको आधा हम मिलित चूर्ण को मिटाकर मर्दन कर रख डेवे । इस शुद्धपञ्चक्षार को स्वयं महादेवजी ने कहा म ॥ १-४ ॥

सर्षोदरेषु गुक्मेषु शूले शोके च योजयेत् । अग्निमान्द्ये त्वर्धने च मषेषिकद्वय तथा म्पथा  
 इसको सब प्रकार के पक्ष रोग, गुल्म, शूल, शोष, मन्दाग्नि और अजीर्ण में देगा आदिवे इसकी मात्रा दो पिण्ड के प्रमाण की आदिवे ॥ ५ ॥

घाताधिके जलैः कण्ठीर्मुतैः पित्ताधिके द्विषः । कपे गोमूयसंयुक्त आरनालैश्चिदोपनुत् ॥ ६ ॥

घात की अधिकता में कुछ उष्ण जल के अनुपात से, पित्त की अधिकता में घृत से, कफ की अधिकता में रोगमूत्र से और विशेष की अधिकता में कांजी के अनुपात से सेवन करना चाहिये । अर्थात् इन २ अनुपातों से तीनों दौबों के कोष से हो के पाके गुग्गु आदि गट्ट होते हैं ॥ ६ ॥

योगसाक्षात्पद्मद्राव — प्रथम जम्बीरीरं चद्रपरिमितं काकतुण्डस्य मूलं  
कर्पायं स्वजिकायाश्चिपदुपलसुतं तस्यसारं पलाधम् ।  
तासयं सूर्यतापे मुनिदिनयुगलं काचकुप्यां निधाय  
हृत्पाद्गुदम सुतीक्ष्ण जठरमल्लजं शङ्खकद्रावसश्च ॥ १ ॥

शङ्खद्राव का लक्षण और गुण—जमीरी नीबू का रस एक प्रथम, काकनासा की जड़ कोक प्रनाग ( २ शान ), गज्जीवार भाषा कर्प, सैबागमक, सौचर नमर और विट्ममक मिलित १ पल, नरसार भाषा पल लेकर सबको पत्र कर काच के पतों में रखा कर चौद्व दिन तक धूप के ताप में रखा कर सेवन करने में शीघ्र शुष्म रोग, उदररोग और मन्त्र की पीड़ा ( मल का उचित निर्गम नहीं होना ) आदि सब नष्ट होते हैं । इसका नाम 'शङ्खद्राव' है ॥ १ ॥

अथ शङ्खद्राव —

फट्क्रीपलमेक च सैचयपलमेव च । द्विपलं च पयपारं द्विपल मयसागरम् ॥ १ ॥  
चतुष्पल सुराचारं पलाधं कासिस तथा । दमरुयत्रयोगेन चुक्कयां वै यदरीन्धनैः ॥ २ ॥  
साधयेद्वाधवापूर्णं शङ्खद्रावरस परम् । गुडमादिसर्वरोगेषु देयः सचसुखप्रदः ॥ ३ ॥

फिट्करी, सैन्धा नमक, १-१ पल, यवागार, नरसार दो पल, सीरा ४ पल, कासीत भाषा पल, लेकर मर्दन कर विधिपूर्वक दमरु यत्र में रखा कर चूड़े पर चढ़ा कर बैर की लकड़ी के आँच से पाचन करे । यह 'शङ्खद्राव रस' लघुता के कारण शीघ्र यत्र में ऊपर चला जावेगा । इसको शुष्म आदि सभी उदर रोगों में देने से लाभ होता है ॥ १-३ ॥

अन्यथा—

सैचय च पयपार मयसार तथैव च । प्रत्येक द्विपलं ब्राह्म सुराचार चतुष्पलम् ॥ १ ॥  
फट्क्रीपलमेक च पलाधं कासिस तथा । सर्वमेकत्र संयोज्य दमरुयत्रमभ्यगो ॥ २ ॥  
चुक्कयां प्ररोहपेषुत्तु स्वालयेत्खादिरेन्धनैः । द्रावित तप्तमादाय तेजोरूपं जलप्रमम् ॥ ३ ॥  
द्रावयेद्दक्षिणा चातुन्वरादांश्च न सशयः । शङ्खद्रावरसो नाम शुष्मोदरहरः परः ॥ ४ ॥

सैन्धा नमक, यवागार और नरसार प्रत्येक दो २ पल लेवे, सीरा ४ पल, फिट्करी, १ पल, कासीत भाषा पल लेकर सबको पत्र कर दमरु यत्र में रखा कर चूड़े पर चढ़ा कर बैर की लकड़ी का आँच देवे । इसमें द्रवित तेजोरूप जल के समान औषध को रखा लेवे । इस शङ्खद्राव से सब धातु द्रवित हो जाते हैं ( गून् जाते हैं ) और कौड़िया भी द्रवित हो जाती हैं । यह 'शङ्ख द्राव' नामक रस शुष्म तथा उदर रोग का अत्यन्त नाश करने वाला है ॥ १-४ ॥

कृष्यारस—

द्विपल गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिरिषेत् । पारद पलमानेन मृत्तशुशुवायसीपुनः ॥ १ ॥  
कर्पमानेन समिभ्य पद्माहुलदले चिपेत् । तप्तो विष्णुर्व यत्नेन निधिष्याऽऽयसपात्रके ॥२॥  
चुक्कयां निवेश्य पानेन चालयेन्मृदुवह्निना । पात्र पात्र हि जम्बीररसं तत्र प्रचारयेत् ॥  
पद्मकोलसमुद्भूतैः कषायै साम्लयेतसैः । भावना श्लु दातव्या पद्माशयप्रमितास्तथा ॥३॥  
मृष्टमृच्छणपूर्णं गुण्येन सह मेलयेत् । तदर्धपद्मालयणैः सर्वसाध्यमरीचकैः ॥ ५ ॥  
सप्तधा भावयेत्पद्माघणकपात्रधारिणा । तप्तः संक्षोष्य सम्येव्य कृषिकाम्यन्तरे चिपेत् ॥ ६ ॥

कृष्यारि रस—शुद्ध गन्धक दो पल लेकर अग्नि पर पिघला कर शुद्ध पारद १ पल में मिलाकर मर्दन कर विधि पूर्वक कज्जली कर इसमें तात्र मन्त्र और छोड़ भस्म एक एक कर्ष मिला कर मर्दन कर मन्त्र २ अग्नि पर छोड़ के पात्र में पाक करें जब द्रवी भूत हो जावे तब पपटी की विधि से परण्ड पत्र पर ढालकर पर्यटी बना कर फिर चूर्ण कर एक छोड़े के पात्र ( कड़ाही ) में रखा कर चूड़े पर चढ़ा कर इसमें एक आदक जमीरी नीबू के रस को मिला कर

मन्द र अग्नि पर पाक करे और चलाता रहे जब सब रस सूख जाये तब पञ्चकोण के कोषः  
 विपरी, विपरी मूल, चम्प, विप्रक मूल और सोंठि को समान लेकर विधि पूर्वक अठगुने  
 जल में काय कर चतुर्धाश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे और अम्लवैत के बराम से पृथक्  
 पृथक् ५० बार भाविग कर सुखा लेवे सूजने पर जितना यह औषध हो उसके समान भाग मूत्रा  
 दुग्धा ( शुद्ध टहण ) सोहागा का पूर्ण मिलावे और सुहागे के आया भाग पांचो नमक का  
 मिलित पूर्ण मिलावे, तथा सब मिला कर जितना हो उसके बराबर मरिच का पूर्ण मिलाकर  
 मर्दन कर घणकशार के जल से सात भावना देकर सुखा कर पोस कर शीशी में रख लेवे ॥२-६॥  
 अत्यन्तगुरुभोग्यानि गुरुमासान्यनेकश । भेषेष्वाऽऽकण्ठपर्यन्त सत्तो देवो रसोत्तमः ॥७॥  
 चतुर्वर्षमितो देयस्तस्मै सखवणैरपि । भक्त जीर्वाति सत्विप्र जायते दीपन परम् ॥ ८ ॥

रसः क्रम्यादनामास्य प्रोक्तो मन्थानभैरवै ।

सिंहलजोगिपालाय भूरिमांसमुजे पुरा । सतः क्रम्यादक- प्रोक्तो ह्य अत्ययकारकः ॥ ९ ॥

अत्यन्त गुरु भोज्य पदार्थ, अनेक प्रकार के गुरु मांसादि कण्ठ पर्यन्त भोजन कर अर्थात्  
 अधिक से अधिक प्रमाण में भोजन कर रस रस को ४ बल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करना  
 चाहिये । इसकी नमक मिला हुए मूठे के साथ भी देते हैं । इसके सेवन से भोजन शीघ्र पचता  
 है और अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है । इस 'क्रम्याद भैरव' नामक रस को मन्थान भैरव से सिंहल  
 देश के राजा के लिये कहा था जो बहुत मति भोभी था । इसलिये इसका नाम 'क्रम्याद रस'  
 कहा गया, यह अत्यन्त पाचन है ॥ ७-९ ॥

कुर्याद्दीपनमुद्धत पवनजे देह पर शोषण

गुन्दर्यौष्यनियर्हणो रात्रहरो दुष्टमणार्तिप्रणु ।

कासश्वासविनाशमो ग्रहणिकाधिच्वसनः छसनो

गुणमप्लीहजलोदरोपशमनाः क्रम्यादनामा रसः ॥ १० ॥

यह रस अत्यन्त अग्नि को दीप्त करता है, वायु और शरीर में अत्यन्त शोषक है । ये के  
 निकले हुए तौंद और स्थूलता को नष्ट करता है, रोग को हरण करता है और दुष्ट प्रण की पीड़ा  
 कास, श्वास तथा ग्रहणी को नष्ट करता है और र्जन स्मारक अर्थात् मल निकालने वाला है ।  
 और गुणम, प्लीहा, जलोदर को यह क्रम्याद नामक रस नष्ट करता है ॥ १० ॥

विश्वहिन्दुविद्वैः साधं क्रम्यादो भक्षितो रमः । गुणमानशेषामप्लीहार्न विद्विधीनपि नादायेत् ॥

सोंठि शुद्ध हींग और विट नमक के समान मिलित पूर्ण के साथ इस क्रम्याद रस को  
 भक्षण करने से सब प्रकार के गुणरोग, प्लीहा और विद्विधि भी नष्ट होता है ॥ ११ ॥

गदनिग्रहाधिपिकासव-—

चविकापास्तुलाधं तु तद्वधं चिप्रकस्य च । थापिका पुष्करं मूल पद्मया हनुपा शरी ॥११॥

पटोलमूलप्रिफलायवानीकुञ्जत्वचः । विद्याला धान्यकं रास्ना दन्ती दशापलोमिता ॥ २ ॥

हृनिग्रमुस्तमक्षिष्टादेयदादकटुत्रिकम् । भागाम्पञ्चपलानतानदद्रोणेऽमस पयेत् ॥ ३ ॥

श्रीणशेषे रसे पूते देय गुहकासप्रयम् । धातव्या विनातिपटु चानुर्जातं पलाटकम् ॥ ४ ॥

छयद्वयोपकट्टोल पक्षिकानि प्रकल्पयेत् । निदध्यान्मासमेकं तु पूतमापञ्चे सुसंस्तृते ॥ ५ ॥

चविकामव-चम्प भाया गुला ( ५० पल ) और उसके आधा ( २५ पल ) विप्रकमूल और  
 वाश्विका ( हींग अथवा हृण कीरा ), पुष्करमूल, विपरीमूल, दाब्बेर, कचूर, परब की जड़  
 ( पत्र सहित ) देना चाहिये विपन्ना ( औंवा, हरां बहेरा ), जशरन, कीरया की छाल,  
 माहरी, धनिशो, रास्ना और दन्तीमूल प्रत्येक दस २ पल और -नामीरग, भागरमीया गरीठ,  
 देवनाभ, सोंठि मरिच पीपरि प्रत्येक ५-५ पल लेकर सबको पकन कर आठ द्रोण ( १२ आदक )  
 जल के साथ विधिपूर्वक अष्टमांशशेष पाक कर उतार छानकर वसमें पुराना शुद्ध हीन सी पल,  
 भाय का फूल २० पल और दाक्षीनी, इलायची, तेजपाठ, नामकेसर इन चारों का सम मिलित  
 पूर्ण आठ पल, तथा लवण, सोंठि पीपरि, मरिच बटूके इनका एक २ पल पूर्ण को लेकर सबको  
 एक में मिलाकर सिग्ध पत्र में रस कर गुण बन्द कर आधक की विधि से एक मास रखा  
 रहने देवे ॥ १-५ ॥

चतुष्पलां विधेन्मात्रां प्रात पीतं निघण्टुति । सर्वगुल्मधिकारांश्च प्रमेहांश्चैव विधातिम् ॥ ६ ॥  
प्रतिस्वायं च यथासमशीलां यातशोणितम् । उदराण्यग्रयुद्धि च चविकाशपो महासयः ॥७॥

एक मास के पश्चात् तातकर ( जब आसव सिद्ध हो आवे तब ) रस लेवे । इसको मास काल ४ पल के प्रमाण की मात्रा से पान करने से सब प्रकार के गुल्मरोग, २० प्रकार के प्रमेह, प्रतिस्वाय, छय, कास, अशीला, वातरक्त, उदररोग, अत्रयुद्धि आदि सभी इस चविकादि नामक महासव से नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

कुमार्यासव—

कुमार्याश्च रसद्रोणे शुद्धं पलनास तथा । गुलाह्वमिसर्ण्यां विजयां छायायेत्तज्जलार्मणे ॥ १ ॥  
चतुर्वींतापरोचे तु पूते तस्मिन्निघापयेत् । मधुनश्चऽऽइकं क्षया धातय्या द्विपलाष्टकम् ॥ २ ॥  
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य कणक चैव प्रदापयेत् । जातीफल लघ्नश्च कंकोले च कषायकम् ॥ ३ ॥  
जटिलाचम्यधिग्र च जातिपत्री सकषट्म् । अथ पुष्करमूल च प्रत्येक च पल पलम् ॥ ४ ॥  
मृत शुष्य तथा छोह शुक्तिमार्थं प्रदापयेत् । भूषां वा घा-यराशी वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥ ५ ॥  
तमुद्गण्य विधेन्मात्रां यया चामिषलायलम् । पद्मकास तथा श्वास चयरोगं च दाहणम् ॥ ६ ॥  
उदराणि तथाऽष्टौ च पद्मसौंसि च मादापयेत् । यातव्याधिमपरस्मारमन्यान्त्रोगान्मुदाह्यान् ॥ ७ ॥

कुमारी आसव—कुमारी ( पून कुमारी ) के १ द्रोण ( ४ भादक ) रस में पुराना गुड़ सी पद, विजवा ( भांग ) २५ पल लेकर एक द्रोण बल के साथ काय करे चौथाई शेष रहने पर उगार-तातकर रस लेवे । शीतल होने पर इसमें मधु एक भादक ( चार प्रस्थ ), भाय का फूल २६ पल मिलाकर स्निग्ध पात्र में रस कर उसमें नायपर, लवंग, कंकोले, पयाबचीनी, पीपरि, चम्य चित्रकमूल, आबित्री, काकदासिनी, बडेदा, पुष्करमूल, प्रत्येक एक २ पल लेकर क्वककर ( श्लोकार्थ कक्क ही है पर चूर्ण दिया जाता है ) मिला देवे और ताम्र मसम और लोह भरम एक २ युद्धि ( भाषा २ पल ) मिलाकर मृग्य गुदण कर भूमि में भधवा धान्यराशि में आसव की विधि से रखकर बीस दिन तक रहने दे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर निकाल-छानकर अग्निबल के अनुसार मात्रा से पान करने से पांचों प्रकार के कास, श्वास तथा कठिन श्वयरोग, आठों प्रकार के उदररोग, छै प्रकार के अशरीरोग आदि नष्ट होते हैं और वातव्याधि, अपरस्मार तथा अयाय कठिन रोगों को भी यह आसव नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

जाडरं कुरते क्षीत कोष्ठशूलं च नाशयेत् ।

गुल्माष्टक मष्टपुष्पं माशयेदेकपञ्चतः । कुमारिकासयो ट्रेप शूद्रस्पतिविनिर्मितः ॥ ८ ॥

तथा जठराग्नि को क्षीत करता है, कोष्ठशूल को नष्ट करता है, आठों प्रकार के गुल्मों को तथा नष्टपुष्प ( मासिन्धर्म को दकावट ) को एक पक्ष के सेवन से नष्ट करता है । इस कुमारी आसव को शूद्रस्पति भी ने बनाया था ॥ ८ ॥

हिङ्गवादिपत्रम्—

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरुणि हरीतका । श्यामा बिटं सै-चय च यवचार महौषधम् ॥ १ ॥

यवक्राधोदकेनैवद् घृतप्रस्थं विपाचयत् । सेनास्य भिद्यते गुल्म सशूल सपरिमहः ॥ २ ॥

हिङ्गवादि पत्रम्—शुद्ध हींग, पुष्करमूल, तेजबल के पल, हरीत, श्यामा ( कृष्ण सारिवा ), बिट नमक, सैवानमक, यवासार, सोंठि प्रत्येक समभाग ( एक २ भाग ) लेकर कक्ककर जितना हो उसके चौथुना ( एक प्रस्थ ) मूर्च्छित गोघ्न लेकर उसमें मिलावे और उसमें यव वा काय घृत से चौथुना ( ४ प्रस्थ ) लेकर मिलाकर पून पाक की विधि से घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उगार-छानकर सेवन करने से शूल तथा उपद्रवों से युक्त गुल्म वा भेदन होता है अर्थात् नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

दाधिकघृतम्—

विद्धवादिमसि-भूष्यहृतमुग्धोपजीरकैः । हिङ्गु सौवर्चलचारचुक्रवृषाम्लयेतसै ॥ १ ॥

योजपरसोपेतैः सपिर्दधि चतुर्गुणम् । साधित दाधिक नाम्ना गुल्महराष्टीहनुत्परम् ॥ २ ॥

दाधिक घृतम्—विडनमक, अनारवाता, सैवानमक, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, औरा ह्वेत, शुद्ध हींग, सौचर नमक, यवासार, चुक्र, वृषाम्ल ( कोकम ), अम्लवेत समभाग लेकर कक्क



बरे और बस्क के चौगुना मूर्च्छित गीष्ठ तथा गोष्ठ म चौगुना विनीरे गीष्ट का रस और घृत से चौगुना ही दही मिलाकर घृत सिद्ध कर रख लेवे । यह 'दाधिक' नामक घृत गुग्म और प्लीहा को नष्ट करने वाला है ॥ १-२ ॥

शुद्धाश्रयमाणादि—

जले द्वादशगुणे साध्य प्रायमाण चतुष्पलम् । पद्मभागाप्यित प्लुत कर्षकैः सरोऽप्य कार्षिकैः ॥१॥  
रोहिणी कटुका मुस्ता प्रायमाणा दुरालभा । द्राक्षा तामलकी धीरा जीवन्ती चन्दनोपलम् ॥  
रसस्वाऽऽमलकानां च शीरस्य च कृतस्य च । पलानि धृद्यगष्टाष्टौ सम्यक्त्वा विपाचयेत् ॥  
पित्तगुहम रफ्तगुहम विसर्पं पित्तज ज्वरम् । हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्याद्देतद् घृतोत्तमम् ॥३॥

प्रायमाणादि घृत—प्रायमाण को चार पल लेकर दस गुने जल के साथ काथ करे जब जलकर ५ भाग शेष रह सके उतार—झानकर यह पाय ८ पल लेकर इसमें मन्डूठ वा गम्मार, कुटकी नागरमोथा, प्रायमाणा प्रवामा, दाव, मुद्ग आँवला, विदारोचन्द, जीवन्ती, लालचन्दन, गोल और कर्मण प्रत्येक सम भाग लेकर बरक करे । मिलित यह बस्क २ पल और इसके चौगुना मूर्च्छित गोष्ठ, आँवले का म्वरम और दूध प्रत्येक आठ पल और सम्पूर्ण द्रव्यों को क्रम से घृत पाक की विधि से पाक कर घृत माप शेष रहने पर उतार—झान कर संवन करने से पित्त गुग्म, रक्त गुग्म, विसर्प, पित्त ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठराग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सामुद्रादिवर्ति —

पातवर्षानिरोधेषु सामुद्राद्रकसर्पपैः । कृत्वा पाथी विधातव्या घस्यो मरिचाप्यितौ ॥ १ ॥

सामुद्रादि वर्ति—अथोवायु और मल या जब अवरोध को त्रास तब सामुद्रनमक, अद्रक, सर्पों और मरिच समभाग लेकर पीस कर विभि प्रकार अंगूठे के प्रमाण को मोटी बत्ती बना कर गुदा में देन से यह सामुद्रादि बत्ती वायु और मल को निकालती है ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

वशाद्री नाराचो रस—शुद्धसूत सम गन्ध जेपाल त्रिकलासमम् ।  
त्रिकटुं पेपयेत्पौद्गमिभ्य गुह्यम लिह हरोत् । उष्णोदकं पियेशानु नाराचोऽयं रसोत्तमः ॥ १ ॥

नाराच रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध अमालगोटा, आँवला, शर्षा, महदा, सोंठि, पीपरि, मरिच इनका पृथक २ चूर्ण एक २ भाग लेकर प्रथम पारद, गन्धक को कञ्जली कर फिर इन सब को एकत्र मर्दन ( सरल ) कर तथा योग्य मात्रा से मधु मिलाकर खाट कर उष्णोदक का अनुपान करे तो यह नाराच नामक उत्तम रस गुह्यम को नाश करता है ॥ १ ॥

वदवानलरस —

शुद्धसूत सम गन्ध सूत सास्त्राभ्रदण्डम् । सामुद्रं च ययचार स्वर्जिमी चयनागरम् ॥ १ ॥  
अपामार्गस्य च चार पालानां वसनाभ्रकम् । प्रत्येक सूतगुह्यं स्याद्यगकागण्डन मर्दपैत् ॥ २ ॥  
हृत्तिकन्याद्रवैश्वाहो आद्रगुह्यं पुटेक्षुषु ।

मायैक भक्षयेन्नित्यं रसोऽप्य पदवानलः । सर्वगुह्यं निहन्त्याह्यं प्रहणीं च विरोपताः ॥ ३ ॥

वदवानल रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भरम, अद्रक भरम, शुद्ध दण्ड, सामुद्र नमक, यवाचार सखी खार, सेवा नमक सोंठि, अपामार्ग वा क्षार, पलास का क्षार, शुद्ध वाष्पाम विष, प्रत्येक पारद के समान अपार्द सुग माप लेकर प्रथम पारद-गन्धक को कञ्जली कर फिर सब द्रव्यों के उत्तम चूर्ण को तथा भरम को मिला कर अगव्याम् ( बना रात का ब्रह्म ) के साथ मग्न करे फिर केल के स्वरस घृत पुमरी के स्वरस, तथा कद्रक के स्वरस के साथ पृथक् २ मर्दन कर घृत पाक की विधि से लघु घृत देकर एक मात्रा के प्रमाण को मात्रा से निष्प मक्षण करने से यह 'वदवानल रस' मत्र प्रकार के गुह्यो को शीघ्र नष्ट करता है और विशेष कर मृद्वी रोग को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

गुग्मकुठारो गम्—

गागपद्माक्षक कान्त सम ताद्य समाशकम् । जम्पीररवरमैपुष्टा वटी गुजाप्रमानिका ॥ १ ॥  
मधुनाऽऽर्द्रकनरेण चारदुग्मन सेविता ।  
अग्नीर्गामं गुह्यं च हृत्तारवैवृत्कले । नाम्ना गुग्मकुठारोऽप्य सयगुह्यान् व्यपोदति ॥३॥

गुल्म कुठार रस—नाग ( सीसा ) मरम, रंग मरम, अभ्रक मरम, [क्रान्त लौह मरम, ताम्र मरम समान ( ८४ २ भाग ) लेकर मर्त कर खमीरी नीबू के रस के साथ चारल कर पक् रती के प्रमाण की बटी बना कर मधु और अदर खरस और यवासार तथा सज्जी सार इनके अजुषान के साथ सेवन करने से अजीर्ण, आम शोष, गुल्म, हृदय पार्श्व और उदर के मूल तथा सब प्रकार के गुश्मों को यह गुल्म कुठार नामका रस नष्ट करता है ॥ १ ॥

बा'पना'मदेमसिंहयुगो रस —

रसगन्धपटाटवाशनाशु विषयद्वाभ्रकचान्ततीपगमुण्डम् ।  
 अहिदिङ्गुलट्टणं समानं सरुल तत्रिगुण पुराणकिट्टिम् ॥ १ ॥  
 पशुमूत्रविशोषितं हि पृष्टा त्रिकलासूत्ररजार्द्रकोत्पमीरः ।  
 सुविनोप्य परामृतात्पिपासास्वरसैरष्टगुणै पुननघोरैः ॥ २ ॥  
 पृथगग्निहृगं घ्नं विपाष्य गुटिका गुभयुता निजानुपानैः ।  
 उदरपाण्डुतृपाजपत्यगुल्मपपकामस्वरमगिसाद्मूर्च्छाः ॥ ३ ॥  
 पवनादिषु दुस्तसाष्टरोगां सरुलं पिपाहरं मद्वाहृतं च ।  
 पानुना किमसौ यथार्थनामा सरुलस्यापिहरो मद्रमसिंह ॥ ४ ॥

मदेमसिंहयुग रस—गुड पारद, गुड गन्धक, कौशोमरम, ताम्रमरम, शङ्खमरम, शुद्धविष, बज्रमरम, अभ्रकमरम, कालौहमरम, लौहलौहमरम, गुण्टलौहमरम, नागमरम, गुड हिङ्गुल, गुडट्टण प्रयेक समभाग ( ८४ २ भाग ) लेकर प्रथम पारल गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य शोषयिषों के पदत्र चारल कर सब मिलाकर जितना हो उसके तिगुना पुराना मण्डर मोमूत्र से जोषित मिलाकर मर्दन कर विषया के काप, मांगरे के खरस और अद्रक के खरस के साथ पृथक् २ भाषित कर सुराकर त्रिपला, शुकचि, अरुसा और पुनर्नबा इनके पृथक् २ अठगुने खरस के साथ अग्नि पर पाक करे जब पकते २ पना हो आवे तब उतार कर एक गुञ्जा के प्रमाण की बटी बनाकर अजुषान विशेष से सेवा करने से उदर, पाण्डु, लृषा, रक्तपित्त, गुल्म, क्षय, कास, खरभंग, मन्दाग्नि, मूर्च्छा तथा वातादिरोग, कठिन भाठो प्रकार के कुष्ठादि रोग, सब प्रकार के पित्तरोग और मद्दास्य को नष्ट करता है । अधिक क्या यह 'मदेमसिंह' नामक रस यथार्थ में सम्पूर्ण श्वाथियों को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

प्रवालपद्मागृतरसा—

प्रवालमुष्णफलकशुक्लिकपर्विकानां च समानभागम् ।  
 प्रवालमात्र द्विगुण प्रयोष्य सर्वं समोश रवितुग्धमेव ॥ १ ॥  
 पृकीकृत सरुल्लु भाण्डमध्ये क्षिप्त्वा मुष्टे य'घनमत्र योजयम् ।  
 पुटं विद्व्यात्तिक्षीतले च उद्वृण्य तद्गुल्म विपेत्करण्णे ॥ २ ॥  
 नित्य द्विघार प्रतिपाकयुक्त घल्लप्रमाण हि नरेण सेष्यम् ।  
 आनाहृद्यमोदरप्लीहकासश्वासाग्निमा'घान् फफमास्तोत्थान् ॥ ३ ॥  
 अजीर्णमुद्गारद्वेषामयन् प्रहृण्यतीसारविकारानाशनम् ॥ ४ ॥

प्रवाल पद्मागृतरस—प्रवालमरम, मुष्णमरम, शङ्खमरम, शुक्ति ( सीप ) मरम और कौडीमरम समान भाग लेवे और वेवल् प्रवाल दो भाग लेवे और मदनकर जितना हो उसके समान मदार के दूध को मिलाकर खरलकर शराब-सम्बुट में रस कर गुल्ममुद्रण कर पुटपाक की विधि से गजपुट में फूंक देवे और स्वांग शीत होने पर निकाल कर उस मरम को पात्र में रख लेवे । इसको १ बरल ( १॥ रती ) के प्रमाण की मात्रा से नित्य दो बार सेवन करने से आनाह, गुल्म, उदर, प्लीहा कास, श्वास, मन्दाग्नि, वफ तथा वात से उत्पन्न रोग, अजीर्ण, उद्गार, हृदय के रोग, ग्रहणी तथा अतीसार आदि रोग नष्ट होता है ॥ १-४ ॥

मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् । नाशयेन्नात्र सन्देह सत्य गुरुवचो यथा ॥ ५ ॥

मेह रोग, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सब रोगों को प्रवाल पद्मागृतरस अवश्य नष्ट करता है । यह गुरु के वचन के समान सत्य है ॥ ५ ॥

पथ्याधितं भोजनमादरेण समाधरेद्विमलचित्तवृत्त्या ।

प्रयात्पश्चात्प्रतारामधेयो योगोत्तम सर्वगदापहारी ॥ ६ ॥

इस 'प्रवालपश्चात्प्रतारामधेय' के सेवन के समय प्रसन्न चित्त होकर पथ्य ही भोजन करना चाहिये । सब रोगों को नष्ट करने वाला यह योग अति उत्तम है ॥ ६ ॥

### अथ पथ्यापथ्यम् ।

सर्वस्तरसमुत्पन्नाः कमला रक्तशालय । खण्डं कुलथयूपक्ष धन्वमांसरस सुरा ॥ १ ॥

गवामजायाश्च पयो सूद्रीका च परपकम् । तक्रमेरुण्डतैल च लघुर्न बालमूलकम् ॥ २ ॥

पशुरो घातसुक शिशुर्मांसुलुङ्ग हरीसफी । घातानुलोमर्न चैव पथ्यं गुर्वमे नृणां भयेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—एक वर्ष के पुराने कलमी तथा शालिधान के चावल शकर, कुलथी का मूत्र, धन्वदेशीय जीवों का मांस रस, नव, गौ तथा बकरी का दूध, मुनक्का, फालसा, मठठा, परण्डतैल, लहसुन, छोटी मूली पशूर नामक शाक, बयुभा, सहिष्वा, बिजौरा नीबू, इर्रा और वात को अनुलोमन करने वाले पन्थी गुर्वम रोग में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥ १-३ ॥

मापादयः शिशिषधान्ये सूक्ष्धान्ये यथादयः । घटछर्तं मूलकं मत्स्यं मधुराणि फलानि च ॥

शिव्नीषाचो में उदद आदि और सूक्ष्धान्यों में पत्र आदि तथा छसा मांस, मूली, मछली, मोठे पल आदि को गुर्वम का रोगी नहीं सेवन करे ॥ ४ ॥

अधोवायुसाहृ-मूत्रध्रमथासाक्षुधारणम् । घमन जलपानं च गुर्वमरोगी परित्यजेत् ॥ ५ ॥

अधोवात, मल मूत्र, परिक्षम, आस, आँस इनके वेग का धारण वयन, कम, अधिक, अलपान अथवा अनियमित जलपान इन बसको गुर्वम का रोगी त्याग देवे ॥ ५ ॥

इति गुर्वमप्रवर्ण समाप्तम्

### अथातो हृद्रोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्भ्रुकपायतिष्ठैः श्रमाभिपासाध्यदानप्रसङ्गे ।

संचिन्तनेष्वगधिधारणैश्च हृदयामय पक्षविधं प्रविष्टं ॥ १ ॥

हृद्रोग का निदान—अति उष्ण और अतिगुरु पदार्थों और अति अम्ल-अतिरूपाव तथा अति तिक्त रस वाले पदार्थों के अग्नि सवन करने से, अत्यन्त परिक्षम करने से, आपात होने से, अध्यशन अर्थात् भोजन करने के पश्चात् पुन भोजन कर लेने से, अति मेधुन से अग्नि विन्ना से और मलमूत्रादि के वेगों के अवरोध से, हृदय दूषित होकर पांच प्रकार का हृद्रोग होता है ॥१॥

तस्य संश्लिषाह—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदय गताः । हृदि यार्था प्रकुर्यात्ति हृद्रोग सं प्रचक्षते ॥ २ ॥

हृद्रोग की सम्भासि—वातादि दोष अपने दूषित होने के कारण दूषित होकर रसधातु को दूषित कर और हृदय में प्रवेश कर जो पीड़ा उत्पन्न करते हैं उस पीड़ा को हृद्रोग कहते हैं ॥२॥

वातिक्रमाह—

आप्यमये मारुतजे हृदय तुघते तथा । निर्मथ्यसे र्दीर्यते च स्फोटवते पाटवतेऽपि च ॥ ३ ॥

वातिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में हृदय घन जाने ( पेश जाने ), हृदय में धरं पुमाने के समान, मयने के समान चोरने के समान, फोड़ने के समान या टूटने ( टूटते करने ) के समान पीड़ा ही उस हृदय रोग को वात के प्रकीर का ( वातक ) हृद्रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पैतिक्रमाह—

तृष्णोष्णदाहचोषा रसुः पैतिके हृद्रवे क्लमाः । धूमायन च मूर्च्छां च स्वेदः शोषो मुश्रम्य च ॥

पैतिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में एषा, उष्णता, दाह, गुसने के समान उरव में पीड़ा और क्लान्ति ही मुख से धूमा निकलने के समान वात ही मूर्च्छां स्वेद और मुश्र पायता ही उस हृदय रोग को पैतिक के प्रकीर का ( पैतिक ) जानना चाहिये ॥ ४ ॥

रश्मिक्रमाह—

शौरव ककसघावोऽपचिः रक्तमोऽग्निमार्दवम् । माधुर्वमपि चाऽऽर्यस्य यथामावर्तत हृदि ॥

रश्मिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में शौरवम ही ( हृदय मारी ही ) मुख से कक का घ्राप, अरवि अङ्गता, मन्थानि और मुख मसुर रवार का बना रवे उस हृदय रोग को रश्मि के प्रकीर का ( रश्मिक ) जानना चाहिये ॥ ५ ॥

त्रिशोषकमिजगोलाधामाह—

घात्रिशोषमप्येष सर्वंतिष्ठं द्रवामयम् । त्रिशोषजे तु हृद्रोगे यो पुरात्मा निवेद्यते ॥ १ ॥

लघ्वीरुगुहादींश्च ग्रन्थिस्तद्वयोरुपजायते । मर्मरुद्धेते सपलेदं रसव्याप्युपगच्छति ॥ ७ ॥

त्रिशोषक तथा कृमिज हृद्रोग—मिज हृदयरोग में बातारिक तीनो दोषो के सम्मिलित लक्षण लाई देवें उसको त्रिशोष के कोष या ( त्रिशोषक ) हृद्रोग जानना चाहिये । हृद्रोग में जो पुरात्मा मुख्य तिल, दूध, गुद आदि का अधिक सेवन करता है उसके हृदय में मर्ग के एक स्थान में मि ( गांठ ) उत्पन्न हो जाती है, उसमें कष्ट होता है और रस भी पहुंचा नारहता है ॥१-७ ॥

रसदेहाशुभ्रमयश्वास्य भवन्त्युपहृतात्मनः । सीमासितोर्ध्वं कृमिद् राहोपत्रयसम्भवम् ॥ ८ ॥

अपत्य करनेवाले रोगी को उसी श्लेष्म से कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और उससे हृदय में बंटा का होना है एवं जुमाने के समान घात होता है । इसको त्रिशोषक कृमिज हृद्रोग कहते हैं ॥८॥  
रसदेहः क्षीयान् सोढः शूल हृत्सासकस्तमः । अदधिः श्यापनेत्रत्यं दोषश्च कृमिजे भवेत् ॥९॥

कृमिज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में उकलाई भावे ( वमा की शप्ता हो-हो कर कफ आये ), रस से अधिक शूल निकले, एवं जुमाने के समान पीड़ा हो, शूल, हृत्सास ( वमनेच्छा ), आसों सामने अंधेरा, भरुचि, नेत्र श्याम वर्ण के हो जायें और शोष हो उस हृद्रोग को कृमिज जानना चाहिये ॥ ९ ॥

उपद्रवा — बलोमनः साक्षो भ्रमः शोषो श्रेयास्तेषामुपद्रवाः ।

क्रिमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ते मया ॥ १० ॥

हृद्रोग के उपद्रव—बलोम ( शिथिलता ), भ्रम और शोष ये सब हृद्रोग के उपद्रव हैं । कृमिज हृद्रोग में कृमिरोग के उपद्रव और कफ दोष सम्बन्धी बह गये उपद्रव होते हैं ॥ १० ॥

अथ हृद्रोगचिकित्सा ।

वातहृद्रोग—

वातोपसृष्टे हृदये घामयेतिसन्धमातुरम् । द्विपञ्चमूलीकाथेन सस्नेहलयणेन वा ॥ १ ॥

वातज हृद्रोग की चिकित्सा—वातज हृदय रोग में रोगी को स्नेह लेकर दशमूल के काथ की पिलाकर अथवा स्नेहयुक्त पदार्थों में तमक मिलाकर पान करा कर वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पल्यपेला यथा द्विगुणं यवपारोऽथ सैन्धवम् । सौषर्चलमथो हृष्टी क्षीप्यश्चेति विचूर्णितम् ॥  
पलधान्याग्लकौलर्यद्युधिमघासवादिभिः । पाययेच्छुद्धदेहस्य वातहृद्रोगदान्तये ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पोरि छोटी इलायची, कच, शुद्ध हींग, यवासार, सेंधा नमक, सोचर नमक, सोंठ और जब सबको एक-एक भाग लेकर चूर्णकर यथायोग्य मात्रा से फलों के रस, कौबी, मुलची के रस वा काथ, हदी, मघ और आसव इतमें से किसी एक के अजुपान से रोगी को वमनादि से शुद्ध कर सेवन कराने से वातिक हृद्रोग शमन होता है ॥ १-२ ॥

पुष्करमूलाद्यं चूर्णम्—

सपुष्कराख्य फलपूरमूल महौषध घाटयमया च कण्ठकः ।

श्यामलसर्पिलंबणैर्विमिश्रः श्यावासाहृद्रोगहरोनराणाम् ॥ १ ॥

पुष्करमूलाद्यं चूर्ण—पुष्कर मूल, विजौरा नीबू की बह, सोंठ, कचूर, हरी, सम भाग से कस्क बनाकर यवासार, काजी, घृण, नमक इन सबको उस कस्क में मिश्रित कर सेवन करने से मनुष्यों का वातज हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पित्तहृद्रोग—

धीपर्णां मधुक चैव सितागुहजलैर्षमेत् । पित्तोपसृष्टे हृदये सिद्धेत मधुरैः शृतैः ॥ १ ॥

पित्तज हृद्रोग चिकित्सा—गम्मार की छाल, मुलहठी, मधु शर्करा और पुराना गुड़ इनको जल के साथ पीस-घोलकर पान कर वमन कराना चाहिये । इससे पित्तज हृदयरोग शमन होता है । पित्तज हृदयरोग वाले को मधुर द्रव्यों के शीतल कार्यों से सिद्धन करना चाहिये ॥ १ ॥

शीता भदेहाः परिपेचमं च तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।

प्राचासिताक्षौद्रपरूपकैः श्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नापानम् ॥ १ ॥

पित्तन द्वागै बाळे की शीतल पदार्थों का लेप लगाना चाहिये और शीतल कापों से सिद्धान करना चाहिये तथा द्राक्षा, शर्करा, मधु और फाळसा इनको जल के साथ पीस कर पान कराकर विरेचन देकर शुद्ध कराकर तब पित्तनाशक अथ पान आदि सेवन कराना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षाचूर्णम्—

दारहूरादरीतक्योस्तुष्यं शर्करया रजः । पीत हिमाग्नुना हतित पित्तद्वागैमज्जता ॥ १ ॥

द्राक्षादि चूर्ण—द्राक्षा और रीतकी इनको समान लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर शर्करा मिलाकर मर्दन कर मात्रा पूर्वक शीतल जल के अनुपान से पान करने से पित्तन द्वागै शीघ्र गट होता है ॥ १ ॥

अर्जुनादिचूर्णम्—

अर्जुनस्य स्वधा सिद्ध शीरं पित्तहृदातिमित् । सितया पञ्चमूल्या वा यलया मधुकेन वा ॥ १ ॥

अर्जुनादि क्षोरपाक—अर्जुन की छाल का फरक बनाकर जितना हो उसके चौगुना गाय क दूध मिलाकर और पाषाण जल दूध से चौगुना मिलाकर पुग्धपाषाण की विधि से पाक कर केवा दूध शेष रहने पर उतार-छानकर शीतल होने पर उसमें शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तन द्वागै नष्ट होता है एवं लघु पञ्चमूल (शालिवर्ण्याम्) से विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध अथवा बरिभारा और मुलहठी के फरक के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध पित्तन द्वागै को शमन करता है ॥ १ ॥

बृन्दारामेरुवादिचूर्णम्—

कसेरुकाशौलवमृदुपेरमपीण्डरीकं मधुक विरं च ।

प्रथिञ्च सर्पिः पयसा पचेत्तौ चौद्रान्वित पित्तद्वागैमयत्नम् ॥ १ ॥

कसेरुकादि घृत—कसेरु, सेवार और अद्रक, पुंरिया, मुलहठी, भिन्नाग और नागरजीवा अथवा पिपराभूल समभाग छत्र फरक कर जितना हो उसके चौगुना मूत्रित गोघृत और पाकार्य घृत से चौगुना गोदुग्ध मिलाकर घृत सिद्धकर घृश गाय शेष रहने पर उतार-छानकर शीतल कर मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तन द्वागै गट होता है ॥ १ ॥

कफजद्वागै—

द्वागै कफजे स्थिन्नसुवाग्म लहित नरम् । कफजैर्मपजेर्गुज्याग्नाया शोषयलाषलम् ॥ १ ॥

कफज द्वागै चिकित्सा—कफज द्वागै के रोग को र्वेद देकर शमन और लहन करारकर शोष बल आदि का विचार करके कफ नाशक औषध का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

त्रिवृताद्यौ चूर्णकवाची—

त्रिवृत्सटीयलारानाशुण्ठीवध्या सर्पोकराः । चूर्णिता वा श्रुता मूये पातव्याः कफद्वागै ॥ १ ॥

त्रिवृतादिचूर्ण और काष—निशोप, कपूर, बरिभारा, रारना, सौंठि, हर्त और पुदकमूल समभाग छत्र चूर्ण अथवा काष बनाकर गोमूत्र के साथ पान करने से (चूर्ण को गोमूत्र के अनुपान से और काष को गोमूत्र के प्रक्षेप से) कफज द्वागै नष्ट होता है ॥ १ ॥

अशैनादि—

सूक्ष्मेष्टा मागधीमूलं पटोल सर्पिणा सह । नाक्षपेदाशु द्वागै कफजं सपरिमहम् ॥ १ ॥

दलाचिचूर्ण—सौटी शलाघधी के दाने पिपराभूल, परबत को अद्रक वा दालपात्र समभाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से उपद्रवों सहित कफज द्वागै नष्ट होता है ॥ १ ॥  
विशोबनद्वागै—त्रिवृत्पत्रे लहानमादित स्वार्धन्ं तु सर्वत्रु हित विधेयम् ।

चूर्णानि सर्पोपि च यक्षयमाप्याम्यत्र प्रयोऽपानि भिपगिमराशु ॥ १ ॥

त्रिवृत्पत्र द्वागै चिकित्सा—त्रिवृत्पत्र द्वागै में प्रथम लहन कराना चाहिये फिर त्रिवृत्पत्र को शमन करने वाले अथवा देना चाहिये तथा दूसरे अद्रक (मागै) बरे हुए चूर्ण तथा पुंजादि का प्रयोग इसमें बीच को शोष करना चाहिये ॥ १ ॥

हृदिद्वद्वागै—

द्वागै हृदिजे कार्यं लहन् चापतर्पणम् । पद्माहृमिदरं कमं हृमितो गोक्षमाशोः ॥ १ ॥

कृमिज हृद्रोग चिरिस्ता—कृमिज हृद्रोग में पहले लहूत और पीठे भयतपण कराना चाहिये । तब पचाय कृमिरोग में कहे हुए कृमिनाशन कर्मों को करना चाहिये ॥ १ ॥

कृमिने च पिये-मूत्र विहृद्गामयसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्येव ह्यसाभ्या कृमयो नृणाम् ॥

कृमिज हृद्रोग में बाधोरग और कूठ इनके समान चूर्ण को लेकर गोमूत्र के अनुपान से पान करने पर मनुष्यों के हृदय में रहने वाले असाभ्य कृमि भोगिर जाते हैं ॥ २ ॥

### अथ सामान्यहृदामयप्रतीकार ।

पयनारिजटा द्विपलाष्टगुणे सलिले पचिता घयजेन युतम् ।

कषया हृद्योजपपारश्वतटीव टिशूल विदारणसिंहनसम् ॥ १ ॥

हृद्रोग के सामान्य प्रतीकार—परण्डमूल पी छाल को दो पर लेकर अठगुने जल में पाककर चतुर्धा चोख रहने पर उतार-धानक यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से हृदय के शूल, पात्रद्वेष के शूल और बटिशूल इन सबको नष्ट करने में सिंह के नग के समान है अर्थात् जिस तरह सिंह का नख हाथियों के मरणक को पाद देता है उसी तरह यह काषण ही रोगों को नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

### दशमूलादिक्वाथ—

दशमूलकपायस्तु लवणपारसंयुतः । पीतो निहन्ति सहसा हृदामयमसहायम् ॥ १ ॥

दशमूलादि क्वाथ—दशमूल के द्रव्यों को समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें से पानमक और यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से हृद्रोग को हटाए निश्चय ही नष्ट करता है ॥ २ ॥

पुष्करादिक्वाथ—काथं हृतः पुष्करमागुल्लङ्घपलाशपूतिकक्ष्ठीसुराद्भिः ।

सनागरात्राजियघायवाहसपार उष्णो लवणेन पेय ॥ १ ॥

पुष्करादि क्वाथ—पुष्करमूल, बिजौरा नीबू की जड़, पलाश की जड़, पूतिकरज, कचूर, देव दास, सोंठि, जीरा, वन और यवाखार समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और से पानमक का प्रक्षेप देकर पान करने से हृद्रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

द्विहृत्वादिचूर्णम्—द्विहृत्सुप्रमग्धाविद्विभ्रष्टृष्णाकुप्टामयाचित्रकयापशूकम् ।

पियेत्सौवर्चलपुष्कराडय यवाम्भसा शूलहृदामयसम् ॥ १ ॥

द्विहृत्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, अवाहन, विद्वगमक, सोंठि, पीपरि, कूठ, हरी, चित्रकमूल, यवाखार, सौचरनमक और पुष्करमूल समान लेकर चूर्ण बनाकर इसको यव के विधिबद्ध बने हुए क्वाथ के अनुपान से सेवन करने से शूल और हृद्रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

### पुष्करचूर्णम्—

चूर्णं पुष्करमूलस्य मधुना सह लेहयेत् । हृत्सासम्भासकासपण हृदामयहर परम् ॥ १ ॥

पुष्कर चूर्ण—पुष्कर मूल का चूर्ण बना कर मधु के अनुपान से सेवन करने से हृत्सास, श्वास, कास और हृदय रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

कुकुभाघं चूर्णम्—घृतेन दुग्धेन शुद्धाम्भसा या पियेत्सचूर्णं ककुभाघचोत्थम् ।

हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्त जिरथा भयेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ १ ॥

कुकुभाघ चूर्ण—घृत के अनुपान से, दूध के अनुपान से अथवा शुद्ध के जल के अनुपान से इनमें से किसी एक के साथ (अनुपान से) विधि पूर्वक बनाया हुआ अर्जुन के छाल का चूर्ण सेवन करने से हृदय रोग, जीर्ण ज्वर तथा रक्त पित्त नष्ट होता है । यह आयु वर्षक है ॥ २ ॥

### एणशुक्रभरमयोग—

शरावसगुप्ते दग्ध्वा शुक्र हरिणज पियेत् । गम्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥

एणशुक्र भरम योग—एण शृंग के सींग को शराव समुद्र में रख कर विधि पूर्वक गज पुट में पुट देकर भरम कर पीस कर गो घृत में मिला कर (गो घृत के अनुपान से) पान करने से हृदय के शूल को निश्चित ही नष्ट करता है ॥ २ ॥

### शृदारकट्टकादि—

पिष्ट्वा वा कट्टका पेया सयष्टीका सुस्वाम्युना । जीर्णज्वरं रक्तपित्त हृद्रोगं च व्यपोहति ॥१॥

कटुकादि योग—कुटकी और जेठी मधु सम भाग लेकर विधिबद्ध पूर्ण कर सुप्तोष्ण जल के साथ पान करने से बीर्ण ज्वर, रक्त पित्त और हृदय रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

**अथ घृतानि ।**

अथादौ बहमघृतम्—घातार्धमभयानां तु सौवर्चलपल्लवम् ।

पचोत्कृष्टैर्घृतप्रस्थं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् । घृतं घषलभकं नाम्ना श्रेष्ठं हृद्रोगनाशनम् ॥ १ ॥

बहम घृत—सुषुप्त उत्तम हरद ससुपा में ५०, और सौंवर नामक दो पल लेकर विधि पूर्वक कस्क कर जितना हो अथवा एक प्रस्थ मूर्च्छित गो घृत और घृत से चौगुना (४ प्रस्थ) गो दुग्ध मिला कर घन पाक की विधि से मन् २ अग्नि पर पाक करे घृत मात्र छेव रहने पर उतार—दान कर सेवन करने से हृद्रोग नष्ट होता है । यह 'दत्तम्' नाम का उत्तम घृत है ॥ १ ॥

यष्ट्यादिघृतम्—

यष्टीनागवलोद्गीच्याञ्जुनैः सर्पिः सुसाधितम् । हृद्रोगचक्षुपित्ताद्यन्धासकासज्वरार्तिजित् ॥ १ ॥

पथ्यादि घृत—जेठी मधु, नागबला, सुगंधबाला, अञ्जन की छाल समभाग लेकर विधिपूर्वक कस्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघन और पाकार्ध घृत से चौगुना जल देकर घन पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, रक्त पित्त, आस, कास और ज्वरादि तथा इनकी पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १ ॥

घृन्दाद्युननंवादिषेणम्—

पुननंवादारुसपञ्चमूलरारुनायवाङ्गोलकपित्तविषयम् ।

पषरवा जले तेन पचथ सैणमम्यङ्गुपानेऽनिलहृद्गद्गदम् ॥ १ ॥

पुननंवादि षेण—पुननंवा ( गद्द पुरना ), दाहहरदा, पञ्चमूल ( शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटरी, बड़ी कटरी, गौलरू ) की पाचो क्षीपथिया धृक् २ रारुना, ज्व, अङ्गोल, कैथ और शैल की छाल इन भोषथियों को धृक् २ प्क २ भाग लेकर साठगुने जल के साथ विधि पूर्वक हाथ करे और चौथाई छेव रहने पर उतार दान लेवे तथा जितना बचाव हो उसके चौथाई मूर्च्छित तिल का तेल लेकर मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध पर तेल मात्र छेव रहने पर उतार दान कर, इसके मर्दन करने से अथवा पान करने से वातज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

**अथ रसाः ।**

तत्राऽऽनी त्रिोशो रसः—

रसगन्धाम्रमस्मानि पार्थिवुपरवगम्युना । पृकृन्दिशतिषा घम भावितानि विधानतः ॥ १ ॥

मापभाप्रमिद्ध पूर्णं मणुना सद्देहयेत् ।

यासज पित्तजं श्लेष्मसग्भूत या त्रिदोषजम् । कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्मयेव न संशयः ॥ २ ॥

त्रिनेत्र रस—गुड पारद, गुड गंधक और अशोक भरम मम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर अशोक भरम मिलाकर मर्दन कर अञ्जन वृक्ष की छाल के जल ( स्वरस अथवा घाव ) २१ बार घाम में रस कर भावना की विधि से भावित कर तेल लेवे । इस पूर्ण की एक माष ( मासा ) के प्रमाण की मात्रा से मधु के साथ देह बना कर सेवन करने से वात-ज्वरिष्ठ, पित्तज, कफज अथवा त्रिदोषज और कृमिज हृद्रोग निमित्त ही नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

हृत्पात्ररस—सूतार्कगन्धं प्रायेण घातया मर्दयेदितम् ।

काकमाष्या घटीं कृत्वा चणमात्रौ तु भययेत् । हृत्पात्रोपनामाऽयं हृद्रोगज्वलनो रसः ॥ १ ॥

हृदयानं रस—गुडपारद, ताम्रमरम और गुड गंधक सम भाग लेकर प्रथम पारद गंधक की कजली कर फिर ताम्र मरम मिलाकर मर्दन कर विपला के काय के साथ दिन भर मर्दन करे फिर मकोप के स्वरस के साथ तिम मर सरल कर घने के प्रमाण की बड़ी विधिपूर्वक बना कर सेवन करने से यह 'हृदयार्क' नामक रस हृद्रोग को नष्ट करने वाला है ॥ १ ॥

**अथ पथ्यापथ्यम् ।**

शालिमुंजा पया मांसं काङ्गुलं मरिचाम्बितम् । पटोळं कारवेलं च पथ्यं प्रोक्तं हृत्पात्रये ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—शालि बान्ध, मुंज, ज्व, काङ्गुल बीजों का मांस रस, मरिच का पूर्ण मिठा दुग्धा परवर, कटकी ये सब हृदय रोग में पथ्य है ॥ १ ॥

तैलाग्ध्रतक्रगुर्वक्त्रकपापधममातपम् । रोपं स्त्रीनर्मं चिन्तां वा भाष्यं हृद्रोगवांसयजेत् ॥ २ ॥

तेल, अम्बरस, बासे पदार्थ, तक्र, गुरु अन्न, कपाय रस बासे पदार्थ, परिश्रम, पूर सेवन, । क्रोध, मैथुन, चिन्ता और अधिक सम्भाषण ये सब हृद्रोग का रोगी त्याग देने अर्थात् ये सब अवश्य है ॥ २ ॥

इति हृद्रोगप्रकरणम् समाप्तम्

### अथ उरोमहनिदानम् ।

आवनिष्यन्त्रिगुणघृष्टकृत्वामिपादानात् । साद्य मांसं यकृतप्लेहोः सद्यो वृद्धिं पदा गतम् ॥

उरोमहं तदा बुद्धौ गुरुता कफमारत्तौ ।

उरोमह निदान—अवदन अभिष्यन्दी पदार्थ क सेवन से अति गुरु अन्न के सेवन से और घृष्टा हुआ तथा दुर्गंध युक्त मांस के रगने से मांस तथा रक्त के सहित शीघ्र यकृत और प्लेहा जब बढ़ जाते हैं तब बुद्धि स्थान में बच और बागु प्रविष्ट होकर उरोमह रोग को करते हैं ॥ २ ॥

सस्तम्भं सङ्घर घोरं रूपं स्वर्गासह गुरुम् ॥ २ ॥

आप्तमानं पुष्टिहरकण्ठे पातविष्मूत्ररोधतः । तन्द्रारोषकशूलानि तस्य छिन्नानि निर्दिशेत् ॥

उरोमह के लक्षण—उरोमह रोग में लग्नमन, घोर ज्वर, रुधिरा, स्पर्श का सहन नहीं होता, गुरुता, बुद्धि, हृदय और कण्ठ में आप्तमान अपोबागु मल तथा मूत्र का अवरोध तन्द्रा अरुचि और शूल होते हैं ॥ २-३ ॥

### अथ उरोमहचिकित्सा ।

अथाऽऽशु स्वेदनं पुनरप्या धमनं रक्तमोक्षणम् । तीक्ष्णैर्निरूहणं चैकं क्रमाल्लह्यामाशरेत् ॥ ३ ॥

उरोमह चिकित्सा—उरोमह रोग में शीघ्र स्वेदन कर्म, धमन कर्म, रक्तमोक्षण, तीक्ष्ण मन्थों से निर्मित निरूह बस्ति और क्रम से लह्या फर्ष करना चाहिये ॥ ३ ॥

पुत्रजीपकशिप्रत्यक्सूर्यावर्तपलोद्भवाः । रसा पूकैकशा कोष्णा द्विषो वा रामठाश्रितः ॥ २ ॥

सपञ्चलवणा पेयाश्चिष्टदुग्धमुकविकृताः । तद्धिष्टौ यथाशालामं मूत्रतैलसुरासवैः ॥ ३ ॥

चम्याम्लवतसपारसरामठमपित्रकान् । विवेत्तैलारनालाभ्यामुरोमहनिवृत्तये ॥ ४ ॥

पुत्रजीपक, सदिमन की छाल, सूर्यमुती और बरिभारा इनमें से एक-एक द्रव्य का रस अथवा दो २ द्रव्यों का रस थोड़ा गरम कर शुद्ध हींग के प्रक्षेप के साथ पान करने से तथा पांचों नामक मिलित, निशीय और शुद्ध इन द्रव्यों के बहक विधिपूर्वक बनाकर पान करने से और उरोमह के निवृत्त होने पर गोमूत्र, तिल का तेल, मध और भासव इनमें से जो प्राप्त हो सके उससे माध चम्य, अम्लवैत, यवाखार, शुद्ध हींग और चित्रक मूल इनके समान मिलित विधिवत बने पूर्ण की पान करने से अथवा इस पूर्ण को तेल और कांजी के साथ पान करने से उरोमह निवृत्त होता है ॥ २-४ ॥

यो वा नरस्वाग्रं घृतस्य कर्मणो विधिर्विहृदो न भयेन्मनागपि ।

यथापलं धीद्यप्य च शुद्धविप्रहं तथापिधं पथ्यमपि प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

पथ्यापथ्य—यहाँ रस रोग में कहे हुए जो कर्म हैं उनको करे तथा जो विधि तनिक भी विरुद्ध न हो उसे (पथ्य) करे और बुद्ध आदि का विचार कर विधि पूर्वक पथ्य भी देने और रोगी का शरीर निरन्तर शुद्ध रखे ॥ ५ ॥

इति उरोमहप्रकरण समाप्तम्

### अथातो मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

श्यायामतीक्ष्णौषधरूपमघासङ्गनृत्यमुत्पृष्ठयानात् ।

आनूपमस्त्याप्यशानाद्जीर्णारित्युर्मूत्रकृच्छ्राणि घृणामिहाटौ ॥ १ ॥

मूत्रकृच्छ्र निदान—अति श्यायाम, तीक्ष्ण औषधियों के अधिक सेवन, रक्षा अन्न के अति सेवन, अति मधवान, अति मैथुन, अति मृत्यु कर्म अति शीघ्र चलने, घोड़े आदि की अधिक



शुद्धामन्यादियोग—मय पिवेद्वाससितससर्पिं शृतं पयो वाऽर्धसितामप्युक्तम् ।

घात्रीरस श्वेदूरस पिवेद्वा कृष्णे सरके मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्यादि योग—इम पित्रज मूत्र कृष्ण रोग म विधिवत् बन हुए किसी मन्व में शकरा और घृत मिलाकर पीना चाहिये, अथवा औटाये हुए चीतल दूध में भावा भाग शर्करा मिलाकर पीना चाहिये, अथवा भाँवके का स्वरस वा ईल का स्वरस मधु के प्रक्षेप के साथ पीना चाहिये । इन योगों में किसी एक के पान करने से रक्त क सहित मूत्रकृष्ण नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्राक्षारि—

द्राक्षा सितोपलाककक कृष्णमन्स्तुना युतम् । पिवेद्वा कामतः चीरमुष्णं गुहसमन्वितम् ॥

द्राक्षादि योग—द्राक्षा और मिथो दोनों को समान लेकर कस्क बनाकर दही के पानी के अनुपान से अथवा उष्ण किया हुआ दूध और पुराना गुड़ मिलाकर हल्कामर पान करने से मूत्रकृष्ण नष्ट होता है ॥ २ ॥

शुद्धान्नारिकेष्वादि—

नारिकेलजलं योज्य गुहघा-पसमन्यितम् । सदाहं मूत्रकृष्णं च रक्तपित्तं निहन्ति च ॥ १ ॥

नारिकेष्वादि योग—नारिकेल के जल में पुराना गुड़ और धनिर्वा का चूर्ण मिला कर पान करने से दाह सहित मूत्रकृष्ण तथा रक्त पित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अन्यथा—रक्तस्य नारिकेलस्य जल कतकसंयुतम् । शर्करैलासमायुक्तं मूत्रकृष्णहरं विदुः ॥ १ ॥

रक्तवर्ण क नारिकेल के जल में निर्मली फल, शर्करा और छोटी इलायची क चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृष्ण नष्ट होता है ॥ २ ॥

सतावरीदिसर्पि—सतावरीकाशकृशाश्वदपूषिदारिकेष्वामलककसिद्धम् ।

सर्पिः पयो वा सितया विमिश्र कृष्णेषु पिच्छप्रमथेषु योज्यम् ॥ १ ॥

सतावरीदि—सतावरी मूल, कास ( राड़ा ) की जड़, कुश की जड़, गोमर, बिदाठीरुन्द, ईल की जड़ और भाँवला सम भाग लेकर कस्क कर इस कस्क के साथ विधिपूर्वक पन सिद्ध करे अथवा पाक विधि से दूध ही सिद्धकर उसमें शर्करा मिला कर पान करने से पिच्छ मूत्रकृष्ण नष्ट होता है । ( घृत सिद्ध करना हो तो कस्क से यतुर्गुण मूच्छित्त गोधन लेना चाहिये ) ॥ १ ॥

अथ श्लेष्मणुच्छ्रम् ।

पारोष्णतीक्ष्णौषधमधुपानं स्वदेशे यवान्मं वमनं निरुह ।

सर्कं च तिक्तोपगसिद्धतैल वसितञ्च वास्तः कफमूत्रकृष्णैः ॥ १ ॥

कफ मूत्रकृष्ण में क्षार ( यथाधारि ), उष्ण तथा तीक्ष्ण औषध और अन्नपानादि का सेवन करना चाहिये, श्वेतकम, जी अन्न का मध्यम वमनदर्म और निरुह वरित देना चाहिये, तक्र सेवन, तिक्त पदार्थ तथा मरिच इनसे सिद्ध किया हुआ तैल सेवन तथा वसित देना, ये सब बलम है अर्थात् इन विधानों से कफ मूत्रकृष्ण नष्ट होता है ॥ २ ॥

मूत्रादियोग—

मूत्रेण सुरथा वाऽपि कदलीश्वरसेम वा । कफकृष्णविनाशाप सूक्ष्मं पिष्ट्वा मुटिं पियम् ॥ १ ॥

मूत्रादियोग—दोटी इलायची के गुहा चूर्ण को गोमूत्र अथवा मधु अथवा देसे के कुछ के रस के अनुपान से सेवा से ( पान ) करने से, कफ मूत्रकृष्ण नष्ट होता है ॥ २ ॥

तमादियोगे शुद्धान्—समेग युक्त सितपाककस्य चीर्जं पिवेद्कृष्णविपातहेतोः ।

पिपेक्षया सप्लुलपापनेम प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृष्णैः ॥ १ ॥

सत्तादि योग—दिलिप्ता के बत्तों को चूर्ण कर तक्र के अनुपान से अथवा प्रवाल धरन को चाबल के धोवन के अनुपान से सेवन करने से कटक मूत्रकृष्ण नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

अथ त्रिदोषहरम् ।

सर्वं त्रिदोषप्रमये तु कृष्णैः यथाचल कर्म समीक्ष्य कार्यम् ।

तथाधिके प्राग्गमनं कथे स्वापित्ते विरेकाः पचले तु धनिः ॥ १ ॥

त्रिदोष मूत्रकृष्ण (वाकासा)—त्रिदोष स उत्पन्न होने वाले मूत्रकृष्ण में तीनों दोषों में बढ़ी

दुर्ग विधियों को रोगी के दोष बला-बल को विचार कर करनी चाहिये तथा उसमें यदि कफ की अभिपन्ना मात्स्य हो तो प्रथम बमन कराना चाहिये, यदि पित्त की अभिकला हो तो प्रथम विरेचन करना चाहिये तथा यदि वात की अभिकला हो तो प्रथम बलि कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

घृहत्यादित्वाय—

घृहतीघात-पीपाठायटीमधुकलिकारु । पश्या वाथ विद्येन्मार्यः कृच्छ्रे दोषत्रयोद्भवे ॥ १ ॥

घृहत्यादि काथ—बटी कटरी, घृषणों, पुररन पादी, जेठीमधु, बद्रजौ सामान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर पान करने से विरोधज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्षाधिकाय—

शतावर्षास्तु मूलानां निजायः ससितामधुः । मूत्रदोष निहन्त्याद्युः पातपित्तफफोद्भवम् ॥ १ ॥

शतावर्षादि काथ—शतावर्षी भी मद्य का काथ बना कर शीतल कर उसमें शर्करा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से वात-पित्त तथा कफरोग से उत्पन्न होने वाले मूत्रदोष (मूत्रकृच्छ्र) शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुददुग्धयोग—

गुदेन मिश्रित दुग्ध कटुप्लव कामत विधेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करा घातरोगानुत् ॥ १ ॥

गुद दुग्ध योग—घोड़े गरम दूध में पुराना गुद मिला कर इच्छामर पान करने से सभी प्रकार के (विरोधज) मूत्रकृच्छ्र, शर्करा रोग और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथामिघातमूत्रकृच्छ्रम् ।

मूत्रदृष्टेऽभिघातोत्थे पातकृच्छ्रक्रिया हिता । पञ्चवदककमृषलेपः कपोत्तोऽत्र प्रदास्यते ॥ १ ॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र विनिर्वासा—अभिघात से (शस्त्रादि से छत्र अथवा अभिहत होने से) उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र रोग में वातज मूत्रकृच्छ्र में कहीं दुर्ग क्रिया हितकर है । और पञ्च-वदकल (बट, पीपल (अदवत्य), पारर, गुल्म, बैन इनकी छाल) को सम भाग (एक-एक भाग) लेकर एक भाग मिट्टी मिला कर पीस कर (अल के साथ) गरम कर कुछ गर्म-गर्म लेप (पेटूपर) करने से अभिघातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मन्थादियोग—मन्थं विधेद्वा ससितं ससर्पिं शृत पयो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् ।

धात्रीरसं घेष्टुरप विधेद्वाऽभिघातकृच्छ्रे मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्थादि योग—विधिपूर्वक बने हुए मन्थ में शर्करा और घृत मिला कर अथवा औटोये हुए दूध में आधा भाग शर्करा मिला कर अथवा आँवले के रस में वा ईंस के रस में मधु मिला कर पान करने से अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ शुक्रविषघजजृच्छ्रम् ।

कृच्छ्रे शुक्रविषघोरथे शिलाजतु समाचिकम् । सपीर ससितं सर्पिमिश्रञ्चापि प्रपियेधरः ॥ १ ॥

शुक्र विषघज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—शुक्र विषघ से मूत्रकृच्छ्र रोग में शुद्ध शिलाजीत मधु, दूध, शर्करा और घृत (गोघृत) मिश्रित कर पान करना चाहिये इससे लाभ होता है ॥ १ ॥

शुक्रदोषविशुद्धधर्म समवा प्रमदां श्रयेत् । कृणपन्नकमूलेन सिद्ध सर्पिः पिबेदपि ॥ १ ॥

शुक्र विषघज मूत्रकृच्छ्र दोष को शुद्धि के लिये मदमत्त (धौवनमद से मत्त) को के साथ रमण करना चाहिये और कृणपन्नक मूल के योग से विधिपूर्वक सिद्ध किये घृत को पान करना चाहिये । इससे शुक्रज (शुक्र विषघज) मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

लेहः शुक्रविषघोरथे शिलाजतुसमाचिकम् ।

पलाहिकुगुयुत पीर सर्पिमिश्र पिबेधरः । मूत्रदोषविशुद्धधर्मं शुक्रदोषहर परम् ॥ २ ॥

शुक्रविषघज मूत्रकृच्छ्र में शुद्ध शिलाजीत को मधु के साथ लेह बनाकर चाटना चाहिये और बरिभारा तथा शुद्धहीन मिले हुए दूध में गोघृत मिलाकर पीना चाहिये । इससे मूत्र दोष की शुद्धि होती है और शुक्र दोष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ शस्त्रघातज कृच्छ्रम् ।

श्वेदचूर्णाक्रियाम्यङ्गयस्तयः स्युः पुरीषजे कृच्छ्रे तत्र विधि कार्यं सर्वं शुक्रविषघजिष ॥

पुरीषविपातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—मलावरोध से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्ररोग में पूर्णसेवन, अम्बुद, बलिर्कर्म ये सब करना चाहिये और शुद्धविषय को नष्ट करने वाले सब काय (सभी चिकित्सा) करना चाहिये । इसमें पुरीष विपातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोधुरादिकथाय —

छायो गोशुरबीजानां यथपारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं दृष्ट्वाजगत् पीताः शीघ्रं निवारयेत् ॥ १ ॥

गोधुरादि कथाय—गोशुर के बीजों का विषिपूर्वक व्वाप ननाकर उसमें यथानाम का प्रश्न देकर पान करने से पुरीषविपातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

**अथ अशमरीज कृच्छ्रम् ।**

अशमरीजे मूत्रकृच्छ्रं स्वदाया घातक्षिक्रिया । पापाणभेदकायस्तु कृष्णमग्मरिज जयेत् ॥ १ ॥

अशमरी जन्य मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग में स्वेदादि कर्म काय को नष्ट करने वाले हैं उन्हें करना चाहिये । और पापाण भेद (पदरघूर) के व्वाप को पान करने से अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथेति — पलोपकुशयामधुकारमभेदकान्तीश्वदप्राणपुष्यकुरुके ।

श्लं विषेदुश्मज्जु प्रगाढं सराकर सारमरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एलादिवोग—छोटी इलायची, पोपरि, मुल्बठी, पापाण भेद, रघुना बीज, गोशुर, अरुसा, परण्डमूल सम भाग लेकर काय कर इसमें शुद्ध शिलाजीत और उर्वरा या प्रश्न देकर पान करने से अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

**अथ सामान्यविधिः ।**

त्रिकण्टकादिष्वथो गन्निग्रहाय—

त्रिकण्टकारम्यध्वर्भकासापुरालभापर्पटभेदपण्या ।

निपत्ति पीता मधुनाशमरीका सम्प्राप्तस्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि काय—गोशुर, अमलतास की शुरी, टाम की जड़, रादा की जड़, अशमरी, पिषपापदा, पापाणभेद और इर्ला सम भाग लेकर काय सिद्ध कर शीघ्र होने पर सब प्रश्न देकर पान करने से भारदाहने वाला भी अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पापाणभेदादि — पापाणभेदक्षिवृता य पण्या दुरालभा पुष्करगोशुर य ।

पलाशश्लकटककईतीजबीज कपायः मुनिरुद्धमूत्रे ॥ १ ॥

पापाण भेदादि काय—पापाणभ, निम्बोय, इर्ला, अशमरी, पुश्करमूल, गीसर, पलाश के बीज, सिपाह के बीज और ककड़ी के बीज सम भाग लेकर काय बना कर पान करने से अशमरी दुप मूत्ररोग में लाभ होता है अर्थात् मूत्र हलगमना से होता है ॥ १ ॥

समून्मोशुरादि —

समून्मोशुरकायः सितामाचिकसंयुत । माशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णपरमीरणम् ॥ १ ॥

समून् गोशुरादि काय—गुल्महित गोशुर के काय में शीतल हान पर उर्वरा और मधु का प्रश्न देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है और अशमरी को नष्ट करता है ॥ १ ॥

यशदिर्बुन्द्याय—यशोमूत्रकृच्छ्रपञ्चमूलीपापाणभेदे सततावतीभिः ।

कृच्छ्रेषु शुभमेष्वभयाविभिर्भे कृत्त कपायो गुहमग्मपुत्तम् ॥ १ ॥

यशदि कथाय—यश, परण्डमूल, रघु पंचमूल की वा ७ भोजविदां, पापाण भेद, शगवरी और इर्ला सम भाग लेकर काय कर उसमें शुद्ध का प्रश्न देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र और गुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

अशमरीवोग — पलाशमभेदक्षिवृतामधुविप्लवीनां प्लानि तन्कुलमट्टैरुत्तितानि पीया ।

पद्मा गुदन सद्विदान्यवलिद्य धामानासप्रश्रापुरवि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ १ ॥

एलादि वोग—छोटी इलायची ४ बीज, पापाण भ (पदरघूर) ४ रुद्र शिलाबीज, १ र्ति सम भाग लेकर पूर्ण कर कण्टकीरुध अजुगन म रीने से अशमरी इस पूर्ण में दुरालभा शुद्ध सिद्धाया जाने से मूत्र के मूत्र में तथा दुग्धा भी मूत्रकृच्छ्र का रोग शीघ्र हो जाता है ॥ १ ॥

धारणां प्रयोग—

अङ्गोलतिलकाष्ठानां चाराः शीघ्रण संयुतः । दधिवायंनुपानेन मूत्ररोधं नियच्छति ॥ १ ॥

धारी का प्रयोग—अङ्गोल के एकदो का और तिल के एकदो का चार समान लेकर मधु मिला कर दही के अनुपात से सेवन करने से मूत्रारोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

सितागुण्डो यवचारः सयकृच्छ्रनिवारणः । निदिग्धिकारसो वाऽपि सशीघ्रं कृच्छ्रनाशनाः ॥

शर्करा और दवासार सम भाग लेकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । अथवा छोटी कटेरी के रस में मधु मिला कर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

यवचारसमायुक्तं पियेत्तर्कं च कामतः । मूत्रकृच्छ्रविनाशाय तथेवारमरिनाशनम् ॥ ३ ॥

दवासार को तर्क में मिला कर इच्छा पूर्वक पान करने से मूत्रकृच्छ्र तथा अदमरी रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मापमेकं यवचारं कृष्णाण्डस्वरस पलम् । शर्कराकर्मसयुक्तं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४ ॥

दवासार १ गाथा, इतैकृष्णाण्ड ( पेठा वा मनुहा ) का स्वरस १ पल और शर्करा १ बर्ष मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ४ ॥

वृन्दारटिमारियोग—

वादिमाग्लयुतां हृषां शृण्डीजीरकसयुताम् । पीथा सुरां सलघनां मूत्रकृच्छ्रात्ममुच्यते ॥ १ ॥

वादिमादि योग—खट्ट अनार के रस, सोठ, बीरा और सेंधा नमक मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग स मुक्ति होती है ॥ १ ॥

उर्वाश्रीमकरं वृन्दात्—

उर्वाश्रीमज्जकरं च श्लक्ष्णं विष्ट्राऽपसमितम् । धान्याम्लघणैः पिय मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ १ ॥

उर्वाश्री मज्जकर—एकदो के बीज को मलीगोति पीस कर बूझ बनाकर एक बर्ष प्रमाण लेकर धान्याम्ल ( काजी ) सेंधा नमक मिलाकर उसके अनुपात से पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिकम्—

त्रिफलाया सुपिष्टाया कर्ककं कोलसमन्वितम् । धारिणा लघुणोऽल्पं पियेन्मूत्ररुजापहम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि कम्क—त्रिफला समान स्वर मली गोति पीस कर बूझ कर एक कोल ( आधा बर्ष ) प्रमाण लेकर सेवानमक मिलाकर अल्प क अनुपात से सेवन करने से मूत्र के कष्ट को ( मूत्र कृच्छ्ररोग को ) नष्ट करता है ॥ १ ॥

पलादि—

पियेन्मघेन सूक्ष्मलां धात्रीफलरसेन वा । शित्तिवारकधीजं वा तक्रं श्लक्ष्णं च चूर्णितम् ॥ १ ॥

पलादियोग—मधु अथवा आंवले के फल के रस के साथ छोटी इलायची के बीजों के चूर्ण को पान करने से अथवा गुहना के शक के बीजों के श्लक्ष्ण चूर्ण को तर्क के साथ पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

हरिद्रादि—हरिद्रागुहकर्मकं चाऽऽरनालेन वा पियेत् ।

वाऽप्याकर्कोटिकाकन्दं भरोर्यौद्रसितायुतम् । अदमरीं हन्ति चो धिप्रं रहस्यं हि शिवोदितम् ॥

हरिद्रादि योग—हरदी और पुराना गुड़ एक बर्ष लेकर आरनाल ( काजी ) के साथ ( अनुपात से ) पान करना चाहिये अथवा बाँसककोड़े को जड़ का चूर्ण, मधु और शर्करा के साथ मक्षण करना चाहिये । इससे ( इन दोनों प्रकार के योगों से ) अदमरी नष्ट होती है । इसमें विधिप्रथा की ( चकित होने की ) कोई बात नहीं है । यह रहस्य शिवजी का कहा है ॥ १ ॥

योगसारादेलादि—

प्लागोष्ठुरयोश्चूर्णां शिशोर्द्वयं मधुप्लुतम् । मूत्रकृच्छ्रापहं कायं पियेत्तन्मूलवारिणा ॥ १ ॥

छोटी इलायची के बीज और गोसूत्र समभाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर बालकों को देने से उनका मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और इनके जड़ के कवाथ का भी सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोष्ठुरजस्तथा कायो यवचारयुतः शुभः । सर्वकृच्छ्रविनाशाय शिलाजतुयुतोऽथ वा ॥ २ ॥

गोमूत्र का घाय बनाकर उसमें यथासाध का प्रक्षेप देकर शुद्ध शिलाजीन को मिला कर पान करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

खजूररिचूर्णम्—

खजूरामलपीजानि पिप्पली च शिलाजतु । पुलामधुकपापाण चन्दनोर्षाह धीमकम् ॥ १ ॥

— घान्मक शर्करायुक्त पातस्य ज्येष्ठधारिणा ।

अक्षुदाहं लिङ्गदाहं गुदवह्णशकजम् । शर्करारमरिशुलग्न चययं घृष्यकरं परम् ॥ २ ॥

खजूररिचूर्ण—खजूर, आंवले के बीज ( गिरि ), पीपरि, शुद्ध शिलाजीन, छोटी श्लायकी, मुल्हठी, पाषाण भेद ( पर्यरचूर ), द्रवचन्दन, ककड़ी के बीज और धनियां समान ( एक २ भाग ) छकट चूर्ण कर भित्तना हो उसके समान उसमें शर्करा मिलाकर जठाम्बु अर्थात् शालिधान के धावनों के धोवन के अनुपान से पान करने से अग्नौ का और लिङ्ग, गुदा-वह्युण और शुक के दाह तथा शर्करा और अमरी के दाह इन सबको नष्ट करता है और अस्पन्त-बलकारक तथा घृष्य है । (पाठांतर में मूत्र-वीर्य तथा शर्करा रोग में मुल्हठी के कषाय के अनुपान का विधान है)।

शुक्रसादियोग—

शुक्रेश्वरस प्राङ्मासुवित्सहित विषेष्ट । नाशये-मूत्रकृच्छ्राणि सद्य ष्य न संशयः ॥ १ ॥

शुक्रसादि योग—ईस को भाग में भूजकर श्वरस निकाल कर (कोष्ठ में पेट भर ) उसमें मूषक के मल का चूर्ण मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग को शीघ्र नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ २ ॥

कुटजयोग —

विष्ठा गापयसा श्लषग कुटजस्य स्वर्चं विवेत् । तेनोपशान्तयते शिम मूत्रकृच्छ्रं शुश्रावणम् ॥ १ ॥

कुटजयोग—कुटज ( कोरया ) को छाल को गीतुष के साथ मलो भाँति पीसकर पान करने से कठिन मूत्रकृच्छ्ररोग शीघ्र शमन हो जाता है ॥ २ ॥

त्रिकण्टकाद्य घृतम्—त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीहककार्दिकेष्टस्वरसेन सिद्धम् ।

सर्विगुदाधीशयुतं प्रपेय कृच्छ्रारमरीमूत्रविघातहारि ॥ १ ॥

त्रिकण्टकाद्यघन—गोसूर, पर्यटमूल, कुशादि घणवंचमूल, शतावरि, कषयी के बीज, सम भाग ( एक २ भाग ) छेकर बरदबर जितना कसक हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघन और घृत के चौगुना ईस का रस मिला कर घन सिद्ध कर जितना घन हो उसमें भाषा भाग पुराना शुद्ध मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र, अमरी और मूत्रापात रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

शतावरीघृतम्—

पुतप्रस्थं शतावरीयां रसस्वार्धावक पपेष्ट । अजाशीरेण सयुक्तं चतुःप्रस्थान्वितेन तु ॥ १ ॥

द्विगोपुरामृतानन्ताकाशकण्टकिनीरसान् । कुड्वार्धं पृथग्भ्या विष्टैर्षष्टिकुटजप्रपम् ॥ २ ॥

अष्टाफलिनीदुग्धाशिलाजत्वममोदकेः । त्रिसुगाद्याग्नितैरभपलीनाः सपुतं पुनः ॥ ३ ॥

शर्कराद्विपलोपेत् शीघ्रपादसमन्वितम् । इन्ति कृच्छ्राणि सर्वाणि मूत्रदोषारमणकराः ॥

सर्वकृच्छ्राणि हन्त्याद्य मन्त्रद्वयापरीपुत्रम् ॥ ४ ॥

शतावरी घृत—मूर्च्छित घाय का घृत एक प्रस्थ, शतावरि का रस भाषा आदक ( २ प्रस्थ ) दोनों को मिला कर पाक करे जब शतावरि का रस जल जब तक जगमें बढती का दूध का प्रस्थ देख कर पाक करे जब दूध जल जाये तब इसमें बीनों ( जौग-बदा ), गोसूर घृतचि, अनन्तमूल वास ( रादा ) की अद, छोटी छेटी के कषक २ श्लायकी देख कर पाक कर उसमें अडोमपु, सौंठि पीपरि, गरिच, गोगरु, त्रिप्लू, दुग्धा ( दूधी घृही ), शुद्ध शिलाजीन, पाषाण भेद, दाहपीनी, श्लायकी शिवाय भाषा २ दल श्वर कसक बनाकर और मिलाकर पुन पाघव घृत से चतुर्गुण जल मिलाकर यथाविधि सिद्ध कर उतार-सान्तरण शीघ्र का इसमें दो दल शर्करा और घृत जितना हो उसके चतुर्गुण मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग, मूत्रशोथ, अमरी और शर्करारोग को नष्ट करता है यह 'शतावरीघृत' सब प्रकार के कृच्छ्र रोगों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ २-४ ॥

त्रिकण्टपादिगुग्गुल—

१७११

त्रिकण्टकां कथितेऽपि गोपुर पचेत्पाकविधानमुपस्था ।

फलत्रिकण्टयोपयोधराणां पूर्णं पुरेण प्रमितं प्रवधात् ॥ १ ॥

घटी प्रमेहं प्रदरं च मूत्राघातं च कृष्णं च तथाऽश्मरीं च ।

शुकस्य दोषान् सकलांश्च पातासिद्धितं मेघानिव वायुयोगं ॥ २ ॥

त्रिकण्टपादि गुग्गुलु—गोरू का अष्टमांशावशिष्ट सिद्ध क्वाप लेकर उसमें गुद्द गुग्गुलु मिलाकर गुग्गुलु पाक की विधि से पाक करे जब पाप सिद्ध होवे तब उसमें भवरा, हरी, बरेदा, सोंठि, दोवरि, मरिच और नागरमोधा समभाग लेकर इलङ्गण पूर्णकर गुग्गुलु के समान मात्रा में मिलाकर बटी बनाकर सेबन करने से प्रमेह, प्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और सम्पूर्ण शीघ्र दोष तथा अन्यान्य दोषों को भी इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार मेघ को वायु वा वेग नष्ट ( तितर-वितर ) कर देता है ॥ १-२ ॥

सेकलेवौ—विट्वा श्वदप्लाफलमूलिकापिष्टैर्दुर्घास्यीजानि सकाञ्जिकानि ।

आलिप्यमानानि समानि परतौ मूत्रस्य निष्यन्दकराणि सद्यः ॥ १ ॥

सेक तथा छेप विधि—गोरू के फल, मूली, विटनमक, ककड़ी के बीज समान भाग लेकर कांजी के साथ पीस कर छेप की विधि से बस्ति स्थान पर छेप करने से शीघ्र मूत्र की निकालने वाला होता है ॥ १ ॥

वस्तायेरण्डतैलेन श्लिग्धये किंशुकोद्भयैः । श्वेदसेकं मूत्रकृच्छ्रोपदान्तये ॥ २ ॥

बस्तिस्थान को परण्डतैल से श्लिग्ध करके टाक ( पलास ) के फूलों को बधित कर उससे श्वेद देने तथा सिद्धन करने से मूत्रकृच्छ्र शमन होता है ॥ २ ॥

कोप्यासुविट्कवकलेवो वस्तेदपरि कृष्णिणः । त्र्युसीधीजलेवो वा धारा वा किंशुकाग्मसः ॥  
प्वज्जिह्वे ये दुर्घान दान वा चटकाविदाः । मेघनादशिकालेषः श्वेदो वा कर्कटाग्मसः ॥४॥  
पातो वा कोप्यातैलस्य धारा वा कोप्यवारिणः । नयैते पादिका योगा मूत्रकृच्छ्रहरा मताः ॥

भासु ( चूरे ) के मल को जल के साथ पीस कर कुण्ड गरम कर भयवा ककड़ी के बीजों को जल के साथ पीस कर मूत्रकृच्छ्र के रोगी के बस्तिस्थान पर छेप करने से भयवा टाक को इतित कर उसकी अलधारा ( काय धारा ) बस्ति पर देने से, भयवा जिह्व के छिद्र में कर्पूर भयवा चटक पथी ( गबरेवा ) के मल को डालने से भयवा मेघनाद ( चौराई ) की जड़ को जल में पीसकर बस्तिपर छेप करने से भयवा केकडे के विधिवत् बने काय से श्वेद देने से भयवा थोड़-थोड़े गरम तैल भयवा जल की धारा बस्ति पर देने से, ( इनमें से किसी एक के व्यवहार से ) मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ १-५ ॥

चन्द्रकारसं, संपदात्—

प्रत्येक कर्पमात्र स्यात्सूत ताम्रं तथाऽन्नकम् । द्विगुणं राधकं चैव पूरुवा कञ्जलिकां शुभाम् ॥

मुस्तादादिमदूर्ध्वोत्थैः केतकीस्तनजद्रयैः । सहदेव्याः कुमारींश्च पर्यटस्य च धारिणा ॥ २ ॥

रामशीतलिकासौथैः शतवर्षां रसेन च । भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥

तिक्ता गुडुधिकासथ पपटोशोरमाधवी । श्रीगन्ध सारिवा चैर्षं समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥४॥

प्राञ्चालकपायेण सप्तधा परिभावयेत् । तप्तं पोताश्रयं कृत्वा घटवः कार्याश्रणोपमा ॥५॥

अथ चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः । सर्ववित्तगव्यंसीं वातपित्तगदापहः ॥ ६ ॥

चन्द्रकला रस—शुद्ध पारद, ताम्रमरम और अन्नक मरम प्रत्येक एक-एक कर्प शुद्ध गन्धक द्विगुण ( दो कर्ष ) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कञ्जली विधिपूर्वक कर के फिर ताम्र तथा अन्नक भरम की मिलाकर मर्दन कर नागरमोधा, अनार, दूध लुण, केतकी, गोदुग्ध, सहदेवी, कुमारी ( धन कुमारी ), पिप्पपापदा, रामशीतला और शतवारि के स्वरस भयवा क्वाप से ( जिसका स्वरस नहीं निकाल सके उसके क्वाप से ) पृथक्-पृथक् एक-एक दिन विधिपूर्वक भावित करे फिर कुटवी, गुश्चि के सप्त पिप्पपापदा, खस, माषबीलता, श्वेत चन्दन, सारिवा, समान लेकर इलङ्गण पूर्ण कर उपर्युक्त भावित पारदादि द्रव्यों में समान ( जितना भावित रस हो उसके तुल्य समान

मूत्रसङ्को भवेत्तेन पस्तिकुष्ठिरुजाकरः । घातवस्तिः स पित्रेयो म्याधिः कृष्णमसावनः ॥ ६ ॥  
 वातवस्ति के लक्षण—जो अद्यानी मनुष्य मूत्र के वेग को धारण करता है उसको वस्ति स्थान में रहने वाली वायु वस्ति के गुण को अवरोध कर देती है जिससे मूत्र का अवरोध हो जाता है और वस्तिस्थान तथा कुष्ठि में पीड़ा होती है । इसे 'वात वस्ति' जानना चाहिये । यह रोग कष्ट साध्य है ॥ ५-६ ॥

मूत्रातीतमाह—

घिर धारयतो मूत्र त्वरया न प्रयतते । मेढमानस्य मन्द या मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥  
 मूत्रातीत के लक्षण—जो मनुष्य बड़ी देर तक मूत्र के वेग को धारण करता है उसको फिर मूत्र तीव्रता से नहीं आता भयवा मन्द र वेग से मूत्र होता है, इस अवस्था को 'मूत्रातीत' रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

मूत्रजठरमाह—

मूत्रस्य येगेऽभिहिते सधुदापवर्तितुकः । अपानं कुपितो याधुद्वर पूरयेद्मृशाम् ॥ ८ ॥  
 भाभेरधस्ताद्भाभान जनयेत्तीक्ष्णवेदनम् । तम्मूत्रजठरं विद्याद्गुणवस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥  
 मूत्रजठर के लक्षण—मूत्र के वेग को धारण करने से उदावर्त को उत्पन्न कर देने वाला कुपित अपान वायु उदर को अव्यक्त पूर्ण कर देता है उससे नाभि के नीचे आभमान हो जाता है और तीव्र पीड़ा होती है तथा इस आभमान से गुदा और वस्ति का मार्ग रुक जाता है । इसको 'मूत्रजठर' कहते हैं ॥ ८-९ ॥

मूत्रोत्सर्गमाह—

यस्तौ याऽप्यथ घा नाले मणौ या यस्य देहिम । मूत्र प्रवृत्तं सज्जित सरक्त घा प्रवाहताः ॥  
 एवेद्युनैः घनैरक्ष्य सरसं याऽथ नीरजम् । विगुणानिच्छजो म्याधिः स मूत्रोत्सर्गसञ्चितः ॥  
 मूत्रोत्सर्ग के लक्षण—जिस मनुष्य को वस्ति में भयवा मूत्रनाशी ( गिदन ) में भयवा शिरन के गुण में प्रवृत्त दुभा ( निकलना दुभा ) मूत्र रुक जाता है भयवा रुक पूर्वक बहाने से ( रुक लगा कर मूत्रोत्सर्ग करने से रक्त के साथ भीरे र मूत्र निकलता है और उसमें पीड़ा होती है भयवा नहीं भी होती है यह 'मूत्रोत्सर्ग' नाम की म्याधि वायु के विगुण ( विमार्ग ) होने से होती है ॥ १०-११ ॥

मूत्रशयमाह—

रूपस्य ह्यान्तर्दहस्य वस्तिस्थौ पित्तमास्थौ । मूत्रशय सद्व्राहं जनयेत् तदाह्वयम् ॥ १२ ॥  
 मूत्रशय के लक्षण—जितका शरीर सूय तथा कण्ठ ( पकित ) हो गया हो उसके वस्ति स्थान में रहने वाला पित्त तथा वायु कुपित होकर पीड़ा तथा दाह सहित मूत्रशय कर देते हैं इसको 'मूत्रशय रोग' कहते हैं ॥ १२ ॥

मूत्रप्रथिमाह—

अन्तर्वस्तिमुत्से मृत्तः सिधरोऽरुपाः सदसा भवेत् । अरमरीतुण्यरुप्रथिम्यमृत्रप्रथिः स उच्यते ॥  
 मूत्र प्रथि के लक्षण—वस्ति के भीतर गुल पर अरममाय को गोल सिधर, छोटी ली, अरमरी सभान पीड़ा करने वाली प्रथि ( गांठ ) उत्पन्न हो जाती है इसे 'मूत्रप्रथि' कहते हैं ॥ १३ ॥

तत्रागरे उर्क—

मूत्रं घालकफाद्गुष्टं वस्तिद्वारेषु वाद्यमम् । प्रथि कुर्वाण कृत्रेण घर्जेमूत्रं तदाह्वयम् ॥ १४ ॥  
 बात्र और रुक से दूधिन दुभा मूत्र वस्ति के द्वार पर कठिन प्रथि उत्पन्न कर देता है । उससे ( वम प्रथि से ) पिरा दुभा मूत्र रुक से बाहर निकलता है, इसे 'मूत्रप्रथि' कहते हैं ॥ १४ ॥

मूत्रसुक्कमाह—मूत्रितस्य त्रिषं पातो वायुना ह्यममुद्धतम् ।

स्थानाच्छुत्तं मूत्रपताः प्राक्प्रभावा प्रवर्तते । असोदकमनीकालं मूत्रसुक्कं तनुच्यते ॥ १५ ॥  
 मूत्रसुक्क के लक्षण—जो मनुष्य मूत्र के वेग होने के समय मूत्र का अवरोध करके क्षीयप्रण करता है उमदा हीन कुपित वायु से सङ्घन होकर अपने स्थान से मूत्र के प्रथम का उर्क कर उस के सामान निकलता है ॥

॥ १८ ॥ उष्णवातमाह—

श्यायामाप्यातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्पानिलाहृतम् । वस्तिं मेघं शुभ्रं चैव प्रदक्षेत्प्रायवेदघा ॥  
मूत्रं हारिद्रमथवा सरकं रक्तमेव वा । कृष्णरूपमुनः पुनर्जन्तोऽल्पपातं घटन्ति तम् ॥ १७ ॥  
उष्णवात के लक्षण—अधिक व्यायाम करने से, अधिक माग चलने से, अधिक ताप में रहने से, इन सब कारणों से कुपित हुआ पित्त वस्ति में प्राप्त होकर वायु से पिर कर वस्ति, शिरन और गुदा में दाह करता है और इरदी के समान, रक्तवर्ण का अथवा रक्तसहित घट से मूत्र का नीचे की ओर स्राव होता है । उसे 'उष्ण वात' कहते हैं ॥ १६-१७ ॥

मूत्रसादमाह—

पित्तं कफो ह्यापि वा सदन्वेषेऽनिलेन चेत । कृष्णान्मूत्रं तदा रक्तं पीतं श्वेत घन च्चमेत् ॥  
सदाह रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेद्य तत् । कृष्णं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं घटन्ति तम् ॥ १९ ॥  
मूत्रसाद के लक्षण—पित्त और कफ अथवा दोनों जब वायु के संग मिलकर वस्ति में कुपित हो जाते हैं तब कष्ट से रक्त, पीत या श्वेत वर्ण का और पना मूत्र निकलता है । उसमें दाह होता है तथा गोरुधन, शङ्ख तथा चूने के समान श्वेतवर्ण का मूत्र होता है अथवा खया हुआ सब वर्णों का मूत्र होता है । उसको 'मूत्रसाद' कहते हैं ॥ १८-१९ ॥

विद्विषातमाह—रूपदुपलभ्योर्वासाहुवापृत्त शकृघदा ।

मूत्रस्रोतोऽनुपघेते पिद्विषट्ते सदा नरः । विद्वग्ध मूत्रयेष्टृष्ट्राद्विद्विषातं समादिशेत् ॥२०॥  
विद्विषात के लक्षण—रुध तथा दुर्बल मनुष्य वा वात कुपित होकर जब मल को आकृष्ट कर छटा है ( घेर छेता है ) तब वह मलमूत्रवादिनी नादियों में प्राप्त हो जाता है और मूत्र में मिल जाता है जिससे विषा मिला हुआ और विषा के गन्ध वाला बड़े घट से मूत्र होता है । उसको 'विद्विषात' कहते हैं ॥ २० ॥

वस्तिकुण्डलमाह—

द्रुताप्यलक्षणापासैरभिघातात्पपीदनाव् । स्वस्थानाद्दस्तिरुद्रपृत्तं शूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥  
शूलस्पन्दनदाहातो विन्दु विन्दुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु स्रजेदारो संस्तम्भोद्भेदनातिमान् ॥  
वस्तिकुण्डलमाहुस्त घोर शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रथल प्रायो दुर्निवारमगुद्विभि ॥ २३ ॥

वस्तिकुण्डल के लक्षण—अति शीघ्र २ मार्ग चलने से, अधिक उपवास करने से, अधिक परिश्रम करने से, आपात हो जाने से अथवा किसी अन्य प्रकार से वस्ति के पीडित हो जाने से अपने स्थान से हटकर वस्ति शूल होकर ( फूल कर ) गर्भ के समान हो जाती है, जिससे शूल, कम्पन वा संचालन, दाह इनसे पीडित होकर विन्दु-विन्दु करके मूत्र का स्राव होता है और वस्ति को दबाने से मूत्र पारा रूप में बहता है तथा स्तम्भन और पीड़न होता है इससे रोगी दुखी होता है । इसको अति बठिन शूल और विष के समान दुःखप्रद 'वस्तिकुण्डल' रोग कहते हैं । यह रोग प्रायः वायु की प्रबलता से होता है और अगुद्वि अथवा अस्पन्दुदि पुरुषों के लिये दुर्निवार ( असाध्य ) है ॥ २१-२३ ॥

सस्तिपिच्छाघृते घाहाः शूल मूत्रविचर्णता । श्लेष्मणा गौरय घोफः स्निग्ध मूत्र घन सितम् ॥  
इस रोग में जब पित्त का अधिक कोप होता है तब उसमें दाह, शूल और मूत्र में विचर्णता होती है, और जब कफ की अधिकता होती है तब गुरुता, शोथ और स्निग्धता युक्त श्वेतवर्ण का घना ( गादा ) मूत्र निकलता है ॥ २४ ॥

श्लेष्मरुद्विलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिष्यति ।

अविघ्नान्तपिलः साध्यो न च वाः कुण्डलीकृत ।

स्वाहृस्ती कुण्डलीमूत्रे तुण्मोहः श्वास पच च ॥ २५ ॥

साध्यासाध्याता—जिसमें वस्ति का मुख कफ से अवरुद्ध हो गया हो और पित्त बढ़ गया हो वह कुण्डलिका असाध्य है । जिसमें वस्ति का मुख खुला हो और जो कुण्डली की भाँति नहीं दुर्ग हो वह 'वस्तिकुण्डलिका' साध्य है । वस्ति जब कुण्डली की भाँति हो जाती है तब उसमें श्या, मोह और श्वास हो जाता है । यह भी असाध्य है ॥ २५ ॥



**अथ मूत्राघातचिकित्सा ।**

स्नेहस्येदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दद्यादुत्तरवस्ति च मूत्राघाते सयेदने ॥ १ ॥

मूत्राघात चिकित्सा—मूत्राघात के रोगी को प्रथम स्नेहन तथा स्नेहन बराबर विनश्य विरेचन देना चाहिये और पीड़ायुक्त मूत्राघात में उत्तरवस्ति देना चाहिये ।

नलादिकाथ —नलकुशाकादोषुनिष्काफयित प्राप्त सुशीतल ससितम् ।

विद्यतः प्रयाति नियत मूत्राघात सयेदनः पुस ॥ १ ॥

नलादि क्वाथ—नरकट की जड़ कुश की जड़, राठा की जड़ और ईल की जड़ समान भाग लेकर काय बनाकर शीतल करके प्रातः काल उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पीडा सहित मूत्राघात रोग निवृत्त ही नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोधावरयादि—

गोधावरया मूलकयितं घृतसैल्योरसोमिश्रम् । पीत निरुद्धमधिराग्निनसि मूत्रस्य सहातम् ॥

गोधावरयादि क्वाथ—गोधावरी ( गोहरालिया ) के मूल का काय बनाकर उसमें गोशूत तिल का घृत और गाय का दूध मिलाकर पान करने से मूत्रसहात को शीघ्र ही भेदा कर निकालता है ॥ १ ॥

शाक्यपराद—

धीरतद्वृषपृन्दा वामा सदृशरद्वयम् । कुशाद्वय नलो गुग्गुला बकपुष्पोऽग्निमन्यक ॥ १ ॥

मूर्वा पापागभेवृक्ष स्योनाको गोशूरस्तथा । अपामार्गाक्ष कमल माक्षी चेति गणो पर ॥ २ ॥

धीरतवादि विरिषेप शर्करारमरिचकृष्णहृत् । मूत्राघात वातरोगाघ्नाशयेदग्निलानपि ॥ ३ ॥

धीरतवादि क्वाथ—गांवर दूध अथवा सरकण्ठे की जड़, पन्दा ( दूध पर की बांझी ), अरुसा दोनों सहचर ( पीत पुष्पवाली और नील पुष्पवाली ), दोनों कुश ( कुश और टाम ) नरकट, पट्टर इनका मूल, अगस्त के फूल, गनियार की छाल, मूर्वा, पापाग भे, सोना पाठा की छाल, गोक्षरू, अपामार्ग, कमल और माक्षी ये धीरतवादि गण हैं । इन धीरतवादि गण के क्वाथ बना कर सेवन करने से शर्करा रोग, अश्वरी और मूत्रकृष्ण, मूत्राघात तथा सम्पूर्ण वात रोगों को नष्ट करता है ( शाक्यपरे में 'सहचरद्वयम्' पाठ है अर्थात् तीनों प्रकार के नील पीत और श्वेत पुष्प के सहचर ) ॥ १-३ ॥

पिषेत्पिष्टलाजतु क्वाथे गणे धीरतरादिके । रसं दुरालभाया या कपाय वासकस्य च ॥ ४ ॥

इत धीरतरादि गण के काथ में शुद्ध शिवाजीत अथवा जवासे का रस मिलाकर पीने से अथवा अरुसा का काय पीने से भी उपर्युक्त शर्करा रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

दशमूलादि काथ—

दशमूलीशृत पीत्या सगिलाजतुनाकरम् । वातकुण्डलिकाष्टीलावातघ्नौ प्रमुच्यते ॥ १ ॥

दशमूलादि काथ—दशमूल की प्रायेण ओषधियों की सम भाग लेकर काय कर उसमें शुद्ध शिवाजीत और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से वातकुण्डलिका अजीर्णा और वात वरित से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

गोधुरारिकाथ—

पीतो गोवष्टकषवायाः सगिलाजतुकीशिकाः । मूत्रकृष्णान्मूत्रघ्नकाग्नेःसहादिमुच्यते ॥ १ ॥

गोधुरादि काथ—गोबरू के विविध रस बने काथ में शुद्ध शिवाजीत और शुद्ध प्रमुक्त मिला कर पान करने से मूत्रकृष्ण, मूत्रघ्न और मूत्राघात से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

शिवशुक्रकोषा—

सवाकरं च सविनं लीहं सिद्धं शिलाजतु । मिदग्नि मूत्रघ्नरं मूत्राघात च सेदितः ॥ १ ॥

शिलाजतु कोष—शुद्ध शिवाजीत में लीह और श्वेत शर्करा मिलाकर पान से मूत्रघ्न और मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

निरुद्धकारिकोष—

त्रिकण्डकैरुदघ्नसरीभिः विद्धं पयो पातमये च शूटे ।

शुद्धमगाढं सपूतं पयो वा रोगेषु हृत्पूरितु

त्रिदण्डिकादि योग—गोरक्ष, परण्डमूल और शतावृत्ति इन द्रव्यों के द्वारा क्षीरपाक विधि से दूध सिद्ध कर उसमें पुराने शुद्ध का प्रक्षेप देकर संघा करने से वातज दूध नष्ट होता है । अथवा घन और दूध मिलाकर पान करने से भी मूत्रकृच्छ्रदि रोग में लाभ होता है ॥ २ ॥

त्रिदण्डिकादि योग,—

निद्विण्डिकायाः स्वरसं पियेद्वा ताम्रसपुतम् । जले वृद्धमकदकं वा सपौद्रमुपितं निदि ॥ १ ॥  
श्वेतशीतपयोस्तापी चन्दन सण्डुलाम्बुजा । पियेत्सदावरां श्रेष्ठामुष्णपासे सजोगिते ॥ २ ॥

निद्विण्डिकादि योग—छोटी कटेरी के स्वरस को ताम्र में मिलाकर अथवा केसर के पत्रों को पतुपित कर उसमें मधु मिलाकर पान करने से और औटा कर शीतल किया हुआ दूध तथा अणु का भक्षण करने से, तथा श्वेत चन्दन को चावल के धोवन में पिस कर शर्करा मिलाकर पान करने से रक्त सहित उष्णवात नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

शतावृत्तौषधौ—

परीगोक्षुरभूषात्रीमूलानां स्वरस पलम् । मायमेक घण्टारं सौरं मापद्वय तथा ॥ १ ॥

द्विगुण दण्डण चारं सर्वमेकत्र मेलेयेत् । पियेत्तपु विनाशाय मूत्राघाते मुदारणे ॥ २ ॥

शतावृत्तौषधौ योग—शतावृत्ति, गोरक्ष और भुरं भावला को जड़ों का स्वरस मिलित १ पल, यकारार १ माषा, तुम्बरूफल ( शाकूमरिच ) दो माषा, दण्डण खार ( गुरु मुहागा ) दो रथी सब को एकत्र कर कठिन मूत्रापत को नष्ट करने के लिये देना चाहिये ॥ १-२ ॥

मूत्रशोधितचिकित्सा—श्रीणामतिप्रसङ्गेन शोधितं यस्य सिच्यते ।

मैथुनोपरमश्वास्य घृहणीयो विधिमतः । साध्रचूटवसातेल द्वितं चोत्तरवस्तिपु ॥ १ ॥

मूत्रशोधित चिकित्सा—अब अत्यन्त खोपसग करने से निदान से रक्त का क्षाव होने लगता है तब उसे मूत्रशोधित करते हैं । उसमें मैथुन सयथा त्याग देना चाहिये और घृहण किया करनी चाहिये तथा कुचकुट का वसा अथवा तेल को उत्तरवस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

स्वयुत्साचं पूर्णम्—

श्वयुत्साफलमूट्रीकाकृष्णोक्षुरसितारजः । समानमर्धभागानि चैरौषधैश्चैतानि च ॥ १ ॥

सर्वं सम्यक्विमर्षांश्चमात्रां लीड्वा पयः पियेत् । हन्ति शुक्रशयोरधांश्चदोषान्वन्व्यासुतप्रदम् ॥

स्वयुत्साचं पूर्णं—केवाच के फल ( बीज ), मुनक्का, पोपरि, ताल मखाना और शर्करा सम भाग लेकर पूर्ण कर जितना हो उसके आधा गोदुग्ध, मधु और घन इनको समान मिलित लेकर उसमें भली भौति गदनपर एक अक्ष ( वर्ष ) के प्रमाण की मात्रा से साठघर ऊपर से दूध का अनुपान पान करने से शुक्रशय से उत्पन्न होने वाले दोष नष्ट होते हैं और बन्ध्या यदि सेवन करे तो उसे पुत्र होता है ॥ १-२ ॥

शौद्रार्धभागधृतम्—

शौद्रार्धभागः कर्तव्यो भाग स्यात्क्षीरसपियोः । शर्करायाश्च पूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तस्तमम् ॥

स्वयुत्साफलं चैव सपैवेक्षुरकस्य च । पिप्पलीजां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयत् ॥ २ ॥

सदेकस्य मेलयित्वा स्वक्ष्येनोमध्यं च चणम् । तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पियेत् ॥

शौद्रार्ध भाग घन—मधु आधा भाग, गोदुग्ध, गोघन, शर्करा, द्राक्षा, केवाच के बीज, ताल मखाना और पोपरि का चूर्ण प्रत्येक १ भाग एकत्रकर कुछ समय तक चरल में गदन पर इसमें से एक वर्ष भर लेकर चाट कर ऊपर से गोदुग्ध पान करे ॥ १-३ ॥

पुत्रसर्पिं प्रयुञ्जान शुद्धदेशो नरः सदा ।

शुक्रदोषाज्जवत्सर्पिर्नापि मृदाशुजयान् । जयेच्छोणितदोषांश्च यन्ध्या स्त्री गर्भमाप्नुयात् ॥

इस घन को सेवन करने क पहले शरीर शुद्ध कर लेना चाहिये । इसके प्रयोग से सब प्रकार के अत्यन्त कठिन तथा बड़े दुष्ट शुक्रशय नष्ट होते हैं और रक्त दोष या आर्तव सम्बन्धी दोष नष्ट होते हैं तथा बन्ध्या स्त्री को इसके सेवन से गर्भ रहता है ॥ ४ ॥

धान्यगोक्षुराघ घृतम्—

धान्यगोक्षुरकक्षाधककसिद्ध घृतम् हितम् । मूत्राघातेषु कृष्णेषु शुक्रदोषे च दारणे ॥ १ ॥

धान्य गोक्षुराघ घृत—धानियां और गोखरू इनके काण तथा इन्हीं के कक के साथ घृत पाक

की विधि से ( किन्तु छे चतुर्गुण मूत्रित गोघ्न और घृत से चतुर्गुण काष्ठ के द्वारा ) सिद्ध हो के सेवन करने से मूत्रपाप, मूत्रकृच्छ्र और कठिन गुक दोष में लाभ करता है ॥ १ ॥

चित्रकाष्ठ घृतम्—

चित्रकं सारिवा चैव यथा काला च सारिवा । द्राघाविदाहापिप्पल्यस्तथा च विफला मयेत् ॥  
सपैव मधुकं दद्याद्घादामलकानि च । घृतात्क पचेदुतै कश्चैरपसमन्वितै ॥ २ ॥

श्वीरद्रोण जलद्रोण तस्तिद्रमयसारयेत् । शास परिश्रत चैव शर्कराप्रत्यसयुतम् ॥ ३ ॥

गुणाद्यार्या च तत्सर्वं भविमान्परिमिश्रयेत् । ततो मित विभेत्काले यथादोष यथावलम् ॥३॥  
मूत्रप्रथि मूत्रमसादमुष्णवातमसृग्मम् । विद्वेषिघातं निहनयेत्कुरितकुण्डलिमप्यल्मम् ॥३॥

चित्रकाष्ठ घृत—चित्रकमूल, सारिवा लता, बरिभारा, नागबला, कृष्ण सारिवा, द्राघा, गार्हरी की जड़, पीपरि, अंबरा, हर्षा, बहेडा, मुल्हठी और आंवला प्रत्येक एक-एक अंश के प्रमाण से लेकर बल्क कर मूत्रित गोघ्न एक आठक ( ८ प्रत्य ) में मिलाये और उसमें गाय का घृष १ द्रोण और जल एक द्रोण ( ४ आठक ) मिलाकर एक सिद्ध करे जब घृत मात्र दोष रहे तो उत्तार धानकर शीतल होने पर उसमें शर्करा और बशलोचन का पूर्ण एक २ प्रत्य मिलाकर रख दें इस घृत को दोष, बल और अग्नि के अनुसार मात्रा से पान करने से मूत्रप्रथि, मूत्रसाध लष्णावात, रक्तप्रदर, विद्वेषिघात और बस्तिजुण्डलिका ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

सर्पिरेतप्युज्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ।

अन्नदोषे धोनिदोषे मूत्रदोषे सपैव च । प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकाष्ठं सदा कुपै ॥ ६ ॥

इस घृत के प्रयोग से स्त्री शीघ्र ही गर्भधारण कर लती है तथा रक्तदोष, धोनिदोष और मूत्रदोष में इस 'चित्रकाष्ठ घृत' का प्रयोग उद्दिमात् की सदा करना चाहिये ॥ ६ ॥

सदामद्राघं पूर्णम्—सदामद्रारमभिन्मूल शतायर्षाश्च चित्रकम् ।

राहिणीकीकिलापां च श्रीश्वस्त्यूल त्रिकण्टकम् ॥

रत्नकणपिष्टाः सुरा पीता मूत्रपातप्रणाशना ॥ १ ॥

सदामद्राघं पूर्णं—गम्भार की छाल, पाषाणमेद की जड़, शतावरि मूल, चित्रक मूल, कुटकी, तालमराना, कमल बीज, रंग की जड़ और गोखरू की सब भाग लेकर दक्ष्ण पूर्ण कर सुरा ( मद्य ) के अनुपान से सेवन करने से मूत्रपात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

उशीरारिचूर्णम्—

उशीरं घालकं पत्रं कुष्ठं धात्री च मौसली । एका हरेणुकं द्राघा कुङ्कुमं नागकेसरम् ॥ १ ॥

पद्मकेसरकन्दं च कपूरं चन्दनद्वयम् । श्लेष मधुकलाज्जाद्य अश्वगन्धां शतायरी ॥ २ ॥

गोक्षुर कर्कटाय च जाती कङ्कोलचोरकम् । पतानि समभागानि द्विगुणाभ्युत्तगरा ॥ ३ ॥

मत्स्यग्विदकामुष्मां च मातरेव सुभुञ्जितः । पय च रक्षपिचं च पाद्मदाहमद्यम् ॥ ४ ॥

मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं रक्षत्राय च नादायत् । अशीति घातजात्रोगान्विरोपान्मोहनुत्तरम् ॥ ५ ॥

उशीरारि चूर्ण—रास, सुगन्धबाला, शंजपात, कुड, आंवला, गुलश्री, घोरी कलावली के बीज, रेणुका बीज, द्राघा, केसर, नागकेसर पद्मकेसर, चन्दन की जड़, कपूर, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, सोड, पीपरि मरिच, मुल्हठी धान की शील, अश्वगन्ध, शतावरि गोखरू, धात्री के बीज, चन्देली, कङ्कोल, गरिच शीता ( थोरक ) समभाग लेकर ( एक एक भाग लेकर ) चूर्णकर मिटना हो उसके दुग्धुना शूद्रो सत्य मिलाकर गर्दन पर रख देंगे । इसको देवेन शर्करा ( मिठी ) तथा मधु के साथ मात्रा बाल मद्यन करने से श्वेत, रक्षपिच, पाद्मदाह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपात और अस्ती प्रकाश के बाध रोग नष्ट होते हैं तथा विशेष कर वह प्रमेह रोग नष्ट करने में उत्तम है ॥

मासान्ध क्रिया—

अरुणरीमूत्रकृच्छ्रेषु भक्षणं यजिष्या च या । मूत्राघातेषु सर्वेषु कुपोत्तमर्षमाहरात् ॥ १ ॥

मासान्ध क्रिया—अरुणी लता मूत्रकृच्छ्र रोग में कहीं दुर्बल सभी शोषणियों और दिवादे मूत्रकृच्छ्र रोग में प्रयुक्त शक्ती चाहिये ॥ १ ॥

रसबन्धकृष्णकषयश्च कृष्णो घाः पुरीति ॥ मूत्राघातेषु सर्वेषु वा प्रयोक्तव्यो विज्ञानता ॥३॥

वाहकला नामक मो रस मूत्रकृच्छ्र-रोग के प्रकरण में पहले कद, भावे देवे सब प्रकार के मूत्रापात रोग में बुद्धिमान् देव को प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातना ह्योदितशालग्राम मीसानि धन्यमभेयानि मद्यम् ।

सकं पयो ध्वपि मापयूषं पुराणकृष्माण्डफलं पटोलम् ॥ १ ॥

उर्वाद्यम्बूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि ।

यथामल सर्वमिदं च मूत्रापाताहुराणां दितमादिशति ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने रत्नरत्न के शालिषान का चावल, प-वदेशीय ( मरुस्थल के ) जीवों का मांस, मरिचा, तफ, दूध, बहो, उदक का मूत्र, पुराने श्वेत कुष्माण्ड ( पेठा ), परबर, ककड़ी, राजूर, नारियल, तथा ताड़ वृक्ष के मस्तक, ये सब पदार्थ दोषानुसार मूत्रापात के रोगियों के लिये दितकर कह गये हैं ॥ १-२ ॥

विरुद्धानसर्वाणि श्यायाम मार्गसीलाम् ।

रूप विदाहि विष्टम्भि श्यायय धगधारणम् । करीरं धमनश्चापि मूत्रापाती विवर्जयेत् ॥३॥

सब प्रकार के विरुद्ध भोजन, श्यायाम, मार्ग चलना, रुष्ट, विदाही और विष्टम्भी पदार्थ, मधुन, गलादि बेगों का अवरोध, करीर पत्र ग्याना और धमन मूत्रपात का रोगी त्याग देवे ॥३॥

इति मूत्रापातप्रकरणं समाप्तम्

अथाश्वत्थमरीनिदानम् ।

यातपित्तकफैस्तिघ्नशुभ्रार्थी शुक्रजाऽपरा । प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वाः श्वरमर्षं श्युर्यंभोपमं ॥१॥

अश्वत्थमरीनिदान—अश्वत्थमरी ( पथरी ) रोग चार प्रकार का होता है एक वात के बीप से, दूसरा पित्त के बीप से तीसरा कफ के बीप से और चौथा शुक्र दोष से । प्राय करके सब प्रकार के अश्वत्थमरी रोग श्लेष्मा को ही भाग्य करके रहते हैं और उक्त चारों प्रकार के अश्वत्थमरी रोग यम के समान भयङ्कर होते हैं ॥ १ ॥

तत्संप्राप्तिमाह—विशोषयेद्यस्तिगत सद्युक्त मूर्धं सपित्त पवनः कफ या ।

यदा सदाश्वत्थमशुपजायते तु क्रमेण पित्तेश्विष्य रोचनागो ॥ २ ॥

अश्वत्थमरी की सम्प्राप्ति—जब वायु बलित स्थान में कुपित होता है तब बलित में स्थित हुए शुक्र सहित अथवा पित्त सहित अथवा कफ सहित मूत्र को शुद्धा देता है जिससे अश्वत्थमरी रोग हो जाता है । यह अश्वत्थमरी रोग जिस क्रम से गाय के पित्त के खन्ने से गोरौचन हो जाता है वसी क्रम से मूत्र के खन्ने से हो जाता है ॥ २ ॥

तस्यामनेकदोषाभयत्वमाह—

नैकदोषाश्रयाः सर्वास्रवथाऽऽमा पूयलक्षणम् । यस्याध्मान तथाऽऽसन्नदोषो परितोऽतिरुक् ॥

मूत्रे च यस्तगघत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ।

अश्वत्थमरी के अनेक दोषाश्रयत्व—सब प्रकार की अश्वत्थमरी एक दोष के भाग्य से नहीं रहती अर्थात् अनेक दोषों से युक्त होती है और इस अश्वत्थमरी के होने के समय ( पहले ) बलित में अध्मान और बलित के समीप के स्थानों में ( बलित के ऊपर नीचे शिशन तथा अण्डकोशादि में ) अति पीड़ा होती है और मूत्र में बकरे के गन्ध के समान गन्ध होती है तथा मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि होती है ॥ ३ ॥

तासां सामान्यलक्षणमाह—

सामान्यलिङ्गं रुन्नामिसीवनीवस्तिमूर्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तथा मार्गं निरोधिते ॥४॥

सद्युष्यपायासुखं मेहेदृष्ट्य गोमेदकोपमम् । तस्सचोभास्ते सास्रमावासाधातिरुभवेत् ॥५॥

अश्वत्थमरी के सामान्य लक्षण—नामिस्थान, सीवनी, बलित स्थान तथा सिट में पीड़ा होती है, अश्वत्थमरी के मूत्र मार्ग में स्नेह के कारण मूत्र कई धार से होता है और यह अश्वत्थमरी जब मूत्रमार्ग से पृथक् हो जाती है, तब शुखपूर्वक स्वच्छ गोमेद के समान मूत्र होता है । उक्त, अश्वत्थमरी के

संयुमित ( मज्ज ) होने से क्षण भी हो जाता है जिससे रक्त के साथ मूत्र निकलता है और कुम्भ मूत्र वेग में बह करने से अत्यन्त पीडा होती है । ये सब अदमरी रोग के सामान्य लक्षण हैं । ४-५७

। वायुनामाह—

सत्र यासाद्भृशं चाऽऽर्शो दन्तान्खादति वेपथे । मृदाति मेहन नामि पीडयत्यनिषां कण्ठं च सानिह मुद्धति घृष्टं मुहुर्मदति किमुद्युता । श्यामाद्व्याधरमरी चारय श्यावित्ता कण्ठकेरिष च

वातन अदमरी—जिस अदमरी रोग में अत्यन्त पीडा होती है जिससे मनुष्य दौंठ बटकाता है, कौरता है, शिदन को मर्दन करता है तथा निरन्तर नामि को पीदिन करता रहता है और कांसला है उसको वायु सहित मूत्र निकलता है, बार-बार बूँद २ मूत्र त्याग करता है तथा जो अदमरी श्यान अथवा अरुण वर्ण की तथा कटिदार होती है उसे वात के कोप को ( वातज ) अदमरी जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

पित्तजामाह—

पित्तेन दृहाते यस्ति पच्यमान इवोष्मवान् । मज्जातकारिषसंस्थाना रक्षपीता तथाऽदमरी च

पित्तज अदमरी—जिस अदमरी में बरित में दाह होती है और प्राय पकने के समान पीडा होती है तथा ऊष्मा होती है और अदमरी मिलाव को गुठली के समान ( आकार को होती है, तथा रक्त या पीत वर्ण की होती है उसे पित्त के कोप को ( पित्तज ) अदमरी कहते हैं ॥ ८ ॥

कृष्णजामाह—

यस्तिनिरनुघत इव रक्ष्मणा क्षीतलो गुरुः । अदमरी महती रक्षणा मधुपर्णाऽथ वा सित्ता च

कृष्ण अदमरी—जिस अदमरी में बरित में दर्भ चुमाने के समान पीडा, क्षीणता और गुरुता होती है और अदमरी बड़ी विरिष्टल, मधु के वर्ण की अथवा दनेत्र वर्ण की होती है उसे कृष्ण के कोप को ( कृष्णज ) अदमरी कहते हैं ॥ ९ ॥

पता भवति घालानां तेषामेष च भूयसा । आश्रयोपचयादपरवाद्भ्रमद्वयादरण सुजाः ३१०॥

ये तीनों प्रकार की ( वातज, पित्तज, कृष्णज ) अदमरीयां प्राय करके वायुको को होती हैं ( कृष्णपित्त बड़ों को भी हो सकते हैं ) । इनके रदने के आश्रय ( बरित ) और संयय ( पथरी की स्थूला ) दोनों ही अन्तर होते हैं इसलिए उसके पथरी ( बरित पन्थ ) और निवातने में उच्च से नीचेर सुगमता होती है ॥ १० ॥

शुक्रादमरीमाह—शुक्रादमरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।

श्यानात्प्युत्तममुच्छि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः । शोषयाद्युपसंगृह्य शुक्रं तत्रदृक्कारमरी ॥११॥

शुक्रादमरी—शुक्रादमरी पूर्ण बयस्क मनुष्य की ही ( जो मैथुन के योग्य होती है ) शुक्र के धारण करने से होती है । मैथुन द्वारा श्यान से प्युन हुए जिस शीत को जो इष्टपूर्वक या भवादि से रोक केत है ( गिरने नहीं देते ) उस शीत को कुपित वायु शिदन में रहती है वह कैथर मन्त्र-कोश और बरित के मन्थ में सुखा देती है । उसको 'शुक्रादमरी' कहते हैं अर्थात् इसी कारण से शुक्रादमरी होती है ॥ ११ ॥

तत्तथुगमाह—

ब्रित्तिरुद्भृशं चक्षुरपमुष्कभयमुकारिणी । तरयागुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विधीयते ॥ १२ ॥

जिस अदमरी में बरितश्यान में शीवा मूत्रहृष्ट और मुष्कदेह ( मन्त्रकोश ) में शोष होता है और उसमें ( पथरी के ) कटन्म होते ही यदि किसी प्रकार से विन्धन ही जाने न्य शुष्क निकलता है उसे शुक्रादमरी कहते हैं ॥ १२ ॥

शर्करालक्षणाह—

वीहिने त्वयकाशोऽरिमहरमर्षेय च शर्करा । अणुतो वायुना मित्रा सा तग्मिचनुलोमो च निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विचरन्ते । मूत्रकोलाग्निता सा तु सप्त्य कुर्यादुरद्रवात् ॥१३॥

शर्करा के लक्षण—अर्थात् जो पीदिन करने से ( शिर की दर्भने से ) अथवा वेग में बड़ी अथवा शर्करा को जानी है । वह वायु से मित्र होता इन्धे-इन्धे होकर शर्करा के वा से समान वायु के अनुकीम होने से मूत्र के साथ बाहर निकलती है और प्रतिनीय होने से बह जाती है । वह अमरी का क्व मूलपीन में लगी रह जाने से बनकर बनती है अर्थात् ये शर्करा के लक्षण हैं ॥

नानेबीद्रबानाह—

शैब्यैर्द्वं सख्न कारयं कुचिशूलमपारुहति । पाण्डुरव्यमुष्णत्रात च तृष्णा हृत्पीडनं पमिः ॥१५॥  
अरमरी के उपद्रव—दुर्बलता, अह्न की ग्लानि, कृशता कुचिशूल, अरचि, पाण्डु, उष्णवात, तृष्णा, हृदय में पीड़ा, पमा ये सब अरमरी के उपद्रव हैं ॥ १५ ॥

तस्या असाध्यरमहाह—

प्रशुभनाभिषुषण यद्भूमय रजादितम् । अरमरी उपयत्याशु सिकता पार्कराचिता ॥ १६ ॥  
अरमरी के असाध्य लक्षण—जिस अरमरी के रोगी पा नाभिस्थान और अण्डवोंश शीघ्र युक्त और मूत्र का अपरोध हो जाय, पीदा से पीड़ित हो और सिरता (दर्दरा) से युक्त हो उसको अरमरी शीघ्र मार डालनी है अर्थात् अरमरी ये ये असाध्य लक्षण हैं ॥ १६ ॥

अप्सु स्ववद्भास्यपि तथा निषिकासु घटेऽथ वा । कालान्तरेण पक्व स्वाद्वरमरीह भयेत्तथा ॥  
स्वच्छजल अथवा पानी से भरे पटे में इस अरमरी को डाल देने से कुछ समय के पश्चात् बद पद के समान हो जावेगी ॥ १७ ॥

अथ अरमरीचिकित्सा ।

आदौ शूल कुचिदेनो कटौ स्वात् पश्चाद्गोधो जायते मूयमुष्णम् ।

पूर्वैर्लङ्घैररमरीरोगचिह्नं चाथवा पुर्वाङ्गेपजाद्यैश्चिकित्साम् ॥ १ ॥

अरमरी चिकित्सा—रोग के प्रारम्भिक अवस्था में यदि कुचि देण तथा कटि भाग में शूल हो पश्चात् शूल अथवा (धमन) हो जाय और मूत्र उष्ण होवे तो ये लक्षण अरमरी रोग के हैं ऐसा जान कर येच चिकित्सा करे ॥ १ ॥

वाताशमरी—वाताशमरी पूर्णरूपे स्नेहपान प्रदास्यते ॥ १ ॥

वाताशमरी चिकित्सा—वाताशमरी के पूर्णरूप में शी (जब पूर्णरूप प्राप्त हो तभी) स्नेहपान कराना चाहिये ॥ १ ॥

गुण्ठयादि क्वाथ—

गुण्ठयग्निमन्थपापागभिच्छिद्रप्रवरणक्षुरैः । अभयारग्वधफलैः क्वाथ कृत्वा विचक्षण ॥ १ ॥

रामटपारलवणचूर्णैः दशम विचक्षर ।

वाताशमरी हन्ति कृष्ण माघमनेक्ष तद्रुज्ज । कट्युरगुदमेद्वर्षं चङ्गुगर्थं च मारुतम् ॥ २ ॥

गुण्ठयादि क्वाथ—सोठ, गनियार, पापागभेद सखिजन की छाल, वरुण की छाल, गौखरु हरी और अमलभास के फल का गुणा इनको समान भाग लेकर क्वाथ बना उसमें शुद्ध हींग, यवाखार और सेधा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वाताशमरी, मूत्रकण्ठ, मन्दाग्नि से होने वाली अन्य प्रकार की पीड़ाये और कटि, ऊरु, गुणा शिश्न तथा वरुण में स्थित वात इन सबों को नष्ट करवा दे ॥ २-२ ॥

वरुणक्वाथ—वरुणस्य स्वच ध्रेष्ठा गुण्ठीगोक्षुरसयुताम् ।

क्वाथयित्वा श्यत सस्य ययक्षारगुडाचितम् । पीत्वा वाताशमरीं हन्ति चिरकालानुयन्निचनीम् ॥

वरुणादि क्वाथ—वरुणा की उत्तम छाल, सोठ और गोक्षरु सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और पुराने शुद्ध का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरानी वाताशमरी नष्ट होती है ॥ २ ॥

धीरतर्वादि—

धीरतर्वादिकः क्वाथ पूर्वोक्तो वातशमरीम् । सद्यो हन्ति यवक्षारगुडयुक्तो न सदाय ॥ १ ॥

धीरतर्वादि क्वाथ—पूर्व कथित धीरतर्वादि गण (गांडर दूब, बन्दा (बाही) राड़ा की जड़ धोनों सहचर कहीं २ तीना सहचर का पाठ है, कुश की जड़, काम की जड़, नरकट की जड़, पट्टर की जड़, अगस्त को छाल, गनियार, मूर्वा, पापागभेद अरु. गौखरु विचिक्षा, कण्ठ और मादी) की औषधियों को समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और पुराना शुद्ध का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र तथा निश्चित ही वाताशमरी को नष्ट करता है ॥ १ ॥

चारान्यव्यागुं पेयाथ कषयापाणि पर्यासि च । भोजनार्थं प्रयोज्यानि वाताशमरीक्षुवां मृणाम् ॥

वाताशमरी में पथ्य—सब प्रकार के क्षार (यवाखारादि), यवागु, पेया, कषाय तथा धीरत्पाक ये सब भोजन के लिये वाताशमरी के रोगी को देना चाहिये ॥ २ ॥

—पिच्छामरी—

पित्ता पापागभित्वाय सशिलाजतुसकरम् । पिच्छामरीं निहन्त्याश्च बुधमिन्द्राणानिर्यथा ॥  
पिच्छामरी चिकित्सा—पाषाण भेद के बराब में गुद्र शिलाजोठ चूर्ण का प्रयोग देकर पान करने से पिच्छामरी को शोथ रस प्रकार नष्ट करना है जिस प्रकार शिथली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ १ ॥

—कफामरी—

कफो निपीतः सक्षारः शिशुत्वावस्थापद्यो । कफजामरमीं हन्ति शकाद्यनिरिव ममम् ॥१॥  
कफामरी चिकित्सा—सर्दिजन और कण की छाल को समान लेकर बराब कर उसमें पषाण का प्रयोग देकर पान करने से कफामरी को रस प्रकार नष्ट करना है जिस प्रकार विजली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ १ ॥

—शुक्रामरी—

शुक्रामरयो तु सामान्यो विधिरमरिनादानः ॥ १ ॥

शुक्रामरी चिकित्सा—शुक्रामरी रोग में अमरी का नष्ट करना ही सामान्य विधि है अर्थात् अमरी नाशक किया करनी चाहिये ॥ १ ॥

—कुम्भाण्डरस—

पषाणगुणोन्मिध्रं पियेषुप्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविषधन्त्रं शुक्रामरिनिनाशनम् ॥ १ ॥  
कुम्भाण्ड रस—श्रेष्ठ कुम्भाण्ड ( पेठा ) के रस में कषाधार और पुराना गुद्र मिलाकर पान करने से मूत्र विषय रोग और शुक्रामरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

—शतावरी—

शतावरीमूलरसो गन्धेन पयसा समः । पीतो निपातयायाश्च अमरीं विरजामपि ॥ १ ॥  
शतावरी रस—शतावरी के मूल का रस समान भाग गाय के दूध में मिलाकर पान करने से पुरानी शुक्रामरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

—कुटमादिबोग—

पिपसाः कुटज वृक्षा पष्यमन्नं च खाद्यतः । निपत्तव्यधिराद्वय निमित्तं मेदुर्कारत ॥ १ ॥  
कुटमादि बोग—कीरया की छाल का पूर्ण दही के अनुपान से सेवा करने से तथा पष्य भ्रष्ट ( अमरी रोग में जो पष्य भ्रष्ट कहे गये हैं वे भ्रष्ट ) भोजन करने से शीघ्र धिरन की शर्करा निश्चित ही गूढ हो जाती है ॥ १ ॥

—कुटजवृक्ष—

अपि च कुटजमूल धेनुवृष्यमुपिष्टं पियुमित्तमवलीढं पातयपरमरीकाम् ॥ १ ॥  
कुटज वृक्ष—कीरया की छाल को गाय के दही के साथ पीस कर बरक बना कर एक भ्रष्ट ( पशु कर्ष ) प्रमाण की मात्रा से चाटने से अमरी गिर जाती है ॥ १ ॥

—परण्डारिक्कः—

गार्धर्हस्तवृक्षीव्याघ्रीगोश्रुकेष्टराय । मूलवृक्षं विचेदना मपुरेणारमभेदनः ॥ १ ॥  
परण्डारिक्क—परण्ड, बड़ी बटेरी, छोटी बटेरी, गोग्रक, ताण्डमगना सेकट बरक बना कर मधु या दही के अनुपान से सेवा करने से अमरी रोग नष्ट होती है ॥ १ ॥

—पाषाणभेदादि कण—

पाषाणभित्कणो ह्यरकोद्वृक्षज्जाह्वयद्वरकमूलवृत्ताः कषायः ।  
वृक्षा मुक्तो अपति मूत्रविषयशुक्रामरामरीगवि च शक्यता सप्येताम् ॥१॥  
पाषाण भेदादि कण—पाषाणभेद, कण, गोग्रक, परण्ड, छोटी बटेरी और ताण्डमगना इनके मूल भाग को समान लेकर बराब कर उसमें दही का प्रयोग देकर पान करने से मूत्र विषय, पण शुक्रामरी और कफ रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

—अमरी—पुष्टेपकुवयामपुकारमभेदहीमो ककुप्राह्वयकादवृक्षैः ।

—अमरी—पुष्टेपकुवयामपुकारमभेदहीमो ककुप्राह्वयकादवृक्षैः ॥ १ ॥

—अमरी—पुष्टेपकुवयामपुकारमभेदहीमो ककुप्राह्वयकादवृक्षैः ॥ १ ॥

एरण्डमूल समभाग लेकर कांच बनाकर उसमें शुद्ध शिलाजीत तथा शबरा वा प्रक्षेप दैकर अश्वरी और मूत्र कृष्ण में पीना करने को वेना चाहिये ॥ १ ॥

शिमूलादि—काषाभ शिमूलाद्य कटुप्लोश्मरिपातनः ।

शीरासगुर्वाहिशिगामूल वा तण्डुलागुना ॥ १ ॥

शिमूलादि पाप—सदिना के जड़ का काष बनाकर कुछ लप्प रश्ते २ पान करने से अश्वरी गिर जाती है अथवा मयूरशिवा के मूल को चाबल के धोवन के साथ पीसकर पान करने तथा केवल दूध और अन्न भोजन करने से अश्वरी नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

शिलाजत्रवादि—

अश्वरी चारमरीकृष्णैः शिलाजत्र समाधिकम् । यवचारं गोशुर च पावेद्वा चारमरीहरम् ॥ १ ॥

शिलाजत्रवादि योग—शुद्ध शिलाजीत को मधु व अनुपान से सेवन करा से अश्वरी में तथा अश्वरी सहित मूत्रकृष्ण में लाभ होता है अथवा यवाहार और गोशरु इके चूर्ण को मद्यन करने से अश्वरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

प्रसुतीबीजादि—प्रसुतीबीज पयसा पीरषा वा नारिकेरज कुसुमम् ।

द्वयमूत्रशर्करापात्र भवति सुखी कतिपयैद्विषसे ॥ १ ॥

प्रसुती बीजादि योग—कड़को के बीजों को अथवा नारियल के फूलों को दूध में पीसकर पान करने से कुछ ही दिनों में मूत्रापात्र और शर्करा का रोगी सुखी हो जाता है ॥ १ ॥

राशमातण्डाद्गोपालकं वादि—

गोपालककण्ठीमूल पिष्ट पर्युपिताम्भसा । पीयमानं शिराश्रेण पातपरश्वरमरीं हठात् ॥ १ ॥

गोपाल कण्ठवादि योग—गोपाल कण्ठी ( गोपाल कांठकी ) को जड़ को पर्युपित जड़ ( बासी पानी ) के साथ पीस कर पान करने से तीन रात में ही अश्वरी को बलपूर्वक नष्ट करता है ॥ १ ॥

शृङ्गेरि शृङ्गेरिवादि योग—

शृङ्गेरिपयचारपण्याकाशीयकान्वितम् । आज वधि मिनपुप्रामश्वरीमाशु पातयेत् ॥ १ ॥

शृङ्गेरिवादि योग—सोठ, यवाहार, इरां और वाली अगर समभाग लेकर चूर्णकर बकरी के दही के अनुपान से सेवन करने से बड़ी दुर्ग कठिन अश्वरी को भी शीघ्र भेदन कर गिरा देता है ॥

अर्कपुष्पीकल्क—गन्धेन पिष्टा पयसाऽर्कपुष्पी निपीयमानाऽनुदिन प्रभाते ।

विदार्य पीयेणानिञ्जेन तीयामप्यश्वरीं वा कुस्ते सदाहाम् ॥ १ ॥

अर्कपुष्पी कल्क—अर्कपुष्पी ( श्वेत पुष्प का हुरदुर ) को गाय के दूध के साथ पीसकर प्रतिदिन प्रातः काल पान करने से यह योग अपने प्रभाव से तीव्र-दाहयुक्त अश्वरी को भी तोड़कर निकाल देता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकाचूर्णम्—

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं मात्सिकसंयुतम् । अविच्छिरेण सप्ताहं पियेदश्वरीभेदनम् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादिचूर्ण—गोशरु के बीजों का चूर्ण मधु के अनुपान से चाटकर पक्षाघात भेदी का दूध पान करने से एक सप्ताह में अश्वरी का भेदन कर गिरा देता है ॥ १ ॥

हरिद्रादियोग—

य पियेद्दजनीं सम्यक्सगुह्यं गुणवारिणा । तस्याऽऽशु चिरकृदाऽपि पात्यस्तं भेदशर्करा ॥ १ ॥

हरिद्रादि योग—ओ मनुष्य हस्ती के चूर्ण और पुराने शुद्ध को मलीभोति मिलाकर बांजी के साथ पान करता है उसकी अत्यन्त पुरानो मैदू शर्करा भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिलादिहारयोग—

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसम्भव । चारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्वरीषु च ॥ १ ॥

तिलादिहार योग—तिल, चिचिदा, कदली ( केला ) पलाश और यव इनके हार को भेदी मूत्र के साथ पान करने से शर्करा तथा अश्वरी में लाभ होता है । ( प्रत्यान्तर में भेदी के दूध के साथ पान करने का विधान है ) ॥ १ ॥



विद्यारः—पारो निपीतस्तिलनालजातः समापिक चौरयुतद्विरात्रम् ।  
हनपरमरीं तिन्नुविमिधितं वा निपीयमानं रुचक प्रयानात् ॥ १ ॥

निलम्बार योग—तिलनाल के द्वार भी मधु और दूध के साथ हीन राग ( हीन गन्ध ) पान करने से भद्रमरी नष्ट होती है कथना चौथानमक गिलाकर रुचक ममक को पानपूर्वक पान करने से भी भद्रमरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

वल्गादिपुनम्—

वल्गास्य तुलां इल्गां जलद्रोणे विपाचयेत् । पादक्षेपं परिस्त्राय घृतप्रस्य विपाचयेत् ॥ १ ॥  
घारुणी कदली विषयं तृणज पद्मामूलकम् । अमृता स्वरमज हय बीजं च घणुसरस्य च ॥ २ ॥  
नातपर्वा तिलहारः पलाशहार एव च । यूपिकायाश्च मूलाणि कापिकाणि समापयेत् ॥ ३ ॥  
अस्य मात्रां विवजन्तुदशकालाचयेत्तथा ।

जीण चानुपियेत्पूर्वमजीर्णं न तु मरुतुना । अरमरीं चार्करां चैव मूत्रहृत्पु च नातपत् ॥ ४ ॥

वल्गादि पुन—वल्गा भी छाल सी एक छवर काटकूट कर एक द्रोग ( ४ आदक ) बल में पाव करे, चतुष्पात्रावशेष साथ कर उतार-दानकर वसमें मूत्रिद्रुत गोशूठ एक प्रस्य तथा मादरि की जक, कल भी जग, पेज भी छाल, तुणपचमूल भी पाचो ओषधियां, गुडूनि, गुडू निगानीज, कदली के बीज, बीस की जक, तिल का द्वार और पलाश का द्वार नूरी भी मद्, एव एक वर्षे केपर करक कर गिलाकर मिक कर, उस घृत की देशकाल, हय, बल आदि का विचार कर मात्रा से यदि मीजन पर युक्त हो तो नही के पानी से पिछावे और अजीर्ण हो तो दही का पानी नही पिछावे । इसके सेवन से भद्रमरी, चार्करा और मूत्रहृत्पु नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

पाषाणभेदपाक —

अरमभेदात्प्रस्यमेक चूर्णितं षड्गालितम् । गम्ये हुरघाठके विषया पाचयेन्मृदुवद्विना ॥ १ ॥  
दुर्गां सम्मर्दयेत्सावघावसूनवरं मवेत् । एता छषङ्गमगधा मष्टीमप्यमृताऽमया ॥ २ ॥  
कौश्ली श्वप्टा कृपकं कारपुष्पा पुननवा । वापशूको विटङ्गी च मांसीसस्ताङ्गुलात्पटम् ॥ ३ ॥  
पद्म लोहं तथाऽङ्गं च कपूरं चर्पटं सटी । पत्रभरेसरं त्वषच संशुद्धं च गिलाजतु ॥ ४ ॥  
पृथग्घर्षणं पूर्णं चूर्णितं विठ-करं । मार्घप्रथमिता प्राद्या बुभ्ये चै छडतां मयेत् ॥ ५ ॥  
सर्वं तद्विच्छिपत्तत्र स्वाङ्गुशीतलतां नयत् । मधुनः प्रस्यक दद्यात्सिन्धुममाण्डे विमिच्छियेत् ॥ ६ ॥  
कर्पायं अथवाप्रातरलीकनं शैलादिकं त्यजेत् । पञ्चमरीभेदनां म्यामूत्रहृत्पु चैव तथा ॥ ७ ॥  
शुक्राघातात्प्रमेहाद्यं नादाये-मधुमेहताम् । अधोगं रात्रिपिंसं च वस्तिङ्कापगर्भं तथा ॥ ८ ॥  
सीमारमरीपरीतामां विरोधेण हितं द्वि सत् । प्रथमादिना विरचिन प्यवमाय विषदितम् ॥ ९ ॥

पाषाणभेदपाक—पाषाणभेद की मूत्र-चूर्ण कर करके में छानकर पर प्रस्य केरे और एक आदक ( ४ प्रथ ) गाय के दूध में गिलाकर गर २ अग्नि पर पाक करे और तब तक पलाता रहे जब तक की वह गाढ़ा न हो जावे । गाढ़ा होने पर ( सींग हो जाने पर ) वसमें छोटी बलादकी के बीज, लीग, वीरि, जेटीमधु, गुडूनि, दही ( तुण्ड गोलक, अरुणा, तपेय, मूत्रपुरना, जेवायार, तिलभी ( मंयवत. इत्यायग अर्थ करना उचित है । ) जरायांभी, शिन्धुन की छान, इन ओषधियों के चूर्ण को एक २ पल लव और बंगमाय, लोरमय, अक्षरमय, गुडहृत्पु, विषवापदा, कपूट, तेजान मागरेसर, दानबीनी और गुड ( निगानीज के चूर्ण की वृत्पु २ आया २ पल केकर तथा चैव शर्करा आघारस्य केकर वास्तुंज दुग्धपाक ( अरुणह पाक में ) विष्णु कर मूत्र कर उतार केरे और स्वांग शायत्र होने पर वसमें एक पल मधु विष्णुकर रस मिक अथवेद पाक को सितव वाच में रख केरे । इसको आधा वर्ष के प्रमाण को माया से मीजन करे और लोचन वन्ध तथा ठेग आदि का सेवन त्याग केरे तो शक्ति प्रकर की भद्रमरी नष्ट होती है । यह मूत्रहृत्पु, वापशू, मूत्रपाण, प्रोए, कपुमेह अथवाभी वृत्पु २ विष्णु तथा गुडि के रोग की मष्ट करना है तथा लीज भद्रमरी से युक्त रीतियों के लिय विद्वेध शिन्धुकर है । एव सींग को प्रथम दिन शक्ति रचकर अरुण की विरचिन विष्णु कर ( एकाया वा ) ॥ १-९ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽरी पापाणवज्जरस —

शुद्धसूतं त्रिधा गन्धं द्वावै रयेतपुनर्नवीः । मर्धयित्वा दिन राण्ये हृष्ट्या सद्भूपरे पचेत् ॥१॥  
पापाणभेदपूर्णं तु समयुक्तं द्विमापकम् । भक्षयेदरमरीं हंसि रसः पापाणवज्जकः ॥ २ ॥

गोपालकपर्फीमूलफायं सधनु पाययेत् ॥ ३ ॥

पापाणवज्जक रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध गन्धक तीन भाग लेकर दोनों की कज्जली कर द्येन पुनर्नवी के रस के साथ दिन भर मर्दन कर 'भूपर यत्र' में रख कर पकावे । शीतल होने पर इसके सम भाग पापाणभेद या पूर्ण मिलाकर दो भाग के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से यह 'पापाणवज्जक रस' अमरी रोग को नष्ट करता है । इसके साथ अनुपान में गोपाल ककड़ी के मूल का काय देना चाहिये ॥ १-३ ॥

त्रिविक्रमरस --

ताम्रमरम त्वजाधरे पाप्यं तुष्ये धृते पपेन । तत्तार्धं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम् ॥१॥  
निगुण्डवत्पद्मैर्मर्धं दिनं तद्गोलमाहरेत् । वामैकं घालुकायन्त्रे पाप्यं योज्यं द्विशुभ्रकम् ॥  
धीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् । रसत्रिविक्रमो नाम्ना सिकतां धारमरीं जयेत् ॥३॥

त्रिविक्रम रस—ताम्रमरम एक भाग लेकर बररी के दूध और इसके समभाग घृत मिलाकर अग्नि पर पाक करे, परिपक्व हो जाने पर निकाल कर जितना हो उसके समान शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक पूरक २ लेकर कज्जली बनाकर ताम्र में मिलाकर निगुण्टी के स्वरस के साथ दिन भर मर्दन कर गोलक (गोला) बनावे । पुनः उस गोलक को 'घालुका यत्र' में रख कर एक पहर तक पाक करे । स्वांगशोध होने पर निकाल कर दो रत्नी के प्रमाण की मात्रा से सेवन करे । बिजौरि नीबू के मूल को जल के साथ पीसकर अनुपान देवे तो इस 'त्रिविक्रम' नामक रस से सिक्ता और अमरी रोग नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

अथ पथ्यम् ।

कुलिस्था मुद्गगोधूमा जीर्णशालियवा हिता ।

धन्यामिय सण्डुलीयं जीणधूमाण्डक फलम् । आद्रकं वावशुकुषं पथ्यरमरिरोगिणाम् ॥१॥

पथ्य—कुलभी, मूग, गहू, पुराने शालिधान के चावल, यव, भवदेशीय जीवों का मांस, चौराई के साग पुराने दवेत कूमाण्ड (पेठा) के फल, अद्रक, यवात्वार ये सब अमरी के रोगियों के हितकर पथ्य हैं ॥ १ ॥

इति अमरीप्रकरणं समाप्तम्

अथातो मेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि भ्राम्योदकानुपरसा पयांसि ।

नवाक्षपानं गुदपैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृष्णं सधम् ॥ १ ॥

प्रमेह निदान—अत्यन्त सुखपूर्वक अधिक बैठे रहने से, सोये रहने (परिभ्रम रहित होने से), अधिक दही पाने से, भ्राम्य जीवों (ककरी आदि), जल जीवों (मत्स्यादि), और आनूप जीवों (जल के निनट रहने वाले चक्रवाकादि) के मांस अधिक भक्षण करने से दूध अधिक पीने से, नये अन्न, जल और शुद्ध बिकार (चर्करा मिठाई आदि) तथा सब प्रकार के कफकारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से प्रमेहरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तत्रातरे—मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रोपास्तथैव च ।

मूत्रदोषाश्च ये चाऽपि यस्तौ चैव भवन्ति हि ॥ २ ॥

मूत्राघात, प्रमेह, शुक्रोप तथा मूत्रदोष अथवा ओ २ अन्य दोष (रोग) बरित में होने वाले हैं ये सभी उपयुक्त कारणों से उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् इन सब रोगों के भी ये ही कारण हैं ॥२॥

सम्प्राप्तिमाह—मेदश्च मांसं च क्षारीजं च मलेदु कफो यस्मिन्सत् प्रदूष्य ।

॥ करोति मेदान्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ ३ ॥

स्त्रीमेतु दोषेष्ववहृष्य वस्तौ घातून्ममेहान्कुस्तोऽनिलम् ॥ ४ ॥

प्रमेह की सम्प्राप्ति—बलिन स्थान में स्थित कुपिन कफ मे, मांस तथा घातोरिक क्लेश (इस भाग) को दूषित कर कफ प्रमेह की उत्पन्न करता है और वृणता से (उर्ध्वशीर्ष तथा अन्य स्थानों से) बड़ा हुआ बलिन में स्थित पित्त मे—मांसारिकों को दूषितकर पित्त प्रमेह को उत्पन्न करता है । इसी प्रकार क्लृप्त वायु अन्य दोषों (कफ-पित्त) के क्षीण होने पर धातुओं (वसा-मज्जादि) को बलिन में रींच कर प्रमेहों (वातिक प्रमेहों) को उत्पन्न कर देता है ॥४-४॥

क्रमेण साध्यामाध्यारवमाह—

साध्याः कफोत्था वृषा पित्तजा एव याप्या न साध्या पयमाहनुष्काः ।

समक्रियावाह्विपमक्रियावा महाराययावाश्च यथाक्रमं ते ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यता—प्रमेह २० प्रकार का होता है, जिसमें दस प्रकार के प्रमेह होते हैं वे कफज (कफबोधनय) समक्रिय होने से साध्य हैं क्योंकि इसके दोष (कफ) और दूष्य (मेहरादि धातु) दोनों एक ही क्रिया (कड़-तिकादि क्रिया कषावादि) से उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये कफज दस सुसहाय्य है । पित्त प्रमेह इस प्रकार के होते हैं वे (पित्त के बोधक) विषम क्रिया होने से साध्य है क्योंकि इसके दोष (पित्त) और दूष्य (मेहरादिधातु) दोनों की क्रिया विषम है (जिस क्रिया से पित्त उत्पन्न होता है उससे मैग्नि में वृद्धि होती है) अर्थात् एक से दूसरे में समता नहीं होती है इसलिये पित्त बहुमाध्य है । वायु प्रमेह चार प्रकार के होते हैं वे (वात के बोध से होते हैं) मदारयकारी (विनाशकारी) होने से असाध्य है क्योंकि वायु मज्जादि गम्भीर धातुओं का अपकषण करने वाला भ्रातृ एवं क्षीणकारी होने के कारण विनाश कर देता है इसलिये चार प्रकार का मात्र असाध्य है ॥ ५ ॥

तत्रान्तरे—

ज्यरे सुवर्णद्वीपय प्रमेह सुखदूष्यता । रक्तगुहमे पुराणस्य मुतमाध्यस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

पुर रोग में दोष और ऋतु दोनों समान हों, प्रमेह रोग में दोष तथा दूष्य दोनों समान हों और रक्त शुभ्र में पुराणस्य (बहुत दिन का पुराना) हो तो ये सुख साध्य क लक्षण हैं । ६॥

न त्रान्तरे वातघातप्रवश्य साध्यवमुत्तम्—

या घातमेहान्प्रति पूषमुष्का घातोयवणानां विहिता क्रिया सा ।

घातुर्दि मेहेष्वतिक्रितेषु करोति मेहाप्रति मारित विन्ता ॥ ७ ॥

जो क्रिया वात प्रमेहों के लिये पहले कही गयी है वही क्रिया वातोत्पन्न प्रमेहों के लिये करनी चाहिये । वायु मेह को अति क्लृप्त (क्षीण) करने प्रमेह करती है उस मेह के प्रति (वातोत्पन्न प्रमेह को) विन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥

प्रमेहे दोषदूष्यवर्गमाह—

कफ सपित्तः पयनस्य दोषो मेहाऽख्यशुभ्रान्मुवसाहृषीकाः ।

मज्जा रसीका पित्तिलं च दूष्य प्रमेहिर्न विधातिरेष मेहा ॥ ८ ॥

प्रमेह दोष दूष्य वर्ग—प्रमेह रोग में कफपित्त और वायु ये दोष रह जाते हैं और मैग्नि, रक्त, दूध, वसा (शरीरक क्लेश) वेशादि) वसा रसीका, मज्जा रस, और तथा मांस ये सब दूष्य रहे जाते हैं । इन्हीं से बीत प्रकार के पुराण से संभवा निमित्त क्रिया है कि मेह २० ही होते हैं । अधिक नहीं होते ॥ ८ ॥

तत्रान्तरे दूष्यतांमह क्लृप्तः—

वसा मांसं शरीरस्य क्लेशः दूष्यं च क्षीणितम् । मेहो मज्जाहृषीकाः प्रमेहे दूष्यसंप्रदा ॥

वसा, मांस, शरीर का क्लेश (वेशादि), दूध (शीर्ष) रक्त, मज्जा, रसीका, और ये सब प्रमेह रोग में दूष्य माने गये हैं ॥ ९ ॥

दूरंरुचमर—

बृन्तादीनां महाक्लृप्तं प्रादुर्भूतं पालिपादयोः । दाहजिह्वामा रेंदे सुदृश्याहारस्य च जायते ॥

प्रमेह के दूरंरुच—जब प्रमेह रोग होने को हीरा है तब ब्राह्मे वरुके रोग मारि (शरीर-मेह गला, ठाण्ड, काँ और मिठा) ये मूल का अधिक हीमा, शर-पौध में दाह शरीर में गिनपन

(चिन्नारै), तथा और मुराका मधुर होना और चकार (च) ग्रहण से केशों का अटिल होना, मस का अधिक बढ़ना ये सब होते हैं ॥ १० ॥

सामान्यलक्षणमाह—सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूतापिलमूत्रता ।

प्रमेह के सामान्य लक्षण—सब प्रकार के प्रमेहों के सामान्य लक्षण यही है कि मूत्र अधिक तथा मलिन (विहृत) होता है ॥

पारणभेदात्सार्वभेदमाह—दोषद्वय्याविशेषेऽपि तासंयोगविशेषतः ॥ ११ ॥

मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते । सम्पन्नभेदं परीषयाऽऽदी क्रिया कार्या मित्ययैः ॥ १२ ॥

प्रमेह के भेद—दोष और दूष्य में विशेषता नहीं होने पर भी उनके संयोग विशेष से और मूत्र के वर्णादि भेद से प्रमेहों में भेद की बरूपता भी जाती है अर्थात् भेद हो जाता है इनलिये श्रेष्ठ वैद्य को पहले भली भौनी भेद की परीक्षा करके तब क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये ॥

दकमेहस्तथा चेष्टः सान्द्रमेहः सुरामिधः । पिष्टप्रमेह शुष्काण्यः सिकता शीतकः शनै ॥  
लालामेहस्तथा पारो नीलमेहोऽथ कालकः । हारिद्रमेहमाक्षिष्ठी रक्तमेहस्तथाऽपरः ॥ १४ ॥  
चोदशोऽथ पसामेहो मज्जामेहश्च कीर्तितः । चौद्रमेहस्तथा हस्ती मेहानां विंशतिः क्रमात् ॥

प्रमेहों के नाम—दक मेह (उदकमेह), श्शुमेह, साद्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, सिक्तामेह, शीतमेह, शीतमेह, लाला मेह, शार मेह, नील मेह, काल मेह, हारिद्रमेह, मक्षिष्ठी मेह, और रक्त मेह, ये सोलह और बसामेह, मज्जा मेह, शौद्र मेह तथा हरिन मेह, ये मिलकर क्रम से २० प्रकार के प्रमेह बने गये हैं । (इनमें पूर्व क्रम से उदकादि दस वक्रज, शारादि छे पिचज और बसादि चार वातज मेह मानना चाहिये) ॥ १३-१५ ॥

उदकमेहादयो दश कफजा, तत्रोदकमेहमाह—

अच्छु यद्दु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् । मेहरयुदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥ १६ ॥

उदक मेह के लक्षण—जिस प्रमेह में स्वच्छ, मात्रा में अधिक, श्वेत वर्ण का, शीतल, गूथ रहित, जल के समान मूत्र होवे उसे 'उदक मेह' जानना चाहिये ॥ १६ ॥

शुभ्रमेहमाह—हृषो रसमिवात्यर्थं मधुर चेष्टमेहतः ।

शुभ्रमेह के लक्षण—जिम मेह में किञ्चित् आविल (मलिन), पिच्छिल (चिकना) और ईल के रस के समान अल्पम मधुर मूत्र होता है उसे 'शुभ्रमेह' कहते हैं ॥

साद्रमेहमाह—सान्द्रीभवत्पर्युपित सान्द्रमेहेन मेहति ॥ १७ ॥

साद्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र पर्युपित होने पर (एक दिन रात रख देने) पर घन (गाढ़ा) हो जावे उसे 'साद्रमेह' कहते हैं ॥ १७ ॥

सुरामेहमाह—सुरामेही सुराणुष्यमुपर्यच्छमघो घनम् ।

सुरामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र सुरा के समान ऊपर स्वच्छ और नीचे घन (गाढ़ा) होता है (नीचे मूत्र खम जाता है) उसे 'सुरामेह' कहते हैं ।

पिष्टमेहमाह—सद्वष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुल सितम् ॥ १८ ॥

पिष्टमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र होते समय, रीमात्र हो जावे और पिसे हुए आटे के समान मात्रा में अधिक तथा श्वेत मूत्र होवे उसे 'पिष्ट मेह' कहते हैं ॥ १८ ॥

शुक्रमेहमाह—शुक्रार्भं शुक्रमिधं धा शुक्रमेही प्रमेहति ।

शुक्र मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शुक्र (वोर्य) के समान वर्ण वाला अथवा शुक्र मिला हुआ होता है उसे 'शुक्र मेह' कहते हैं ।

सिक्तामेहमाह—मूत्राणुन्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १९ ॥

सिकता मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र में मल के अणु (कण) सिकता (बाह्य) के रूप में निकलते हैं उसे 'सिक्ता मेह' कहते हैं ॥ १९ ॥

शीतमेहमाह—शीतमेही सुषडुशो मधुर शृशशीतलम् ।

शीतमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र अधिक मात्रा में, मधुर तथा अत्यन्त शीतल होता है उसे 'शीतमेह' कहते हैं ।

- शनेर्मेहमाह—शने शने शनेर्मेहो मन्द मन्द प्रमेहति ॥ २० ॥  
 शनेर्मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शने ० मन्द ० से होया है उसे 'शने मेह' कहते हैं ॥ २० ॥
- लालाप्रमेहमाह—खालातन्निपुतं मूर्च्छं खालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १ ॥  
 लाला मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र खाला तथा ( लार के पागों की तरह ) अर्ध पिच्छिल मूत्र की भाँति होता है उसे 'खालामेह' कहते हैं ॥ २ ॥
- परपैक्षिमानाह, तत्र क्षारमेहमाह—  
 तन्धवर्णरमस्पर्शः क्षारेण क्षारतोययत् ॥ २१ ॥  
 क्षारमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का गन्ध, रस और स्पर्श से सब क्षार के जल के समान दो अर्थात् क्षार के सदृश मूत्र हो उसे 'क्षारमेह' कहते हैं ॥ २१ ॥
- नीलकालमेहमाह—नीलमेहेन नीलाभ कालमेहो मपीनिमम् ।  
 नीलमेह तथा काल मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र नील के वर्ण का भागा है उसे 'नीलमेह' तथा जिसमें मूत्र मयी ( काली स्याही ) के समान भागा है उसे 'कालमेह' कहते हैं ।
- हारिद्रमेहमाह—हारिद्रमेहो कटुकं हृदिदासक्तिभ दहत् ॥ २२ ॥  
 हारिद्र मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का स्वाद कटु और रस हृदी के समान जलन होती है उसे 'हारिद्र मेह' कहते हैं ॥ २२ ॥
- मात्रिष्ठमेहमाह—विरा मात्रिष्ठमेहन मज्जिष्ठामखिलोपमम् ।  
 मात्रिष्ठ के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त तथा मयी के जल के समान मूत्र होना है उसे 'मात्रिष्ठ मेह' कहते हैं ।
- रक्तमेहमाह—विद्यमुष्ण सलवण रक्ताभं रक्तमेहसः ॥ २३ ॥  
 रक्तमेह के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त, उष्ण, लवण रमयुक्त तथा रक्त के वर्ण का मूत्र होना है उसे 'रक्तमेह' कहते हैं ॥ २३ ॥
- यसं पद पैक्षिमा -चतुरो वागजानाह । तत्राग्नी यसामेहमाह—  
 यसामेहो यसाभिर्धं यसार्धं मूत्रवेग्मुहः ।  
 यसामेह के लक्षण—जिसमेह में यसायुक्त तथा यसा बाहु की भाँति ( यसा के समान ) बार-बार मूत्र होता है उसे 'यसामेह' कहते हैं ।
- मज्जामेहमाह—मज्जाम मज्जमिधं पा मज्जमेहो मुहुमुहः ॥ २४ ॥  
 मज्जामेह के लक्षण—जिसमेह में मज्जा के सगल तथा मज्जा गिला हुआ बार २ मूत्र होना है उसे 'मज्जामेह' कहते हैं ॥ २४ ॥
- धीरमेहमाह—कषायं मधुरं मधु धीरमेहनं महति ।  
 धीरमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र कषाय, मधुर, भीरु लक्ष होता है उसे 'धीर मेह' कहते हैं । ( किसी २ के मत से धीर मेह मधु के सदृश होता है ) ।
- हरितमेहमाह—  
 हस्ती मधु ह्याजलं मूर्च्छं वेगविचित्रितम् । मलतीकं विषहृत् हरितमेहो प्रमेहति ॥ २५ ॥  
 हरितमेह के लक्षण—जिस प्रमेह में मधु हस्ती के मूत्र की भाँति निरन्तर वेग हरित लक्षीय सहित रसा हुआ मूत्र होना है, उसे 'हरितमेह' कहते हैं ॥ २५ ॥
- उपद्रवमाह—  
 अविपाकोऽदक्षिरसुर्द्विद्राक्षामः सर्पीनमः । उपद्रवाः प्रगापन्थ रुद्राणां कफमग्गामाम् ॥  
 कफ मेह के लक्षण—मौत्रा का परिपाक मदी शक्त, अक्षि, कान्त निश, मधु और पीनम से कफ प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २६ ॥
- विष्टमेहोऽनाह—परिामेहनघोन्नेदा मुक्तापदरुणं जरा ।  
 वादगुण्णा कर्मो मूर्च्छां विहृभृत् तिलकममाम् ॥ २७ ॥  
 विष्ट मेह के लक्षण—विरा और शिन से होय, ( श्री मुक्ता के समान होता ) होना, अक्षय्य के लक्ष के समान, मयीर शान्ता कफ होना, दाह दुःख, कर्मा, मूर्च्छा और मूत्र मेह ( पचना मग का होता ) ५ विष्ट मेह के उपद्रव हैं ॥ २७ ॥

वातमानामाह—

यातजामामुदायताः कण्ठद्वद्ग्रहलोत्पताः । शूलमुषिद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥२८॥  
वातज प्रमेह के उपद्रव—उदायर्ष कण्ठ ग्रह होना हृदय ग्रह शूल, अनिद्रा, शोष, कास और श्वास ये वातज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २८ ॥

असाध्यतामाह—

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रदुतमेव च । पिट्टिकापाहित गाढ प्रमेहो हृत्ति मानवम् ॥ २९ ॥  
असाध्य लक्षण—जिस प्रमेह में बड़े दुष्ट उपद्रव (अक्षिपारादि) उपस्थित हों और छात्र और मूत्रदायक अधिक होता हो तथा उराबिका आदि विद्विषाओं से रोगी पीड़ित हो प्रमेह गाढ (अधिक दिग से) हो वह असाध्य है ॥ २९ ॥

मूर्च्छाद्यदिवरश्वासकासपीसर्षगौरवैः । उपद्रवैरुपेतो चः प्रमेहो दुष्प्रतिक्रियः ॥ ३० ॥  
जिस प्रमेह में मूर्च्छा, क्षर्षि (बमन), उषर, श्वास, कास, विसर्ष और गौरव ये उपद्रव उपस्थित हों वह दुष्प्रतिक्रिय अर्थात् चिकित्सा के योग्य नहीं (असाध्य) है ॥ ३० ॥

गराणां हरयते मेहः स्त्रीणां किं तु न हरयते । अन्नपानविशेषेण शोषदूष्यक्रमेण च ॥ ३१ ॥  
रज प्रयतते यस्मान्मासि मासि विदोषयेत् । सर्षांघातुश्च शोषांश्च न प्रमेहन्यसः स्त्रियः ॥  
स्त्रियों के प्रमेह का आभाव—पुरुषों को प्रमेह दितार्क देता है किन्तु स्त्रियों को नहीं दितार्क देता इसमें दोष और दूष्य के प्रम [सि और अन्नपान को विशेषता से घेसा होता है। क्योंकि मास-मास में स्त्रियों को रज-स्राव होता रहता है जिससे सब धातु और दोषों की शुद्धि होती रहती है इसलिये स्त्रियों को प्रमेह नहीं होता है ॥ ३१-३२ ॥

जातः प्रमेहो मधुमेहिना वा साध्यो न रोगः स हि बीजदोषात् ।

ये चापि केचिदकुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ ३३ ॥

अथ असाध्य लक्षण—जो प्रमेह मधुमेही (मधुमेही से सामान्य मेह का बोध होता है) से उत्पन्न बालक (प्रमेह वाले की सम्मान) को होता है वह बीज दोष के कारण साध्य नहीं होता अर्थात् असाध्य है। अथवा भी जो जो कुलज विकार (कुष्ठ, शय, अर्शादि रोग) होते हैं वे सब भी असाध्य कहे जाते हैं ॥ ३३ ॥

मधुमेहिनं प्रशंयन्नाह—

सद्य पूव प्रमेहारतु कालेनाप्रतिकारिण । मधुमेहस्यमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥३४॥  
(प्रमेह की उपेक्षा से मधुमेहता)—सब प्रकार के प्रमेह (साधारण [साध्य] कफजादि मेह भी) अचिन्तित्य होने पर (चिकित्सा नहीं करने पर) और अधिक समय तक रह जाने पर (पुराने हो जाने पर) मधुमेहत्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मधुमेह हो जाते हैं और मधुमेहत्व को प्राप्त होकर असाध्य हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

तत्रान्तरे—

शुक्ली च मधुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः । अक्षित्तस्या भवन्त्येते यलमांसपरिधयात् ॥  
शुक्ल के रोगी, मधुमेह के रोगी और राजयक्ष्मा के रोगी ये जब बल मांस से क्षीण हो जाते हैं तब अचिन्तित्य हो जाते हैं अर्थात् असाध्य हो जाते हैं। (किन्तु जब तक बल, मांस रह तब तक चिकित्सा करनी चाहिये) ॥ ३५ ॥

धातुक्षयावरणाभ्यां कुपितवातेन मधुसम्भवमाह—

मधुमेहो मधुसम जायते स किल द्विधा । क्रुद्धे धातुचयाद्वायौ दोषादृतपयेऽधया ॥ ३६ ॥  
धातुक्षय और आवरणभेद से मधुमेह का द्वैविध्यलक्षण—जिस मह में समान मूत्र होता है (वर्ण में तथा स्वाद से) उसे मधुमेह कहते हैं। वह मधुमेह दो प्रकार का होता है एक धातु के क्षय होने के कारण वायु के कुपित होने से और दूसरा पित्तादि दोष के कारण मार्ग के अवरुद्ध (आवृत्त) हो जाने से अर्थात् मधुमेह दो प्रकार का होता है एक वातिक और दूसरा उपेक्षित। आवृत्तों दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । शीणः क्षणाच्छणात्पूर्णां भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥  
आवृत्त वायु (कफ-पित्तादि के कारण घिरा हुआ वायु) उनके (दोषों के) लक्षणों को

अकस्मात् प्रकट करता हुआ क्षण में ही क्षीण हो जाता है और क्षण में ही पूर्ण हो जाता है । यह (उपेक्षित) मधुमेह कष्ट साम्य होता है ॥ ३७ ॥

मधुमेह शब्दप्रवृत्तौ निमित्तमाह—

मधुर तच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरत ॥ ३८ ॥

मधुमेह शब्द की प्रवृत्ति में निमित्त—जिनके प्रमेह में पाय मधु के समान मोठा गुन होता है और शरीर मधुर हो उनके सभी प्रमेह मधुमेह कहे जावेंगे ॥ ३८ ॥

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम् । विशाद तिक्तकटुकं सदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ ३९ ॥

प्रमेह निवृत्ति के लक्षण—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र मलिन और पिच्छिल नहीं हो, स्वच्छ तिक्त और कटु तब उसे आरोग्य हुआ ( प्रमेह से रहित ) जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

प्रमेहपिटिका—प्रमेहिणां प्रजायन्ते पिटिकाः सर्वसन्धिषु ।

शराविका कृच्छ्रपिका जालिनी विनताऽलजी । मसूरिका सर्पपिका पुत्रिणी च विदारिका ॥

विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया वृत्ता । सन्धिर्ममसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २ ॥

प्रमेह पिटिका—प्रमेह के रोगियों को सब सन्धियों में पिटिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं उनके नाम कहते हैं । शराविका, कृच्छ्रपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्पपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि । ये दस प्रकार की पिटिकाएँ प्रमेहरोग की उपेक्षा करने से (वचित विक्रिस्ता नहीं करने से) सन्धियों के मर्म स्थान में अथवा सन्धियों और मर्मों में तथा मांसल स्थानों में उत्पन्न हो जाती हैं ॥ १-२ ॥

शराविकामाह—अन्तोक्षता च सद्रूपा निम्नमप्या शराविका ।

शराविका के लक्षण—जिस पिटिका में किनारे २ उठी हुई और मध्य में नीची शराव (शरीरे) के आकार की पिटिका हो उसे 'शराविका' कहते हैं ।

सर्पिकामाह—गौरसर्पसंस्थाना तध्रमाणा च सर्पपी ॥ ३ ॥

सर्पपिका के लक्षण—जिस पिटिका का रूप श्वेत सर्पों के समान तथा उसी के प्रमाण का आकार हो उसे 'सर्पपिका' कहते हैं ॥ ३ ॥

कृच्छ्रपिकामाह—सदाहा कूमसस्थाना ज्ञेया कृच्छ्रपिका वृषैः ।

कृच्छ्रपिका के लक्षण—जिस पिटिका का आकार वृषुप के समान हो और दाह युक्त हो उसे 'कृच्छ्रपिका' कहते हैं । अर्थात् वृषुपे के पीठ के समान आगे और नीची और बीच में उठी हुई शोथ युक्त होती है ।

जालिनीमाह—

जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमाधृता । अयगाहज्जोत्वलेदा वृष्टेयाऽप्युदरेऽपि वा ॥ ४ ॥

जालिनी के लक्षण—जिस पिटिका में तीव्र दाह हो, मांस के जाल में घिरो हुई हो, अथवा पीड़ा तथा बलेद (पूयादि) से युक्त हो और पीठ अथवा उदर में उत्पन्न हुई हो उसे 'जालिनी' कहते हैं ॥ ४ ॥

विनतामाह—महती पिटिका नीला सा पुष्पैर्विनता स्मृता ।

विनता के लक्षण—जो पिटिका आकार में बड़ी हा और जोलवर्ण की हो उस 'विनता' कहते हैं ।

महुरूपयुक्ता ज्ञेया पिटिका सा तु पुत्रिणी ॥ ५ ॥

पुत्रिणी के लक्षण—जिस पिटिका का आकार बड़ा हो और छोटी २ पिटिकाओं से युक्त हो अर्थात् एक पिटिका बड़ी हो और उसके साथ छोटी २ पिटिकाएँ भी हों उसे 'पुत्रिणी' कहते हैं ॥

मसूरिकामाह—मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ।

मसूरिका के लक्षण—जो पिटिका आकार प्रकार में मसूर की दाढ़ के समान हो उसे 'मसूरिका' जाननी चाहिये ।

अलजीमाह—रक्तामिता स्फोटवती विनोया त्यलजी वृषः ॥ ६ ॥

अलजी के लक्षण—जो पिटिका रक्षण की अथवा श्वेत वर्ण की हो और बनीयों से युक्त हो उसे 'अलजी' जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

विदारिमार—विदारीकन्दपदपूसा कठिना च विदारिका ।

विदारिका के लक्षण—ओ (परिषदा आकार में विदारी कन्द के समान वृत्त (गोल) तथा कठिन हो उसे 'विदारिका' कहते हैं ।

विद्रविकामाह—विद्रवधेलणैर्मुष्का शेषा विद्रविका तु सा ॥ ७ ॥

विद्रविका के लक्षण—ओ पिद्रिका विद्रधि के लक्षणों से उक्त होती है उसे 'विद्रविका' कहते हैं ॥  
पिटिकानामारम्भकारणमाह—

ये धन्मया रमृता मेहास्तेपामेतास्तु सन्मयाः । विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसाः ॥ ८ ॥

पिटिकामो के होने के कारण—ओ २ प्रमेह जिस जिस (वातादि) दोष से उत्पन्न होते हैं उन २ प्रमेहों में होने वाली ये पिटिकायें भी उन दोषों से युक्त होती हैं अर्थात् कफज आदि प्रमेहों में उत्पन्न पिटिका कफ आदि से युक्त होती है कभी २ ये पिटिकाये विना प्रमेह के भी उत्पन्न मेवा बालों को हो जाती है ॥ ८ ॥

सावर्षेता न लभयन्ते याषद्वास्तु परिग्रहः ।

शुद्धे हृदि शिरस्यसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः । सोपद्रवा दुषलान्नेः पिटिका परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

ये पिटिकायें तब तक नहीं उत्पन्न होती हैं जब तक स्थान को आवृत्त नहीं कर लेती हैं अर्थात् जब तक पूर्ण प्रकाशित नहीं हो जाती हैं तब तक इनका धान नहीं होता है । पिटिकामो की असाध्यता—ये पिटिकायें यदि गुदा, हृदय, सिर, कंधा, पीठ तथा अन्य मर्मस्थानों में उत्पन्न हुईं हो, और उपद्रवों (भाग्य उपद्रव लिखे हैं उनसे) से युक्त हों तथा दुर्बल अग्नि वाले को हुईं हो तो उसे त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

चक्रेण पिटिकानामुपद्रवा उक्ता —

सूट्कासमाससंकोचमोहद्विकामदधरा । विसर्पो मर्मसरोच पिटिकानामुपद्रवाः ॥ १ ॥

पिटिकामो के उपद्रव—सूषा, कास, मास संकोच, मोह, द्विकाम, मद, ज्वर, विसर्प और मम स्थानों का संरोध, ये पिटिका के उपद्रव होते हैं ॥ १ ॥

प्रमेहनिवृत्तिलक्षणं सुष्ठुतेऽपि पठितम्—

अमेहिणा यदा मूत्रमनाविलमपिच्छुलम् । विशद कटु तिक्त च तदाऽऽरोग्य प्रचक्षते ॥ १ ॥

प्रमेह निवृत्ति के लक्षणान्तर—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र अनाविल (मलिनता रहित) और दिनम्बतारहित (चिकनाई रहित), स्वच्छ, कटु तथा तिक्त हो तो उसे आरोग्य अर्थात् प्रमेह निवृत्त हुआ जानना चाहिये ॥ १ ॥

हारिद्रवर्णं रुधिरं च मूत्रं विना प्रमेहस्य तु पूर्वरूपः ।

यो मेहयेत्सं न घदेत्प्रमेह रक्तस्य पित्तस्य स हि प्रकीपः ॥ २ ॥

प्रमेह-रक्तपित्त का भेद—यदि प्रमेह रोग का पूर्व लक्षण (पूर्वरूप) नहीं हुआ हो और उस अवस्था में भी यदि मूत्र का वर्ण पीत अथवा रक्त आता हो तो उसे प्रमेह रोग नहीं कहते हैं । ऐसा रक्त पित्त के कीप होता है यह जानना चाहिये अर्थात् रक्तपित्त और प्रमेह में यही भेद है कि प्रमेह के मूत्र का वर्णदि पूर्वरूप के पश्चात् ही प्रमेह के लक्षणों का होता है और रक्तपित्त के कीप से पीतादि वर्ण के मूत्र विना प्रमेह के पूर्वरूप के ही प्रमेह के समान हो जाते हैं यहाँ रक्तपित्त के प्रकीप का जानना चाहिये ॥ २ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

दश पट् चापि चत्वारः कफपित्तसमीरजाः ।

साध्या धाप्या असाध्यास्ते प्रमेहाः क्रमशो मृणाम् ॥ १ ॥

प्रमेह चिकित्सा—कफज दस प्रमेह साध्य, पित्तज छव प्रमेह साध्य और वातज चार प्रमेह असाध्य इस क्रम से मनुष्यों को २० प्रकार के प्रमेह होते हैं ॥ १ ॥

कफप्रमेहचिकित्सा—हरीतकीकटुफलमुस्तलोघ्रा पाठाविद्वङ्गजुनधन्वयासाः ।

उभे हरित्रे सगर विद्वङ्ग कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ १ ॥

दार्दी विद्वङ्ग खदिरो धवश्च सुराङ्गकुष्ठार्जुनधन्वनानि ।

दार्भ्यमित्मन्वी त्रिफला सपाठा पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा ॥ २ ॥



यथानुसारीराज्यभया गुहृची अमृशिविप्रकससपर्णाः ।

पायैः कपायाः कफमेहिनां ते यतोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ३ ॥

कफज प्रमेह चिकित्सा—१-हरां, कायफल, नागरमोषा और लोष २-पुरश्न पादो, वामीरग, अर्जुन को छाल और यथासा । ३-हरदी दारुहरदी, तगर और वामीरग । ४-कदम्ब को छाल, सालबृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल और अवाहन । ५-दारुहरदी, वामीरग घैर और धव की छाल । ६-देवनाग, कूट, अर्जुन वृक्ष की छाल और लालचन्दन । ७-दारुहरदी, गनिवार, अकरा, हरां, बहेदा और पुरश्नपादी । ८-पुरश्नपादी, मूर्वामूळ और गौतरु । ९-जवाहन, खस, हरां और गुंरुचि । १०-जामुन की छाल, हरां चित्रकमूळ और छितवन की छाल । इनमें प्रत्येक श्लोक के एक २ योग है । इस प्रकार ये दस योग दस प्रकार के कफज मेहों के लिये क्रमपूर्वक कहे गये हैं । इन योगों के विधिवत् बने काय की शीतल कर मधु के प्रयोग के साथ यथा क्रम सेवन करने से कफज दस मेह नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

जलप्रमेहेऽरसप्रमेहे साद्रप्रमेहे च सुरामेहे ।

पिष्टप्रमेहेऽपि च शुक्रमेहे क्रमादमी स्युः सिकताप्रमेहे ।

शीतप्रमेहे च दानैः प्रमेहं लालाप्रमेहेऽपि सुखाय सेपाम् ॥ ४ ॥

उदक मेह, श्लु मेह, साद्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकता मेह, शीतमेह दानैः-मेह और लालामेह में क्रम पूर्वक इरीतक्यादि, पाठादि, हरिद्रादि, कदम्बादि, दार्वादि, सुराष्टादि ( देवदारुवादि ) दाष्पाणि, पाठाणि, यवान्यादि और जम्बवादि क्वाय का सेवन करने से लाभ होता है ॥ ४ ॥

सुधुतादं—तत्रोदकमेहिनाम्—पारिजातकपाय पाययेत् । इक्षमेहिनाम्—निम्बकपायम् । साद्रमेहिनाम्—सप्तपर्णकपायम् । सुरामेहिनाम्—शाकमलीकपायम् । पिष्टमेहिनाम्—द्विहरिद्राकपायम् । शुक्रमेहिनाम्—दूर्वाशैथिल्यकरञ्जकसेरुकपायम्, फकुमघन्दनकपाय पा । सिकतामेहिनाम्—निम्बकपायम्, शीतमेहिनाम्—पाठागोशुरकपायम् । दानैर्मैहिनां त्रिफलागुहृचीकपायम् । लालामेहिनां त्रिफलारम्बधकपायं पोषयेत् ॥ १ ॥

उदकमेह वालों को पारिजात ( हर शृङ्गार ) का विधिवत् बना पाप विलाना चाहिये । श्लुमेह वालों को निम्बकपाय ( नींबू का क्वाथ ), साद्रमेह वालों को सप्तपर्ण ( शितवरा ) का क्वाथ, सुरामेह वालों को शाकमली ( सुमर का ) क्वाथ, पिष्टमेह वालों को द्विहरिद्रा ( हरदी और दारु हरदी ), शुक्रमेह वालों को दूब, सेवार, केवटीमोषा, फरअ और कमेरु को समान लेकर क्वाथ बनाकर वह क्वाथ अथवा अर्जुन की छाल और लालचन्दन का क्वाथ, सिकतामेह वालों को नीम का क्वाथ, शीतमेह वालों को पुरश्नपादी और गौशरु का क्वाथ दानैःमेह वालों को त्रिफला और गुहृची का क्वाथ और लालामेह वालों को त्रिफला और अमलठास का क्वाथ बनाकर सेवन कराना चाहिये इन दस प्रकार के क्वाथों से जो कफज मेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पिष्टमेहचिकित्सा—

उत्तरीलोभासुरचन्दनामानुत्तरीमुस्तामलकामयानाम् ।

पटोलनिम्बामलकाष्टतानां मुस्तामयामुष्ककृष्णकाणाम् ॥ १ ॥

लोभाशुकाळीयकघातकीनां विष्णुनानां मिशिसोत्पलानाम् ।

मांजिष्टहारिद्रकनीलघारठप्लाव्यरक्तं क्रमशः कपायाः ॥ २ ॥

पिष्टमेह चिकित्सा—१-खस, लोष देवदारु और लालचन्दन । २-खस, नागरमोषा, नींबू और हरां । ३-परशर के टालपान, नीम की छाल, अंबला और गुंरुचि । ४ नागरमोषा, हरां, मोषा और स्वैज कुटब की छाल । ५-लोष, घृगन्बराळा, काठा चन्दन ( देवी चन्दन ), और पाय के फूल और सोंठि ६-अम्लुन की छाल, नींबू और नींबू कम्प, इन दूषक २ द्रवों योगों को समान लेकर क्वाथ हर क्रम से मांजिष्ठ मेह, हरिद्रमेह, नीलमेह, घारमेह, प्लव्णमेह और रक्तमेह इन छे पिष्टज मेहों में सेवन करने से लाभ होता ॥ १-२ ॥

सुसुतात्—माञ्जिष्ठादिनाम्—मञ्जिष्ठाष-दाकपाय पाययेत् । हारिद्रमेहिनाम्—राज  
 वृषकपायम्, नीलमेहिनाम्—सालसारादिकपायमश्वत्थकपायं वा । चारमेहिनाम्—  
 त्रिफलाकपायम्, कालमेहिनाम्—न्यमोधादिकपायम् । शोणितमेहिनां गुग्गुलीति-दुकास्थि  
 कारमयत्तर्जूरकपाय, मधुमिश्र पाययेत् ।

पित्तजमेह चिकित्सा—माञ्जिष्ठ प्रमेद वालों को ममीठ और तदन को समान लेकर काय  
 बनाकर पिलाना चाहिये । रस हारिद्रमेह वालों को भ्रमलतास का कषाय, नीलमेद वालों को  
 सालसारादिगण का भयवा अश्वत्थ वृक्ष की छाल का काय, चारमेद वालों को त्रिफला का कषाय,  
 कालमेद वालों को न्यमोधादि गण का काय और रजमेद वालों को गुग्गुलि, तिन्दुव के फल की  
 गुठली, गन्मार की छाल और तर्जूर समभाग लेकर कषाय बना शीतल पर मधु के प्रक्षेप के  
 साथ सेवन कराना चाहिये ।

वातमेहिचिकित्सा—

अग्निमथकपाय तु यमामेहे प्रमेोजयेत् । पाटातिरीपदु-स्पर्शमूर्पाकिंशुवति हुके ॥ १ ॥  
 कपित्थेन भिषज्जुयात्स्राथ हस्तिप्रमेहके । पूगारिमेदयो काथः सचोद्रः चौद्रमेहिनाम् ॥२॥

वातज मेह चिकित्सा—यमामेह में गणिवार की छाल का कषाय, हस्तिमेह में पुरहनपादी,  
 की छाल, यवासा, मूर्वांमूल, पलासपुष्प तिन्दुव फल तथा कैश फल के समभाग का कषाय और  
 चौद्रमेह में पूगीफल और बिटलदिर की समभाग लेकर कषाय कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप  
 देकर पान करना चाहिये ॥ १-२ ॥

द्विघ्रापह्निकपायेण पाठाकुटजरासटम् । तिष्ठा कुष्ठ च सन्चूर्ण्य सर्पिर्मैट् पियेक्षरः ॥ ३ ॥

गुरां च और चित्रकमूल के काय में पुरहनपादी, कुटजतथक, शुद्ध हींग कुटकी, कूट सम भाग  
 लेकर चूर्ण कर ढाका प्रक्षेप देकर पान करने से सर्पिर्मैट् ( गन्जमेह ) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुसुतात्—अत ऊर्ध्वमसाध्येष्वपि योगान्यापनार्थं घचयामः । तद्यथा—घसामेहिनाम्—अग्नि  
 मथकपाय दशापाकपायं वा । सर्पिमहिनाम्—कुष्ठकुटजपाठादिद्रुकटुरोहिणीककं गुग्गुली  
 चित्रककपायेण पाययेत् । चौद्रमेहिनाम्—अदिरकदरमृत्ककपायम् । हस्तिमेहिनाम्—  
 तिन्दुककपित्थतिरीपपलाशपाठामूर्पादु स्पर्शकपायं मधुमिश्रम्, हस्त्यशयूकरशरोष्ठास्थि-  
 चारं चेति ।

छष्टन के मत से इसके ऊपर असाध्य जो वातिक मेह हैं उनके शमन के लिये जो उपाय  
 लिखे जा रहे हैं 1—

यसामेह वालों के लिये गणिवार भयवा शीशम की छाल का विभिपूत्रक कषाय बना कर देना  
 चाहिये । सर्पिर्मैट् वालों के लिये कूठ, कीरया की छाल, पुरहनपादी, शुद्ध हींग और कुटकी सम  
 भाग लेकर चूर्ण कर ( बत्क कर पाठ है पर काय का प्रक्षेप चूर्ण ही अच्छा होता है ) उसका  
 प्रक्षेप गुग्गुलि और चित्रकमूल के काय में मिलाकर सेवन कराना चाहिये । चौद्रमेह वालों के  
 लिये तैर, बहूर की छाल और पूगीफल का कषाय बनाकर देना चाहिये । हस्तिमेह वालों को  
 तिन्दुकफल, कैश, शिरिष की छाल, पलास की छाल, पुरहनपादी, मूर्वांमूल और यवासा सम भाग  
 लेकर कषाय कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये और हाथी,  
 घोड़ा, छहर, गधा, ऊँट, इनकी अस्थियों का छार बनाकर देना चाहिये ।

अथ द्रवजप्रमेहचिकित्सा ।

कम्पिष्ठसप्तर्षदशाळजानि विमीतरोहीतककौटजानि ।

पुष्पाणि वृषनश्च विचूर्णितानि चौद्रेण लिङ्गात्कफपित्तमेहे ॥ १ ॥

द्रवज प्रमेह चिकित्सा—कमीला, छितवन, साल, बहेड़ा, रोहिस तुण और कीरया इन  
 औषधियों के पुष्पों को समभाग लेकर चूर्ण कर दही के साथ मिलाकर और मधु डाल कर चाटने  
 से कफपित्त मिश्रित द्रवजमेह नष्ट होता है ॥ १ ॥

हरीतकीकटुफलमुस्तलोध्रकुचग्वनोशीरकृतः कपायः ।

चौद्रेण युक्तः कफघातमेहं निहन्ति पीता रजसा च पीतः ॥ २ ॥

हरा, मायफर, नागरमीषा, लोष, पतङ्ग की लकड़ी और उस समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें हरदी के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफवातजनित द्रन्द्जमेह नष्ट होता है ॥ २ ॥

विषङ्गरजनीहृन्द्स्वविरोशीरपुगज । काथ पीतः प्रगे हन्ति मेह पिप्पानिलोद्भवम् ॥ ३ ॥  
बामोरग, हरदी, दाहहरदी, खैर, खस और पूगीफल समभाग लेकर क्वाथ कर प्रातःकाल सेवन करने से वातपैतिक द्रन्द्जमेह नष्ट होता है ॥ ३ ॥

काथः खजूरकारमयतिन्दुकास्थ्यमृतामृत । मुहिम पीतमात्रस्तु सचौघो रक्षमेहहा ॥ ४ ॥  
खजूर, गम्मार की छाल, तिन्दुक फल की शुठली और गुरुचि समान लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तमेह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

### अथ सामान्यप्रमेहचिकित्सा ।

फलत्रिकादि क्वाथ — फलत्रिक दाहनिशाविशाखामुस्त च निष्काप्यनिशांशककम् ॥  
विषेकपायं मधुसप्रयुक्त सर्वप्रमेहेषु विरोत्यितेषु ॥ १ ॥

फलत्रिकादि क्वाथ—अवरा, हरा, बहेड़ा, दाहहरदी, माहरि की जड़, नागरमीषा, सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें हरदी का कन्क और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के पुराने प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

#### विद्वहात्क्वाथ—

विषङ्गरजनीघटीनागरागोक्षुरैः कृतः । कपायो मधुना हन्ति प्रमेहा दुस्तरानपि ॥ १ ॥

विद्वहादि क्वाथ—बामोरग, हरदी, जेठीमधु सोंठि और गोएरु समभाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कठिन प्रमेह भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

#### पलाशपुष्पाणां काथ—

पलाशतहरुष्पाणां काथः शर्करया युतः । निषेधित प्रमेहाणि हन्ति नानाविधान्यपि ॥ १ ॥

पलाश पुष्प क्वाथ—पलाश के पुष्पों का क्वाथ बनाकर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन करने से अनक प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

#### शुन्नाभिफलारिकाथ—

त्रिफलादारुदार्यव्युक्काथ शौभ्रेण मेहहा । कुटजासनदाग्न्यवृक्कलघ्नवभवोऽप्यथा ॥ १ ॥

त्रिफला क्वाथ—अवरा, हरा, बहेड़ा, देवदारु, दाहहरदी, नागरमीषा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है । अथवा कोरया की छाल, असना, दाहहरदी, नागरमीषा, अवरा हरा, बहेड़ा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है ॥ १ ॥

#### शुन्दादगुट्ट्यादि—

शुद्ध्याः स्वरस पेयो मधुना सर्वमेहजित् । निशाकदकयुतो धात्रीरसो वा माण्डिकान्वितः ॥

शुद्ध्यादि योग—गुरुचि के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है । हल्दी वा कक अथवा मधु मिलाकर भाँवले का स्वरस पान करने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

#### भूषान्यादि—

भूषात्री च त्रिगघाण मरीचानां च विंशतिः । असाप्यासाधये मेहान्सप्तरात्राद्य सहाय ॥ १ ॥

भूषात्रिकादि योग—सुरई भाँवले का स्वरस ३ गघान ( १८ मापा ) कीर मर्या में २० मरिच का चूर्ण मिलाकर पान करने से असाध्य प्रमेहों को भी सात रात में ( एक सप्ताह के सेवन करने से ) अवश्य साध्य कर देता है ( नष्ट कर देता है ) ॥ १ ॥

कृत्तकीजयोग—कर्मप्रमाण कतकस्य वीजं सप्रोण विष्टा सह माण्डिकेण ।

प्रमेहजालं विनिहन्ति सघो रामो यथा रापणमाहय तु ॥ १ ॥

कृत्तकी जोग—निर्मन्नी के बीजों को एक कर्ब लेकर मट्ठे के साथ पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र प्रमेह जाल को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार रावण को युद्ध में राम ने नष्ट किया ( मारा ) था ॥ १ ॥

भाकुल्यादियोग —

भाकुलीमुकुल धात्री हरिद्रा मधुना लिह्यत् । विदाति च प्रमेहार्णां हन्ति सख्य न सदायः ॥१॥

भाकुलादि योग—भाकुल यनस्पति विशेष की फली अथवा गेहूं के बाल का झोला ( होरहा ) और पिस्ता, भांवला हरदी समभाग लेकर चूर्ण कर मधु के अनुपात से सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेहों की निधाय हो गट करता दे, यह सख्य है ॥ १ ॥

त्रिशात्रिफलायोग —

द्विनिशात्रिफलायुक्त रात्री पर्युषितं जलम् । प्रमाते मधुना पीतं मेहमूलं निवृन्तति ॥ १ ॥

त्रिशात्रिफला योग—हरदी, दासहरदी, अमरा, द्रां, बहेदा इनको समान लेकर जो कुट कर रात को जल में भिजा देवे प्रात उक्त पर्युषित जल को मधु के प्रक्षेप से सेवन करने से प्रमेह रोग को ममूल नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलापरक —

सजल त्रिफलापरकमातपे धारयेत्प्रयत्नम् । सद्भाण्डे दोलिकायत्रे खण्का मुष्टिमात्रकान् ॥१॥

अहोरात्रोपिता-खादेद्वर्धमानं दिने दिने । असाध्य साधये-मेहं सिद्धयोग उदाहृत ॥ २ ॥

त्रिफला कल्क—त्रिफला ( अमरा-हरा-बदवा समभाग मिलित ) बरक बनाकर उसमें जल मिलाकर एक गृत्त पात्र में रखकर तीन दिन तक घूप में रखते फिर उस पात्र में कपड़े में बांधकर एक मुट्ठी चना दोला यत्र की मांति लटका दे ( चागा वरत जल में डूबा रहे ) एक दिन रात उसमें रहने के पश्चात् निकाल कर मम से प्तिन २ बढ़ा कर सेवन करने से असाध्य मेहों को भी साध्य कर देता है । यह सिद्ध योग बड़ा गया है ॥ १-२ ॥

सालमुस्तयोग—

सालमुस्तककम्पिपलककफमजसम पियेत् । घाघ्रीरसेन सचौद्रे सयमेहपर परम् ॥ १ ॥

सालमुस्त योग—साल और नागरमोधा तथा कवीला समभाग लेकर बरक कर एक अक्ष प्रमाण लेकर आबले का स्वरस और मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिचूर्णम्—

मधुना त्रिफलाचूर्णमथ वाऽश्वजतूङ्गवम् । लोहज वाऽभयोत्थं वा छिद्यान्मेहनियृत्तये ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला का चूर्ण अथवा शुद्ध शिलाजीत अथवा लोह भस्म मधु मिलाकर सेवन करने से प्रमेह रोग की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

त्रयोपादिचूर्णम्—

न्यग्रोघोदुग्धराशयस्योनाकारगवधासनम् । आग्ने कपित्थं जम्बूष त्रियाल ककुम्भ वम् ॥१॥

मधूक मधुक लोभ्रं घरुण पारिमत्रकम् । पटोलं मेपशृङ्गीं च दन्ती चित्रकपाटली ॥ २ ॥

करञ्ज त्रिफला शक्रमहातकफलानि च । प्तानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३ ॥

न्यग्रोघाद्यमिदं चूर्णं मधुना सद लहेयेत् । फलत्रयरस चानु पिये-मूत्रं विशुष्यति ॥ ४ ॥

त्रयोपादि चूर्ण—बट, उदुम्बर, पीपल, भरलू, अमलतास, अक्षता आम, कैथ, जामुन, त्रियाल ( बृक्ष विशेष ), अर्जून, धाव, महुआ इनकी छाल, सुलहठी, लोप, वरुण की छाल पारिमद्र ( पारिजात ) की छाल, परवर की छालपात, मेदासिंगी, दातीमूल, चित्रकगूष, पाटल की छाल, कंजु, भांवला, हरां बहेदा, इन्द्रज्व और शुद्ध मिलावे के फल प्रत्येक सम भाग लेकर चूर्ण कर लेवे । यह त्रयोपादि चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटना चाहिये और त्रिफला का स्वरस अनुपात में पीना चाहिये । इससे मूत्र शुद्ध होता है ॥ १-४ ॥

पुसेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च । वेगेन प्रथम याति विटिका न च जायते ॥ ५ ॥

न्यग्रोपादि चूर्ण से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं और जितने प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग हैं वे सब वेग से (शीघ्र) शमन हो जाते हैं तथा पिटिकार्ये (प्रमेह पिटिकार्ये) नहीं उत्पन्न होती हैं ॥

ककंदीबीजादिचूर्णम्—

ककंदीबीजासि-पूथत्रिफलासमभागिकम् । पीतमुष्णग्भसा चूर्णं मूत्ररोध निवारयेत् ॥ १ ॥

ककटी बीनादि चूर्ण—कनदी के बीज, सेंपा नमक, आँवला, हरी, बरेदा सम भाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से पान करने से मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥ २ ॥

गोधुरानीगुटी—

त्रिकटुत्रिफलातुल्यं गुग्गुलु च समोश्नकम् । गोष्ठुरकापसपुष्पां गुटिकां कारयेद्गुधुष ॥ १ ॥  
देशकालपलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् । न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेपित्ततम् ॥ २ ॥  
प्रमेहान्यातरोगांश्च पातशोणित्तमेव च । मूत्राघात मूत्रदोष प्रदर धानु नाशयेत् ॥ ३ ॥

गोधुरादि गुटी—सोंठ, पीपरि, मरिच, आँवला हरी बरेदा सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर गोखरू के ढाध में मद्धन कर विषिबद्ध बटी बना कर देश, काल और बल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से अनुलोमक है । इसके सेवन के समय कोढ़ विशेष परिहार नहीं है । इच्छानुकूल भोजनादि व्रम करना चाहिये । इसके प्रमेह श्वेत रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष और प्रदर रोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

चन्द्रप्रभागुटी योगरत्नाकरव्या —

वेष्टुभ्योपफलप्रिक त्रिलवर्णं द्विचारचघ्यानल-  
रयामापिप्पल्लिमूलमुस्तकसटीमाक्षीकघातुख्वच ।  
पद्मप्रचामरदारुवारणकणामूनिग्वदन्तीनिशा  
पत्रैलतिविषा पिचुप्रतिमिता लोहस्य कर्पाटकम् ॥ १ ॥  
खक्कीरी पलिका पुराह्वश पलान्यष्टी शिलाजम्बनो  
मानाकर्षसमा कृतेति गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् ।  
सत्रैव प्रतिवासर सह धृतचौद्रेण लिप्तादिमां  
तक मस्तु च गोष्ठुत मधुरस पश्चात्पियेन्मात्रया ॥ २ ॥

चन्द्रप्रभा गुटी—वायवीहज, सोंठि, पीपरि, मरिच, आँवला, हरी, बरेदा, सेंपा, सौबर्चल और विष्ट नमक, यवालार, सज्जी सार, चव्य, चित्रमूल, निशोव, पिपरागूल, नागतमोया, कपूर, स्वर्णमाक्षिक मरम, दालचीनी वध देवदारु, गजपीपरि, चिरेता, दन्तीमूल हरती, वैजपात, बलापथी के दाने, अतीस, हा सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर पिचु प्रमाण ( २ सोला वा एक कर्प ) पृथक् २ सेवे और लोह मरम ८ कर्प, बंश लोचन २ पल, शुद्ध गुग्गुलु १० पल, शुद्ध शिलाजीत ८ पल लेकर सबको सरल में एकत्र मर्दन कर कर्प प्रमाण की बटी विषिपूर्वक बनाकर घृत और मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करे, अपने अगुकूल मात्रा से तक रही का पानी, गोष्ठु, मधु और मांस रस का अनुपान सेवन ( पीना ) करना चाहिये । इस योग में पारद-गन्धक की कज्जली अथवा रससिन्दूर अथवा अभ्रक भस्म भी एक पल मिलाने का योग कर्ष द्रव्यों में है । ( इसकी मात्रा ४ रत्नी की है पर अपन २ बलानुसार सेवा करना चाहिये ) ॥ १-२ ॥

अक्षौंसि प्रदर उवर च विषम नाडीमणामरमरी  
कृष्ण विद्रघिमग्निमान्द्यमुदर पाण्ड्यामय कामलाम् ।  
यक्षमाण समगन्दर सपिदिर्का गुणमममहारुधी  
रेतोदोषमुदरुत्त कणमरुपिपत्तार्तिमुमा जयत् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से सब प्रकार के अशरीर, प्रदर, विषम उवर, नाडीमग, मरमरी, मूत्र कृष्ण, विद्रधि, मन्त्राग्नि, उन्तरोग, पाण्डुरोग, कामला यक्ष्मा, मगन्दर, प्रमेहविटिका और मगदर की विटिका गुणरोग, प्रमेह मरुचि, बीर्यरोध बरुत्त, बन्-बाध और पिच के अति जम रोग हाओ यह नष्ट करती है ॥ ३ ॥

शुद्धं मज्जनयद्युपानमसमोश्नकं षष्ठं यर्घये-  
क्षेत्रयो न विपिद्धमन्मसहृन्नाध्यागमो मैयुगम् ।  
विषयान्तं गुणिकेयमद्विततरा चन्द्रप्रभा नामतः  
साम्प्रानन्दकरी तमोत्रि च रुचि चन्द्रेण गुहयां तमौ त ४ ॥

यह बटी बुद्धयुक्तों को सुख करता है अर्थात् सुख के समान उल्लिखित करती है तथा

रक्तके भोज और बल को बढ़ाती है । इसके सेवन करने के समय बिग्री प्रकार के अम्लानि, मार्ग गमन तथा मैथुनादि किसी कर्म का निषेध नहीं है । यह प्रमिष्ट बरी अल्पम मात्रा देने वाली, रवि को बाली तथा चन्द्रमा के समान शरीर को सुन्दर बनाने वाली है । इसका नाम चन्द्रममा है । ( यद्यपि इसके सेवन के समय कुछ धार्मिक नहीं है तथापि यदि पशु के साथ छेवा निषा जाये तो और लाभकारक है ) ॥ ४ ॥

योगरत्नाकरा पूनपाक—

हमाम्भोपरचन्दनं प्रिकटुक धात्री त्रिपालाः कटु  
 लज्जानुत्रिसुगन्धजीरकपुग श्द्राटक पराजम् ।  
 जातीकोण्टवह्मपान्यपट्टाः प्रत्येकमपोमिताः  
 पूरास्याष्टपलं विचूर्ण्य च पय प्रथमप्रे सम्पयेत् ॥ १ ॥  
 गोसर्पिं कुट्टय सितापकगुलापात्रीपरी ह्वञ्जली  
 मन्दाग्नौ त्रिपथत्रिपथशुभदिने सुरितस्थभाण्डे तिपेत् ।  
 स प्यादशु यथाग्नि वासरमुत्से मेहोद्य जीणगर  
 पिथ साम्भमसुवसुति च शुद्धनापत्रादिभासामु च ॥ २ ॥  
 मन्दाग्नि च विजिाय पुष्टिमगुलां कुर्याथ शुक्रप्रो  
 योगो गर्भकरः पर गदहरः स्त्रीणामसुशोपजित् ॥ ३ ॥

पूणपाक—नागकेसर, नागमांषा चन्दन, लौठ, चीपरि, मरिच, भंवरा, त्रिपाल, कीरवा की छाल एज्जावनी, दालचीनी, तनपान, इलायची जीरा, इन्द्रोरा, तिपादा, बंशलोचना, जायफल, नाबित्री, लवंग, धनियां, बड़ी इलायची के दान प्र देह र क्ल ( ४६ २ बर्ष ) सेहर चूर्ण करे फिर उत्तम पूनीफल का चूर्ण ८ पल सेहर तीन प्राय गाय के दूध के साथ पाक कर गादा, ( खोवा ) कर सेव पश्चात् उस खोबे को पत्र कुट्टय ( भाषाभागी ) गाय के पून के साथ भून कर उसमें इवेन शर्करा ५० पल, ओबले का चूर्ण और शतावरि मूल का चूर्ण दो २ अञ्जली ( १६ १६ पल ) तथा उपर्युक्त नागकेसरादि का चूर्ण मिलाकर शुद्ध अग्नि पर पाक कर अच्छे दिा वैष रिक्तपत्र में रखा लये । इन पाक को अग्निबल के अनुसार प्रातः सेवन कराने से प्रमेह राग, जीर्ण ज्वर, अन्धविष रक्तसाव, भद्र, मद्, आस तथा गुरु के रोग तथा मन्दाग्नि को नष्ट करता है और अल्पन पुष्टिकारक, गुणकारक है, तथा यह योग उत्तम गर्भकारक है, स्त्रियों के रक्तदुष्टि रोगों को नष्ट करने काय है ॥ १-३ ॥

अश्वगन्धापाक—पलायष्टावधगांधां विपाच्य गोदुग्धे पट्टनेरके मन्वयद्गौ ।

दूर्वेलेपो दावदास्ते सुपकश्चातुर्जातं क्षिप्य कर्षप्रमाणम् ॥ १ ॥  
 जातीजात केसर वनसरज मोच मांसी चन्दन कृष्णसारम् ।  
 पत्रीकृष्णाविष्पल्लीमूलदेवपुष्प कट्टोछालिकाशोतसारम् ॥ २ ॥  
 भल्लीषोर्जं श्द्राट गोचुरास्य सिन्दूराभं नागयज्ञ च छोहम् ।  
 कर्षार्घांघं सर्वचूर्णं प्रकल्प्य सशोष्यायो शर्करापक्काके ॥ ३ ॥  
 पशुवा क्षीत कारयेदश्वगांधापाकोऽय वै हन्ति मेहानशेषान् ।  
 उवर जीर्ण शोषगुहमान्तिकारापैसावातान्शुक्रवृद्धिं करोति ॥ ४ ॥  
 पुष्टि दद्यादभिसन्दीपनोऽय कान्ति कुर्यात्स्त्रीमनस्यं मराणाम् ॥ ५ ॥

अश्वगन्धापाक—अश्वगन्ध का चूर्ण आठ पल और गाय का दूध छे शराव या ३ प्रस्थ लेकर मन्द २ अग्नि पर पाक तब तक करे जब तक कलश्री में छगे नहीं फिर इसमें दालचीनी, नागकेसर, इलायची और तेजपात का समान मिलित चूर्ण एक कर्षं मिलावे और जायफल, नागकेसर, बंशलोचना, मोचरस, जगन्नासी, चन्दन, खैरसार, नाबित्री, चीपरि, पिपरामूल, लवंग, कंकोल, पादर की छाल अखरोट के फल का गूना, शुद्ध मिलावा, तिपादा, गोखरू, रससिंदूर, अश्वकमरम, नागभस्म, वगभस्म, लौहभस्म प्रत्येक का चूर्ण चौथाई २ कर्षं, मिलावे और इधत शर्करा ५० पल का पाक कर ( चाचनी बना ) एकत्र कर पाक की विधि से सिद्ध पाक क्षीतल होने पर रिक्तपत्र में रखा ले । यह अश्वगन्धापाक सम्पूर्ण प्रमेहों को नष्ट करता है,

बीर्ण स्वर, शोथ, शुष्म, वात तथा पित्त के विकार को नष्ट करता है, नीर्य की वृद्धि करता है, पुष्टिकारक है, अग्निदीपक है तथा शरीर की कान्ति को बढ़ाता है और रुचिकारक है ॥ १-५ ॥

सालमपाक—छीरे द्रोणयुते ससालकुब्ज मन्दाग्निना पाचित  
यावत्पाकमुपायत्रेत्परहित प्रस्थं गुढं निक्षिपेत् ।

चातुर्जातलघुहृजातिफलकैमुस्तातुगाधान्यकै  
शुण्ठीमागधिकोवणाश्वमभयालौहैश्च मिथीकृतम् ॥ १ ॥

हृद्रोगघ्नयशोपमारुतगदान् द्विष्वास्वसृषशोपणे ।

विद्वान्मेहशिरोविकारशमनो रोगानशोपाक्षयेत् ॥ २ ॥

सालम पाक—एक द्रोण गाय दूध में सालम मिथी का चूर्ण एक कुडव (आधा मानी) मिलाकर मद्द २ अग्नि पर पाक करे जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें पुराना शुद्ध एक प्रस्थ मिलावे और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, लवण, जायफल, नागरमोषा, वशलोचन, बनियाँ, सोंठि, पोपरि, मरिच, असगंध, हर्षा इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण और लोहमरम, प्रत्येक एक २ पर्व लेकर यथा विधि पाक में मिलायत कर स्निग्ध पात्र में रख ले । इसके सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, शोथ, वात के रोग, दिक्का, रक्त शोथ, बीसों प्रकार के प्रमेह रोग तथा सिर के रोग और सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

द्राक्षापाक—द्राक्षादुग्धसितापृथक्परिमिता प्रस्थेन सग्यापिता

युक्त्या घैघवरेण चूर्णमधुना देय पठार्घं पृथक् ।

चातुर्जातकटुघ्नयं मृगमद् लोहाभ्रकं केसरं

पत्री जातिफलं मृगाह्वरजत कुस्तुम्बरी चन्दनम् ॥ १ ॥

सग्यग्जातरसं प्रभातसमये सेच्य द्विकर्पोन्मितं

स्निग्धं शुष्ककर प्रमेहशमन पित्तामयध्वंसनम् ।

मूत्राघातविबन्धकृच्छ्रशमने रक्तार्तिनेघ्रातिहृत्-

पादे पाणितले विदाहशामनं सौख्यप्रद प्राणिनाम् ॥ २ ॥

द्राक्षापाक—दाल एक प्रस्थ, गाय वा दूध एक प्रस्थ और दूधेत शर्करा एक प्रस्थ लेकर पकन कर विधिपूर्वक पाक करे, गाढ़ा हो जाने पर उसमें वैध युक्तिपूर्वक पाक की विधि से आग लिट्टी दालचीनी, इलायची के दाने तेजपात, नागकेसर सोंठ पोपरि, मरिच, वस्तुरी, लोहमरम, अन्नकभरम, केसर, जावित्री जायफल गुद्ध कपूर, रीप्यमरम, बनियाँ और चन्दन इन औषधियों के प्रत्येक २ अर्थात् २ पल चूर्ण-मरम को मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख लेवे । इसको प्रातः काल दो कर्ष के प्रमाण की मात्रा से (अथवा वय-बल के अनुसार मात्रा से) सेवन करना चाहिये । यह स्निग्ध बीर्यवर्धक प्रमेह को शमन करने वाला पित्त के रोग को नष्ट करने वाला मूत्रपाप, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र इनको शमन करने वाला, रक्त सम्बन्धी पाड़ा, नेत्र रोग इनको नष्ट करने वाला, हाथ पैर के छलवों के दाह को शान्त करने वाला और प्राणियों को श्रुत देने वाला है ॥ १-२ ॥

अथाऽऽसघघृतवैसादि ।

लोभासव --लोभ घाटीं पुष्करमूळमेलीं मूर्ध्नि विहङ्गं त्रिकलां यवानीम् ।

शय्यं विपद्यु कमुष विद्यालं किरासतिष्क वटुरोहिणीं च ॥ १ ॥

भाद्र्हीं नत विप्रकविष्पलीमां मूळं सकुट्टातिपियां सपाटाम् ।

फलिङ्गकान् केसरमिन्द्रसाद् नत्य सपत्र मरिच प्लथ च ॥ २ ॥

त्रोणेऽम्भस कर्षयमामि पशव्या एते चतुर्भागाज्जशयय ।

रसेऽर्धभाग मधुनः प्रदाप पञ्च त्रिभवे घृतभातनस्थ ॥ ३ ॥

लोभासयाऽथ कफविशमेहादिप्र निहन्त्यादि पलप्रयोगात् ।

पाण्डूवामवाऽस्थदधिं प्रहृष्या घोषं क्लिासं विविध च शुद्धम् ॥ ४ ॥

आसव एत वैसादि प्रकरण—लोभासव—लोष, वस्तुर सुदकरमूल, इलायची के दाने मूर्ध्नि मूळ, कामीरंग, अंबरा, हर्षा बरेदा, जवारन, भाव, विषणु, पृगीरक माहुरि की जड़, जिरैठा,

कुटकी, बभोठी, तगर, चित्रकमूल, विपरामूल, बृ, अनीस, पुररानपादी, कोरया की छाल, मागनेसर इन्द्रजौ, नली द्रव्य, तेजपान, मरिच, केरटीमोथा प्रत्येक एक एक वर्ण लेकर जो कुट कर एक द्रोग ( ४ आदक ) जल के साथ चतुर्थांशभोज पाक करके उतार छानकर छीतल होने पर जितना बाघ हो उसके आधा मधु मिलाकर जब भिन्नघ्न गृह पात्र में रर कर आसब की विधि से १५ दिव्य तक मुग बर कर रर दे पश्चात् आमय सिद्ध हो जाने पर एक पल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह 'लोभासब' कष और पित्त के प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है और पाण्डुरोग, भर्न, अर्ना, प्रद्वी के दोष, किन्नास कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के अन्याय कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सिद्धामृतमृतम्—

कण्टकारी गुद्धर्यास सहरोघ क्षत शनम् । सफूटपोल्लवले विद्वांश्चतुर्गणेशमसः पचेत् ॥ १ ॥  
तेन पादानभोजेण घृतप्रस्थ विपाचयेत् । त्रिकदुत्रिकलारासनाविहङ्गान्यय चित्रकम् ॥ १ ॥  
कारमयांश्चापि मूलानि पृथिकस्य त्यजस्तथा । कुट्टयेदिति सर्वाणि रत्नगणपिटानि कारयेत् ॥  
अस्य मात्रां विशेषात्— दालिभिः पयसा हितैः । प्रमेहं मधुमेहं च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ १ ॥  
आलस्यं चाप्रयुद्धिं च कुष्ठरोगं विरोपताः । एय चापि निहन्त्येतन्नाम सिद्धामृतं घृतम् ॥ ५ ॥

सिद्धादिघ्न—घोटी बटेरी, गुरुचि, दोनों को सौ २ पल पृथक २ लेकर ओखल में कूट कर चार द्रोग ( १६ आदक ) जल के साथ चतुर्थांशभोज पाक कर उतार—छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ मिलावे और सोंठि, पीपरि, मरिच भंवरा इरां, बहेड़ा, रासना, बानीरग, चित्रकमूल, गम्मार की अड़, पूर्निकरज और दालचीनी समान ( एक २ भाग ) लेकर कूटकर कन्ककर यह कक एन से चौथाई मिलाकर घृत सिद्ध कर यथायोग्य मात्रा से प्रातःकाल पान करने तथा शालिपाय और दूध या पय्य सेवन करने से प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, आलस्य, मात्र बुद्धि और विशेष कर कुष्ठरोग को नष्ट करना है तथा यह सिद्धादि नामक घृत सुषरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

हरिद्रादितैलम्—निशारसं चतु प्रस्थं द्विप्रस्थचीरसयुतम् ।

कुष्ठाभगा धालश्चुननिशापिप्पलिकशिकतम् । विपक्व तिलजप्रस्थं मोहानां विशतिं जयेत् ॥ १ ॥

हरिद्रादितैलम्—हरयो का स्वरस ४ प्रस्थ, गाय का दूध दो प्रस्थ और मूर्च्छित तिल का तेल एक प्रस्थ मिला कर उसमें कूट, असगंध, लहसुन हरयो, पीपरि इनकी समान मित्ति कक मिलाकर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लेपनम्—

चीरमोदुग्धर चरनाद्वाकुर्ची च प्रयोजयेत् । पिटिकासु समस्तासु लेपन समप्रदान्तये ॥ १ ॥

लेपन—गूलर का दूध और बाबुची बीज इनको पीस कर लेप बनाकर लगाने से सब प्रकार की विटिकायें शान्त होती हैं ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राग्रे हरिशङ्करम्—

सूताभ्रमामलजलै सप्तचार विभावयेत् । हरिशङ्करसज्ञ स्याद्रसः सर्वप्रमेहनुष ॥ १ ॥

हरिशङ्करस—पारभ्रमस अथवा रससिद्ध तथा अन्नकमस इन दोनों को समभाग लेकर औंठके के रस के साथ सात बार भावित कर लेवे । यह 'हरिशङ्कर' नामक रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

मेघनादरस—

सूतं कान्तं गंधतीक्ष्ण ताप्यं व्योषं फलत्रिकम् । शिलाजतुशिलाङ्गोल्मीज रात्रिकविशकम् ॥

त्रि सप्तह्रयो मृङ्गान्निर्भावयेद्विष्कमानक । मधुना मेघनादोऽय सधमेहान्विनाशयेत् ॥ २ ॥

महानिग्नस्य धीजानि पेययेत्तण्डुलाग्मुना । सपृतान्यधिराद्रन्युः पानान्मेहोश्चिरोत्थितान् ॥

मेघनाद रस—सुद्धपारद, कान्तलोहमस, शुद्धगंधक, तीक्ष्णलोहमस स्वर्णमाक्षिकमस, सोंठि मरिच, औंठला, इरां बहेड़ा, इनका पूर्ण, शुद्ध शिलाजीव, शुद्ध मेनसिल, अङ्गोल के बीज का



पूर्ण हरदी का पूर्ण, कैय के फल का पूर्ण इन सब को सम भाग ( एक र भाग ) लेकर प्रथम पारद-गन्धक को कञ्जली कर फिर अन्य सभी औषधियों को एकत्र मर्दन कर मांगरे के स्वरस के साथ मारित कर सुखा कर पीस कर इसको एक निष्क ( ४ मापा ) की मात्रा से मधु के अनुपान से सेवन करने से यह 'मेषनाद रस' सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है । ( मात्रा रोग बहानुमार देनो चाहिये ) ॥ १-२ ॥

मेहकुञ्जरकेसरीरस—

रसगन्धायसाध्यानि नागवङ्गौ सुवर्णकम् । चन्द्रक मौक्तिक सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ १ ॥  
 शतावरिसेनेव गोलक शुष्कमातपे । यदुष्वा शुष्क तमुदुष्ट्य शरावे सुरढे चिपेत् ॥ २ ॥  
 सचिचलेप मृदा कुर्वाङ्गुतीयां गोमयाग्निना । पुटेधामधुसक्यमुदुष्ट्य स्वाङ्गशीतलम् ॥ ३ ॥  
 श्लष्मलश्वे विनिक्षिप्य गोल त मदयेद् दृढम् । दनप्राहाणपूजां च कुरवा एत्वाऽथ कृविके ॥  
 एवेद्दृह्यह्य प्रातः शीतं चानु विषेज्जलम् । अष्टादश प्रमेहोत्र जये मासोपयोगतः ॥ ५ ॥  
 मुष्टिं तेजो यल घर्णं शुक्रवृद्धिं च दारुणम् । अनेयल वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी ॥  
 दिव्य रसायन श्रेष्ठ मात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

मेहकुञ्जरकेसरी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक लोह भरम, अभ्रक भरम, नाग भरम वा भरम, सुवर्ण भरम, होरा भरम, मोती भरम सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक को कञ्जली कर फिर अन्य औषधियों को मिलाकर मर्दन कर फिर शतावरि के रस के साथ मर्दन कर गोल बनाकर धूप में सुखा लवे फिर उसे शराव सम्पुट में रख कर सम्पुट का मुख मसी मीति बंद पुट्याक की विधि से एक गद्द में रखकर गोबर के भाग में चार पहर तक पुट देव ( पकने देवे ), शीत शीत होने पर नित्राल कर खरक में रखकर उस ओले को मली भीति पीस लेवे फिर देवता और आराधन की पूजा कर के शीशी में रख लवे । इसको दो बल्ल के प्रमाण की मात्रा से प्रातः खाकर शीतल जल का अनुपान करे तो यह रस एक मास के सेवन करने से अठारह प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है और इससे मुष्टि होती है, तेज बल, बर्ग और धीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है और अग्नि के बल को बढ़ाता है । यह 'मेहकुञ्जरकेसरी' नामक रस दिव्य एवं श्रेष्ठ रसायन है । इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १-६ ॥

मेहान्तक रस—

मृताभ्रकान्तलोहानि नागवङ्गौ विशोधिती । यथोत्तर भागशुद्धया खल्वमप्ये विनिक्षिपेत् ॥ १ ॥  
 श्लषोटेन चाराङ्गां शतावरीं द्विमाम्बुना । भावनाऽत्र प्रकर्तव्या धाम धामं पृथक्पृथक् ॥ २ ॥  
 चणमात्रां घटीं कृत्या नयनीतेन सेवयेत् । प्रातःस्थाय विधिना सवमेहकुलाभ्यक्तः ॥ ३ ॥

मेहान्तक रस—यथाभाग उचरोत्तर वृद्ध करके अभ्रक भरम १ भाग, वात लोह भरम २ भाग, लोहभ्रम ३ भाग, नागभ्रम ४ भाग, वंग भरम ५ भाग लेकर खरक में रख कर मर्दा कर तालमूली के रस ( मूसली के रस ) चाराशे कन्द के रस, शतावरि के रस और गुग्गुलु भाग के रस के साथ पृथक् १ एक २ पहर तक क्रम से मारित कर खने के प्रमाण की घटी विधि पूर्वक बनाकर मक्खन के साथ प्रातः काल विषिषय सेवा करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है ॥ १-३ ॥

घ्राणवर्धनं सपटोलं च तण्डुलीयकवास्तुकम् । मारयादी मुद्गमूष च अपककटुपीपलम् ॥ ४ ॥

रस के सेवन करते समय पक्ष में शान्तिपान का नाबल, परबर धीराव, बद्धमा, म रवाधी, मूत्र का मूष बन्धा केला आदि का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

असौमि प्रदुग्नीशोपमूषकृष्णारमरीमणु १ । कामलापाण्डुताकोष्ठ अपरमारणवपान् १ ।

रसकासविनागे स्थाप्यश्लोहरसायनम् ॥ ५ ॥

इस रस के सेवन से अर्ज, प्रदुग्नी के दोष, मूषकृष्ण और मरुतरोग कामरोग पाण्डु, शोथ, अपरना, शूल, शय तथा रक्तमदिर काष्ठ इन सबको यह पञ्चपोह रसायन ( मेहान्तक रस ) जिसमें ५ प्रकार के रसों का योग है ) नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

मेहरित्त—

बह्मराम स्वतं स्वतं तुदय धीत्रे विमर्दयेत् । शिग्रुजो सेहपत्रिय दम्भि मेहाभिरम्बयान् प्रवृ

मेहारि रस—वगभरम, पारदभरम वा रससिन्दूर दोनों को सगात लेकर मधु के साथ गर्द कर दो रूषी के प्रमाण की मात्रा से निरय घाटने से पुराने प्रमेहों को भी नष्ट करता है ॥ ६ ॥

चन्द्रकलावटी—एला सकपूरसिता सधात्री जातीफल केसरदाहमटी च ।

सुतेन्द्रयङ्गापसभरम सबमेतक्षमामं परिमाययेद्य ॥ १ ॥

गुह्यविकाशाएमलिकाफपापैर्निष्काधमानं मधुना ततश्च ।

यदुष्या घटीं चन्द्रकलतिसञ्ज्ञां सयप्रमेहेषु नियोजयेताम् ॥ २ ॥

चन्द्रकला घटी—छोटी रत्नावली ये दाने का चूर्ण, गुद वपूर, दवेतशंकरा, आँवले का चूर्ण, नागरेसर, सगल को मूसली का चूर्ण, पारदभरम वा रससि दूर, वगभरम और लौहभरम सगभाग ( एक २ भाग ) लेकर एकत्र तरल में घोटकर प्रथम गुरुचि के बवाब वा स्वरस से पश्चात् सेमल के बवाब वा स्वरस से विधिपूर्वक भावित कर गुच्छाकर मधु मिला कर आधा निष्क ( २ गाथा ) के प्रमाण की बटी बना सभी प्रमेहों में इसका प्रयोग करना चाहिये । इसका 'चन्द्रकलावटी' नाम है ॥

वङ्गधर —

रसमेक ग्रयो पद्म यद्गसाग्य तु गन्धकम् । मर्दयेद्दिनमेकं तु कुमार्याः स्वरसे पुषः ॥ १ ॥

संस्थाप्य गोलकं भाण्डे रोधयेत्सुदृढ मुपम् । पाचयेद्वालुकायत्रे दिनमेक वृष्टाग्निना ॥ २ ॥

स्याद्गन्धोत्तलमादाय सम्पूज्य द्विजदेवताः । पिप्पलीमधुना युक्त सर्वमहेषु योजयस्व ॥ ३ ॥

वङ्गधर रस—गुद पारद एक भाग वगभरम तीन भाग और वग कं समान ( ३ भाग ही ) गुद गन्धक लेकर प्रथम पारद गन्धक की बड्जली पर फिर वग मिलाकर मर्दन कर कुमारी के रस के साथ एक दिन भर ( ४ पहर ) मर्दन कर गोला बनाकर एक कांच के पात्र में रस कर सुख बन्द कर कपरमिट्टी कर विधिपूर्वक 'वालुका यत्र' में एक दिन भर ( ४ पहर तक ) दृढ अग्नि पर पाककर स्वांगशीत होने पर निकाल पीसकर मादागा तथा देवता की पूजाकर यथायोग्य मात्रा से पीपरि के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सब प्रकार के प्रमेहों में प्रयोग करना चाहिये, इससे सब प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

शीरानं योजयेत्प्यमगल्लयणवजितम् । रसो वङ्गेश्वरो नाम सर्वमेहनिकृन्तनम् ॥ ४ ॥

इसके सेवन के समय अन्न और दूध का पय्य देवे और अम्ल तथा लवणरस का त्याग कर देवे । यह वङ्गेश्वर नाम का रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने वाला है ॥ ४ ॥

महावङ्गेश्वर —

वङ्ग कात च गगन हेमपुष्प सम समम् । कुमारीरसतो भाण्य सप्तवारं त्रिपवर्गैः ॥ १ ॥

पुष घट्टेश्वरो नाम प्रमेहान्विदाति जयेत् ।

मूत्रकृच्छ्र सोमरोगं पाण्डुरोग महाशमरीम् । रसायनमिदं श्रेष्ठ नागापुनविनिमितम् ॥ २ ॥

महावङ्गेश्वर रस—वगभरम, वातलौहभरम, अन्नभरम धतूर के फूल समभाग लेकर कुमारा के स्वरस से सात बार भावित कर रस छवे, यह 'महावङ्गेश्वर' नामकरस बीसों प्रकार के प्रमेह की नष्ट करता है तथा मूत्रकृच्छ्र सोमरोग, पाण्डुरोग और अशमरोग को नष्ट करता है । यह 'नागापुन जी' का बनाया हुआ श्रेष्ठ रसायन है ॥ १-२ ॥

वङ्गभरमप्रयोगो गुणाश्च—

वङ्ग शिलाजतुपुतं तु मत्तं प्रमेहे धातुषु ये दुर्घटनष्टशुकयोः ।

अग्नेेण युक्तं तु सुतप्रयं स्याज्जातीफलार्कंकरहाटलवङ्गयुक्तम् ॥ १ ॥

वङ्गभरम—वगभरम को गुद शिलाजीत के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग, धातुक्षय, धातु दीर्घत्व तथा नष्ट शुक्र रोग को नष्ट करने वाला होता है । वगभरम को अन्नकभरम जायफर के चूर्ण, ताम्रभरम स्वणभरम और लवण के चूर्ण इनके साथ सेवन करने से पुत्र को देने वाला होता है ॥ २ ॥

शास्त्रमलोलवप्रसोपेत सषौद्ररजनीरजः । वङ्गभरम हरेग्मेहापञ्चानन ह्य द्विपान् ॥ २ ॥

वगभरम को सेरार वृक्ष की त्वचा के स्वरस, मधु हरीदी के चूर्ण, इनके साथ सेवन करने से प्रमेहों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे शेर हाथियों को ॥ २ ॥

शुद्धशीसारमधुना यङ्गभरम प्रमेहनुत् । नागभरम तथैवापि सर्वमेहविनाशनम् ॥ ३ ॥

वगभरम को गुणिक के सप्त और मधु इनके साथ सेवन करने से प्रमेह को नष्ट करता है । इती प्रकार नाम भरम भी सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पयो गर्वा सस्रण्डक प्रिकण्टवद्गन्धसुक्कम् । प्रमेहमल्लक परं घृथा वृन्ति सादरम् ॥ ४ ॥

वगभरम को एक बल्ल प्रमाण लेकर गोखरू के चूर्ण के साथ खाद ( शर्करा ) मिश्रित गोदुग्ध के अनुपान से सेवन करने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

वहगुणा — विकक सल्लयण च भेदक पाण्डुअन्तुशामन सुशितलम् ।

मेहदाहशामन च कान्तिद वद्गमाहुरिति मारुतापहम् ॥ १ ॥

वहू के गुण—वंगभरम, विकक लवण रस युक्त भेदक पाण्डु तथा क्षुभ रोग का नाशक, शीतल, प्रमेह और दाह को शमन करने वाला, कान्ति को देने वाला और वातनाशक कहा गया है ॥ १ ॥

अन्नकयोग —

निश्चन्द्रमन्नक भरम सवरातरजनीरज । मधुना छीडमचिरात्प्रमेहान्विण्वितयेव ॥ १ ॥

अन्नक भरम का योग—निश्चन्द्र ( उष्ण ) अन्नक भरम का पिण्डा ( समाग्निलित ) के चूर्ण और हल्दी के चूर्ण के साथ मधु के अनुपान से खादने से सब प्रकार के प्रमेहों को शीत नष्ट करता है । ( इसकी मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये ) ॥ १ ॥

नागभरमयोग —

शुद्धस्य च मृतस्याहं रजो बहलमित लिहेव । सनिचामलकचौद्र सवमेहप्रशात्तये ॥ १ ॥

नागभरम का योग—शुद्ध नागभरम को एक बल्ल के प्रमाण की मात्रा से हल्दी के चूर्ण, आवल के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह शमन होते हैं ॥ १ ॥

गन्धकयोग —

गन्धक गुहसयुक्त कर्प मुक्ताया पयः पियेत् । विंशतिरस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिटिका अपि च

गन्धक का योग—शुद्ध भावलासार गन्धक को यथायोग्य मात्रा से पुराने शुद्ध के साथ सेवन कर दूध का अनुपान करने से बीसों प्रकार के प्रमेह तथा प्रमेह पिटिकायें भी नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

शिलाजनीययोग —

शिलाजनीयसं पीत्वा प्रातः क्षीरसितायुतम् । शुष्यते सर्वमेहम्यधिः सप्तद्वियसैर्नर ॥ १ ॥

शिलाजीव का प्रयोग—शुद्ध शिलाजीव को दूध और शर्करा के साथ प्रातः पान करने से २१ दिन में सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

स्वणमाशिकभरमयोग —

माशिक मधुना छीड मेह हरति सर्वथा । शुद्धक्षीरस्यसंयुक्त विषमेह व्यपोहति ॥ १ ॥

स्वर्ण माशिक भरम योग—स्वर्ण माशिक भरम को मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह और शुद्धी के सप्त के साथ सेवन करने से विषम मेह नष्ट होता है ॥ १ ॥

बसन्तकुशुमाकरः—

पृथग्गी हाटक धाद श्रयो यद्गहिकान्तजम् । चत्वारः सूतमन्न च प्रवाल मौक्तिक तथा ॥ १ ॥

भायना गम्पदुषेपुषामाधी द्विजैर्मिश्रा । मोचाकन्दरमेः सप्त क्रमाद्भाष्य पृथक्पृथक् ॥ २ ॥

हातपत्रमेतैश्च मालत्या कुसुमैस्तथा । पद्यान्मृगमदेषांश्च मुनिदो रमराट् भपत् ॥ ३ ॥

कुसुमाकरविकषातो यसन्तपद्पृथक् । बहलद्रवमित्तः सयाः सितान्ममधुसयुतः ॥ ४ ॥

वर्षीपलितद्दमेष्पः कामद् सुतद्दः सदा । मेहान् पुष्टिदः श्रेष्ठ परं घृण्यो रसापहम् ॥ ५ ॥

बसन्त कुशुमाकर रस—स्वर्णभरम और रौप्यभरम दो-दो भाग, वंगभरम नागधरम और बान्तरम प्रायक ३ भाग चारदभरम वा रसतन्दूर, अत्रदभरम, प्रवालभरम और मोरो भरम प्रायक ४ भाग लेकर सबको एकत्र बरल में मग्न कर गाय के दूध से रंग के रस में और अरुमा, कमल, सुगन्धबाला कदवेत, हररी तथा किले के कण्ड के रसरस से पूरक २ प्रमत्तः ताज भावना देवे । फिर शुष्क क फूल वा कमल के पूल वा मातुली वा पनेली क पूल तथा कण्ठी इन यथायोग्य रसरस से पूरक २ भावना देकर सुपाकर पीसकर रस लेवे । इस प्रकार भलीभाँति सिद्ध किया हुआ यह रसराज होता है । यह बसन्त कुशुमाकर के नाम से प्रसिद्ध है । इसको दो

बल के प्रमाण की मात्रा ( यथायोग्य मात्रा ) से शर्करा, घृत और मधु के अनुपान से सेवा करता चाहिये । यह बन्धी पक्षिरोग को नष्ट करता है तथा शक्ति बढ़ाता है तथा काम उत्पन्न करता है और मूत्र देता है, प्रमेह को नष्ट करता है यह पीष्टिव, अथवा नृभ्य और मधु रसायन है ॥१-५॥ आयुष्यद्विकरं पुंसां प्रजागननमुत्तमम् । पयकासगुणोन्माद्यथासरूपविषार्तिगित् ॥ ६ ॥

आयु की दृष्टि करता है, सन्तानकर योगी में उषम है, तथा घष, वास, एषा, उ माद, वास रक्तदोष तथा विष रोग को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

रसितागन्धासंयुक्तमाग्लपित्तादिरागशित् । द्वाबलपाण्डुवामयाशूलान्मूत्राघाताहरमरीं हरेत् ॥

इसको शर्करा और चादन ( पिमा गुआ श्वेतचन्दन ) के साथ सेवन करो से अम्बपिप्पादि ( पिप्पत्र ) रोगों को नष्ट करता है और शुबलवर्ण का पाण्डुरोग ( जिस रोग में रक्त की मूलता से शरीर का रंग श्वेत हो जाता है उसे श्वेत पाण्डुरोग कहते हैं ) तथा पाण्डुरोग, शूल, मूत्राघात और अश्वरी इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

योगवाहि खिदं सेव्य कान्तिश्रीफलधनम् । सुसाग्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशतम् ॥८॥

यह रस योगवाही है । इसके सेवन से शरीर की कान्ति, शी तथा बल की वृद्धि होती है और इसके सेवन के समय साम्य गिष्ट पदार्थों का भोजन करने वाला ही शिष्यों के साथ रमण कर सकता है ॥ ८ ॥

मर्दनं मद्यं मद्मुञ्जवलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् ।

शुरतैः सुखदैर्गतिविष्यवनेभयसारजुषामयमेव सुकृत् ॥ ९ ॥

यह रस कामदेव के मद को बढ़ाता है, अत्यन्त मद से बिलग रमणियों को शांत कराता है ( अनेक रमणियों को घृष्ट कराता है ) शुरत के समय मूत्र पदुंचाना है, भोग शक्ति को बढ़ाता है और संसारी ( कामी ) मनुष्यों के लिये मित्र के समान है ॥ ९ ॥

जलजामृतरम —

सवर्षीर शिला धातुर्षङ्ग कुण्डलिसरषकम् । मेहारिणीजसयुक्तं विदारीजीयनोरसै ॥ १॥

आवयेत्तन्निवार तु सितोपलममन्वितम् । जलजामृतविषयातो रसोऽय मेदृष्टृच्छृनुत् ॥ २ ॥

जलजामृतरस—तवाशीर, पुद्गलैर्नसिल, वगमरम, नागमरम और श्वेत अपराजिता के बीजों का चूर्ण इनको समान लेकर एकत्र मर्दन कर विदारीकन्द के स्वरस तथा जीवन्ती के स्वरस से घृष्ट २ तीन २ बार भावित कर मूत्रा कर चूर्ण कर श्वेत शर्करा के अनुपान से सेवन करे । यह 'जलजामृत' नामक प्रसिद्ध रस प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

प्रमेहपिटिकानां तु प्राकार्यं रक्तमोक्षणम् । पाटनं तु विषयानां तासां पाने प्रदास्यते ॥ ३ ॥

कायो म्रणक्षोऽत्र वरित्मूलरतीक्ष्णैर्विरचनम् । म्रणप्रतिप्रिया सर्वा कार्याऽत्रापि भिषग्वरै ॥

प्रमेह पिटिका चिकित्सा—प्रमेह पिटिकाओं का प्रथम रक्त मोक्षण कराना चाहिये और जो पिटिकायें पक गयी हों उनका पाटन ( चीरा लगाना ), आदि कर्म करना चाहिये और उसमें पान करने के लिये म्रणनाशक काथ का प्रयोग, वरित् परम और तीक्ष्ण मूल दन्ती आदि द्रव्यों से विरेचन कराना चाहिये और म्रण रोग में यही मुख्य सारो क्रिया ( चिकित्सा ) इस प्रमेह पिटिका में भी श्रेष्ठ वैद्य को करनी चाहिये ॥ ३-४ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकावकी । शालिमुद्गकुलित्थाश्च मेहिनां देहिनां हित्वा ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—सावा, कीदो, बन कोन्गे, गेहू चना, भरहर शालिधान का चावल, मूंग, कुलथी ये सब पदार्थ प्रमेह के रोगियों के लिये हितकर है ॥ १ ॥

मेदोष्णा यद्मूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु । यवास्तस्मात्प्रशस्यन्ते मेहेषु च विशेषत ॥ २ ॥

प्रमेह रोग में जो विशेष कर लाभदायक है क्योंकि यह मेदनाशक, मूत्र को बाधने वाला और सब धातुओं के लिये इसकी प्रशंसा है ॥ २ ॥

सिक्तशार्कं पटोलानि जाङ्गलामिपजा रसा । सैन्धव मरिचं चैव मेदिनामाहरेन्निपक् ॥ ३ ॥

सिक्त रस वाले शाक, परवर, जाङ्गल जीवों का मांस रस, सैन्धा नमक और मरिच इन सब द्रव्यों को वैद्य प्रमेह के रोगियों को आहार के लिये देवे ॥ ३ ॥

सदासनं दिवा निद्रा नवाह्नानि दधीनि च । मूत्रवेग धूमपान स्वेद शोणितमोक्षगम् ॥ ४ ॥  
सौवीरक सुरा सूक्त तल चारं घृत गुडम् । अम्लेष्टरसपिष्टान्पमासानि वर्जयेत् ॥ ५ ॥

सदा आसन पर बैठ रहना, दिन में सोना, नया भोजन का भक्षण करना, दही म्यादा, मूत्र के वेग को रोकना, धूमपान करना, स्वेद कर्म करना, रक्तमोक्षण कराना, सौवीर, सुरा, सूक्त तल, चार, घृत, गुड, अम्ल रस वाल पदार्थ रख का रस, पिष्ट भन्न और मानूप मास इन सब पदार्थों को प्रमेह का रोगी त्याग देव ॥ ४-५ ॥

इति प्रमेहप्रकरण समाप्तम् ।

### अथ प्रथमतरे बहुमूत्रमेहनिदानम् ।

कार्यं स्वदोऽङ्गगन्धं करपदरसनानेप्रकर्णापदेह  
कास शैथिल्यमङ्गोश्चिरपि पित्रिकाः कण्ठशालवापशोप ।  
दाहः शीतप्रियाय धवलिततनुता आ तथा पीतमूत्र  
मूत्रस्था मन्त्रिकाद्याश्रिरमपि बहुमूत्राख्यरागे प्रवृद्धे ॥ १ ॥

बहुमूत्र प्रमेह—जिस का बहुमूत्र रोग बढ़कर पुराना हो जाता है उसके शरीर से अधिक गन्ध निकलती है, हाथ, पैर, जिह्वा, नेत्र और कर्ण स्थान में उपदेह (लव क्रिये हुए के समान) होता है, कास, अङ्गों में शिथिलता, अर्ग्वि और पित्तिकायें होती हैं, कण्ठ-ताल और ओठ छराने लगते हैं, दाह और शीत से प्रेम (शीत की इच्छा) होता है शरीर का बर्ण श्वेत हो जाता है, शरीर में अधिक थका (कास) और मूत्र का बर्ण पीला होता है और मूत्र पर मन्त्रिकावा गैरता है । ये सब लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

वाग्मत् —स्वेदोऽङ्गगन्धं शिथिलत्वमङ्गे शय्यासनस्वप्नसुषामिलापः ।  
हृन्नेत्रजिह्वाध्रवणोपवेहो घनाङ्गता केननेशातिपृष्टिः ॥ १ ॥

शीतप्रियाय शलतालुशोपो माधुर्यमास्ये करपाददाहः ।

मविप्यतो मेहगणस्य लिङ्गं मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ २ ॥

शरीर से अधिक स्वेद होना, अङ्ग से गन्ध का निकलना, अङ्ग का शिथिल होना, शय्या पर बैठे रहने, सोथ रहने आदि इस की इच्छा होना, हृदय, नेत्र, ओम, कान इनमें उपदेह शरीर का घन (स्वप्न) होना, केश तथा नखों का अधिक बढ़ना शीत से प्रेम (शीत की इच्छा होना), गला तथा तालु का छरना, मुँह का स्वाद मधुर रहना, हाथ पैरों में दाह होना और मूत्र पर चीटियों का आना ये सब प्रमेहों के होने के लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

दृष्ट्वा प्रमेह मधुर सपिच्छ मधुपमं स्याद् द्विविधो विचारः ।

सतपणाद्वा कफसम्भवः स्थारणीणेषु दोषेप्यनिलात्मको वा ॥ ३ ॥

प्रमेह को मधुर, चिन्ना तथा मधु के समान देखकर दो प्रकार का विचार करना चाहिये । सतपण से कफज मेह होता है और दोषों के (कफ-पित्तादि के) शीघ्र होने से वातज प्रमेह (मधुमेह) होगा है ॥ ३ ॥

सपूपरूपाः कफपित्तमेहाः क्षमेण च वातकृताश्च मेहाः ।

साप्या म स पित्तकृतास्तु साप्याः साप्यास्तु मेदो यदि भातिदुष्टम् ॥ ४ ॥

साप्यासाप्य विचार—वर्तिलिखत पूर्वपूर्वो उदित कफ-पित्त मिथिज मेह तथा वातज मेह क्रम से साप्य नहीं है (अमाप्य है) । पित्तज मेह साप्य है और यदि मेह अधिक दूषित नहीं हुआ हो तो साप्य भी होते हैं ॥ ४ ॥

अथ बहुमूत्रचिकित्सा ।

पिफलायेशुपप्राग्दपाठामधुपुत्ते कृताः कुम्भयोनिरिषाम्भोपि बहुमूत्रं तु शोपयेत् ॥ १ ॥

बहुमूत्र की चिकित्सा—भँवरा, हर्रा, बदेड़ा, बांस के पत्ते, नागरोषा, सुरहनपादो, समभाव केन्द्र काष्ठ कर शीतल होने पर मधु मिलाकर सेवन करनी से इस प्रकार बहुमूत्र घटाता है जिस प्रकार काल्य मुनि के पीने से समुद्र घटत गया था ॥ १ ॥

तारकेधरस—मृतं सूत मृतं पद्म मृतं लोहाभकं समम् ।  
मद्ये-मधुना सार्धं रसोऽयं तारकेधर । मापेक लेहयेत्पौर्द्वेयदुग्धमूत्रापनुत्तये ॥ १ ॥

तारकेधर रस—पारदभस्म वा रसति दूर, धगभस्म, लाहभस्म और भग्नाभस्म, समभाग लेकर मर्दन कर मधु के साथ धोतधर रस लभ । इसमें से एक मापा के प्रमाण की मापा से मधु के अजुपा स चाटो से बहुमूल्य रोग को नष्ट करता है । इसका नाम तारकेधर रस है ॥ १ ॥

आन भैरववटी—

विषोपणकणाटङ्गहिङ्गुलैः समचूर्णकैः । आनन्दभैरवस्यास्य गुणाऽतीसारमेहनुत् ॥ १ ॥

आनन्द भैरव वटी—गुद गीठा पिप, गरिच, पीपरि, गुद टङ्गुण, गुद हिङ्गुल, समान हकर चूर्ण कर एकत्र मदन कर विषिपूर्वक वटी बना इस 'आन न् भैरव' नामक रस के सेवन करने से अतीसार तथा प्रमेह रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

इति षड्मूलप्रमेहप्रवरणं समाप्तम्

### अथ मेदोरोगनिदानम् ।

अप्यायामद्विवास्वप्नरलम्पलाहारसेचिन । मधुरोऽधरस प्राय स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ १ ॥

मेदोरोग निदान—पारथम्य नहीं करने से तिन में सान से, कफकारक आहार के सेवन करने से प्राय परके मधुर अन्न वा रस स्नेह स मिलकर मेद को बढ़ाता है ॥ १ ॥

मेदसाऽऽशृतमागत्वात्पुण्यपरन्ये न धातवः । मेदस्तु धीयते तस्माद्दत्तश्च सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेदको सम्प्राप्ति—मेद क बढ़ने के कारण सब धातुओं क मार्ग के आवृत हो जाने से दूसरे धातुओं ( रस-रक्तादि ) को पुष्टि नहीं होती है केवल मद ही बढ़ता है और मेद बढ़ने से मनुष्य सब कामों में अशक्त हो जाता है ॥ २ ॥

मे-स्विलक्षणम्—

ष्टदश्वान्तुपामोहस्वप्नक्रयनसादनैः । युक्त द्वास्वेददौर्गन्धैरपप्राणोऽक्षयमैधुन ॥ १ ॥

बड़े हुए मे- के लक्षणानि—श्वान शीघ्र २ आना, तुषा, मोह, निद्रा अधिक होना, एषा-एक श्वास का अवरोध तथा अग शिथिल होना, शुषा लगना, स्वेद अधिक होना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, शक्ति का अल्प होना और मैधुन शक्ति का कम होना ये सब लक्षण मेद के बहुत बढ़ जाने पर उपस्थित हो जाते हैं ॥ १ ॥

मेदस्तु सवभूतानामुदरेन्वस्थि तिष्ठति । अत पयोदरे धृष्टिः प्रायो मेदस्त्विनो भवेत् ॥ २ ॥

मेद धातु प्राय करके सब जीवों के उदर और अस्थि में ही स्थित होता है इसलिये मेदस्त्वियों का ( प्रथम ) उदर ही बढ़ना है ॥ २ ॥

मेदसाऽऽशृतमागत्वात्कोष्ठे वायुर्विशोषत । चर-स-धुस्यत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ३ ॥

तस्मात्स शीघ्र जरयत्याहारं काङ्क्षत्यपि । विकारोऽन्वारनुते घोरात्कांक्षिकाल्प्यतिक्रमात् ॥ ४ ॥

मेद के बढ़ने से जठराग्नि की प्रदीप्तता—मेद के बढ़ जाने के कारण सब छोटों के आवृत हो जाने से विशेष कर कोष्ठ में चलती हुई वायु अग्नि को तोष कर देती है इससे उसका आहार पचकर क्षयता रहता है इसलिये आहार किया अन्न शीघ्र पचजाता है और फिर अन्न की हृष्टता होती है । इस हृष्टता के समय अन्न नहीं मिलने पर दूसरे २ घोर विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥

पृताद्युपम्वकरो विशेषादग्निमाहृतौ । पृती हि दहतः स्थूलं घनं दावानलो वथा ॥ ५ ॥

दुग्धित्स्थिता—ये दोनों अग्नि और वायु विशेष कर उपद्रव करने वाले होते हैं और ये स्थूल ( मे-स्वी ) को इस प्रकार दहन करते हैं जिस प्रकार वन की दावाग्नि ॥ ५ ॥

मेदस्वपतीव सपृद्धे सहसैवानिलाक्ष्य । विकारा दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ६ ॥

मेद के अत्यन्त बढ़ जाने से अकस्मात् वायु अत्यन्त कठिन विकारों ( रोगों ) को करके शीघ्र जीव को नष्ट कर देती है ॥ ६ ॥

स्थूललक्षणम्—

मेदोर्मासातिष्ठत्वाच्चलसिक्तगुदरस्तनः । अययोपघयोस्तादो मरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ७ ॥

अतिरथूल के लक्षण—मेद तथा मांस के अधिक बढ़ जाने के कारण जिस मन्त्रकी के निम्न, उदर और स्ता हिलते रहते हैं और उसे वृद्धि (शरीर की रथूलता वा मांस वृद्धि) यथायोग्य नहीं होनी है तथा यथोचित जसाह नहीं होता है । ऐसे मनुष्य को 'अतिरथूल' कहते हैं ॥ ७ ॥  
रथूले स्युर्दुस्तारा रोगा विसर्पाः सभगन्दराः । उवरातिसारमेद्दार्शं रथीपक्षापविकामलाः ॥८॥  
अतिरथूलता से उत्पन्न रोग—रथूलता के कारण मनुष्य को विसर्प, भगन्दर, उदर, अति सार, मेद, अश, इलीपद अपचो और कामला आदि नवदुररोग हो जाते हैं ॥ ८ ॥

कृशलक्षणम्—

शुष्करिकागुदरामीयो धमनीजालसन्तत । त्वगस्थिशोषोऽतिदृशा रथूलपर्या मर स्मृतः ॥९॥  
कृश के लक्षण—जिस मनुष्य के निम्न, उदर, गला, स्रवे हुए हों नस सब फीली हुई दिखाई देवे, र्वचा और अस्थिया घनी हुई हों और पर्व रथूल हों उसे 'अतिकृश' करते हैं ॥ ९ ॥

अथ मेदोरोगचिकित्सा ।

शौत्रेण त्रिकलाक्राय पीतो मेदोहरः स्मृतः । शीतीभूतं तपोप्यागु मेदोहरशौद्रसयुतम् ॥१॥

मेदरोग की चिकित्सा—अंबरा, हरी, बहेडा समान लेकर बाथ बनाकर शीतल कर उसमें मधु का पक्षप देकर पान करने से मेद का नाश होता है और उष्ण कर शीतल किये जल में मधु मिला कर पान करने से भी मेद का नाश होता है ॥ १ ॥

उष्णं भक्षस्य मण्ड वा पितृकृशतनुर्मयेत् । सचप्यजीरकप्योपहिङ्गुसौषर्धलानलाः ॥ २ ॥  
मधुना सक्षय पीता मेदोद्गा वह्निदीपनाः । शार वा तालपत्रस्य दिङ्गुयुक्त विषेसरः ॥

मेदोद्गृद्धिनाशाय भक्षमण्डसमपितम् ॥ ३ ॥

मांस का गरम २ मांड पीने से शरीर कृश होता है अर्थात् मेद नष्ट होता है तथा पाव, जीरा सोंठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध हींग, सौचरनमक, चित्रकमूल इनको सम भाग लेकर पूर्ण कर सत्तू में मिलाकर ( १६ गुने सत्तू में मिलाकर ) मधु के साथ पान करने से मेद को नष्ट करता है और अग्नि को दोग करता है अथवा ताल पत्र के छार को शुद्ध हींग के साथ मिलाकर मांस के मांड के साथ पान करने से मेद वृद्धि नष्ट होती है ॥ १-३ ॥

हरीतकीलीधमरिष्टपत्रचूतस्वषो द्वादिमवक्षकल च ।

प्योऽद्गरागः कथितोऽङ्गनानां जग्न्वा कपायथ मराधिपानाम् ॥ ४ ॥

हरी, लोप, नीम की पत्ती, आम की छाल, अनार की छाल इनका अङ्गराग ( उबटन ) विधि पूर्वक बनाकर लगाने से शिषों के बर्ण की सुन्दरता बढ़ती है इसी प्रकार जामुन के बाथ से राजाभी की सुन्दरता बढ़ती है ॥ ४ ॥

फलत्रिक त्रिकटुक सत्तैललयणान्वितम् । पन्मासाहुपयोगेन कफमेदोनिलापटम् ॥ ५ ॥

फल त्रिकारिभोग—अंबरा, हरी, बहेडा, सोंठि पीपरि मरिच, इनको सम भाग लेकर पूर्ण का तेल और नमक के साथ मिलाकर छै मास तक सेवन करने से कफ-मेद और वायु को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

शुद्धीभद्रमुस्तानां प्रयोगश्चैफलरतथा । सक्कारिष्टप्रयोगश्च प्रयोगो मापिष्टस्य च ॥ ६ ॥

शुद्धिवादि योग—शुरभि और नागरमोषा वा पूर्ण वा त्रिपला का पूर्ण सक्कारिष्ट अथवा मधु के सेवन करने से मेदरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शुष्पगाय लोहम्—

शुष्पणं त्रिकलाघष्य चित्रकं पिद्धमौद्धिदम् । वाङ्गुपी सैग्धय चैव शौवर्धलमयोरजा ॥ १ ॥

मापमाश्रमतरपूर्णं तिष्टेद्वाग्यमधुपुत्रम् । अतिरथीष्यमिदं पूर्णं निहन्त्यगिप्रियधमम् ॥ २ ॥

शुष्पगाय लोह, सोंठि, पीपरि मरिच, अंबरा, हरी बहेडा, पाव, त्रिकटुक, चित्रनमक, बर्द्धि, नमक, वाङ्गुपी कीच सैधानमक, सौचर नमक और शोहमास समान भाग लेकर पूर्ण १६५-मर्दन कर एक मास के प्रमाण की मात्रा से मधु और घृत के साथ मिलाकर चारों से अल्पन् रथूलता को दूर पूर्ण नष्ट करता है और अग्नि को बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

मेदोर्न मेहकुछां रथेप्यप्याधिनिपट्टणम् ।

भाऽऽहते नियमश्चात्र विहारे वा विपीयते । शुष्पगायमिदं पूर्णं रसापममनुष्ठमम् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से भेद, मभेद, गुष्ठ तथा कफम व्यापियों का नाश होता है । इसके सेवन के समय आहार-विहार का कोई नियम नहीं है । यह 'द्रूपणाव चूर्ण' ( लौह ) नामक औषधि घृष्टम रसावा है ॥ १ ॥

गवकगुग्गुलु—इयोपाग्निमुस्तात्रिफलाविष्ट्रैर्गुग्गुलुं समम् ।

पादन्सर्वांशयेद् व्याधीन्मेदरलेप्यामयातजान् ॥ १ ॥

नवक गुग्गुलु—सोठि, पीपरि, मरिच, गगरमोषा, ज्वरा, हर्षा, बहेडा और घाभीरग सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके समान भाग शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर विधिपूर्वक बटी बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के भेदोद, कफज और आम पातन रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लेपोदूर्तने—

द्वितो मोघरसो युक्तरचूर्णदधिपेनजे । प्रलेपा गिह्स्वाद्य देहदौगण्ड्यमुक्कटम् ॥ १ ॥

लेप और उद्वर्तन—मोघरस में समुद्रफन का चूर्ण मिलाकर लेप करना हितकर है । यह देह की तीव्र दुर्गंध को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

घासादृष्टरसालेषाञ्ज्वरचूर्णाव चूर्णितात् । विषयपन्नरसो घासपि गात्रदौर्गण्ड्यनाशा ॥२॥

अरुसा के पत्तों के रस में ज्वररस मिलाकर अथवा बेल के पत्तों के रस को शरार पर लेप करने से गरीब की दुर्गंध नष्ट होती है ॥ २ ॥

हरितकीं तु सग्पिष्य गात्रमुद्गतयधरः । पश्चात्स्नानं प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रदान्तये ॥ ३ ॥

हरां को भलोमौलि पीस कर शरीर पर उद्वर्तन ( उद्वन ) करके पश्चात् स्नान करने से देह का स्वच्छ शमन होता है ॥ ३ ॥

पद्मार्गुण्डीसल लोभ्र शिरीषोशीरकेसरः । उद्गतं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदोद्गमनिवारणम् ॥ ४ ॥

जपूर, श्वेतचन्दा का पद्मफाठ, लोप, शिरीष, रस, गणकेसर सम भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर ग्रीष्मऋतु में उद्वर्तन करने से स्वेद का अधिक होना नष्ट होता है ॥ ४ ॥

षण्ड्यस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिवेपितैः । गात्रमुद्गतं येषथाद्दरीतयया सुपिष्टया ॥ ५ ॥

भूय उद्गतन घृत्वा पश्चात्स्नान समाधयेत् । प्रस्यद्यामुष्यसे क्षिप्र ततस्त्वय समाचरेत् ॥६॥

बदूर के पत्तों को विधिपूर्वक बेल के साथ पीसकर शरीर पर उद्वर्तन करे, फिर हरे को मली-मौलि पीस कर उद्वतन करे पश्चात् स्नान कर लेव । इस प्रकार करने से शीघ्र स्वेद का अधिक आना नष्ट होता है ॥ ५-६ ॥

जम्युदलाजुनतरुप्रसयैः सकुष्ठैरुद्गतं प्रकुर्वते प्रतिवासर च ।

प्रस्यद्यथिदुक्कणिकानिकरानुपह्लादुर्गन्धिता घुपि सस्य-पद न घत्ते ॥ ७ ॥

जाभुन के पत्त, अर्जुन वृक्ष के फूल या फल और कूठ को समान लेकर पीस कर प्रतिदिन उद्वतन करने पर स्वेद आने से शरीर की दुर्गंध नष्ट होती है ॥ ७ ॥

शिरीषलामञ्जकहेमलोभ्रैस्वक्षोपसस्यदहर प्रघर्षः ।

प्रियङ्गुलाभ्राभयचन्दनानि शरीरदौर्गण्ड्यहरः प्रदिष्टः ॥ ८ ॥

शिरीष की छाल या पत्त का फल, रोहिंसतृण (गुलाब कण्ठा), नागकेसर, लोप समभाग लेकर उद्वतन बनाकर शरीर पर लेप करने से त्वचा के दोष तथा स्वेद नष्ट होता है । प्रियङ्गु, लोप, हर्षा और चन्दन समान लेकर पीस कर उद्वतन करने से शरीर की दुर्गंध को नष्ट करता है ॥८॥

शुदात्रिफलाद्य तैलम्—

त्रिफलातिविषामूर्वाविष्ट्रिचित्रकवामकै । निग्धारस्वधपटप्रधामसपर्णनिशाह्वयै ॥ १ ॥

गुडूची-द्रवषाकृष्णाकुष्ठसर्पनागरैः । तलमेभिः सम पक्के सुरसाविरसप्लुतम् ॥ २ ॥

पानाम्यज्जनगण्डूपनस्ययस्तिपु योजितम् । स्थूलतालस्यकण्डवादीन् जयेत्कफकृतात्मदान् ॥

त्रिफलाति तैल—आंवरा, हर्षा, बहेडा, अतीस, मूर्वा मूल, निशाय चित्रकमूल, अरुसा नीम की छाल, अमलतास बन, खितबन की छाल, हरदी, दारु हरदी, गुरुचि, इन्द्रजी, पीपरि, कूठ, ससों, सोठ सम भाग लेकर बरक कर जितना कफक हो उसके चौगुना मूच्छिख तिल का तेल और तेल से चौगुना सुरसादिगण की औषधियों ( श्वेत तुलसी, काली तुलसी, गम्पपलास, बन तुलसी, ग-पत्तण, श्वद्वेष-पत्तण, राई, ससों, काली बन तुलसी, कासमर्द ( कसीजर ), नकधिकनी,



वामीरंग, कायपर, सम्माह, शोनी (श्वेत तथा नीलपुष्प वाली), चन्द्रय्य, इन्दुरकानी (मूषाकानी) बमनेठी, वाकनासा, मकोय, महानिम्ब) का स्वरस वा काय मिलाकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर इस तेल को पान अथवा वा गण्डपधारण, नस्य और वस्ति कर्म करने से श्वोष्य, आलस्य, कण्डु आदि रोग तथा कफज व्याधि नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

महासुगन्धितम्—

चन्दनं कुङ्कुमोद्गीरं प्रियङ्गुपाटिरोधनम् । सुरष्कागुरकरसुरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ १ ॥  
जातीकट्टोलपगानां लवङ्गस्य फलानि च । नालिका नलम् कुष्ठ हरिणुं तगरं प्लवम् ॥ २ ॥  
मख व्याघ्रनख स्पृष्टा यालो दमनक तथा । प्रपौण्डरीकं कर्पूरं समानं द्राणमात्रकै ॥ ३ ॥  
महासुगन्धिघकं क्षेतत्तैलप्रथेन साधयेत् । प्रथममलदीर्गभ्यः कण्डु कुष्ठहर परम् ॥ ४ ॥

महासुगन्धि तैल—लालचन्द, वेसर्, खम, फूल मिषगु, कचूर, गोरोधन, शिलास, भगर कस्तूरी, कपूर, जाविशी, जायफर, वङ्गोत्तरिय, मूली फल, सबग, नजिका नाम की सुगन्धि वृक्ष की छाल ( नरमल ) पीली खस, बूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा नखी, व्याघ्र नमी, श्वशका, सुगन्ध बाला, दीना, पुण्डरिया, कचूर, प्रायेण एक २ द्राण को मात्रा से लेकर बरख कर मूर्च्छित तिल के तेल एक प्रथ में मिलावे और पाकार्यं जल चार प्रथ मिलाकर तैल सिद्ध करे इस महा सुगन्धित तेल के व्यवहार से श्वेदनात्म, मेल, शरीर को सुगन्धि, कण्डु और कुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अनेनाभ्यक्षमात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा । युवा भवति शुष्काद्य स्त्रीणामत्यन्तयष्टमः ॥  
सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेद्भै प्रमदाशतम् ।

बन्ध्याऽऽपि लभते गर्भं पण्डोऽपि पुरुषायते । अयुत्र पुत्रमाप्नोति जीवेच्च दारदां शतम् ॥  
इस तेल के शरीर पर मालिश करने से सप्त ७ वर्ष का वृद्ध भी युवा के समान शीर्षवान् और स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय और सुन्दर देखने के योग्य रूपवान् तथा सौ स्त्रियों के साथ भोग करने की शक्ति वाला हो जाता है, बन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है, अयुक्त पुरुष भी पुरुषत्व को प्राप्त होता है, पुत्र नहीं होने वाले को पुत्र होता है और मृत्यु भी सौ वर्ष तक जीता है ॥ ५-६ ॥

रसाः ।

तत्राऽऽदौ रसमरमयोग —

रसमरमयष्टमांशं छीत्वा मधुना विवेदुः शौद्रम् ।  
कोष्ठीामधुना समेतं श्यौष्य मेदःशृतजयति ॥ १ ॥

रसमरम का योग—पारद भरम अथवा रससिद्ध को एक बरल ( २ रली ) के प्रमाण की मात्रा से छेकर मधु मिलाकर पारदने से और मधु को कण्डोदक में मिलाकर अजुपान करने से मेद से उरप्र शूलता नष्ट होती है ॥ १ ॥

त्रिभूतिरस —

शुतगन्धमयोभरम समसंमेष्य भावयेत् । निर्गुण्डीपत्रतोयेन सुमलीकन्दवारिणा ॥ १ ॥  
सप्त सिद्धममु मापमात्रं रसमनुष्ठमम् । लोघशौत्रेण चारनीपाष्पुर्णमेवां विष्णुमितम् ॥ २ ॥  
पट्कटु त्रिकला पल्लवज्यावशुजयस्य तत् । मेदः शोभाशिमामाशमवातरुष्पमगुम् ॥ ३ ॥

त्रिभूति रस—शुद्ध पारद, शुद्ध रजक, शोभरम समान लेकर प्रथम पारद गंध की सज्जनीकर फिर लोघमरम मिलाकर मर्दन कर मेउदी के पत्रों के स्वरस और सुगन्धीकण्डु क रस से शुकु २ मापित कर सुगा कर पूर्ण कर एक सिद्ध उत्तम रस को एक मया लेकर शोष के पूर्ण और मधु के साथ मिलाकर चाट के और ऊपर से धीवरि, विरामल, शस्य विरामल, सौंठ, मरिच कबरा शर्त, बहदा, पांशु प्रकार के नमक और बाजुपी शोष समान लेकर पूर्ण पर विष्णु प्रमाण ( एक अन्न ) की मात्रा से चाबे तो मेदरोग शोष, म दाग्नि आदयान और कण्डु रोग नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

महाप्रित्तम्—

शुद्धसुतं शुतं तादृशं तालं चोष्ठं समं समम् । अर्धशरीरं विंशं मयं शौत्रेष्टं द्विगुणम् ॥ १ ॥

वहवाग्निरसो नाम स्थीयस्य तुन्दं नियच्छति । पले षीद्ग पले तोयमजुपां पियसदा ॥ २ ॥

वहवाग्नि रस—तुन्द पाक, ताग मरम, तागमरम, तुन्द गच्छक प्रयेक सम भाग छेकर प्रथम पाक गच्छक की कन्वली कर अथ द्रव्यो की गिलाकर मगर के दूध के साथ दिन भर मर्दन कर गुताकर रस लेवे । इसको दो रशी के प्रमाण की मापा से मधु के साथ घाटने से वह 'वहवाग्नि' नामक रस स्पृष्टता और तौंद को नष्ट करता है । इसके रास के पश्चात् पर पर मधु को एक पर जल में मिलाकर अनुपात करना ( पीना ) चाहिये ॥ १ ॥

पष्पापष्यम्—

पुरागदाहपो मुत्रकुटयोद्वाहकोद्वाहाः । लेखना वस्तपरपैत्र सेष्पा मेवृत्विता सदा ॥ १ ॥

पष्पापष्य—पुराने शालिधान का पाक, मूग, मुन्दी, बग बोरी बोरी केना भरित, ये सब भेद वाले रोगियों को सदा सत्त करता चाहिये ॥ १ ॥

अमचिन्ताभ्यवापापवषीद्गजागरणप्रिय । हृन्वपरयमतिरथीह्य वयरवामाफभोजनः ॥ २ ॥

परिभ्रम करना, चिन्ता करना, मैथुन करना, मार्ग चलना, मधु सवन, अधिक जागना, वय तथा सारों का भोजन करना ये सब कर्म स्थला को प्रभाव नष्ट करते हैं ॥ २ ॥

अस्वप्न च स्पृचार्यं च स्प्यायाम चिन्तनानि च । स्थीयस्यमिच्छन्परिषर्षक्तमेणैर्षं प्रयधयेत् ॥

निद्रा का त्याग, मैथुन, परिभ्रम और गिता को स्थला नष्ट करने की इच्छा करने वाले को क्रम से बढ़ाना चाहिये ॥ ३ ॥

इति भेदोदरप्रकरणं समाप्तम्

### अथोदरनिदानम् ।

रोगा सर्वेऽपि मन्देऽग्री सुतरामुदराणि तु । अजीर्णान्मलिनैर्धाञ्जैर्जायन्ते मलसचयात् ॥ १ ॥

उदररोग निगम—प्राय करके सभी रोग मन्दाग्नि मूलक होते हैं, उसमें भी उदर रोग तो अवश्य ही मन्दाग्नि मूलक होते हैं । उदर रोग अजीर्ण से, मलिन ( दूषित ) अशो के गाने से तथा मल के संचय से भी होते हैं ॥ १ ॥

तत्रातरे—

अतिसञ्चितक्षोपाणां पापकर्म च कृषंताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २ ॥

पापादि० दोषो क अत्यत दूषित होकर संचित हो जाने से, पाप-कर्मों के करने से और विशेष कर मन्दाग्नि से उदररोग होते हैं ॥ २ ॥

संभ्रासिमाह—रुद्ध्या स्वेदाभ्युवाहीनि क्षोपा क्षोतांसि सञ्चिताः ।

प्राणाभ्यपानान्मन्दाप्य जनयन्त्युदर नृणाम् ॥ ३ ॥

उदररोग को सम्प्राप्ति—दूषित हुए वातादि दोष संचित होकर स्वेद तथा अभ्युवाही क्षोतों को रोककर प्राणवायु, अग्नि तथा अपानवायु को दूषित करके मनुष्यों को उदररोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३ ॥

सुप्तते—सप्यरूप घल्वणकाङ्क्षा बलीविनाशो जठरेऽपि राज्य ।

जीर्णपरिज्ञानविदाहवस्यां घरती रुजः पादगतश्च शोफ ॥ ४ ॥

जब उदररोग होने को होता है तो उसके पहले बल तथा कर्णों को आकाङ्क्षा होती है, बली ( शिवली ) में दोष आ जाता है, उदर पर रेखा हो जाती है, अन्न के जीर्ण होने का ज्ञान नहीं होता है, दाह-बलिन स्थान में पीडा और पैरों में शोथ होता है ॥ ४ ॥

उदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

आम्मान गमनेऽशक्तिर्देहव्य दुर्बलामिता । शोफ सद्वमद्धानां सङ्गो घातपुरीषयो ॥ ५ ॥

दाहस्तदा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ।

उदररोग के सामान्य लक्षण—उदर में आम्मान खलने को शक्ति की कमी, दुर्बलता मन्दाग्नि, शोथ, अशो में शिथिलता अधोवायु तथा मल का अवरोध, दाह, तन्द्रा, ये सब लक्षण प्राय करके सभी उदररोगों में होते हैं ॥ ५ ॥

१ । -

निर्जलोदरलक्षणम्—

सर्वं स्वतोयमरुणमशोफ नातिमारिकम् । गवाक्षित शिराजालैः सदा शुद्धगुदायते ॥ १ ॥

निर्जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग के रोगी के उदर में कहीं भी जल नहीं हो, बर्षे शरीर का अरुण हो ( शरीर पर रक्त की लालिमा हो ) पेट में शोष नहीं गही हो, पेट अधिक भारी नहीं हो, मितरों का जाल दिम्बाई पड़ता हो और पेट सदा शुद्धगुदाता हो उसे 'निर्जलोदर' कहते हैं ॥ ६ ॥

उत्तराणा सख्या—

पृषण्वीपै समस्तैश्च प्लीहवद्वचतोदकै । सभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां छिद्रं पृषक् शृणु ॥ ७ ॥

उदररोग की सख्या—पृषक् २ दोषों से ( वातादिक पृषक् २ ) तीन, समस्त दोषों से ( सधि पान से ) प्लीहा से एक, बद्ध से एक, क्षय से एक और जल से एक इस प्रकार आठ तरह के उदररोग होते हैं इनका पृषक २ लक्षण निम्न है ॥ ७ ॥

यातोदरलक्षणमाह—

सद्य घातोदरे शोफ पाणिपद्माभिकुचिषु । कुक्षिपाशोदरकटीपृष्ठरुपर्वभेदनम् ॥ ८ ॥

शुष्ककासोऽङ्गमदोऽधो गुहता मलसंप्रहः । श्यावास्त्राण्यग्नादिवमकस्माद्बुद्धिहासवत् ॥ ९ ॥  
ससोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् । आभ्यातवृत्तिष्वङ्गुदमाहृतं प्रकरोति च ॥ १ ॥

वायुश्चात्र सरयश्चाब्दो विचरोऽसर्वतो गतिः ॥ १० ॥

बातोदर के लक्षण—जिस उदररोग में हाथ-पैर-नाभि और कुक्षिस्थान में शोष कुछि पार्श्व देश, उदर, कटि, पृष्ठ इन स्थानों में पीड़ा, पर्वों में छेदने के समान पीड़ा और घृणा वास होता है, शरीर सूटता है शरीर के अधोभाग ( नाभि से नीचे ) में गुरुता और मल का अवरोध हो जाता है, स्वचा आदि ( स्वचा नरम नेत्रादि ) श्याम वा अरुण वर्ण के हो जाते हैं और अर्थात् उदर में वृद्धि और हास होता है ( पेट फूलता और कम होता है ), उदर में तोड़ ( घूर्ण गुमाने के समान पीड़ा ) तथा भेद ( फटने के समान ) होता है, पतली तथा काली शिराओं से उदर घिरा रहता है, फुले हुए चमड की पैली पर ठोकने के समान उदर ठोकने से उदर परता है और उदर में वायु घोड़ा तथा उदर करता हुआ सर्वत्र विचरता रहता है उसे वातोदर कहते हैं ॥

पेत्तिक्रमाह—पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छां घादस्तृक्कुकार्यता ।

अमोऽतिसारः पीताय स्वगादायुदरं हरित् ॥ ११ ॥

पीतसाग्रशिरानद सरयश्च सोम्यं दृष्टते । धूमायते मृदुस्पर्शं चिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १२ ॥

पित्तोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में ज्वर मूर्च्छा दाह तथा गुरु का रवाद पड, अम और अतिसार होता है, स्वचा, नल, नेत्रादि पीत वर्ण के होते हैं और उदर हरे रंग का हो जाता है, पेट सद्य वर्ण तथा पीत वर्ण की शिराओं से घिरा रहता है, रवे, उ र में उष्मा तथा दाह होता है, धूये के गंध के समान गंध का बकार भाग है, रपर्श करन से उदर मृदु भाग होता है, शीम पाक होता है ( अर्थात् जलोदरत्व की प्राप्त हो जाता है ) और पीड़ा होती है, उसे पित्त के कोप का रोग ( पित्तोदर ) कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

श्लेष्मिन्माह—श्लेष्मोदरेऽङ्गमदन र्नाप वायुगुरीरयम् ।

निद्रोत्थनेऽतोदधिः श्याम कामं शुष्कान्यगादिता ॥ १३ ॥

उदरं स्तिमित रिनग्ध शुषलराजीततं महत् । चिरामिगृद्धि कर्मिं क्षीतस्पर्शं गुरु विषयम् ॥

श्लेष्मोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में अग्नो में र्नाभि, सूक्ष्मता, शोष, गुरुता निद्रा, उबकाह, अरुण, श्याम और काम होता है तथा स्वचा, नल, नेत्रादि श्लेष्मवर्ण के हो जाते हैं, उदर अग्नि कपड़े से निज की भाँति रिनग्ध रवण तथा बड़ी रोगाओं से घिरा हुआ रहता है पेट देर में बढ़ता है तथा रसों का पर कठिन, शीत, गुरु और शिबर काष्ठ होता है, उसे कफ के कोप का उदर रोग अर्थात् श्लेष्मोदर कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

साधित्राधिकमाह—त्रिषोषपाणं मक्षरोममृषविदालवैनुक्तमगाऽपुष्ठा ।

यस्यै प्रव्यङ्गमपरयो गारांश्च दुष्टामुदूपीविषमेवनाहा ॥ १५ ॥

तेनाऽऽद्य रक्तं पुषिताश्च दोषाः कुर्युः सुषोरं ञ्ठर विच्छिन्नम् ।

सप्लीतवातातपदुर्द्विषु विरोपतः कुप्यति दृष्टते च ।

स चाऽऽसुरो मूच्छति सप्रसक्त पाण्डुः कृताः शुप्यति घृणया च ॥ १६ ॥

मूप्योदर कीर्तितमेतदेव प्लीहोदर कीर्तयतो निषोघ ।

सपिपातोदर के लक्षण—दुष्ट प्रकृति की स्त्रियां ( अथवा दुष्ट पुरुष ) अपना राग, रोम, गूद मल तथा आर्तव, अन्न तथा पात्रा वी वस्तुओं में मिलाकर पति अथवा अन्य किसी पुरुष को खिला देती है ( पति या अन्य पुरुष को अपने बस में करने के लिये किये किये अपना आर्तव आदि खिला कर अपने बस में बरती है ) उससे अथवा राग आदि के द्वारा विष ( किसी भण-पान के संयोग से दिया हुआ ) मछन करने से अथवा दूषित जलादि के सेवन से भगया दूषी विष के सेवन से रक्त शीघ्र दूषित हो जाता है और तीनों दोष कुपित होकर अत्यन्त कठिन त्रिदोषज उदर रोग को करते हैं उससे उदर में शीतकाल, वायु के समय, आतप (धूप) के समय और दुर्दिन ( बादल पानी आदि के समय ) में विशेष कर रोग का कोप होता है, तथा उदर में दाह होता है और रोगी मूर्च्छित होता रहता है, तथा पाण्डुवर्ण का और दुर्बल हो जाता है, तथा से मुल खटा करता है । इसको सपिपातोदर वा दूप्योदर भी कहते हैं । आगे प्लीहोदर कहेंगे ॥१५-१६॥

प्लीहोदरस्यदुर्द्विषुदरलक्षणम्—

विद्याद्यमिष्यद्विदरस्य जन्तोः प्रबुधमस्यर्धमसृक्कफश्च ॥ १७ ॥

प्लीहामिषुद्धिं पुरताः प्रबुधौ प्लीहोत्पमेतज्जठर यद्वन्ति ।

सद्भ्रामपारव परिपृद्धिमेति विरोपतः सीदति चाऽऽसुरोऽत्र ॥ १८ ॥

मदज्वराग्नि कफपित्तलिङ्गैरुपमुतः शीणयलोऽतिपाण्डुः ।

सगयान्यपारयं यद्वृत्तिं प्रदुष्टे शैवं यद्दृष्टव्युदरं तदेव ॥ १९ ॥

प्लीहोदर के लक्षण—जो मनुष्य दाहकारक तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं उनके रक्त और कफ दूषित होकर प्लीहा को बढा देते हैं, इस बढे हुए प्लीहा को प्लीहोदर कहते हैं । यह प्लीहा बायें ओर पेट में बढती है जिससे रोगी विशेष बढ पाता रहता है और इसमें मन्द र उदर और मन्दाग्नि होती है, यह रोग कफ और पित्त के लक्षणों से युक्त रहता है, रोगी का बल अत्यन्त क्षीण और शरीर पाण्डु हो जाता है ये सब लक्षण प्लीहोदर के हैं । साथ ही दाहिने पार्श्व में यक्ष्म जब दूषित हो जाय तब उसे 'यक्ष्मुदर' कहते हैं ॥ १७-१९ ॥

कफजप्लीहोदर—

प्लीहा निषेदनः श्वेतकठिनः स्थूल एव च । महापरिग्रहः क्षीतरलेष्मसभव हृष्यते ॥ २० ॥

कफज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में पीड़ा नहीं होती हो, ध्वेन तथा कठिन स्थूल, बट्टन बढी ( प्लीहा ) हो वह शीत तथा कफ से होनेवाली प्लीहा कही जाती है ॥ २० ॥

सज्वरः सपिपासश्च श्वेदनस्तीग्रयेदन । पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते ॥ २१ ॥

पित्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में उदर तथा, श्वेद और कठिन पीड़ा होती हो, और विशेष कर शरीर का वर्ण पीला हो उसे 'पैत्तिक प्लीहोदर' कहते हैं ॥ २१ ॥

नित्यमानस्रकोष्ठश्च नित्योदावर्तपीडितः । वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा घातिक उच्यते ॥२२॥

वातिकप्लीहादर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में नित्य कोष्ठ में आनाह उदावर्त की पीड़ा और वेदना हो उसे 'वातिक प्लीहोदर' कहते हैं ॥ २२ ॥

रक्तजप्लीहोदर—

श्लमोऽतिदाहः समोहो वैषण्यं गात्रगौरयम् । रक्तोदर भ्रमो मूर्च्छां श्लेय रक्तजलक्षणम् ।

त्रयाणामपि रूपाणि प्लीह्वयसाध्ये भवन्ति हि ॥ २३ ॥

रक्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में कलान्ति अत्यन्त दाह और मोह हो, वर्ण विवर्ण हो जावे शरीर भारी रहे उदर का वर्ण लाल हो, भ्रम और मूर्च्छा हो उसे रक्तज प्लीहोदर कहते हैं । ये तीनों रूप प्लीहा के असाध्य अवस्था में होते हैं ॥ २३ ॥

तत्र दोषसम्बन्धमाह—

उदावर्तस्जानाहैर्मोहसृष्टदहनज्वरैः । शौरवाहधिकटिन्वैविध्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ २४ ॥

प्लीहोदर के दोष सम्बन्ध—यदि प्लीहोदर में उदावर्त, पीडा और आनाह हो तो बल रोग का सम्बन्ध जानना चाहिये । यदि मोह, रुषा, दाह और ज्वर हो तो पित्तदोष का और यदि गुरुता, भ्रमचि और कठिनता हो तो कफ दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये ॥ २४ ॥

बद्धगुदमाह—यस्याग्रमन्त्रैर्यलेपिभिर्वा घालाशसभिर्वा विहित यथावत् ।

सञ्जीयते तस्य मलः सदोष दानैः दानैः सङ्करवच नाहधाम् ॥ २५ ॥

निरुध्यते यस्य गुदे पुरीष निरेति कृच्छ्राद्यपि चाक्षयमवपम् ।

हृद्याभिमध्ये परिच्छिमेति तस्योदर यद्गुदं यद्वृत्ति ॥ २६ ॥

बद्धगुदोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में मनुष्य की आंत अन्न से अथवा उपरसे दी पदार्थों ( चिकने पदार्थों ) से, वा बालों से, पत्थरों से ( अणादि के साथ जो पेट में चला भाते हैं उससे ) आच्छादित हो जातो है उसका मल दोषों सहित धीरे २ संचित होकर आंत की नादियों में जम जाता है, इस कारण उसकी गुदा में पुरीष का अवरोध हो जाता है और बड़ी कठिनता से मोड़ा २ मल निकलना है, इसके अवरोध होने से हृदय और नाभि के मध्य में उदर बद्ध जाता है इसको 'बद्ध गुदोदर' कहते हैं ॥ २५-२६ ॥

पुतद्रुहोदर तेन स्तुर्बाह्विज्वरतृद्धम । कासश्वासोरसदा रग्धृद्याभिनिरससु च ॥ २७ ॥

मलसद्गोश्रचिरद्धविरुदर मूत्रमास्तम् । स्थिरं नीलाहणशिरारोमराजिबिराजितम् ।

नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छावृत्ति जायते ॥ २८ ॥

बद्ध गुदोदर में दाह, ज्वर, रुषा, भ्रम, काम, आस, ऊरुस्थान में अवसक्तता, हृदय-नाभि स्थान और सिर में पीडा होती है, मल का अवरोध, भ्रमचि, घमन, उदर में वायु का मूछ होकर रहना ( वायु का गुम होना ), पेट का स्थिर रहना तथा नील वर्ण अस्त्रावर्ण की सिराओं और रोम की पक्तियों से भिरा रहना आदि होता है तथा प्राय करके नाभि के ऊपर गौ के पूछ की आर्तव का बन आना ये सब लक्षण होते हैं ॥ २७-२८ ॥

धनोदरमाह—दाहय सथाऽश्रोपहित यदभ्य मुक्त भिनरत्यागतमन्यया वा ।

तरमाच्छतोऽभ्रगतमखिलप्रकाशः श्याय धयेद्वै गुवत्समु भूयः ॥ २९ ॥

पानेरधमोदरमेति वृद्धि निस्तुद्यतेऽतीय विदाहयते च ।

पुतपरिघाद्युदरं प्रदिष्ट दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ३० ॥

धनोदर के लक्षण—जिस उदररोग में भोजन किये हुए अन्नादि के साथ काट बद्ध भागि को आँस में प्राप्त होकर टेढ़े-मेढ़े होने से आँसों को भेदन कर देते हैं जिससे आँसों से बल के समान स्वास होता है और बारबार गुन के बारते बाहर निकलता रहता है और मांसस्थान के नीचे उदर बद्ध जाता है, उसमें घर्ष चुमान के समान और पटने के समान पीडा होती है इसको धनोदर अथवा परिघावी उदर कहते हैं । अब भागेजलोदर कहेंगे ॥ २९-३० ॥

दवाशरमाह—घा स्नेहपीतोऽप्यनुपासितो वा यान्तो विरिञ्चोऽप्यघपा निरुधः ।

विषेज्जलं दतिलत्नाशु शस्य द्योतांसि दुष्यन्ति हि सद्दामि ॥ ३१ ॥

स्नेहोपल्लिसेष्वथ पापि तेषु दकोदरं पूर्ववदमुपैति ।

स्निग्धं मद्धत्परिबृचनानि समानसं पूणमिव मुना च ॥ ३२ ॥

यथा दतिः शुभ्यति क्वपते च सद्दाम्यते चापि दकोदरं तप ॥ ३३ ॥

जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग में जो कीर्ण मनुष्य स्नेहवाग करके, अनुशासन बन्धि केरत घमन कर, निरेचन कर अथवा त्रिस्वरित सेकर शीघ्र हो जब पी लेना है उसके अलवाही रोग ( बल को बहान करके बाणी नादियां ) दूषित हो जाते हैं और उन अलवाही रोगों में शीघ्र के लित होने से पूर्वरीग ( धनोदर ) के समान ( नाभि के नीचे उन्नत या बद्ध जाता, गुदा से स्वास होना आदि लक्षणों द्वारा ) जलोदर रोग हो जाता है जिसमें पेट तिनथ, बद्ध और नाभि के पारो और उन्नत हो जाता है, अथवा उदर तथा गुमा जब से परिपूष होता है और जिस प्रकार जल घमले की पैली ( ग्लान आदि ) जल से पूर्ण रहने पर शुभित होती है, शौचनी है और उन्नत करती है उसी प्रकार जलोदर वाले का उदर भी शुभित, क्लिप्त और उन्नत होगा रहता है । ये सब जलोदर के लक्षण हैं ॥ ३१-३३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

जामनेषोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रममं मतम् । षट्मरस्तदजातास्तु यत्नारसाध्यं नवोत्थितम् ॥

उदररोग के साध्यासाध्यता—प्रायः बरके सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कष्टसाध्य माने जाते हैं । परन्तु यदि रोगी बलवान् हो, पेट में जल नहीं उत्पन्न हुआ हो और रोग नया ही उत्पन्न हुआ हो तो यत्न से साध्य होता है ॥ ३४ ॥

अक्षौफमरुगामासं सप्तचन्द्रमातिभारिकम् । सदा गुदगुदायुक्तं शिरागालगयादितम् ॥ ३५ ॥  
नाभिं विष्टम्बं वायुस्तु येनं कृत्वा प्रगश्यति । दृढहृणवटीनाभिगुदं प्रयेवशूलिनं ॥ ३६ ॥  
यर्कसं धृजते घातं नातिमन्वे च पात्रके । लोहस्यापि रमे पादपे मूत्रेऽप्ये संहृते प्रिति ॥३७॥  
अजातोदकमित्येतेर्युंष विज्ञाय लक्षणैः ।

जब तक उदर में शोथ नहीं हो उदर का ना भरण हो, दण्ड करता हो, अन्न खाती नहीं हो, सदा गुद गुद करता हो, मिराभों से थिरा हुआ हो, नाभि को विष्टम्ब करके वायु वेग करे और नष्ट हो जाये, हृदय, वक्ष्य, वटिभाग, नाभि और गुदा का प्रयेव में दूल् हो, पेट से वेगवाग वायु निकले, अग्नि मन्द नहीं हुआ हो, उदर के पंचल होने पर भी रस (जल) का अंश कम हो, मूत्रकम हो और मल रसा हुआ हो, ये लक्षण जिस रोगी को हों उसे अज्ञान उदक समझना चाहिये क्योंकि उसके उदर में जल नहीं आया है यह जानना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

सुषेष्टुद्रिशातिमात्रं शिरासर्धानमेव च । दृक्पूर्णादतिशोभरपर्शं जातोदकं भयेत् ॥ ३८ ॥

जिसकी शोथ अधिक बढ़ गयी हो, शिरायें पटपर नहीं टिकाने दें और पानी से भरे हुए चमड़े की थैली के समान जिसके पेट में शोथ होता हो और बैसा ही रूप धरने पर भी घात हो उसे जातोदक रोग समझे क्योंकि उदर में जल आमाने के ये लक्षण हैं ॥ ३८ ॥

विशेषसाध्यत्वमाह—

पञ्चाद्रदगुदं सूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा । प्रायो भवायभापाय च्छिद्राग्रमुदरं मृणाम् ॥ ३९ ॥

एक पक्ष (२५ दिन) के पश्चात् बद्धगुद (बद्ध गुनोदर) और जिसमें जल आ गया हो ऐसा सभी उदररोग तथा छिद्राग्र (क्षतोदर) उदररोग ये सब प्रायः मनुष्यों के नाश के लिये ही होते हैं ॥

पुनरप्यसाध्यत्वमाह—

शूनाच कुटिलोपरश्चमुपविलसतनुत्वचम् । षष्ठशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ४० ॥

जिस उदर रोगी के आँसों में शोथ और रिंग देना हो गया हो, त्वचा (पट की) आर्द्र और पतली और बल, रक्त, मांस और अग्नि क्षीण हो गये हों, उस त्याग देना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्श्वमद्भ्राष्ट्रविद्वेषशोभातीसारपीडितम् । विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्वमाणं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

जिसको पार्श्वमद्भ्राष्ट्र (दोनों पसलियों का टटा होना) अन्न से देह (अवधि) शोथ और अविहार हो और विरेचन कराने पर भी जिसका उदर पूर्ण ही रह उसे त्याग देना चाहिये ॥४१॥

अथोदरचिकित्सा ।

सत्राष्टाशुदराणि—पृथग्दोषैः समतैश्चप्लीहयक्षुत्तोदकैः ॥ १ ॥

उदररोग की गणना—पृथक् २ दोषों से अर्थात् वात-पित्त और कफ से तीन, समस्त अर्थात् त्रिदोष से एक और प्लीहा, बद्ध, क्षत तथा जल होने वाले उदररोग एक २ इस प्रकार ८ प्रकार के उदररोग होते हैं ॥ १ ॥

सत्रं पृथग्दोषैर्घातपित्तकफैः सनिपातेनैकम् । प्लीहोदरं यद्रोदरं क्षतोदरं जलोदरमिति संप्रज्ञा भवन्ति । सेव्यसाध्यं यद्रगुच परिक्षापि च । पटवशिष्टानि कृद्रसाध्यानि । सर्वाण्येव च प्रत्यासवायोपक्रमेत् । सेव्याद्यक्षुत्पूर्वो भेषजसाध्यः । उत्तरः शास्त्रसाध्यः । कालप्रकर्षास र्थाण्येव । शास्त्रसाध्यानि भवन्ति षड्विंशत्यनि वा, इति सुश्रुतात् ॥

यहाँ पर पृथक् २ दोषों से होने वाले अर्थात् वातादर, पितादर और कफोदर कहे जाते हैं इन प्रकार ये तीन हुए और सनिपात से (तीनों दोषों से) होने वाला सनिपातोदर एक और प्लीहोदर एक, बद्धोदर एक, क्षतोदर एक और जलोदर एक, इन संज्ञाओं वाले आठ प्रकार के उदररोग होते हैं । इन आठों में 'बद्धशुद' और 'परिक्षाधी' असाध्य हैं और शेष छ कष्टसाध्य हैं ।

सब उदर रोगों को असाध्य ही समझकर चिकित्सा करनी चाहिये । इनमें आदि के पार ( वातोदर पिप्पुदर, कफोदर और साम्निपातोदर ) भोजन से ( भोजधि चिकित्सा से ) माया साध्य होते हैं और अन्न के चार प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर दाल चिकित्सा से साध्य होते हैं । समय बौत जाने पर ( पुराने होने पर ) सभी उदररोग दाल से मिट्ट होने वाले हो जाते हैं अथवा त्याज्य ( असाध्य ) हो जाते हैं ॥

वातोदरचिकित्सासाह—

उपक्रमेक्षिपद्मोपबलकालविशेषविवृत् । स्थिरादिमर्षिपः पान स्नेहं स्वेद विरेचनम् ॥ १ ॥  
 बधन याससा ग्लानौ शास्त्रवनेनोपनाहनम् । पेया यूपरसासं च योज्यं वातोदरे कमात् ॥२॥  
 वातोदर की चिकित्सा—उदर रोग में दीप ( वाताग्नि ), रोगी तथा रोग का बल और वात आदि का विशेषण वैष चिकित्सा करे अर्थात् इनका विचार कर चिकित्सा करे । वातोदर में 'स्थिरादि सर्षिपू' का पान कराना चाहिये, स्नेहन, स्वेदन, और विरेचन देना चाहिये और क्रम से वातोदर में बल से उदर को बौधना चाहिये । शास्त्रण स्वद के द्रव्यों से उपनाह कराना चाहिये, तथा पथ्य के लिये पेया, यूष, मांसरस तथा अन्न का व्यवहार करना चाहिये ॥ १-२ ॥  
 परण्डतैलादियोग—पूरण्डतैल दशमूलमिथ्र गोमूत्रयुक्त त्रिफलारजो वा ।

निहन्ति वातोदरदोषशूल कायः समूत्रो दशमूलजम् ॥ १ ॥

परण्ड तैलादि योग—परण्ड के तेल को दशमूल के बल ब्राह्म में मिलाकर पान कराने से अथवा त्रिफला के समान मिश्रित चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवा कराने से अथवा दशमूल के ब्राह्म में गोमूत्र मिलाकर पान कराने से वातोदर शोथ और शूल नष्ट होते हैं ।

दशमूलादियोग—

दशमूलकपायेण धीरवृत्तिः शिलाजसु । सघो वातोदरी श्रीरमौद्रमाज च केवलम् ॥ १ ॥  
 दशमूलादियोग—दशमूल के वाप में गुड शिलाजोत मिलाकर सेवन करने और केवल दूध ही पथ्य राने से अथवा केवल ऊँट या बकरी के दूध के सेवन करने से शीघ्र वातोदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

कुष्ठाचूर्णम्—कुष्ठ दन्ती यमपारं स्योर्षं त्रिहृषणं पथ्याम् ।

आञ्जारीं क्षीप्यर्कं द्विगु स्वर्जिकां चप्यधिरक । दृण्टीं चोष्णाग्मसा पीरया वातोदररुजापदाम् ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कुष्ठ, दन्तीमूल, यमपार, सौंठि, पोपरि, मरिच, सेषा नमक, सौंथर तमक, विह्वनमक, बध, जीरा, अवारन गुड हींग, सज्जी, चण्ड, चित्रकमूल और सौंठि मगमाग का चूर्ण उष्णोदक के अनुपान से सेवन कराने से वातोदर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

पूनासागुद्रावं चणम्—

सामुद्रसौवर्षलमैम्भवानि चारो यवात्तामन्नमोद्भागाः ।

सपिप्पलीचित्रकशङ्खपेर द्विगु विद्वद् च समानि कुर्वात् ॥ १ ॥

पूतानि चूर्णानि घृतप्लुनानि सुधीत पूर्वं कवहाग्मसात् ॥

यातोदरं शुद्धममजीर्णमुक्त वातप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ॥ २ ॥

अद्वीसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगदर चापि निहन्ति सत् ॥ ३ ॥

सामुद्रादि चूर्ण—साष्टद गमक, सौंथर तमक सेषा नमक, दवात्ता, अजमोद, पीपरि, चित्रक मूल, सौंठि, गुड हींग और बामोदय समभाग लेकर बरिच पूर्वक चूर्ण कर इन में मिलाकर मीजन के पूर दालन ( जमिन ) मात्रा में खावे तो इससे वातोदर, गुन्, अजीर्ण, वात का प्रकोप, दुष्ट ग्रहणी रोग, दुष्ट अर्ज ( हृदि अर्ज ), पाण्डु रोग और भगदर ये सब रोग जोर गट हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

दशमूलकपायम्—

दशमूलीकपायेण शरानानागरदादमिः । पुष्पं

दशमूलादि घृत—दशमूल का ब्राह्म

और दोनों पुनर्वास ( स्वेद तथा रक्त ) र

घृत मिट्ट कर सेवा करने से वातोदर नष्ट

पुन मिट्ट  
 १ घृत  
 २ रक्त

४ १ ॥

३, देवता

५५५ कर

पित्तोदरम्—

पित्तोदरे च वल्लिं पूर्णमेव विरेषयेत् । पयसा त्रिपृताकण्डकेनोरुमृकश्रुतेन वा ॥ १ ॥

सातलाश्रायमाणाम्यां श्रुतेनाऽऽरवधेन च । घृत पित्तोदरे पेय मधुरीषघसाधितम् ॥ २ ॥

पित्तोदर की चिकित्सा—पित्तोदर में यदि रोगी बलवान हो तो प्रथम उसे विरेचन देना चाहिये । इसके बाद १-दूध के साथ त्रिनितावचर के अथवा २-एरण्ट के फलों के अथवा ३-सातला (रजुही विशेष) श्रायमाणा और अमृतास फल के अथवा ४-मधुर गन्ध की ओषधियों के मूक के साथ विधि पूर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर पित्तोदर नष्ट होता है । ( श्लो २ आचार्य इन चारों योगों को दो ही मानते हैं ) ॥ १-२ ॥

स्याप्रिविहप्रिफलासिद्ध सर्पिण्यां विष्टदये ।

घृतिनपर्णीषलाभ्यामीलापानागरसाधितम् । क्षीर पित्तोदर हन्ति जठर कतिभिर्दिन ॥ ३ ॥

निशोध और अमरा, हरी, बहेड़ा, इनके बल्क के साथ सिद्ध किया घृत सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर लाम होता है तथा घृष्टपर्णी, बरिभारा, छोटी कटेरी, लाल और सोंठ इन ओषधियों के साथ क्षीर पाक विधि से सिद्ध किया दूध सेवन करने से पित्तोदर तथा कतिपय पैचिक उदर के उपद्रवों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

श्लेष्मोदरम्—

श्लेष्मोदरिणु तु पिप्पयवादिस्त्रिदेन सर्पिणा स्नेह नीत्वा स्नुहीक्षीरानुलोम्यत्रिकटुकमूत्र-  
सैलमुक्तादिकापेनाऽऽस्थापयेदनुवासयेद्यथा कटिष्टमर्पणामलफलीजैषोपनाहयेदुदरम् । भोज  
येश्चैत्रा त्रिकटुकप्रगाथेन कुलितययूपेण पयसा वा श्येदयेद्याभीष्टम् ।

कफोदर की चिकित्सा—कफोदर रोग वाले को पिप्पवादि गण ( पीपरि, पिपरा मूल, मरिच, गज पीपरि, सोंठि चित्रक मूल, रेणुका, रासना, अजमोदा, ससों दीग, बमनेठी, पुरहन पादो, इन्द्रजी, जोरा, बवाहन, मूवांमूल, अतोस, कुटकी और बाभीरंग ) की ओषधियों के काथ के साथ विधि पूर्वक घृत सिद्ध कर पान कराकर स्नेह कर, धूसर के दूध के साथ सिद्ध किये घृत से अनुलोमन कर, सोंठि, पीपरि, मरिच, गोमूत्र और आस्थापन वर्ग में कई हुए मुस्तादि वर्ग के काथ के साथ विधि पूर्वक सिद्ध किये हुए तेल से स्थापन बस्ति और अनुवासन बस्ति देवे । पश्चात् पक्व, कट्ट, ससों, मूली बीज इनको पीसकर पेट के ऊपर उपनाह देवे । कुलथी के यूप में साठि, पीपरि और मरिच का चूर्ण प्रचुर प्रमाण में मिलाकर भोजन करावे ( पथ्य देवे ) अथवा दूध पिलावे और पूर्ण स्व- देवे ।

श्लेषोपयुक्तं कुलितयाम्बु पयो वा भोजने हितम् ।

गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णांवरकृतिभिस्तथा । सक्षीरसैलपानैश्च शमयेत्सकफोदरम् ॥ १ ॥

भोजन के लिये सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिला हुआ कुलथी का यूप अथवा दूध देना हितकर है और गोमूत्र तथा अरिष्ट पिलाने से चूर्ण सेवन से, लौह भरम मिश्रित औषध देने से और दूध के साथ तेल मिलाकर पान कराने से कफोदर रोग शमन होता है ॥ १ ॥

दूधोदर त्रिलिङ्गमुदरं च—

सन्निपातोदरे कार्यं एष एव क्रियाविधिः । हरीतक्यमयाकण्डकभावितां मूत्रमम्बुना ॥ १ ॥

श्वेत सर्वोदरप्लीहमेहार्शो कृमिगुहमनुत् । सप्तलाशङ्किनीसिद्ध घृत चात्र विशोधनम् ॥ २ ॥

दूधोदर, मन्निपातोदर की चिकित्सा—सन्निपातोदर में यही क्रिया करनी चाहिये । हरे का सेवन करना चाहिये और हरे के वरक से भावित गोमूत्र को जल के साथ सेवन करने से ( पान करने से ) सब प्रकार के उदर रोग प्लीहा, प्रमेह, अर्श, कृमि तथा गुल्म नष्ट होते हैं । और सप्तला ( स्नुही विशेष ) और शक्विनी ( यवतिका अथवा श्वेत अपराजिता ) इनके कण्डके से विभिन्न सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से विशेषण होता है ॥ १-२ ॥

श्वतीद्रवन्तीफलज तैलं दूधोदरी पिबेत् । नागरत्रिफलाप्रस्थ घृत सैल तथाऽऽहकम् ॥ ३ ॥

मस्तुना साधयित्वा तु विषेःसर्वोदरापहम् । कफमाकृतसम्भूतं गुहम चैव प्रशाम्यति ॥ ४ ॥

दन्ती के फल और द्रवन्ती के फल का तेल दूधोदर में पीने से लाम होता है । तथा सोंठि और त्रिफला का कण्डक एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत ४ प्रस्थ, मूर्च्छित तिष्ठ का तेल ४



शारादि योग—यवागार, विड नमक और पीपरि के समान भाग चूर्ण को पुत्रिहरण के स्वरस को कुछ गरम कर उसके अनुपान से बलानुसार माथा स प्राण सेवन करने से दृश्य और प्लीहा रोग शमन होता है ॥ २ ॥

#### सौमाजनादियोग—

सौमाजनकनियूह सै घवामिकाणावितम् । पलाशचारयुक्तं वा पवचार प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

सौमाजनादि योग—सदिजन की छाल के काप में सैधा नमक, विषक मूल और पीपरि का चूर्ण मिलाकर अथवा पलास के क्षार के साथ पवागार मिलाकर प्रयोग करने से प्लीहा रोग शमन होता है ॥ २ ॥

#### लशुनादियोग—

लशुन पिप्पलीमूलमभयां चैव भक्षयेत् । विषेन्द्रोमूत्रगण्डूप प्लीहरोगविमुच्ये ॥ १ ॥

लशुनादि योग—लशुन, पिपरामूल और हरी के समान भाग चूर्ण खाकर ऊपर से गोमूत्र का अनुपान करने से प्लीहा रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

#### रोदीनकादिकल्पः—

रोहीतकामयाकृष्क भावितं मूत्रमशुना । पीतं सर्षोदिरप्लीहनेदार्साकृमिगुणमनुत् ॥ १ ॥

रोहितवादि कल्प—रोहित वृण ( गुलाबकड़ा ) और हरी समान छे चक्क कर गोमूत्र से भावित कर जल के अनुपान से पीने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अर्ज, कृमि और गुल्म रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

#### द्रवन्तोनागवटी—

त्रिलैरण्डद्रवन्तीनां चारो भ्रूलासक कणा । पूर्वा भागं सम कृत्वा सपुष्य तु शुद्ध मतम् ॥ १ ॥

रावेदमिषल ज्ञाया पावनस्य विषुद्धये । जयेत्प्लीहानमस्युं यष्टदुग्धस तथैव च ॥ २ ॥

द्रवन्तो नाग वटी—तिल का क्षार, परण्ड का क्षार, द्रवन्तो का क्षार शुद्ध मिलाया और पीपरि एक २ भाग लेकर एकत्र कर जितना हो उसके समान पुराना गुग्गु मिलाकर बटी बनाकर अग्नि-रस के अनुसार सेवन करने से जठराग्नि को बृद्धि होती है और अति उम प्लीहा को तथा यकृत और गुल्म रोग को नष्ट करती है ॥ २-३ ॥

#### शिशुकाथ—

शोफ प्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः । अम्लप्येतससंयुक्तं शिशुकाथः ससैधवः ॥ १ ॥

शिशु काथ—सदिजन की छाल के काप में पीपरि गरिष, अम्लवत और रोधा नामक के समान मिलित चूर्ण का प्रथम देकर पान करने से शोथ और प्लीहादर नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

#### छारमारितपिपली—

पलाशचारसोषेन पिप्पली परिमायिता । गुल्मप्लीहासिंहाम्नी चक्षिदीप्तिहरी मता ॥ १ ॥

छार भारित पिपली—पलास के छार के जल से पीपरि को भावित कर सेवन करने से गुल्म तथा प्लीहा को पोड़ा को शमन करती है और अग्नि दीप्त करती है ॥ २ ॥

#### अग्निमुल्य लक्षणम्—

विषकद्रिपृतादम्नी विफलाकृचकैः समैः । पापनवेतामि चूर्णानि तावन्मार्थं तु गैग्धवम् ॥ १ ॥  
भायविश्या रनुहीचीरैः रनुकान्धे प्रक्षिपेत्ततः । गृणहेनानुलिप्याथ प्रक्षिपेग्ध्रातवेदमि ॥ २ ॥  
सुदग्धं च ततो ज्ञाया वानैर्वैद्यं समुदरेत् ।

तामेज पीत सपपूर्णं यष्टुप्लीहोदरापहम् । पृथदग्निमुल्यं नाम्ना लक्षणं यद्विषयमम् ॥ ३ ॥

अग्निमुल्य लक्षणम्—विषक मूल, निशोष, दम्तो मूल कांश्वा, हरी, बहदा, बरक मनक, समयवाग केसर चूर्ण कर जितना पूर्ण हो उसके बराबर रोधा नमक का चूर्ण मिलाकर छेदक के मूल से भावित कर छया कर चूर्ण कर रोहद लकड़ों के बीज क गूदे को निकाल कर उष्ण में इस चूर्ण को मर कर गुल्मगुदा कपर मिट्टी कर भाग में धार करे। अब गली भोजि यह हो जाने तक देव उसे पीरे से निकाल कर रोहद सदिप सपुर्ण को चूर्ण कर एक के अनुपान से पान करने से दृश्य और प्लीहादर नष्ट होते हैं। यह 'अग्निमुल्य' नाम का लक्षण अग्निर्वक है ॥ २-३ ॥

चित्रकाय घृतम्—

चित्रकस्य तुलाकाये घृणप्रस्थं विपाचयेत् । भारनालं तु द्वियुगं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १ ॥  
पद्मकोलकतालीसं चारौ च पटुपद्मकम् । यवायी द्वे च जरणं मरीचं चाक्षसमितम् ॥ २ ॥  
पृतीयुक्त्या घृतं सिद्धमात्रया च विद्येत्प्रगे । प्लीहशोफोदराशानि विदोषादग्निदीपनम् ॥ ३ ॥

चित्रकाय घृतम्—चित्रक मूल का काथ पर तुला (१०० पल) और मूच्छित गोघृत एक प्रस्थ, कान्जी दो प्रस्थ, दही का पात्रो या तक चार प्रस्थ लेकर उसमें पीपरि, विपरामूल, चाव, चित्रकमूल, सोंठि, नालीस पत्र, यवाचार, सज्जी खार, पांचो नमक पृथक् २ जवाहन, अजमोदा, जोरा और कृष्ण जोरा तथा मरिच प्रत्येक एक २ वर्ष पीसकर मरक बना छे और यवाविधि इसको घृत में मिलाकर घृत सिद्ध कर, यवा योग्य मात्रा से प्रातः सेवन करने से प्लीहा शोध, उदर रोग और अर्शु नष्ट होते हैं । विशेष कर यह घृत अग्नि दीपक है ॥ १-३ ॥

महारोहितकं घृतम्—

रोहितकापलघातं सघृणं यदराठकम् । साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावदोषिते ॥ १ ॥  
घृतप्रस्थं समावाप्य पद्मागुण्डीरं चतुर्गुणम् । तस्मिन् द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कापिकाणि च ॥  
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गुं यवानां तुमरुं पिटुम् । विट्पत्रं चित्रकं चैव ह्युपाचविकं यथा ॥३॥  
भजाजी कृष्णल्यणं दाहिमं देवदारुं च । पुनर्नवा विद्याला च यवचार सपौष्करम् ॥ ४ ॥  
पृतैघृतं विपकं तु निदध्याद्दृढभाजने । पाययेद्य पलमात्रां रसयुष्ययोग्युभिः ॥ ५ ॥  
यद्दृष्ट्वाप्लीहोदरं शूलमग्निमांशं च नाशयेत् । सुप्तिशूलं पाण्डुरोमरोचकम् ॥ ६ ॥

विषयशूलं रामयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् ।

द्वर्चतीसारशमनं तन्द्राज्वरनिवारणम् । महारोहितकं नाम्ना प्लीहघ्ना तु विदोषताः ॥ ७ ॥  
महारोहितकं घृतम्—रोहितक ( रहेड़ा ) की छाल सौ पल, घैर एक भादक ( ४ प्रस्थ ) लेकर दोनों को कूट कर एक द्रोण ( १६ प्रस्थ ) जल के साथ चतुर्भागावशेष काथ कर, ज्वार-छानकर उसमें मूच्छित गोघृत एक प्रस्थ और बकरी का दूध ४ प्रस्थ मिलावे और उसमें नीचे लिखी सोंठ, पीपरि, मरिच, आंवला, हर्षा, बदेला, पुद्द हींग, जवाहरा, तेजबल के पल, विट्नामक, बाभरंग, चित्रकमूल, हाठभेर, चाय, वच, जोरा, काला नमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, माहरि, यवा खार और पुद्दकरमूल इन सब औषधियों को पृथक्-पृथक् ण्व २ वर्ष लेकर कश्कर उपयुक्त घृतादि में मिलाकर घृत सिद्ध कर पात्र में रख लेवे । इस घृत को एक पल के प्रमाण को मात्रा में मांस रस, यूष, दूध और जल इनमें से किसी एक के अनुपान से सेवन करने से अक्षुब्ध, प्लीहोदर, शूल, मन्दाग्नि, ये सब रोग नष्ट होते हैं और कुक्षिशूल, पादवशूल, कटिशूल, अरुचि, विषयशूल ( मलावरोध से होने वाला शूल ), पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतीसार, तन्द्रा और ज्वर को भी नष्ट करता है । यह 'महारोहितक' नाम का घृत विशेष कर प्लीहारोग को नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

यकृतुदरचिकित्सा—प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतः सप्रकण्ययेत् ।

कार्यं च दक्षिणे बाहौ तत्र दोगितमोक्षणम् ॥ १ ॥

यकृत उदर-चिकित्सा—प्लीहारोग में वही हुई सब चिकित्सा यकृत रोग में करनी चाहिये और दाहिनी मुभा से रक्तमोक्षण कराना चाहिये । ( दाहिनी मुभा की केशुनी के मध्य को सिरा को भेदन कर रक्त निकलवाना चाहिये ) ॥ १ ॥

विष्यलीककसंयुक्तं घृतं चीरं चतुर्गुणम् । पक्वया विषेद्यवावक्षि यकृदाशुयुदरापहम् ॥ २ ॥

विष्यवादि घृतम्—पीपरि का एक और उसके चौगुना मूच्छित गोघृत और घृत से चौगुना गाय का दूध मिलाकर घृत सिद्ध कर अग्निबल के अनुसार को मात्रा से पान करने से यह घृत यकृतान्युदर को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ यकृतुदोदरप्रतीकारः ।

स्विधे यदोदरे योज्यो यस्तिस्तीक्ष्णैस्तु भेषजैः । सतल्लयणैश्चापि निरूहक्षानुवासनम् ॥१॥  
यकृतुदर चिकित्सा—यकृतुदर में प्रथम स्वेद देकर पुन तीक्ष्ण औषधियों से बनी बस्ति देनी चाहिये तथा तेल और नमक मिली हुई औषधियों द्वारा निरूहकस्ति तथा अनुवासन बस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

उदावर्तहरं सर्वं प्रकृतस्य चिकित्सितम् । वर्तसो विविधाश्चात्र पायी दास्ता प्रकीर्तिता ॥२॥  
उदावर्त को नष्ट करने वाली सब चिकित्सायें करनी चाहिये और अनेक प्रकार की वस्तुओं  
वचियों को गुदा में देनी चाहिये ॥ २ ॥

सीपणैर्विरेचनं चात्र दाम्पत्ये तु विशेषतः । यातहन्ता विधिः सर्वा विधातप्यो विज्ञातता ॥३॥  
इस वस्तुगुदीहर में विशेष कर सीपण विरेचन देना चाहिये और वातनाशक सभी विधियों  
को करनी चाहिये ॥ ३ ॥

अनोरमुदकोर च—छिद्रान्त्रयद्दसशुषु जठरं पु प्रयोगविव् ।

छन्धानुज्ञो भिषक्कुर्यात्पाटनं स्वधनक्रियाम् ॥ ३ ॥

अनोर और अनोर चिकित्सा—छिद्रान्त्र ( अन्नोदर ) और वस्तुगुदीहर में प्रयोग करने  
में चतुर पैव राजकीय आज्ञा को लेकर पाटन ( भापरेधान ) और स्वधन ( चोर-पार ) कर ॥ १ ॥  
तथा जातोदक सर्वमुदरं स्वधयेन्निषक् । शार्तौश्च सुद्वेदो दारायाक्षणां वृपतिं गुदम् ॥ २ ॥  
अनुज्ञाप्य भिषक् सर्वो विद्वेष्यात्सदाय ध्रुवम् । सुवेष्टित स्वधो नामैर्वामित्तभृगुरष्टगुलात् ॥ ३ ॥  
अन्नक्युदरमात्रं तु मीहिषक्रेण भेदयेत् । नास्तीभुभयतो द्वारौ संयोज्यापहरज्जलम् ॥ ४ ॥

सब प्रकार के अलोदर में वैध रोगी के पैट को वैध कर जल निकाले । उस समय रोगी के  
जाति, मित्र, स्त्री, मासिक, राजा और गुण को आज्ञा ल लेवे और उनसे यह बात कर  
देवे कि प्राण वा इनमें अवश्य संशय है । फिर नामिस्थान के नीचे भलोभोति पत्र से वेष्टित कर  
नाभि के बायें भाग में चार अङ्गुल पर अङ्गुली के मध्यभाग तक की गहरार के प्रमाण से मोदि  
सुख शक से भेदन कर उसमें दोनों ओर जिम नादी ( नली ) का मुँह सुला हुआ हो ऐसी  
गोठी टालवर उसके द्वारा जल को निकाल ॥ १-४ ॥

न चैकस्मिन्दिने सर्वं दोषं स्वपहरेत्तथा । कासश्चासौ ज्वरस्तृण्णा गात्रमद्ग्नश्च घेपथु ॥ ५ ॥  
अतिसारार्धं सुतरां पूर्यंत जठरं ततः । तृतीयपद्ममाघेपु दिवसेष्ववपदाः पुन ॥ ६ ॥  
घ्रापयेदुदकं तैलछषणाम्यां दृहद्वयम् । अग्नीवाहितं दोषे रक्ष प्राक्प्रतिपूर्वं च ॥ ७ ॥  
संघेष्टयेद्वातहरं कौशेपादिकचमणा । अलोदरेऽप्यु विज्ञाप्य जातं जातं विरचनेः ॥ ८ ॥

एक ही दिन में सम्पूर्ण दोषों को ( सम्पूर्ण अल को ) नहीं निकाल देव जब कि एक ही दिन  
में सम्पूर्ण अल निकाल देने से कास, श्वास, ज्वर, तृण्णा, गात्रमद्ग्न, कम्पन और अतीमार रोग  
हो जात हैं और उदर फिर जल से पूर्ण हो जाता है । इनलिसे पीपटे, पौनरे, सागरे और  
नये दिन तथा कम से अल्प आक्ष निकालना चाहिये और उस छेरे हुए प्रा को तैल और  
नमक मिलाकर लिप्त कर देने और प्रा को अग्ना देवे ( दाग देवे ) । यदि शिप ठेक अलोदर  
हुला हो तो प्रथम रत वा प्रतिपूरण करना चाहिये तथा पीपव ( रेणुमी ) पत्र मथना भेद,  
बकरी आदि की चर्मे से भलोभोति वेष्टित कर देना चाहिये । अनोर में जब २ पत्र भाग आये  
तब तब विरेचन द्वारा निकालत रहना चाहिये ॥ ५-८ ॥

त्रिरिच्छज्जटाराश्मान स्नेहाद्येयसिभिर्जपत् । निःश्रुतो हृत्तितो येनामसोहृत्तवर्गा विष्णु ॥ ९ ॥  
अतः परं तु पण्णामां पीरवर्तो भयधर । श्रीमाम्नापयमा पयां दिवेष्टौश्चापि यौनपत् ॥ १० ॥  
सखोरदूपश्यामाके पयसा छज्जण छपु । नर संवासरणेषु मयदाशु अलोदरम् ॥ ११ ॥

विरेचन छेरे पर वदिक-रक्षण हो भी स्नेह बलि द्वारा उस नष्ट करना चाहिये । जल  
निकालने के पश्चात् रोगी को अन्न कराने स्नेहदहित तथा अन्नरस दहित पदा विज्ञाप्य चाहिये ।  
पश्चात् छेरे मय तक केवल दूध ही खिलाया चाहिये, फिर तीन मय तक दूध और पेशा  
निकालकर खिलाया चाहिये, फिर तीन मय छोडो, सोडा दूध के साथ देना चाहिये अथवा  
सेवा मयक छपु मात्रा में मिलाकर देना विज्ञाप्य चाहिये । दूध पश्चात् दूध सर्व एक दूध छपु  
करने से अनुभय अलोदर को रोग नष्ट कर सकना है ॥ १०-११ ॥

अथ अथादरेषु सामाम्यचिकि ।

उदरानां मन्त्रद्वाराशुभं साधकं हितम् ।

चौर्नैरुत्तरं सैल निवन्मृद्ये वा सकृत् । उपेक्षितप्याः विवेचितं पयसा वा विम दिने ॥ १२ ॥

उदर रोगों की सामान्य चिकित्सा—उदर रोगों में प्रायः मल की अधिकता होती है ( रसीले रोग में कृमि भी होना है ) इसलिये उदर का बहुत बार शोध करना चाहिये ( विरेचन देना चाहिये ) । इसके लिये दूध के साथ परण्ड तैल पान करना चाहिये अथवा गोमूत्र के साथ परण्ड तैल कई बार पान करना चाहिये अथवा ज्योतिष्मती ( माल पागनी ) का तैल दूध के साथ प्रति दिन पात्र करना चाहिये ॥ १ ॥

मूत्राप्यष्टादशिकां सेके पाने च योजयेत् ॥ २ ॥

आठो प्रकार के मूत्र उदररोगियों को सिंचन तथा पान करने के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

देवदारवादिलेप —

देवदारुगुलाकार्कहस्तिविष्पलिशिशुके । साधगधै सगोमूत्रै प्रदिश्यादुदर शनै ॥ १ ॥

देवदारुलि लेप—देवदारु, पलास, मदार, गजपीपरि और सहिजन की छाल, असगध समभाग ले पीसकर गोमूत्र मिलाकर उदर पर पीरे २ लेप करे तो उदर रोग में लाभ होता है ॥१॥

रोहितकादियोग—

रोहितकाभयाशुण्ठी विषेन्मूत्रेण शक्तिन । सर्वादरदर प्लीहमेहार्शकृमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥

रोहितकादि योग—रोहितक ( कड़वा ), हर्रा, सोंठि का चूण कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अशु, कृमि और गुल्म नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विशालादि —

विशालाशक्तिनीदन्तीत्रिवृप्रिफलकाप्रयम् । निशाविहङ्गकम्पिल मूत्रेणोदरवापियेत् ॥ १ ॥

विशालादि योग—माहरि, शक्तिनी ( गुलाबुल ), दन्तीमूल, निजीध, अंबरा, हर्रा, बड़ेका, हरदी बामीरग, कधीला, समभाग छकर विधिवत् चूर्ण कर गोमूत्र के साथ पान करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पय भादि —पयो धा चष्यदन्त्यत्रिविहङ्गम्पोषकशिकतम् ।

पेय या शृङ्गवेराग्यु कषायो दारुवद्विज । चष्यत्रिष्वसमुरयो धा पेयो जठरदातये ॥ १ ॥

पय-आदि योग—चष्य, दन्तीमूल, चित्रकमूल बामीरग, सोंठि, पीपरि, मरिच समान ले मक्क कर दूध के साथ पान करे अथवा अद्रक का स्वरस पान करे अथवा देवदारु और चित्रक मूल का काथ अथवा चष्य और सोंठि का काथ बनाकर पान करे तो उदर रोग शांत होता है ॥१॥

सुश्रुगात्—हरीतकीसहस्र धा गोमूत्रेण पयोऽनुपः ।

सहस्र विष्पलीनां धा स्नुवशीरण सुभाप्रितम् ॥ १ ॥

विष्पलीवर्धमान धा क्षीराशी धा शिलाजतु । सहस्रा गुग्गुलु शीर सुष्याद्रकरस तथा ॥

चित्रकामरदारभ्यां कक्षक चारेण धा पियत् ॥ २ ॥

एक सहस्र बड़ी हरद की मस से गोमूत्र के साथ ( प्रथम एक हरद से प्रारम्भ कर और एक २ हरद बढ़ाता जाये ) सेवन करे और दूध या ही आहार करे अथवा एक सहस्र पीपरि की लेकर सेतुल के दूध के साथ मानिक कर वक्षी क्रम से सेवन करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ अथवा वर्धमान विष्पली योग का सेवन करे और दूध या ही पथ्य करे अथवा शुद्ध शिलानीत का सेवन करे और दूध या पथ्य करे अथवा शुद्ध गुग्गुलु को दूध के साथ सेवन करे अथवा दूध में समान भाग अद्रक का रस मिलाकर सेवन करे अथवा चित्रक मूल और देवदारु समभाग छे कर कर दूध के साथ पान करे तो उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

विष्पलीवर्धमानम्—

त्रिभिरथ परिवृद्ध पञ्चभिः सप्तभिर्धा दशभिरथ विषृद्ध विष्पलीवर्धमानम् ।

इति विषति शुवा भरतस्य न श्यासकासज्वरजठरगुदाशवातरकृष्णया स्यु ॥ १ ॥

वर्धमान विष्पली योग—तीन पांच सात अथवा नस पापरि के क्रम से बढ़ा कर जो मनुष्य वर्धमान विष्पली योग का सेवन करता है और दूध या पथ्य करता है उस पुरुष को श्वास, कास, ज्वर, उदर, गुग्गु, अशु, वात रक्त और क्षय ये सब रोग नहीं होते हैं ॥ १ ॥

देवद्रुमादि—देवद्रुम शिशु मसूरक च गोमूत्रपिष्टामधवाऽश्वगंधाम् ।

पीत्वाऽऽशुद्धयातुदर प्रषृद्ध कृमीन्सशोकानुदर च द्यूयम् ॥ १ ॥

देवदुमादि योग—देवशर, सखिनन की छाल, मयूर, अथवा केवल असंग्रह्य की गोमूत्र के साथ पीस कर पान करने से बड़ा दुमा उदर रोग, कृमि रोग, शोथ और दूधोदर नष्ट होते हैं ॥

पटोलाय चूर्ण—

पटोलाभिन्त्ररजनीविट्ठत्रिकलात्वच । कम्पिलकं नीलिनीं च त्रिवृत्तां चेति चूर्णयेत् ॥१४॥  
पटाघान्कार्पिकानन्यांकींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मुश्रेण वा पिपेत् ॥  
विरिको मृदु भुञ्जीत भोजन जाह्नलै रसै । मण्डपेयां च पीत्वा वा सम्योषं पच्यै पया ॥१५॥

पटोलाय चूर्ण—परवर का चार पात, इन्द्रजी, इरणी, बामीरंग, त्रिफला (आमला, इरी बहेदा) दालचीनी, कबीला, नील का फल और तिगोथ इन औषधियों में से आदि की छे औषधियों की (परवर से दालचीनी तक) एक २ कर्ष छे और अन्य की तीन औषधियों को अर्थात् कबीला दो कर्ष, नील का फल तीन कर्ष और तिगोथ चार कर्ष लेकर सबका चूर्ण कर मुष्टि प्रमाण (एक पल) की मात्रा से गोमूत्र के साथ पान करे। (यह मात्रा भयधिक है दूध चूर्ण की या यथा बल मात्रा से प्रारम्भ करे)। इससे विरेचन हो जाने पर शूद्र प्रकारों का भोजन जाह्नल जीवों के मांस रस के साथ करे अथवा मण्डपेया पीवे। यथाष्ट सौंठि, पीपटि, मरिच का चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ दूध छे दिन तक पीवे ॥ १-३ ॥

शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं विवेक्षे पुन पुन । हन्ति सर्वोदरान्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥  
कामला पाण्डुरोग च शयथु चापकपति ॥ ४ ॥

इस प्रकार चार २ इन चूर्णों की इन्हीं विधि से पान करने से यह चूर्ण सब प्रकार के उदर के रोगों की और जलोदर की भी तथा कामला, पाण्डु रोग और शोथ को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

नारायणचूर्णम्—

यक्षानी ह्युषा घान्य त्रिकला सोपकुम्भिका । कारवी पिप्पलीमूळमजगाया दाटी पया ॥१॥  
शताह्ला जीरकं श्योप स्वर्णशीरी सधियकम् । द्वौ चारौ पुष्करं मूळं कृष्ट लवणपञ्चकम् ॥ २ ॥  
विट्ठ च समांशानि दन्तीभागाग्रयं तथा । त्रिवृद्धिसाले त्रिगुणे सातला श्याकगुण्डा ॥ ३ ॥

नारायण चूर्ण—अवारन, हाक बेर, पत्रियों आंबला, इरी, बहेदा, वनजुष्ठी (कलीनी कादाई (कृष्ण जीरा का भेद), पिपरा मूल, अजमोदा (बरतगथा), कचूर, बच, सौंठ और, सौंठि मरिच पीपटि सरयानाडी, त्रिफल मूल, यबाधार, सगुी फार, प्रह्वर मूल, कूठ, पांशो नमक (पृथक २) बामीरंग, प्रत्येक सम भाग छेवे और दन्ती मूल तीन भाग, तिगोथ और मादरि दो दो भाग, सावला (सैद्यु रोद) ४ भाग लेकर चूर्ण कर छेवे। यह 'नारायण' नाम का चूर्ण सब प्रकार के रोग समूहों को नष्ट करने वाला है ॥ १-३ ॥

एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः । शक्रेणोदरिभिः पेषो गुदमिर्मिराबुना ॥ ४ ॥  
आनदपाते सुरया पातरोगे प्रसन्नया । दधिमण्डेन त्रिदृग्ने दाहिभागुभिरजति ॥ ५ ॥  
परिकर्षे च घृषाम्णैदण्णायुभिरजीर्णके । भगन्दरे पाण्डुरोगे कामे श्वासे शालग्रहे ॥ ६ ॥  
हृद्भोगे हृद्दण्डरोगे कुष्ठे मन्दान्ते श्मरे । हृद्पापिये मूळपिये गरले हृत्त्रिये विपे ॥  
यथाहं दिनम्बपोष्णेन पेषमत्तह्निरेषणम् ॥ ७ ॥

उप के अनुदान से उदररोगियों की और रैर के रररर के अनुदान से शुक्रमरीय बन्नों की पीना चाहिये और आत्मदान में सुरा, पातरोग में प्रमग्ना, महाशरीर में श्वा के अल, अर्ध में अमार के रागम, परिकर्षिका में वृष्णम् (शोक्य के फल) और अर्धों में उष्णोष्ण के अनुदान छे सेवन करना चाहिये, तथा भगन्दर, पाण्डुरोग काम, श्वासे, मन्तगा रोग, प्रह्वरी, कुष्ठ मन्तानि, उदर, हृद्पापिये (दोनों से काटने से उपवन विच) मूल विच (श्री वृत्तों का विच) गरले विच और हृत्त्रिय विच, इन सब रोगों में बनावोष्ण यह विरेचन शोड को तिगोथ परके पान करना चाहिये ॥ ४-७ ॥

शारदपाणिचूर्णम्—शारदामूलमूष्योपनीलीतनपञ्चकम् ।  
चूर्णितं सर्पिषा पेषं सज्जुष्मद्वारापहम् ॥ १ ॥  
शारदकादि चूर्ण—दवास्तार तजशोण, वित्रकमूल, सौंठि, पीपटि, मरिच, मीन इषक २

पानों तक, प्रत्येक सम भाग लेकर चूनें कर घृत के अनुपात से सेवन करने से सब प्रकार के गुत्तरोग और उदररोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शु शालुत्तिकाद्यारादियोग —

सामुद्रशुत्तिकापारो वयपारः सर्वैः प्रथमः । गोदग्ना सप्रयुज्येत सर्वावरविनादान ॥ १ ॥

शुत्तिकाशारादि योग—समुद्र शीष का भरम, ववागार, से धामन समान लेकर चूनें कर एषम मर्दन कर गौ के दही के अनुपात से सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं ॥

उष्ठीशीरपानम्—

उष्ठीशीर पिषेज्जीर्णं निरनो जठरामयी । पञ्च मासमगु वाऽपि न च पानीयमाचरेत् ॥ १ ॥

उष्ठीशीर पान—जो उदररोगी मगुष्य केवल ऊटनी का दूध पीवे अन्न नहीं खावे और दूध उसे पचता जावे, तो इस प्रकार यदि वह एक पक्ष ( १५ दिन ), एक मास अथवा एक श्वेतु ( दो मास ) तक करता रहे और पानी भी नहीं पीवे तो उसका उदररोग नष्ट हो जाता है ॥

अथ घृतानि ।

सत्राग्ने विन्दुघ्नम्—अर्कशीर पले द्वे शु स्नुहीशीर पलानि पट् ।

पथ्या कम्पिलक श्यामा शम्प्याक गिरिकर्णिका ॥ १ ॥

नीलिनी शिवृता दन्ती चाहिनी चित्रक सया । पतेपां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थ विपाचयेत् ॥ ३ ॥  
अथास्य मलिने कोष्ठे विन्दुमात्र प्रदापयेत् । यावदस्य पिषेद्विदून् सावद्देगान्विरिष्यते ॥३॥

विन्दुघ्न—मदार वा दूध दो पल, सेहुड़ का दूध छ पल, हरी, कबीला, श्यामालता वा वाली निशोष, अमलतास के पल बीं गुरी, श्वेतापरानिता, नील, निशोष, दन्तीमूल, चाहिनी ( शशा डुल ), चित्रकमूल, एक २ पल के करक कर मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और पाकार्थ जल ४ प्रस्थ देवर घृत सिद्ध कर इस घृत को कोष्ठ की मलिनता ( मलावरोध ) में एक मूँद सेवन करना चाहिये । अतनो मूँद विजावे उतनी ही बार विरेचन होता है ॥ १-३ ॥

कुष्ठ गुग्गुमसुदावर्त श्वयमु सभगन्दरम् ।

शामययुदराप्यथी घृष्टमिन्द्राननिर्यथा । पुरद्विन्दुघृत नाम येनाभ्यक्तो विरिष्यते ॥ ४ ॥

इसके सेवन से कुष्ठ, गुग्गु, उदावर्त, शोथ, भगन्दर और उदर रोग इस प्रकार शांत होते हैं जिस प्रकार इद्र के वज्र से वृक्ष नष्ट होते हैं । यह 'विन्दुघृत' ऐसा प्रभावशाली है कि इसको उदर पर मल देने से विरेचन हो जाता है ॥ ४ ॥

योगतरङ्गिण्या नाराचघृतम्—

त्रिफला चित्रको दन्ती घृहती कण्टकारिका । स्नुही चार्कपिडङ्गानि घृतस्य कुडव पचेत् ॥१॥

सस्य मृद्धमिसिद्धस्य कर्पाथं पाययेन्नरम् ।

शोथगुग्गुमोदरानाहप्लीहोदरजलोदरान् । नाशाययुग्गुणानेता सर्पिताराचसञ्जितम् ॥ २ ॥

नाराच घृत—अंबरा, हरी, बहेड़ा, चित्रकमूल, दन्तीमूल बड़ी कटरी, छोटी कटेरी, सेहुड़, मदार, बाभीरग समभाग करक कर एक कुडव ४ पल मूर्च्छित गोघृत के साथ चतुर्धाश प्रमाण ( १ पल ) लेकर मिला देवे और पाकार्थ जल ४ कुडव ( २ मानी ) मिलाकर मन्द अग्नि से घृत सिद्ध कर आधा कर्प के प्रमाण की मात्रा से पान करने से शोथ, गुग्गु, उदर, आनाह, प्लीहोदर, जलोदर ये सभी रोग यदि अत्यन्त बड़े हुए भी हों तो च हें यह 'नाराच' नामक घृत नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

शिवृताथं घृतम्—

पयस्यष्टगुणे सर्पिः प्रस्थ स्नुषपयसः पलम् । शिवृतापलकककेन सिद्ध जठरगुग्गुमनुत् ॥ १ ॥

शिवृताथ घृत—मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और दूध गाय का अठगुना ( ८ प्रस्थ ) सेहुड़ का दूध एक पल और निशोष का करक एक पल इनको एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से जठर रोग तथा गुग्गु नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमूलाघ घृतम्—द्वे पञ्चमूलयौ शिवृतां निकुम्भ मससल चित्रकशामुमूलम् ।

करञ्जयीर्षं त्रिफलां शुद्धशीमेरुण्डमूल मद्यन्तिका च ॥ १ ॥

पाठां समाह्वीं सुपदीं सनिकां सरोहिपां यासकुपेडिकां च ।  
 पूयसमाह्वय पल जलस्य द्रोणे पचत्तद्युरराशये ।  
 घृतं विपकं सकपाययुक्तं निहन्ति पीतं सकलौदराणि ॥ २ ॥

पञ्चमूलाय घृत—गानो पञ्चमूल ( दशमूल ) कं शुक २ दसो द्रव्य, पिचोम, दन्तोमूत्र, सप्तला ( सात्तल ) चित्त की जड़, सहजान की जड़, करज के बीज भेंवरा, इरां, बहवा, पुत्रधि, परण्डमूल, मरयन्तो ( नरमालिका ) पुरहनपादी, बभनेठी, कृष्णनीरव, कुरबी, रोहिप घा ( गुलाबफंदा ), जवाला और पुरहनपादी शुक २ एक २ पल लेकर एक द्रोण ( ११ प्रत्य ) अणु के साथ चतुर्थांशवशेष पाक कर उठार-दानकर जितना बाध हो उसने चतुर्थांश मूत्रित्त गोघृते गोघृत मिला घृत सिद्ध कर पान करने से सब प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

द्विषात्पिचुनम्—

द्विषा रसोनाद्रकामिषुपुष्पावहप्रियदन्तीदशमूलतोषैः ।  
 द्विषात्पचोपणककफपादैः सिद्धं घृतं तज्जन्दरे प्रशस्तम् ॥ १ ॥

द्विषादि घृत—हींग, लहसुन अद्रक, सहजान की छाल, इरां, बच, दन्तीमूल और दशमूल के शुक २ दसो द्रव्य समभाग लेकर सोलह गुने जल में चतुर्थांशवशेष काय कर उठार दानकर जितना बाध हो उसने चतुर्थांश मूत्रित्त गोघृते और घृत से चतुर्थांश आगे छिन्न द्रव्य वरागाद, सज्जीवार पीपरि, विपारमूल, चन्प, चित्त की जड़ और सोंठ इनको समान के बराबर सबको एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से उदररोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

तत्र पानम्—

पातोदरी पित्तकृमिपिण्णलीलवगा विवतम् । शकरामरिचोपेत स्वादु पित्तोदरी विषय ॥ १ ॥  
 पचानोमेष चवाजाजीव्योपयुक्त कफोदरी । ससिपातोदरी सक्र त्रिकटुपारसोपयै ॥ २ ॥

यद्रोदरी तु ह्युपादीप्यकाजाग्निसोपयै ।

पिपेक्षिद्रोदरी तत्र विपण्णलीलवगा विवतम् । श्यूरगचारलज्जोयुक्तं तु सखिलोदरी ॥ ३ ॥  
 उदररोग में तत्र पान—वातज उदररोग । वाता मनुष्य तत्र में पीपरि या चूर्ण और मैथानम मिलाकर पीव और पिचम उदररोग वाता शबकर और मरिच का चूर्ण मिश्रकर, काय उदररोग वाता जवाहन, सैनामक नीरा, सोंठ पीपरि और मरिच का समान मिश्रण चूर्ण मिश्रकर ससिपातज उदररोग वाता सोंठ, पीपरि, मरिच, वरागाद और सैनामक का समान मिश्रण, चूर्ण मिश्रकर, यद्रोदर वाता वाञ्छे, जवाहन, नीरा और मैथानमक का चूर्ण मिश्रकर, पिपेक्षे (सोने र) वाता पीपरि का चूर्ण और मधु मिश्रकर और खलोदर वाता मनुष्य सोंठ, पीपरि, मरिच वरागाद और मैथानम का चूर्ण मिश्रकर तत्र की पीये । इस प्रकार के छत्र सेवन में सब प्रकार के उदररोग नष्ट होगे हैं ॥

शोथोदरविच्छिन्ना—हरीतकीनागरदेवशकजुनीवाद्रिष्यरहाशपाय ।

समुग्गुलुमूयुलस्य पेयं नापादुरागं प्रवर प्रयोग ॥ १ ॥

शोथोदर विच्छिन्ना—हरी सोंठ, देवशक मरहपुरना शुग्धि ममकाय से काय कर उसने शुग्ध शुग्धुत तथा गोमूत्र का प्रका देकर पान करना शोथोदर के लिये उचत योग है ॥ १ ॥

पुनर्नयानिग्रयपटोलशुण्ठीनिघ्नप्रमथाश्वत्थामृगाकफायाः ।

सर्पाशोफाक्षरकामशूलधामाश्विक्ने पाण्डुगर्भं निहन्ति ॥ २ ॥

पुनर्नय, नीम की छाल, परवर की छाल पत्र, सोंठ कुन्द, इरां, पाण्डुगर्भ, शुग्धि सम भाग से काय कर सेवन करने से सम्पूर्ण शोथ शोथ, उदर रोग काय, शुग्ध, मधु और पाण्डु रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पुननपादाय प्रवामुद्भीः पीकामपूत्रा मदिनाचमुत्रा ॥

श्वरशोपशाशोदरपाशुशागशोशकसहस्रं कफामयु ॥ ३ ॥

पुनर्नय दाशहरी इरां, गुग्गुलु सम भाग से काय कर गोमूत्र और शुग्ध मरिचय शुग्धुत का प्रयोग देकर पान करने से शोथ, शोथ, उदर, पाण्डुगर्भ, शूल ( पाण्डुगर्भ ) और कफरोग के नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

गोमूययुक्तं महिषीपयो वा पीरं गवां वा त्रिपल्याविमिश्रम् ।

पीरास्रभुक्केवलमेव गन्धं मूत्रं पियेहा श्वयधूदरेषु ॥ ४ ॥

गोमूय मिलाकर भैस वा दूध, अथवा त्रिपल्या का चूर्ण मिलाकर गाय वा दूध अथवा केवल गोमूय पीने और दूध तथा अन्न को ही मदाण ( पथ्य ) करने से शोथोत्तररोग नष्ट होते हैं ॥४॥ सप्ताह माहिय मूत्र पयसा चागुवर्जितम् । पियेद्द्वैष्ट्र पयो मास श्वयधूदरनाशनम् ॥ ५ ॥

एष सप्ताह तक भैस वा मूत्र जलरहित दूध में मिलाकर पीने से अथवा ऊँटनी का दूध एक मास तक पीने से शोथोत्तररोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

पिषयासिषण्याद्रकश्चरकाथेन कणकेन च सिद्धमाज्यम् ।

सच्छामदुग्धं प्रह्णीगुदोत्थशोपागिसादारचिद्दरिष्ठम् ॥ ६ ॥

बेल की छाल, चित्त की अड़, चास्य और अद्रक सम भाग ले काथ बरे और इहीं द्रव्यों का एक भी करके जितना काथ हो उसके चतुर्थांश मूच्छित्त गोघृत और छत्र चतुर्थांश समान मिलित एक तथा बनरी का दूध काथ के समान भाग मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से प्रह्णी, गुदा के रोग ( अर्शादि ), शोथ, मन्दाग्नि और अरुचि ये सब नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

अथ रसाः ।

तप्रादी नाराचो रस —

शृष्टदृग्णतुल्यं तु मरिच च रस समम् । गन्धक विष्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥१॥ सप्ततुल्यं पिपेहन्तीपीजं सर्वमकण्डमपम् । द्विगुणं रेचनं चैतदुदरानि श्यपोहति ॥ २ ॥

ताराचरस—शुद्ध टङ्गा, मरिच, गुद्ध पारद, १-१ भाग और शुद्ध, गन्धक पीपरि और सोंठि दो २ भाग चूर्ण कर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य भोगपियों के चूर्ण को मिला कर मदन कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर शुद्ध दन्वीबीज वा चूर्ण मिलाकर मर्दन कर दो रत्नी के प्रमाण की मात्रा से बटी बनाकर सेवन करने से विरेचन होना है और उदररोग नष्ट होता है ॥

इच्छामे रस —

शुण्ठीमरिचसयुक्ता रसगन्धकटङ्गणा । जेपालत्रिगुणं प्रोक्तं सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ १ ॥ इच्छामेदी रसो ह्यस्य द्विगुणां ससितां पियेत् । तस्मैदनं च दातव्यं पथ्यमग्नं विजानता ॥२॥

इच्छामेरीरस—सोंठि, मरिच, गुद्ध पारद, गुद्ध गन्धक, शुद्ध टङ्गा १-१ भाग ल चूर्ण कर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर उसमें ३ भाग शुद्ध जमाल गोटा के बीज का चूर्ण मिला मर्दन कर दो रत्नी के प्रमाण की बटी बना चर्बरा के साथ सेवन कर जितने सुख अर्थात् जितनी बार जल पीये उतनी ही बार विरेचन होगा । यह 'इच्छामेरीरस' इच्छानुसार भेदन करता है । विरेचन के पश्चात् मद्गा और मात का पथ्य देना चाहिये । ( गरम जल पीने से इसमें विरेचन का अवरोध होता है ) ॥ १-२ ॥

॥ जलोदरारि —

विष्पली मरिच ताघं काञ्चनीचूर्णमयुतम् । स्नुहीचौरैर्दिनं मघं तुल्यं जेपालयीजकम् ॥

निष्कं मुक्तं विरेकेण सत्यं हन्ति जलोदरम् ॥ १ ॥

जलोदरारि रस—पीपरि, मरिच, ताम्रभरम, हरदी वा चूण सम भाग ले मर्दन कर सेहूड के रस के साथ दिन भर ( ४ पहर ) मर्दन कर जितना हो उसके बराबर शुद्ध जमालगोटा के बीज का चूर्ण मिला मर्दन कर निष्क प्रमाण ( ४ माया ) से सेवन करने से विरेचन होकर जलोदररोग नष्ट हो जाता है । यह सत्य है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

दोषैः कुशो हि सम्पूर्णं वह्निर्मद्वयमृच्छति । सस्मान्नोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥

पथ्यापथ्य—उदर रोग में वातादि दोष कुम्भित्थान में भरे रहते हैं जिससे अग्नि मन्द हो जाती है, इसलिये इस रोग में दीपन और लघु भोजन ( पथ्य ) देना चाहिये ॥ १ ॥

शालिपिष्टिकगोभूमयवनीवारभोजनम् । विरेकास्थापनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ २ ॥

शालिधान का चावल, साठी का चावल, गेहूँ जी और जीवार ( शीनाधान का चावल ) भोजन के लिये देना चाहिये तथा विरेचन और आरुधापन कर्म उदर रोगों में करना उचम है ॥



१ पश्चात्पथ्य संहितायाम्—

विरेचन लङ्घनमृदमम्मसा पुष्टस्यमुद्गादगन्तालयो यथाः ।  
 मृगा द्विजा जाङ्गलसञ्जयाऽम्बिताः पेया सुरा माषिकमोषुमैन्पवा ॥ १ ॥  
 तक्र रसोनोदयुवैलमाद्रकं शालिं च शाक कुलक फटिल्लकम् ।  
 पुनमवा निम्रफल हरितकी ताम्बूलमेला यवशुषमायसम् ॥ २ ॥  
 क्षन्नागशोष्ठीमिदिपीपयो जल लघूनि तीयाणि च क्षीपनाम्यपि ।  
 यथामल पथ्यगगोऽपमाधित सखा नूर्णा स्यादुदरामये सति ॥ ३ ॥

पश्चात्पथ्य—विरेचन बर्मे, रक्त, एक वर्ष के पुराने कुलथो, मूंग, रक्त चने के शालिधान वा चावल, यव, मूग ( जंगल पद्म ), पक्षी शनका मांस रस, पेया, छरा, मधु, सीधु, सेंधा नमक, मठठा, लहसुन, परण्ड सैल, अद्रक, शालिच शाक परवर, कहेली, पुर्नका, सदिजन का पल, इरा, पान, छोटी शहायची, जवाखार, छोदभरम, बर्री, गाग, कैंटनो, भैल के दूध तथा मूत्र और लघु, तीग तथा दीपन द्रव्य सवन करना चाहिये । रोगी के तीव्र बलावत् के अनुसार इन लघुयुक्त पदार्थों का सेवन उन्त रोगी गन्तुर्णों को करना चाहिये अर्थात् ये पथ्य है ॥ १-३ ॥  
 अग्न्युपान दियास्वाप गुणमिष्यन्दि भोजनम् । स्यायाम चाप्यवाग च जठरी परिवर्तयेत् ॥  
 जल पीना, दिन में सोना, शुभ और अभिष्यन्ती पदार्थ का भोजन, परिश्रम, मार्ग चलना और पान इन सब को उदर का रोगी त्याग दे अर्थात् ये अपथ्य है ॥ ४ ॥  
 इति उदररोगप्रकरणम् समाप्तम्

**अथ शोथनिदानम् ।**

शोथस्य सन्नातिपूर्वकं रूपमाह—

रक्षपित्तकफान्वायुदुष्टो दुष्टायुहिः शिराः । मीया रज्जगतिरस्ति हि कुर्वाग्मासत्यगाधयम् ॥  
 उत्सेध सहस्र शोक तमाहुर्निघपादत् ॥ १ ॥

शोथ की सन्नाति—मजने प्रधोषक कारणों से कुपित वायु दूषित रक्त, पित्त और बल को नाश शिराओं में लज्जकर उनकी गति को अवरुद्ध कर म'ल और रक्ता के भागव में छत्रन तथा कठिन शोथ उत्पन्न कर देता है । वह त्रिदोष संग्रहामक रोगा है ॥ १ ॥  
 सर्वं हेतुविनोपैरनु रूपभेदाद्यवामकम् । दोषैः पृथग्भूयैः सर्वैरभिघाताद्विपादपि ॥ २ ॥  
 यह शोथ द्रुत विनोप से तथा रूपभेद से नव प्रकार का होता है जसे दोषों के रूपान्तर भेद से ( वात विष और कफ से ) तीन, द्वाभ्य तीन, सांनिघातिक एक, अभिघातक एक और विष से एक, इस प्रकार नव प्रकार का शोथ होता है ॥ २ ॥

उत्पन्न पूर्वस्वभाह—तत्पूर्वरूप द्रव्यु शिरायामोऽङ्गुलीरयम् ॥ ३ ॥  
 शोथ का मूल रूप—जब शोथ होने को होता है तब कमके पहले शिरादिहों में विदग्ध वात, शिराओं में तेजाव और जरीर का शुभ्र होना ये सब लक्षण होने हैं ॥ ३ ॥  
 कारणमाह—शुद्धवामयामकृशाबलानां शाराच्छतीषतोप्यग्न्युत्पत्तेषा ।  
 दृष्यामगृषदाकविरोषिदुष्टगरोरगृष्टाद्यनियमण च ॥ ४ ॥

शोथ के कारण—कोष्ठ दुर्द्धि अितरी द्रुत हो ( भजन विरेचन आदि दिया गया हो ), अत पाण्डु भाषि रोग अिते दुष्भा हो, ओ कपनास कपवा विगुण भोजन शिपा हो, इन कारणों से दुर्द्ध और बलान द्रुत मनुष्य बरि धार, अशु, होला, उष्ण और शुभ्र पदार्थ दही भाग ( जवनाक ) पदार्थ मिष्टो घाक ( पचदाक ), विरीषी, दूषित तथा विषविभिन्न अन्न भाषि का मध्यम कर केता है तो इसे शोथ रोग हो जाता है ॥ ४ ॥

अर्थात्स्वधरा म च वेष्टादिर्मर्माभिघातो विषमा प्रतृणिः ।  
 मिष्योपचारा प्रतिक्रमनां च निजस्य देनु रवयो मदित् ॥ ५ ॥  
 और गर्भरोग, निरपेठ रदन, देह का दुर्द्धि नहीं करना ( दोषों का शोथन नहीं करना ), मर्न श्वाभो में भाषण होना, प्रसव का विषम होना ( अर्थात्जादि होना ) और विषया उपचार

( बमन आदि का अयोग्य उपचार वा अनावश्यक बमनादि कर्म करना ) इन सब कारणों से शोध रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

सगौरव स्याद्वनवरिद्यतव सोऽसेधमूष्माऽथ शिरोतनुत्वम् ।

सलोद्गमर्षं च विवर्णंता च सामान्यलिङ्ग श्वयोधोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

शोध के सामान्य लक्षण—शरीर में गुरुता, मन का स्थिर नहीं रहना, उत्सेध अर्थात् त्वचा में केंनापन ( गोथ ) होना, ऊष्मा होना, तिराओं का दुर्बल होना, रोगाग्र होना और वर्ण का विवर्ण हो जाना ये सब शोध होने के साधारण लक्षण हैं ॥ ६ ॥

वातशोधनाह—चलरतनुत्वयपरपोऽरणोऽसितप्रसुसिंहर्पांतियुतोऽनिमित्तत ।

प्रक्षाम्यति प्रोक्षमति प्रपीडितो दिवायली च श्वयधुः समीरणात् ॥ ७ ॥

वातज शोध—जिस शोध रोग में शोध चलता रहे अर्थात् एक निश्चित स्थान पर नहीं रहे, शोध पर की त्वचा पतली, कृष्ण, अरुण अथवा कृष्ण वर्ण की हो, उसमें शून्यता और रोमाघ होता हो, इनके सहित पीड़ा अपारण ही शान्त हो जाती हो ( कभी बट जाती हो ), तथा दबाने से शोध नष्ट जाता हो ( फिर उठ जाता हो ) और दिन में शोध बलवान ( हो ) ( शोध में वृद्धि हो और रात्रि में कम हो ) उसे वायु के कोर का शोध जानना चाहिये ॥ ७ ॥

पैचिकमाह—मृदु सगंधोऽसितपीतरागवाऽव्यरभ्रमस्येदुष्पामदान्वितः ।

य उप्यते स्पर्शरुगचिरागकृत्सपित्तशोफो मृदादाहपाकधान् ॥ ८ ॥

पित्तज शोध—जिस शोध रोग में शोध का स्थान कोमल हो गंध युक्त, कृष्ण वर्ण अथवा पीत वर्ण का हो, और ज्वर, भ्रम, रवेद रूपा और मद हो, शोध में दाह हो, स्पर्श करने से पीडा हो, नेत्र रक्त वर्ण के हो और शोध में अत्यन्त दाह तथा पाक हो उसे पित्त के कोर का शोध जानना चाहिये ॥ ८ ॥

कफजमाह—गुरुः स्थिरः पाण्डुररोषकान्वित प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्प्रकृत् ।

सकृष्णजन्मप्रक्षामो निपीडितो न चोच्चमेद्रात्रियली कफारमकः ॥ ९ ॥

कफज शोध—जिस शोध रोग में शोध गुरु ( भारी ) तथा स्थिर हो, पाण्डुवर्ण का, अरुचि रोग युक्त, छाव, निद्रा, बमन और मन्दाग्नि करने वाला तथा कठिनता से उत्पन्न और शान्त होने वाला हो और दबाने से दबे नहीं तथा रात्रि में शोध बढ़ जावे उसे कफ के कोर से होने वाला शोध जानना चाहिये ॥ ९ ॥

शून्यन्ते यस्य गात्राणि स्पन्दस्त्रिय रुजस्त्रिव । पीडितोऽत्युच्चमति च घातशोर्षं तमादिशोत् ॥ १० ॥

अथ वातज शोध—जिस शोध रोग में शरीर में कम्पन तथा पीड़ा होता हुआ शोध उत्पन्न हो और दबाने से शोध दबकर फिर उठ जावे उसे वातज शोध कहते हैं और जिस शोध का वर्ण अरुण हो तथा रात्रि में शोध नष्ट हो जावे और स्नेह पदार्थ ( घृत-तैलादि ) के मर्दन तथा उष्ण सेकादि से नष्ट हो जावे उस वातज शोध कहते हैं १०-११ ॥

यः पीत सज्वरार्तिः स्याद्दृश्यते च विद्वद्यते । श्विद्यते क्लिद्यते गन्धिः स पैत श्वयधुः स्मृतः ॥ ११ ॥

अन्य पित्तज शोध—जिस शोध रोग में शोध का वर्ण पीत हो, ज्वर पीड़ा ( सन्ताप वा दुःख ) दाह, स्वेद, क्लेश और गन्ध हो उसे पित्तज शोध कहते हैं ॥ १२ ॥

यः पीतमुखवर्णवर्णपूर्वमध्याध्रसूयते । तनुत्वचातिसारौ च स पैत श्वयधुः स्मृतः ॥ १३ ॥

जिस शोध में मुख का वर्ण तथा त्वचा पीत वर्ण के हो गये हों तथा शोध की प्रथम उत्पत्ति मध्य शरीर से हुई हो, त्वचा पतली और अतीसार रोग हो उसे पित्तज शोध कहते हैं ॥ १३ ॥

द्विदोषज यमाह—निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयधुः स्याद्द्विदोषज ॥

द्विदोषज शोध—दो २ दोषों के मिलित निदान और लक्षण जिस शोध रोग में हों उसे द्विदोषज अर्थात् वात पित्तज, पित्त कफज और वात कफज शोध जानना चाहिये ।

सशिपातजमाह—सर्वाकृतिः सखिपाताच्छेफो ध्यामिभहेतुजः ॥ १४ ॥

भूनिम्बदि कस्त—चिरेता और सौंठि इनको सम भाग लेकर बस्व कर खाकर कर दे पुनर्नवा का वाथ पान करने से मनुष्यों के सबीग में हुए शोथ निवृत्ति ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।

वाया—नवाची पस्यादि—

पथ्यामृतामङ्गिपुननवाग्निदाधीनिशादाग्महीपधानाम् ।

क्रायो निपीतोद्भरपागिपाद्यपत्राधिसं हन्त्यचिरेण दाफम् ॥ १ ॥

पथ्यादि वाय—हरा, गुर्हाच, वमनठा, गदह पुना, विष्ठ को मष्ट, गद हरदी, हरदी, देवगह, मौंठि, गमभाग लहर वाथ पर पान करने से उदर हाथ, पौंठ और गुग के भाग्य होने वाले शोथ शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

त्रिफलादि वाथ—

त्रिफलाक्यामपान हि महिपीसर्विया सह । हृत्वि वाप प्रमेह च नाडीवणभगन्दरम् ५ ॥

त्रिफलादि वाथ—आबला हरी, बहदा समान लेकर विषिकरू वाथ बनाकर उसमें मीस के घृण वा प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ प्रमेह नाडी रोग और भगन्दर रोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

सिदस्यादि—सिहास्यामृतामण्टाभीकवाथ पीरवा समाधिकम् ।

हृष्युतोथ जयजन्तु कास श्वास ज्वर यमिम् ॥ १ ॥

सिहास्यादि वाथ—भरुसा गुनची, कटरी छोटी सम भाग लेकर वाथ बन उसमें मनु का प्रक्षेप देकर पान करने से बृष्ट साध्व शोथरोग, कास, श्वास, ज्वर और वमन रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

चूर्णानि तथापि पिप्पल्यादि—

हृष्णाप्रिविषघ्नन-रिक्तकण्टकारीपाठानिशाक-रिक्तगामगाघाजटानाम् ।

चूण कवोष्णसलिलेन विलोडित पीत नात पर शपथयुगोहृर नराणाम् ॥ १ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपरि, विष्ठ को मष्ट, सौंठि, नागरमोथा, जोरा, छोटी कटरी, पुरकनवादी हृन्ती, गवधीपरि, पिपगामूल समभाग लेकर चूर्ण कर इसको कुल गरम जल में धोल कर पान करने से शोथरोग नष्ट होगा है । मनुष्यों के लिये शोथरोग वा नाश करने वाला इसमें बड़कर अथ कोर और भीषण नहीं है ॥ १ ॥

गुहाय चूर्ण—

शुटपिप्पलिशुण्ठीमां चूर्णं श्वयथुनाशनम् । आमाजीगप्रणागमं शूलानं यस्तिशोथमम् ॥ १ ॥

गुहाय चूर्ण—पुराणा शुट, पीपरि, सौंठि, गमभाग लेकर चूर्ण कर इसको कुल गरम जल में धोल कर पान करने से और आमाजीग शान्त होता है, शूल नष्ट होगा है और श्वथु मृत्ति होगी ॥ १ ॥

अग्न्या—

गुहायलप्रयं प्राज्ञ शूद्रवर पलप्रयम् । शूद्रवरममा हृष्णा श्लेहविहायसोः पलम् ॥

चूर्णमतामसुरिहं सवश्वयथुनाशनम् ॥ १ ॥

अथ मत्त से गुहादि योग—पुराणा शुट, सौंठि और पीपरि तोम १ पत्र, पीपर चूर्ण कर पकव कर उसमें शुट मण्डूर मस्य तथा आदमस्य पक २ पत्र गिन्गार सारक कर सेवा करने से सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पुनर्नवाचं चूर्णम्—

पुननवा चार्म्यसुता पाटा विधा शर्दंष्टिका । रजन्वी द्वे घृहायी न पिपथमिषयं चूर्णम् ॥ १ ॥

समभागानि सन्धुर्णं सर्वां मृषण वा विषम् । घृष्टुकारं श्वयथुं सवनाशयसारिणम् ॥

हृत्वि आग्नेयुराण्यसौ प्रगोर्णैषोदतात्रयि ॥ २ ॥

पुनर्नवाच चूर्ण—इपुना, दाबहरा, गुर्हाच, पुरकनवादी, मौंठि मोरक, हरदी, दाहराणी बड़ी कटरी, छोटी कटरी, पीपरि विष्ठ को मष्ट और अफगा गमभाग लेकर चूर्ण कर मोरक के अशुभान से लेकर करने से बहुत प्रकार के शोथ भी मनुष्यों शरीर में पैदा नहीं हो सकने नष्ट करता है । तथा आठों प्रकार के श्वथु रोग और बड़क रोग शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥ २-३ ॥

विद्वानि—

विद्वान्ग्रीकटुकाद्रिमुषिप्रकदारय । श्यापं सक्ष्ण्य विद्वाना समा र्श्या उदोरम् ॥

द्विगुण सखिवेषुर्णं पयसा क्षोफशासये ॥ १ ॥

विट्हादि चूर्ण—याभीरंग, द नीमूल, बद्धी, निशोध, पिष्ट भी जड़, देवदारु, सोंठि, गरिच, पीपरि, अक्षरा, हरा, बहेडा का सबके चूर्ण को एक २ भाग और लाहमस्य दो भाग छेदे सबको एकत्र सरल कर दूध के अजुसा से सेवा करो से शोथ रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडाद्रकादियोग —

गुडार्द्रकं वा गुडागर वा गुडाभयां वा गुदपिप्पलीं वा ।

वर्षाभिष्टुद्रवा त्रिपलप्रमाण एादेधरः पथ्यमघापि मासम् ॥ १ ॥

क्षोफप्रतिशयापगलास्यरोगान्मध्यामनासाहचिपीनमादीन् ।

जीर्णज्वरासौप्रहृणीविकारान्दयासयाऽन्यानपि घातरोगान् ॥ २ ॥

गुडाद्रकादि योग—पुराना गुड़ और अद्रक अथवा पुराना गुड़ और सोंठि अथवा पुराना गुड़ और हरी अथवा पुराना गुड़ और पीपरि इनमें से किसी एक योग को वर्षे प्रमाण की मात्रा से प्रारम्भ कर मस से यथा योग्य प्रमाण बढ़ाता हुआ तीन पल तक के प्रमाण की मात्रा तक सेवन करे और पथ्य सेवा करे इस प्रकार एक मास तक करे तो इससे शोथ, प्रतिशया, गला तथा गुग के रोग, दवाग, दास, अरुचि, पीनसादि रोग, जीर्ण ज्वर, अर्श, प्रहृणी के विकार तथा अन्याय वातरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पुनर्नसादियोग—पुनर्नसामूलकश्चदाहृष्टिद्रोक्षयाचिप्रभूमूलसिद्धा ।

रसा ययागूष पयोमि यथाः क्षोफे प्रवेया द्दनामूलगर्मा ॥ १ ॥

पुनर्नसादि योग—गदपुरा, मूली, देवदारु, गुडनि, चिच भी जड़, समभाग लेकर सीलह गुने जल के साथ पाक करे जब भापा शोथ रहे तो उसमें दशमूल का कच्चा देकर उसी जल में रख, यवागू दूध, यूप आदि सिद्ध कर जोध में देना चाहिये । इससे जोध शमन होता है ॥ १ ॥

धीरम्—

धीरं क्षोफहर दाहययामूनागरेः श्यनम् । पेय वा धिग्रकञ्चापत्रिवृदाहप्रसाधितम् ॥ १ ॥

धीर—देवदारु, गदपुरा सोंठि इन द्रव्यों के साथ अथवा चिच भी जड़, सोंठि, गरिच, पीपरि निशोध और देवदारु का द्रव्यों के साथ क्षोफार को विधि से धीर सिद्ध कर पान करने से शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

आर्द्रकरसः—

आर्द्रकस्य रस पीत पुरागगुडमिश्रित । अजाजीराशिल क्षोघ सर्वशोधहरो भवेत् ॥ १ ॥

आर्द्रकरस—अद्रक के रस पुराने गुड़ को मिलाकर पान करने और बरसी के दूध का पथ्य छेने से शोथ हा सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गोमूत्रमण्डूरम्—

गोमूत्रसिद्धमण्डूर सुरभीरसमाधितम् । माणकार्द्रककदानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ १ ॥

त्रिपलाकद्रुषयानां चूर्णं पाणितलह्वयम् ।

शिपेसुमिद्धे पाके तु मधुनश्च पलद्वयम् । निहन्ति सवज क्षोफ सर्वाङ्गं च विशेषतः ॥ २ ॥

गोमूत्र मण्डूर—शुद्ध मण्डूर ( दो पल ) को गोमूत्र के साथ अग्नि पर सिद्ध कर गोमूत्र से माधित करे फिर मान कन्द और अद्रक के रस में घृथक् २ माधित करे पचाव सुखाकर उसमें अंबला, हरी, बहेडा, सोंठि पीपरि, गरिच और चय का समान मिलित चूर्ण दो पल ले मिला कर मर्दन कर दो पल मधु मिलाकर सेवन करने से सत्रिपातज शोथ तथा विशेष कर सम्पूर्ण अङ्गों के शोथ को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

कसदरीतनी—द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कपाये कसेऽभयानां च क्षत गुडाच्च ।

छेहे सुसिद्धे च त्रिनीय चूर्णं च्योपत्रिसीगध्यमुपस्थिते च ॥ १ ॥

प्रस्थार्धमात्र मधुन सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ।

एकाभयां प्राश्य ततश्च छेदाच्चुक्तिनिहन्ति श्वयथु प्रष्टुदम् ॥ २ ॥

कसदरीतनी—दोनों पञ्चमूल ( दशमूल ) समान मिलित को एक आद्रक लेकर एक क्षोण जल के साथ चतुर्थांशवशेष क्वाथ कर वतार—दानकर उसमें उष्ण पके हुए हरक संख्या

में १०० और पुराना गुट सौ पर मिला पील कर गुट धान कर हरद समेत अग्नि पर रत्न कर अक्लेह सिद्ध कर उसमें सोंठि मरिच, पीपरि के पूर्ण को एक २ पल ल और दालचीनी, इलायची और तेजपात्र का पूषक २ एक २ बवं पूर्ण को मिलावे और इसी प्रमाण से यवापार भी निषादे तथा शीतल हो जाते पर उसमें आधा प्रख मधु मिला पर रत्नप्रपात्र में रत्न लेवे । प्रतिदिन एक हरद का पर और ऊपर से गुक्ति प्रमाण (आधा पल) रत्न लेह को खाट लेवे तो रत्नमे बढ़ा हुआ शोष नष्ट होना है ॥ १-२ ॥

कामज्वरारोघकमेहगुणमप्लीहशिश्रोपोदरपाण्डुरोगान् ।

कार्यामवातानसृगाम्बिपित्तत्रैयण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ३ ॥

कास, ज्वर, अरुचि, मेह, शुष्म, प्लीहा, शिश्रोवत्र, उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आनवात, रक्तपित्त, अम्बुपित्त, विकर्णता, मूत्रशोष, वात्र शोष और शुक्र शोष से सभी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

दशमूल हरीतक्या सुख्य कंसहरीतकी । मान सेनाग्र चप्रख्यं चरके प्राह जैजटः ॥ ४ ॥

दशमूल हरीतकी जो आगे लिखी गयी है उसी के समान यह कंसहरीतकी है । इस कंसहरीतकी में चरक ने मान नहीं कहा है परन्तु जैजट महाराज ने यहाँ दशमूल हरीतकी के समान ही मान ग्रहण करने को कहा है ॥ ४ ॥

दशमूलहरीतकी—

दशमूलीकपायस्व कंसे पय्यादात गुहान् । मुलां पचेदने सत्र श्योपपारशतुप्पलम् ॥ १ ॥

त्रिजातं तु सुपणोशं प्रस्थाद्य मधुनो दिने । दशमूलहरीतक्य क्षोषान्गान्ति सुदुस्तरान् ॥ २ ॥

दशमूल हरीतकी—दशमूल के मिलित द्रव्यों को एक आदक एकर एक द्रोग बल के साथ चतुषाद्यावशेष काथ पर उतार-धान कर उसमें सौ पल पुराना गुट मिला पील धान कर उपम पके हुए सस्या में १०० हरद मिलाकर अग्नि पर रत्न कर अक्लेह सिद्ध कर उसमें सोंठि, पीपरि, मरिच और यवापार चार पल (एक २ पल पूषक २) पूर्ण मिलावे और दालचीनी इलायची और तेजपात्र इनका पूर्ण एक २ बवं मिलावे और शीतल होने पर आधा प्रख मधु मिलाकर रत्नप्रपात्र में रत्न उपर्युक्त कंसहरीतकी को भोंवि इस दशमूल हरीतकी को सेवन करने से कठिना शोष नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पुनर्नवासव—पुनर्नये द्वे तु पले सपाटा कृती गुह्यधी सद्य चित्रकेज ।

निद्रिगिषका च त्रिफला विषया द्रोणापदेवे मलिके ततरतम् ॥ १ ॥

पूर्वा रसे द्वे च दार्तं पुराण गुह्य मधुपरशयुतं मुनीतम् ।

मासं निदृष्याद्दृष्टभाजनरथं पण्डे यवानां परतत्र मातम् ॥ २ ॥

पूर्णशृत्तैरघपलांशकैस्त्वेहमाखोलामरिषाम्पुपत्रैः ।

गन्धान्वित शौद्रयुतं मदिस्थं जीर्णं विषेदृष्याधिपतं समीपम् ॥ ३ ॥

ह्याण्डुरोग शयपधुं प्रयुद्ध प्लीहप्रगातोघकमेहगुणमान् ।

भगन्द्राशोऽजठानि कामरवासप्रदृष्यामपहृष्टकण्डः ॥ ४ ॥

दाक्षानिले बद्धपुरीपतां च दिवकां च कास च हृदीमर्कं च ।

चित्रं जवद्वजबलापुरोयस्तेजोन्वितो नागरसांश्च शुष्काया ॥ ५ ॥

पुनर्नवासव—शोनी पुनर्नवा (माल और रेश) एक २ पल इवन २ पुररत्न पन्दी इन्दी मूल, गुग्गुलि, पिपि की जड़ छोटी करेदी, शीरका, हर्षा, बहदा इन्क २ एक २ पल लेहर च द्रोग जल के साथ चतुर्दशशोष काथ पर उतार-धा । मने और इगमें को सौ पल पुराण गुट और शीतल होवे पर मधु एक प्रख मिलावे तथा नाग केजट, दालचीनी, इलायची, मरिच, गुग्गुलि, शोष, शोष इन सब द्रव्यों को आधा २ पल उपम पूर्ण कर मिला रत्नप्रपात्र में रत्न गुण गुह्य भाग्य की विधि से एक मास रखे पद्याद एक मास मधु की रक्ति में रत्न कर सिद्ध विधि हुए रत्न शोषाधिक मधुगुण आसव को रोग बहानि की रेशहर यवापार काथ से सेवन करने से द्रोग, पाण्डु, शीष जी आदरग बढ़ा हुआ हो प्लीहा, भय अरुचि, मेह शुष्म, मातृ, अर्त उदररोग, कास, आग मरुगीरोग, गुह्य अम्बु दास (एक पर अर्त) में रहने वाले कण्डरी, मरु बहान, दिवक, दास, हरीमर्क, इन सब रोगों को रोग नष्ट कर देता है । और बवं, बवं,

भातु, ओज को बढ़ाता है । शयना मांस रस भक्षण करने के पश्चात् सेवन करना अधिक लाभदायक है ॥ १-१ ॥

सर्वजोषे पागामक —

पासकरय तुले द्वे तु द्विद्वोगोऽपौ विपाचयेत् । द्वोगार्धनेप त ज्ञाया पूते क्षीते प्रदापयेत् ॥१॥  
गुह्यस्यैकां तुलां तत्र घातवयास्तु पलायवत् । विपेत्पूर्णां कृतां तस्मिन्सङ्गोलापत्रकेमरम् ॥२॥  
कट्टोल्बयोपतोदानि पात्रिकां मुपकृष्ययेत् । निदृष्यात्पूतभाण्डे तु पपादूर्प्यं तत विपयेत् ॥  
पामकासय ह्रस्वेव सचरषयमुत्तमा ॥ ३ ॥

वासासक—अस्या का पनी गो तुला ( २०० पल ) एतत् पाय की विधि से दो द्वोग भाग चतुष्पादावकाश पाक कर उत्तार-दाता कर द्वोग कर उसमें पुराता गुद्द एक तुला ( २०० पल ) पाय के पूरा भाग पल और दाएलीनी हलायणी, सेनपात, नागधेयत, मद्गोल, सौंठि, मरिच, पीपरि मुगधबाला को एक २ पूर ले चूकर सबको ध्वज मिला चूत पाय में रस गुरुमुद्गन कर आमक की विधि से एक पत्र ( १५ पत्र ) रस कर आसक सिद्ध होने पर पान करने से यह आमकामक सब प्रकार के शोध को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

दावापिपोग —

विपेदुष्पात्पुना द्दारुष्य्याशुष्ठीपुननया । विद्वद्वातिविपायासाविध्दारूपणानि या ॥  
वर्षांशूयद्गधराभ्यां कटक वा सर्वसौफनुत् ॥ १ ॥

दावारि योग—१-देवदारु, इरा, सौंठि और पुनर्नवा, अथवा २-बामीरग, अतीस, अस्ता सौंठि, देवदारु, मरिच, अथवा ३-पुनर्नवा और सौंठि इनमें से किसी एक योग के विधिबद्ध बने चूक को उष्णोष्ण के अनुपात से सेवन करने से सब प्रकार के जोष नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

तत्रापिपोग—

तत्र विपेद्वा गुदमिष्यर्षाः सस्योपसौषधलमासिक च ।

विद्व्यातसङ्गे पयसा रसैर्षां प्रागुष्णमघादुरस्यूकसैलम् ॥ १ ॥

वक्रादिपोग—नित शोध के रोगी का मल गुरु तथा दृढा दुभा ( आम ) निरुपता हो उसको सौंठि मरिच, पीपरि, सोरर नमक के चूर्ण और मधु मिलाकर तम पीता चादिये और जिसके मल और वात का अवरोध हो गया हो ऐसे शोध के रोगी को प्रथम दूध अथवा मांस रस के साथ परण्ड या तैल पीना चादिये पश्चात् उष्ण मघ पीना चादिये इससे शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

पुनर्नवापिपुनम्—

पुनर्नवापत्ररसालमूल सङ्घ च तोयार्मणशेषसिद्धम् ।

चतुर्थभागनेन पूत विपबवं प्रथं तु तत्कटकपलायकेन ॥ १ ॥

संसेवित घातथलासरोगान्सर्वोश्च क्षोफानतिदुस्तराश्च ।

गुह्यमोदुरप्लीहगुदोद्गर्षाश्च निहन्ति घट्टिं ह्रस्वेऽपि पुसाम् ॥ २ ॥

पुनर्नवादि पत्र—गदहपुरना के पत्र और आम के जड़ की छाल इनको सम भाग ले कूट कर मिलित एक प्रथम को १६ प्रथम जल के साथ काय कर चतुर्थांश ( १ भादक ) शेष रहने पर उत्तार छानकर नितना हो उसके चतुर्थांश ( १ प्रथम ) मूर्च्छित गोघ्न और उही पुनर्नवा पत्र और आम की जड़ का समान मिलित करक आठ पल मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से सब प्रकार के वात तथा वफ के रोग अति कठिन शोध, शुल्म, घदर, प्लीहा और अर्श इन सब रोगों को नष्ट करता है और अग्नि को बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

पद्ममूलाव तैलम्—

पद्ममूल सलवण सरल देवदारु च । हस्तिकर्णो पलाशस्य फलानि निजुलस्य च ॥ १ ॥

पलाश काकनासा च गुह्यधी देवयुष्पकम् । अहिना श्रेयसी हिंसा पस्तगंधा पुनर्नवा ॥२॥

कायस्या च वयस्था च दारुका जटिला जटा । अलम्बुपोरुयूक च प्रपुष्पाट सनागरम् ॥ ३ ॥

शिमूगोघवनी भार्गी तर्कारी पौष्करी जटा ।

पूतैः सिद्ध यथालाभ तैलमभ्यञ्जनेक्षिभिः । निहन्नुदीर्णं शययु जन्तोर्वातकफारमकम् ॥४॥

पद्ममूलादि तैल—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सखिवन, पिठिवन और गोखरू तथा संधानमक,

आम्यजीवों के मांस, आनूप जीवों के मांस, कच्चा मांस, नमक, सूखा दाल, नये अन्न, गुड़ से प्रस्तुत मद्य, पिठ्ठी, दही मलाई सहित, क्षरणा का पानी, मद्य, अम्ल रस द्रव्य, पान, पका मांस, अधिक भोजन, गुरु तथा असात्य और दाह कारक पदार्थ का सेवन, रात को सोना और मैथुन इनको शोथ का रोगो त्याग देवे ॥ ४ ॥

वृन्दात्पथ्यापध्यम्—

पुराणयवशाख्येन दशमूलोपसाधितम् । अम्लमरुपकटुस्नेहं भोजनं शोफिनां हितम् ॥ १ ॥

वृन्द से पथ्याप्य—पुराने यव, शालीधान के चावल, इनको दशमूल के ढाथ में सिद्ध कर देना चाहिये और थोड़ा अम्ल, कटु तथा स्निग्ध भोजन शोथ के लिये लाभदायक है ॥ १ ॥

विद्यासमुष्ण लवणानि मद्य मृदु दिया स्वप्नमजाहल च ।

पयो गुढं तैलमथो गुरुणि शोफ जिघांसु परिवर्जयेत् ॥ १ ॥

पिठ्ठी के अन्न, उष्ण द्रव्य, नमक, मद्य, मिट्टी त्राना, दूध में चीना, जांवल जीवों के अतिरिक्त अन्य जीवों का मांस, दूध, गुड़, तैल और गुरु पदार्थ शोथ को नष्ट करने की शक्यता वाला त्याग देवे ॥ १ ॥

इति शोषप्रवरण समाप्तम्

### अथ मुष्का ज्वृद्धिघर्म्मरोगनिदानम् ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

क्षुद्रोरुद्रगतिर्वायु शोथशूलकरक्षरन् । मुष्कौ वक्षुणतः प्राप्य फलकोशामिवाहिनीः ॥  
प्रपीड्य धमनीर्घृद्धिं करोति फलकोशयो ॥ १ ॥

वृद्धि की सम्प्राप्ति—ऊपर की ओर से अवरुद्र गति वाला तथा कुपित अपान वायु नीचे की ओर चलता हुआ शोथ और शूल को करता हुआ वक्षुण स्थान से अण्टकोश में प्राप्त होकर फल कोशामिवाहिनी ( अण्टकोशों के आधारभूत ) धमनीयों ( नाड़ियों ) को पीड़ित करता हुआ फलकोशों ( अण्टकोशों ) ( एक को अथवा दोनों ) को बढ़ाता है ॥ १ ॥

वृद्धः संख्यामाह—

द्वोपाजमेवोमृशान्तैः स घृद्धि सप्तधा गदः । मृशान्त्रजावप्यनिलादेतुभेदस्तु केवलः ॥ २ ॥

वृद्धि की संख्या—दोषों अर्थात् वातज, पित्तज और कफज इन भेद में से तीन, रक्त से एक, भेद से एक और मूत्रदोष तथा अन्न दोष से एक २ इस प्रकार वृद्धि रोग सात प्रकार का होता है । परन्तु इसमें मूत्रज और अन्नज जो वृद्धि है वह वात से ही होती है ( यहाँ केवल कारण भेद से गणना में लिप गये हैं ) ॥ २ ॥

वातजमाह—वातपूर्णवृद्धिस्पर्शां रक्तो घावाद्देहुरकम् ॥

वातज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में वायु पूर्ण चमड़े की धेनी के समान अण्टकोश परत करने पर रक्त झल हो और उसमें अकारण पीडा हो उसे वात के शोथ की वृद्धि जाननी चाहिये ।

पित्तजमाह—पक्वोदुग्धरसश्चात् विच्छाद्वाहोष्मपाकवान् ॥ ३ ॥

पित्तज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्टकोश पके हुए गुग्धर से फल के समान बग का हो जाये तथा उसमें उष्मा और पाक हो उसे पित्त के शोथ की वृद्धि जाननी चाहिये ।

कफजमाह—कफाश्लोतो गुहा दिनमथः कफजमाह—

कफज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्टकोश के अन्दर श्लेष्मिका और थोड़ी पीडा हो उसे कफ के शोथ की वृद्धि जाननी चाहिये ।

रक्तजमाह—घृष्णस्फोटोदावृतः

रक्तज वृद्धि के लक्षण—वृद्धि में घृष्ण हो और पित्तज वृद्धि में युक्त हो उस

मेदोजमाह—

मेदोज वृद्धि के लक्षण—मेदोज वृद्धि के लक्षण तथा हाद के फल के शोथ की वृद्धि

गूजनमाह—

गूजधारणशीलस्य गूजजः स तु गण्यत । अम्मोभिः पूर्णदतिपरलोभं याति सरह् गृधुः ॥५॥

गूज वृद्धि के लक्षण—जो गुरुभ्य गूज के पग को रोकना है उसे गूजवृद्धि होती है यह वृद्धि (अण्डकोश) उसके चाली पर जल से भरे हुए तमटे की धैली के समान कोली है, उसमें पोदा होती है और गूज होती है, गूजकू-गू होता है, और पल कोश हिलता हुआ नीचे की ओर लटक जाता है उस गूजवृद्धि कहते हैं ॥ ५ ॥

अत्रजमाह—गूजकृष्णमधस्तात्तयाद्यालयन्पलकोपयोः ।

यातकोपिभिराहारै शीततोमायगादनैः ॥ ६ ॥

धारणेणभारात्पत्रिमाम्द्रमर्षती । लोभगः कुपितोऽन्यैश्च पुत्रान्प्रापयय यदा ॥ ७ ॥

पवनो विगुणीश्रय स्वनिवेशादध्या नयत् । कुर्वाद्गुणसन्धिस्थो प्रप्याय श्वयथु तदा ॥ ८ ॥

अत्र वृद्धि के निम्नादि—वात को कुपित करने वाले (रूय-विक-वपायादि) आहार के सेवन करने से अति शीतल जल में स्नान करने से, वातगूणादि के धैली को धारण करने से, जैली को बलपूर्वक पिनाली से, अधिभ भार होने से, अधिभ मार्ग सेवन करने से, अर्द्रों का विषम चानन करने से, तथा वायु को शोभित करने वाले अथवा कर्मों (अधिक बलवान से गुद्ध, उग्रस्वर में बोचना आदि) को भी करने से कुपित हुई वायु धुआ-त्रसे अवयव को विगुण कर अपने स्थान से नीचे की ओर ले जाती है और वंगणसन्धि में गाठ के समान शोथ उत्पन्न कर देती है (औत को लकर जोष कर देती है) उसे 'अत्रवृद्धि' कहते हैं (हमी को और उतरता कहते हैं) ॥६-८॥

उपेक्ष्यमागतयाऽत्रवृद्धिमाह—

उपेक्ष्यमागस्य च मुष्कृष्टिमाध्मानम्स्तम्भवती स घायुः ।

प्रपीडितोऽन्तस्वनपानम्रयाति प्राध्मापयन्नेति पुनश्च मुष्कः ॥ ९ ॥

उपेक्षित अत्रवृद्धि के लक्षण—शरीर उपेक्षा करने से (चिकित्सा शीघ्र नहीं करने से) वह वायुवृद्धि सन्धि से अण्डकोश में आकर आध्मा, पीडा और स्तम्भ (मलादि का अवरोध) सहित शोथ वृद्धि करती है । उस वायु के द्वारा उतरी हुई औत को दबाने से शब्द करती वायु औत के सहित भीतर प्रवेश कर जाती है और छोड़ देने पर पुन आ जाती है ॥ ९ ॥

यस्यान्प्रापययैः श्लेष्मा मुष्कृषोर्याति सद्ययात् ।

अन्त्रवृद्धिरसाप्योऽयं यातवृद्धिसमावृत्तिः ॥ १० ॥

अमास्य लक्षण—जिस पुरुष के औत के अवयवों से श्लेष्मा निकल कर अण्डकोशों में जाकर संचित हो जाती है और वातज वृद्धि के समान जिसका लक्षण होता है वह अत्रवृद्धि असाध्य है ॥

धर्मनिदानम्—

अयमिष्यन्दिगुर्यैश्चसेवनान्निर्घयं गतः । करोति प्रन्थिवच्छोध घोषो वल्लुणसन्धिषु ॥

उपरश्लालाङ्गसादाद्य स धर्ममिति निर्दिशेत् ॥ १ ॥

धर्म निदान—आयत अभिष्यन्ती (दही आदि) पदार्थों के अति सेवन से तथा अति गुरु ऋण के अति सेवन करने से संचित हुआ दोष वृद्धि सन्धि में गाठ के समान शोथ उत्पन्न कर देता है और उसमें ज्वर, शूल, अर्द्रों की शिथिलता आदि होती है उसे 'धर्मरोग' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ वृद्धिचिकित्सा माह—

चातवृद्धि चिकित्सा—सर्षीर या विधेसैलं मासमेरुण्डसम्भवम् ।

कुंगुलख्युसैल वा गोमूत्रेण पिदेक्षरः । यातवृद्धिनिहन्त्याश्च धिरकालानुषन्धिनीम् ॥ १ ॥

चातवृद्धि चिकित्सा—एक मास तक दूध के साथ परण्ड के तेल की अथवा शुद्ध गुग्गुलु की गोमूत्र के साथ पान अथवा गोमूत्र में परण्ड तेल मिला कर उसके साथ पान करने से अत्यन्त पुरानी भी चातवृद्धि शीघ्र नष्ट होती है ॥ १ ॥

पित्तवृद्धिचिकित्सा—

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् । शीरपिपः प्रदेह स्यात्पित्तवृद्धिरुजापहः ॥ १ ॥

पित्त वृद्धि चिकित्सा—लालचन्दन, मुल्हठी, कमल, खस, नीलकमल समभाग ले दूध के साथ पीस कर लेव बनाकर लगाने से पित्तज वृद्धि को पीडा नष्ट होती है ॥ १ ॥



पञ्चवल्कलकश्चैन सघृतेन प्रलेपनम् । पान घाऽपि कषायस्य पित्तवृद्धौ प्रदास्यते ॥ २ ॥  
 पञ्चवल्कल ( वट, पीपल, पाकड़, गुलर और बेत को छाल ) के कल्क बना कर घृत मिलाकर  
 लेप करने से अथवा पञ्चवल्कल के काथ को पान करने से पित्तज वृद्धि में लाभ होता है ॥ २ ॥

कफवृद्धिचिकित्सा—

कफवृद्धौ मूत्रतिष्ठैष्णधीर्घैः प्रलेपनम् । पातभ्यो मूत्रसमुच्च कषायः पीतदाहण ॥ १ ॥  
 कफज वृद्धि चिकित्सा—उष्णवीर्य द्रव्यों को गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा  
 दाहरादी के काथ को गोमूत्र के साथ पान करने से अथवा सोंठि, मरिच, पीपरि, अंबरा, हरी,  
 बहेड़ा इनकी समान लेकर काथ बनाकर उसमें यथास्वार और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर पान  
 करने से कफ-वात के कोष को नष्ट करता है तथा विरेचन कराकर कफजवृद्धि को नष्ट करता है ॥  
 त्रिकटुत्रिफलाकाथ सप्पारलवण पियेत् । कफघातात्मकोपघ्न विरेकाकफवृद्धिजित् ॥ २ ॥

रक्तजवृद्धि चिकित्सा—रक्तपित्त के कोष से होने वाले वृद्धिरोग में अविनाही ( दाह नहीं  
 करने वाले ) औषध तथा पथ्य को सेवन करना चाहिये और पित्त को नष्ट करने वाले सब कार्य  
 करना चाहिये तथा रक्त से होने वाले वृद्धि में रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तवृद्धिचिकित्सा—

अविनाहि च भैषज्य कर्तव्य रक्तपैत्तिके । सर्वं पित्तहर कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ १ ॥  
 सुहुर्मुहुर्जलौकाभि क्षोणित रक्तजे हरेत् । शीतमालेपन सर्वं पाको रक्ष्य प्रयानतः ॥ २ ॥  
 रक्तजवृद्धि में बार-बार जोक क द्वारा रक्तमोक्षण कराना चाहिये तथा सब प्रकार के शीत  
 लेप क्षण पर करना चाहिये और पाक नहीं हो ऐसा चल करते रहना चाहिये ॥ २ ॥

त्रिवृत् प्रविचेत्तौदशर्वरासहितं सुहुः । पित्तप्रग्निधर्मम बुयांदांमे पके च रक्तजे ॥ ३ ॥  
 निशोभ क काथ में शीतल होने पर मधु और शबरा का प्रक्षेप देकर बार-बार पिलाना  
 चाहिये तथा इस रक्तजवृद्धि में आम तथा पथ्य दोनों अवस्था में पित्तप्रयि को चिकित्सा के समान  
 ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

मेदोवृद्धिचिकित्सा—

रिच्यन्नं मेदं समुत्थान लेपर्यसुरसादिना । निरोविरेघनद्रव्यैः सुब्धोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ १ ॥  
 मेदो वृद्धि चिकित्सा—मेद से उत्पन्न होने वाले वृद्धि का सुरसादि गण की ओषधियों से  
 विधिपूर्वक रवेदन करना चाहिये और शिरोविरेचन करने वाले द्रव्यों को पीस कर गोमूत्र  
 मिलाकर मोड़ा गरम कर लेप करना चाहिये । इससे मेदोवृद्धि नष्ट होती है ॥ २ ॥

षट्पणशुग्गुष्ठ—

षट्पणं शौद्रसमं शुग्गुलु गम्यसर्पिणा । प्रयुक्त कुट्टपशुक्षीत घयामि दिवसानने ॥ १ ॥  
 षट्पणशुग्गुलाशी मेदोवृद्धिप्रणाशनम् ॥ १ ॥

षट्पण शुग्गुलु—पीपरि, पिपरामूल, चम्प चिठ की जड़, सोंठि और मरिच समभाग  
 लेकर चूर्णकर उसके समान भाग शुद्ध शुग्गुलु मिला कुट्टकर मधु और गोघृत मिलाकर अग्नि बर  
 के अनुसार प्रातःकाल मक्षण करने से और षट्पण-शुक्त तथा षष्ठागरस वाले घर्ष का दो-दस्य  
 सेवन करने से मेदोवृद्धि नष्ट होती है ॥ १ ॥

मूत्रजे-त्रवृद्धौ च—

संस्वद्य मूत्रप्रभयं वसुखल्बेन घेष्टयेत् । सीध-याः पारयंतोऽधरताद्विषयेऽभीहिमुपेन च ॥ १ ॥  
 । मूत्रज तथा अन्नवृद्धि चिकित्सा—मूत्रज तथा अन्नवृद्धि में वृद्धि का रवेदन करके उस स  
 वेष्टित कर देना चाहिये और सीधनी के पास नीच 'मीहिमुत्त' यत्र स सिरा या भेग कराना  
 चाहिये ॥ १ ॥

मुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्नवृद्धौ विचक्षणः । घातवृद्धिद्रमं बुयांदाहस्तप्राप्तिना हितः ॥ २ ॥  
 यदि अन्न वृद्धि अण्डकोश की ओर नहीं जाती हो तो घातज वृद्धि के समान उसकी चिकित्सा  
 करनी चाहिये और अग्नि में पक कराना यहाँ हितकर है ॥ २ ॥  
 बाह्योपरि च कर्णान्ते स्थक्त्वा स्त्रीवनिमाद्वात् । घ्यत्यासाद्वा तिरां पिपयदन्नवृद्धिनिरुचये ॥

रक्त रसात् के ऊपर कान के अन्तिम भाग में सीवनी को छोड़ कर व्यत्यासभाव से अर्थात् यदि अण्डकोष में वृद्धि हो तो दायें कान को और बायें अण्डकोष में वृद्धि हो तो दायें कान की सिरा को भरना बरे तो इससे अत्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

आत्रवृद्धौ योग —

सैलमेरुण्डज पीतं मलासिद्ध पयोभित्तम् । आत्मानशूलोपधितामत्रवृद्धिं जयेत् ॥ ४ ॥

बरिभारा के साथ छोरपाक की विधि से सिद्ध दूध में परण्ट के तेल को मिलाकर पान करने से आत्मान और दूध से युक्त आत्रवृद्धि रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रास्नादि—

रास्नायष्टपमृत्तैरण्डयलागोष्ठरसाधितम् । प्रायोऽत्रवृद्धिं हन्त्याशु ह्युत्तैलेन मिश्रित ॥ ५ ॥

रास्नादि काष्ठ—रास्ना, जेठी मधु, गुहचि, परण्ट की जड़, बरिभारा और गोतरु का सम भाग काष्ठ कर उसमें परण्ट तैल मिलाकर सेवन करने से शीघ्र आत्रवृद्धि का नाश होता है ॥ ५ ॥

विप्वस्यादिप्रलेप —

विप्वली जीरक कुष्ठ घट्ट शुष्कगोमयम् । काञ्चिकेन प्रलेपोऽयमत्रवृद्धिविनाशनः ॥ ६ ॥

विप्वस्यादि लेप—वीषरि, जीरा, कूच, बेर, धरग गोबर इनको समान ले दूध पीस कर काजी में मिलाकर लेप करने से आत्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ६ ॥

देवदावादि प्रलेप —

देवदाकमिश्रीपासाटाकलीमूलसैधवैः । शीघ्रयुक्तं च सैलं पो वृद्धिमत्रभवां जयेत् ॥ ७ ॥

देवदावादि लप—देवदाग, सीरु, वासा, पाशाड़ की जड़, और सैधा नामक इनको समान ले कूटपीस कर मधु मिलाकर लेप करने से आत्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अण्डवृद्धिचिकित्सा—

सैल नारायण योज्य पानाम्यशनयस्तिषु । गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां रसगन्धककज्जलीम् ॥ १ ॥

पीत्वा पिहन्ति सहसा वृद्धिं वृषणसम्भवाम् ।

अण्डवृद्धि चिकित्सा—अण्डवृद्धि में नारायण तेल को पान करने, मर्दन करने और वस्ति धर्म में प्रयोग करने से और गोमूत्र में परण्ड तैल मिलाकर उसमें शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक की कज्जली मिलाकर पान करने से अण्डकोष की वृद्धि भी इटाव नष्ट करता है ॥ १ ॥

वातकफवृद्ध्याफलत्रिकादि—

पलत्रिकोद्भय षकाथ गोमूत्रेणैव पाययेत् । वातरलेप्मकृतं हन्ति शोथ वृषणसंभवम् ॥ २ ॥

पलत्रिकादि काष्ठ—हरा, बहेड़ा, भौवला सम भाग लेकर काष्ठ कर उसमें गोमूत्र मिलाकर पान करने से वृषण का वातकफज शोथ नष्ट होता है ॥ २ ॥

प्लक्षादिविण्डी—

प्लक्षास्यीजशुण्डीनिर्गुण्डीनां मियः समैरचूर्णः ।

धृतमधुसहिता विण्डी न समते मुष्कवृद्धिकथाम् ॥ ३ ॥

प्लक्षादि विण्डी—पाकड़, बहेड़े की गुठली, लोंठि और निर्गुण्डी सम भाग लेकर चूर्ण कर घृत और मधु मिलाकर विण्डी बनाकर विविध प्रयोग करने से अण्डकोष की वृद्धि को नष्ट करता है ॥

घघासार्पणकण्ठेन प्रलेपः शोफनाशन ।

दार्वाचूर्णं गवां मूत्रैर्निपीत मुष्कवृद्धिजित् । आर्द्रकस्य रसः शीघ्रयुक्तो वृषणघातजित् ॥ ४ ॥

वच और ससों को पीसकर लेप करने से अण्डकोष का शोथ नष्ट होता है, अथवा दाह हरी की चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करने से मुष्क वृद्धि नष्ट होती है अथवा अर्द्रक के स्वरस में मधु मिलाकर पान करने से वृषण घात नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ सामान्यचिधिः ।

मांस्यादिघृतम्—

मांसी कृष्ट पत्रकैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम् । कृमिह्नमशगघा च दौलेयं कटुरोहिणी ॥ १ ॥

सैधव तगर चैव कुटजातिविषैः समैः । एतैश्च कार्पिकै कर्कशैस्तप्रस्यं विपाचयेत् ॥ २ ॥

घृतमुण्डीतकैरण्डनिम्बपत्रभव रसम् । कण्टकार्याश्वापि दुग्ध प्रस्यं प्रस्यं विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥

सिद्धमेतदुद्यत पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति । घातवृद्धिं पित्तवृद्धिं भेदोवृद्धिमपारि धा ॥

मूत्रवृद्धिं च हन्त्येतत्सर्पिराशु न संशय ॥ ४ ॥

भास्पादि घृत—ज्वरमासी कूठ, तैज्रपात, श्लायची, रास्ना, काकदासिणी, चिच की जड़, बामीरग, बसगंध, छैल छरीला, कुट्टी, सैधा नमक, तगर, कोरया की छाल और अतीस को समान वा एक २ कर्ष लेकर कल्क कर एक प्रस्थ मूर्च्छित गीघृत में मिलाकर पाक करे और इसमें पाकार्थ अरुसा का स्वरस, मुण्डी का स्वरस, परण्ड के पत्तों का स्वरस, नीम के पत्तों का स्वरस छोटी कटेरी के पंचांग का स्वरस और गाय का दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ घृथक् २ खलकर विधिवत् पाक करे घृत मात्र शेष रहने पर उतार—धानकर पान करने से भत्रवृद्धि को नष्ट करता है और घातवृद्धि, पित्तवृद्धि, भेदोज वृद्धि और मूत्रज वृद्धि को यह घृत शीघ्र और निश्चय ही नष्ट कर देता है ॥ १-४ ॥

पुनर्नवादि तैलम्—

पुनर्नवाऽमृता दाह सघार लघणययम् । कुष्ठसटी घषा मुस्तं रास्ना कट्फलपुष्करम् ॥ १ ॥  
 यधानी हृषुषा क्षामूः क्षताह्वा चाजमोदिका । विदङ्गातिविषायष्टीपद्मकोलकसंयुतैः ॥ २ ॥  
 गृहैरससमैः कफकैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । गोमूत्र द्विशुण देय काञ्जिक च तथैव च ॥ ३ ॥  
 पुनर्नवाद्यमेतत्तु बरती पाने तथोत्तमम् । कठबुरुष्टमेदेषु कुञ्जी च वृषणाश्रितम् ॥  
 कफवातोद्भव शूलभत्रवृद्धिं विनाशयेत् ॥ ४ ॥

पुनर्नवादि तैल—पुनर्नवा, गुरुचि, देवदार, यवाधार सेंधानमक, सौंघरनमक, विद्वनमक,

गूरु, कचूर, बच्च, नागर मोथा, रास्ना, क्रामफर, पुद्गक मूल, जवारन, दाऊबैर, सहिजब, सौंफ अजमोदा, बामीरग अतीस, जठी मधु, पीपरि, पिपरा मूल, चाब, चिच की जड़ और सोंठि पृथक् २ एक २ अङ्ग के प्रमाण से लेकर एक प्रस्थ कस्क मूर्च्छित तैल के तैल में मिलाकर तैल पाक करे और इसमें गोमूत्र और बाजी दो २ प्रस्थ देकर पाक करे तैल मात्र शेष रहने पर उतार—धानकर रख लेवे । यह 'पुनर्नवादि तैल' बस्ति कर्म तथा पान करने में उत्तम है । इससे कटि, ऊरु, पीठ, शिदन, कुक्षि और अण्डकोष में उत्पन्न होनेवाले कफ और घात के दान तथा भत्रवृद्धि नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

### अथ घर्म्मचिकित्सामाह ।

विल्वादिचूर्णम्—

मूलं विष्वकपित्तयोरररुक्कस्याग्नेर्बृहयोर्हृयोः  
 श्यामापृथिकरञ्जिप्रुकत्तरोर्विद्वीषघारुष्करम् ।  
 वृष्याप्रन्थिकयेषुलपद्मलघणं चाराजमोदान्वित  
 पीतं काञ्जिककोणसोयमथितैरचूर्णीकृतं घर्म्मजित् ॥ १ ॥

विल्वादि चूर्ण—बैल की जड़, कैव की जड़, सीना पाठा की छाल, पिच की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, श्यामा ( काली निग्रोथ ), पृथि करण, सहिजन की छाल, सोंठि, गुरु मिलावा, पीपरि, पिपरा मूल, बामीरग, पृथक् २ पाँचों भमक, यवासार अजमोदा सम भाग ( एक २ भाग ) लेकर चूर्ण कर काली अथवा उष्ण जल अथवा मधु ( तफ ) के अनुपान से यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से घर्म्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

शुद्धचैरण्डतैलेन कश्च पध्यासमुद्भवः । वृष्यासेधवसुपुच्छो घर्म्मरोगहरः परम् ॥ १ ॥

परण्ड तैलादि योग—परण्ड के तैल के साथ हरण्ड के कस्क का चूर्ण को भ्रूकर वसमें पीपरि का चूर्ण तथा सैधा नमक मिलाकर सेवन करने से घर्म्म रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

शुद्धप्रासिभुविशाब्ददाकृमिहरारमभिव । लोघ्नचूर्ण पूतेनाटाद्वातघर्म्महरं परम् ॥ २ ॥

शुद्धप्रासि चूर्ण—गोठरु, सैधा भमक, सोंठि, नागरमोथा देवदार, बामीरग, पधरचूर और शोष समभाग लेकर विधि पूर्वक चूर्ण कर घृत के साथ मिलाकर सेवन करने से घर्म्म नष्ट होता है ॥

सैधय सघ्न वुष्टं क्षताह्वा निशुल घषा । द्वीयेरं मधुकं भाद्रौ देवदारु सनागरम् ॥ ३ ॥

कट्फालं वीष्कर मेदा शविका चिद्रक सटी । विदङ्गातिविषे श्यामा हरेणुर्नीलिनी पिपरा ॥ ४ ॥  
 विषवाजमोदा रास्ना च धृन्ती वृष्या च तै समै । साप्यमरण्डजं तैलं तैलं वा कफघातनुपु

धर्मोदाघतंगुणमार्तं प्लीहमेहान्पमादतान् । आनाहमरमरीं चैव ह्यात्तदनुयासनात् ॥६॥

सैधवादि तेल—सैधा नमक, मंनपल, कूठ, साफ, समुद्रपल बच दाऊ बेर, गुल्हठी बमनेठी, देवदारु, सोठि, कायफर, पुष्परमूह, मेदा, चम्य, चित्त बी जड़, पसूर, बामीरग, अतीस, वाली निगोप, रेणुका, नील, शालिपर्णी बेल की छाल, अन्नमोदा, रारना, दाती, पोपरि, समा लेकर विपिवत् बरक कर बरक के चौगुना मूच्छित णरण्ड तेल अथवा तिल का तेल और पावार्य अल तेल से चौगुना खर मेल पाक कर सेवा करने से ये दोनों तेल बच और वात को नष्ट करते हैं और बर्ध, उदाघत, शुष्म, अर्श, प्लीहा, मेह, आदघवात, आनाह, अरमरी, ये सभी रोग इस तेल या अनुयासन बस्ति के द्वारा प्रयोग करने से नष्ट होते हैं ॥ १-६ ॥

अजाजी हृपुपा कुष्ठ गोमय घदरायितम् । काञ्जिकेन तु सम्पिष्ट कुर्याद्बर्धमप्रलेपनम् ॥ १ ॥

अजाजपादि लेप—नीरा, हाऊबेर, कूठ, घग्गा गोबर बेर की छाल सम भाग लेकर पाजी के साथ पीसकर लेप करने से बर्ध में लाभ होता है ॥ १ ॥

सद्योमृतस्य काकस्य मलेन परिलेपनम् । यधर्मरोग प्रयाथाष्ट रविणा तिमिर यथा ॥

पप्येऽन्न दारणं कृत्वा प्रकर्तव्या धणक्रिया ॥ २ ॥

काक मल ( विषा ) प्रलय—जीम हो मर हुए काक की विषा का बर्ध पर लेप करने से यधर्मरोग शीघ्र इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार धर्म से अन्धकार । धर्म के पक जाने पर चोरपाड़ कर मग के समान ( शोधन-रोपण आदि ) किया करनी चाहिये ॥ २ ॥

### अथ कुरण्डचिकित्सा ।

यः पित्तदोषेण कुरण्डरोगो भवेत्तिच्छोर्द्विणमुष्कभागे ।

सस्योर्ध्वभागं धयणस्य विष्येद्रामस्य वामप्रभवेऽपरस्य ॥ १ ॥

कुरण्ड चिकित्सा—पित्त के विकार से यदि बालक को कुरण्ड रोग ( अण्डवृद्धि ) दाये अण्डकोष में हो तो दाये कान के ऊपर की ओर बायें अण्डकोष में हो तो बायें कान के ऊपर की सिरा बेध देना चाहिये ॥ १ ॥

परण्डतैलादियोग —

परण्डतैलसमिधं कासीसं सैधव पियैव । वस्त्रेण घृण्य यद् कुरण्डञ्चरनाशनम् ॥ १ ॥

परण्ड तैलादि योग—परण्ड तेल में शुद्ध कासीस का चूर्ण और सैधा नमक मिलाकर पान करने से और वस्त्र से अण्डकोष को बाँधने से कुरण्ड ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

रुद्रवारण्यादि—

इन्द्रवारणिकामूल तैल पुष्करज तथा । सम्मर्धं च सगोदुग्ध पियेज्जन्तु कुरण्डजे ॥ १ ॥

रुद्रवारण्यादि योग—मादिरि की मूक का चूर्ण तिल का तेल अथवा परण्ड का तेल, पुष्करमूल का चूर्ण सब समान लेकर मर्दनकर गोदुग्ध के अनुपात से पान कराने से कुरण्डरोग नष्ट होता है ॥

सैन्धवादि लेप —

सम्चूर्णितं सैन्धवमाज्ययुक्तं सम्मद्य तोयस्थितमेव सोष्णम् ।

सुहुमुहुयं कुरुते प्रलेप विलीयते तस्य कुरण्डरोग ॥ १ ॥

सैधवादि लेप—सैधा नमक के चूर्ण को गोघृत में मिलाकर नल में डालकर उष्ण करे जब जल उष्ण होगा तो घृत भी उष्ण होकर फैल जावेगा उस फैले हुए उष्ण घृत का बार २ लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गर्वा घृतेन संयुक्त क्षिपेत्सैधवचूर्णकम् । पियेस्तसद्दिनं यावत्तावत्लेपः कुरण्डजे ॥ १ ॥

सैधवादि योग—गो क घृत में सैधा नमक का चूर्ण मिलाकर सात दिन तक पान करने और शमीना लेप भी करने से कुरण्ड रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ ,

तण्डुलवारिविमिश्र घृतपुरसम्भ्र यदुध्यते लोके । तन्मूलपिष्टलेप कुरण्डगलण्डयो कुर्यात् ॥ १ ॥

घृतपुट लेप—चावल के धोअन क साथ पीकरज की जड़ पीस कर कुरण्ड और गलगण्ड पर लेप करना चाहिये इससे कुरण्ड और गलगण्ड नष्ट होता है ॥ २ ॥

ईशरीमूलमेरुण्डमूल मूषकचम च । प्रलेपं स्यात्कुरण्डानां रोगविच्छेदकारक ॥ १ ॥

ईश्वरी मूत्रादि लेप—बांश ककोटे की जड़, परण्ड की जड़, मूस का चमड़ा इनको समान ले पीस कर लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुपेयित्वाहाणयष्टिकाया मूल सम तण्डुलघायनेन ।

निहन्ति लेपाद्गुण्डमालां कुरण्डमुष्णानखिलान्विकारान् ॥ ४ ॥

माहाणयष्टि मूल प्रलेप—मदादण्ठी ( बभनेठी ) की जड़ की पीस कर चावल का धोवन समान मिश्रकर लेप करने से गलगण्ड, गण्डमाला और मुग्ध्यत कुरण्ड रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

घातारितैलमृदित सुरवास्नीज मूल नर पिषति यो मयुषं विचूर्णम् ।

गव्ये निधाय पयसि त्रिदिनावसाने तस्य प्रणश्यति कुरण्डकृतो विकारः ॥ ५ ॥

शुद्धवास्नी मूल योग—परण्ड के तेल ने साथ माहुरि की जड़ की पीस कर गाय के दूध में मिलाकर तीन दिन तक जो पीना है उसका कुण्ड नामक विकार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

गोमूत्रसिद्धां स्युतैलमृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् ।

स्त्रादेक्षरः क्रोष्णजलानुपानास्त्रिहन्ति कुरण्डमतीयं घृदम् ॥ ६ ॥

सिद्ध हरीतकी—हर्रां की गोमूत्र में मिगी कर ( भावित कर ) परण्ड के तेल में भूज कर सेंधा नमक के चूण की उसमें मिलाकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से अत्यन्त बड़ा दुमा भी कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शाम्बूकोदरनिहित गव्य सप्ताहमाप्तये सर्पि ।

स्त्रियतमपहरति कुरण्ड सैन्धवचूर्णान्वितं स्त्रेयात् ॥ ७ ॥

शाम्बूक योग—शाम्बूक ( घोंघे ) के भीतर गाय का घृत भर कर एक सप्ताह तक धूप में रन्ने के बाद उस घृत में सेंधा नमक के चूण की मिलाकर लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

सशोधन धरितरसृविमोक्ष स्वेद प्रलेपोऽहणशालयश्च ।

परण्डतैल सुरभीजल च घन्वामिषं शिशुफलं पटोलम् ॥ १ ॥

पुननयागोष्ठुरकाग्निमन्थ साम्बूलपप्यारसनारसोनम् ।

यान्यपङ्कानुष्णनकं मधूनि कौग्मं पृथ सप्तजलं च सकम् ॥ २ ॥

अर्धेन्दुयहृष्णयोश्च दाहो ध्यत्याससो बाहुशिराव्यघ्नश्च ।

ययामयं शस्त्रविधिश्च घर्गं स्याद्भ्रमवृद्धवामपिनां सुखाय ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—सशोधन घर्म ( वमन विरेचनादि ), वस्तिकर्म, रक्तमोक्षण, स्वेदकर्म लेप लगाना शालशालीचा का चावल, परण्ड का तैल, गी का मूत्र, धन्वदेशीय ( मरुस्थल के ) जीवों का मांस, सद्भिजन का फल, परपर, पुनर्नवा, गीखरू, गनियार, पान, हर्रां, रास्ना लहसुन, वमन कर्म, त्रिपंथु, गामर, मधु, औषध का पुराना घृत, लणजल, मठठा, अर्धचन्द्राक्षर सोदा तथाकर बक्षय सर्पि में दागना, बाहु की सिराओं को ब्यत्यासमाक स ( दाहिने ओर के अण्डकोष के बढ़ने में बायें और बायें ओर के बढ़ने से दाहिने बाँह की सिरा का ) भेदन करना, रोगानुसार मुख चिकित्सा तथा रोगनाशक पदार्थों का सेवन करना आदि सभी उपाय बन्धें तथा वृद्धि रोग में हितकर हैं ॥ १-३ ॥

आनुपमांसानि दधीनि मापाः पिष्टानि पुष्टाश्चमुपोदिका च ।

गुरगि शुक्रोत्पित्तयेगरोषा स्युर्धर्मवृद्धवामपिनामनित्राः ॥ ४ ॥

आनुप जीवों का मांस दही, उदद, पिठठी दूधित अन्न, पोरे का माक, गुरु दण्ड, बीर्ष के उठे हुए वेग की रोकना, ये सभी कर्म बन्धें तथा वृद्धिरोग बाधों के लिये अहितकर हैं ॥ ४ ॥

वृन्दाश्च -घग्नाहर्नि पृष्टयानभ्यापाम मैयुम तथा ।

आत्यन्तमयाभ्यानमुपवास परित्यजेत् ॥ १ ॥

वेगों को कारण करना, पीठ पर ( पीड़ा आदि की पीठ पर ) बन्दना (भकारी करना), व्यायाम मैयुन, अधिक गीजन, मार्ग सेवन और उपवास इन सबको त्याग दें ॥ १ ॥

इति शुष्कान्धवृद्धिर्धर्मरोगप्रकरण समाप्तम् ।

अथ गलगण्डगण्डमाहापचीमन्त्र्यर्गुनिदानम् ।

गलगण्डादिनिदानमाह—

नियतः शयधुर्यस्य मुष्कवस्त्रगतये गले । महाया यद्वि वा हस्यो गलगण्ड समादिशेत् ॥ १ ॥

गलगण्ड का रूप—जिस गुण्य के गले में दृढ़ (अचल) शोथ उत्पन्न होकर अण्डकोष के समान लटके और वह शोथ बढ़ा हो अथवा छोटा हो उसे 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ १ ॥

यथोक्त भोजेनापि—

महात्त शोथमर्ध्वं वा हनुमन्यागलाश्रयम् । लम्ब्यतं मुष्कयपूटपुत्रा गलगण्ड विनिर्दिशेत् ॥

बड़ा अथवा छोटा जो शोथ हनु, मया और गला के आश्रय में अण्डकोष के समान लम्बा लटक जाता है उसे 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ २ ॥

तस्य संप्राप्तिमाह—

यातः कफद्यापि गले प्रदुष्टो मन्ये तु सभिरस्य तथैव मेदः ।

कुवन्ति गण्ड क्रमयाः स्थितिः समन्वित्त त गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

गलगण्ड की संप्राप्ति—बात, कफ और मेद गले में दूषित होकर दोनों ओर भी मन्याओं का आश्रय लेकर क्रम से अपने अपने लक्षणों से शुष्क (वातज, कफज और मेदोज) गण्ड (शोथ) फर देते हैं वही 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ २ ॥

तत्र वातिकमाह—

सोदान्वित कृष्णशिरावनन्दः श्यावारुणो वा पयनारमकस्तु ।

पाद्व्ययुक्तधिरघृद्धयपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥

परस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोभयेक्षया तालुगलप्रतोष ॥

वातज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में तीव्र (धरं) सुमान के समान पीड़ा हो और वह काली तसों से भिरा हो, तथा उसका वर्ण श्याम अथवा अरुण हो पव वह रुद्ध हो, बहुत देर में बड़े और पके नहीं, कीरे र स्वयं पक् भी जावे और जिसकी यह उत्पन्न होवे उसके मुख का स्वाद विरस हो, ताछ तथा गला प्यवता रहे उसे वात के कोष का गलगण्ड (वातज गलगण्ड) कहते हैं ॥

रौमिकमाह—

स्थिरः सवर्णो गुरुप्रकण्डू पीतो महांश्वापि कफारमकस्तु ॥ ४ ॥

धिरामिष्टुद्धिं भजतेऽधिराद्धा प्रपश्यते मन्दरुज कदाचित् ।

माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोभवेक्षया तालुगलप्रलेप ॥ ५ ॥

कफज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में स्थिरता तथा शरीर के वर्ण के समान वर्ण हो और जो गुरु हो, जिसमें कति कठिन कण्डू हो, जो शीतल तथा बढ़ा हो, बहुत देर में बड़े बहुत देर में पके तथा पाक के समय में भी पीड़ा अल्प ही हो और मुख का स्वाद मधुर हो, ताछ तथा गले में कफ लिप्त रहे उसे कफ के कोष का (कफज) गलगण्ड कहते हैं ॥ ४-५ ॥

मेदोजमाह—स्निग्धो गुदा पाण्डुरनिष्ठगन्धो मेदोभव कण्डूयुतोऽपरश्च ।

प्रलम्बतेऽलानुवद्वपमूलो देहानुरूपश्चपृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥

स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुदाब्दं कुरुतेऽतिमात्रम् ॥

मेदोज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में स्निग्धता तथा गुरुता हो और जो पाण्डु वर्ण का हो, जिसमें दुर्गंध, यण्डू, अल्प पीडा हो, अलाम् (लीकी) के समान मूल में पतला और लम्बा होकर लटकने वाला हो, शरीर के समान ही गण्ड का क्षय और वृद्धि हो अर्थात् शरीर दुर्बल होने पर क्षीण और सबल होने पर वृद्ध हो और उसका गुदा स्निग्ध रहे, गले में अनुवाद हो अर्थात् जो थोले उसके ही अनुसार गले में भी शब्द होवे उसे मेद के प्रकोष का मेदोज गलगण्ड जानना चाहिये ॥ ६ ॥

असाध्यत्वमाह—कृष्णार्धवसत मृदुसर्वगात्र संयत्तरातीतमरोषकार्तम् ।

शीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेद्दि ॥ ७ ॥

असाध्य लक्षण—जिस गलगण्ड में रोगी बड़े बड़े से आस लवे, सम्पूर्ण शरीर उसका गुरु

( कोमल वा मिथिल ) हो गया हो, रोग एक वर्ष का पुराना हो गया हो, रोगी को अरुचि हो, शरीर क्षीण और स्वरभेद हो, उस गण्डगण्ड के रोगी को वैद्य त्याग देने ॥ ७ ॥

स्थानतुल्यतया गण्डगण्डमालामिहैवाह—

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कृष्णं समन्यागण्डवङ्गणेपु ।

मेदकफाम्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिन्न गण्डैः ॥ १ ॥

गण्डमाला का स्वरूप—मेद और कफ के कुपित होने के कारण कारु-कषा-मन्या ( कर्ण मूल का निचला स्थान ), गला और वङ्गण में बन बैर ( सर बैर ) पड़ी बैर और आँवले के प्रमाण ही बहुत सी गण्ड ( गाँठें ) उत्पन्न हो जाती हैं वे गाँठें बहुत समय के बाद धीरे २ भयना कम पकने वाली होती हैं उसे 'गण्डमाला' कहते हैं ॥ १ ॥

यदाह भोज—

घातपित्तकफा घृद्धा मेदध्वापि समन्वितम् । जङ्घयोः कण्ठरां प्राप्य मास्याण्डसहशाण्डहृत् ॥  
कुर्वन्ति ग्रन्थीस्तांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः । तादोपान्ध्वयो घृषकषामपागलाभित्ता ॥  
नानाप्रकारान्कुरते ग्रन्थीन्सा ध्वपची ह्येव । अपची कण्ठमन्यासु कषायलक्षणसन्धिषु ॥

गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥ ३ ॥

बड़े हुए वात-पित्त और कफ तथा संचित मेद मिला कर जङ्घाओं की कण्ठराओं की प्राय होकर मत्स्याण्ड ( मछली के अण्डे ) के सदृश बहुत सी ग्रन्थियों की उत्पन्न कर देते हैं फिर उनसे कुपित कर्षाग वात उन दोषों को बल स्थल, कांस, मन्या और गला के आशय करके अनेक प्रकार की ग्रन्थि अपची की भाँति कर देता है । उसी अपची को जो कण्ठ, मन्या, कांस और अक्षय सन्धिषु में ( माला की आकृति की ) हो जाती है उसे 'गण्डमाला' जानना चाहिये । ये ( गण्डमालाएँ ) अपची के समान ही लक्षणों वाली होती हैं ॥ २-३ ॥

गण्डमालातुल्यतयाऽपचौमाह—

ते प्रपयः केचिद्वाप्तपाका क्षवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चाप्ये ।

कालानुबन्ध चिरमादधाति सैवापचीति प्रघटन्ति केचित् ॥ १ ॥

गण्डमाला का मेद से अपची—गण्डमाला की ग्रन्थियों में यदि धीरे पकती हों, कोई पड़ती हों ( ग्रन्थियों में पूसादि का खाव होता हो ), कोई नष्ट होती हों और कोई उत्पन्न होती हों उस प्रकार की अवस्था यदि बहुत समय तक रह जावे तो उस अवस्था को कोई २ अपची कहते हैं ॥

तस्याः साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्याः स्मृताः पीमसपाशर्वशूलकासज्वरश्लेष्मिस्तुक्तास्वसाध्या ॥

साध्यासाध्यता—ये उपर्युक्त ग्रन्थिया साध्य कहाँ गयी हैं । परन्तु जिसमें पीनस, पार्श्वशूल, पास, ज्वर और वमन भी हो ऐसी ग्रन्थिया असाध्य हैं ॥

अपचौरूपगुणतया प्रधिकानाह—

घातादयो मांसमधुवमदुष्टा मन्द्वप्य मेदध सथा सिराशः ।

घृषोन्नतं विप्रचित्तं तु क्षीयं कुर्वत्यतो प्रपिपरितं प्रद्विष्टः ॥ १ ॥

ग्रन्थि रोग—कुपित ( घृद्ध ) घातादिक दोष तथा गैर और सिराओं मांस और रक्त को दूषित करके गोल छठी हुई गाँठदार क्षीय को पर देतो है उसे 'ग्रन्थि' ( गाँठदार होने से ) कहते हैं ॥ १ ॥  
वातिक्रमाह—आपच्यते घृषति गुणते च प्राप्यस्यते मप्यति भिद्यते च ।

घृषणो घृष्यतिस्तिरिनाऽस्तस्य भिन्न स्यपथागिहज्जोऽपमप्यम् ॥ २ ॥

वागत्र ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में रीन कर पदानि ऐदन करके, उन्हें सुधाने, पौनने, मपने, फोडने आदि की भाँति पोड़ा होता हो और जो कृष्ण रंग की घोरम रस के समान रंगी हुई हो तथा फूटने पर जिसमें स्वच्छ रक्त का छाव हो उसे वातत्र ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ २ ॥  
पैत्रिक्रमाह—घृष्यते घृष्यते च पापच्यते प्रग्रहणीय चारि ।

रक्त म पीतोऽप्यय वाऽपि पिच्छादिभ्यः सयेदुष्टमतीय चाद्यम् ॥ ३ ॥

विचन ग्रन्थि—विष ग्रन्थि में अरुणत वाह भूषा निकलने के समान वा अति सन्तार पूसने ( सिंगी गुम्बी आदि से रक्त रीकने ) के समान क्षार से पडने के समान और अग्नि से अग्नि

के समान पीड़ा हो और फूटने पर उससे छाल या पीत वर्ण का अत्यन्त दूषित रक्त का स्राव हो उसे पित्त के कोप की ( पित्तज ) ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ ३ ॥

श्लेष्मिन्प्रमाद—शीतो विवर्णोऽक्षपरुजोऽतिपाण्डुः पापाण्यवसंहननोपपन्नः ।

चिरामिष्टद्विष कफप्रकोपाद्भिन्नः क्षयेऽप्यलघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

कफज ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में शीतलता हो शरीर के ही वर्ण के समान वर्ण हो पीड़ा अल्प तथा कण्ट हो और जो पत्थर के समान बठिन हो, बहुत देर में बड़े और फूटने पर उससे श्वेत वर्ण का गाढ़ा पूय का स्राव हो उसे कफ के कोप की ( कफज ) ग्रन्थि समझनी चाहिये ॥ ४ ॥

मेदोजमाद—शरीरवृद्धिचयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कण्डुयुतोऽक्षपरुक् च ।

मेद वृत्तो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसपिः प्रतिम च मेद ।

मेदोज ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में शरीर की वृद्धि होने से वृद्धि तथा शरीर के क्षीण होने से ह्रास हो वह चिकनी, अत्यन्त बड़ी, कण्डु, तथा भ्रम्य पीड़ायुक्त हो, और फूटने पर उसमें से पिण्याक ( घीली दुर्ग खली ) और घृत के समान मेद का स्राव हो उसे मेद के कोप की ( मेदोज ) ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

उक्तं च भाजेन—

मेदो घायुर्यदा मांसे निक्षिपेदयथा त्वधि । तत्र मेदोभवो ग्रन्थिः श्यावो भवति पाण्डुर ॥

शृश शृशो महान्श्लेष्मले ग्रन्थिरिच्छन्न पीडित । तिलककनिम स्रावो घृतवघ्रास्य जायते ॥

जब वायु कुपित होकर मेद का मांस अथवा त्वचा में फैला है ( ले जाता है ) तब यहाँ श्याम वर्ण वाली अथवा पाण्डु वर्ण वाली मेद से ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है । वह ग्रन्थि रोगी के दुर्बल होने पर घट्टम और स्थूल होने पर बड़ी होती है तथा पीडित होने और फूटने पर उससे तिल के बरक के समान और घृत के समान स्राव होता है इसे 'मेदोज ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥

शिराजग्रन्थ सम्प्राप्तिमाह—

व्यापामजातेरयलस्य तैस्तैराचिप्य घायुस्तु शिराप्रतानम् ।

सङ्घुष्य सपीडय विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युधतमांशु घृत्तम् ॥

ग्रन्थि शिराजः स तु कृष्णसाध्यो भवेद्यदि श्यावस्तृजश्चलश्च ॥ १ ॥

शिराज ग्रन्थि—जो निबल मनुष्य अधिक द्रम करते हैं उनके अंग से कुपित वायु शिरा समूह को आश्रित, सङ्कुचित, पीडित और विरोधित करके शीघ्र उठी हुई गोल ग्रन्थियों को उत्पन्न कर देती है । वह शिराज ग्रन्थि यदि पीडा युक्त और चलने वाली हो तो कष्ट साध्य है और यदि पीडा रहित, अचल, बड़ी, गर्मस्थान एवं अस्थि से उत्पन्न होने वाली हो तो वह त्यागने योग्य ( असाध्य ) होती है ॥ १ ॥

तस्यामाध्यत्वमाह—

स चारुजश्चाप्यचलो महाश्च मर्मास्थिजश्चापि विवर्जनीय ॥ १ ॥

असाध्यता—पीडा रहित, गर्म स्थान से उत्पन्न और अचल पांचो प्रकार की ग्रन्थियों को वैध त्याग देवे ॥ २ ॥

उक्तं भाजेन—पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्ममजामचलांसयजेत् ।

कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्याश्च सधिषु ॥ १ ॥

कपोल, गला, मया और सधियों में होने वाली ग्रन्थिया दुश्चिकित्स्य होती हैं उन्हें भी त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥

अर्बुदायाह—तस्य सम्प्राप्तिमाह—

गात्रप्रदेशे कधिदेव दोषा सम्मूर्च्छिता मांसमसृक्प्रदूप्य ।

घृत्त मृदुं मद्दरुज महान्तमनदपमूल चिरवृद्धिपाकम् ॥

कुघन्ति मांसोच्छ्रमनत्यगाद्यं सदद्बुद्धं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥

अर्बुद की सम्प्राप्ति—कुपित वाताणिक दोष शरीर के किसी भाग में मांस और रक्त को दूषित कर गोल, कोमल अल्प पीडा ( धीरे २ पीडा ) करने वाला, अत्यन्त बड़ा और बड़े मूल वाला, बहुत समय में बढ़ने वाला तथा बहुत समय में पकने वाला अति गर्मीर मांसोच्छ्रय ( मांस का उठाव ) कर देते हैं उनको शास्त्र वैध 'अर्बुद' कहते हैं ॥ १ ॥



तस्य संस्थामाह—

घातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च भेदसा च ।

सञ्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थे समानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

अर्बुद भी संस्था—बान, पित्त, कफ, रक्त, मांस, और भेद से उत्पन्न होनेवाले छै प्रकार के अर्बुद होते हैं उनके सभी लक्षण सदा ग्रन्थि के समान ही होते हैं ॥ २ ॥

रक्तार्बुदमाह—

दोषा प्रमुष्टाः रुधिर शिराश्च सङ्घृष्य सम्पीडय गतास्तवपाकम् ।

साध्यावसुक्ष्णवति मांसपिण्ड मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धिम् ॥ ३ ॥

कुर्वन्त्यजघं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतन्मुधिरात्मकं तु ।

रक्तचयोपद्रव्यपीडितस्वात्पाण्डुर्भवेत्सुदीपितस्तु ॥ ४ ॥

रक्तार्बुद के लक्षण—दूषित ( कृषित ) द्रव्य वानादिक दोष रुधिर और शिराओं को सङ्घृष्य और पीडित करके पाक रहित अथवा थोड़ा पाक कर के साव सहित ऊँचा मांसपिण्ड बन देते हैं और यह मांस पिण्ड मांसाङ्कुरों से ब्याप्त तथा शीघ्र बढ़ने वाला होता है और उससे निरन्तर रक्त निकलता रहता है इस प्रकार का अर्बुद रोग असाध्य होता है और रक्तक्षय के उपद्रवों से पीडित होने के कारण रोगी पाण्डुवर्ण का हो जाता है ॥ ३-४ ॥

मांसजस्य सम्प्रसिमाह—

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रमुष्ट जनयेत्तु क्षोथम् ।

अवेदन स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमरमोपममप्रचाद्यम् ॥

प्रमुष्टमांसस्य भरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ १ ॥

मांसार्बुद के लक्षण—मुष्टि प्रहारादि से अङ्गों के पीडित हान स दूषित हुआ मांस शोथ को उत्पन्न कर देता है यह शोथ पीड़ा रहित, स्निग्ध, शरीर के वर्ण के समान वर्ण वाला, पाकरहित, पर्यर के समान ( बठिन ) और अचल ( स्थिर ) होता है । दूषित मांस वाले और मांस अधिक भक्षण करने वाले मनुष्य को यह शोथ ( अर्बुद ) गम्भीर होता है ॥ १ ॥

असाध्यत्वमाह—मांसाबुद स्येतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवजयेत्तु ।

संप्रमुत्त ममग्नि यच्च जातं स्रोतं मु वा पृष्य भवेदसाध्यम् ॥ २ ॥

अर्बुद के असाध्य लक्षण—यह मांसार्बुद असाध्य कहा गया है । तथा जो साध्य अर्बुद कहे गये हैं उनमें भी ये ( आगे कहे हुए ) त्वाज्य हैं ( असाध्य हैं ), अर्थात् जिस अर्बुद से दान होता रहता हो, जो गर्भस्थान में उत्पन्न हुआ हो, जो छोटों में ( नासिकादि स्थान में ) उत्पन्न हुआ हो अथवा जो अचल ( स्थिर ) हो के सब त्वाज्य ( असाध्य ) अर्बुद हैं ॥ २ ॥

अध्यर्बुदलक्षणमाह—

यज्जायतेऽन्यस्तल्लु पूर्वजाते श्रेय तवप्यर्बुदमर्बुदस्यै ।

यद्बद्धद्रजातं युगापल्लमाहा द्विरर्बुदं तस्य भवेदसाध्यम् ॥ ३ ॥

अध्यर्बुद—द्विरर्बुद के लक्षण—पूर्व उत्पन्न हुए अर्बुद और भी उत्पन्न हो जाये उसे निदान 'अध्यर्बुद' कहते हैं और जो अर्बुद एक साथ अथवा क्रम से दो उत्पन्न होते हैं उसे दो दोषों वाला 'द्विरर्बुद' कहते हैं । वह असाध्य होता है ॥ ३ ॥

छकं भोजेन—

असुदेः स्वयुद जातं द्वद्वजं धानुजं च यत् । द्विरसुवमिति श्रेयं सप्तासाध्यं विनिर्दितेत् ॥ १ ॥

अर्बुद के ऊपर उत्पन्न हुआ अर्बुद, द्वन्द्व ( द्वन्द्व रूप में उत्पन्न ) अर्बुद और अर्बुद के साथ ( निकट ) उत्पन्न अर्बुद—द्विरर्बुद जानना चाहिये । यह ( द्विरर्बुद ) असाध्य होता है ॥ १ ॥

अर्बुदानां पाकाभावे हेतुमाह—

न पाकमावन्ति कफाधिकत्वान्मेदोषदुःसाध्यं विनोपतस्तु ।

क्षोपस्थिरत्वादप्रथमाद्यं तेषां सर्वाण्युद्धान्येषु निसर्गावस्तु ॥ १ ॥

अर्बुद में पाक नहीं होने के कारण—अर्बुद में कफ की अधिकता और वैद की कटुता तथा

विशेष कर दोष की स्थिरता ( दोष के चिरकाल तक स्थायी होने से ) और मयिरूप होने से सब प्रकार के अर्बुद में पाक स्वाभाविक ही नहीं होता है ॥ १ ॥

**अथ गलगण्डचिकित्सा ।**

स्वेदोऽग्निलोथे गलगण्ड भाद्री माहयानिलग्नौपघपप्रविण्डे ।

स्वेदोपनाहौ कफसम्भयेऽपि कृत्वा क्रम श्लेष्मदरं विदध्यात् ॥ १ ॥

गलगण्ड चिकित्सा—बाह से उपरान गलगण्ड में प्रथम ताड़ी स्वेद देना चाहिये, तथा यात नाशक औषध, यातनाशक पत्रादि एवं वातनाशक बाहुका पिण्डारि से स्वेद देना चाहिये । इसी प्रकार कफ से उपरान स्वेद उपताद तथा कफ नाशक होने पर त्रिया, करनी चाहिये ॥ १ ॥

**वातगण्डे—**

निघुल शिमुमूलानि दशमूलमथापि च । आलेपन वातगण्डे मुखोष्ण सप्रशस्यते ॥ १ ॥

वातज गण्ड—समुद्रफल, सद्दिजन की जड़ या छाल और दशमूल को दसो औषधियां प्रत्येक समान लेकर पीस कर कलक बना गरम कर मुखोष्ण रहते लेप करने से वातज गण्ड के लिये लाभदायक होता है ॥ १ ॥

**कफगण्डे—**

देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रलेपनम् । छर्दन क्षीपरेकथ सर्वो रेचनिको हितः ॥ १ ॥

कफज गण्ड—देवदारु और माहरि की जड़ को पीस कर लेप करने, वमन कराणे, शिरो विरेचन कराने और सभी प्रकार के विरेचन कराने से कफज गण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

मेदोऽगण्डे—मेदसमुत्थेऽत्र यथोपदिष्टां विष्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य ।

श्यामासुपालोहपुरीपदन्तीरसाञ्जनैश्चापि हित प्रलेपः ॥ १ ॥

मेदोज गण्ड—मेद से उत्पन्न गलगण्ड रोग में पूर्ण कथित विधि से रोगी मनुष्य को स्निग्ध करके उचित शिरा का बेधन करना चाहिये । तथा श्यामलता अथवा काली निशोध, चूना, लोह किट्ट ( मण्डूर ), दन्तीमूल और रसवत इन सबको समभाग से पीसकर लेप करने से मेदोज गण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

**सामान्यदोग—**

सण्डुलोदकपित्तेन मूलेन परिलेपितः । हितं कर्णे पलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ १ ॥

सामान्य विधि—चावल के धोवन के साथ पलास की जड़ को पीसकर कान पर लेप करने से गलगण्ड शमन होता है ॥ १ ॥

जलकुम्भीकज भरम पक्वा गोमूत्रगालितम् । पिषेकक्रोद्धवतक्राशी गलगण्डनिवृत्तये ॥ २ ॥

जलकुम्भी के भरम गोमूत्र में मिलाकर पाक कर पान करने तथा कोदो के चावल का भात और मट्ठा का पच्य सवन करने से गलगण्ड रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमल सस्थित घटे मासम् ।

अन्तधूमविदग्ध मधुना गलगण्डनाशनं लीढम् ॥ ३ ॥

भैस के मूत्र मण्डूर का मिलाकर घड़े में रखकर एक मास तक रस देवे पश्चात् अन्तधूम विधि से मण्डूर का भरम बनाकर मधु के साथ यथायोग्य मात्रा से चाटने से गलगण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सूर्यावर्तरोसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहनम् । स्फोटान्नाथै शम याति गलगण्डो न सदाय ॥३॥

हरदुर और लद्दुन दोनों को समान से पीसकर इसके उपनाह ( अथवा पुष्टिस बाधने ) से गलगण्ड फूटकर बहकर शमन हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४ ॥

सपपाः शिमुवीजानि क्षणयीजाससीयवा । मूलकस्य च धीजानि तक्रेणाग्लेन पेपयेत् ॥५॥  
गण्डानि भ्रमयश्चैव गण्डमालास्तथैव च । लेपनात्तेन शाम्यन्ति विलय यान्ति वाऽचिरात् ॥

सर्पों, सद्दिजन के बीज, सन के बीज, तीसी, जी और मूली के बीज इन सबको समान लेकर राट्टे मट्ठा के साथ पीस कर लेप करने से यह, ( गलगण्ड ) मयियाँ और गंडमालाये शीघ्र ही शान्त और नष्ट हो जाती हैं ॥ ५-६ ॥

जीर्णकर्कास्करसो विद्वसै धयसंयुतः । नस्येन स्रष्टुं हन्ति गलगण्ड न ससयः ॥ ७ ॥

नस्य—पुराने श्वेन कुम्भाण्ड का रस विडनमन और सेंभा नमक तीनों मिलाकर तस्य देने से गरुण ( नूतन ) गलगण्ड अवश्य नष्ट होता है ॥ ७ ॥

श्वेतापराजितामूलप्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः । सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ८ ॥

श्वेतापराजिता प्रयो ।—श्वेत पुष्पवाली अपराजिता को जट पीसकर उसमें थूत मिलाकर पान करने तथा पच्य से रहने से गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

तिष्ठात्पानुफले पक्वे सप्ताहमुपित जलम् । गलगण्ड निहन्त्याशु पानात्पण्यानुशीलिनः ॥ ९ ॥

जलपान विधि—तिष्ठ अलातु फल ( तिललोकी का फल ) को पक कर पूर्ण हो उसका गुदा, शीत आदि निकाल कर उसमें जल भर देवे और सात दिन तक पशुपित करे ऊर्ध्व सप्त दिन उसमें चूड़ जल पढ़ा रहने देवे पश्चात् उसका पान करे और पच्य से रह तो गलगण्ड शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

अमृततिलम्—

तैल पित्तेषामृतवसिह्निष्णुभिर्ग्याभयाचकपिप्पलीभिः ।

सिद्धं यत्प्राप्तं च सदेयदारु क्षिप्तं च निम्ब गलगण्डरोगे ॥ १ ॥

अमृतादि तैल—गुरुचि, दौंग, नीम की छाल, हर्रा, कोरवा की छाल, पीपरि, बरिभारा, ककड़ी ( गगेरन ) और देवदारु सम भाग ( एक २ भाग ) लेकर बल्क कर उसके चौगुना मूच्छित तिल का तेल और उससे चौगुना जल देकर सेल सिद्ध कर निम्ब पान करने से गलगण्ड रोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

गुम्बोतैलम्—

विषद्वयारसि घृमारारुनाग्निष्वोपदाहभिः । कटुतुम्बीफलरसे कटुतैल विपाचितम् ॥ १ ॥

चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्ड धिनाशयेत् ॥ १ ॥

गुम्बी तैल—बाभीरग पचासार, सेंभा नमक, बच, रासना, चित्त की जड़, सोंठि, मरिच, पीपरि और देवदारु सम भाग लेकर बल्क कर उसके चौगुना ससों का मूच्छित तेल और उससे चौगुना तिललोकी के फल का रस मिलाकर सिद्ध तेल उतार-छानकर इस तैल का नस्य देने से पुराना गलगण्ड रोग भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

वेषविधि—जिह्वायः पार्वयोर्मूलाखिरा द्वादश कोर्विता ।

सासां स्थले निरे द्वे च द्विष्पात्ते च दानैः शनैः ॥ १ ॥

वक्षिणेनैव सगृह्य कुक्षपत्रेण बुद्धिमान् । स्तुते रक्ते घणे तस्मिन्प्रासगुडमार्दकम् ॥ २ ॥

भोजनं श्वानभिव्यन्दि यूपः कौलस्थ इष्यते । ययमुद्रपटोलादि कटु रूपं तु भोजनम् ॥

छूर्दि च रक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयाजयेत् ॥ ३ ॥

सिरावेष की विधि—जिह्वा के दोषे दोनों ओर बारह सिराओं दोगी है उसके दो सिराओं मोटी होती हैं उन दोनों सिराओं को 'वक्षिणपत्र' से पकड़ कर कुक्षपत्र पत्र' से धीरे धीरे बुद्धिमान् घेप छेदा करे और रक्त निकल जान पर उस मग में शुद्ध और भद्रक का रस मिला कर लगावे । तथा जो पत्रार्थ अनिष्यन्दी न हो उसे देवे और कुक्षी की यूप को विनाशे वर-मूग-परवर आदि तथा कटुरस वाल पत्र ह्य पत्रों का भोजन करावे और गलगण्ड में कम कम रक्तमोक्षण करावे । इससे गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ १-३ ॥

अथ गण्डमालापचीचिविस्त्ना ।

गण्डगण्डीयमूलं तु विष्टं सण्डुलवारिणा । स्फुटितं हन्ति छेपेन गण्डमालां च संनय ॥ १ ॥

गण्डमाला—मपची चिकित्सा—गण्डगण्डी की जड़ की चावल के भोजन के साथ पीस कर चूटी हुई गण्डमाला पर भर करने से गण्डमाला प्रनशदिन अवश्य हो गट हो जाती है ॥ १ ॥

निम्बद्रव्येण सर्पिष्टं मुष्ठीमूत्रं प्रलेपयेत् । गण्डमालां च यत्ति तद्द्रव्यं च विद्येत्पलम् ॥ २ ॥

मुष्ठीप्रलेप—मुष्ठी की जट को रसी के ही रस के साथ पीस कर लेना करने तथा उसी के रस को एक पल के प्रमाण से पान करने से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

काञ्चनारत्वचः काथं शुष्ठीचूर्णेन मादयेत् । गण्डमालां तथा काथः चौद्रेण घृण्यत्वचः ॥३॥

कचनार की छाल का काथ बनाकर उसमें सोंठि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से अपवा बरणा की छाल का काथ करके शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ३ ॥

जलेन पेपयेत्सुदुर्गं काञ्चनीचित्रक विपम् । सप्ताहं लेपयेद्यस्य यदि स्याद्गण्डमालिका ॥

स्फुटन्ती नात्र संदेहः स्फोटे लेपमिमं कुरु ॥ ४ ॥

काञ्चनारविपां पिष्ट्वा सम्यक्घृण्यारिणा । तस्य नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥५॥

लेपविधि—कचनार की छाल, चित्र की जड़ और शुद्ध विष सम भाग लेकर जल के साथ पीसकर एक सप्ताह ( ७ दिन ) तक लेप करने से गण्डमाला फूट जाती है । इसमें सन्देह नहीं, फूट जाने के पश्चात् यह लेप करना चाहिये अर्थात् अमलतास की जड़ की चावल के धोवन के साथ भली भौंति पीसकर लेप करना चाहिये और नस्य भी इसी का देना चाहिये । इससे गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

#### त्रिफलापो गुग्गुलु —

पट्टपल त्रिकटु श्रेय त्रिफलाऽत्र पलद्वयम् । काञ्चनारत्वचाचूर्णं योजयेद्द्वादश पलम् ॥ १ ॥

गुग्गुलुं सर्वोत्तमैः स्यात्सयमेकत्र कुट्टयेत् । चौद्रे पलशतं देयं गुटिकां कर्पसमिताम् ॥

भक्षयेद्गण्डमालातो गलप्रियं च नाशयेत् ॥ २ ॥

त्रिफलादि गुग्गुलु—सोंठि, पीपरि और मरिच का सम भाग मिलित चूर्ण छै पल, आंवला, हरी, बहेड़ा इनका सम भाग मिलित चूर्ण २ पल, कचनार की छाल का चूर्ण १२ पल और शुद्ध गुग्गुलु सब चूर्णों के बराबर ( २० पल ) लेकर भली भौंति फूट कर एकत्र मर्दन कर उसमें मधु सौ पल मिला मर्दन कर एक कर्प के प्रमाण की बटी बनाकर भक्षण करने से गण्डमाला, गले की प्रियियां नष्ट होती हैं ॥ १-२ ॥

#### काञ्चनारगुग्गुलु—

पलानां दशकं प्राज्ञं काञ्चनारत्वचो युषे । पट्टपला त्रिफला प्राज्ञा ध्योप प्राज्ञ पलत्रयम् ॥१॥

पलैकं घृण्यस्यापि त्यगोलापत्रकं तथा । कर्पकर्मितं प्राज्ञं सर्वोत्तमैकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥

सर्वं चूर्णमिदं चापत्तायमात्रस्तु गुग्गुलु । समद्य गुटिकाः कार्यां घ्राणमात्रास्ततो युषः ॥

पृक्कैकां भक्षयेत्प्रातर्बुद्धिमांश्च सदा नरः । गण्डमालां जपेदुभ्रामपधीमयुदानि च ॥ ३ ॥

प्राचीन्द्रणां सगुणामांश्च कुष्ठानि च भगादरम् । अनुपाने प्रयोक्तव्याः कायो मुण्डीसमुद्भव ॥

कायो वा सखिरस्यापि पथ्याहायोऽथ चाक्षयकः ॥ ५ ॥

काञ्चनार गुग्गुलु—कचनार की छाल का चूर्ण दस पल, त्रिफला का चूर्ण समान मिलित छै पल, सोंठि, पीपरि, मरिच का समान मिलित चूर्ण ३ पल, बरणा की छाल चूर्ण एक पल दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण पृथक् २ दो कर्प लेकर सबको एकत्र मर्दन कर जितना हो उसके बराबर शुद्ध गुग्गुलु को मिला मर्दन कर एक शाण ( ४ माषा ) के प्रमाण की बटी बना कर प्रातः काल नित्य एक २ बटी रोगी को खिलावे तो इसके निरन्तर सेवन करने से उग्र गण्डमाला, अपची अर्धुद, प्रन्थि, शुल्म, कुष्ठ और भगन्दर ये सभी रोग नष्ट होते हैं । इसके सेवन के समय अनुपान में मुण्डी अथवा खैर का काथ अथवा धोखे प्रमाण में दरद का काय देवे ॥ १-५ ॥

#### अजमोदादितैलम्—

अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्वयम् । चारद्वयं फेनयुत सार्धकं सरलोद्भवम् ॥ १ ॥

इन्द्रधारण्यपामार्गकदलीकदकै समै । एभि साधयक तैलमजामूत्राद्योजितम् ॥ २ ॥

मृद्द्वरौ पाचयेदेतत्सुष्णार्कचीरसयुतम् । अजमोदादिक तैलं गण्डमालां ह्यपोहति ॥ ३ ॥

आमां विदग्ध्या तु पचेत्पक्वां चैव विशोधयेत् । रोपणं मृदुभाय च तैलेनानेन कारयेत् ॥५॥

अजमोदादि तैल—अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हरदी, दाहरदी, यवाज्वार, सज्जीखार, समुद्रफेन, सरल कण्ठ माहुरि, अपामार्ग और वेले को जड़ सम भाग ( एक २ भाग ) ले बरक कर उसके औगुना ससों के मूच्छित तैल और उससे अठगुना बरवी का गुज मिला कर मन्द २

अग्नि पर पाक करे तथा इसमें एक के साथ सेतुव के दूध तथा मगर के दूध को भी कच्चीय द्रव्यों में से एक द्रव्य के प्रमाण से पृथक् २ दोनों को मिला लेवे और पाक सिद्ध होने ( लेन मात्र शेष रह जान ) पर उतार-धानकर रख लेवे इस 'अजमोदादि तेल' से गंडमाला नष्ट होती है, गंडमाला को विदग्ध कर पका देता है और पके हुए को शुद्ध करता है तथा इससे म्रण का रोपण होता है और मुदुभाव होता है अर्थात् इस तेल से म्रण का रोपण और मृदुभाव करना चाहिये ॥

नियुण्ठी तैलम् —

निर्गुण्डीरवरसेनाथ छाङ्गलीमूलकविक्रमम् । तैल नस्येन हृत्याशु गण्डमालां शुद्धस्ताराम् ॥

नियुण्डीतैल—निर्गुण्ठी ( मेहुड़ी ) का स्वरस चार सेर, मूर्च्छित ससों का तैल १ सेर, शंगली ( करिआरी ) को अठ का कस्क एक पाव ले प्रकथ कर तैल सिद्ध कर उतार-धाकर रख ले । इस तेल के नस्य लेने से कठिन से कठिन गंडमाला शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

सुच्छुन्दरीतैलम्—सुच्छुन्दर्या विषव सु षणाक्षैलवरं ध्रुवम् ।

अभ्यङ्गाद्याशये-नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ २ ॥

सुच्छुन्दरी तैल—सुच्छुन्दर का मांस लेकर उसके चौगुना ससों का मूर्च्छित तेल और उसके चौगुना पाकार्थ नल मिलाकर तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कठिन गंडमाला भी नष्ट हो जाती है ॥

गुञ्जातैलम्—गुञ्जामूलफलैरतैल तोयद्विगुणितं पचेत् ।

सस्याभ्यङ्गेन दामयेङ्गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ १ ॥

गुञ्जा तैल—गुञ्जा भी नष्ट और फल को समान लेकर कस्क कर उसके चौगुना ससों का मूर्च्छित तेल और तैल के दुगुना अल ( पाकार्थ ) मिला कर तेल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कठिन गंडमाला भी शमन हो जाती है ॥ १ ॥

गणकदियोग —

गणक दृङ्गण सिन्धुकाञ्चनीनवसारकम् सौवर्चलं ययषार फाचं रक्तं सुवर्चलम् ॥ १ ॥

सितं रक्त च पाषाण मूषकोत्थं नियोजयेत् । जेपालयीजमज्जा च सद्यं जम्बीरपीडितम् ॥ २ ॥

दारुशैरिद्ध्या प्रदातव्य वेद्यमेरण्डपत्रकैः । पृथं श्यहात्स्फुटनयत्र दध्यन्नं च-ययेत्ततः ॥ ३ ॥

गण्डमालाप्र-यपष्यो यहिर्नियान्ति नान्यथा । अभिमन्त्र्य सितं साय रयी प्रातः समाहरेत् ॥ ४ ॥

पेटारीमूलक भूषैधूपित्वाऽथ सण्डयेत् । चतुर्दशगुणैः शूत्रैषदृष्या मन्त्रिय गले स्थितम् ॥ ५ ॥

गणकदि योग—गणक, दृङ्गण, सैवानमक, कचनार, नवसारद, सौचरनमक, यवाखार, पाव नमक ( कचलोण ), सि-दूर, सौचरनमक, शुद्ध श्वेत, संशिया शुद्ध रक्त संशिया, अमालगोर के बीज की मज्जा, समभाग लेकर जमीरी नीबू के रस के साथ पीस कर गलगड को छल से छेदन कर ( पाष कर ) उस पर इसका छेप लगाकर परण्ड के पत्रों को उस पर लपेट कर बांध देवे । इस प्रकार शीघ्र दिन तक करने से गण्डमाला फूट जाती है । फूटने के पश्चात् उस पर दही और अन्न मिला कर बांधना चाहिये । इस क्रिया से ( योग से ) गंडमाला मन्त्रिय और अपची में निक्षिप्त हो बाहर निकल जाती है ( नष्ट हो जाती है ) । शनिवार की संध्या में द्वावेत पेटारी की जड़ की अभिमन्त्रित कर रविवार के प्रातः उसे षराङ्ग छावे और साफ कर उसे भूप से भूषित रंउ २ कर चौदहगुना यज्ञ से बांध कर गले के मन्त्रिय पर बांध देने से मन्त्रिय नष्ट हो जाती है ॥ १-५ ॥

मन्त्र—**ॐ** गुड प्रसाहि तिरि तिरि विप्रगुटक मुगनाइतो पापट-

गालापरदनामूलयासुकालदेपालरेव गुरुप्रसाधाव ॥

पेटारी मूल को अभिमन्त्रित करने का मन्त्र—इसी मन्त्र की पढ़कर अभिमन्त्रित करना चाहिये ।

गणकदिलेव—

गणकं सूतक तुण्यमर्कपीर ससैभ्ययम् । विट्वा च काञ्चनीमूल छेपोऽयं गण्डमालिके ॥ १ ॥

गणकदि लेव—शुद्ध गणक, शुद्ध पाट, मदार का दूध, सैवानमक, कचनार को कड़ की समान ( एक २ भाग ) लेकर प्रथम पाट-गणक की कज्जली बनाकर फिर अभ्य द्रव्यों को मिला छेप बना कर छेप लगाने से गंडमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

जेपालवररी—

विट्वा जेपालप्रप्रगि श्वरसेन ततो वरी । द्वापाशुष्का ततो खेपाङ्गण्डमाला विनरपत्रि ॥ १ ॥

क्षेपाल पत्र बटी—जमालगोटे के पत्रों को उसके ही रस के साथ पीसकर बटी बना कर छाया में सुखा कर फिर उसे वही के रस में पीस कर छेप कर ले से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

भस्मातकादिलेप —

भस्मातकासीसहुताशदन्तीमूल गुह्यस्तुप्रविदुश्चद्विभ्यैः ।

लेपान्वितैर्गच्छति गण्डमाला समीरवेगादिषु मेघमाला ॥ १ ॥

भस्मातकादि लेप—मिलावा, कासीस, त्रिप्त की जड़, दन्ती की जड़, गुह्य सेंद्रुह का दूध और मदार का दूध सम भाग ल एकत्र खरल कर लेप बना कर गण्डमाला पर लेप करने से गण्डमाला इस प्रकार नष्ट होगी है जिस प्रकार बायु के वेग से गेपमालाये नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

गण्डमालावण्डनोरस—

कर्पसूत शुद्धमस्य गन्धक स्वर्धमुत्तमम् । सार्धकर्पं साग्रभस्म मृत किट्टं त्रिकर्पकम् ॥ १ ॥

व्योषं पट्कर्पंतुलितमप्राध सैधवं सितम् । काश्रनारख्यधरचूर्णं पलत्रयमित विपेत् ॥ २ ॥

पलत्रयं गुग्गुलीक्ष शुद्धस्य समुपाहरेत् । पृतद्युक्त्या तु समेज्य षट सुरभिसर्पिषा ॥ ३ ॥

गण्डमालावण्डनोऽय रसो मापप्रयारमकः । मुक्तो निहन्ति गण्डानि गण्डमालां च दाह्याम् ॥

गण्डमालावण्डन रस—गुह्य पारद, एक कर्प, शुद्ध गन्धक आधा कर्प, साग्रभस्म २ ३ कष मंहुद भस्म, ३ कर्प, सोंठि, मरिच और पीपरि का समान मिलित चूर्ण छै कर्प, श्वेत वर्ण के सेंधा नमक का चूर्ण आधा अक्ष ( ३ कर्प ) कच्चार की छाल का चूर्ण तीन पल और शुद्ध गुग्गुल तीन पल एकत्र मर्दन कर गाय के घृत के साथ भलीभाँति पीट कर रस रूपे यह गण्डमाला कण्डन नामक रस कहा गया है । इसे ३ मासे के प्रमाण से सेवा करने से गलगण्ड और गण्डमाला जो षति बढ़ गयी हो वह भी नष्ट हो जाती है ॥ १-४ ॥

अपचीचिकित्सा—अलङ्गुपायाः स्वरस पीतो द्विपलमाश्रया ।

अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशन ॥ १ ॥

अपची चिकित्सा—गुण्टो दूी का स्वरस २ पल के प्रमाण नी मात्रा से पान करने से अपची गण्डमाला और कामला रोग का नाश होता है ॥ १ ॥

मयकार्पासिफामूल तण्डुलैः सह योजितम् । पक्वया च पोलिकां खादेद्वपचीनाशनाय च ॥२॥

नवकार्पास मूल योग—नूतन कपास की जड़ चावल के धोवन के साथ पीसकर पोलिका ( पूष ) बना कर पका कर खाने से अपची नष्ट होती है ॥ २ ॥

सौभाग्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेपितम् । कोष्य प्रलेपतो हन्याद्वपचीमतिदुस्तराम् ॥ ३ ॥

सौभाग्जादि लेप—संदिनन की छाल और देवदारु बराबर २ छेकर काजी के साथ पीसकर थोड़ा गरम कर गरम २ लेप करने से कठिन अपची का नाश होता है ॥ ३ ॥

सर्पपारिष्टपत्राणि दन्त्या भद्रलातकैः सह । द्वागमूत्रेण सपिष्टमपचीघ्न विलेपनम् ॥ ४ ॥

सर्पपादि लेप—सर्पों, नीम की पत्ती, दन्ती की जड़ और मिलावा को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर लेप करने से अपची का नाश होता है ॥ ४ ॥

अश्रयकाष्ठनिचुलं गवा दंत च दाहयेत् । पराहमज्जसयुक्तं भस्म हन्यपचीवणान् ॥ ५ ॥

अश्रयकादि लेप—पीपल वृक्ष की लकड़ी, गौ का दाँत इन दोनों को चलाकर भस्म कर बराबर २ छेकर अश्रय की मज्जा में मिलाकर लेप करने से अपची के म्रण नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

मणिय चोपरिटाद्वा कुर्याद्दिवात्रय भिषक् । अङ्गुलान्तरित सम्पगपचीविनिवृत्तये ॥ ६ ॥

उपायान्तर—हाथ के मणिबन्ध ( कलाई ) पर एक २ अंगुल के अन्तर से तीन रखा बांधे । इससे अपची नष्ट होती है ॥ ६ ॥

चन्दनादितैलम्—चन्दन सामया लाक्षा पचा कटुकरोहिणी ।

पृतसैल श्यत पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ १ ॥

चन्दनादि तैल—लालचन्दन, हरा, लाक्षी, बच और कुटकी समान छे कश्क कर उसके चौगुना ससों का मूँछित तैल और उससे चौगुना जल मिलाकर तैल सिद्ध कर बतार—दानकर पान करने से अपची समूल नष्ट होती है ॥ १ ॥

ध्योपाथं तैलम्—

ध्योपं विद्वद्भ्यः मधुक सैर्घर्षं देवदारु च । तैलमेमिं शृतं नस्यात्कृष्णामप्यपर्ची जयेत् ॥ १ ॥  
 ध्योपादि तैल—सौंठि, पीपरि, मरिच, बाभीरंग, गुल्हठी, सेंधा नमक और देवदारु सफान  
 लेकर बरक कर उसके चौगुना ससों, मूच्छित तेल और उससे चौगुना जल मिलाकर शैल सिद्ध  
 कर उतार—धानकर नस्य होने से कठिन अपची भी नष्ट होती है ॥ २ ॥

अथ ग्रन्थिचिकित्सा ।

ग्रन्थिप्यामेपु कुर्वति भिषक्शोऽप्यप्रक्रियाम् । पकानापाटथ संशोष्य रोपयेद्दूषणमेपजै ॥ १ ॥

ग्रन्थि रोग चिकित्सा—ग्रन्थि यदि आम हो तो शोष रोग के समान उसकी चिकित्सा  
 करनी चाहिये और यदि पक्क गयी हो तो वैद्य को उसका पाटन ( पीरपाठ ) कर शोषन करना  
 चाहिये तथा म्रग रोपक औषधों से उस म्रग का रोपण करना चाहिये ॥ २ ॥

द्विखा सरोहिण्यमृताऽय भाङ्गी स्पोनाकविहवागुरुकृष्णगधा ।

गोमूत्रपिष्टाः सह तालपत्र्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २ ॥

छोटो कटेरी, कुटरी, कुहचि, बमनेठी, आलू की छाल, बेल की छाल, अगर काली, सड़ियन  
 भी छाल और काली मूसली समान लेकर गोमूत्र के साथ पीस बात के कोप से उत्पन्न होनेवाली  
 ग्रन्थि पर लेप करने से यह बातन ग्रन्थि धीरे २ नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

जलायुकाः पित्तकृते हिताः स्युः शीरोदताम्या परिपेचन च ।

द्राघारसेनेहुरसेन घापि चूर्णं पिथेद्वाऽपि हरीतकीनाम् ॥ ३ ॥

पित्त के कोप से होने वाली ग्रन्थि में जीक के द्वारा रक्त मोक्षण करना चाहिये अथवा दूध  
 और जल मिलाकर उससे अथवा दाख के रस से अथवा ईख के रस से ग्रन्थि पर सिंचन करना  
 चाहिये अथवा हरी का चूर्ण गाल के रस वा ईख के रस से पीना चाहिये ॥ ३ ॥

मधूकजम्बवर्जुनघेतमानां त्वग्निं प्रदेहानवचारयेत् ।

हृतेषु क्षोपेषु पथानुपूर्वं प्रथैर्मिपक् श्लेष्मसमुत्पितेषु ॥ ४ ॥

कफ के कोप से होने वाली ग्रन्थि में दोषों का यथाक्रम पहले हरण कर ( वमन विरेचन के  
 द्वारा दोषों को नष्ट कर ) मधुआ, जामुन, अर्जुन और बेत की छालों को पीसकर लेप करना  
 चाहिये ॥ ४ ॥

अममंजातं राममप्रयात तपक्रमेवापहरेद्विचार्य ।

देहस्थिते वाससि सिद्धकर्म सद्यः सतोर्कं च विधिं विदुष्यात् ॥ ५ ॥

जो ग्रन्थि मर्म स्थान में उत्पन्न नहीं हुई हो और शमन भी नहीं होता हो वह जब पक्क अथ  
 सब विचार कर वैद्य उसे चीर देवे और शुद्ध कर कपड़े से बांधना आदि सिद्ध कर्म करे तथा  
 सद्यः तपत्र धन ( म्रग ) के समान सब विधि करे ( सद्योम्रग की क्रिया करे ) ॥ ५ ॥

वाज्जेण चोत्सृज्य सुपक्रमानु प्रशाखयेत्पत्तमे कपापै ।

संशोषनैरस च विशोषयेत्त चारोपरैः शौद्रूपतमगादैः ॥ ६ ॥

सिन्धेख तैल स्वपचारणीयं विद्वद्वाटारजनीविपकम् ।

मेदःसमुत्थे तिलकपकदिग्धैः कृष्योपरिष्ठाद्द्विगुण पदान्तम् ॥ ७ ॥

हुतादावसेन सुहुः प्रगुग्वाएलोहेन घीमात्र च धर्षिताय ।

प्रलिप्तदुर्म्यां त्वच छाज्या वा प्रतसयाऽम्बुपोतनमस्य कार्यम् ॥ ८ ॥

पकी हुई ग्रन्थि ( मलोर्भावित पकी हुई ) को शम्भ स ट्रेन कर घीन पम्पदारु ( रत्ननाशक )  
 कपायो से म्रग की ओर पथाय धार युक्त मधु और घृत आदि संशोषन द्रव्यों से सस म्रग का  
 शोषा करे । फिर वापनिरग, पुरदनपाड़ी और हररी के बरक से सिद्ध द्रव्य तैल से म्रग का  
 सिंचन करे और तेल की गूँथ बनाकर म्रग पर रस डेरे । यदि मेद के कारण से ग्रन्थि हो और  
 उसे ट्रेन किया गया हो तो तिल का बरक बनाकर म्रग पर लेप कर वम पर बन्दा हो परत कर  
 रसकर बांध देवे । पुनः बार २ अग्नि में लगावे हुए लोह से वमपर रस करे और अग्निमूत्र  
 वैद्य बन्दी ( करदुल ) पर लोह की पीसकर लेप कर अग्नि पर तपाकर कार्द्व्योतन बर्ष करे ॥

निपात्य वा दाग्रमपोद्य मेदो ष्ठोःसुपत्वं त्यय वा विदार्य ।  
 प्रसाह्य मूत्रेण तिलै सुपिष्टै सुपर्णलाहवैर्हरितालमिश्रैः ॥ ९ ॥  
 मसैर्धवै चौद्रघृतप्रगाढै चारोत्तरैरेनममिप्रशोष्य ।  
 तैल विद्वप्यादु विकरञ्जगुञ्जार्थदायलेष्विद्रुवमूत्रसिद्धम् ॥ १० ॥

अथवा मेदोत्र ग्रन्थि को पकने पर शश्न से छेदन करके उससे मेद को निवाल कर जला देवे अथवा पक्षी हुई ग्रन्थि को शश्न से छेदन कर गोमूत्र से भोजे पश्चात् तिल को मलीमौति पीसकर उसमें सौंजर नमक, गुड हरताल, सेंधा नमक, मधु, घृत और यवापाराणि द्वारा मिलाकर लेप कर मग का शोषन करे पुनः दो ती ( वरञ्ज, पूतिकरण ), गुञ्जा, बांस के पत्ते, प्रियङ्गु या मालाहन्द और द्विगोट समान छे पक्क कर उसके चौगुना तिल वा मूर्च्छित तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र मिलाकर तेल सिद्ध कर ग्रन्थि के मग पर लगावे । इससे ग्रन्थि नष्ट होती है ॥१०॥ विष्णुकान्ता च पेटारी काञ्चिकेन सुपेपिता । कालस्फोटं हरेखलेपाद्बुधप्रथियु का कया ॥११॥

विष्णुकान्ता ( अपरानिता ) और पेटारी इन दोनों को समान लेकर काञ्चो के साथ मलीमानी पीसकर लेप करने से कालस्फोट ( असाध्य स्फोट मग ) भी नष्ट हो जाता है तो दूषित ग्रन्थि आदि का क्या कहना है अर्थात् ये अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जान जले विद्वया प्रलेपयेत् । कालस्फोट विपरस्फोट सद्यो हन्यास्सवेदनम् ॥

पुत्र जीवस्य ( नियापोता या पतजुग ) के फल को गिरी को जल के साथ पीस कर लेप करने से वेदना सहित कालस्फोट और विपरस्फोट ( ये दोनों मग असाध्य हैं ) शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और इस लेप से कक्षा ग्रन्थि ( बांस में होने वाली ग्रन्थि वा फलोरी ), कर्ण ग्रन्थि और गले की ग्रन्थि नष्ट होती हैं ॥ १२ ॥

कषाम्रन्थि कणग्रन्थि गलग्रन्थि च नाशयेत् । राजिकालशुन पेप्य लेपो हृद्गलग्रन्थिहाः ॥

गन्धोऽर्कदुग्धतालेन जेपालेन च नाशयेत् ॥ १३ ॥

राई और लहसुन इन दोनों को समान छे पीसकर लेप करने से हृदय और गले की ग्रन्थियां नष्ट होती हैं और गन्धक, मदार का दूध, हरताल और जमालगोटा समान छे पीसकर लेप करने से भी ग्रन्थियां नष्ट हो जाती हैं ॥ १३ ॥

### अर्बुदचिकित्सा ।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न घतो विशेष प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यै ।

सतश्चिकित्सेत्तिपगर्बुदानि विधानविद्वग्रन्थिधिकिरितसेन ॥ १ ॥

अर्बुद चिकित्सा—ग्रन्थि रोग और अर्बुद रोग में विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि स्थान, कारण, आकार, दोष और दूष्य ये सब दोनों के समान ही होते हैं, इसलिये वेच अर्बुद रोग की चिकित्सा ग्रन्थि के चिकित्सा के समान ही करे ॥ १ ॥

घातायुद् चीरघृताग्लसिद्धैरुण्यै सतैर्लेहपनाहयेत् ।

कुर्वात्तु मुख्यान्पुपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ पेसवारै ॥ २ ॥

घातिक अर्बुद को दूध घृत और अम्ल पदार्थों से सिद्ध किये हुए उष्ण तैलों से अथवा पके हुए मांस तथा बेसवार आदि में उपनाह करना चाहिये, ये मुख्य उपनाह हैं ॥ २ ॥

स्वेद विद्वप्यास्कुशलश्च नाड्या शृङ्गेण रक्त धनुशो हरेष्वच ।

घातघ्ननिर्वृहपयोग्लमागै सिद्धां घाताह्वां त्रिवृतां पिपेह्वा ॥ ३ ॥ -

कुशलता पूर्वक नाड़ी स्वेद देवे और सिंगो के द्वारा बहुत बार रक्तमोक्षण करावे तथा घात नाशक काय, दूध और अम्लादि से सिद्ध सौंजर अथवा निशो को पिनावे ॥ ३ ॥

स्नेहोपनाहा मृदवस्तु पथ्या पित्तायुदे कायविरचनं च ।

विद्वप्य मीढुन्वरशाफगोजीपत्रैर्भृश चौद्रयुतै प्रलिम्पेत् ॥ ४ ॥

पित्तज अर्बुद चिकित्सा—पित्त के कोप से होने वाले अर्बुद रोग में स्नेह कर्म तथा मृद उपनाह कर्म पित्तनाशक काय सेवन और विरेचन कर्म करना चाहिये ये सब पथ्य ( हितकर ) हैं । पश्चात् मृद होने पर गूलर के शाक ( पत्ते ) और गोजी ( गोमी ) के पत्ते को समान छे जल



के साथ पीसकर वसमें मधु मिलाकर लेप करना चाहिये इससे पिचारुन्द शमन हो जाता है ॥ ४ ॥  
शुद्धस्य जन्तो कफत्रेऽबुदे च रक्ते च सिक्ते ज्वयतोऽबुद यत् ।

मेदं हृत्ते मासकृतेऽपि कार्यं प्रणोदित सवच्चिकित्सित च ॥ ५ ॥

कफज अर्बुद में रोगी को शुद्ध करके ( वसा विरेचन कराकर शुद्ध कर ), रक्ताबुद में रक्त निकलते हुए रोगी को सिंचन करके और मेलोज अबुद में मांस से उत्पन्न अर्बुद में भी मग में बड़ी हुई सम्पूर्ण चिकित्साओं को करनी चाहिये ॥ ५ ॥

लिप्त पचकारविद्वज्जीज गंधोपलै स्यान्मच्छुणीकृतैयत् ।

रक्तेन मिधैः सरठस्य सद्यस्तदबुदं शाश्वयति नान्यथैतत् ॥ १ ॥

यवासाद, बामीरग के बीज, गन्धक समान लेकर भली भाँति पीसकर गिरगिट का रक्त वसमें मिलाकर लेप करने से अर्बुद रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है इसमें मन्त्रेह नहीं है ॥ १ ॥

उपोदिकरसाम्यघ्नं सत्पत्रपरिवेष्टिता । प्रणश्यत्यचिरान्तुणा पिटिकापुदजातयः ॥ २ ॥

पौर्षे शाक के स्वरस से अर्बुद की पिठिका को लिप्त करके और उसी के पत्र स वष्टित करने से शीघ्र ही मनुष्यों की अर्बुदजान ( अबुद से उत्पन्न ) पिठिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

उपोदिका काञ्जिकतप्रपिष्टा तयोपनाहो लवणेन सार्धम् ।

दृष्टोर्बुदानां प्रशामाय कैरिचहिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ३ ॥

पौर्षे को काजी और तक के साथ पीसकर सेंधा नमक मिला कर उपनाह करने से अर्बुद रोग शमन होता है । किसी २ बेघ का मत है कि इस उपनाह को दिन ही दिन में किया जाय तो साधारण अर्बुद नष्ट होता है और रात्रि में किया जावे तो इससे मर्मस्थान में उत्पन्न अर्बुद नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गन्धशिलाविशौषधविद्वज्जागभस्मभिः समैश्चूर्णम् ।

कृकलासरक्तयुक्तं छेपासद्योऽर्बुदेष्वसि ॥ ४ ॥

गन्धक, मैनमिल, सौंठि, बामीरंग और नागभस्म ( शीशे की भरम ) इन सब के चूर्ण को समभाग ले गिरगिट के रक्त को वसमें मिलाकर लेप करने से अर्बुद रोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥  
स्नुहीगण्डीरिकास्येदो नाशयेदर्बुदानि च । लघणेनाथ वा स्येद् सीसकेन सथैव च ॥ ५ ॥

गूरु और त्रिकाण्ड गूरु दोनों को पीस गरम कर अथवा संधानगक की पोटली बनाकर गरम कर अथवा शीशे को तपा कर उससे स्वेद देने से अर्बुद नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

हरिद्रालोध्रपत्ररुग्णुदधूमो मन शिला । मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोर्बुदहरा परः ॥

पृतामेव द्विषां कुर्याद्दोषां शर्करार्बुदे ॥ ६ ॥

हरदी, लोष, पतंग काठ की लकड़ी, गुद, गृहपूग ( भूमा के कारण से उत्पन्न पर में का शाला ) और मैनसिल इन सबको सम भाग लेकर चूर्ण कर पक्क भईन कर मधु मिला कर लेप बना कर लगाने से अर्बुदरोग को नाश करने में यह योग उत्तम है । इसी प्रकार शर्करार्बुद में भी सब क्रियायें करनी चाहिये ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुराणपृतपाम् श्रीर्जलोद्वितशालयः । यवा मुद्गाः पटोल च रक्तनिमः कठिलकम् ॥ १ ॥

शालि च शाकं घेग्रामं रुपाणि च कट्टनि च । दोपनामि च सर्वाणि गुग्गुलुघ्नि गिलाजतु ॥  
गलगण्ठे गलमालापथीप्रन्थ्ययुदान्तरे । यथादोष यथावस्थ पथ्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने घृत का पान, पुराने रक्तवर्ष के शालीजान के पावन, दन् मृग, पावर, रक्तसिद्धिन, कट्टी, शिलिश का शाक, बेन के अम्रगण का शाक, कूड और कट्ट द्रव्य, सब प्रकार के अग्नि दीपक द्रव्य, गुग्गुलु ( शुद्ध ) और शिलाजीन ( शुद्ध ) ये सब द्रव्य गलघण्ट, गण्टमाला, मयथी, ग्रन्थि और अबुद इन सभी रोगों में दीप और अवस्था के अनुसार पथ्य बड़े गये हैं ॥ १-३ ॥

दुग्धेऽविहृष्टोः सर्वा मांसं चानूपसगमयम् । पित्तप्रमण्डं मधुरं मुर्धभिन्यम्बुहारि च ॥ ४ ॥

गलगण्ठ गण्टमालापथीप्रन्थ्ययुदानाम् । चिरिस्तत्रगद्गदहरो यदाऽर्भी परिपर्यपत् ॥ ५ ॥

दूध, ईस तथा दूध और ईस के बी सबी १०० ( दही, कोषा, गुद आदि ), आरु भीनों के

मांस, पिठ्ठी के पदार्थ, अम्ल द्रव्य, मधुर, गुरु और अभिष्यन्दकारक सभी पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपच्य, प्रथि और भवुदरोग में अपच्य जाकर रोगी को त्याग करा देवे ॥ ४-५ ॥

इति गलगण्डगण्डमालापचीघ्नव्यर्जितप्रकरणं समाप्तम्

### अथ श्लोपदनिदानम् ।

मेदोमांसाध्य श्लोपदयोः श्लोपदं पदेत् । स्वलिङ्गनिभिर्द्विपैस्त्रेधा स्याद्य कफोत्तरम् ॥

श्लोपद-निदान—मेद और मांस के आभय होकर जो पेटों में शोथ होता है वह श्लोपद कहा जाता है, वह अपने लक्षणों को प्रकट करने वाले वातादिक दोषों से तीन प्रकार का होता है, इसमें ( तीनों दोषों में ) कफ की ही प्रधानता होती है ॥ १ ॥

तरय सम्प्राप्तिमाह—यः सज्वरो यद्दृग्णजो भृदारति शोको नृणां पादगतः क्रमेण ।

सपृच्छ्लीपद स्यात्करकण्ठनिग्रथिभोष्टमासास्वपि येषिवाद्युः ॥ २ ॥

श्लोपद-सम्प्राप्ति—जो शोथ ज्वर के साथ बंधुण स्थान से उरपन होकर अत्यन्त कष्ट देता हुआ तम से मनुष्यों के पेटों की ओर ( नीचे की ओर ) जाता है उसे श्लोपद कहते हैं । किसी र आचार्य का कहना है कि यह शोथ ( श्लोपद ) हाथ, काम, नेत्र, लिंग, ओठ और नासिका में भी होता है ( इसकी निरुक्ति 'गिलाबद पदम् इति श्लोपदम्' ऐसी भी की जाती है जो युक्ति संगति है ) ॥ २ ॥

वातजमाह—

घातज कृष्णरूच तु स्फुटित सीमवेदनम् । भनिमिच्छज तरय यहुशो ज्वर पय च ॥ ३ ॥

वातज श्लोपद—जिस श्लोपद में शोथ का वर्ण कृष्ण वर्ण का हो, रूख हो, फटा हुआ हो, अत्यन्त और अकारण हो पीड़ा करने वाला हो ( बिना किसी अघात आदि के ही पीड़ा हो ) तथा जिसमें बहुत ज्वर होता हो उसे वात के शोथ का वातज श्लोपद कहते हैं ॥ ३ ॥

पित्तजमाह—पित्तज पीतसद्भादा दाहज्वरयुत मृदु ॥

पित्तज श्लोपद—जिस श्लोपद में शोथ का वर्ण पीला हो, दाह हो, ज्वर हो तथा शोथ में कोमलता हो उसे पित्त के शोथ का पित्तज श्लोपद जानना चाहिये ॥ ३ ॥

श्लेष्मजमाह—श्लेष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेत पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥ ४ ॥

श्लेष्मज श्लोपद—जिस श्लोपद में शोथ में स्निग्धता हो, श्वेत अथवा पाण्डुवर्ण का हो, मारी तथा स्थिर ( अचल ) हो उसे कफ के शोथ का श्लोपद जानना चाहिये ॥ ४ ॥

एवामसाध्यत्वमाह—एवमीकमिव सञ्जात कण्टकैरिव सञ्चितम् ।

सर्वात्मक महत्तद्य वर्जनीय विशेषतः ॥ ५ ॥

असाध्य श्लोपद—जिस श्लोपद में वरमीक के समान ऊँचा-नीचा शिखर की भाँति वृद्धि हो और कण्टकाकार प्रथियों से युक्त हो, तीनों दोषों के लक्षण जिसमें दिखाई दें तथा बहुत बढ़ गया हो उसे विशेषतः त्याग देना चाहिये । अथ ग्रन्थों [ निदानादि ] में 'सर्वात्मकम्' के स्थान पर 'अव्यक्तकम्' पाठ है । इससे एक वर्ष का पुराना श्लोपद असाध्य जानना चाहिये ॥ ५ ॥

श्लोपदे कफस्याव्यभिचारेण प्राधान्यमाह—

श्रीण्येतानि विज्ञानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।

गुरुत्वं च महत्तद्य च यस्माद्भास्ति कफाद्दिना ॥ ६ ॥

कफप्रधान श्लोपद—ये तीनों प्रकार के ( वातजादि ) श्लोपद भी प्रायः कफ की ही अधिकता से होते हैं क्योंकि इसमें जो गुरुता और महानता होती है वह कफ के बिना नहीं हो सकती ॥६॥

श्लोपदसम्भवे वेतुनिर्देशमाह—

पुराणोदकभूमिष्ठाः सवर्तुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लोपदानि विशेषतः ॥ ७ ॥

श्लोपद होने के कारण—जिस स्थान में पुराना ( वर्षों का ) जल भूमि पर पड़ा सड़ता रहे कमी छोले नहीं ऐसे आनूप देश और जिस देश में सब ऋतुओं में शीतलता रहती हो उस देश में श्लोपदरोग विशेष कर होता है ॥ ७ ॥

पुनरसाध्यत्वमाह—यच्छ्लेष्मलाहारविहारजात पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य ।

साक्षाद्यमारयुद्धतसर्वलिङ्ग सकण्डुरं श्लेष्मयुत वियर्ज्यम् ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से असाध्य श्लीपद—जिस श्लीपद की उत्पत्ति कफज आक्षार (मधुरारि युक्त विशेष द्रव्य) और विहार (दिवास्वापादि) आदि से हुई हो, रोगी की प्रकृति कफ की हो (कफज प्रकृति के मनुष्य की श्लीपद हुआ हो), श्लीपद से छाव होता हो, अत्यन्त ऊँचा (शिखर आदि के आकार का) हो गया हो, सब दोषों के लक्षणों से युक्त हो, अत्यन्त बण्ड से युक्त हो और कफयुक्त हो वह श्लीपद ख्याज्य है ॥ ८ ॥

**अथ श्लीपदचिकित्सा ।**

छद्मनालेपास्वेदरेचनै रक्तसेचनै । प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १ ॥

छद्मन, लेपन, स्वेदन, रेचन, रक्तमोक्षण और प्रायः करके कफनाशक उष्ण वर्षाचार (भाहार औषधादि) आदि से श्लीपद की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहान् श्लीपदेऽनिलजे भिषक् । कृत्वा गुक्फोपरि शिरां विष्येत्तु चतुरङ्गुले ॥ २ ॥

घात से उत्पन्न श्लीपद में वैष्य राहन कर्म, स्वेदन कर्म और उपनाह कर्म परके गुत्क (गाठ) के ऊपर चार अंगुल पर शिरावरोधन करे, इससे वातज श्लीपद नष्ट होता है ॥ २ ॥

शुष्कस्वाधःशिरां विष्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे । पित्तर्षीं च क्रियां पुनरपिपत्तार्जुद्विसर्पवत् ॥

पित्त से उत्पन्न श्लीपद में गुत्क के नीचे की शिरा का वेधन करे तथा पित्तनाशक क्रिया पर पित्तज अमुद और विसर्प के समान चिभिरसा (क्रिया) करे ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठामधुर्कं रास्नामहिंसां सपुननवात् । विट्वाऽऽरात्रैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥

शिरासु विदितं विष्येदङ्गुले श्लेष्मश्लीपदे ॥ ४ ॥

मजीठ, मुलङ्गी, रास्ना, छोटी कटेरी और गदहपुरना सम भाग बांजी के साथ पीसकर लेप बना कर पित्तज श्लीपद की शमन करने के लिये लगावे तो पित्तज श्लीपद नष्ट होता है ।

कफ से उत्पन्न श्लीपद में अगूठे की विदित शिरा (जिस में श्लीपद हुआ हो उस) का वेधन करे ॥

सिद्धार्थसौभाग्यनन्दैश्चकारविश्वीपधैर्मृत्युतैः प्रलेपयेत् ।

पुनर्नवानागरसर्पपाणां कथकेन वा काञ्जिकमिभिस्तेन ॥ ५ ॥

इषत ससौं, सद्विजन, देवनाग, सौंठि समान लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर अथवा पुनर्ना, सौंठि, ससौं समभाग लेकर कल्क कर बांजी मिलाकर लेप करने से कफज श्लीपद नष्ट होता है ॥

धत्तुरैरुण्डनिर्गुण्डीवर्षांभूदिशुस्रसर्पैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति पित्तोत्पमपि वायुजम् ॥ ६ ॥

धत्तुर के पत्ते, परण्ट के पत्त वा मूलत्वक्, मेदङ्गी के पत्त, पुनर्ना, सद्विजन और ससौं समान लेकर कल्क कर लेप करने से पुराना एवं कठिन श्लीपद भी नष्ट होता है ॥ ६ ॥

द्वित्यं लेपने नित्यं चिप्रको देवदारु च । सिद्धार्थदिमुष्णको वा शुष्कोष्णो मूत्रप्रेपितः ॥ ७ ॥

चित्र की जड़ तथा देवदारु को गोमूत्र के साथ पीसकर अथवा ससौं और सद्विजन का कल्क बनाकर थोड़ा गरम लेप करने से श्लीपद में द्वितकर होता है ॥ ७ ॥

प्रपियेद्वाभयाश्चक्र मूत्रेणा यतमेन वा । पियेदेव गुह्वर्षी च नागरं मद्रदाद वा ॥ ८ ॥

पियेसर्पपतैलेन श्लीपदानां निहृष्ये । पूर्तीकरअश्पदं रसं चापि यथायत्नम् ॥ ९ ॥

हरद का कल्क बनाकर अथवा शुरुभि के स्वरस की गोमूत्र वा अन्य मूत्र के साथ पान करने से अथवा सौंठि वा देवनाग का कल्क को ससौं के तेल के साथ पान करने से श्लीपद नष्ट होता है । पूतिवर्ज्य का पत्तों का स्वरस की यथावत् पान करने से श्लीपद रोग नष्ट होता है ॥ ८-९ ॥

अनेनैव विधानेन पुत्रीजीवकजं रसम् । प्रयुञ्जीत भिषकप्राज्ञः कालसाम्पत्तियामागतम् ॥ १० ॥

इसी प्रकार त्रिभाषोल के पत्तों के स्वरस का प्रयोग वैष्य काज और साम्य का विपार हर उचित मात्रा से करे तो श्लीपद नष्ट होता है ॥ १० ॥

पलाशमूलस्वरमं पियेद्वा सैत्तन शुष्यं सितसर्पपाणाम् ।

मूत्रेण पथ्यामरदारुविरचं सगुग्गुशु श्लीपदिभिर्निष्यम् ॥ ११ ॥

पलाश की जड़ का स्वरस और देहन ससौं का तेल समान लेकर पान करे अथवा हर्षा, देवदारु, सौंठि और गुग्गुलु समान भाग के पूर्ण का गोमूत्र के साथ श्लीपद का रोगी शिवा करे तो श्लीपद नष्ट होता है ॥ ११ ॥

वृद्धदारकपूर्णं वा मूयसौवीरकादिभिः । श्लीपदं हन्ति कृच्छ्रं संवात्सरोपितम् ॥१२॥  
विभारे के पूर्ण को गोमूत्र और सौवीर आदि से नित्य कुछ दिन तक सेवन करने से एक वर्ष के पुराने कष्ट साध्य श्लीपद को नाश करता है ॥ १२ ॥

विष्वक्पादिपूर्णम्—

विष्वक्ली त्रिकला दार्वां नागर सपुनर्नयम् । भागौर्द्विपलिकैस्तेषां सारसम वृद्धदारकम् ॥ १ ॥  
काक्षिकेन तु सश्चूर्णं विघोरकर्मप्रमाणतः । जीर्णं वा परिहीनं स्यान्नोजनं सार्यकामिकम् ॥२॥  
श्लीपद घातरागांश्च प्लीहगुणममरोचकम् । अग्निं च कुरते घोरं भस्मकं च प्रयच्छति ॥ ३ ॥

विष्वक्पादि पूर्ण—पीपरि, हरा, बहेड़ा, अंबरा, दासहत्वी, सोंठि, गदहपुरना, प्रत्येक दो दो पल और सब के समान भाग ( १४ पल ) विभारा लेकर चूर्णकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से काजो के अनुपान से पान करने में और इस भीषण के पच जाने पर त्रिदोष नाशक अल्प आहार करने से श्लीपद, वातरोग, प्लाहा, गुल्म और अरुचि ये नष्ट होते हैं, अग्नि की वृद्धि होती है और कठिन मरमक रोग भी नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

कृष्णाद्यो मोदक—

कृष्णाद्यिन्नकवृन्तीनां कर्ममर्षपल पलम् । विंशतिश्च हरीतकमो गुहस्य च पलद्वयम् ॥  
मधुना सह संयुक्त श्लीपदं हन्ति दारणम् ॥ १ ॥

कृष्णादि मोदक—मम से अर्थात् पीपरि एक कर्ष, चिचि की जड़ आधा पल और दत्तीमूल एक पल लें, उक्त संख्या में २० सुपक हरा और गुड़ दो पल लेकर कूट पीस कर विष्वक्पलक मोदक बना कर मधु के अनुपान में सेवन करने से कठिन श्लीपद भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

विडङ्गादितैलम्—

विडङ्गासारिवाकंपु नागरे चित्रके तथा । भद्रदायैलकाफयेषु सर्वेषु लवणेषु च ॥  
तेल पञ्च विघेद्वाऽपि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ १ ॥

विडङ्गादि तैल—भाभीरग, सारिवा रता, मदार, सोंठि, चिचि की जड़, नागरमोषा, देवदारु, श्लायची और पांचो नमक पृथक् २ समान भाग लेकर बरक कर उसके चौगुना मूर्च्छित ससों का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर मर्दन तथा पान करने से श्लीपद नष्ट होता है ॥ १ ॥

सौरेश्वरघृतम्—

सुरसा देवकाष्ठ च त्रिकला त्रिकटुर्गजा । लवणानि च सार्वाणि विडङ्गान्यप्य चित्रकम् ॥ १ ॥  
श्विका विष्वक्लीमूल गुग्गुलु हृषुषा घृषा । यवाप्रजाः सपाठश्च चन्द्रेण वृद्धदारकः ॥ २ ॥  
कणकैश्च कार्पिकैरेभिर्घृतप्रस्थ विपाचयेत् । दक्षामूलकपायेण घ्राययूपद्रवेण च ॥ ३ ॥  
अधिमण्डसमायुक्त प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक् । पक्ष स्यादुद्वृष्टं कल्कास्पियेत्कर्पत्रय हविः ॥४॥  
श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत् । मेघधिताभिघातोत्थं हृन्त्यादेव न संशय ॥५॥  
अपचीगलगण्डानि अत्रघृदि तथाऽर्जुन्दम् । नाशयेद्ग्रहणीदोष श्वयधु गुहजान्यपि ॥ ६ ॥

सौरेश्वर घृत—तुलसी, देवदारु, हरद, बहदा, आंवला, सोंठि, पीपरि, मरिच, गजपीपरि, पृथक् २ पांचो नमक, वायनिदग, चिचि की जड़, चात्र, पिपरा मूल, शुद्ध गुग्गुलु, हाऊबेर, मच, यवासार, पुरानपादी, चात्र, श्लायची और विभारा को एक २ कर्ष लेकर कल्क कर, मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ में मिला लें और इसमें दशमूल का सिद्ध काथ, धान्यों का सिद्ध यूप और दही का मूक अर्थात् दही का पानी पृथक् २ एक २ प्रस्थ लेकर घृतपाक की विधि से सबको सिद्ध कर उतार—छानकर तीन कष के प्रमाण की मात्रा से पान करने से कफ और पाठ से उत्पन्न मांस, रक्त और मेघ के आश्रय रहने वाला तथा अभिघातज श्लीपद निश्चय नष्ट होते हैं और अपची, गलगण्ड, अत्रघृदि, अर्जुन, ग्रहणी के दोष, शोथ और अर्श आदि भी नष्ट होते हैं ॥ १-६ ॥

परममिकरं हृषु कोष्ठक्रिमिविनाशनम् । घृत सौरेश्वर नाम श्लीपदं हन्ति सेवितम् ॥ ७ ॥  
जीवकेन घृतं द्योतद्रोगानीकविनाशनम् । यथात्र कूर्ममांस च कटुतैलं च योजयेत् ॥

श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मांसान्तं दाहमग्निना ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से असाध्य श्लीपद—  
 विशेष द्रव्य ) और विहार ( वि  
 ( कफज प्रकृति के मनुष्य को श्लीपद  
 आदि के आकार का ) हो गया हो,  
 और कफयुक्त हो वह श्लीपद व्याज्य

छद्मनालेपनस्वेदरेषनै रक्तसेचनैः

लहून, लेपन, स्वेदन, रे—  
 औषधादि ) आदि से श्लीपद को  
 स्नेहस्वेदोपनाह्राद्य

वात से उपपन्न श्लीपद में  
 ( गाठ ) के ऊपर चार  
 गुणकस्याघःशिरां

पित्त से उपपन्न श्लीपद में  
 पित्तज अणुद और विसर्प के

शिरासु

मञ्जीठ, मुलहठी, रास्ना,  
 लेप बना कर पित्तज श्लीपद  
 कफ से उपपन्न श्लीपद में

३  
 श्वेत ससौं, सहिजन,  
 सौंठि, ससौं समभाग लेकर ५

४  
 धतूरे के पत्त, परण्ट के  
 समान लेकर चूक कर लेप कर-  
 हितथ लेपने निरयं चिपको  
 चित्त की जड़ तथा देवनाग  
 बनाकर घोषा गरम लेप करने से

५  
 पिपेत्सर्पपतैलेन श्लीपदानां

हरद का चूक बनाकर अथवा  
 स अथवा सौंठि वा देवनाग के चूक  
 दे । पृतिहरंज कं पत्तों के स्वरस को  
 अनेनेष त्रिधानेन पुत्रीजीपकजं रसम्  
 इसी प्रकार त्रिधावोत के पत्तों के  
 उचित मात्रा से करे तो श्लीपद नष्ट होगा

पलाणमूलस्वरस पिपेहा गैलेन  
 मूत्रेण पप्यामरदादविरयं

प्रलाश की जड़ का स्वरस और श्वेत ससौं  
 सौंठि और दूध गुग्गुलु समान भाग के चूर्ण  
 श्लीपद नष्ट होता है ॥ ११ ॥



विषा हुआ ( पिठ्ठी आदि ) अन्न, दुग्ध विकार ( सोमा-दही आदि ), गुद, भासूष कीचो  
 ना गांस, स्वादु ( मधुर ) तथा अम्लरस वाले पदार्थ, पारिवात्र ( पर्यंत विज्ञेय ), शिशु नदी तथा  
 विन्ध्य पर्यंत तक निकली नदियों का जल, पिच्छिल पदार्थ, शुष्क द्रव्य और अभिष्यन्दी पदार्थ  
 स्त्रीपद के रोगी को त्याग देना चाहिये ॥ ३ ॥

इति स्त्रीपदरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ विद्रधिनिदानम् ।

सम्प्राप्तिमाह—त्वमच्छर्मासमेधाति प्रद्व्यात्थिममाधिषा ।

दोषाः दोषदानैर्घोरं जनयत्युत्प्लूता भृशाम् ॥ १ ॥

विद्रधि की सम्प्राप्ति—अस्थि समाधित ( अस्थि के भाग्य रहने वाले ) पात्रादिषु दोष अपने  
 कुपित होने वाले कारणों से कुपित होकर त्वचा, रस, मांस और मेद को दूषित कर पीरे पीरे  
 अत्यन्त कठिन और बड़ी शोथ को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १ ॥

वासरवाण्युगे चाह—

महामूलं हजायन्तं घृत्तं वाऽप्यथ वाऽप्यसम् । स विद्रधिरिति पयातो विज्ञेयः पद्विषयस्य सः ॥  
 घृथमदोषैः समस्तैश्च चरेनाप्यसृजा तथा । पण्णामपि च तेषां तु लक्षणं समप्रचक्षते ॥ २ ॥

विद्रधि क मेद लक्षण—जो शोथ महामूल वाली ( दूध मूल वाली ), पीड़ागुफ, गोल,  
 अथवा लम्बे आकार की होती है उसे विद्रधि' कहते हैं और यह विद्रधि छे प्रकार की होती है  
 ( इसके दो भेद होते हैं । एक वास विद्रधि जो त्वचा, रसायु और गांस में होती है और दूसरी  
 अन्तर्विद्रधि जो गुदा आदि पड़्यमाण प्रदेशों में होती है । भागे इसके लक्षण स्पष्ट दोगे ) अर्थात्  
 घृथक २ वात्रादि दोषों से तीन, सात्त्विक एक, रस से एक और रक्त से एक इस प्रकार छे  
 प्रकार की विद्रधि होती है । इन छहों के लक्षण आगे कह जाते हैं ॥ १-२ ॥

वातियमाह—

शृष्णोरणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदन । शिग्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्पातिसम्भवः ॥ ३ ॥

वातिक विद्रधि—जिस विद्रधि का वर्ण कृष्ण अथवा अरण हो, शोथ में विषमता हो अर्थात्  
 कभी बड़े कभी घटे, अत्यन्त कठिन पीड़ा हो और वृद्धि तथा पाक में विचित्रता हो अर्थात् गाना  
 प्रकार की वृद्धि और पाक होवे उसे वात के शोथ की विद्रधि जाननी चाहिये ॥ २ ॥

पैत्तिकमाह—

पद्मोद्गुम्बरसङ्काशा पीतो वा ज्वरदाहवान् । शिग्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पिच्छसम्भवः ॥ १ ॥

पैत्तिक विद्रधि—जिस विद्रधि का आकार पके हुए उदुम्बर ( गुल्फ ) के समान अथवा पीत  
 वर्ण का हो, ज्वर तथा दाह से युक्त हो, शीघ्र उत्पन्न होने वाली तथा शीघ्र पकने वाली हो उसे  
 पिच्छ के शोथ की विद्रधि जाननी चाहिये ॥ १ ॥

दलेष्मजमाह—

शरावसदृशा पाण्डुः शीतस्निग्धोऽसपयेदन । शिग्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसम्भवः ॥ १ ॥

कफ विद्रधि—जिस विद्रधि का आकार शराव ( शरीर ) के सदृश, पाण्डु वर्ण का, शीतल,  
 स्निग्ध, अल्प वेदना वाला हो और बहुत दिन में ( शरीर ) के सदृश, पाण्डु वर्ण का, शीतल,  
 उसे कफ के शोथ की विद्रधि जाननी चाहिये ॥ १ ॥ ( विद्रधि का उत्पन्न ( वृद्धि ) और पाक ही

सनुपीतसितारक्षेपामास्तावा मन्त्रः ॥

विद्रधियों में जो छाव होता है वह पतला-पीला और द्रवत वर्ण का मन्त्र से वात-पित्त और  
 कफ के शोथ से होता है ॥

सांनिपातिकमाह—

जानावणरक्षास्त्राघो घाटालो विषमो महान् । विषमो पच्यते चापि विद्रधिः सांनिपातिकः ॥  
 सांनिपातिक विद्रधि—जिस विद्रधि से अनेक ( कृष्णपीतादि ) वर्ण का अनेक ( शोथदाहादि )  
 पीडा से युक्त अनेक प्रकार का पतला पीला स्त्राव हो, आकार पट के समान उन्नताग्र हो,  
 कभी छोटा हो कभी बड़ा अथवा अत्यन्त बड़ा हो और पाक भी विषम हो अर्थात् विचित्र स्थान

पर पके किसी स्थान पर नहीं पके अथवा कमी शीघ्र पके कभी देर में पके ती उसे सन्निपात के कारण हुई विद्रधि माननी चाहिये ॥ १ ॥

अभिघातसम्प्राप्तिमाह—

सैस्तैर्भावैरभिहते षष्ठे घाऽपप्यकारिणः । उत्तोष्मा वायुविसृत् सरक्ष पिचमीरयेत् ॥ १ ॥

उपरस्तृष्णा च द्वाहश्च जायन्ते तस्य देहिणः । आगन्तुविद्रधिद्वयं पित्तविद्रधिलक्षणम् ॥ १ ॥

अभिघातज और आगन्तुज विद्रधि—उन २ वस्तुओं से जिनसे अभिघात होता है ( हाठी, लोहा, पत्थर आदि से ) आघात होने पर अथवा छत होने पर ( रक्तसाधारि होने से ) जो अपप्य करते हैं उनकी वायु के द्वारा विस्तारित छत की रूप्पा रक्त के साथ पित्त में प्रवृत्त हो उन्हें कुपित करती है, जिससे ज्वर, तृष्णा, दाह उत्पन्न हो जाते हैं और पित्त के विद्रधि के समान उसके लक्षण होते हैं उसे 'अभिघातज' एवं 'आगन्तुज' विद्रधि मानना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तजमाह—

कृष्णरक्तोटाघृतं श्यायस्तीमदाहरजाउपर । पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिहरयते ॥ १ ॥

रक्तज विद्रधि—जो विद्रधि कृष्ण रक्तोटी ( कृष्ण वर्ण की पिट्टिकाओं ) से युक्त ( पिरा हुआ ) हो, श्यामवर्ण की हो, अत्यन्त तीव्र दाह और पीड़ा एवं ज्वर से युक्त हो और पित्तज विद्रधि के लक्षणों से युक्त हो उसे 'रक्तज विद्रधि' कहते हैं ॥ १ ॥

उष्ण विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥

जो ये विद्रधियाँ ऊपर नहीं गयी हैं इन सब में सान्निपातिक विद्रधि असाध्य है ॥

अभ्यन्तरविद्रधिकारणमाह—

अभ्यन्तरानतस्तृष्वैविद्रधीन्सम्प्रचक्षते । गुयसात्म्यविरुद्धाद्यष्टकसष्टमोजनात् ॥ १ ॥

अतिव्यथायस्यायामयेगाघातविदाहिभिः । घृयकसम्भूय वा दोषाः कुपिता गुणमरूपिणम् ॥ १ ॥

सखमीकवसमुत्पन्नमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिमम् ॥ २ ॥

आभ्यन्तर विद्रधि—अतिगुह, असाध्य, विरुद्ध, दुष्क और संघट अणुओं के मोजन करने से, अत्यन्त मेशुन और व्यायाम आदि करने से, मलमूत्रादि के वेग को रोकने से, बिनाही पदार्थों के सेवन करने से वातादि दोष प्रयुक्त अथवा एकत्र ( समस्त मिलकर ), कुपित होकर गुणों के समान अथवा वस्त्रों के समान घनत अभ्यन्तर प्रदेश में अर्थात् कोष्ठ वा छद में शिथिलता को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १-२ ॥

संस्थानमाह—गुदे यस्तिमुत्से नाम्नां कुक्षी घट्टणयोस्तथा ।

शूकयोः प्लीहिं यष्टि क्लोमि पाऽप्यघथा हृदि ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि का स्थान—अन्तर्विद्रधि गुण वस्ति के मुख, नाभि, कोप, दोषों बंधन तथा दोनों शूक, प्लीहा, यकृत, क्लोम अथवा हृदय में होता है ॥ १ ॥

एषां लक्षणम्—

घृयमुक्ताणि लिङ्गानि याद्विद्रधिद्वयैः । अधिष्ठानविशेषेण लक्षणानि निबोध मे ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि के लक्षण—इन विद्रधियों के लक्षण वातादि दोषों के अनुसार त्रित प्रकार के विद्रधि के लक्षण हैं येने ही कहे हैं किन्तु स्थान विद्वेष से भिन्न लक्षण कह जाते हैं ॥ १ ॥

गुदे घातनिरोधस्तु यस्ती कृष्णरक्तमूत्रता । नाग्यां हिष्मा तु सातोषः कुक्षी माहृत्कोपमम् ॥ १ ॥  
प्लीहोत्पन्नमहस्तीमो घट्टणस्थे तु विद्रधी । शूकयोः पार्वसङ्कोचः प्लीहिं श्वासनिरोधमम् ॥ १ ॥  
रक्तोत्पन्नमहस्तीमो हृदि कासश्च जायते । श्वासो यष्टि दिष्टा वापिपामा क्लोममेऽधिका ॥

गुदा में जब अन्तर्विद्रधि होती है तो कृष्णवायु का अवरोध हो जाता है, वस्ति में होने से घट से अस्पृश्य होता है, नाभि में होने से दिक्वा तथा भाग्ये ( गुह गुह रूपा ) होता है, कोप में होने से वायु का कोप ( वायु विकार ) होता है, वस्ती में होने से कटि और पीठ में तीव्र रक्तम और पीड़ा होती है, शूक रक्तों में होने से पार्वसङ्कोच होता है, प्लीहा में होने से श्वासीष्णुशाम में अवरोध होता है, हृदय में होने से मण्डल अर्थात् शीघ्र रक्तम और पीड़ा तथा काम होता है यष्टि में होने से श्वास और दिक्वा होती है और क्लोम स्थान में होने से वृषा अधिक होती है ॥ २-४ ॥

स्त्रावनिर्गममाह—

नाभेरुपरिजाः पक्वा घान्त्वयूर्ध्वमित्तरे स्थथा । अथ द्युतेषु जीयेषु द्युतेषूर्ध्वं न जीयति ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि का स्त्राव—नाभि स्थान से ऊपर हुए ( हृदय आदि वी ) अन्तर्विद्रधि जब पकती है तब फूटने पर उसके स्त्राव ( पूयादि ) ऊपर वी जाते हैं अर्थात् मुखदि से निकलते हैं और नाभि से नीचे हुए ( गुदादि वी ) अन्तर्विद्रधि फूटने पर उसके स्त्रावादि नीचे वी ओर ( गुदादि से ) जाते हैं । इसमें त्रिन मनुष्यों के स्त्राव नीचे के मार्ग से होते हैं वह तो जी जाता है परन्तु जिसके स्त्राव ऊपर ( मुखदि ) से होते हैं वे नहीं जीते ॥ १ ॥

उक्तं शरीरेण—ऊर्ध्वं प्रपन्नेषु मुखधराणां प्रयतंतेऽस्यसहिता द्वि पूयाः ।

अधःप्रपन्नेषु च पायुमार्गाद्द्वाम्यां प्रवृत्तिसिक्वह नाभिजे च ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि—यदि ऊर्ध्वं होकर अथवा नाभि स्थान से ऊपर वी फूटती है तो रक्त पूयादि मुख से निकलते हैं और यदि नीचे वी ओर होकर नाभि स्थान से नीचे वी फूटती है तो रक्त पूयादि गुदा के द्वारा निकलते हैं और यदि विद्रधि नाभि स्थान में होती है तो ऊपर मुंह और गुदा दोनों से निकलती है ॥ १ ॥

स्त्रावविषय साध्यासाध्यत्वमाह—

हृद्यामिषस्तिषज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यत । जीयत्कदाचिदुरूपो नेतरेषु कदाचन ॥ १ ॥

हृदय, नाभि और बलि इन स्थानों में उत्पन्न अन्तर्विद्रधियों को छोड़ कर जो अन्तर्विद्रधि हों और उनका मुख बाहर वी ओर दो तो क्वाचित् वह पुरुष ( रोगी ) बच भी जाता है परन्तु उससे भिन्न होने पर अर्थात् हृदय-नाभि और बलि स्थान में विद्रधि हो ( इनका मुख भीतर वी बाहर दो ) मर्म स्थानों की अन्तर्विद्रधि भी त्रिनका मुख भीतर हो वह नहीं बचता है ॥१॥

अयोक्तृभोजन—असाध्यो ममजो ज्ञेयः पक्वाऽपयवश्च विद्रधिः ।

सन्निपातोऽस्थितोऽप्येव पक्वा पय तु यस्तिजः ॥ १ ॥

मर्म स्थान में जो विद्रधि हुए हो वह तथा सन्निपातज विद्रधि यदि पके अथवा नहीं पके तो भी असाध्य हैं और बस्ति में जो विद्रधि हो वह यदि पक जावे तो असाध्य है ॥ १ ॥

त्यजो नाभेरघो यश्च साध्यो नोपरि नाभिजः ॥ २ ॥

जो विद्रधि त्वचा पर हो और नाभि के नीचे हो वह असाध्य है और नाभि स्थान से ऊपर होने वाली विद्रधि भी असाध्य होती है ॥ २ ॥

पुनः साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः । आमपक्वविद्रग्धत्व तेषां शोधयदादिशेत् ॥१॥

साध्यासाध्यता—बातादिक तीन और भाग-तुज अमिपातज तथा रक्तज ये पांच विद्रधियां साध्य होती हैं केवल सान्निपातिक असाध्य है । इन विद्रधियों की आम-पक और विद्रग्ध होने की अवस्था शोध की भाँति जाननी चाहिये ॥ १ ॥

तेषामभ्यन्तरेष्वसाध्यमाह—

आध्मानयद्रनिप्यन्द् हृदिहृक्काशुपान्वितम् । रुजाधाससमायुक्त विद्रधिर्नाशयेच्चरम् ॥

जिस अन्तर्विद्रधि में रोगी को अध्मान, मूत्रावरोध, धमन, हृक्का, तृषा, पीड़ा तथा श्वास हो वह विद्रधि उस मनुष्य का नाश कर देती है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

आमो वा यदि वा पषवो महान् वा यदि वेतरः । सर्वो मर्मोत्थितस्वात्तु विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥

विद्रधि आम अथवा पशु हो, महान अथवा इससे इतर ( छोटी ) हो, किन्तु मर्म स्थान में उत्पन्न हुए सब प्रकार की विद्रधि कष्ट साध्य कही गयी है ॥ २ ॥

हृद्यामिषस्तिजः पषवो वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः ।

हृदय, नाभि और बस्ति में उत्पन्न होनेवाली विद्रधि यदि पक जावे तो वह वर्ज्य है ( असाध्य है ) और त्रिदोषज विद्रधि भी असाध्य है उसे त्याग देना चाहिये ।

मुष्टिप्रमाणो गुणमस्तु विद्रधिस्तु ततः परम् ॥ ३ ॥

विद्रधि वा प्रमाण—शुभ्र मुष्टि क प्रमाण का होता है और विद्रधि उससे बड़ी होती है ॥ ३ ॥



मानसमूलादि योग—मानकन्द ( मात का चर ) को चूर्ण कर मधु में मिलाकर खाकर  
 सन्तुष्टोक्त का पान करने से मनुष्यों की बड़ी हुई अन्तर्विद्रधि भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

हरीतक्यादिचूर्णम्—

हरीतकीसैधयघातकीनां रजो घृतचौद्रयुत प्रयुक्तम् ।

निहन्ति स्त्रीषु ध्रुवमेव पुंसासन्त्यमर्षं विद्रधिमुग्ररूपम् ॥ १ ॥

हरीतक्यादि चूर्ण—हरा, सैधा नमक, धाय के फूल, समभाग लेकर चूर्णकर मधु और घृत के  
 अनुपान से छेदन करे ( चाटे ) तो मनुष्यों की अत्यन्त बड़ी हुई कठिन विद्रधि भी अवश्य ही नष्ट  
 हो जाती है ॥ १ ॥

सौभाग्यनादि—सौभाग्यनकनियुद्धो, हिक्कुसैधवसयुतः ।

अचिराद्द्विद्रधि हन्ति प्रातः प्रातन्निवेदितः ॥ १ ॥

सौभाग्यनादि योग—सहिजन को छाल अपवा मूल का काव बनाकर उसमें शुद्ध शींग और  
 सैधा नमक का प्रक्षेप देकर प्रातः पान करने से शीघ्र ही विद्रधि को नष्ट करता है ॥ १ ॥

शिशुमूल जले धौत वरपिष्ट प्रलेपयेत् । तद्दस मधुना पीत्वा हन्यन्तविद्रधि नरः ॥ २ ॥

सौभाग्यन लवादि—सहिजन को जड़ को जल में धोकर शिला पर पीसकर छेप करने तथा  
 उसके रस में मधु मिलाकर पान करने से मनुष्य की अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है ॥ २ ॥

त्रिफलागुग्गुलु—

श्रीणि पलानि फलत्रितयस्य द्वे तु पले तुलिते मगधायाः ।

पञ्च पलानि भवन्ति पुरस्य स्यात्स फलत्रिकगुग्गुलुयोगः ॥ १ ॥

पक्वेषु विद्रधिषु पूयमतिरावसु नाडीषु च प्रगगद्गेषु भगन्दरेषु ।

स्याद्गण्डमाष्टियु फलत्रिकगुग्गुलुः स्यात्पथ्य फलत्रिकपुरे घृतभोजनं च ॥ २ ॥

त्रिफला गुग्गुलु—त्रिफला समान मिलित का चूर्ण तो पल, चीपरी का चूर्ण दो पल और  
 शुद्ध गुग्गुलु पाच पल लेकर एकत्र गर्दन कर बटिका के विधान से बड़ी बनाये इसे 'त्रिफला  
 गुग्गुलु' कहते हैं । पके हुए विद्रधि में, पूय का अत्यन्त साव होने वाले विद्रधि में, नाड़ी  
 मग में, भगन्दर में और गण्डमाला में इसे सेवन करना चाहिये । इस त्रिफला गुग्गुलु के सेवन  
 करते समय घृत मिला हुआ भोजन ( पथ्य ) करना चाहिये ॥ १-२ ॥

वरुणकादिघृतम्—सिद्धं वरुणादिगणैश्च विधिना सत्कषकपाचितं सर्पिः ।

अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताचामान्यं च ॥ १ ॥

गुणमानपि पञ्चविधासाशपतीद् यथाऽम्बु वायुसङ्गम् ।

पृथग्यातः प्रपियेद्धो नमसमये निशास्येऽपि ॥ २ ॥

वरुणकादि घृत—वरुणादि गण की भीषणियों के काव और रसी के वस्त्र के द्वारा सिद्ध किया  
 घृत बनाये वरुणादि गण की भीषणियों का काव ४ प्रस्थ, मून्धित गोघृत एक प्रस्थ और वरुणादि  
 गण की भीषणियों का वस्त्र ६ प्रस्थ लेकर विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से अत्यन्त बड़ी  
 कठिन अन्तर्विद्रधि शिरःशूल, मन्दाग्नि और पाँचों प्रकार के गुस्म इस प्रकार नष्ट होते हैं  
 जिस प्रकार जल से अग्नि । इसकी प्रातःकाल भोजन के समय और रात के प्रारम्भ में पान  
 करना चाहिये ॥ १-२ ॥

रसगन्धकयोग—

वरुणादिकपाथेण रसगन्धककज्जलीम् । मुषावा निहन्ति मापैका बाह्यगन्धक विद्रधिम् ॥

रसगन्धक योग—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान लेकर कज्जली का एक भाग की  
 मात्रा लेकर वरुणादि गण की भीषणियों के अनुपान के साथ सेवन करने से बाध और अन्तर्विद्रधि  
 दोनों नष्ट होती हैं ( पहले एक रसी से प्रारम्भ करना चाहिये ) ॥ १ ॥

अपक्वेषु त्येतदुदिरिषं पक्वेषु सद्मगवच्छिप्रा ॥ १ ॥

ये सब क्रियायें अपक्व विद्रधि के लिये कही गई हैं, विद्रधि के एक जाने पर मात की पिच्छता  
 के समान ( अपक्व मन की ) समी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

आमस्ये रचनं चैवं लेपं स्वेदोऽस्त्रमोक्षणम् । जीर्णा श्यामाककलमाः कुलेत्या लघ्नानि च ॥  
रक्तशिग्रुषु निष्पावः कारयेत्तु पुनर्नवा । धीपणं चिप्रक चोद् शोयोक्तानि च सर्वश ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—जब तक विद्रधि आम (अपक) रह तब तक रचना क्रिया, लेप, स्वेद, रक्तमोक्षण आदि करना चाहिये और पुराने साँवा, बलम धान, कुल्लुपी, लहसुन, लाल सद्दिबन, सेम, करैली, पुनर्नवा, गनियार, चिचकी जड़, मधु और शोथ रोग में कड़े हुए सभी पथ्य सेवन करना चाहिये अर्थात् अपक विद्रधि में ये पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

पक्कावस्ये शस्यकम पुराणा रक्तशालयः । घृतं तैल मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसा ॥ ३ ॥  
शालिग्र शकं कदली पटोळं हिमवालुका । चन्दन तप्तदीप्ताम्यु सर्वं चापि घणोदितम् ॥ ४ ॥

जब विद्रधि पक जाये तब शाख कर्म (चौर-फाड़) करना चाहिये और पुराने रक्त वर्ण के शालीधान का चावल, घृत, तैल, मूंग का रस, विलेग्रय तथा धन्वज (दिल में रहने वाले तथा मरुदेशीय) जोरों का मांस रस, शालिग्र शक (दिलिग्रा का शक), कैला, परवर, फरूर, चन्दन, औटा कर शीतल किया अल तथा मग रोग में पड़े हुए सभी पथ्य सेवन करना चाहिये ॥ माराणां विद्रघौ श्यायौ यथावस्यं यथावलम् । पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभि ॥

मुद्गस्यो के विद्रधि रोग में अवस्था और बल के अनुसार ये सभी पथ्य महर्षियों ने निर्दिष्ट किये हैं ॥ ५ ॥

घोकिनां यापपथ्यानि घणिनामपि यानि च । क्रमादामे च पक्वे च विद्रघौ घर्जयेत्तर ॥ ६ ॥  
शोथ रोग और मग रोग में जो अपथ्य पढ़ गये हैं वही क्रम से आम और पक विद्रधि में बर्जित करना चाहिये अर्थात् जो शोथ में अपथ्य हैं वे आम विद्रधि में और जो मग में अपथ्य हैं वे सभी पदार्थ पक विद्रधि में अपथ्य हैं ॥ ६ ॥

इति विद्रधिचिकित्सारोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ घणशोथनिदानम् ।

तस्य प्राग्गमम्—पृक्वेशोरियतः शोथो घणानां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥

मगशोथ का पूर्वरूप—शरीर के एक स्थान पर ठठा हुआ शोथ मग रोग का पूर्वरूप है अर्थात् शरीर पर एक स्थान में शोथ होवे तो जानना चाहिये कि यही मग रोग का पूर्वरूप है ॥

तस्य संख्यामाह—पश्चिधः स्यात्पृथक्सर्वशोणितारान्तुभेदतः ॥ १ ॥

मग भी संख्या—यह एक देश में वातादिभू पृथक् २ दोषों से (वातज-पित्तज-कफज) तीन, त्रिदोषज एक, रक्तज एक और आम-तुल्य एक इत भेद से उत्पन्न शोथ छः प्रकार का होता है ॥१॥  
तेषां लक्षणमाह—

शोफा पथेते विज्ञेया प्रागुक्तैः शोफलक्षणैः । विशेष कथ्यते तेषां पक्वापक्वविनिश्चये ॥ १ ॥

मग शोथ के लक्षण—ये छ प्रकार के शोथ जो हैं इनके लक्षण पहले कहे हुए शोथ रोग के लक्षण के समान ही जानना चाहिये । यहाँ पर इसका विशेष लक्षण पक्वापक्व के निश्चय के लिये कहते हैं ॥ १ ॥

विषम पथ्यते घातापिचोत्थश्चाविराधिरम् । कफज पित्तयच्छोफो रक्तागुसुसुद्गयः ॥ २ ॥

वात के कोप से जो मग शोथ होता है उसका पाक विषम होता है अर्थात् शोथ कहीं (शोथ का कोई भाग) पकता है वही नहीं पकता है, पित्त के कोप से जो होता है वह शीघ्र पकता है, कफ के कोप से जो होता है वह बहुत विलम्ब से (अधिक दिन में) पकता है और रक्तज तथा आगन्तुक शोथ पित्तज शोथ के समान अर्थात् शीघ्र पकता है ॥ २ ॥

मन्दोष्मतात्पशोफत्वं काठिन्यं स्वप्नसवर्णता । मन्दोवेदमता चैव शोफानामामलक्षणम् ॥ ३ ॥

आम शोथ के लक्षण—जिस शोथ में ऊष्मा मन्द हो शोथ अल्प हो, शोथ में कठिनता हो, वर्ण स्वच्छा के वर्ण का हो, पीड़ा अल्प हो उसे आम अर्थात् अपक जानना चाहिये ॥ ३ ॥  
यद्यते दहनेनेय चारेणैव विपच्यते । पिच्छीलिकारणेनेव दूरयते क्षिप्रते तथा ॥ ४ ॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनैव च साध्यते । पीडयते पाणिनेवान्ताः सूचीभिरिव तुषते ॥ ५ ॥  
सोपघोषो विवर्णं स्यात्सङ्घुस्त्रयेवावपीडयते । आसने दायने स्थाने धाम्नि वृश्चिकविद्यत् ॥  
न गच्छेद्वाततः शोफो, भवेद्वाष्मात्तपस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽहचिर्ब्रूव पक्ष्यमानस्य लक्षणम् ॥

पकते हुए शोथ के लक्षण—जिन मग शोथ में अग्नि से जलने के समान दाह हो, धार से पकते हुए भी भौंति दात हो, चीटियों के समूह काट रहे हैं ऐसा दात हो, ठेरने के समान, इत्य सं भेदन करने के समान, दंड से मारने के समान हो, दाध से दबाने के समान अथवा सुर् घुमाने के समान पीड़ा हो, दाह हो, घूसने के समान पीड़ा हो, वग विवर्ण ( त्वचा रज्ज्वीलादि ) हो, अंगुली से पीडित करो की भौंति पीडा हो, बैठने में, सोने में तथा स्थान स्थान में बिच्छू काटे की भौंति अशान्ति रक्ष अर्थात् स्यात्कुलता हो, शोथ वायु से पूर्ण बरित के समान फूला हुआ हो, फेलाव में न्यूनता नहीं हो और ज्वर, तृष्णा तथा अरुचि, ये सब लक्षण मग शोथ में हैं वसे पक्ष्यमान अर्थात् पकता हुआ शोथ जानना चाहिये ॥ ४-७ ॥

वेदनोपशम शोफो लोहितोऽज्वपो न चोच्चव । प्रादुर्भाषो घळीनां च सोदः कण्डूमुहुर्मुहुः ॥  
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटन त्वक्षाम् । यस्ताविवाभ्युसञ्चारः स्यात्सङ्घोफऽङ्घुलिपीडिते ॥  
पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते । अक्काकाङ्क्षा भयेर्षचैव शोफानां पञ्चलक्षणम् ॥ १० ॥

पक शोथ के लक्षण—जिस शोथ में वेदना की शान्ति ( दाहादि में न्यूनता ) हो और शोथ का लोहित वर्ण होना ( पाण्डु वा घूसर वर्ण का होना ), उन्नत नदी रचना ( शोथ में न्यूनता ), शोथ में सिक्कन का उत्पन्न होना, सुर् गलाने की भौंति दात होना, बार बार पण्डु होना, उपद्रवों ( दाह, शोथ-घृषादि ) की शान्ति, शोथ में नम्रता होना ( घृष्टता होना ), त्वचा पर स्फोट होना ( फुल पट जाना ), अंगुली से दबाने पर शोथ का बल घ मरे हुए पमटे की गैली पर अंगुली दबाने की भौंति दबना अर्थात् पूय से भरा होने से घृष्ट होना, शोथ के एक स्थान को पीडित करने ( दबावे ) से दूसरे स्थान का पीडित होना और भोजन की इच्छा होना ये सब लक्षण हो तो शोथ पका हुआ है यह जानना चाहिये ॥ ८-१० ॥

नर्तेऽनिलाद्गहनं विना च पिचं दाहः कफं चापि विना न पूयः ।

सहमाद्रि सर्वे परिपाककाले शोपश्चिर्घाम्नि रादा विपाकम् ॥ ११ ॥

मग में वायु के बिना पीड़ा ( तोदादि ) नहीं होती है, पिच के बिना दाह ( पाक ) नहीं होता है और कफ के बिना पूय नहीं होता है इसलिये सब प्रकार के मग में ( एक शोथ में उत्पन्न मग में ) भी पाक होने के समय तीनों दोषों का संसर्ग होता है अर्थात् प्रायेण मग तीनों दोषों से पकते हैं वा प्रत्येक रोग तीनों दोषों के संसर्ग से पकते हैं ॥ ११ ॥

कालान्तरेणाम्बुदितं तु पिचं कृत्या वणे यातकफौ प्रसज्ज ।

पक्षरयसः शोणितमेव पाको मघं परेषां विद्रुपां द्वितीयः ॥ १२ ॥

अधिक समय हो जाने पर बढ़ा हुआ पिच, वात और कफ को पच पर ( शीत कर ) रक्त को पचाता है ( इसी से पूय बनता है ) अर्थात् तीनों शोथ और रक्त मिलकर, पक कर पूय होते हैं । पहले यह लिखा है कि केवय कफ से पूय बनता है पर यह विद्वानों का दूसरा मत है ॥  
कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेवसृक् । पञ्चलिङ्ग लतः स्पष्टं यत्र स्वाध्यायशीलता ॥  
त्वक्सावर्ण्यं ह्योद्यस्यं घनस्पन्नायमश्मवत् ॥ १३ ॥

कफज शोथ में रक्त गम्भीर वाक को पाक करता है । समय पाद होने का स्पष्ट लक्षण ये हैं कि शोथ में शीतलता हो, रक्षा के वर्ण के समान ही शोथ का वर्ण हो पीड़ा अथवा शोथ शोथ पाचर के समान घन स्पष्ट हो ( इह शोथ हो ) इस प्रकार के लक्षण से शुभ कफज शोथ को पक जानकर बेव वचिन चिरिष्ठा ( क्षम चिकित्सा ) करे ॥ १३ ॥

कफ समासाद्य पर्येष यद्विर्घातरितः समुदहति प्रसज्ज ।

सधेयं पूयोऽप्यविनिघृता द्वि मांसं सिरारनायु च सावरीद ॥ १४ ॥

जिन प्रकार रक्ष में ( एगजुब में ) प्राप्त हुई अग्नि वायु से प्रज्वलित होकर मीठर ही मीठर भास कर देती है वसी प्रकार पके हुए मग का पूय यदि बाहर नहीं निकलना जावे तो यह पूय माल, किरा और रज्जु की सा मग है ॥ १४ ॥

आम विपर्ययमानं च सम्यक्शक्तं च यो भिषक् । जानीयात्स भवेद्द्वेषः दोषास्तत्करयुक्तयः ॥१५॥

जो वैष प्रण शोध के आम, पच्यमान और सम्यक् पक ही अवस्था को (अपक, पकता हुआ और भलीभाँति पका हुआ) जानता है वही वैष है, शेष तरफ़र कृत्ति वाले हैं अर्थात् जिस वैष को इसका ज्ञान नहीं है वह वैष के नाम पर चोरी कर के जीविका चलाने वाला वैष है (वैष नहीं है) ॥ १५ ॥

परिद्धनरधाममशानाद्यश्च पक्षमुपेक्षते । श्रपचाविष मन्तव्यी तावनिश्चितकारिणी ॥ १६ ॥

जो वैष अज्ञान से आम (अपचव) प्रण को छेदन कर देता है (चोरा दे देता है) और पक्के हुए प्रण की उपेक्षा करता है (नहीं चौरता है) उन अनिश्चितकारी (निश्चयपूर्वक काय नहीं करने वाले) वैषों को चाण्डाल के समान जानना चाहिये ॥ १६ ॥

द्विधा प्रण परिज्ञेयः शारीरामनुभेदतः । दोषैराद्यस्ततोऽन्यथ दारुणादिद्यतसम्भवः ॥ १७ ॥

प्रण का द्वैविध्य विचार—एक शरीर प्रण और दूसरा आगन्तु प्रण इस भेद से प्रण दो प्रकार का जानना चाहिये । इसमें आदि का जो प्रण है अर्थात् शरीर प्रण दोषों (वातादिकों) से होता है और अन्य अर्थात् आगन्तु प्रण शक्त्ति से क्षत होने के कारण होता है ॥ १७ ॥

वातिक्रमाद्—स्तम्भः कठिनसंस्पर्शो मन्दध्यायो महारुजः ।

गुचते स्फुरति श्यावो प्रणो मादृतसम्भवः ॥ १८ ॥

वातिक प्रण के लक्षण—जो प्रण स्तम्भ (अचल) हो, स्पर्श करने पर कठिन मालूम हो, श्याव जिसमें से मन्द २ हो, पीड़ा अधिक हो, प्रण में चूर्ण सुमाने के समान घात हो, स्फुरण हो और प्रण का वर्ण श्याम हो उसे वायु के कोप से उत्पन्न प्रण जानना चाहिये ॥ १८ ॥

पैथिकक्रमाद्—

वृष्णामोहज्वरकलेदवाहनुखावदारणैः । प्रण पित्तकृत विघ्नाद्गन्धैः स्याद्वैश्व प्रतिकैः ॥ १९ ॥

पैथिक प्रण के लक्षण—जिस प्रण में वृषा, मोह, भार्द्रता, दाह, अवदारण (फटने) का दुःख, दुर्गन्धि और प्रतिक स्याव (श्व के गन्ध का स्याव) हो उसे पित्त के कोप प्रण जानना चाहिये ॥

कफजक्रमाद्—

बहुपिच्छो गुरु स्निग्धः रितमितो मन्दवेदन । पाण्डुघर्णोऽक्षपसवलेदधिरपाकी कफजप्रण ॥

कफज प्रण के लक्षण—जिस प्रण में अत्यन्त पिच्छिलता (चिकनाहट या पूय), गुरुता, स्निग्धता, निद्राचलता और अल्प पीड़ा हो, प्रण का वर्ण पाण्डु हो, मोहो २ भार्द्रता और बहुत समय (अधिक दिन) में प्रण का पाक हो उसे कफ के कोप का प्रण जानना चाहिये ॥ २० ॥

रक्तजक्रमाद्—

रक्ते रक्तवर्ती रक्तादिद्वित्रिजः स्यात्तदन्वयः । स्वह्रमांसज सुखे देशे सरुणस्यानुपद्रव ॥२१॥

धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुख प्रणः । गुणैरन्यतमैर्हीनस्तत कृच्छ्रो प्रणः स्मृत ॥

रक्तज प्रण के लक्षण—जिस प्रण का वर्ण रक्त हो और रक्त का ही जिसमें से स्याव होवे उसे रक्त के दोष का प्रण कहते हैं । द्विदोषम त्रिदोषज लक्षण—इसी रक्तज में दोषों के समन्वय से (सम्बन्ध से) द्विदोषज और त्रिदोषज भी होता है अर्थात् दो २ दोषों के सम्बन्ध होने से द्विदोषज और तीनों के सम्बन्ध से त्रिदोषज होता है । इसमें द्विदोषज त्रिदोषज के भी दो भेद हुए—एक भेद वात-पित्त, पित्त-कफ और कफ-वात का द्विदोषज तथा वात-पित्त और कफ मिश्रित त्रिदोषज तथा दूसरा भेद रक्त-वात, रक्तपित्त और रक्त-कफ या द्विदोषज और वात-पित्त-रक्त वात-कफ रक्त और पित्त-कफ-रक्त का त्रिदोषज तथा वात-पित्त-कफ और रक्त का साक्षिपातिक इसके उपरान्त पूर्वकथित वातज, पित्तज, कफज और रक्तज होते हैं । इस प्रकार प्रण के पन्द्रह भेद हैं । साध्यासाध्यता—जो प्रण स्वचा और मांस में उत्पन्न हुआ हो, क्षुब्ध स्थान पर हो अर्थात् मर्म-स्थान आदि से पृथक् हो, युवा मनुष्य को हुआ हो (जो क्रिया [चौर पाद आदि] सहने वाला हो), उपद्रव (ज्वररूपादि) से रहित हो, बुद्धिमान् मनुष्य को हुआ हो, प्रण नवीन हो, सुख कर समय में (क्षेमन्त, शिशिरादि ऋतु में) हुआ हो ऐसा प्रण सुखसाध्य होता है । जो प्रण सुखसाध्य प्रण के गुणों से हीन गुण का हो अर्थात् कुछ लक्षणों में न्यून हो उसे कष्ट साध्य प्रण कहा गया है ॥ २१-२२ ॥

सर्वे विहीनोऽसाध्यस्तु त्र्यैवोपवर्णान्वित । श्रुतिं पृथातिशुद्धासुवजाप्युरसङ्गी चिरं स्थिताः ॥  
दुष्टमणोऽतिगन्धादिं शुद्धलिङ्गविपर्यय ।

दुष्टमण के लक्षण—जो मण सुखसाध्य मण के सब गुणों से हीन हो ( सुखसाध्य मण के गुणों से विपरीत हो ) और उपद्रवों ( ज्वर-शूल-एषादि ) से युक्त हो, मण में दुर्गन्धि हो, अल्प पुष्प आता हो, अल्पत दृषित रक्त बहता हो, अति ऊँचा हो अथवा छिद्रयुक्त हो, बहुत दिन का पुराना हो गया हो और अल्पत गन्ध आती हो तथा शुद्ध मण के लक्षणों से विपरीत छल्ला हो उसको दुष्ट मण कहते हैं ॥ २३ ॥

जिह्वातलाम सुरलक्षणः स्निग्धो विगतयेद्म । सुव्यवस्थो निराघातः शुद्धो मण इति स्मृतः ॥

शुद्ध मण के लक्षण—जिस मण की आभा ( कान्ति ) जिह्वातल की आभा के समान हो, हल्का ( पिच्छल ), स्निग्ध और बेदाग ( पीड़ा ) रहित हो, सुव्यवस्थित ( सम हो ) अर्थात् ऊँचा नीचा या छिद्रयुक्त न हो ) हो तथा स्राव रहित हो उसे शुद्ध मण कहते हैं अर्थात् शुद्ध मण के ये लक्षण हैं ॥ २४ ॥

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः बलेऽवर्जिता । स्थिराश्च पिष्टिकावन्तो रोहतीति समादिशोत् ॥

भरते हुए मण के लक्षण—जिस मण के किनारे २ कोण के बर्णों के ( वाण्ड-बूसर ) समान वर्ण हो और बलेदरहित ( स्रावरहित ) हो, स्थिर हो अर्थात् मण की छिद्रि अवरूढ़ हो गई हो और पिष्टिका युक्त हो अर्थात् मण पर या मा दिखाई देने उसे दक्षिण ( भरता हुआ ) मण जानना चाहिये ॥ २५ ॥

रुचयस्मानमप्रस्थिमशूनमरुम मणम् । स्वसवर्णं समतल सम्यक्कृतं समादिशोत् ॥ २६ ॥

भरे हुए मण के लक्षण—जिस मण का मार्ग अवरूढ़ हो गया हो ( स्रावदि का बहना बन्द हो गया हो ), प्रस्थि आदि जिसमें नहीं हो, शीथ तथा पीड़ा नहीं हो, बर्ण त्वचा के वर्ण का हो गया हो और समतल हो गया हो उसे सम्यक्कृत ( मलीभौत भरा हुआ ) मण जानना चाहिये :

कुष्ठिनां विपञ्चयानां क्षोपिणां मधुमेदिनाम् ।

मृणाः कृष्णैः सिष्यन्ति येषां पानि मणे मृणाः ॥ २७ ॥

साध्यासाध्यता—कुष्ठरोग, दूरी विष, शीथ रोग और मधुमेह वाले के मण और जिनको मण के ऊपर मण हुआ हो उनके मण ये सब कष्ट साध्य होते हैं ॥ २७ ॥

घर्षां मेधोऽथ मज्जान मस्तुलुङ्ग च यः शक्य । आगन्तुजो मणाः सिष्येत् ( सिष्येहोवसम्मवः ॥

जिसके मण से घर्षा, मेह, मज्जा और मस्तुलुङ्ग ( मस्तक के भेने का मण ) का स्राव होता हो और यदि वह मण आगतुज ( भाषादि क कारण ) हो तो साध्य होता है तथा यदि ऐसा मण दोष से ( बाधादि क से ) हुआ हो तो साध्य नहीं होता है अर्थात् असध्य होता है ॥ २८ ॥  
मृणागर्षाव्यसुमनः पद्मपद्मनचम्पवैः । सगन्धा दिष्यन्त्यास्य सुमूर्तुणां मणाः स्मृताः ॥ २९ ॥

जिस मण में से मद्य, अण्ड, पूत चमेठी के पूर, बगल, पद्मन तथा चम्प के पूर आदि का गन्ध ( इनके समान गन्ध ) आवे अथवा अन्य विविधा गन्ध आते हैं वह भरते वाले का मण कहा गया है ॥ २९ ॥

ये च मर्मसु सगमूता मयन्त्यस्यमवेदभाः । दृष्टान्ते चान्तरस्य च द्वितीयोत्तम ये मृणाः ॥ ३० ॥

मार्गमांसस्य धातुसासरोऽक्षपीष्ठिभिः । प्रवृद्धपूरपरिता मणा येषां च ममसु ॥ ३१ ॥

द्विष्यामि सम्यगास्था न मिद्वन्ति च ये मृणाः । यत्रवेदेव तात्वे च संरक्षणागतो यथा ॥

धो मण मर्म-स्थान में नहीं उत्पन्न होते पर भी अल्पत पीड़ा करो वाले और आम्बन्तर में अल्पत दाह करने वाले हो तथा बाहर ( ऊपर ) से छीटक हो ( इनी प्रकार जो मण भीतर में पीठक और बाहर से दाह करने वाले हो ) और जिस मण में मात ( बक ) और मत्त का स्राव हो, आस काम और अवधि से पीड़ा हो, पूर और बाहर जगमें अल्पत रूपे हुए हो ( बहते हैं ) तथा जो मण मर्मस्थान में उत्पन्न हुए हो और यहीभौति पिष्टिका करने पर भी सिद्ध नहीं होते हैं उनको अपने बच ही रक्षा करने वाला वेद रवाग देने, अर्थात् वे सब असाध्य मण हैं ॥ ३०-३१ ॥

अथ ग्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् । तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पादनक्रिया ॥ १ ॥

पञ्चमं शोधनं कार्यं षष्ठं रोपणमिष्यते । एते क्रमाद् ग्रणस्थोक्ता सप्तमं वैकृतापहम् ॥ २ ॥

ग्रणशोथ चिकित्सा—प्रथमं ग्रणशोथ के आरम्भ में विम्लापन क्रिया करे, द्वितीय में अवसेचन तृतीय में उपनाह, चतुर्थ में पादन, पञ्चम में शोधन, षष्ठ में रोपण और सप्तम में वैकृत ( विकार ) नाशक क्रिया करे अर्थात् ग्रण चिकित्सा में क्रम से इन सात प्रकार की क्रियाओं को करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

विम्लापनम्—

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु घेणुनाट्वा क्षमैः क्षमैः । विम्लापनार्थं गृहीतं तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ १ ॥

ग्रण शोथ उत्पन्न होते ही पहले ग्रण को घृत तेल आदि से अभ्यक्त कर बॉस की नली के द्वारा धीरे २ स्वेद देने पश्चात् हस्ततल से भयवा अंगूठे से ग्रण को पकड़ कर मले, इससे ग्रण शोथ में विम्लापन होता है ॥ १ ॥

अवसेचनम्—

रक्षावसेचनं कुर्यादाद्यायेव विचक्षणः । क्षोफे महति सपृष्टे घेदनावति वा घ्रणे ॥ १ ॥

यो न धालि क्षम लेपास्वेदसेकापतर्पणैः । सोऽपि नाशं क्षयव्याहृतं शोथं शोणितमोक्षणम् ॥

ग्रण शोथ के आरम्भ में वैष रक्तमोक्षण क्रिया को करे क्योंकि जो शोथ अधिक हो गया हो, ग्रण में पीड़ा अधिक होती हो जो लेप लगाने, स्वेद देने, सेक करने और अपतर्पण करने से भी शमन नहीं होता हो यह शोथ रक्तमोक्षण कराने से शोथ ही नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

पृक्तस्य क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकता । रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे नास्ति विक्रिया ॥

ग्रण को चिकित्सा में एक ओर सम्पूर्ण क्रियाओं का योग और एक ओर केवल रक्तमोक्षण क्रिया दोनों में रक्तमोक्षण ही प्रधान है क्योंकि रक्त ही शोथ में विकृत होता है उसके निकाल देने से विकार नहीं रहता है ( नष्ट हो जाता है ) ॥ १ ॥

लेप—

मातुलुङ्गाग्निमन्थी च सुरदारु महोपधम् । अहिंघ्रा चैव रास्ना च प्रलेपो घातशोथहा ॥ १ ॥

घातजशोथ में लेप—बिजौरा नीबू, गनियार, देवदारु, सोंठि, पटेरी और रास्ना को समान लेकर पीसकर लेप बनाकर लेप करने से घातज शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृष्क काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धः शाखोटकरथच । सुपूर्णं ह्य नागानां घातशोथविनाशनः ॥

शाखोट ( सिहोरा ) की छाल को काजी के साथ पीस कर बक्क बना कर घृत से स्निग्ध कर ( थोड़ा घृत मिला कर ) लेप करने से घातज शोथ ( ग्रण ) इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार गरुड़ से नाग ( सर्प ) नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दन तथा । क्षीतलैश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः पित्तशोफजिह्व ॥ ३ ॥

पित्तजशोथ में दूर्वादि लेप—दूर्वादल ( हरी दूब ), नरकट की जड़, मुलहठी, छालचन्दन और क्षीतल गण की सब औषधियाँ लेकर लेप बनाकर लेप करने से पित्तज शोथ नष्ट होता है ॥

अजगंधाऽमृगगन्धा च काला सरलया सह । कम्पिष्ठका च शृङ्गी च प्रलेपः छेपमशोपहा ॥

कफज ग्रण शोथ में अजमोदादि लेप—अजमोदा, असगंध, काली मिश्री या काला जीरा, सरल काष्ठ, कवीला और काकड़ासिंगी समभाग लेकर लेप बनाकर लेप करने से कफज ग्रण शोथ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिशुवृषिकस्ता शिवा । मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥

कृष्णादि लेप—वीपरि पुरानी तिल की खरी, सविजन की छाल, नाख और इर्रां सम भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर थोड़ा गरम कर गरम २ लेप करने से कफज ग्रण शोथ नष्ट होता है ॥

न्यग्रोधोद्गुम्यराधत्थप्लव्येतसशेलुभि । चन्दनद्वयमक्षिष्टायष्टीसूरणमैरिकै ॥ ६ ॥

शतधीतधृतोतिमश्लैर्लेपो रक्तप्रसादनः । दाहपाकलज्जास्त्रावशोफनिर्वापण पर ॥ ७ ॥

रक्तज ग्रण शोथ में लेप—बट, गूलर, अश्वत्थ, पाकर, वेत और लसोडा ( लिसोदा ) इनकी छाल, रक्तचन्दन, स्वैतचन्दन, मजीठ, जेठीमधु, छरणकन्द, गेरु मिट्टी समभाग लेकर जल के

साथ पीसकर उसमें सौ बार का भोया हुआ गोष्ठ मिलाकर लेप करने से रक्त का प्रसादन होता है और दाह, पाक, पीड़ा, घाव और शोथ ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

आगाम्युत्रे रक्तज्ञे च गुण ऐपोऽतिपूजितः ॥ ८ ॥

आग गुग्गु और रक्तज मग शोथ में यह उल्लिखित लेप अत्युत्तम माना गया है ॥ ८ ॥

कडुतैलान्नितैलेषः सर्पनिर्माकमरमभिः । चय शान्म्यति गण्डस्य प्रकोप स्फुटति पुसम् ॥९॥  
गण्डकोप में लेप—सर्प की केचुल को जलाकर मरम कर उसमें कडु तैल मिलाकर लेप बनाकर लेप करने से गण्ड (प्रथि) का शोथ शमन होता है और यदि गण्ड शोथ अत्यन्त दुर्बल हो गया हो (बढ़ गया हो) तो शीघ्र फूट भी जाता है ॥ ९ ॥

न राश्री लेपन दद्याद्दर्सं च पतितं तथा । न च पर्युपित नैव शुष्यमाणं च धारयेत् ॥ १० ॥

लेपक का निषेध—राशि में लेप नहीं लगाना चाहिये क्योंकि लगाना हुआ लेप गिर जाना है, पर्युपित (घासी) लेप और छका हुआ भी लेप नहीं लगाना चाहिये ॥ १० ॥

शुष्यमाणमुपेचेत् प्रवेह पीडनं प्रति । न चापि मुलमालिग्नेषेभ्यो दोष प्रसिष्यते ॥ ११ ॥

यदि मग को पीड़न करना हो तो यन्त्रे हुए लेप की उपेक्षा करनी चाहिये (नहीं चठारना चाहिये) तथा मग के मुख पर लेप नहीं लगाना चाहिये, इससे दोष निकल जाते हैं अथवा भीतर हो रह जाते हैं ॥ ११ ॥

न प्रशांम्यति यः क्षोका प्रलेपाद्विधिधानतः । मृश्याणि पाचनीयानि दद्यात्प्रोपनाहने ॥१२॥

उपनाह विधि—जो शोथ प्रलेप आदि विधि (चिकित्सा) से नहीं शमन होते हैं उसमें उपनाह के लिये (प्रसिद्ध के लिये) पाचनीय द्रव्यों को व्यवहार करना चाहिये (लगाना चाहिये) ॥

उपनाहनम्—सतिलाः सातसीषीजा दृष्यन्तैः सक्नुपिण्डिका ।

सकिण्यकुष्ठलयणाः क्षस्ता स्युपनाहने ॥ १ ॥

तिल, सीसी के बीज, दही, ब्रांजी, जौ के सच्चे का पिण्ड, सरानीज, बूट और सेंधा मगर समान लेकर पीसकर उपनाह (प्रसिद्ध) करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

सैलेम सर्पिया घाऽपि द्वाभ्यां सक्नुकपिण्डिका ।

सुखोष्ण शोथपाकार्यमुपनाहः प्रदास्यते ॥ २ ॥

तेल अथवा घृत अथवा दोगों मिलाकर जौ के सच्चे के पिण्ड को गरम कर गरम र हो उपनाह करने से शोथ का पाक करता है, यह शोथ का पाक करने में उत्तम है ॥ २ ॥

पाटनम्—अन्तःपूयिष्ववक्त्रेषु तथैवोत्सङ्गस्यवि ।

गतिमासु च रोगेषु भेदुन धारतमुच्यते ॥ ३ ॥

भेदन के योग्य मग—जिस मग के भीतर पूय भरा हो, मुख नहीं हुआ हो (पूयदि निकलने का मुख नहीं बना हो), मग ठठा हुआ हो (पूय से चढ़ा हुआ हो) और अनापमान मग हो तो उसका भेदन करना (चोटा लगाना) उचित कहा गया है अथवा शम प्रकार के मग भेदन के योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

वाल्यूदासदृशीणभीरुणां धीपितामवि । मर्मोपरि च जातेषु पक्के शोके च दाहने ॥ २ ॥

चिरिचिबवोऽभिको दन्ती चित्रकी हयमारकः । कपोतकङ्कगृभ्यां माल्छेपेग वारगम् ॥ ३ ॥

बादक, बूद, अश्वत्थमूल, शीघ्र, भोज और लियो के मगों तथा मर्मत्वान पर अत्यन्त मगों एवं पके हुए कठिन शोथ पर चिरिचिब (करक) की घाल, चिब की बूद, दन्ती की बूद अश्वतीर, मनेर की बूद, कबूतर की पिशा, पील पक्षी की पिशा और पिंड की पिशा से मगान शेर पीठ कर लेप बना कर लेप करने से मग का दाह होजा है अथवा शम लेप से मग बूट का पूयदि बाहर निकल जाते हैं शोथ को चिरिचिबानि से कहते हैं ॥ २-३ ॥

रथत्रिकायावशुकाद्याः चारा लेपेन दाहनाः । दमकाम्प्यारतया लेपो मने परमदारतः ॥ ४ ॥

रथत्रिकादि लेप—सत्रोगार और यगप्यादि चारों के लेप से मग का दाह होगा है और

दारदारदी का लेप बना कर लेप करने से मग का अत्युत्तम दाह होगा है ॥ ४ ॥

दाहमूलकनिम्बानां फलानि तिलमर्षवाः । सत्पय विषयमसमी प्रवेह पाचनः सपुत्र ॥ ५ ॥

शगादि प्रदेह—सन का मूल, सहिजन का फल, तिल, सरसों, जब के सपू, घृताबीज और तीसी सगाा छेत्त पीस कर छेत्त करने से ग्रण का पाचन (पाक) होता है ॥ ५ ॥

दन्ती चित्रकमूलत्वचस्तुर्धकपयसी गुड । भ्रूतकाशियकासीससैन्धवैदारण स्मृतः ॥ ६ ॥

दार्यादि दारण—दन्तीमूल, चित्तबी अथ की घाल, यूहर (सैद्दह) का दूध, मदार का दूध, गुड़, मिलावे के बीज कासीस और सैधानमक समान लेकर पीसकर छेप बना कर छेप करने से ग्रण का दारण (भेदन) होता है ॥ ६ ॥

हस्तिदन्तो जले पृष्टो पिन्दुमात्रं प्रलेपितः । अत्यन्तकठिने चापि दोषे पाचनभेदन ॥ ७ ॥

हरिददन्त छेप—हाथी के दाँत को बल के साथ पीस कर (जिस प्रकार चन्दन घिसा जाता है) एक पुन्द के प्रमाण से ग्रण पर छेप करने से अत्यन्त कठिन ग्रण शोध का भी पाचन (पाक) और भेदन दोनों क्रिया को करता है ॥ ७ ॥

यवगोधूमचूर्णं च सप्तीर दारणं पृथक् । हरिद्रामस्मचूर्णाभ्यां प्रलेपो दाहण पर ॥

अजविट्टारगृज्जक्ष प्रलेपो ग्रणदारण ॥ ८ ॥

यवादि दारणयोग—यव का चूर्ण अथवा गेरू का चूर्ण लेकर उसमें क्षार मिला कर छेप करने से ग्रण का दारण होता है (व्यवहार—यव, गहू दोनों पृथक् २ करना चाहिये) हरदी का मसम और चूना मिला कर छेप करने से ग्रण का दारण होता है । बकरी की विष्ठा, खारी मिट्टी का क्षार, खवग इनको मिलाकर छेप करने से ग्रण का दारण होता है ॥ ८ ॥

सतः प्रचालने काथं पटालीनिम्बपत्रजः । अविशुद्धे पिष्टुद्धे तु न्यमोधादित्वगुद्म ॥ ९ ॥

ग्रण प्रक्षालन विधि—ग्रण जब फूट जावे तब (शुद्ध करने के लिये) परबल के पत्ते और नीम के पत्ते के काथ से धोकर शुद्ध करे । जब शुद्ध हो जावे तब न्यमोधादिगण के त्वक् के काथ से ग्रण को धोवे ॥ ९ ॥

पद्ममूलीद्वय वाते न्यमोधादिश्च पैत्तिके । आरग्वधादिका योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ १० ॥

दोषानुसार धावन कपाय—दोनों पद्ममूल अर्थात् दशमूल के काथ से वातज शून को धोना चाहिये । न्यमोधादि गण की ओषधियों के काथ से पित्तज ग्रण और आरग्वधादि गण के काथ से कफज ग्रण को धोना चाहिये तथा इस काथ का प्रयोग सब क्रियाओं में करना चाहिये अथवा अन्य सब प्रकार के ग्रण को भी इसी आरग्वधादि गण के काथ से धोना चाहिये ॥ १० ॥

### श्लथ शोधनरोपणविधि ।

तिलसैन्धवयष्टवाह्निनिम्बपत्रनिशायुतै । त्रिष्टु-मधुयुतै पित्तैः प्रलेपो ग्रणशोधन ॥ ११ ॥

ग्रण शोधक छेप—तिल, सैधानमक जेठोमधु, नीम की पत्तियाँ, हरदी, निशोथ सम भाग लेकर पीस कर मधु मिला कर छेप बना कर ग्रण पर छेप करने से ग्रण का शोधन होता है ॥ ११ ॥

तिलकल्कं सलवणो द्वे हरिद्वे त्रिष्टुदधुतम् । मधुक निम्बपत्राणि छेप स्याद्ग्रणशोधनं ॥ १२ ॥

तिलादि कल्क—तिल का कल्क, सैधानमक, हरदी दाहहरदी, निशोथ घृत, मुलहठी, नीम की पत्तियाँ इन सबको पीस कर कल्क बनाकर ग्रण पर इसका छेप करने से ग्रण का शोधन होता है ॥ १२ ॥

निम्बकोलकपत्राणां छेप स्याद्ग्रणशोधन । निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना ग्रणशोधनः ॥ १३ ॥

निम्ब पत्र छेप—नीम के पत्ते और वैट के पत्ते दोनों को समान लेकर पीसकर अथवा नीम के पत्ते और समान तिल के बने कल्क के साथ मधु मिलाकर छेप करने से ग्रण का शोधन होता है ॥

निम्बुपत्र तिला दन्ती त्रिष्टुसैन्धवमाचिकम् । दुष्टग्रणप्रशमनो छेप शोधनरोपण ॥ १४ ॥

निम्ब पत्रादि छेप—नीम की पत्तियाँ, तिल, दन्ती मूल, निशोथ, सैधानमक समान लेकर पीस कर इसमें मधु मिलाकर छेप लगाने से दुष्ट ग्रण शमन होता है और ग्रण का शोधन और रोपण करता है ॥ १४ ॥

अमयात्रिष्टुताव तीलाह्णलीमधुसैन्धवै । सुपवीपत्रघत्तकममोटकुडेरिका ॥ १५ ॥

पृथगैते प्रलेपेन गम्भीरग्रणशोधनाः । निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्त सशाधनं स्मृतः ॥ १६ ॥

गम्भीर ग्रण का शोधन—हरों के चूर्ण या निशोथ के चूर्ण या दन्तीमूल के चूर्ण या करिभारी



के मूल के चूर्ण या काले भीरे के या पदूर के या छोटी बरिभार के या काशी गुल्मी अथवा बाजुरं तुलसी के पत्तों को पीसकर उसमें सेंधा नमक और मधु मिला कर इन प्रत्येक चीजों के श्यकर लेप करने से गम्भीर ज्वरों का शोथन होता है और नीम की पत्तियों को पीसकर उनमें मधु मिलाकर लेप करने से ज्वर का संशोथन होता है ॥ ५-६ ॥

एक वा सारिवामूल सर्वप्रणविशोधनम् ॥ ७ ॥

सारिवामूल लेप—केवल एक सारिवा की जड़ को ही पीसकर लेप करने से सब प्रकार के ज्वरों का शोथन होता है ॥ ७ ॥

न्यम्रोद्योदुम्बराशवापकदग्गप्लवधेतसा । करवीरार्ककटुकाकवायो रोपणे द्विसः ॥ ८ ॥

बट, गुल्म, पीपरी, कश्म, पाकड़, वेत, कनेर, मदार और पुटको सम भाग लेकर काप कर उस से ज्वर को धोने से ज्वर का रोपण होता है ॥ ८ ॥

ससदलदुग्धचक्रकं क्षामयति दुष्टमर्णं प्रलेपेन । मधुयुक्ता वारपुष्पा संप्रमणरोपणी कथिता ॥ ९ ॥

ससदल चक्रक—द्विप्रवण के दूध के चक्रक का लेप करने से दुष्ट मर्ण नष्ट होता है (ससदल दूध जम कर चक्रक के रूप में हो जाता है) । सप्रमोना के चूर्ण का मधु में मिलाकर लेप करने से सब प्रकार के ज्वर का रोपण होता है ॥ ९ ॥

पञ्चवक्त्रकलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः । धातकीलोम्रचूर्णैर्वा निःसारा पातित से ज्वराः ॥ १० ॥

पञ्चवक्त्रकादि योग—बट, पोपट, पाकड़, गुल्म और वेत की छाल के समान विरहित चूर्ण का लेप करने अर्थात् ज्वर पर इन चूर्ण को लगाने से अथवा इनके चूर्ण में सीन का चूर्ण (भस्म) भी मिलाकर लगाने से अथवा पाय के मूल और छींध को समान लेकर चूर्ण कर ज्वर पर लगाने से ज्वर निःसार होते हैं अर्थात् पूषाणि से रहित होकर ज्वर भच्छे हो जाते हैं ॥ १० ॥

निम्बपत्रपूतपौद्रदार्वात्मियुक्तसुता । र्थतिरिस्तथानां क्वकी वा क्षोषयेद्रोपयेद्युग्मम् ॥ ११ ॥

शोथनो तथा रोपणी वस्ति—नीम की पत्तियाँ, घृत, मधु, दारु हरदी और तुलसी समान लेकर पीसकर बची बना कर लगाने से अथवा तिल का चक्रक बनाकर मग पर लेप करने से ज्वर का शोथन और रोपण होता है ॥ ११ ॥

निम्बदान्याकजात्यर्कसपर्णारधमारुहाः । कृमिघ्ना मृप्रसयुक्ताः सेकलेपप्रधापयैः ॥ १२ ॥

कृमिनाशक निम्बादि धातक योग—नीम, अमलतास, चमेरी, मदार, पिठवन और कनेर सम भाग लेकर काप अथवा चक्रक बनाकर गोमूत्र मिलाकर ज्वर सिंचन करने, लेप करने और धोने से ज्वर के कृमि नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

करञ्जावितनिर्गुण्डीरसो हन्याद्द्वयजमिमीन् । उग्रनेनापया दद्यादलेपन कृमिनाशनम् ॥ १३ ॥

कृमिनाशक योग—करञ्ज, नीम और निर्गुण्डी (नेटुदी) इनके पत्तों का रस ज्वर पर लगाने से अथवा लहसुन को पीसकर लेप करने से ज्वर के कृमि नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

निम्बपत्रपयादिद्रुसर्पिलेषणसैर्घयैः । धूपन कृमिरक्षीर्णं ज्वरकण्टकजापदम् ॥ १४ ॥

निम्बादि धूप—नीम की पत्तियाँ, बच, हींग, धूप, जनक सत्पाराण और सेंधा नमक लेकर पीसकर धूप देने से यह धूप ज्वर के कृमि, कण्टक और पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

ये कलेवपाकमृत्तिकापचयन्तो ज्वरा महान्तं मरुताः सशोधाः ।

प्रपाप्ति से गुग्गुलुमिधितेन पीतेन साग्वि त्रिफलाजलेन ॥ १५ ॥

गुग्गुलु योग—द्वय गुग्गुलु को त्रिफला के ज्ञाप में मिलाकर पाय करने से ज्वर मुक्त पाक मुक्त, साब मुक्त (बहते हुए), गन्धकाल (दुर्गन्धित ज्वर) अथवा ज्वरों के हुए, पीड़ा करने वाले तथा शोथ मुक्त ये सभी मग नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

गुग्गुलुवटक—

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुवटकीकृतः । निषेवितो त्रिफलाया ज्वरशोथनरोपना ॥ १ ॥

गुग्गुलु वटक—त्रिफला समान मिश्रित कर चूर्ण १ एक भाग और दूध गुग्गुलु १ भाग लेकर पकड़ मर्दन कर बची बना कर सेवन करने से विषय नष्ट होता है और ज्वर का शोथन और रोपण करता है ॥ १ ॥

विद्युद्गुग्गुलु—

विद्युद्गुग्गुलुप्रफलाद्योपचूर्णं गुग्गुलुना समम् । सर्पिषा पटकान्कुर्वात्खावेद्वा हितभोजनम् ॥

दुष्टप्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनम् ॥ १ ॥

विद्युद्गुग्गुलु—वायमिरग, भौवला, हर्रा, बदेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच सम भाग लेकर चूर्ण कर उसके बराबर शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर मर्दन कर घृत के सहारे बटी बनाकर सेवन करने तथा पय्य से रहने से दुष्ट प्रण, अपचो, मेह, कुष्ठ और नाडी वृग् ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अमृताघो गुग्गुलु—

अमृतापटोलमूलप्रिकटुप्रिफलाहृमिग्नानाम् । कृत्या समभागचूर्णं सप्तशुभ्यो गुग्गुलुर्योग्यः ॥१॥

प्रतिघासरमेकैकां गुटिकां खादेत्तथाऽपपरिमाणाम् ।

जेतुं प्रणवातास्रं गुश्मोदरपाण्डुघोषादीन् ॥ २ ॥

अमृतादि गुग्गुलु—गुरुचि, परवर वी जड़, सोंठि मरिच, पीपरि, हर्रा, बदेड़ा, अंबरा और वायमिरग समभाग ले चूर्ण कर सब एकत्र कर सबों के समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर मर्दन कर घृत के सहारे बटी बनाने पर एक अक्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन सेवन करने से प्रण, वातरक्त, गुल्म, उदर, पाण्डु और शोथ आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

जात्यादिघृतम्—जातीपत्रपटोलनिग्यकटुकादार्यानिशासारिषा

मञ्जिष्ठाभयतुल्यसिक्वथमसुकैर्मक्ताह्वयीजापितः ।

सर्पि सिद्धमनेन सूक्ष्मयदना मर्माभिता स्त्राविणो

गम्भीरा सरजो प्रणाः सगतिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च ॥ १ ॥

जात्यादि घृत—चमेली, परवर तथा नीम इनके पत्ते कुटकी, दाहहरदी, हरदी, सारिषा, मञ्जीठ, हर्रा, सुतिया मोम, गुल्बटी, करज के बीज समभाग लेकर बस्क कर उसके चौगुना मूच्छित गोशत और घृत के चौगुना जल मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से सूक्ष्म मुख वाले मर्म स्थान में उत्पन्न निरन्तर क्षयित होने वाले गम्भीर, अप्यन्त पीड़ा करने वाले और गतिमान् प्रण ( जो नाड़ी आदि के द्वारा बदन वाले प्रण हैं ) ये सभी शुद्ध होते हैं और भर जाते हैं ॥ १ ॥ स्वर्जिकाघ घृतम्—स्वर्जिका च यषषार कम्पिषल च हरेणुका ।

टङ्गण श्वेतखदिर तुल्यं चूर्णं च गोघृतैः ॥ १ ॥

सर्षं समीश संचूर्ण्य मध्वेत्प्रहर दडम् । स्वर्जिकाघमिद सर्पिः सर्वप्रणहर परम् ॥

रोपणं कृमिकण्डून् सवर्णकण परम् ॥ २ ॥

स्वर्जिकादि घृत—सज्जी, जवाखार, कबीला, रेणुका, टङ्गण, श्वेत खैर, सुतिया और घृता समान ले एकत्र चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर गाय का घृत मिलाकर एक पहर तक द्रवता के साथ मर्दन कर लगाने से यह स्वर्जिकादि नामक घृत सब प्रकार के प्रणों को नष्ट करने में उत्तम है और यह वर्णों को रोपण करता है, कृमि (वृणकृमि) कण्डू को नष्ट करता है तथा स्वचा को सवर्ण करने में उत्तम है ॥ २ ॥

मनशिलादिलेप—

मनशिला समञ्जिष्ठा सचारा रजनीह्वयम् । प्रलेपः सपृतचौद्रखनिवशुद्धिकर स्मृतः ॥ १ ॥

मनशिलादि लेप—मैनसिल, मञ्जीठ, जवाखार, हरदी, दाहहरदी समान ले चूर्ण कर घृत और मधु के साथ मिलाकर लेप लगाने से स्वचा की शुद्धि करने वाला कहा गया है ॥ २ ॥

पारदादिमलहर—

रसगन्धकयोश्चूर्णं तसम मुर्धशुद्धकम् । सर्वतुल्यं तु कम्पिषलं किञ्चित्प्रत्यसमन्वितम् ॥ १ ॥

सर्षं सम्मेलयेद्दत्त्वा घृतं सर्षाचतुर्गुणम् । पिशुप्लुत प्रदातम्यं दुष्टप्रणविशोधनम् ।

माहीप्रहर चैव सर्वप्रणनिपूदनम् ॥ २ ॥

ये प्रणा न प्रशाम्यन्ति भेषजानां क्षातेन च । अनेन ते प्रशाम्यन्ति सर्पिषा स्वल्पकालतः ॥३॥

पारदादि मलहर—पारद, गन्धक एक २ भाग और दोनों के बराबर सुदीर्ग ( दो भाग ), सब के बराबर ( ४ भाग ) कबीला तथा किञ्चित् मात्र सुतिया मिलाकर मर्दन कर जितना हो उसके बराबर घृत मिलाकर पिशु ( रूई का फाहा ) में भरकर वृण पर रखने से दुष्ट वृण शुद्ध

होते हैं नाकी वृत्त तथा सब प्रकार के वृत्त मष्ट होते हैं । जो वृत्त सबको ओषधियों से मो दमन नदी होते हैं वे सभी रस घृत से अल्प समय में ही दमन हो जाते हैं । रसमें द्रव्या पारद गरुड को मर्दन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

द्वितीयपारदादिमलहर —

रसगणकसिन्दूरराजकम्पिण्डमुहुंकरम् । तृण्यथाविरकचूर्णं सर्वं घृतघृतगुणम् ॥ १ ॥

युक्तत्वा ममेक्ष्य पितुना मणे देय विज्ञानवा । सर्वयगप्रशमन घृतमेतन्न संशयः ॥ २ ॥  
दूसरा पारदादि मलहर—पारद, गन्धक, सिन्दूर, राज, कबीला, सुरासंग, द्रविया और और सब भाग लेकर चूर्णकर मिटना हो उसके चौगुना घृत मिला कर पित्तु में भर कर व्रण पर रखने से रस घृत से सब प्रकार के वृत्त अवश्य नष्ट होते हैं । (पारद गन्धक पहले मर्दन करना चाहिये) ॥

अथोरज आदिलेप—

अथोरजः सकासीसं त्रिफला कुसुमानि च । प्रलेपः कुरुते धाम्याः सद्य एव नवां श्वघम् ॥ १ ॥

अथोरजादि लेप—लोहमरु, कासीस, अवरा, बर्दा, बहेरा और दासहरदो के फूल समभाग से चूर्ण और मर्दन कर वृत्त पर की स्वचा पर लेप करने से स्वचा शीघ्र नवीन हो जाती है ॥ १ ॥

अथ सद्यो म्रणनिदानमाह ।

नानाधारासुखः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः । भयम्भि नानाकृतयो म्रणास्तारताप्रियाद्य मे ॥  
सद्यो वृण निगान—अनेक प्रकार के धार बाल तथा अनेक प्रकार के मुखों वाले शस्त्रों के अनेक स्थानों पर गिरने और लगने से अनेक आकारों वाले (भागतुक) वृत्त हो जाते हैं इनकी 'सद्योम्रण' कहते हैं ॥ १ ॥

तेषां बहविविधत्वमाह—

द्विभ्रमिन्न तथा विद्व घृत पिच्छितमेव च । घृष्टमाहुस्तथा पञ्च तेषां वषयामि लक्षणम् ॥ १ ॥  
दिन्न, भिन्न, विद्व, छत्र, पिच्छित और घृष्ट इस नाम के छ भेदबाले 'सद्योम्रण' होते हैं भिन्नके लक्षण कहते हैं ॥ २ ॥

वियक्षिद्युत्त ऋजुर्वाऽपि म्रणो यस्त्वबायवो भवेत् । गात्रस्य पाता सद्धि विक्ष्रमिन्पमिणीयते ॥  
द्विभ्र वृण के लक्षण—जो सद्योम्रण किसी शस्त्र से निरहता कटा हुआ हो भयना सीधा कटा हुआ हो और एम्बा अर्थात् अधिक कटा हुआ हो तथा हाथ पैर आदि शरीर के अंग कट कर गिर पड़े हों अथवा कट गये हों पर गिरे नहीं हों ऐसे को 'द्विभ्र वृण' कहते हैं ॥ १ ॥

दाक्षिण्युत्तेषुल्लङ्घाम्रिपान्निराद्यो हतः । यत्किञ्चिदप्रत्येत्तद्धि मिघलक्षणमुच्यते ॥ २ ॥  
त्रिभ्र वृण के लक्षण—जो म्रण शक्ति, कुत (मल्ल) बाण, शरणा के अममाण और सीध शर्यादि शस्त्रों से आहत होकर आमाशय आदि आशय स्थानों का वेद हुआ हो और उसमें से कुछ क्षाव होने लगे ( यह खाव स्थान भेद से कई प्रकार का होता है अर्थात् बर्तन में भेदन होने से वेद वा रक्त, पुरीवाशय में होने से पुरीवा आदि होता है उसे त्रिभ्र म्रण कहते हैं ॥ २ ॥

स्थानान्यामामिपकानां मूरयय रधिरस्य च । दृष्टुन्तुकः कुप्पुमम कोष्ठ इत्यमीधोयते १५०  
आशयों के वेद—आमाशय ( आम का स्थान ), अम्बाशय ( अम्बि का स्थान ), पश्चाशय ( आम के पके होने का स्थान ) मूत्राशय ( मूत्रा का स्थान अर्थात् बलि ), रक्षाशय ( रक्त का स्थान अर्थात् यह पुरीवाशय आदि ), वण्डुक ( यह पुरीवाशय अंतर्द्वियों के भीतर रहता है ), और पुत्रुत्त, ( यह किरुदा इत्येक नाम पार्श्व में रहता है ) ये शीघ्र अथवा आशय कहे जाते हैं ॥ तस्मिन्मिन्ने रक्तपूर्णे उवरो दाहश्च प्राप्यते । मूत्रमार्गगुदात्प्रेम्यो रक्तं प्रागाद्य वाप्युति ॥ १५१ ॥  
मूत्रपूर्णां कासरतृपाऽऽत्मानममलक्ष्येन्दु एव च । विष्णुव्यातसहस्रं रथं एतयोर्धिरथया ॥  
ओहगम्भियावमारस्य गात्र दीर्घम्परीय च । हृत्पृष्ठं पार्श्वयोश्चापि विनेयं चात्र मे शत्रु ॥ १५२ ॥

त्रिभ्र वृत्त के लक्षण—ए शस्त्रों ( शस्त्रों ) के भिन्न होने पर कोष्ठ रक्त से पूर्ण हो जाता है, बर और दाह होता है और मूत्रमार्ग ( शिन् ), पुत्रा, पुत्र तथा माक से रक्त निकलता है तथा मूत्रा, पश्चा, तथा, आम्बान, शीबन से अरवि और मरुत्त और अयो वायु व. अशरीर हो जाता है, स्पैर होता है तथा वेद काष्ठ हो जाते हैं, मुग ए छोटे के मध के उदाय मध और

शरीर से दुर्बल होती है और श्वस्य तथा पार्श्व देश में शूल होता है ये सब कोष्ठ के भिन्न होने के सामान्य लक्षण हैं । विशेष भागे कहते हैं ॥ ९-८ ॥

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिर दुर्दमस्यपि । आध्मानमतिमार्थं च शूलं च भृशदाहणम् ॥ ९ ॥

आमाशय के भेद—जब किसी शूल द्वारा आमाशय भिन्न हो जाये तो उसमें रक्त भर जाता है तब रक्त का वमन होता है, उदर में अत्यन्त आध्मान और अत्यन्त कठिन शूल होता है ॥ ९ ॥ पक्षाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च । अधकाये विशेषेण क्षीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

पक्षाशय के भेद—जब किसी शूल द्वारा पक्षाशय भिन्न हो जाता है और उससे उसमें रक्त भर जाता है तब पीड़ा होती है, शरीर मारी हो जाता है तथा विशेष करके शरीर के अधोभाग ( नाभि से नीचे ) में शीतलता होती है ॥ १० ॥

सूदमास्यशय्याभिदत्त यद्वा त्वाशय विना । उच्युद्विद्वन्निर्गतं वा तद्विद्वन्निर्दिशेत् ॥

विद्व म्रण के लक्षण—छद्म मुख वाले श्वस्य आदि से आशय को छोटकर दूसरा अंग यदि अभिदत्त हो जावे और ऊँचा हो जाये तथा उसमें से श्वस्य निकल गया हो अथवा नहीं निकल हो उस छिदे हुए सद्योग्र को विद्व कहते हैं ॥ ११ ॥

नातिच्छिन्न नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणांश्चितम् । विषम म्रणमग्रे यत्तत्पुत्रं तु विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

क्षत म्रण के लक्षण—जो सद्योग्र शलादि के द्वारा न अत्यन्त छिन्न हुआ हो न अत्यन्त भिन्न हुआ हो मर्युत दोनों लक्षणों से युक्त हो ऐसे शरीर के विषम म्रण को 'क्षतम्रण' कहते हैं ॥ प्रहारपीडानाम्भ्यां तु यद्यत्रे प्रयुक्तां गतम् । सारिथ तरिपिच्छित विधान्मज्जरकपरिप्लुतम् ॥

पिच्छित म्रण के लक्षण—जिस सद्योग्र में प्रहार और पीडन से अर्थात् मुद्गर आदि से छग कर अथवा कपाट आदि से दब कर अङ्ग अरिथ सहित चपटा हो जाता है और वह चिपटा हुआ स्थान मज्जा तथा रक्त से परिपूर्ण हो जाता है उसे 'पिच्छित' कहते हैं ॥ १३ ॥

घपणाद्यभिघाताद्वा यद्वा विगतत्वधम् । ऊपास्त्रान्विधत्त तच्च घृष्टमित्यभिधीयते ॥ १४ ॥

घृष्टम्रण के लक्षण—किसी रूक्ष वस्तु के पथन में अथवा आपात से जब किसी अंग की त्वचा छिल जाती है और उसमें से उष्णतायुक्त ( जलन ) पीड़ा होती है और स्राव होता है उस सद्योग्र को 'घृष्टम्रण' कहते हैं ॥ १४ ॥

श्याम सशोष पिटिकान्वितं च सुदुर्मुहुः शोणितवाहिन च ।

सृष्टु मुतं सुदुसुदुत्तल्पमांस म्रण सशय्य सरुज वदन्ति ॥ १५ ॥

श्वस्ययुक्त म्रण के लक्षण—जो सद्योग्र श्याम वर्ण का, शोथ तथा पिटिकाओं से युक्त हो, तथा बार २ उसमें से रक्त का स्राव हो, कीमल हो, सुदुर्गन्ध के समान ( जल के बूले के समान ) ऊपर उठा हुआ मांस हो और पीड़ा हो उस म्रण को 'सशय्य म्रण' कहते हैं ॥ १५ ॥

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भिरया च परिहृत्य वा । कोष्ठे प्रतिष्ठित शर्यं कुर्यादुक्तानुपम्वान् ॥

कोष्ठगत श्वस्य के लक्षण—जो श्वस्य त्वचा आदिषु ( रूक्ष त्वचा ) को पार कर तथा शिरा-रनायु आदिकों को भेदकर अथवा इन शिरा-आदिकों को छोड़ कर कोष्ठ में स्थित हो जाता है ( विनष्ट श्वस्य जिसे सुक्षत में कहा गया है ) वह श्वस्य विज्ञानीय अध्याय में कहे हुए ( अद्योप, आनाह, मूत्रपुरीषादि का मुख से बाहर निकलना आदि ) उपद्रवों को करता है ॥ १६ ॥

सश्रान्तलहित पाण्डु क्षीतपावकराननम् । शीतोच्छ्वास रक्तनेत्रमानन्द परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

असाध्य कोष्ठ भेद के लक्षण—जिस कोष्ठ भेद वाले रोगी के कोष्ठ में रक्त रह जावे अर्थात् बाहर नहीं निकले ( कोष्ठ भेद में रक्त मूत्र आदि से बाहर निकलता है यह पहले के लक्षणों में कह दिया गया है ) और उस रोगी के पौंख, हाथ और मूत्र पाण्डु वर्ण के और शीतल हो जावे तथा श्वास शीतल लेवे, नेत्र रक्त वर्ण के हो जावे और उसे अनाह होवे तो उसको त्याग देना चाहिये ॥ १७ ॥

अम मलाप पतनं प्रमोहो विचेष्टन ग्लानिरथोष्णता च ।

अस्त्राङ्गता मूश्चनमूर्धवावस्तीमा रुजो वातकृत्वाश्च सास्ता ॥ १८ ॥

मांसोदकाम रुधिरं च गण्डैस्तर्षेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ।

वृषार्थसंक्षेप्यपि विचित्रेषु सामान्यतो मर्मसु छिन्नसुक्म् ॥ १९ ॥

मांस, सिरा, स्नायु, भस्त्रि और सन्धि मर्म में क्षत होने के सामान्य लक्षण—अब इन पाँचो स्थानों में क्षत होता है तब रोगी को भ्रम, प्रलाप ( भक्त-भक्त बोलना ), भूमि पर गिर जाना, मोह होना, चेष्टा का विकृत होना, स्थानि, सप्यता, सिधिलता, मूर्च्छा, कर्षवद्य ( बकार ) और वात के कारण होने वाली दण्डापतानक एवं आक्षेपकादि तीव्र पीड़ाये होती है और भ्रम से मांस के धोमन के समान रक्त निकलना है और सब इन्द्रियाँ अपने कार्य में अक्षम रहती है ( असर्न रहती है ), इन दशाथ ( पाँच ) मर्म स्थानों में क्षत के ये सामान्य लक्षण कहे गये हैं ॥ १८-२१ ॥

सुरेन्द्रगोपप्रतिम प्रभूस रक्त स्रयेत्सत्तज्जड वायुः ।

करोति शोगान्विविधान्यधोक्कान् शिरासु विदास्वयया वतासु ॥ २० ॥

शिराविद्व के लक्षण—मर्म स्थानों को छोट कर भय स्थान की सिरायें जब किसी क्षत ( वाण ) आदि से छिद्र हो जाती हैं अथवा सङ्गादि से क्षत हो जाती हैं तब उनमें से शीतलरूपी के वर्ण का ( शाल मरुमल की भाँति वर्ण का ) अधिक रक्त निकलता है, जिससे वायु कुन्त होकर अनेक प्रकार के ( आक्षेपक, शिरोविकारादि ) रोगों को करता है ॥ २० ॥

कौब्जं शरीरावयवावसादः क्रियास्वपाक्तिसुमुला रुजश्च ।

शिरासुमणो रोहिति यस्य चापि स स्नायुविद्वं पुरुष प्यवस्येत् ॥ २१ ॥

स्नायुविद्व के लक्षण—जिस मनुष्य को शखादि के लगने पर उसको पीड़ा से कुम्भता और शरीर के अवयवों में अवसन्नता ( सिधिलता ) हो जावे, क्रिया करने की ( अग सञ्चालनादि की ) शक्ति नहीं रहे, अत्यन्त पीड़ा और बहुत समय के पश्चात् जन का रोपण हो ( मग पूरा हो ) उसको स्नायुविद्व ( स्नायु में क्षत ) हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ २१ ॥

दोफाभिष्टुद्विसुमुला रुजश्च घलक्षय पर्वसु मेदशापी ।

सतेषु सन्धिष्वचलाघलेषु स्यात्सर्पकर्मपरमद्य लिङ्गम् ॥ २२ ॥

सन्धि विद्व के लक्षण—अब चर ( हस्तपादादि की ) अथवा अचल सन्धियों में क्षत हो जाता है ( शाखादि का आघात हो जाता है ) तब उसमें शीघ्र बढ़ जाता है अत्यन्त पीड़ा, बल का नाश, जोड़ों पर जोड़ने के समान पीड़ा तथा शीघ्र होता है और सभी कर्मों में ( सन्धि के कार्यों में ) असमर्थता होती है ॥ २२ ॥

घोरा रुजो यस्य निद्रादिषु सर्वास्वपस्यासु न चैति श्वाभित्म ।

भिपग्निष्वभिह्वितार्थसुयस्तमस्त्रिविद्व मनुजं प्यवस्येत् ॥ २३ ॥

भस्त्रिविद्व के लक्षण—जिस क्षण काले मनुष्य को दिन-रात कठिन पीड़ा हो, तथा सभी अवस्थाओं ( सोने बैठने आदि ) में शान्ति नहीं मिले अर्थात् किसी समय पीड़ा से शांति नहीं मिले तो उसको विद्वान् ( घत्रघ ) त्रिभ्यम्क भस्त्रिविद्व आने ॥ २३ ॥

ययास्वमेतानि विभावयेष्व लिङ्गानि ममस्वभित्तादितानि ।

पाण्डुर्विषर्णश्च मुखं न चैति यो मांसमर्मण्यभित्तादितश्च ॥ २४ ॥

शिरादि मर्मविद्व के लक्षण—शिरा आदि मर्मों के विद्व हो जाने पर उन स्थानों के छानों के भी लक्षण पहले कहे हैं वे सभी लक्षण उसमें होते हैं और एक-एक लक्षण को शिराविद्व आदि के कहें वे भ्रम प्रलापादि सभी लक्षण शिरा आदि मर्मों के अतिरिक्त होने से होते हैं ।

मांस मर्मविद्व के लक्षण—मनुष्य के मांस मर्मों के विद्व होने पर उसका वर्ण पाण्डु वर्ण का अथवा विकृता वर्ण का हो जाता है और उसे मृष नहीं मिकता है ॥ २४ ॥

सर्माभित्तं घर्णे प्राप्य वायुर्पुः सर्वदेहगः । शरीरायामयेहेहं मगायामो तु सं स्प्रेत् ॥ २५ ॥

मगायाम की असाप्यता—सर्वदेह में संवरण करने वाला भी वायु है वर मर्म में हुए मग में मांस होकर शीघ्र ही शरीर को आयाम मुक्त कर देता है ( रोग देता है ) इसे 'मगायाम' कहते हैं ॥ २५ ॥

विसर्पः पचघातश्च शिरारक्तमोऽपतानकः । मोहोभ्रातमनहजा ज्वरगुण्णाहमुग्धाः ॥ २६ ॥

कासरवृद्धितीमारो हिक्का खत्ता सषेपयुग । शोहजोपद्रवाः शोका घनिवा मन्धिगर्भः ॥ २७ ॥

जगो के उपद्रव—विसर्प, पचघात, शिरारक्तम, अतानक, मोह, उष्माद, मग में पीड़ा, अत,

तृषा, हनुमह, कास, वमन, भ्रतोत्तर, दिक्का, श्वास, वेपथु (कम्पन) ये सोलह ग्रण रोग बालों के (ग्रण रोग के) उपद्रव होते हैं ऐसा ग्रण विशेषणों ने कहा है ॥ २६-२७ ॥

**अथ सद्योग्रणचिकित्सा ।**

सुवृष्णाऽऽगन्तुग्रणं वैद्यो घृतशौद्रसमन्विताम् । शीतां क्रियां चरेदाशु रक्तपित्तोष्मनाशिनीम् ॥

सद्योग्रण चिकित्सा—वैद्य आगन्तुक ग्रण जाग कर शीघ्र रक्त-पित्त और ऊष्मा को नष्ट करने वाली घृत तथा मधु मिलित शीतल क्रिया को करे ॥ १ ॥

क्रुद्धे सद्यो ग्रणे युज्ययादूर्ध्वं चाऽधश्च शोषनम् ।

लह्नं च बल शार्या भोजन चास्त्रमोक्षणम् ॥ २ ॥

क्रुद्ध सद्योग्रण चिकित्सा—सद्योग्रण अत्यन्त क्रुद्ध (अत्यन्त बड़ा क्रुद्ध) हो तो उसमें ऊर्ध्वशोषन और अधशोषन (वमन-विरेचन) पहले कराना चाहिये, बल के अनुसार लह्नन और भोजन तथा रसमोक्षण भी करना चाहिये ॥ २ ॥

घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः । तयोरल्पं स्रवप्यस्त पाकस्तेनाऽऽशु जायते ॥ ३ ॥

घृष्ट और विदलित ग्रण चिकित्सा—जिसे हुए सद्योग्रण में विदलित (पिच्छित) सद्योग्रण में उपयुक्त (शोषनादि) विधि उत्तम है क्योंकि इसमें से रक्त अल्प निकलता है जिससे शीघ्र ही ग्रण का पाक हो जाता है । शीघ्र पाक होने के कारण शोषनादि कर्म लाभदायक हैं ॥ ३ ॥

द्विन्ने भिन्ने तथा विद्वे घृष्टे चासृगतिस्रयोः । रक्तघृयात्तत्र ह्यः करोति पयनो मृदाम् ॥ ४ ॥

स्नेहपानपरीषेकलेपस्येदोपनाहनम् । कुर्वाति स्नेहयस्ति च मारुतघ्नौपधैः श्रुतैः ॥ ५ ॥

द्विधादि ग्रण चिकित्सा—द्विन्न, भिन्न, विद्ध तथा क्षण में रक्त का अधिक स्राव होता है जिससे रक्त के नष्ट होने के कारण वायु कुपित होकर अत्यन्त कठिन पीड़ा करती है इसलिये इन ग्रणों में स्नेहपान परिषेक (ओषधियों के बल का सिंचन), लेप, स्वेद और उपनाह करना चाहिये तथा वातनाशक ओषधियों के काथ से स्नेह बलि देना चाहिये ॥ ४-५ ॥

**उक्तं च ग्रन्थात्तरे—**

द्विन्ने भिन्ने तथा विद्वे घृष्टे सद्यो भिषग्वर । पट्टसूत्रेण सस्वेद कुर्वाद् ग्रणाधिहारदः ॥ १ ॥

द्विन्न-भिन्न-विद्ध और क्षण इन सद्योग्रणों में ग्रण चिकित्सक वैद्य पट्टसूत्र वाले बख (रेद्यमी बख) से स्वेद करे तो लाभ होता है ॥ १ ॥

सुदुसुदुर्बुधा बुधैर्न म प्राप्नोति ग्रणी मरः । अथवा वीप्यलवणपोष्ट्रक्या स्वेदयेन्सुहु ॥ २ ॥

बार २ स्वेद इस प्रकार देवे कि रोगी को यह नहीं होने पावे अथवा जवारन और नमक को पीटली बनाकर उससे बार २ स्वेद देवे । इस प्रकार करने से इन (द्विन्नादि) ग्रणों में लाभ होता है ॥ २ ॥

सततया सतलोहपात्रसयोगतः क्रमात् । दुष्ट रक्तं स्थित चापि शृङ्गयलाब्धादिभिर्हरेत् ॥ ३ ॥

इन पीटलियों (पट्टसूत्र अथवा अमवायन नमक आदि की पीटलियों) को तपे हुए लोहे के पात्र पर तथा फर सेक करना चाहिये और दूषित स्थिररक्त को सिंगी अथवा तुन्नी के द्वारा निकलवा देना चाहिये ॥ ३ ॥

सद्यः सद्योग्रणं वैद्यः समूलं परिषेचयेत् । यष्टीमधुकमिश्रेण नात्तिसोत्तेन सर्पिणा ॥ ४ ॥

सद्यः सद्योग्रण शूलयुक्त ग्रण चिकित्सा—शीघ्र ही कटे हुए और पीड़ा वाले ग्रण में खेठी मधु मिले हुए घृत से जो अत्यन्त शीतल नहीं हुआ हो उससे सिंचन करना चाहिये ॥ ४ ॥

कषायमधुराः शीता क्रियाः सर्वास्तु योजयेत् । सद्योग्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ५ ॥

सामान्य विधि—सद्यो ग्रणों में कषाय रस और मधुर रस वाली ओषधियों से युक्त सप्त प्रकार की शीतल चिकित्सा (क्रिया) सात दिन तक करनी चाहिये पश्चात् पूर्वक कथित (ग्रण चिकित्सा में कथित) क्रियायें करनी चाहिये अर्थात् सद्यो ग्रण में सात दिन के पश्चात् ग्रण रोग में कही हुई सभी सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये, सात दिन तक ही शीत क्रिया करनी चाहिये ॥ ५ ॥

चिकित्सितं तु सत्सर्वं सामान्यग्रणनाशनम् । आमाशयस्ये रुचिरे वमनं पथ्यमुपचये ॥

पकाशयस्ये धेय च विरेचनमसशयम् ॥ १ ॥

आमाशय और पकाशय के क्षय में चिकित्सा—आमाशय में क्षय होकर बधिर से उसके भर जाने पर बमन करना पद्य कहा गया है और बधिर पकाशय में क्षय होकर बधिर भर गया हो तो निःसन्देश विरेचन देना चाहिये ॥ ६ ॥

वशत्वगादिकाय—

कायो वशात्वगोरण्डध्वंशरमभिवाहृत । द्विद्वुसेन्धधसंयुक्त-कोष्ठस्थ रागवेदपृक् ॥ १ ॥

वशत्वगादि काय—बाँस की छाल, परण्ट की जड़, गोलरुस और पाषाण भेद ( परवर पुर ) सम भाग लेकर काय कर उसमें शुद्ध हींग और सैधा नमक के समान मिलित चूर्ण का प्रयोग देकर पान करने से कोष्ठ में क्षय होकर स्थित जो रक्त है वह गिर जाता है अर्थात् वाह्य निकल जाता है ॥ २ ॥

यवादि—

यवकोलकुलखानां निस्नेहेन रसेन च । मुञ्जीतानं यवागू वा विपेसैघपसयुताम् ॥ १ ॥

यवादि योग—जी, नैर तथा कुलवी इनके रस बना कर विना र्नेह के ( पृथारि विना मिलाये ) अन्न के साथ भक्षण करने से अथवा यवागू में सैधा नमक मिलाकर पान करने से कोष्ठ के रक्त निकल जाते हैं ॥ २ ॥

गौराघं पृथग्—

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मयुकमेव च । मपौण्डरीक हीयेरं मरा मुस्तं च चम्बुनम् ॥ १ ॥  
जातीनिम्बपटोल च करज कटुरोहिणी । मपूरिद्ध मधुकं च महामेधा लघ्वेव च ॥ २ ॥  
पद्मपत्रकलसीयेन पूतप्रस्यं विपाचयेत् । पशुपौरादिकं सर्षि-सर्वमगणितोद्यनम् ॥ ३ ॥  
आगन्तुकाश्च सहजा मुषितोत्पाद्य ये मगाः । भासीमगध विपमो नादायेत्तान् प संशय ॥ ४ ॥

गौराघं पृथग्—श्वेत ससौ, हरदी, मनीठ, जटामांसी, मुल्हठी, पुण्डरिका काय, हाऊरेर, तगर, नागरमोया, चन्दन, चमेली, नीम, परवर इनके पत्रे, कर्ज, कुटकी, मोम, मजुभा और महामेधा सम भाग से कटक कर चूर्ण प्रस्य मूषिद्ध गोपत्र एक प्रस्य छेबे और पद्मपत्रकल ( बर, पीपल, पाकर, गुडर और वेत क छाल ) के काय की पत्र से चतुर्गुण लेकर पृथ सिद्ध कर लेवे । इस गौरादि पृथ नामक पत्र के बचनहार से सब प्रकार के मग ह्राह होते हैं और आगन्तुक, सहज, पुराने, नाड़ी और विपम प्रकार के ये सभी मग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

विषादिपृथग्—

विषासिन्धयमिशावष्टीनकाङ्गफलपत्रलघ्वैः । पटोलमालतीनिगवपत्रैर्बर्ण्यं गृतं पूतम् ॥ १ ॥

विषादि पृथग्—कुटकी, मोम, हरदी, जेठी मधु और करज के फल तथा पल्पत्र ( शोमन पत्र ) सम भाग लेकर कटक कर उसके चतुर्गुण गोपत्र और पत्र से चतुर्गुण पदोत्पन्न, माकली ( चमेली ) पत्र और निम्बपत्र के बचाव को मिलाकर पृथ सिद्ध कर छगाने से बर्ण कारक होता है अर्थात् स्वभा पर लगाने से रक्ता या शिथिल बन नष्ट होकर ठोस हो जाता है ॥ २ ॥

आवापितैकम्—

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालरय पत्रवाः । सिन्धुकं मयुकं कुष्ठं द्वे मित्रे कटुरोहिणी ॥ १ ॥  
मञ्जिष्ठा पत्रकं छोद्यममया नीलमुषलम् । ह्रायकं सारिवा वीजं नक्तमालरय च विपेत् ॥ २ ॥  
पृथानि समभागानि विष्ठा सैलं विपाचयेत् । विषागगुणपत्री ह्योरेपु च सक्तपुतु ॥ ३ ॥  
कम्बूविषर्षीगोषु काटक्वेषु सर्वथा । सद्यं वाजमहारेषु दग्धविद्वजतपु च ॥ ४ ॥  
नक्षद्वस्तचते वेदे दुष्टमांसावघषणे । अक्षगार्धमिदं गैलं दिप्तं क्षोषमापणम् ॥ ५ ॥

आवापि टैकम्—चमेली, मोम, परवर और बट करज के बच, मोम, मुल्हठी, कुट, हरदी, दावहरदी, कुटकी, मनीठ, पटुमकाद, लोप, हरी, नीबोत्प, तुमिवा, सारिवा और करज के बीज सम भाग से कटक कर उसके चतुर्गुण मूषिद्ध ठोस का टैक और तीस से चतुर्गुण पत्र मिलाकर टैक पका कर लगाने से विषत्र मग भी क्षयित, रपोर ( फोड़ ), कम्बू, कम्बू विषर्ष, सब प्रकार के बीजा आदि को के काटी, हापनहार से कट जाने का से बल जमे, शिथिल तथा क्षय मन, मग तथा बौध से क्षय हो जाने, दुग्ध मग के बर्ण होने से काय बनाने से तथा बट टैक मग का क्षीवन और रोग भी क्षय है ॥ १-५ ॥

विपरीतमस्त्रतेलं चक्रत्ताद—

सिन्दूरकुण्डविषद्विहृत्सुरसोनचिद्रषाणाङ्घ्रिलाङ्गलिककफकपिपफतेलम् ।  
 प्रासावमण्डनयुतश्च सतुरथफेनः किलघ्नघ्नप्रशमने विपरीतमस्त्रः ॥ १ ॥  
 खड्गाभिघातगुदगण्डमहोपवक्षनाढीघ्नघ्नविघ्नचिकित्सुकुण्डपामाः ।  
 प्तासिद्धिं विपरीतकमण्डलनाम तलं यथेष्टशयमासमभोजनस्य ॥ २ ॥

विपरीत मस्त्र तेल—सिन्दूर ( जो स्त्रियां लगाती है ) कुठ, विष ( गुद मीठा तेलिया ), ईंग, एहसुन, चित्त की जड़, सरसोंका और करिभारी तथा हरताल, शुद्ध तुतिया, शुद्ध और समुद्रपेन समभाग ले करक बनाकर उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर लेवे, इस तेल का नाम 'विपरीत मस्त्र तेल' है । इससे बछेद युक्त (आर्द्र वा पूष देने वाले) घ्न घमन होते हैं और इस तेल के व्यवहार से तलवार के आघात के घ्न, अत्यन्त गुदगण्ड ( गल गण्ड ) महा उपदश, नाड़ीघ्न, घ्नविघ्निका, कुष्ठ, पामा इन सब रोगों को यह तेल नष्ट करता है । इसके व्यवहार के समय सोना, बैठना और भोजन आदि शिथिल करना चाहिये । ( व्यवहार में इस योग में तेल ससों का लिया जाता है और पाठ में हरताल, तुतिया और समुद्र फेन ये पाठान्तर में नहीं हैं ) ॥ १-२ ॥

दूर्वादितैलम्—

दूर्वास्त्रससिद्ध तैलं कम्पिस्त्रकेन वा । दूर्वास्त्रिघ्नश्च कफकेन प्रधानं घ्नघ्नोपणम् ॥ १ ॥

दूर्वादि तेल—कबीला जयबा दाहहरदी की खचा का फलक और करक के चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल, तथा तेल से चौगुना दूर्वा पास का स्त्रस मिलाकर तेल सिद्ध कर व्यवहार में लाने से घ्न की रोपण करने में यह प्रधान है ॥ २ ॥

सप्तविंशतिको गुग्गुलु—

त्रिकटुत्रिकलामुस्ताविडह्नामृतचिप्रकम् । पटोल पिप्पलीमूल ह्युपा सुरदार च ॥ १ ॥  
 तुम्बरु गुग्गुलु चर्म्य विशाला रजनीद्वयम् । विटं सौवर्चलं चारं सैघवं गजविप्पली ॥ २ ॥  
 पायन्येतानि सर्वाणि सायवृद्धिगुणगुग्गुलु । कोलप्रमाणां घटिकां भक्षयेन्मधुना सद् ॥ ३ ॥  
 कास श्वासं तथा शोफकक्षांसि च भगन्द्वरम् । हृष्टूल पार्श्वशूल च कुक्षियस्तिगुदे रजम् ॥  
 अशमरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्धवृद्धिं तथा कृमीन् । चिरज्वरोपसृष्टानां क्षतोपहतघेतसाम् ॥ ५ ॥  
 आनाहं च तयोन्मादं कुष्ठान्मद्योवराणि च । भाडीकुष्ठघ्नान्सर्वान्प्रमेहा रलीपदं तथा ॥ ६ ॥  
 सप्तविंशतिको नाम गुग्गुलु प्रथितो महान् । धन्वतरिकृतो ह्येव सर्वरोगभिपूदनः ॥ ७ ॥

सप्तविंशति गुग्गुलु—सोठि, मरिच, पीपरी, अंबरा, इर्रा, बहेड़ा, नागरमोषा, बायभिरग, गुरुचि चिच की जड़, परवर के पत्ते, पिपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, तेजबल के फल ( तुम्बरु ), पुहकरमूल, चम्प, माहरि, हरदी, दाहहरदी, विडनमक, सोंघरनमक यवाखार, सेंधानमक और गजपीपरी, प्रत्येक एक २ भाग ले चूर्ण कर उसके दूना शुद्धगुग्गुलु मिला कूट कर एक कोल ( ३ कर्प ) के प्रमाण की बटी बना मधु के साथ भक्षण करने से कास, श्वास, शोष, अर्श, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल और गुण्डशूल, अशमरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्धवृद्धि और कुमि इनको नष्ट करता है तथा पुराने ज्वर से पीड़ित और क्षत से पीड़ित रोगियों के लिये हितकर है और आनाह, उन्माद, कुष्ठरोग, आठी प्रकार के उदररोग, नाड़ीघ्न, दुष्टघ्न और सभी प्रकार के घ्न, प्रमेह, श्लीषद इन सब रोगों को यह सप्तविंशति नाम का गुग्गुलु नष्ट करता है । सब रोगों को नष्ट करने वाला इसको धन्वन्तरि महाराज ने बनाया था ॥ १-७ ॥

अपथ्यम्—घ्ने श्वयथुरायामासस च रागश्च जागरात् ।

तौ च ह्यच दियास्वापाप्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ १ ॥

अम्ल दधि च शार्कं च मांसमानूपचाग्निम् । क्षीरं गुरुणि चाघ्नानि घ्नी च परिवर्जयेत् ॥

सद्योग में अपथ्य—घ्नरोग में परिश्रम करने से शोथ हो जाता है इसलिये परिश्रम नहीं करना चाहिये और रात में आगने से घ्न में शोथ तथा राग अर्थात् पाक के लक्षण हो जाते हैं । इसलिये रात्रिमागरण भी घ्न के रोग को नहीं करना चाहिये, घ्नरोग में दिन में सोने से शोथ, रोग और पीडा होती है इसलिये दिनमें नहीं सोना चाहिये, तथा घ्नरोग में मैथुन करने से शोथ, राग, पीडा और मृत्यु भी हो जाती है इसलिये मैथुन नहीं करना चाहिये, और अम्बरस, दही,



आमादि शुग्गुल—बन्धन की छाल, इरी, बहेड़ा, अंबला, मोठि, मरिच, पीपलि इत्यादि सन्तान शुद्ध शुग्गुल मिलाकर नर्दन कर सेवन करने से भ्रम का सन्धान होता है ॥ १ ॥

गोधूमप्रयोग—

ईषद्विष्वग्गोधूमधूर्णं पीत समाशिकम् । कटिसन्धियु भग्नेषु भग्नेष्वस्थिषु पूजितम् ॥ १ ॥

अविदाहिरिरोधैश्च पिष्टकै समुपाचरेत् ॥ २ ॥

गोधूम प्रयोग—थोड़ा जले आधा भूने गेहूँ का चूर्ण कर मधु के अनुपात से पान करने से कटिसन्धि का भ्रम और अरियमन्न ( अरिय का टेढ़ा होना ) इनमें लाभ करता है ॥ १-२ ॥

मांस मांसरस चौरं सर्विर्धूप च मुद्गजम् । घृष्टण चाश्रपान च सन्धिभग्नाय दापयेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—अविदाही अन्न ( जिसके सेवन से दाह नहीं हो ), पिठ्ठी आदि, मांस तथा मांस रस, दूध, घृत और मूत्र का जूम तथा घृष्टण अन्न और पेयादि सन्धिभग्ना में देना चाहिये अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ ३ ॥

छवण कटुक चारं साम्ल मैथुनमातपम् । श्यायाम च न सेवन्त भानो रुक्षाश्रमेय च ॥ ४ ॥

परन्तु नमक, कडुरस पदार्थ, दारद्रव्य, अम्लरस वाले द्रव्य, मैथुन, धूप सेवा, श्यायाम और रुखा अन्न नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

याथानां सख्यानां च भगनाभ्यास्तु भवन्ति वै ।

समीचीनानि शूद्रानां भक्तानां न विनोपतः ॥ ५ ॥

बालकों के भ्रम का शीघ्र सन्धान होने पर बालक तथा तरुण मनुष्यों का भ्रम शीघ्र सन्धान होता है अर्थात् नवीन रक्त का प्रसाद रहने से शीघ्र जुट जाता है, परन्तु शूद्रों का भ्रम विशेष कर नहीं जुटता है अथवा शीघ्र नहीं जुटता है ॥ ५ ॥

अथ नाडीवर्णनिदानम् ।

यः क्षोफमाममतिपक्वमुपेक्षेऽज्ञो यो वा द्रव्य प्रतुरप्यमसापुवृष ।

अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविद्यार्थं तस्य स्थानानि पूर्वविदितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥

नाडी मग की सम्पत्ति—जो मग ( मूर्ख ) रोगी अथवा वेध पके हुए शोष की ( मग की ) आम समझ कर उसकी उपेक्षा करता है अर्थात् पूय निरमात्क क्रिया नहीं करता है अथवा जो अत्यन्त पूय वाले मग की उपेक्षा करता है ( शोषादि काम नहीं करता है ) और जो रोगी असाधुवृष्ट है ( अहित आहार-विहार करने वाला है ) उसका वह अक्व पूय पूर्वविदित स्थानों ( स्वभा, मांस, शिरा, रसायु, सन्धि, अरिय, कोष्ठ और मर्म ) को विरोध कर शीघ्र प्रवेश करता है ॥ २ ॥

तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु गार्होष यद्ब्रूति तेन मगः तु नादा ॥ २ ॥

पूय की अल्पगति अथवा—नाडी मग की निकट—मग ( बल रोगों को विरोध करने वाले पूय के अतिमात्रा में गमन करने से गति ही जाती है ( मार्ग बन जाता है ) और उधने ( गति के कारण ) वह पूय नाडी की तरफ बढ़ता है इसलिए उसे नाडी कहना भाता है ॥ २ ॥

संश्यामाद—दोषविभिर्भवति सा पूयगोष्ठ्याय सम्पूर्द्धितैरपि च कायनिमित्ततांश्या ।

नाडी मग की संश्या—नाडी मग बाजारि दोषों के पृथक् २ दोष से ४ आश्रित से ४ और शब्द आदि के गढ़ जाने के कारण ( आत्तुष्ट ) ४ ४ ४ प्रकार काय निमित्त के होते हैं ( अशुभारि में द्रव्य भी माना गया है जिससे ८ भेद का नाडीमग होता है ) । २ ॥

वातिश्यामाद—सन्धानिष्ठापदपथ्यममुषी सशुला फनातुविजमपिक यवति यन्नायु ॥ १ ॥

वातिक नाडीमग—विषु नाडी मन में दर्शना ही, विषु शून्य हो मग अरिय केन से मुक्त ( शाग मुक्त ) रात्र और रात्र में अरिय रात्र हो इसे रात्र के शीत का जगना चाहिये ॥ २ ॥

पिचश्यामाद—

विज्ञानं तृणशरकरी अमाहादमुष्ठा निरतं तावद्विषुक्तमुष्णमहमु चापि ॥ १ ॥

पिचिक नाडी मग—विषु नाडी मग में अरिय तथा, अर, भ्रम, दाह, विषु मुक्त करता है वर्ण का कण रात्र तथा दिन में अरिय रात्र हो इसे पिच के शीत का जगना चाहिये ॥ २ ॥

रक्षेणामाह—

शैया कफाद् षट् घनार्जुनपिष्टिद्वारा स्तब्धा सकम्प्युरजा रजनीप्रवृद्धा ॥ १ ॥

कफज नाडी ग्रण—जिस नाडी ग्रण में अत्य ठ पना ( गाढ़ा ), द्रवत वर्ण वा तथा पिच्छल स्थाव होता है, रश्मिता, कण्टु और पीटा कम होती है और राग में वृद्धि होती है उसे कफ के कोप का जानना चाहिये ॥ १ ॥

दिग्निरोपणामाह—

दोषह्वयाभिहितलक्षणददाने ऽ तिष्ठो गतीर्भ्यतिकरप्रमवास्तु विद्यात् ॥ १ ॥

दिग्निरोपण नाडी ग्रण—जिस नाडी ग्रण में दो दोषों के मिलित लक्षण दिखाई दें उसे द्रन्द्रज और जिसमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण दिखाई दें उसे भिदोषज मानना चाहिये ॥ १ ॥

दाहज्वरशसनमूच्छुरनघक्त्रदोषा यस्या भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ।

सामादिरोपयनपित्तकफप्रकोपादौरी गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ २ ॥

सन्निपातज नाडी ग्रण—जिम नाडी ग्रण में दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुख शोष ( मुँह वा सूखना ) दो और वात, पित्त तथा कफ के नाडी ग्रण के लक्षण जो पहले कह चुके हैं वे सब प्रकट हों उसे सन्निपातज नाडीग्रण कहते हैं । वात, पित्त और कफ के ( सन्निपात के ) घोर प्रकोप वाला कालरात्रि के समान यह नाडीग्रण प्राणनाशक होता है ॥ २ ॥

शस्यनिमित्तजामाह—

नष्टं कषश्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु क्षण्यमधिरेण गतिं करोति ।

सा फेनिल मथितमुष्णमसृन्विमिथ घ्राय करोति सहसा सरजा च निरयम् ॥ १ ॥

शस्यज नाडी ग्रण—यदि कदाचित् त्वचा आदि पूर्वोक्त स्थानों में शस्य आदि ( सूखी कण्ट-कादि ) गड़ जावे और उसमें से निकल नहीं सके तो वह थोड़े ही दिनों में वा शीघ्र ही चलन शील होकर ( एक कर पूर्वकथित नियमानुसार त्वचा मासादि को विदीर्ण कर मीतर प्रवेश करते हुए गति ( मार्ग ) कर ) नाडीरूप ग्रण को उत्पन्न कर देता है जिसमें से फेनयुक्त शस्य के कारण उन्मथित रक्त संचार अधिक् होने के कारण उष्ण तथा रक्त मिथित स्त्राव को सहसा निकालता है और उसमें नित्य पीटा होती है ॥ १ ॥

नाडी त्रिदोषप्रमवा न सिष्येष्टेपाश्वस्तत्र एतु यत्नसाध्या ॥ २ ॥

नाडी ग्रण के साध्यासाध्यता—नाडीग्रण त्रिदोषज असाध्य होता है और शेष चार यत्न करने पर साध्य होते हैं ॥ २ ॥

अथ नाडीग्रणचिकित्सा ।

नाडीनां गतिमन्वीचय दाखेणोरपाटय कर्मवित् ।

सर्वं ग्रणग्रमं कुर्याच्छ्रोघनारोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडीग्रण चिकित्सा—क्रियाकुशल वेष नाडी ग्रण की अति प्रवाह को देखकर शस्त्र से चीर कर के सब प्रकार की शोथन-रोपण आदि क्रिया जो ग्रण रोग में कही गयी है वह करे ॥ कृदाहुर्वलभीरूणां नाडी मर्माधिता तु या । शारसूत्रेण सङ्घिन्नाद्य दास्रेण कदाचन ॥ २ ॥

कृशादि के लिये शस्त्र निषेध—कृश शिर्वल तथा मीर मनुष्यों के नाडी ग्रण तथा मर्म स्थान के आधित ग्रण हो उसे भी क्षार चूर्णादि से छेदन करना चाहिये । कभी शस्त्र से नहीं छेदना ( चीरना ) चाहिये ॥ २ ॥

नाडीं वातकृतां साधु पाटितां लेपयेद्विपक् । प्रत्यक्पुष्पोफलयुतेस्तिलै विट्टै प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥

वातज नाडी ग्रण चिकित्सा—वात से उत्पन्न नाडी ग्रण को मली भौंति चीरपाट कर उसमें अपामार्ग के बीच तथा तिल को पीसकर बनाये हुए लेप को लगाना चाहिये ॥ ३ ॥

पैत्तिकां तिलमश्रिष्ठानामदतीनिशाद्यैः ।

पित्तज नाडी ग्रण चिकित्सा—पित्त से उत्पन्न नाडी ग्रण को चीरकर उसमें तिल, मँजोठ, नागदन्ती ( नागदमन ) और हरदी को समान छे पीसकर लेप करना चाहिये ।

श्लैन्मिकां तिलयष्टपाद्मनिकुम्भारिष्टसम्भवै ॥ ४ ॥

कफम नाडी मग चिकित्सा—कफज नाडी मग को चीरकर उसमें तिल, जेठीमधु, दन्ती मूल नीम की छाल तथा मेधा नमक मधु ममान मिश्रकर लेप बनाकर लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥ शकलजां तिलमञ्जिष्ठामम्पाज्जैलं दधे सुहु ॥ शारवधनिदाकोलुचूणांज्यषीव्रसंयुता ॥

शक्यज नाडी मग चिकित्सा—शक्यज नाडी मग को चीर कर तुक कर ( शक्यारि मिठाक शोधन कर ) तिल, मञ्जिठ, मधु और घृत का लेप बनाकर बार २ लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥ सूत्रवर्तिप्रणे याज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ५ ॥

सामान्य चिकित्सा—भमलतास की जड़, हरदी और घेत का चूर्ण ( पाठान्तर में कोर के स्थान में बाला है जिससे निशोध का चूर्ण ग्रहण है ) समान लेकर घृत और मधु मिलाकर घृत में लपेट कर नाडी मग में देने से ( बली देने से ) शोधन होता है और दावादि का नाश होता है ॥ ५ ॥

जात्यकशम्याककरञ्जवृन्तीसिन्धुवमौषधलयावशुकै ।

वर्ति वृत्ता हन्यधिरेण नाडी स्तुवक्षीरपिष्टा सह सौघयेन ॥ ६ ॥

जात्यादि वर्ति—चाली के पत्त, मदार की जड़ या पत्ते, भमलतास की जड़, करंज, दन्ती मूल, सेंधा नमक, सोचर नमक, यवादार इनको समान ल घूना कर उसमें सेहुट का दूध और सेंधा नमक मिश्रकर बली बनाकर नाडी मग में देने से नीम नाडी मग नष्ट होने है ॥ ६ ॥ समूलपत्रां निगुण्टी पीडविवा रस हरेत् । तेन सिद्ध सम तैलं नाडीदुष्टप्रणापहम् ॥ ७ ॥

निगुण्टी तैल—निगुण्टी को मूल पत्र सहित कुचक कर रस निकाल कर उसमें समान भाग तिलका तेल मिलाकर विधिपूर्वक पका कर इन तैल के व्यवहार से नाडी मग और दुष्ट मग नष्ट होते हैं । ७ ॥

गुग्गुलुत्रिकटारस्योर्ष समानांशमाऽऽज्ययोजित । नाडीं दुष्टघण चापि जयेदपि भगन्दरम् ॥ ८ ॥

गुग्गुलु योग—शुद्ध गुग्गुलु, भाबला, हरी, बदरा, सोंठि, मरिच, पीपति, सम भाग लेकर मर्दन कर घृत मिलाकर सेवन करने से नाडी मग, दुष्ट मग और भगन्तर की भी नष्ट करता है । ( भगन्तर या गुग्गुलु विधि में विषट्ट त्रिफला चूर्ण के संगत गुग्गुलु देने का विधान है ) ॥ ८ ॥

अथ सूर्यप्रणुरोगाणां पथ्यापथ्यम् ।

धवपटिकगोभूमाः पुराणाः सितशालय । मसूरतुवसामुद्रवृषध मपुत्ररा ॥ १ ॥  
दिलेपी छात्रमण्डश्च जाग्रला गृगरविणः । पूते तैलं पटोले च यश्यां चाळमूलकम् ॥ २ ॥  
घातांक कारयेदल च कर्कटं तण्डुलीचकम् । पत्रपर्यं नरोः सैष्यं यथावर्षं यथामलम् ॥  
मणकोधे मणे सयो मणे नाडीमगेऽपि च ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—भी, साठी के शकल, गेहूँ पुराने इधेक कर्क के शालिग्राम का पथक, मण्ड, अरहर और मूंग का दूध, मधुसूर्यरा ( मधु से बनी चीनी ) शिलेपी, छाया ( धान की चीनी ) का मांस, जाग्रल मूंग तथा भांगर पथियों का मांस, घृत, तेल, परवर, बैंग का अममाण, घोटी, कोमल मूली, बैंगन, थरेली, बास कडोना पीराइ इन सब को मनुष्य अथवा और वन के मनुष्यात् मणकोध, मण, सद्योमण और ताटी मग में भी पथ्य में सेवन करे ॥ १-३ ॥

ऋषालपीतं लघुने ध्वषापमापासमुष्पैः परिभाषणं च ।

प्रियासमाओवनमट्टि निद्रां प्रजागारं चक्षयमणं मिशान्तम् ॥ ४ ॥

शोकं विरहासममनुषामं साम्बलताकानि च पञ्चवल्गि ।

आजाहृतं मांसमसास्यमार्गं विपत्तपार्सततमधमत्ता ॥ ५ ॥

अथ पदार्थ, अथ रस बाके पदार्थ शीतल द्रव्य, कर्कज, शैशुन पीपन, कषय रार से बोलना, शिवो का देखना ( काम इष्टि करना ), तिन में भीना, रात में जागना, अशुभ प्रसन्न करना, शीठ करना शक्य विरह भोजन करना, अशुभ बल पीना, पत्र छाया, पत्र बाके साग धाना जाग्रल च अशिरिल अथ ( आनूव री ) भीरो का मांस छाया, असास्य ( अशिरिल ) अन्न को भोजन करना ये सब कारवानी के उपाय स्वयं है ॥ ४-५ ॥

अथ भगन्दरनिदानम् ।

गुरवण छट्टे चेचे पारस्यः निरिहाऽर्धतिल । विद्या मण्डरो जैकः स च पञ्चविधो मगः ॥

भगन्दर का सामान्य रूप—गुदा के दो अंगुल के आसपास के स्थान में पिठिका होती है, यह पीटा करती है और जब फूटती है तब भगन्दर बहने जाती है । ( भग को दारण करने वाली यह पीठिका होती है इसलिये उसे 'भगन्दर' कहते हैं और यहाँ भग शब्द से गुदा बस्ति का भी ग्रहण होता है ) । यह भगन्दर पाँच प्रकार का होता ॥ १ ॥

संख्यामाह—

घातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः सस्त्रिपातत । उन्मार्गांगः पञ्चम स्यादेव पञ्चविधो मत ॥ २ ॥

भगन्दर की संख्या—बात, पित्त और कफ के पृथक् २ कोप से तीन और चौथा सस्त्रिपात से तथा पाँचवा उन्मार्गांग अर्थात् श्लेष्मा के लगने के कारण, इस प्रकार पाँच भेद का भगन्दर होता है ॥ २ ॥

तरय पूर्वरूपमाह—

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूस्त्रादय । भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यन्ति भगन्दरे ॥ ३ ॥

भगन्दर का पूर्वरूप—जब भगन्दर होने को होता है तब प्रथम कटी के कपाल में अर्थात् कटिदेश में जो कपालस्थि है उसमें छत्रं जुमान के समान पीड़ा गुदा में दाह, कण्डू और पीड़ा आदि होती है ॥ ३ ॥

वातिकमाह—कृपायरुचैरतिकोपितोऽनिलस्यपानदेशे विटिकां करोति सा ।

उपेक्षणापाकमुपैति दाह्य रूजा च भिषाऽऽरणफेनघाहिनी ॥ ४ ॥

सत्राऽऽगमो मूत्रपुरीषरेतसां धनैरनेकैः क्षतपोनक घट्टे ।

वातिक भगन्दर—कृपाय रस वाले और रूक्ष जो अत्यन्त वायु को कुपित करने वाले द्रव्य हैं उनके अतिसेवन से कुपित हुआ वायु गुण स्थान में पिठिका उत्पन्न कर देता है उसकी यदि उपेक्षा की जावे (सेकादि क्रिया कर दबाया नहीं जावे) तो वह पाक जाती है, अधिक पीड़ा करती है तथा जब यह फूटती है तब उसमें से रक्तवर्ण का फेन बरता है और मूत्र, पुरीष और गुक निकलने लगता है तथा अनेक म्रण (अनेक छिद्रोंवाले) हो जाते हैं । इस लक्षण वाले वातिक भगन्दर को 'क्षतपोनक' कहते हैं ॥ ४-४३ ॥

पित्तजमाह—प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्षां विटिकां गुदातिंशाम् ।

सदाहृषाकां हिमपूयघाहिनीं भगन्दरं सृष्ट्वाशिरोधरं घट्टे ॥ ५ ॥

पैत्तिक भगन्दर—पित्त प्रकोपक आहार बिहार से अतिकुपित हुआ पित्त गुदा में रक्तवर्ण की और पीटा देने वाली पिठिका उत्पन्न करना है, यह पिठिका शीघ्र पकने वाली होती है और जब फूटती है तब उसमें से उष्ण पूय बहता है । इस लक्षण वाले पैत्तिक भगन्दर को 'उष्णशिरोधर' या 'उष्णोष' कहते हैं । (इसकी पिठिका ऊँट की घ्राणा के आकार की होती है इसीसे उष्णोष कहते हैं) ॥ ५ ॥

श्लेष्मजमाह—

कण्डूयनो घनस्त्रावी कठिनो मन्दवेदन । श्वेतावभास कफज परिस्त्रावी भगन्दर ॥ ६ ॥

कफज भगन्दर—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ कफ गुदा में पिठिका उत्पन्न करता है यह पिठिका अधिक कण्डू तथा गाढा स्त्राव करने वाली, कठिन, मन्द (अल्प) पीटा करने वाली श्वेतवर्ण की होती है । इस लक्षण वाले कफज भगन्दर को 'परिस्त्रावी' भगन्दर कहते हैं ॥

सन्निपातजमाह—

यद्गुर्वर्णस्त्रावावाः पिठिका गोस्तनोपमा । शम्बूकायर्तवज्राही शम्बूकायतको मतः ॥ ७ ॥

सन्निपातज भगन्दर—जिस भगन्दर में अनेक दोषों से अनेक प्रकार के वर्ण पीटा तथा स्त्राव हो तथा पिठिका गाय के स्तन या द्राक्षा के समान हो और उसका छिद्र (मुख) नाडी रूप शम्बूक के मुख के समान आवर्तित (घुमा हुआ) हो उस तीनों दोषों वाले भगन्दर को 'शम्बूकायर्त' कहते हैं ॥ ७ ॥

उन्मार्गांगमाह—

चताप्रति पायुगता विषर्धते ह्यपेक्षणात्सा कृमिभिर्विदीर्यते ।

प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्धनैस्तदुन्मार्गि भगन्दरं घट्टे ॥ ८ ॥

क्षतम भगन्दर—उच्य आदि से क्षण हो जाने के कारण जब श्वरभेष में विविधा हीकर नाड़ी की गति से बढ़ जाती है और यदि उसकी वपेशा की जाती है तो उसमें कृमि उत्पन्न हीकर उस स्थान को ( फाटकर ) अनेक प्रकार के मार्ग ( अनेक छिद्रों या छेदों ) बना देते हैं उस को 'उन्मार्गि भगन्दर' कहते हैं ( कृमियों के बनाये हुए मार्ग से वात-मूत्र-पुरीषादि भी निरग्न करते हैं इसी कारण इसको उन्मार्गि भगन्दर कहते हैं ) ॥ ८ ॥

मसाध्यलक्षणमाह—

घोराः साधयितु दुःशा सर्वं पृथ भगन्दरा । सेष्यसाप्यस्त्रिदोषोत्पः क्षतजय विशेषत ॥९॥

भगन्दर की असाध्यता—सब प्रकार के भगन्दर बठिन और दुःसाध्य होते हैं, परन्तु उसमें जो विनाश करके त्रिदोषजन और क्षतज तो असाध्य ही हैं ॥ ९ ॥

घासमूत्रपुरीषाणि कृमय श्लकमेव च । भगन्दरा क्षयन्तस्तु मादायति समाशुरम् ॥ १० ॥

जिस भगन्दर में से वात, मूत्र, पुरीष, कृमि और श्लक आदि का सार दोना हो वह मरत रोगी को मार देता है ॥ १० ॥

अथ भगन्दरविकिरता ।

शुद्धपिटिकायामादौ कुर्यात्प्रकापसेचनं सतिमान् ।

जलसन्नाभिरसौ सा पाक न प्रयाति यथा ॥ १ ॥

भगन्दर-विकिरता—शुद्धा में जब पीड़िका होवे तब प्रथम शुद्धिमान् वैद्य एक मोक्षक करत देव और जल में बैठना आदि यत्न करे जिससे पाक आदि नहीं होने पाये ॥ १ ॥

अपानमागपिटिकां दृष्टेस्त्वणनाटाकया । अग्निप्रतप्तया पक्षाकुर्वावृत्तिमग्नियाम् ॥ २ ॥

पिटिकादाह विधि—शुद्धा में होने वाली पीड़िका को अग्नि में तपा कर सीने की सतह पर दाग देवे पश्चात् अग्निजन की विकिरता परे ॥ २ ॥

पिटिकानामपकानामपत्पर्णपृथकम् । कर्मकुर्वाद्द्विकान्ते भिन्नानो यत्पयो गित्या ॥ ३ ॥

अपक पिटिका-विकिरता—शुद्धा की पिटिका जब तक अपक हो तभी तक रोगी को अपत्पर्ण ( छद्दा ) तथा विकिरता करा कर अन्त में अन्य विकिरता करनी चाहिये । आगे भिन्न ( फुटी हुई ) को विकिरता करनी है ॥ ३ ॥

प्रासासां पाटाचारयद्विदाहादिकं क्रमम् । विधाय मणवत्कार्यं सधादां पयाजमम् ॥ ४ ॥

भिन्न या पक की विकिरता—शुद्धा की पीड़िका जब वह जाये तब उसका पाटन ( खोलना ) करना, शाह वा मरि से दाह करना आदि कर्म क्रम से कर मग के समाग दोषानुसार विकिरता करनी चाहिये ॥ ४ ॥

वटपत्रादिभ्यः —

वटपत्रादिभ्यः शृणुतेगुह्यघासपुनसयाः । सुनिष्ठा पिटिकावचये सप क्षमो भगन्दर ॥ १ ॥

वटपत्रादि सेव—वट के पत्रे, वट के गुर्गे, सोडि, गुग्गुलि और तुनाई का सामान केकर मगो मोक्षक योम कर शुद्धा की पीड़िका के गुग्गु पर केर कर जेना अन्तर में जलम है ॥ १ ॥

गन्धिराशिकलाक्रायो महिगीपतमसुतः । विद्वद्गुणसुतथ भगन्दरविनाशकः ॥ २ ॥

गन्धिराशिक सेव—सिर, अंबरा इरां बटला समान के काम करके जसमें भीत का गुग्गु और वादभिरण के गुर्गे का प्रथम केकर पार करी से अन्तर का नाश होता है ॥ २ ॥

त्रिकलाहमसंपुष्प विद्यालारियप्रसपनम् । भगन्दरं निहन्वाद्य दुष्टमन्दरं परम् ॥ ३ ॥

त्रिकलाह सेव—त्रिकला के त्रिपुर्वक वन दुर्ग रससुत ये त्रिकला को अतिर को विग कर सेव करने से भगन्दर शीन नष्ट होता है और दुष्टमग को नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

शुभोऽतिमूलाः तर्जो देपिया पाररक्तपुङ् । खेपो भगन्दरं हृष्याप्रातरतो तेजस्य स हन्व

शुभोऽतिमूला सेव—शुभ को तर्जि और केसुभा ( बीट ) दोनों को एक के एक दोस कर १ इ के एक से त्रिकला कर सेव करने से अथवा सुसुत की अथवा का देन ( जो पानक अथवा ही निहन्वा लदा हो ) जसमें से अन्तर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुष्ठं विपुटिला दुग्गी मागपी गैर्गर्षं मनु । बलवीपिकलासुदैर्दिनं स्वाम् प्रसोपनम् अथ

कुष्ठादि लेप—कूट, निशोध, तिल, दन्तीमूल, पीपरि, सेषामक, मधु, हरदी, अंबरा, हरां, बहेरा और तूतिया समभाग ले पीसकर लगाने से मग का रोपण होता है ॥ ५ ॥

तिलशिशुषागदन्तीमञ्जिष्ठाद्यैः ससैधवै । सशैत्रैश्च प्रलेपोऽयं भगन्दरकुलात्तृप्तः ॥ ६ ॥

तिलादि लेप—तिल, निशोध, गगदन्ती ( नागदवा ), गञ्जीठ, सैषानमक समान ले पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से भगन्दर को समूल नष्ट करता है ॥ ६ ॥

रसाञ्जनाहरित्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः । त्रिबृत्तेजोयती दन्ती कण्ठो नाडीप्रणापहः ॥ ७ ॥

रसाञ्जनादि कल्क—रसवत, हरदी, दारुहरदी, गञ्जीठ, नीम की कोमल पत्तिया, निशोध, तेजबल की छाल और दन्तीमूल सम भाग लेकर कल्क बनाकर लेप करने से नाड़ी मग नष्ट होते हैं ( भगन्दर भी इसमें गट होते हैं ) ॥ ७ ॥

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्र निशाद्यचाकुष्ठमगारभूमः ।

भगन्दरे नाड्युपदशयोश्च दुष्टमणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ८ ॥

तिलामयादि लेप—तिल, हरां, लोध, नीम की पत्तिया, हरदी, बच, कूट और गुहधूम ( होला भाग आदि जो परो में धूम से होते हैं ) सबको समभाग लेकर पीस कर लेप करने से भगन्दर नाड़ीमग, उपदंश, दुष्टमग इन सब में शोधन और रोपण करता है ॥ ८ ॥

नवकार्षिको गुग्गुलु—त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपल्लैकफर्षयोजिता गुटिका ।

कुष्ठभगन्दरनाडीदुष्टमगशोधिनी कथिता ॥ ९ ॥

नवकार्षिक गुग्गुलु—त्रिफला समान मिलित का चूर्ण तीन कर्ष, गुह गुग्गुलु ५ कर्ष और पीपरि का चूर्ण एक कर्ष से मर्दन कर बटी बनाकर सेवन करने से कुष्ठ, भगन्दर, नाड़ी मग, दुष्ट मग इन सब का शोधन करता है ॥

जम्बूकप्रकार—जम्बूकरुत्याऽऽमिष मुक्खा प्रकारैग्यञ्जनादिभिः ।

अजीर्णवर्जा मासेन मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ १ ॥

जम्बूक प्रकार—सिंघार का मांस व्यञ्जन आदि के प्रकार से या किसी प्रकार से भोजन कर अजीर्ण नहीं होने देवे अर्थात् इतना ही भोजन करे जितना मली भौति पच जावे नो ऐसा एक मास तक करने से भगन्दर से मुक्ति हो जागी है ( भगन्दर नष्ट हो जाता है ) ॥ १ ॥

सप्तविंशतिको गुग्गुलु—

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गामृतचित्रकम् । चव्यैले पिप्पलीमूल ह्युपा सुरदारु च ॥ १ ॥

तुम्बरं पुष्कर चव्य त्रिशला रजनीद्वयम् । यिष्टं सौवर्चल चारं सैधव गजपिप्पली ॥ २ ॥

यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलु । कोलप्रमाणगुटिकां मद्येन्मधुना सह ॥ ३ ॥

फासं श्वास तथा शोफमर्शासि च भगदरम् । हृष्टूल पार्श्वशूल च कुण्ठयस्तिगुदे रुजम् ॥

अश्वरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रघृद्धिं तथा कृमीन् । घिरङ्गरुपेक्षणा चयोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥

आनाह च सद्योग्माद सकृष्टान्युदराणि च । नाडीदुष्टमगान्तर्वाप्रमेह दलीपदं तथा ॥

सप्तविंशतिको ह्येष सर्वरोगनिपूदनः ॥ ६ ॥

सप्तविंशति गुग्गुलु—सोठि, मरिच, पीपरि, आंबला, हरां, बहेरा, नागरमोघा, वायभिरग गुरुचि, चित्त की जड़, चव्य, श्लायची पिपरामूल, हाजनेर देवदारु, तुम्बल ( तेज बल का फल ), पुष्कर मूल, चव्य, माहरि, हरदी, दारुहरदी, विडनमक, सौवर्चल नमक, यवाखार, सैषा नमक, गज पीपरि, समान लेकर चूर्ण जितना होवे उसके दुगुना शुद्ध गुग्गुलु मिला मर्दन कर एक २ कोल के ( ३ कर्ष ) प्रमाण की बटी बनाकर मधु के अनुपान से भक्षण करने से—फास श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदय का शूल, पार्श्वशूल, कुण्ठि-बस्ति और गुदा का शूल, अश्वरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रघृद्धि, कृमि आदि रोग नष्ट होते हैं और पुराने उबर से पीड़ित और क्षय रोग से पीड़ित मनुष्यों के लिये लाभदायक होता है तथा आनाह, अमाद कुष्ठ रोग उदर रोग, नाडी मग दुष्ट मग, सब प्रकार के प्रमेह और दलीपद रोग को पूर्व प्राय सभी रोगों को यह सप्तविंशति गुग्गुलु नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

करवीराद्यं तैलम्—

करवीरनिशादन्तीलाङ्गुलीलवणाग्निभिः । मातुल्लङ्कार्कपयसा पचेत्तैल भगदरे ॥ १ ॥

करबीरादि तैल—अनेर की जड़, हरदी, दन्ती, करिबारी, सेंधा मगक, चिच की जड़ बिजौरा नीबू, मदार का दूध इनको एक २ भाग ले पच कर चौगुना मूँधित तिल का तेल और तेल के चौगुना जल मिलाकर तेल पका कर लगाने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ २ ॥

विष्वन्दन तैलम्—

चित्रकाकीं त्रिपूरपाठे मलयूद्यमारकौ । सुधां यथां लाङ्गलिकां हरिताल सुवर्षिहाम् ॥ १ ॥  
ज्योतिष्मतीं च सहस्रय तैलं धीरो विपाचयत् । पतद्विष्वन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥  
शोधनं शोषणं चैव स्रवणकरणं तथा ॥ २ ॥

विष्वन्दन तैल—चिच की जड़, मदार की जड़, निशोय, पुररन पापी, कठ गूदर, कनेर की जड़, सेंद्रुट, बच, करिबारी, हरताल, सक्की और माण्कांगनी समभाग ले बरक करे, पुरीक रीति से चौगुना तिल का तेल और जल मिलाकर बुझिमाग तेल सिद्ध कर लेवे, यह 'विष्वन्दन' नाम का तेल भगन्दर में लगाया जादिये और इससे शोषण, शोषण और स्रवण (स्त्रवा) का सामान्य रूप होती है ॥ २-२ ॥

निशादितैलम्—

निशाकंक्षीरसिन्धुवितपुरालाङ्गलिवसकै । सिद्धमम्यजने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ १ ॥  
निशादि तैल—हरदी, मदार का दूध, सेंधानमक, चिच की जड़, गुग्गुल, करिबारी की कुटन समभाग ले बरक पूर्ववत् तिल का तेल और जल मिलाकर तेल सिद्ध कर अम्यजा (मर्दन) करने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ २ ॥

पष्पापच्यम्—

आमे संशोधनं छेपो लक्ष्मण रक्तमोक्षणम् । पक्के पुनः पाद्यविषिस्तथा चाराग्निहर्म च ॥ १ ॥  
भगन्दर की विद्विष्टा जब तक आम (मपक) रहे तब तक संशोधन बर्न विरेकानि, लप, लक्ष्मण (उपवास) तथा रक्तमोक्षण कराना जादिये और पक जाने पर अक्षविषि अर्थात् और कर आर घट से तथा अग्नि से (महाकाणि तथापर) अग्निना जादिये, जैसा कि पहले कहा जा चुका है ॥ २ ॥  
सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गली हसः । पटोल शिम्पुत्राम घसुरो घाटमूढकम् ॥ २ ॥  
तिलसर्वपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु । पतलाप्यर्थं मरैः सम्य यथाशेषं भगन्दरे ॥ ३ ॥  
पष्पापच्य—भगन्दर की सब अवस्थाओं में शान्तिपात का चावल, मूँग, बिछी आदि औरों का मांसरस, परबद, सहजिन, बेज का अम्रभाग भूर, कोमलमूली, तिल और रासों के तेल, तिक्त वर्गों की प्रायः सभी औषधियों का द्रव्य, घृत और मधु ये सब बीजानुसार भगन्दर रोग में मनुष्यों की मर्दन करना जादिये ॥ २-३ ॥

व्यापामं मैथुनं युद्धं वृषयानं गुहृणि च । संवत्सरं परिदोषायवृद्धमगो मरा ॥ ४ ॥

व्यापाम बर्न, मैथुन, युद्ध, वृषयान (पीठ आदि के पीठ की सक्ती), गुहृण्य, इन छहों मग के शोषण हो जाने के एक वर्ष बाद तक उपाय देना जादिये जब तक इन सभी-अग्नि अक्षया न हो, भगन्दर के मग के भर जाने के पश्चात् वर्षों तक इन द्रव्यों का व्यवहार नहीं करना जादिये ॥ ४ ॥

### अथोषधिशिदायाम् ।

पक्ष देगुण—दृग्गामिपाताअपद्वन्द्वपानासुपायनासुपयसिसेषमाह ।

पानिप्रदोषाच भयमितं गिरौ पद्मोपसृता विविधावपायाः ॥ १ ॥

वर्षा का हनु—हाथ के आंगुल से (हाथ से किसी प्रकार का आवरण हो जाने अथवा हनु मैथुन अग्नि में डिग्न हो जाया होने से), मद्य, भोजन आदि के लगने से, शिन्धु की अग्नी भोजन से अत्यन्त मज्जुन करने से और शोनिशेष से (अपराध, महापाप) शोनि के साथ एवं अत्यन्त मे गुहृण्य का व्यवहार आदि के साथ मैथुन करने से) तथा और अनेक प्रकार के अपराधों (घर, उष्य आदि ब्रह्म से निवृत्त होने से वा अज्ञानिणी अग्नि से मज्जुन) के कारण से शिन्धु से पांच प्रकार के अर्थात् वान, निजल, कच, आग्निशान्ध और एष्य इत्यादि होते हैं ॥ १ ॥

आपयिष्यत्सर्वान्—

तानाश्चेत्करानिः सार्वभौः सार्वभौर्व्यवशेषोपशुनाम् ।

वीलेषुदुष्टेदुषुभिः सार्वभौः विषेभ र्णमं विविधावपायाः ॥ २ ॥

सकण्डुरैः शोफायुतैर्मदङ्गि श्वरलेर्मणैः पावयुतैः कफेन ।

यातत्र उपदंश—जिस उपदंश में चर्ब गदान की भाँति और पादने के समान पीढा हो लिङ्ग में स्फुरण (पटकन) हो और जो रपोट (फोड़े) हों उनका वर्ण कृष्ण हो उसे यातत्र उपदंश जानना चाहिये, पिचज उपदंश जिस उपदंश में रपोटों का वर्ण पीला हो, बहुत बल्लेद वाले हों (साब अधिक हो) और दाद हो उसे पिचज उपदंश जानना चाहिये, रक्तज उपदंश जिस उपदंश में फोटी वा वर्ण मांस के सदृश लाल हो उसे रक्तज उपदंश जानना चाहिये (प्रधान्तर में फोड़ों का वर्ण कृष्ण और रक्तजो तथा पिचज के अन्य लक्षणों के समान लक्षण वाला रक्तज उपदंश का लक्षण बताया गया है) । कपज उपदंश—जिस उपदंश में फोड़ों में बण्डु अधिक हो, शोष हो, फोड़े बड़े हों, वर्ण उनका श्वेत हो और साव होता हो उसे कपज उपदंश जानना चाहिये ॥ २३ ॥

सग्निपातत्रमाह—

नानाविधप्लावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपवदाम् ॥ ३ ॥

साग्निपातिक उपदंश—जिस उपदंश में से अनेक प्रकार का साव होता हो (तीनों दोषों के लक्षणों से मिलित) और अनेक प्रकार की पीढा होती हो उसे त्रिदोषज उपदंश जानना चाहिये, यह असाध्य है ॥ ३ ॥

अथासाध्यत्वमाह—

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्ध मुष्कावशेषं परिवजयेच्च ।

सजातमात्रे ऽ करोति मूढ क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥ ४ ॥

कालेन शोफक्रिमिदाहपाकैः प्रदीणशिरनो त्रियसे स सेन ॥ ५ ॥

असाध्य उपदंश लक्षण—जिस उपदंश में लिङ्ग का मांस चीन-शीर्ण (गल गया, सड़ गया) हो अथवा कृमि उत्पन्न होकर खा गयी हों और जिसमें शिश्न गल कर नष्ट होकर केवल अण्डकोश ही शेष हो उसे त्याग देना चाहिये अर्थात् असाध्य है ॥

उपेक्षा वा फल—जो विषयी मनुष्य उत्पन्न होते ही मूर्खतावश इसकी क्रिया (चिकित्सा) नहीं करता है, कुछ समय के पश्चात् शोष, कृमि, दाद, पाक आदि से युक्त होकर उसका शिश्न सड़ जाता है और वह मर जाता है ॥ ४-५ ॥

एकस्थानत्वेनात्र लिङ्गार्शमाह—

अङ्कुरैरिय सघातैरुपर्युपरि सस्थितैः । क्रमेण जायते वर्तित्स्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ १ ॥

अब स्थान एक होने के कारण अर्थात् जिस स्थान (लिङ्ग) पर उपदेश होता है उसी स्थान पर होने के कारण लिङ्गाश वा लिङ्गवर्ति का लक्षण भी कहे हैं ।

लिङ्गार्श के लक्षण—शिश्न के आगे (मुँहपर) अङ्कुर के समान (धान्य के अङ्कुर के समान) मांस के अङ्कुर कुछ बड़े एक दूसरे के ऊपर चढ़े हुए कुक्कुट के शिखा के समान क्रम से उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

कोशस्पृग्मन्तरे सन्धौ सर्वसधिगताऽपि वा । सवेदना पिच्छिलञ्च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥

लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गाश इति चापरे ।

यह वर्ति कोप में, मेद के रज की संधि में अथवा सभी सन्धियों में त्रिदोष के कोप से हो जाती है उसमें पीड़ा और पिच्छिलता होती है तथा यह दुश्चिकित्स्या होता है (त्रिदोष होने के कारण कष्ट साध्य होती है) इसको लिङ्गवर्ति कहते हैं, कोर २ आचार्य इसे 'लिङ्गार्श' कहते हैं ॥

मेढसधौ व्रणाः केचिकेचिसर्वाभ्रयास्तथा ॥ ३ ॥

कुलयाकूनय केचिकेचिपद्मदलोपमाः । रजानाहार्तिबहुलास्तृष्णाक्लेदसमन्विता ॥

स्त्रीणां पुसां च जायते उपदंशाश्च दाहणाः ॥ ४ ॥

स्त्रियों के उपदेश—मूत्र की संधि में कुछ व्रण हो जाते हैं, कुछ व्रण सम्पूर्ण मेद में हो जाते हैं । इनमें से कितने कमल के कुलयी की आकृति के और कितने कमल के पत्र के आकार के होते हैं, उन व्रणों से (व्रणों के कारण) पीढा होती है तथा बहुत आनाह, तृषा और बल्लेद अर्थात् पूर्याद का साव होता रहता है इस प्रकार के कठिन उपदंश स्त्रियों और पुरुषों की होते हैं ॥



अथोपशुचिक्रिया ।

स्निग्धस्विघ्नस्य लेप्याद्वा पत्रममध्ये निरापघ ।

जलीकापातिन वा स्याद्दुध्याघा दोषघन तथा ॥ १ ॥

उपदेश चिक्रिया—प्रथम रोगी को स्नान देकर स्वेदन बर्ष करे और शिगा के मध्य में सिरा का बंध बंदे अथवा भोक लगाकर रक्तनोद्योग करावे तथा ऊर्ध्व और अधोवन ही करे ( वमन विरेचन देने ) ॥ १ ॥

सद्योऽपहृतदोषस्य दृक्शोफोद्युपशाम्यतः । पाको रथय प्रयत्नेन निरनघयकरसः ॥ २ ॥

दोषो को तीव्र निकाल देने से ( वमन-विरेचन और रक्त मोद्युग आदि करा कर दोष निवार्य देने से ) पीड़ा शोष आदि शान्त हो जाते हैं । इस रोग में यत्न ऐसा करना चाहिये कि पाक नहीं हो क्योंकि पाक होने पर शिघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

षाथ —पटोलनिम्बत्रिफलाकिरातैः फाय पिवेद्वा सविरासनाम्प्याम् ।

सगुग्गुलु वा त्रिफलायुक्त वा सर्वोपशुशापहृहः प्रयोग ॥ ३ ॥

पटोलाणि षाथ—परवर के छार पात, नीम की छाल, औंकरा, हरी, बहेदा और चिरंता सब भाग से षाथ बनाकर पान करना चाहिये अथवा छेद और चिन्तार की छन्दी का बाथ बना कर उसमें गुड़ गुग्गुलु अथवा त्रिफला के चूर्ण का प्रयोग देकर पान करना चाहिये । इस प्रयोग से सब प्रकार के उपदेश नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गैरिकाञ्जनमज्जिष्ठामधुकोक्षीरप्रघके । सपद्मनोत्पल विनम्रैः वेगः विषोपशुशाहा ॥ ४ ॥

गैरिकांरि षाथ ( पिच्छ उपदेश में )—गेद, रसवन का छाला, मनीठ, गुग्गुली, गुग्गु, पद्ममन्थ, छाल पन्थ और नील कमल समभाग से षाथ कर घृणादि के प्रयोग से शिघ्र पाक के पा करने से पिच्छ उपदेश नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ स्तेयाः ।

सर्पोदरीकैमधुकरासनाकुष्ठपुषर्नयै । सरहागुरुमन्नास्यैल्लो पातोपशुशाहा ॥ ५ ॥

पुण्डरीकारि सत्र—पुण्डरिया काष्ठ, गुग्गुली, रासना कुष्ठ पुषर्नय, धरल मन्थ, अमर, नागरमोथा अथवा देवनाग समभाग से षाथ पीत कर कर बना कर पीने से उपदेश नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

बभ्रून्मूलैश्च दारिद्र्यामज्जोऽथवा । गुण्डमं त्रिफलेनाथ मत्र पूगकनेम वा ॥ ६ ॥

बभ्रून्मूत्रि घोग—बभ्रू के पत्तों का चूर्ण अथवा अनार की छाल का चूर्ण त्रिफला के चूर्णों पर शिघ्रको या लगाने से रोग होता है अथवा घृणां को मत्र के साथ पीत कर कर बना कर पीने से उपदेश नष्ट होता है ॥ ६ ॥

षट्प्ररोहातुनगाम्बुपण्या शोभ हरिद्रासहित प्रयेन ।

सर्वोपशुनोपशुशाहायै चूर्ण च तत्रां विमलाञ्जनन ॥ ७ ॥

षट्प्रोहायै च—षट् के अमुर, अर्जुन की छाल, चासुन की छाल, हरी, गेर और हरी समभाग से षट् के साथ पीत कर लेना करी से उपदेश के प्रग नष्ट होते हैं और सब प्रकार के उपदेश के चूर्णों के पीने के लिये हरी कुस्तुक हम्बो के चूर्ण और हम्बो के चूर्ण का मत्र का चूर्ण मिठाकर मिठका आदिसे, इनसे मत्र मत्र जाने दे ॥ ७ ॥

द्वेतेक्यादे त्रिफलां तां सर्वां मधुमंयुताम् । शोषोपशुशाहायै मत्रां शोषपति मत्रम् ॥ ८ ॥

त्रिफलांयी सत्र—कपारी में रोगकर विरला को बना देने का साथ से मत्र मत्र ॥ उपदेश पर कर करने से शोष उपदेश के प्रग का शीघ्र होता है ॥ ८ ॥

त्वक्को दाहसिद्धाया शयुनाभी रमाञ्जनम् । छाया मातृशक्तिस्तानैल्ल चोद चूर्ण पया ॥ ९ ॥

पुष्पां सुनिर्घ्नैर्द्वयोर्नैरुत्तमं मल्लपत्रम् । मन्थां लेन चाप्यपि अत्रमुर्दं द्रव्यम् ॥ १० ॥

शारङ्गिण्यै च—शारङ्ग की छाल, चट्टनमी, रमण, काल मन्थ का छाल, पित्त का शीत मत्र शोष और शोषण समभाग से मन्थोपि शोषण कर कर करने से शोषण प्रग नष्ट होते हैं अर्थात् शोष और शोषण के प्रग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च । उपदशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

नीलोत्पलादि योग—नील कमल, कुमुदनी और लाल कमल समभाग ले चूर्ण कर उपदश पर लगाने वा रिद्धकने से लाभ होता है ॥ ७ ॥

रसाक्षन शिरीषेण पच्यया च समन्वितम् । ससौद्र ऐपन योज्य सद्यो रोपयति घणम् ॥ ८ ॥

रसाक्षनादि योग—रसवत, शिरीष की छाल, द्रां समभाग ले मधु में मिला ऐप बनाकर लेप करने से उपदश म्रग का शीघ्र रोपण होता है ॥ ८ ॥

गोपीचन्दनसुथे च समभागेन मर्दयेत् । कज्जली जलसयुक्ता घणानां ऐपने हिता ॥ ९ ॥

गोपीचन्दनादि लेप—गोपीचन्दन और सुथिया समान ले मर्दन कर बज्जली करे और उसमें जल मिलाकर लेप करने से उपदश के म्रग में लाभ होता है ॥ ९ ॥

मोचापूगविमूर्तिं च कोलत्वक्शशुजीरकम् । विट्पौपदशो छेपोऽयं पयसा पानमेव च ॥

माहायदुष्यता घृणं शुष्कान्कुर्याद्घणानपि ॥ १० ॥

मोषादि योग—मोषा (केल की घन्धी पत्तियां वा तना) और सुपारी को जला कर उसका भस्म, बैर की छाल शङ्ख और जीरा का चूर्ण सब एक २ भाग लेकर जल के साथ लेप बना कर लेप करने से और दूध के अजुपान से पान करने से उपदश म्रग की उष्णता को शीघ्र नष्ट करता है और कार्दं म्रगों (पुष्पुक) को शीघ्र सुखा कर नष्ट कर देता है ॥ १० ॥

पारदादिलेप — पारदं गन्धकं सालं द्रवदं च मनःशिलायाम् ।

पृथक्कर्षं द्विकर्षं च सुहृदारं शङ्खजीरकम् ॥ १ ॥

विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां मर्दयेत्सुरसारसै । छायाशुष्कां सतः कृत्या पुनस्मन्तजद्रवै ॥ २ ॥

विमर्द्याथ घटी कार्या उपदशो प्रयोजयेत् । गोघृतेन प्रलेपोऽयं घणानां रोपणे हिता ॥ ३ ॥

पारदादि लेप—पारद, गन्धक, हरताल सिंगरिफ और मेनसिल एक २ कर्षं मुर्त्तसग, शङ्ख और जीरा दो २ कर्षं लेकर पदल पारद-गन्धक को बज्जली कर सबको एकत्र मिलाकर तुलसी के रस में मर्दन कर छाया में सुखा लेवे । पुन धतूर के रस के साथ मर्दन कर बटी बना लेवे । इस बटी को गोघृत के साथ मिलाकर लेप करने से उपदश के म्रग के रोपण करने में दितकर है ॥

स्वरसा — भाद्यवच विनिष्पीडय विगृह्य स्वरसं पलम् ।

घृतुप्पलं खजाचीरं सयुक्तं प्रपियेत्प्रणे ॥ १ ॥

एष मुनिदिनं कुर्यादुपदशो घणे हितम् । यथा क्षीरं तथा जीर्णं गोधूमं पच्यमाचरेत् ॥ २ ॥

भाद्यवच रस योग—आम के वृक्ष की छाल को कूट-पीस रस निकाल कर एक पल और बकरी का दूध ४ पल ल मिलाकर प्रात पान करे, इस प्रकार सात दिन तक करने से उपदश के म्रग में लाभ होता है । दूध और पुराने गहू का पच्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

जातीप्रवालस्वरसं पलाघं घेनोघृतं सजरसेन युक्तम् ।

पिबेत्प्रणे पद्मविचोपदशो चाराहते गोधूमसर्पिपच्यम् ॥ ३ ॥

जातीप्रवाल स्वरस—चमेली के बीमल पत्तों का आधार पल स्वरस में गौ वा घृत और राल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर प्रात पान करने से पांचो प्रकार के उपदश शमन होते हैं । क्षार भववा क्षारयुक्त द्रव्य को छोड़कर गेहू और घृत का पच्य करना चाहिये (इसमें नमक भी सम्मिलित है) ॥

प्रक्षालनम्—निम्ब्याजनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुग्धरवेतसाङ्गि ।

प्रक्षालनालपघृतानि कुर्याच्छूर्णं च पित्ताक्षभवापदशो ॥ १ ॥

निम्बार्जुनादि प्रक्षालन योग—नीम, अर्जुन पीपल, कम्बू शालवृक्ष, जामुन, बटगूलर और बत इनके छालों की समभाग ले साथ कर लिङ्ग धोवे, इनको पीसकर लेप करे, इनके कल्क के द्वारा घृत सिद्ध कर सेवन करे और इनके चूर्ण को म्रग पर लगाव (दिहके) तो इससे पित्त-रक्त से उत्पन्न उपदश म्रग में लाभ होगा है ॥ १ ॥

त्रिफलायाः कषायेण शृङ्गाजरसेन वा । घणप्रक्षालनं कुर्यादुपदशप्रशान्तये ॥ २ ॥

त्रिफलादि प्रक्षालन—त्रिफला के काष्ठ से भववा भांगरे के स्वरस से उपदश के म्रग को धोना चाहिये । इससे उपदश शमन होता है ॥ २ ॥

मणशोषोपर्वसानां भासनं चालनात्सुत ॥ ३ ॥

अथत्यादि योग—पीपल, गूश्तर, पाकर, बज्ज और वेन कं धात्र के साथ से मण को बोने से उपदंश का शोष (उपदंश) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

जयाभापयश्चमारार्कशम्प्यारानां दृष्टैः पृथक् । हृतं प्रकालने क्वाथं मेट्टपाके प्रयोगयत् ॥ ४ ॥

अथानि योग—गनियार, (१) यमेली कनेर मदार और अमलनास इनमें से किसी एक के पत्र को लेकर क्वाथ कर मेट्ट पाक को पीने में प्रयुक्त करना चाहिये अर्थात् इससे प्रकालन करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ ४ ॥

उपदंशे लिङ्गलेपा—

रसवपूरगाण मव्येत्यद्विरामयुना । प्रकालयेद्दारिगा च शुष्के लेपसु कारिणा ॥ ५ ॥

लिङ्गलेपो मण हृत्ति त्रिदिनाश्चात्र मशया ॥ २ ॥

उपदंश में लिङ्गलेप—रस वपूर एक मघाण ( ६ मासा वा ३ वर्ष ) लेकर हीर के क्वाथ के साथ मर्दन कर भरु स भीष और गुग्गु देवे । इस समे हुए रसवपूर को जल के साथ लेन बना कर लेप करने से लिङ्ग क मण ( उपदंश मण ) तीन दिन में निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

मणोपर्वशे पूगादि लेपः—

पूग मुदग्धमेकं तु रमग धकद्विहृत्तम् । खदिरं तुपकं चैव मर्व्येक्षिमुनीरकै ॥ १ ॥

समभागाणि सर्वाणि गुटिकां कारयेद्युषुषा । उपदंशे धूमर्त्तपत्रिदिनाद्मणरोपगा ॥ २ ॥

उपदंश मण में पूगादि लेप—एक गुगारो को भाग में मणो भीति जला कर पीस ले और इसी के समान भाग पादक, गणक, द्विगुल, हीर और तुतिवा को ( बराबर १ ) लेना प्रथम पादक-गणक को घोल कर ( बज्जनी कर ) फिर अन्य शोषियों को मिश्रकर मीठू के रस में घाट कर घटी बना लेव । इस घटी को घृण के साथ मिश्रकर लेप करने से तीन दिन में उपदंश के मण का शोषण होता है ॥ १-२ ॥

उपदंशकोटे लेप —

जातीपलविट्ठामि रसकं देवपुष्पकम् । समभागाणि सर्वाणि मयनीतेन मर्व्येक्षु ॥

शफोटागासुपदसानां मणशोषनरोपण ॥ १ ॥

उपदंश के रज्जियों ( कर्को ) पर लेप—जावहर, वायविरग सपरिमा शिव और लज्ज हाथी सम भाग लेकर शूर्प कर मरसन के साथ मर्दन कर लेप करने से उपदंश के रज्जियों और मणों का शोषण और शोषण होता है ॥ १ ॥

पूजाणि—मूनिम्वनिम्वप्रिषठापटोलकरुणापीगदिराममाताम् ।

मूर्त्तेश करवैर्षुतमासु पर्व मयपर्वशापदरं मदिष्टम् ॥ १ ॥

मूनिम्वानि—रुन्, चिरीता, गोम भी साल, अंबेता, हार्ग, बडेता, पारत वा टाण-पत्र, बरुण, यमेली के पत्रे हीर और विजयसार रसके साथ और चरक से घृण निक कर ( रज्जो मण भाग लेकर विषिषुषण का प्रयत्न कर दो रसके समुचीन मूनिम्व मीषण और मण के मूर्त्तेश रज्जो हाथी वा समान मिलिप करक मिश्रकर पदनाश की विधि म फा गिष्ट कर ) मर्दन करने से ( माने में और मणों से ) मण मण के उपदंश शोष नष्ट होवे है ॥ १ ॥

करुणनिम्वामुमसाणामुपदशदिनि क्वाथकपादमिष्टम् ।

सर्वनिम्वामुपदशोप संशुद्धपाठ सुतिराममुष्णम् ॥ २ ॥

करुणादि घृण—करुण, गोम भी साल, शूर्प भी साल, शूर्पभीषण को साथ, मयुन को त न और बट की साल इनके चरक और हाथी की मूर्त्तेश निक कर मर्दन करने में मण घृण मण से लेव लता हाट, पाक मण और सामुष्ण ( कृष्ण रसुष्टि को भी गुग्गु ) उपदंश को नष्ट करने से ॥

अथारुणानिष्टम्—

अथारुणो रज्जो सुतादिभिश्च शैविभि । भागात्तै पयैर्लेक कपटुमपराजानहय ॥

शापमं शापनं चैव मयवदस्य तथा ॥ १ ॥

( १ ) उपदंश मण भी मणन होता है पर हार्ग भीसी रोगनाश हीने में प्रयोग किया है ।

अगारभूमादि तैल—पृथुग एत भाग, हरदी २ भाग और गुर्गाकट्ट तीन भाग हे कक्क  
 वर तैल में देकर तैल सिद्ध कर ( वक्क से प्तुगुंग मूर्चिरत तिल का तैल और तैल से चतुर्गुंग  
 वानार्थ जल देकर सिद्ध कर ) लगाने से कण्ट, शोष और पीडा नष्ट होती है, मग का गोपन  
 और रोपण होता है और मग के स्थान के स्वचा का विह्वन वर्ण स्वचा के वर्ण के समाप्त होता है ॥

चोपचिन्त्यामृगम्—

कुटव चोपचिन्त्याक्ष दाकराया पल तथा । पिप्पली पिप्पलीमूल मरिच देवपुष्पकम् ॥ १ ॥  
 भाकल्ल घुरकं शुण्ठी ज-तुन च पराङ्कम् । पृथक्कोलमित प्राङ्गमेतधूर्णाकृत शुभम् ॥ २ ॥  
 सयमेकत्र संयोज्य कर्पाथं प्रतिवासरम् । मचये-मपुसर्विर्म्या युक्त पथ्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥  
 शाण्डोदन तथा क्षुपस्तुपरीणां घृत मपु । गोधूम सै-धवं क्षिप्रविषयी कोदातकीपलम् ॥ ४ ॥  
 भार्द्रक जलम-दोष्य हितमत्र प्रकीर्तितम् । पञ्चोपयुक्तारोगाणां प्रमेदानां तथैव ॥

घृणानां वातरोगाणां कुष्ठानां च विनाशनम् ॥ ५ ॥

चोपचीन्त्यादि चूर्ण—चोपचीनी एक कुटव ( १६ तोला ), शकर १ पल, पीपरि, विपरामूल,  
 मरिच, लवंग, अक्षरकरा, गोतम्, सोंठि, वायभिरग, दालचीनी इनको पृथक् २ एक २ कोल की  
 मात्रा ( ३ कर्ष ) से लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण को द्रवत्र मर्दन कर आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा  
 से प्रतिदिन मपु और घन के अनुपान से सेवन करने से और पथ्य से रहने से अर्थात् शालिधानके  
 चावल का भात, तुवर (अरदर) की दाल, घन, मपु गट्ट सैधानगक, सहिजन वा फल, बिम्बीपल,  
 तरोह का फल, अद्रक कुट्ट गरम जल यहाँ पर ये सब रितकर पड़े गये हैं । रदों के सेवन करने  
 से पाचों प्रकार के उपदश रोग प्रमेद, मग, वान के रोग और कुष्ठ इन सबको नष्ट करता है ॥

चोपचिनीपाकः—

चोपचिन्त्युद्भव चूर्ण पलद्वादशमेव च । पिप्पली पिप्पलीमूल मरिच नागर स्वचम् ॥ १ ॥  
 आक्षल्लक लयङ्ग च प्रत्येक कर्षसंमितम् । दाकरासमचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकत ॥ २ ॥  
 मोदक कारयेत्तत्र कर्षं कर्षं प्रमाणतः । साय प्रातर्निपेक्ष्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत् ॥ ३ ॥  
 उपदशे घृणे कुण्ठे वातरोगे भगन्दरे । धातुक्षयकृते कासे प्रतिश्याये च यथमणि ॥  
 सर्वान् रोगाग्निहृन्त्याशु तप्त पुष्टिकरो भवेत् ॥ ४ ॥

चोपचीनी पाक—चोपचीनी का चूर्ण २२ पल, पीपरि, विपरामूल, मरिच, सोंठि, दालचीनी,  
 अक्षरकरा और लवंग का चूर्ण पृथक् २ एक २ कर्ष और इन सबों का बराबर ( ५५ कर्ष ) शकरा  
 लेकर पाक की विधि से उसे जल के साथ गलाकर वाशनी बना उसमें सब चूर्ण मिलाकर एक २  
 कर्ष के प्रमाण का विषिय मोदक बनाकर प्रात सायं सेवन करे और पूर्वोक्त चोपचीनी चूर्ण के  
 साथ कहा हुआ पथ्य सेवन करे तो उपदश मग कुष्ठ वातरोग, भगन्दर, धातुक्षय के कारण से  
 उत्पन्न कासरोग, प्रतिश्याय, यक्ष्मा इन सभी रोगों को जीव नष्ट करता है और पुष्टि करता है ॥

बालहरीतकीयोगः—

बालपथ्या पलैक च तुस्थ शाणमित तथा । निम्बुद्वयण समर्धं दृढ सप्त दिनानि चै ॥ १ ॥  
 गुटिकां खणकप्रायां छायाशुष्कां तु कारयत् । शीतोदकानुपानेन निश्चमेकां प्रदापयेत् ॥ २ ॥  
 चन्नाणामेकविंशत्या मुच्यते क्षुपदशत । शालिगोधूममुद्गाक्ष गोसर्पिः पथ्यमीरितम् ॥ ३ ॥

बाल हरीतकी योग—छोटी हरड़ का चूर्ण एक पल, शुद्ध तृणिया एक शाण ( ४ मापा )  
 दोनों को एकत्र नीबू के रस के साथ सात दिन तक मलीमौति मर्दन करे पश्चात् चने के प्रमाण  
 की बटी बना छाया में सुखा शीतल जल के अनुपान से निश्च एक बटी सेवन करे । इस प्रकार  
 २१ दिन सेवन करने से उपदर्शरोग छूट जाता है । इसके सेवन के साथ शालिधान के चावल,  
 गेहूँ, मूग और गोघृत का पथ्य सेवन करना कहा है ॥ १-३ ॥

रसग-धकञ्जली—

कर्पमात्रो रसः शुद्धो द्विकर्षो ग-धकस्तथा । विधिवत्कञ्जलीं कृत्वा तां च गोघृतसयुताम् ॥  
 भापमात्रां प्रतिदिन दद्यादेव त्रिसप्तकम् । गोधूमाद्य एत पथ्य कारयेत्तद्वयण विना ॥

उपदशापहः श्रेष्ठो धोगोऽयं मुनिभिः स्मृतः ॥ २ ॥

मणशोषोपदंशानो नाशान् शालनास्मृत ॥ ३ ॥

अथवादि योग—पीपल, गुग्गु, पाकट, बज और बेन क छान के काय से मण को धोने से उपदंश का शोध (उपदंश) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

ज्यामायवधमाराकंड्याकानां दुर्ले पृथक् । कृत प्रचालने द्वायं मेदुपाक प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

अथादि योग—गनियाद, (१) वमेशी, कनेर मशर और अमलनास इनमें से किसी एक के पत्ते को छेकर बजाय कर मेदु पाक को धोने में प्रयुक्त करना चादिये अर्थात् इससे प्रक्षालन करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ ४ ॥

उपदंशे लिङ्गलेपा —

रसकपूरगणाय मद्दयेऽथद्विराम्बुना । प्रचालयेद्द्वारिमा च शुष्के लेपस्तु पारिणा ॥ १ ॥

लिङ्गलेपो मण दृष्टि त्रिदिनासाय सत्पापः ॥ २ ॥

उपदंश में लिङ्गलेप—रस कपूर एक मघाण ( ६ मासा वा ३ वर्ष ) छेकर रीत के बजाय से साथ मर्दन कर जल से धोव और सुखा देख । इस धान हुए रसकपूर को धान के साथ धेप बना कर लेप करने से लिङ्ग के मण (उपदंश मण ) तीन दिन में निश्चय ही नष्ट हो जात है ॥ १-२ ॥

मणोपदंशे पूणादिभेदाः—

पूयं सुवर्धमेक तु रसगंधरुद्विहृत् । रादिरं सुगंधक सैव मर्दयेत्सिन्धुनीरहै ॥ १ ॥

समभागानि सर्वाणि गुटिकां कारयेद्वपुषः । उपदंशे पूतैर्लेपत्रिदिनाङ्गणरोपणः ॥ २ ॥

उपदंश मण में पूणादि लेप—एक म्मारी को भाग में भली भौति मछा कर पीत के और उसी के समान भाग पारद गंधक, द्विहृत्, गैर और तृणिया को ( बजाय ३ ) केकर प्रथम पाण्ड-गंधक को घोट कर ( कज्जली का ) फिर अथ भोजपियों को मिश्रकर भीष्ट के रस में पीट कर बटी बना लय । इस बटी को धन के साथ मिश्रकर लेप करने से तीन दिन में उपदंश के मण का रोपण होता है ॥ १-२ ॥

उपदंशोपदंशे लेप —

जातीफलविहृद्धानि रसयं द्यपुत्रकम् । समभागानि सर्वाणि मघपीतेन मद्दयेत् ॥

रुषोटाभापुपदंशानां मणशोधनरोपणः ॥ १ ॥

उपदंश के रसोटी ( फाँदी ) पर लेप—आवत, कायसिरंग मरिचा निर और अथ इनको सम भाग लेकर पूर्ण घर मघाण के साथ मर्दन कर जल से धोव और उपदंश के पीपों और मणों का शोधन और रोपण होता है ॥ १ ॥

पूणादि—भूमिभयनिभयप्रिषठापटोलबरभ्रजातीवद्विरामाणात् ॥

शुतैश्च कण्ठकेपुनगात्तु पक्षं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १ ॥

भूमिभयानि पूण—भिरौठा, भोन को छान, अंतरा, हरी बरवा, चतुर् का छान-वय, काष्ठ, चनेली के पत्त रीत और विरधमार इनके काय और कण्ठ से धन मिश्र कर ( इन्हीं पर माण केकर विषिक्त काय का मिश्रना प्रत्युत काय ही उनके पशुपीय भूमिभय शोषण और दा के पशुपीय इ ही मणों का समान मिश्रन करद मिश्रकर चतुर्का को विर से धन मिश्र कर ) मर्दन करने से ( मणों से और मणों से ) सब उपदंश के मणों का शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

करुनिग्वागुणात्तुप्रमूकशक्तिः कण्ठकपापविहृत् ॥

सविनिहृत्स्वापुपदंशोपं साग्दहाक दृष्टिसागपुत्रम् ॥ २ ॥

करुआदि पूण—करुनी भोन को छान, कर्पूर को छान, दामपुत्र को छान, कर्पूर को छान और बट को छान इनके क द और काय से पूर्वकर मिश्र कर मर्दन करने से उपदंश के शोधन तथा दाद दाद रसक और सागपुत्र ( कर्पूर रसदि कर्पू से पुत्र ) कर्पूर को छेक करना है ॥

अगात्पुसी उद—

अगात्पुसी उदनी सुगन्धिवं च मैत्रिणि । सागोपैः दयेनेलं कण्ठकपापवहादम् ॥

सायमं कपन लेप मणोपदंश मघा ॥ १ ॥

( १ ) उदनी ध द को छेकन होता है वर वरा अगात्पुसी उदनी से मण निकल है ।

अगारधूमदि तैल—गृहधूम एक भाग, दरदी २ भाग और सुराकिट्ट तीन भाग ले कश्क कर तेल में केकर तेल सिद्ध कर ( वस्त्र से चतुर्गुण मूर्च्छित तिल का सेण और तेल से चतुर्गुण पारार्थ जल देकर सिद्ध कर ) लगाने से बन्धु, शोथ और पीड़ा नष्ट होती है, म्रग का शोधन और रोपण होता है और म्रग के रथा के रक्ता का विकृण वर्ण रक्ता के वर्ण के समान होता है ॥

चोपचिन्गारपूर्णम्—

कुडव्यं चोपचिन्ग्याद्य दाकरायाः पल तथा । पिप्पली पिप्पलीमूल मरिच देवपुष्पकम् ॥ १ ॥  
 आकृष्टल घुरकं शुण्ठी जन्तुपत्र च पराङ्गकम् । गृध्रकोलमित प्राङ्गमेतद्यूर्णावृत्त शुभम् ॥ २ ॥  
 सर्षमेकत्र संयोज्य कर्पार्थं प्रतिवासरम् । मन्त्रये-मधुसर्पिर्म्या युक्त पथ्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥  
 दाद्यपोदन तथा सूषस्तुपरीणां घृत मधु । गोधूम सैध्व्यं शिशुपिर्मयी क्षोशातकीफलम् ॥ ४ ॥  
 आर्द्रक जलमद्दोष्ण हितमग्र प्रकीर्तितम् । पद्मोपद्दारोगाणां प्रमेहाणां तथैव ॥

घणानां घातरोगाणां कुष्ठानां च विनादानम् ॥ ५ ॥

चोपची-यादि चूर्ण—चोपचीनी एक कुडव ( १६ तोला ), शक्कर १ पल, पीपरि, पिपरामूल, मरिच, लवंग, अकरन्ना, गोतरु, सोंठि, क्षायभिरग, दालचीनी इनको पृथक् २ एक २ कोल की मात्रा ( ३ कर्ष ) से लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण को पत्र मर्दन कर आधा वर्ण के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से और पथ्य से रहने से अर्थात् शालीधानके चावल का भान, तुवर (अरदर) की जल पूत्र, मधु गेहू, सैधानमय, सहिजन का फल, बिन्वीफल, तरोह का फल, भद्रक, कुष्ठ गरम जल यहाँ पर ये सब दितवर पड़े गये हैं । इन्हीं के सेवन करने से पाचो प्रकार के उपदश रोग प्रमेद, म्रग, वात के रोग और कुष्ठ रोग सबको नष्ट करता है ॥

चोपचीनीपाक —

चोपचि-युद्धय चूर्णं पलद्वादशमेव च । पिप्पली पिप्पलीमूल मरिच नागर त्वचम् ॥ १ ॥  
 आकृष्टलक लघुद्र च प्रत्येक कर्षममितम् । दाकरासमचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकत ॥ २ ॥  
 मोदक कारयेत्सत्त कर्षं कर्षं प्रमाणतः । साय प्रातर्निषेध्यस्तु पथ्य पूर्वाक्तचूर्णवत् ॥ ३ ॥  
 उपदशे घृणे कुष्ठे घातरोगे भगन्दरे । धातुक्षयवृत्ते कासे प्रतिश्याये च यक्ष्मणि ॥  
 सर्वान् रोगास्त्रिदश्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत् ॥ ४ ॥

चोपचीनी पाक—चोपचीनी का चूर्ण १२ पल, पीपरि, पिपरामूल मरिच, सोंठि, दालचीनी, अकरन्ना और लवंग का चूर्ण पृथक् २ एक २ कर्ष और इन सबों का बराबर ( ५५ कर्ष ) दाकरा लेकर पाक की विधि से उसे जल के साथ गलाकर चाशनी बना उसमें सब चूर्ण मिलाकर एक २ कर्ष के प्रमाण का विधिवत् मोदक बनाकर प्रातः सायं सेवन करे और पूर्वाक्त चोपचीनी चूर्ण के साथ कहा हुआ पथ्य सेवन करे तो उपदश, म्रग, कुष्ठ, घातरोग, भगन्दर, धातुक्षय के कारण से उत्पन्न कासरोग, प्रतिश्याय, यक्ष्मा इन सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है और पुष्टि करता है ॥

बालहरीतकीयोग—

घालपथ्या पलैक च मुस्य क्षाणमित तथा । मिन्बुद्वयेण समर्धं ह्यं सप्त दिनानि वै ॥ १ ॥  
 गुटिकां क्षणकप्रायां छायाशुष्कां तु कारयेत् । क्षीतोदकानुपानेन निश्चयेकां प्रदापयेत् ॥ २ ॥  
 घषाणामेकविंशत्या मुच्यते सूपदंशत । शालिमोधूममुद्गाद्य गोसर्पिः पथ्यमीरितम् ॥ ३ ॥

बाल हरीतकी योग—छोटी हरड़ का चूर्ण एक पल, शुद्ध सूतिया एक शान ( ४ माष ) दोनों को एकत्र नीबू के रस के साथ सात दिन तक भलीमूर्ति मर्दन करे पश्चात् चने के प्रमाण की बटी बना छाया में सूखा शीतल जल के अनुपान से निश्चय पथ्य बटी सेवन करे । इस प्रकार २१ दिन सेवन करने से उपदशरोग छूट जाता है । इसके सेवन के साथ शालिधान के चावल, गेहूँ, मूग और गोघृत का पथ्य सेवन करना कहा है ॥ १-३ ॥

रसगन्धककण्ठली—

कपमात्रो रस शुद्धो द्विकर्षो गन्धकस्तथा । विधिवत्कञ्जलीं कृत्वा तां च गोघृतसंयुताम् ॥  
 सापमात्रां प्रतिदिन दद्यादेव त्रिसप्तकम् । गोधूमात्र एतं पथ्यं कारयेत्क्षयं विना ॥

उपदशापह- श्रेष्ठो योगोऽय मुनिभिः स्मृतः ॥ २ ॥

रस गन्ध कञ्जली योग—शुद्ध पारद एक कर्ष और शुद्ध गन्धक अविशामार दो कर्ष दोनो को मे विधिपूर्वक कञ्जली कर गोघृत क अनुपान से एक माषा के प्रमाण को माषा से मात्र तीन मात्रा ( २१ दिन ) संवन करे और गेहू तथा घृत इसी का पच्य बिना जमक के सेवन करे तो उपरंश को नष्ट करने वाला यह मद्य ( ज्यम ) योग मुनियो ने कहा है ॥ २-२ ॥

महाशारगुटी —महापारमाकण्डलकं श्यादिरं च कृमाद्भक्षितं पाणिना विष्टमेतत् ।

निपयेत् मापयमाणं घृतेन महारोगनिघ्नं घृतेषु घृण्णम् ॥ १ ॥

गोधूम गोघृत पच्यं माद् द्यवणमाधरेत् । द्विवारं प्राक्षेपेन्नियमुपदाननिवृत्तये ॥ २ ॥

महाशार गुटी—क्रम से २-१ भाग बड़ा कर महाशार ( साधुन ) १ भाग, अकरकरा २ भाग और रैर तीन भाग लेकर जल के साथ पीट कर एक माषा के प्रमाण से घृत के अनुपाय से सेवन करने से महारोग ( कुष्ठ ) को नष्ट करता है एवं गण में सेवन करने से मन को नष्ट करता है । इसके सेवन के साथ गेहू, गोघृत तथा मन्द ( अर ) छत्रा का पच्य करना आदिमे और उपरंश रोग को निवृत्ति के लिये इस औषधि को दो बार मात्र साथ सेवन करना आदिमे ॥ १-१ ॥

सर्वोपदेशे रसघ्नमुच्यते—

शुद्ध रस विचुमितं द्विवर्षं प्रमथ सर्वद्रिमागनयनीतमपि प्रमथ ।

यत्रे प्रक्षिप्य विचुमन्वविषणशात्ता सपेष्टयेन्नसमुत्थी परिधीष्य वर्तिम् ॥ १ ॥

सस्या घृत सपति काशमय च पात्रं स्यात्सिद्धिविल्लदलताकमिदं प्रदयम् ।

सर्वोपदेशाकरिकेसरिण घृण्ण पट्वाधिक रसघृणे च विद्ययानीयम् ॥ २ ॥

रसघ्न—(सर्व उपदेशों में ) शुद्ध पारद एक अणु ( १ कर्ष ), शुद्ध गन्धक दो अणु लेकर विधिपूर्वक कञ्जली कर मिठना हो उसके दुगुणा ( ६ अणु ) गाव का मराना मिलाकर मन्थी मोठि मर्दन कर एक बख पर इसका सेव कर देने पधार बह बख पर रहित नीम को टाक पर लपेट कर बची बना कर नीचे मुँह कर उस बार देने उसमें को घृत घृते उसे एक काच के पात्र में रखा जाये या काच पात्र में सुआये । एक घृते हुए घृत को पान के पत्र में रखकर क्वचन माषा से सेवन करी से सब प्रकार के उपरंशको हाथो के लिये सिद्ध के समान है कर्वाँद सब प्रकार के उपरंशों को गष्ट करता है, प्रणो को गष्ट करता है । इस रसघ्न क सेवन क समय कण्ठान्कि कर्षयं पशायो को त्याग देने ( उरिमलिन गेहू और घृत का ही पच्य करे ) ॥ १-२ ॥

पञ्चानध्यम्—

द्विधा निद्रा गुर्येणं गुर्यंनं मैसुनं शुद्धम् । जायासममर्षं तर्कं च सर्ववदुपदेशायम् ॥ १ ॥

पञ्चापध्य—दिन में साना, गुर्येण का भाग, गुर अर, गेहुज, गुद, परिजा अथ रस काफे इत्य और तक इनको उपरंश का मोठी त्याग देये सर्पाय ये सब अर्थपर है ॥ १ ॥

द्विपल विद्वान् पूर्णं द्विकष विष्णुमसकम् । कर्काण्डवकणमिता मृष्टमगमिर्कं भवम् ॥ २ ॥

जम्मादरगतं स्यात्तं गुण्पात्रविधाता । पर्यं चमकमानं तु सर्वमसामुलक्षणम् ॥ ३ ॥

जम्भीरसालिर्हैमं सौ गार्धं मिदं विप्रपाय । उपरंशं चमकं पूर्णं पूर्णमसकम् ॥ ४ ॥

शुद्धाङ्गुलीदत्तुदमन्त्रिं स्यात्तं गिवायेत् । सार्कानागद्विं पर्यं लोभूमागं पूनम्पुनम् ॥ ५ ॥

पुषादि योग—विद्ययी ह्यारी दो पत्र ( ८ भाग ) विष्णुको के बीज २ कर्ष काण्ड ( रेंगे कुमायरी ) का सिन्धु एक कर्ष, लीची दो विनाकर मूत्र लेवे और ज्योती मूत्र में लुण्ठि रस का पुषाका की विधि से वाट जिसा हुआ अर्धो लुण्ठिवा को मूत्र पोरकर जमये रखकर गुण गुणा कर मिट्टी में डेर कर दुपराक की विधि से ज्विन में पहा लेवे कर दुपराक लुण्ठिवा एक पात्र के प्रमाण सेव करकुल पूर्ण अर्ध-ओषधियो में मिलाकर को सफे रस का ज्योती मूत्र के रस के साथ दिन एक मन्थी कर चमक कर पिचक के रस में साथ कर मूत्र को ( गाये ) नी जम्भू अर, मा क ( लुण्ठि रस मन्थी कर करती कर करती है । इसके सेवन के समय पत्र में उका मर्दन घृत से गुण मूत्र अथ मेषक का ग करे १-५-

पट्टाये कर्तुंते इत्यपि विषयं च कथयत पूषम् । कनिष्ठकं विरोधात् विष्णुता मीरकं चैव ॥

शुद्धाङ्गं च सर्वं विलक्षणमे विचार्येण विप्रिया ।

मर्दं पक्षेप्रमथ्य रसातिरानुपच्य मतिदयम् ॥ ६ ॥

सितपत्रे सलिप्य घृणोपरि रथापयोग्यम् । एतभूदेतं सर्पं सशूकदोष विरहज्ज हन्यात् ॥८॥  
 दास्यत् नरग्रात दन्तजमाद्य पूर्णं शिशिभम् । दृष्ट्वा प्रययमेतत्प्रकाशितं चालयोधाय ॥९॥

उपदेश में और दूसरा लेप—कट्ट तेल (सर्सी का तेल) एक पत्र, भोग दो अक्ष, बबूला, बिरोजा, सिन्दूर, सोरा और गुदां छल प्रत्येक एक २ वर्ष के तेल में मिला पीतल के बर्तन में रगसर अग्नि पर मन्त्र २ ओंघ से पचावे और कण्ठी वा रूकड़ी से चलाता रहे जब सब पक कर मिल जायें तब उनार लेप जोतल होवे पर उममें से निवाल कर द्येत (स्वच्छ) वज्र पर लेप कर के मली मोति मग पर रत्न देये तो इस लेप से क्षत रथा, शूकदोष और फिरङ्गन मग ये सभी नष्ट होते हैं और शस्त्र स होने वाले, तल से होने वाले, दाँत से होने वाले तथा अग्नि से जल कर हुए मग ये सभी शीघ्र गष्ट होते हैं । इस योग को सिद्ध देव कर बालमति (भवन बुद्धि वाले) वैद्यों के शान एवं लाभ के लिये प्रकाशित किया गया है ॥ ६-९ ॥

इति शतुपदेशरोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथ शूकदोषनिदानम् ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—अक्रमाच्छेफसो घृद्धि योऽभिवान्धति मूकधीः ।

व्याधयस्तस्य जायन्ते वृक्ष चाष्टौ च शूकजा ॥ १ ॥

शूक दोष निदान—त्रो मूर्धं मनुष्य अजुचिन क्रम से शिश्न को बढ़ाना चाहता है (विष युक्त अलुकादि भोषणियों का प्रयोग करता है) उस शूकदोष से उत्पन्न होने वाली १८ प्रकार की (सर्पिका, अष्टौलिका, प्रथित, कुम्भिका, अलजी, मृदित, सम्मूढ पिडिका, अवगय, पुष्करिका, रज्जुदानि, उच्छमा, शतपोनक, स्वरूपाक, शोणितारुंद, मासारुंद, मांसपाक, विद्रधि और तिलका एक नाम की) व्याधियां हो जाती हैं ॥ १ ॥

सर्पिकामाह—

गौरसर्पपमस्याना शूकदुमुग्नहेतुका । पिडिका श्लेष्मवाताग्नां श्रेया सर्पिका तु सा ॥ २ ॥

सर्पिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुरुपयोग के कारण कफ और वात के कोष की (कफ वात प्रधान) श्वेन सर्सों के समान शिश्न पर पिडिकायें हो जाती हैं उसे 'सर्पिका' जाननी चाहिये ॥ २ ॥

अष्टौलिकामाह—कठिनैरिपिमैर्मुर्गैर्नयोयुनाष्टौलिका भवेत् ।

अष्टौलिका के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक के विषम प्रयोग करने से (शूक मिमित लेप के बराबर नहीं लगाने से अर्थात् कमी कम कमी अधिक लगाने से) वायु के कुपित होने के कारण कठिन पिडिका (अष्टौला के समान परन्तु वाताष्टौला के लक्षणों से भिन्न लक्षण वाली) हो जाती है उसे 'अष्टौलिका' कहते हैं ।

प्रथितमाह—शूकैर्वत्पूरित शब्दप्रथित नाम तत्प्रकात् ॥ ३ ॥

प्रथित के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के निरन्तर प्रयोग करने से (लेप निरन्तर लगाये रहने से) कफ का कोष होकर गाँठ के समान पिडिका हो जाती है उसे 'प्रथित' कहते हैं ॥ ३ ॥

कुम्भिकामाह—कुम्भिका रक्षपित्तोरथा जाम्बवास्थिनिभा शुभा ॥

कुम्भिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि लेप स कुपित हुए रक्त और पित्त के कारण जाम्बुन के फल की अस्थि के समान एवं अनुम वेप वाली (काली) पिडिका शिश्न पर हो जाती है उसे 'कुम्भिका' कहते हैं ।

अलजीमाह—तुष्यजां खलीजां विद्याद्योकां च विषयणैः ॥ ४ ॥

अलजी के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अवैयानिक व्यवहार के कारण प्रमेह पिडिका में कड़ी हुई 'अलजी' नाम की पिडिका का समान लिङ्ग पर पिडिका हो जाती है उसे 'अलजी' कहते हैं (भेद उसमें और इसमें यही है कि इसका कारण शूक दोष है तथा यह केवल लिङ्ग पर ही होती है और उसका कारण प्रमेह तथा दुष्ट भेद है और वह सधिमम तथा मासक स्थानों में होती है) ॥ ४ ॥

मृदितमाह—मृदित पीडितं यत्तु सरब्ध वातकोपत ॥



शुद्धि के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र प्रयोग के पश्चात् प्रीति बरने से वायु कुण्डित होकर शिदन में शोध उत्पन्न कर देता है उसे 'शुद्धित' कहते हैं ॥

सम्भू-पिटिकाभाह—पाणिन्यां शृणुसकृते सम्भूदपीटिका भवेत् ॥५॥

सम्भूट पिटिका के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के प्रयोग के पश्चात् शिदन को हार्मों से अधिक मरुत देने से ( अधिक यर्दन का लेय करने से अथवा सेव के पश्चात् सम्भू आदि होने पर अधिक मरुत देने से ) वात के कुण्डित होने से कँचा-नोषा शिदन हो जाता है अथवा ऐसी विदिका हो जाती है उस 'सम्भूट पिटिका' कहते हैं ॥ ५ ॥

अवमथभाह—

दीर्घा पद्मपत्र पिटिका दीर्घन्ते मरुत्तरणु याः । सोऽपमथ्याः कफाशुग्म्यां वेदमारोगदर्शकृत् ॥

अवमथ के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के प्रयोग के पश्चात् अविधि होने से कफ और रक्त कुण्डित हो जाता है, जिससे शिदन पर लम्बी र बहुत मी विदिकाये मध्य में पटी हुई, पीर सुग्म और रोमाघ को करने वाली हो जाती है उसे 'अवमथ' कहते हैं ॥ ६ ॥

पुष्परिकानाह—

पिटिकामिधिता या तु विषशोणितसम्भवा । पद्मकर्मिहसंस्थाना शैवा पुष्परिका य मा ॥

पुष्परिका के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के अविधि प्रयोग होने से विष और रक्त कुण्डित हो जाता है जिससे शिदन के कोष के आकार को भोज विदिकाओं से निर्मित ( एक विदिका उस रूप की ) निह पर हो जाती है उसे 'पुष्परिका' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्पर्शहानिभाह—

स्पर्शहानि तु जनयन्नाजित शूद्रनूयितम् । पातविषाणुना श्रेयस्वपाको वरदाहृत् ॥ ८ ॥

स्पर्शहानि के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के अविधि प्रयोग होने से रक्त कुण्डित होकर स्पर्श हानि को हानि कर देता है ( शिदन पर स्पर्श करना नहीं पात होता है ) अर्थात् शिद में प्रसृति कर देता है उसे 'स्पर्शहानि' कहते हैं ॥ ८ ॥

उत्थमाह—

मुद्रमापोपमा रक्षा रक्षविषोऽप्या य सा । व्याधिरेपासमा गाम शूक्रातीर्ननिमित्तम् ॥९॥

उत्थमा के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के अविधि प्रयोग से अर्थात् वार र शूद्र का अविधि प्रयोग करने से रक्त, पक्ष कुण्डित हो जाता है जिससे मूत्र और पदर के समान रक्त र्णों को विदिका निह पर हो जाती है उन्हें 'उत्थमा' कहते हैं ॥ ९ ॥

वातपीण्डभाह—

द्विद्वैर्यमुसौर्द्धि विषं मस्य समस्तताः । वातशोणितसो व्याधिः स श्रेयः वान्मोमक ॥१०॥

वातपीण्ड के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के दुष्प्रयोग के कारण वात और रक्त कुण्डित होकर निह पर पारो ओर से परस्पर मुक्त वाले सिद्धों की मुद्रा बन ( विदिकाओं ) को उत्पन्न कर देता है ( चक्रणों के समान विदिका कर देता है ) उसे 'वातपीण्ड' कहते हैं ॥ १० ॥

वक्रपादभाह—पातविषाणुना ज्वरापवपाको वरदाहृत् ॥

वक्रपाद के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के दुष्प्रयोग से वात और रक्त कुण्डित होकर निह की रचना में वाक कर देते हैं तथा वर और वार भी उत्पन्न होता है उसे 'वक्रपाद' कहते हैं ॥

शोणितानुवमह—शुष्मैः श्चेटीः सरणाभिः निद्रिकानिद्रिपीटिका ॥ ११ ॥

शोणितानुवमह के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के दुष्प्रयोग के कारण रक्त कुण्डित होकर अतुर के समान निह पर मुद्रा र्णों के कोषों और रक्त र्णों को विदिकाओं को कर देता है अथवा उत्थमे अविरोधा होती है उसे 'शोणितानुवमह' कहते हैं अर्थात् शोणितानुवमह के दो लक्षण हैं : ( एक शूद्र कोट भी होता है पर रक्त के लक्षण रक्तमि में विषयन होने है वह शिदन पर हो जाने से, दुर् मयो में मुद्रा होता ) ॥ ११ ॥

मांसपुंड्रभाह—पक्ष्वा मांसुहज्जकोमा श्रेयं ताक्षोनिगुंड्रय ॥

मांसपुंड्र के लक्षण—निस शूद्र दोष में शूद्र के दुष्प्रयोग के कारण अर्थात् शिदों के अथवा

दूषित होकर अर्बुद के समान लिङ्ग पर ग्रन्थ उत्पन्न कर देता है उसे 'मांसार्बुद' कहते हैं । (मांसार्बुद जो अथ अर्बुद रोग में कहा गया है उसके निदान स्थानादि से इसमें भिन्नता होती है) अर्थात् शूक दोषज मांसार्बुद के ये लक्षण हैं ॥ २२ ॥

मांसपाकमाह—

दीर्घन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वांश्च पेदना । विद्यात्त मांसपाकस्तु सर्वदोषकृतमिषकम् ॥ १३ ॥

मांस पाक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुःप्रयोग के कारण तीनों दोष कुपित होकर शिश्न के मांस को शोण कर देते हैं (पचाकर गला देते हैं) और तीनों दोषों में होने वाली सब पीड़ाएँ होती हैं उसे 'मांसपाक' कहते हैं (यह त्रिदोषज है) ॥ १३ ॥

विद्रधिमाह—विद्रधिं सक्षिपातेन षयोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥

विद्रधि के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुःप्रयोग से तीनों दोष कुपित होकर शिश्न पर त्रिदोषज विद्रधि के समान लक्षणों वाली (नाना प्रकार के बर्ण, पीड़ा और छाव से युक्त) विद्रधि उत्पन्न कर देते हैं उसे शूकदोषज विद्रधि कहते हैं ॥

तिलकालकानामाह—

कृष्णानि चिप्राण्यथ वा शूकानि सविपाणि तु । पातितानि पचन्त्याद्यु मेधु निरवशेषतः ॥

कालानि भूया मांसानि दीर्घन्ते यस्य देहिनः ।

सक्षिपातसमुत्थाय तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

तिलकालक के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक के दुरुपयोग के कारण तीनों दोष कुपित होकर अर्थात् काला चित्रित (काले चोले नीले श्वेतादि) तथा अधिक विषयुक्त जल शूक के लेप करने से तीनों दोष कुपित होकर संपूर्ण शिश्न (शिग) को शोण ही पका देते हैं जिससे उस स्थान का नाम तिल के समान काला वर्ण का होकर शोण (गल) जाता है उसे तिलकालक कहते हैं । यह भी त्रिदोषज होता है । (शुद्ध रोग में जो तिलकालक रोग है उसके और इसके निदान आदि में भिन्नता है) ॥ १४-१५ ॥

शूकदोषनाशक्यमाह—तत्र मांसार्बुदं यत्तु मांसपाकश्च य स्मृतः ।

विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

शूकदोष की असाध्यता—पूर्वोक्त १८ प्रकार के शूक रोगों से मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक नाम के शूक दोष असाध्य हैं ॥ १६ ॥

अथ शूकदोषचिकित्सा ।

हितं च सर्पिष पानं पथ्यं चापि विरेचनम् । हितः शोणितमोक्षश्च शूकरोगेषु देहिनाम् ॥ १७ ॥

शूक दोष की सामान्य चिकित्सा—शूक दोष में एत पिलाना हितकर है और विरेचन देना पथ्य है तथा रक्त मोक्षण कराना भी हितकर है ॥ १ ॥

उल्लिख्य सार्पिषी तालपत्रेणाथ प्रलेपयेत् । त्रिकटुत्रिकफलालोध्रैर्गाम्भ्रपरिचेषितैः ॥ २ ॥

सर्पिका चिकित्सा—सर्पिका नाम का शूक दोष की पिष्टका की ताल के पत्रों से रगड़ (सुरच) कर सोंठ, मरिच, पीपल, आंवला, हरड़, बहेड़ा और लोथ समान भाग लेकर गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पीसकर लेप करने से सर्पिका नाम की पिष्टिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

त्रियेयमवमथोऽपि रक्तशोष्यतथोमथोः ।

अवमन्थ-चिकित्सा—अवमन्थ में भी पूर्वोक्त सर्पिका की चिकित्सा करनी चाहिये और सर्पिका तथा अवमन्थ दोनों में रक्त को शुद्ध करने का यत्न करना चाहिये ॥

अष्टौल्लयां हृते रक्ते श्लेष्मप्रन्थिक्रियां चरेत् ॥ ३ ॥

अष्टौल्लिका चिकित्सा—अष्टौल्लिका रोग में प्रथम रक्तमोक्षण करा कर कफघ्नियों की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

कुम्भिकायां हरेद्रुकपफायां शोधिते घ्नो । तिन्दुकत्रिकफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ४ ॥

कुम्भिका चिकित्सा—कुम्भिका रोग में प्रथम रक्तमोक्षण करावे परन्तु यदि वह पक गया हो तो द्रव को खीरकर शुद्ध कर उसमें तिन्दुक (तेंदू) हरी, बहेड़ा, आंवला, और लोथ सम भाग

भक्त विधिपूर्वक पीतल रत्नका स्र रत्नके रत्न द्वारा विधिपूर्वक लेक सिद्ध कर ज्ञाना  
भाहिये । इससे ज्ञान का रोपण होता है ॥ ४ ॥

अष्टम्यां हृत्तरक्षायां पूष षय क्रियाक्रम ।

अष्टमी तिथिमा—अष्टमी रोग में रक्तमोक्षण करा कर पूर्वोक्त किन्दुकादि सेव वा लेक हो  
लगाना चाहिये ॥

स्वदपेदूप्रपिणं पश्चाच्छाहीस्वेदेन बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

प्रविठ-विधिमा—प्रविठ रोग में पदल नाड़ी श्वेदा (बधि से श्वेत्न करे पश्चात् ज्ञान रोग  
में पद दुष् सुयोग्य ( कुप गरम ) उपनाहो ( प्रविठमो ) से शक्ति को उपनाह देवे ॥ ५ ॥

सुगोष्णैर्यनाहैश्च मगोष्णैर्यनाहयेत् । उपमाश्यां तु पिठिकां संत्येष यदिसोदुष्टनाम् ॥ ६ ॥

उष्णमा-विधिमा—उष्णमा नाम को विधिमा प्रथम स्वयं देखर बरिष्ठ यत्र से एताह (राह)  
देवे पश्चात् कयाय ह्यो क कक भोट सूी में श्वेत लिप रत्न रत्न ॥ ६ ॥ इससे उष्णमा निवृत्ता  
नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

कककपूर्णे कयायाणां शौद्रयुक्तं दवापरेत् । क्रम विषयिणोऽपि दुष्करीमूत्रयोर्दितः ॥ ७ ॥

पुष्परी भोट सम्भूट-विधिमा—विषय (वरेल विविग्नामो को क्रम म दुष्करी भोट  
सम्भूट विधिमा में भी कर्मनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्वकपाके स्वशाहानी च सेषयेन्मुद्रिता पुन । घटान्तेलेन कोष्णेन मधुरैकोपनाहयेत् ॥ ८ ॥

स्वकपाक, स्वर्ण हानि और गृहित-विधिमा—स्वकपाक, स्वर्णहानि और गृहित रोग में  
बला लेक को कुल गरम कर उससे घटान को मीनाया चाहिय और मधुर कर्म को भोजनको से  
विधिबन्ध उपनाह कर्ता चाहिये ॥ ८ ॥

रसक्रिया विधातृया लिपित्त घातपोनक । शूयपण्यादिभिः सिद्धं सैधं देयमनन्तरम् ॥ ९ ॥

उष्णोन्मत्त-विधिमा—उष्णोन्मत्त को शूय कर रस क्रिया करनी चाहिये (काप को र स कर  
लगाता चाहिये ) । पश्चात् शूयक पण्यादि (शूयकपादि) क द्वारा सिद्ध क्रिया से ज्ञान या चाहिये क  
रसक्रिया विधातृया क्रिया को लिपित्तशुद्धे । मांसापुदे मधुरैः क्रियां रसो घृणादिताम् ॥ १० ॥

जीर्णानुद-विधिमा—जीर्णानुद ने ममान जीर्णानुद को विधिमा करनी चाहिये ॥

त्रिकलां गुग्गुलुं चारि विशेषेण यथापरेत् ॥ ११ ॥

मांसाह-विधिमा—मांसाह में एताम में बरी मधुरां दिया (विधिमा) करनी  
चाहिय तथा विरला गुग्गुलु का भी विशेष सेव करना चाहिये ॥ ११ ॥

मांसपाके घटापय गणस्य विधिमाहृतं । कथापयू ककैश्च सेधोदुष्कर्मपत्रम् ॥ १२ ॥

मांसपाक विधि मा—मांसपाक में कथापयू का भी भोजनको में विधिपूर्वक बनाये दुद करण  
सूी और ककै से ज्ञान को क्रम से मिथन, उद्वृत्ता और करण करे कथापयू ककै से मिथन  
करे, सूी को ज्ञान पर सिद्धके और ककै का सेव करे ॥ १२ ॥

विश्वपी विधिमाहृतं रक्तविदूषणमेवम् । यद्व्याजितयायाय वाक्यपात्तने द्वित ॥ १३ ॥

विश्वपी विधिमा—विश्वपी में रक्त विदूषण के प्रथम में बरी दुई विधिमा को विदूषण  
करना चाहिये तथा कथापयू को भोजनको का विधिपूर्वक सेव करे काय करण लगाना या  
का प्रथम करना चाहिये ॥ १३ ॥

विश्वार्त्तं समुद्रिदव पुंज लघुलागिता । निरत्राशयत्र कर्मणा यदो मन्त्रविधिमा ॥ १४ ॥

विश्वार्त्त विधिमा—विश्वार्त्त में मन्त्र विधि से मन्त्र विधि से मन्त्र विधि ( मन्त्र ) क  
एकके ज्ञान से ली ली ली से ज्ञान कर का ज्ञान को विधिमा से मन्त्र विधिमा को  
मांसपुत्रं मांसपाके विदूषण विधिमाहृतम् । मांसपाक मधुरैः मिथु कर्ता विधिमा ॥

मांसपाक विधिमा—मांसपाक में मन्त्र विधि और विधिमा को मन्त्र विधिमा करे रक्त  
विधिमा को ॥ १४ ॥

अथ बुद्धिदानम् ।

विश्वपीविधिमाहृतं रक्तविदूषणमेवम् । मन्त्रविधिमाहृतं विधिमाहृतं विधिमाहृतं ॥ १५ ॥

श्यायाममभिसंतापमतिभुक्त्वा निपेविणाम् । शीतोष्णलहनाहारान् क्रमं त्यक्त्वा निपेविणाम् ॥  
घर्मप्रमभयातानां द्रुतं शीताग्न्युसेविताम् । अजीर्णाप्यशानां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥३॥  
नवाद्यदधिमत्स्याम्लद्वयानि निपेविणाम् । मायमूलकपिष्टासतिलघारगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥  
श्याय चान्ध्यनिर्गोशसे निद्रां च भजतां दिवा । विमान्गुरु-धर्मयतां पापं वा कर्म कुर्वताम् ॥  
पाप्मभिः क्रमभि सद्यः प्राक्कर्मैः प्रेरिता मला । पातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्ष मांसमग्न्यु च ॥

कुष्ठरोग-निदान--संयोग विरुद्ध भ न पागादि ( दुग्ध, मत्स्यादि पदार्थों का एक साथ ) सेवन करने से द्रव, सिन्धु तथा गुरु पदार्थों के अतिसेवन करने से वमन या अन्य मो मलमूत्रादि के वेगों की रोकने से अत्यन्त भोजन करके परिश्रम करने से अग्नि के अधिक तापने से शीत उष्ण-सपवास और आहारों का अनियंत्रित भूप-परिभ्रम तथा मय से पीड़ित होने से शीघ्र ही शीतल जल या सेवन ( पीने वा स्नान ) करने से, अजीर्ण में भोजन वा अभ्यसन करने से, पञ्चकर्म ( वमन विरेचनादि ) के विधिपूर्वक न रहने से नवीन अन्न दही, मखली, अम्लद्रव्य और लवण रस के अतिसेवा करने से, उदक मूला, पीठी, तिल घारद्रव्य और गुठ के अधिक सेवन करने से, आन के अक्षोर्ण अवस्था में मैथुन करने से, दिन में सोने से प्राणन पव गुरुजनों की अवहेलना करने से तथा भय ( गो मदा-दृत्यादि ) पाप कर्मों को करने से और अन्याय पूर्व जमा-जित पापकर्मों से प्रेरित होकर बातादि तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रक्त मांस और शरीर सम्बन्धी जल ( लसीका ) को दूषित कर देते हैं ॥ २-६ ॥

दूषयति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसमग्रहः । त्वघः कुर्वति वैषर्ष्यं दुष्टा कुष्ठमुद्गन्ति सत् ॥७॥

कुष्ठों का द्रव्यसंग्रह सात प्रकार का है, उन सातों में वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष हैं तथा त्वचा, मांस, रक्त और लसीका ये चारों दूष्य हैं । बातादि के दूषित होने पर ( पहले ) त्वचा विवर्ण हो जाती है और अतिदूषित होने पर ( पश्चात् ) कुष्ठ हो जाता है ॥ ७ ॥

कुष्ठ की सख्या--उपर्युक्त कारणों से सात महाकुष्ठ और अन्य मो पग्यारह सुद्र कुष्ठरोग मिलकर अठारह प्रकार के कुष्ठरोग होते हैं ।

अत कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैश्च तु । कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ॥ ८ ॥  
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकवतः ।

कुष्ठों की सख्या--( महा ) कुष्ठ सात और सुद्र कुष्ठ पग्यारह इस प्रकार १८ प्रकार का कुष्ठरोग होता है । उनमें वातिक, पैतिक कफज, वातपित्तज, कफपित्तज तथा वातपित्तकफज, ये सात महाकुष्ठ हैं । वस्तुतः सभी कुष्ठों में तीनों दोष कुपित रहते हैं किन्तु दोष की प्रधानता के अनुसार उनका पृथक् २ नाम रखा जाता है । जैसे 'कपाल' कुष्ठ में तीनों दोष कुपित रहते हैं किन्तु वात की अधिकता से इसकी गणना वातज कुष्ठों में होती है ॥ ८ ॥

अतिश्लथणत्वरस्पर्शां श्वेदाश्वेदौ विवर्णता ॥ ९ ॥

दाहः कण्डूस्त्वघि स्वापस्वोदः कोटोन्नतिः घ्रम । घणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥  
रूढानामपि रूढत्वं निमित्तोऽपि कोपनम् । रोमहर्पाऽसृजः कार्ण्यं हुष्टलक्षणमग्रजम् ॥ ११ ॥

कुष्ठ का पूर्वरूप--जब कुष्ठ होने की होता है तब उसके उस स्थान पर अत्यन्त चिकनाहट, सूखता और स्वेद ( पसीना ) अधिक होता है अथवा नहीं होता है तथा शरीर की विवर्णता, दाह, कण्डू, त्वचा में शून्यता, छईं चुमाने के समान पीड़ा कोठ ( चकत् ) का होना, परिश्रम नहीं करने पर भी यकान, ज्रणों का शीघ्र २ उत्पन्न होना और बहुत दिन तक रहना तथा अधिक शूल होना ज्रणों को रूढ़ होने ( पूर्ण भर जाने ) पर भी उनमें सूखता होना और भोड़े ही वारणों से ज्रणों में अधिक कोप हो जाना, रोमाश्च होना और रक्त का षाला पठ आना ये कुष्ठ रोग के पूर्वरूप हैं ॥ ९-११ ॥

तत्र कपालकुष्ठमाह--

कृष्णाण्य कपालार्भं यद्गृह्य पश्य सतु । कपाल सोदयहुल सकुष्ठं विषम स्मृतम् ॥ १२ ॥

कपाल कुष्ठ--जिस कुष्ठ का वर्ण काला, लाल अथवा कपाली अर्थात् घड़े के डुकड़ों के समान वर्ण का सूख, कठोर पतला अर्थात् जिसकी त्वचा पतली हो गया हो और छईं चुमाने के समान जिसमें बहुत पीड़ा हो उस कुष्ठ को कपाल कुष्ठ करते हैं । यह कुष्ठ विषम ( दुश्चिकित्स्य ) है ॥ १२ ॥

उदुम्बरमाह—

रुन्दाहरागकण्टमिः परीतं रोमपिभ्रमम् । उदुम्बरपत्राभ्यासं कुट्टमौदुम्बर यद्वृत् ॥ १३ ॥

उदुम्बर वृक्ष—जिस वृक्ष में पीटा, दाह राग ( लहर ) बन्दू होता हो तथा उस स्थान के रोम काँच बनी के हो और जो गुठर के फल के समान पीन रसक निहित बने का दा वही उदुम्बर वृक्ष कहते हैं ॥ १३ ॥

मण्डलकृष्णमाह—श्वेतं रक्तं स्थिरं स्वानं विगणमुत्सन्नमण्डलम् ।

कृष्णदन्त्योन्वयसंयुक्तं पुष्टं मण्डलमुत्पद्यते ॥ १४ ॥

मण्डल कृष्ण—जिस वृक्ष का वर्ण श्वेत रक्त, स्थिर ( पठित ) गद्गा या दलवाला, बिना, उठे हुए और परस्पर मिले हुये मण्डल वाला अर्थात् जिसके धरुते उठे हुये और परस्पर मिले हुये हो उस वृक्ष को मण्डल कृष्ण कहते हैं । यद् कष्ट साध्य है ॥ १४ ॥

ऋष्यजिह्वमाह—

वर्कतं रक्तपर्यंतमन्तः श्याव सपेक्षमम् । ऋष्यजिह्वामरुधनमृष्यजिह्वं तदुत्पद्यते ॥ १५ ॥

ऋष्यजिह्व—जिस वृक्ष का स्थान वर्कत ( राट रपत ) और चिनारे में रक्तवर्ण के तथा मृष्य में दयाम बनी हो, पीटा हो तथा पीले अशुभकोष वाले दरिद्रा को जिह्वा के समान हो वही ऋष्यजिह्व कहते हैं ( यहाँ 'ऋष्यजिह्व' पाठ है यहाँ ऋष्य की जिह्वा के समान अर्थात् समानता आदिसे ) ॥ १५ ॥

पुण्डरीकमाह—

सुरपेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकद्वेलोपमम् । रक्तान्तर्द्वैहकण्ट्यादयं विभं पत्रगियामुभि ॥

सोसेनं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

पुण्डरीक कृष्ण—जिस वृक्ष का वर्ण आरुध्न्य श्वेत पुष्प साग कितारी वाला पुण्डरीक नामक कमल के पत्तों के समान हो, चिनारे पर रक्तवर्ण बनी हो, उसमें गद्गा और कण्ट हो, जल में खरी हुए कमल की भाँति प्रतीत होता हो और कृष्ण उमड़ा हुआ हो तथा राग मुष्ण ( क्षामिका भिदे ) हो उसे पुण्डरीक वृक्ष कहते हैं ॥ १६ ॥

शिष्णकृष्णमाह—

सितां तादृशं तस्य च यद्भ्रजो वृष्टं विभुञ्जति । प्रापञ्चोदिति तन्निष्पन्नमण्डलमुत्पद्यते ॥ १७ ॥

शिष्ण कृष्ण—जिस वृक्ष का वर्ण श्वेत तथा तागा के रंग के देमा हो, वतना अपने भाग्य हो और कम के स्थान पर विभुजे से भूज को तरह घुटना हो और माद वर वधायन पर द्वारी ( गेठी ) के पुत्र के समान हो वही शिष्ण कहते हैं ॥ १७ ॥

वाटमण्डितमाह—

पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काष्ठमाग्निपट्टोपमम् । सदाहमण्डितं सर्वं स्यात्कं शीघ्रवेद्यम् ॥ १८ ॥

वाटकाग्निपट्टोपमं स्यात्कं शीघ्रवेद्यम् । त्रिदोषविद्धं तातुर्द्ध काष्ठं शीघ्रं शिष्णपि ॥ १९ ॥

वाटमण्डित कृष्ण—जिस वृक्ष का वर्ण रक्त और कृष्ण में वृष्ण वृष्यो के अक्षय का तरह मुष्ट हो, यहाँ रपत मरी उदा भावे, वसमें दाह और पीन अशुभ हो तथा धरुपी के वर्ण का पाक मुष्ट तीव्र वेगना वाला हो और लोको लोको के प्रकल लक्ष्मो से मुष्ण हो वर वृक्ष वाटमण्डित कृष्ण है ॥ १८-१९ ॥

अश्वेत्तदा सुद्रवुत्तानि ।

नव पर्येदमाह—

अश्वेत्तदा मण्डलानि वाग्मण्डलानि स्यात् । तदेतदुक्तं शर्करां कर्षं बहुलं हृदिपत्रयम् ॥ २० ॥

अश्वेत्तदा—जिसमें श्वेत मरी हो वृष्ण लो न मी वर व हो, जो मरुपी के वृष्णों के समान शिष्णोत्तर और श्वेती के धर्म के समान और जो वही अश्वेत्त कहते हैं ॥ २० ॥

शिष्णमाह—श्वेतं शिष्णवर्णं सर्वं शिष्णं स्यात् ।

शिष्णवर्ण कृष्ण—जिसका वर्ण श्वेत हो तथा शिष्णवर्ण नामक ( वस ) और श्वेती की जैसे शिष्ण कृष्ण कहते हैं ॥

श्वेतीरमाह—श्वेतीरं शिष्णवर्णं शीघ्रवेद्यम् ॥ २१ ॥

वैपादिक कुष्ठ—जिसमें हाथ-पैर आदि पट जाते हैं और तीव्र पीड़ा होती है उसे वैपादिक कुष्ठ कहते हैं ॥ २१ ॥

अल्पसकमाद—कण्डूमन्निः सरागैश्च गण्डरत्नसक घटेषु ॥

अल्पसक कुष्ठ—जिसमें कण्डू और राग युक्त ( रक्तवर्ण के ) गण्ड वा फोड़े हों उसे अल्पसक कुष्ठ कहते हैं ।

दद्रुगण्डलाद—सकण्डुरागपिटिक दद्रुगण्डलमुद्गतम् ॥ २२ ॥

दद्रुगण्डल कुष्ठ—जिसमें कण्डू और लाग्निमा लिये हुये पिडिका युक्त गण्डलाकार त्वचा के ऊपर गण्डल हो उसे दद्रुगण्डल कुष्ठ ( गण्ड ) कहते हैं ॥ २२ ॥

चर्मदलनाह—रक्त सशूण कण्डूमास्फोट यद् दलयत्यपि ।

तच्चर्मदलमाख्यातमस्पृशसहमुच्यते ॥ २३ ॥

चर्मदल कुष्ठ—जिसका वर्ण रक्त हो, उसमें शूल हो, कण्डू हो, फोड़े हों और फूट भी जाते हों और जिसी प्रकार वा स्पर्श असह्य हो उस चर्मदल कुष्ठ कहते हैं ॥ २३ ॥

पामामाह—सूक्ष्मा घट्टयः पिटिकाः स्त्रावयत्यः पामोयुक्ताः कण्डूमत्यः सदाहाः ।

पामा कुष्ठ—जिसमें छोटी २ बहुत सी पिडिकायें हों प्राय और दाह होता रहे उसे पामा कुष्ठ कहते हैं ॥

सैव स्फोटैस्तीव्रद्वैरुपेता श्रेया पाण्यो कण्डूरमा स्फिजोश्च ॥ २४ ॥

कण्डूकुष्ठ—वही पामा जब तीव्र दाह और पिडिकाओं से युक्त होकर शर्षों और स्फिक् प्रदेश ( कुहे ) में उग्ररूप से हो जाते हैं तब उन्हें कण्डू कहते हैं ॥ २४ ॥

विस्फोटमाह—स्फोटाः श्यावारुगामासा पिस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥

विस्फोटक कुष्ठ—जिस में पिडिकायें श्यामा अथवा अरण वर्ण की हों और उन पर की त्वचा पतली हो उसे विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं ॥

रक्तसामाह—कण्डूचिता या पिटिका शरीरे सखाम्यमाणा रक्तसोच्यते सा ॥ २५ ॥

रक्तसा कुष्ठ—जिस में शरीर पर पिडिकायें कण्डू तथा स्त्राव युक्त बनी रहें उसे रक्तसाकुष्ठ कहते हैं ॥ २५ ॥

शतारमाह—रक्त श्याव सदाहाति शतार श्याद्रुवणम् ॥

शतारकुष्ठ—जिसमें रक्त अथवा श्याम वर्ण के दाह युक्त बहुत से मण हो उसे शतार कुष्ठ कहते हैं ॥

विचचिकामाह—सकण्डू पिटिका श्यावापहुस्त्राया विचचिका ॥ २६ ॥

विचचिका कुष्ठ—जिस कुष्ठ में कण्डू युक्त, श्यामवर्ण की बहुत स्त्राववाली पिडिकायें हो उसे विचचिका कुष्ठ कहते हैं । यह विपादि का कुष्ठ का भेद है, स्वतः इसकी गणना कुष्ठों में नहीं है ॥

पाण्डुरं शिप्रमिरयुक्त, सस्त्रावं कण्डूसंयुक्तम् ।

शिप्र कुष्ठ—जो पाण्डुवर्ण का स्त्राव और कण्डू युक्त हो उसे शिप्र कुष्ठ कहते हैं ॥

अनग्निदग्धजं साध्य शिप्रं यज्यमत्तोऽन्यथा ॥ २७ ॥

साध्यासाध्यता—यह शिप्र यदि अग्नि से जलने के कारण नहीं हुआ हो तो साध्य है और अन्य सभी असाध्य हैं ॥ २७ ॥

कुष्ठाना ऽोचत्रयस्य निवतलिङ्गमाह—

खर श्याधारुण रूण चातकुष्ठ पयेदनम् ।

चातकुष्ठ—जो स्पर्श में कठोर हो, वर्ण श्याम अथवा अरण हो, रूख हो और पीड़ा जिसमें अधिक हो उसे चातकुष्ठ जानना चाहिये ॥

पित्ताप्रकुपित दाहरागस्त्रायान्वितं मतम् ॥ २८ ॥

पित्तकुष्ठ—जिसमें दाह, राग ( लाग्निमा ) और स्त्राव हो उसे पित्त कुष्ठ जानना चाहिये ॥

कफाखलेदि धन स्निग्ध सकण्डूशैत्यगौरवम् ।

कफकुष्ठ—जिसमें क्लेद ( पूय ) हो धन गाणपन हो, स्निग्ध ( पिच्छिलता ) हो, कण्डू हो, शीतलता हो और गुरुता हो उसे कफ कुष्ठ कहते हैं ॥

द्विद्विद्रं द्वद्वं कुष्ठ त्रिद्विद्रं साधितानिकम् । रसादानिरसोदायमीषण्डपदम् ज्ञायते ॥ ३९ ॥  
 द्वन्द्व और साधितानिक कुष्ठ—इन द्वयुक्त अणुओं में दो दोषों के मिश्रित रसना कष्टे वह  
 दो द्वन्द्व और तीनों दोषों के मिश्रित रसना कष्टे को साधितानिक कुष्ठ कहते हैं । साधितानिक  
 कुष्ठ में तृतीय का ज्ञान तथा रस गरी होगा और योही र सुखली होगी है ॥ ३९ ॥

रसादी तृतीयोत्तर मसबाहुपनकुष्ठान्दां प्रमेनोत्पत्ते—

तत्रादी रसात्तगाद्—एवमथो वैवर्ण्यमत्रेषु कुष्ठे रीक्ष्य च जायते ।

एवमथापी रोगहृषध रयदस्यापि प्रवणमम् ॥ ३० ॥

रसागत कुष्ठ के रसना—कुष्ठ जब रस भाग के आशय से होता है तब जगमें रस का पा  
 विकर्षण, रसा में रसागा, रोगाध और रवेर अधिक होता है (इसमें भाग रसा में हो रसा है  
 इसी कारण इसे रसागत भी कहते हैं) ॥ ३० ॥

रसगामार—

कण्डूविषयकश्चैव कुष्ठे शोणितसम्भिते ।

रसगत कुष्ठ—जिसमें सुखली और पूष अधिक होता है उसे रसागत कुष्ठ जानना चाहिये ।  
 बाहुपन्यं पक्षप्रशोषण्य काररयं त्रिद्विकोद्गमा ॥ ३१ ॥

तोदः रफोटाः सिररत्यं च कृष्णे मांसममाभित ।

मांसगत कुष्ठ—मांसगत कुष्ठ में बाहुपन ( मोट मोटे मण्डक ) हो जाते हैं, गुरु रसागा है,  
 मांस कष्ट हो जाता है और विविधोपे विहसनी है, सुख तथा यत्र सुखाने के समान पीदा  
 और रसोद होता है । यह मांसगत कुष्ठ अरुण होता है ॥ ३१ ॥

मेदोगतमार—दौमण्यं गात्रशोषण्यं पूषोत्था कृमयनया ॥ ३२ ॥

शाप्रानां मेदन चापि कुष्ठे मेदसमाभित । कौष्यं गतिषयोऽग्रानां मग्नेदः पतसर्पण्यं ॥ ३३ ॥  
 मेदस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि सधैव च ॥ १

मेदोगत कुष्ठ—जिस कुष्ठ में कुशीप हो, उरीर के अह दूरीन हो, पूष में दूषि उरान्य हो,  
 उरीर का मेदन हो, दाप देदु हो चलने को गति का गाठ दो, अह दूरन हो, धन ( कुष्ठ  
 मण्डक ) पीनया हो और पूष कथित रसा भागुगत कुष्ठ के सभी अणुओं की होये हो गते मेद-  
 स्थान गत कुष्ठ जाना चाहिये ॥ ३२-३३ ॥

अभिरागनादवागमार—

मासाभद्रोऽपिरागण्यं चोपेयु मिमिसमागण्यं । शयोपवागण्यं मग्नेद्विषयममागण्यमिते ॥ ३४ ॥

अभिर और मकरागत कुष्ठ—जिस कुष्ठ में मांसिक रस हो तब रस कर्षण के हो यत्र  
 त्रिभि उरान्य हो और रस का मांस हो जाये जा चाहिये और मग्नेद रस कुष्ठ जानना चाहिये ॥

सुखगामार—

द्वन्द्वयोः सुखमाहुषण्यं सुखगोणितशुक्रयोः । यद्वयं ससाधर्मं तेषं तद्वि कुष्ठिण्यं ॥ ३५ ॥

सुखगत कुष्ठ—द्वन्द्व-द्वन्द्व के कुष्ठ बाहुपन से दूषित रस और कौर्षी का मांस मण्डक कुष्ठ  
 से अरुण सुख रसो है । अत्र किसे जग से ही कुष्ठ हो गये शुक्र मण्डक कुष्ठ कहते हैं ( रस गत  
 रस से अरुण सुख बाहुपन के कुष्ठों से जो सन्धान हीन है वह जग होकर ही कुष्ठ रसो है ) ॥ ३५ ॥  
 सन्धानमादमार—साध्यं त्वममनांसस्यं वागारलेपाधिकं च यत् ।

मेदोगं हृग्द्वयं ययं ययं मग्नेद्विषयसंश्लिष्यं ॥ ३६ ॥

साध्यामादमार—अवयव ( रसागा, रसागा, रसागा, रसागा और रसागा की अवयव  
 हो होने कष्टे कुष्ठ मण्डक रसो है तथा मेद बाहुपन कुष्ठ और बाहुपन कष्ट रस और रसा रसा  
 अवयव कष्ट मण्डक रसो है ॥ ३६ ॥

सुखगामार—

द्विद्विद्रं द्वद्वं कुष्ठ त्रिद्विद्रं साधितानिकम् । रसादानिरसोदायमीषण्डपदम् ज्ञायते ॥ ३७ ॥

द्विद्विद्रं द्वद्वं कुष्ठ त्रिद्विद्रं साधितानिकम् । रसादानिरसोदायमीषण्डपदम् ज्ञायते ॥ ३७ ॥  
 द्विद्विद्रं द्वद्वं कुष्ठ त्रिद्विद्रं साधितानिकम् । रसादानिरसोदायमीषण्डपदम् ज्ञायते ॥ ३७ ॥  
 जिस कुष्ठ में द्विद्वि हो गये हो, रसा हो, रसागा हो को रसागा हो रसागा हो  
 द्विद्वि रसागा रसा ( रसागा ) हो, को रसागा हो जिसमें रसा रसा रसा रसा हो, मेद रसा

के हो गये हों, रस गट हो गया हो पद्मकर्म ( रगत विरेचनादि ) के गुणों को निष्फल करके जो उत्पन्न हुआ हो वह कुष्ठरोगी को मार चालता है अर्थात् ये सब कुष्ठ असाध्य है ॥ १७ ॥

कृष्णैश्चिरित्सार्यं शोषमाधान्यमाह—

पातेन कुष्ठ कापाल पित्तादीदुग्धरं कफात् ।

मण्डलाप्य विचर्षा च श्राप्याप्य पातपिच्छजम् ॥ १८ ॥

कुष्ठरोग में पातादि दोषों की प्रधानता—पात की प्रधानता से कापालकुष्ठ, पित्त की प्रधानता से भौदुग्धर कुष्ठ, रस की प्रधानता से मण्डक तथा विचर्षिका कुष्ठ और वातपित्त समय की प्रधानता से श्राप्यमिष्ट कुष्ठ होता है ॥ १८ ॥

चर्मकुकुष्ठविटिभसिष्मात्सविपादिका । घातरश्लेष्मोद्गयाः श्लेष्मपित्ताद्दुपातारुपी ॥ १९ ॥

पात-कफ की प्रधानता से चर्मक, विटिभ, सिष्म, भलस और विपादिका कुष्ठ होते हैं ॥ १९ ॥

पुण्डरीकसविरसोट पामा चमदल तथा । सर्वे श्यात्काक्षण पूर्ण त्रिक वदु सकाकणम् ॥ २० ॥

पुण्डरीकगृह्यजिह्वा महाजुष्टाति सप्त तु ॥

कफ-पित्त की प्रधानता से दद्दु श्यात्क, पुण्डरीक, विरसोट, पामा तथा चर्मदल नामक कुष्ठ होते हैं सब त्रिदोषों की प्रधानता से काकण कुष्ठ होता है । इस प्रकार पहले के त्रिक अर्थात् कपाल, वदुग्धर और मण्डक कुष्ठ तथा दद्दु, काक्षण, पुण्डरीक और श्राप्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ होते हैं ॥ २० ॥

शित्रमाह—

कुष्ठैकसम्भय शित्र किलासं दारुण च यत् । निर्दिष्टमपरिकापि त्रिधावृक्षयसध्रपम् ॥ १ ॥

द्वित्र कुष्ठ के लक्षण—कुष्ठ के ही समाप्त कारणों से उत्पन्न होने वाले अर्थात् जिन २ विशद ओषधन, पाप कर्मादि से कुष्ठ होता है उन्हीं सब कारणों से उत्पन्न होने वाला शित्र, किलास अथवा दारुण कुष्ठ होता है । इसमें छाव नहीं होता । यह त्रिदोष से अथवा त्रिधातु ( रक्त-मांस-मेद ) से उत्पन्न और त्रिधातु का आश्रय परके रहता है ॥ १ ॥

याताद्रूपारुण पित्तात्ताम्र कमलपत्रप्रयत् । सदाहं छोमविष्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ २ ॥

सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेद सु चाऽऽदिशेत् । घर्णनैर्येहगुभयं कृच्छ्र तद्योत्तरोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

पातादि भेत् से शित्र के लक्षण—पात कोप से उत्पन्न शित्र रस में रक्त तथा लाल वर्ण का होता है, पित्त कोप से उत्पन्न ताम्र वर्ण के लाल कमल पत्र समान दाह युक्त और रोम को नष्ट करने वाला होता है । कफ कोप से उत्पन्न श्वेत वर्ण का, धा ( इट ) और गुरु ( भारी ) और वण्डु युक्त होता है । यह कुष्ठ रोग मम से रक्त, मांस और मेद के आश्रय रहता है अर्थात् यातज अरण वर्ण का रक्त गत होता है, पित्तज ताम्र वर्णादि का मांस गत और कफज श्वेत वर्णादि का मेदो गत होता है । इसके दो भेद और भी हैं एक म्रण ( अनग्निदग्ध म्रण ) होने वाला और दूसरा शातादि दोषों से होने वाला । ये दोनों प्रकार के ( म्रणज, दोषज ) कुष्ठ उत्तरोत्तर बढ साध्य होते हैं ॥ २-३ ॥

तस्य साध्यासाध्यत्वमाह—

अशुक्ललोमावहुलमससृष्टमयो नवम् । अनग्निदग्धजं साध्य शित्र वज्र्यमतोऽन्यथा ॥ ४ ॥

शित्र कुष्ठ की साध्यासाध्यता—जिस शित्र के रोम अधिक सफेद न हुए हों, त्वचा पत्रली हो, परस्पर सटा हुआ न हो, नमीन हो और अनग्निदग्ध ( अग्नि से जलने के कारण नहीं हुआ ) हो वह शित्र कुष्ठ साध्य होता है और इसके विपरीत लक्षण वाला शित्र कुष्ठ असाध्य होगा है ॥ ४ ॥

गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् । धजनीय विशेषेण किलास सिद्धिमिच्छता ॥ ५ ॥

गुह्य स्थान ( लिंग-योनि-गुदा आदि ) में हाथ की हथेली तथा पाँव के तलवों और ओष्ठों में हुए शित्र कुष्ठ यदि नवीन भी उत्पन्न हुआ हो तो वह असाध्य है ॥ ५ ॥

कुष्टादिससर्गजाप्रोगानाह—

स्पर्शकाहारकाय्यादिलेयनारप्रायशो गदा । सर्वे सञ्चारिणो नेत्रत्वक्विकारा विशेषत ॥ ६ ॥

कुष्ठ आदि ससर्गज रोग—स्पर्श करने से, जूठा खाने से और शय्या पर सोने से संसर्गज रोग संसर्ग के कारण फैल जाते हैं । विशेष कर नेत्र और त्वचा के रोग तो अवश्य ही फैल जाते हैं ॥



प्रमत्तान्नाश्रयसंपत्तांश्चिन्वासाणामहमेतन्नाम् । महान्प्र्यायनाद्यानि घटमाहवातुस्तेष्वम् ॥ १६ ॥  
कुष्ठं श्वरश्व घोषश्च मेघाभिष्वन्द्य पुष्य च । श्वंरमगिहवाताय सद्यश्चात्मनि नाशयन् ॥ ४ ॥  
परस्पर एक दूसरे का रोग, शरीर के स्थानों में, आस प्रशास के परस्पर-गंदीस ही, एक अन्य मोहन या श्वरश्व पर उपन करने और बैठने से तथा एक दूसरे के श्वर-घात आदि के कारण करते हैं कुष्ठ, श्वर, घोष (गौतमिष्वन् और श्वंरमगि (शोषण-रोग) एक दूसरे से दूसरे मनुष्य की हो सकते हैं ॥ ७-८ ॥

मरणां यदि कुष्ठेन पुनर्जातरय तस्यपेत् । भातो निगद्यतो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ९ ॥  
पुनर्ज म में भी कुष्ठो होने का बचन—यदि कुष्ठ रोग की भांति ये ही श्वर हो उनके ही पुन ज म होने पर भी कुष्ठ रोग मनश्य हो भाशा है । कुष्ठ से बड़ा भिरा काल दूसरा रोग नहीं है ॥ ९ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा—

घातोष्ठरेषु सर्पिषमन श्लेष्मोष्ठरेषु कुष्ठेषु । विषोष्ठरेषु मोषो रश्मरप विरचन विहितम् ॥ १० ॥  
कुष्ठ की सामान्य चिकित्सा—घात की अभिकता स होने का कुष्ठ में ( की ५५ १५३ ) पुन श पात कराना चाहिए, श्वर की अभिकता स होने का कुष्ठ में वजन कर्म कराना चाहिए और विष की अभिकता से होने वाले कुष्ठ में रश्मोष्ठा और विरेचन कराना चाहिए ॥ १ ॥ १० ॥  
प्रमृतं वा शलोकामि शृङ्गाश्लेषु निराश्रयैः । दिनम्परय मोषधद्राक्षं दुष्ट दुष्ट दुष्टः पुनः ॥ ११ ॥  
यदि एक अधिक दुषित हो गया हो तो रोगी को परम श्रेष्ठ देव भांति स, तिरी हो गुम्बी से और निराश्रय वा के एक शिष्टता देव । कुष्ठो—में वा ३ लेना करना चाहिए ता श्रुते रथे हते घोषे क्लहै संसमिते-निते । इसाद्यानि पापाद्य प्रसारताः पुष्टिनो माताः शशेः ।  
कुष्ठ रोगी का एक मोष्ठा कराकर (विरेचनदि से) श्वर की रश्म पर श्रेष्ठन आदि में शायु का शान्न होणे पर रसायन और माष (अक्षरह) आदि देना उचित है ॥ १ ॥ ११ ॥

वयनम्—

घषवासापटोत्तानां निरश्म्य फलिनीश्रयः । हवापो मनुगा पीणो शान्तिकुम्भमृगास्त्रिणा ॥  
वयन विधि—श्री, मागा (अक्षर) परवन ५५, नीम तथा बीना यथा की घाल और यैन वन (की सगभाग भवा विधिपूर्वक वशय का १५) के साथ घाल करने से वयन होना है त विरेचनम्—विरचन प्रयोग्य त्रिष्टुटनीपट्टत्रिः ।

विरेचन विधि—१। १। ४ द-नीमूल और चलापट (अक्षर, रश्म, बरदा) का च व फिलि से विरेचन होना है ॥

पथे माये निरामोषं प्रतिमामं विरेचनम् । प्रतिशतं च वयनं कुष्ठे लेवं मृदाकोलेत् ॥ १२ ॥  
चिकित्सा-वयन—कुष्ठ रोग में वयन श्री कहीन पर (शिलाकोलेत् द्वारा चलापट) और पाथेक मही में विरेचन देना, पाथेक वयन में वयन कराना और नीम र शि पर श्रेष्ठ का च वा दिदे ॥ १ ॥ १२ ॥

अथ लेपाः ।

पक्ष्पाटरुमि दाघजितासक्तुसुमेरुष्यैः । विरहयदितिः विरहंनमातेन कुष्ठजिम् ॥ १३ ॥  
दक्ष्पा—दक्ष, श्वर, श्वर, श्वात दक्षि, कला शोक मेरा मयन कर २ दक्षिण को सम्पत्ता लेखा मूल के साथ विरहपूर्वक शोषण देव ७-४ से के का चर होना है । १ ॥ १३ ॥  
एणापुष्टिविह्वामि पगाद्या विमर्कं कटा । दानी रगाश्रमं पीणि सैत्र कुष्ठविशारदा ॥ १४ ॥  
वर्मा—दक्ष मूलो दू, कापटि न ही, विरह मूल, बरिणा ५, १ पक्ष और श्वात को सम्पत्ता लेखा मूल के साथ विरहपूर्वक शोषण देव ७-४ से के कुष्ठ रोग के होना है ॥ १ ॥  
मन्त्रविद्याये मत्तिकाये मेष्ट्याकै पय कुष्ठद्रव्यं पदा ।  
दक्षिणी लपि ता—दक्षिण ५, बरिणा, ५, पीणी ५ ५० और श्वात पर कुष्ठ मन्त्राकर विरहपूर्वक शोषण देव ७-४ से के कुष्ठ रोग के होना है ॥ १ ॥  
विरहपूर्वक शोषण मन्त्र—श्वर मन्त्रे से कुष्ठ रोग के होना है ॥ १ ॥

करज बोझादि लेप—करज के बीज चक्रमर्द के बीज और कूट को समभाग लेकर गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बलियव्याग्निमक्षलातदन्तीनाम्याकनिग्दकैः । काञ्जिकै वैपितैर्लेप श्वेतकुष्ठविनाशकृत् ॥ ४ ॥

श्वेत कुष्ठ में बर्यादि लेप—गंधक, वायविटग, चीता, भिलावा, दन्तो, अमलतास की जड़ और नीम की छाल को समभाग लेकर कांजी के साथ विधिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

श्वेतकरधीरमूलं गुटजकरक्षास्यचो द्वाभ्यां । सुमन प्रवालसुक्तो लेप कुष्ठापहः सिद्ध ॥ ५ ॥

श्वेत करधीरादि लेप—श्वेत फीर की जड़, कुटे की छाल, करक्ष की छाल, दारुहृदी और चमेरी के शोगल पत्र को समभाग लेकर जल के साथ विधिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से श्वेत कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दौलेयकनिषलकयष्टिसाक्षसौराष्ट्रिकासर्जरसोरपलानि ।

दिलो च चूर्णा नयनीतयुक्तं कुष्ठे रज्ज्वत्यभ्यधिकं प्रदिष्टः ॥ ६ ॥

दौलेयादि लेप—दौले छरीला, बमोला, जंठी मधु, फिटकरी, राल, नील फमल और मैनसिल को समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण पर मकरान में मिलाकर गाढ़ा लेप लगाने से छाव देने वाला कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

रसगन्धकयोः पिष्ट कटुतैलेन भृद्भजैः । वृषैः समर्धं तद्वेपारसर्वकुष्ठं विनश्यति ॥ ७ ॥

सब प्रकार के कुष्ठ में लेप—पारद और गन्धक को समभाग लेकर विधिपूर्वक खरल कर बमोली बना कर सरसो के तेल के साथ मर्दन कर लेप लगाने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

अथ द्वाधाः ।

गुडुशीत्रिफलादावीकाय उष्णैश्च चारिभिः । रसदोषप्रणशोफज्ञ पीतो माससगुगुलु ॥ १ ॥

गुडुच्चादि द्वाधा—गुरुची, आवला, हरद, बहेदा और दारुहृदी समभाग लेकर विधिपूर्वक काय करके इसमें गुडु गुग्गुलु का प्रक्षेप देकर तण्णोदक के साथ एक मास तक पान करने से सभी प्रकार के रक्ता के दोष ( कुष्ठ विसर्पाणि ) और प्रण शय नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

खदिरत्रिफलानिग्दपटोलासृत्वासकं । अष्टकोऽय जयेत्कुष्ठकण्डुविरकोटकानपि ॥ २ ॥

खदिराष्टक—खैर की छाल, भौबला, हरद, बहेदा, नीम की छाल पटोलपत्र, गुर्ची और अरुसा इन आठों बीजधियों को समभाग लेकर विधिपूर्वक काय कर पान करने से कुष्ठ, कण्डू और विरकोटक रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

महाकषाय — गुण्ठीनिम्बकिराततिक्तककणापाठाहरिद्राश्रयम्  
 श्रायन्ती त्रिफलाऽमृताऽम्बककटुका घामा घषा बाकुची ।  
 मञ्जिष्ठाऽतिथिपादुरालभमहानिम्बाग्निपद्मत्र्यङ्गिका  
 व्याघ्रिणा गजचिर्भटा सकुटजा भाङ्गी समुस्तायवा ॥ १ ॥  
 मूर्वा चैव पटोलपत्रसहिता रक्त तथा चन्दन  
 श्यामा पर्पटसारिवा कृमिहरा वायत्रिकासयुता ।  
 गोमूत्रेण महाकषायमरुणोद्भूतं पिल्लेद्यं पुमां  
 स्तस्याष्टादश यान्ति नाशमघिरारकुष्ठानि बुष्टान्यपि ॥ २ ॥

महाकषाय—सोठ, नीम की छाल, चिरायता, पीपल, पुरान पादो, हल्ली, दारुहृदी, श्रायमाण, अंबला, हरद, बहेदा, गुरुची कमल अथवा शिंजल, कुटको, अरुसा, बच, बाकुची, मजोठ, अतीस, जवासा, बकायन, चीते की जड़, बच, अमलतास की शुरी, माहरि, कोरवा की छाल बमनेठी नागरमोथा, जी, मूर्वा, परबल के पत्रे रक्त चन्दन श्यामालता (कृष्ण सारिवा) पिप्प पापदा, श्वेत सारिवा, वायविटग और तैर की समभाग लेकर विधिपूर्वक काय बना कर इसमें गोमूत्र का प्रक्षेप देकर छयाँय के समय जो मनुष्य पान करता है उसके अठारहों प्रकार के दूषित कुष्ठ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

नवकषाय — त्रिफला  
 एष कषायोऽभ्यस्तो निहतः

मन्त्रक कथाद—भ्रंशना, हरण, वरदा, नीम की छान वरक के मध, मरीच कुण्डो वर  
मोट हनी को समभाग मन्त्र विविध्नु काय बना का मेरन माने ती मन्त्र-विष्ट मे कल्पन हर  
कुष्ठ मष्ट होते हैं ॥ १ ॥

सर्दरौ-कम्—

प्रलेपोद्धर्तनरनाभयानमात्रनकमद्यु । शीतिलां राशिरि पाणि सयावदोपनाशनम् ॥ १ ॥

सर्दरौकम्—रौर का स्वस्व, बाय शीट पूर्ण भाति विविध्नुक का वर लेव, उरुवज,  
रान, वाग और मोहन करने ६ एक प्रकार के लवा के दाप ( कुष्ठ-रिसादि ) नष्ट होने हैं ती  
दुष्टमानाद्रुष्यत कुष्ठमे ममूलादिदादसः । साम्यपाश्रीरसपीत्रो हवाकुष्ठ समापनम् ॥ २ ॥

गरिरस रस—रौर की जड़, टाल तथा एकड़ो ( पथाङ्ग ) केकर कुष्ठ रं के करके मध के  
साध मन्त्र में रसका पकाये जब रस मडो मोति मन्त्र में का माये लव या रस में मन्त्र  
विशुद्ध रौर के रस में गोघृण, भोवठे का रस और ह्रद का प्रज्वर देकर दाम करने ती कुष्ठ  
मष्ट होना है ॥ २ ॥

गिम्बादिमन्त्र—

निम्बपत्रप्रदात विष्णु निम्बामलकमेव च । विहङ्गवाकुधीकृत्कं विद्यदाकुष्ठमाशनम् ॥ १ ॥

गिम्बादि मन्त्र—नीम के एक ती पत्तों को मधवा नीम मोट भोजन निम्बकर पीठका पत्र  
मरे मधवा कापविष्टा और बाकुधी का वरक बनाकर तद मन्त्र लेना वरें लव एक कुष्ठ मष्ट  
गरी हो जावे ॥ १ ॥

शय चूर्णानि ।

तथाश्री पञ्चाम्बुपूर्णम्—

विष्णुमन्त्रपत्र पूर्णं त्वपवत्रं मूलेषु च । पञ्चाम्बुनि च सूक्ष्मानि ममपूर्णानि कारयेत् ॥ १ ॥

अष्टमागापदेभ्यः सादिरासनधारिणा । भावयित्वा शु स्रयोम द्वाध्वाप्यतामि क्षापयन् ॥ २ ॥

पञ्चाम्बु पूर्ण—नीम के पत्र, कुष्ठ, टाल, दण और जड़ रस वापी को समभाग के १  
विभिपूर्वक मरीच पूर्ण का लेके पथाङ्ग रौ और निम्ब तार समान मात्र का विविध्नु मन्त्र  
लेव काय बनाकर उष्ण काय से उष्ण पूर्ण को भावित करे । फिर एक भागिण पूर्ण में एकडे  
भाषा भागे मिश्री कुष्ठ द्रव्यों के पूर्ण को मेषा त्रके भाग के पूर्ण से मिला लेवे ॥ १-२ ॥  
विप्रबोध्य विहङ्गानि क्यापिमातककर्कटा । भवामनदृष्टीतवरी शुभ्रममलरतोपुता वरेण  
पञ्चमदृक्कापुष्पीपिण्ण्डीमरिषि निशा । छोटपूर्णममापुर्णं सममात्रं प्रमाणात् ॥ ३ ॥

के द्रव्य से हैं—विहङ्ग मूल, कापविष्टा, कनकलास की छुनी, टला, कुष्ठ पिण्ण्ड, हरण  
मोट कोवला, गोवात, पञ्चमर का बीज, बाकुधी पीरक, मरिष एकड़ी और कोटमम शोभ  
समभाग छेकर पूर्ण करे ॥ १-४ ॥

भाष्येदुम्बुलरामेन पुनः शुष्कानि कारयेत् । निम्बाम्बुनामतेपामेहीहृष्य विभाषणम् ॥ ५ ॥

विद्यालवपूर्णं शु सर्दिषा परामादिषि वा । प्रगात प्रातश्चैवत सादिरासनधारिणा ॥ ६ ॥

उष्ण समान पूर्ण को भावने के पश्चात् में भावित कर लूया कर एक के प्रम ५ की म पा री  
पूत भवना से कुष्ठ के मन्त्रासन से प्रातःकाय मन्त्र करे और दिन तथा विप्रकला का विविध्नु  
काय मन्त्रासन दाम करे ॥ ५ ६ ॥

परिहारो म पाथायिण पञ्चविम्बेऽपिपुष्टि । ममागापदेभ्यो म मूले इमि सारायणम् ॥ ७ ॥

एग दधि म पूर्ण की रं कर के मन्त्र विष्णु विष्णु दध्याप्य मन्त्रादिनी १ टिप  
वरु के दाप की भावयणना गरी है । एग रसका के एक भाग मरीच करके ती मष्ट मष्ट  
ही माना है ॥ ७ ॥

वपशुर्षं पीठिकायुक्ते मरीच निवृत्तकाङ्गा । अहाहमरिषि कुष्ठे मन्त्र चैव पदापय ॥ ८ ॥

मर्षलाठिविभुमुष्णं च दूधपेयं म गुणी ॥ ९ ॥

हरण के रौ, मोहन वरु निम्बकर, बा रू करके कुष्ठ और मन्त्र मन्त्र के  
हरण मरीच रोग हनी मष्ट होते हैं और की लव मन्त्र हरणपुष्टि सुम्पूर्ण ( विष्णु मन्त्र )  
करके है ॥ ९ ॥

उद्धूलने सर्वपादिचूर्णम्—

सर्पपकरक्षरजनीदारनिशादात्मजिष्ठाः । त्रिफलाशटीपटीररवेतामूर्वाभ्रियङ्गुकाश्चपि ॥ १ ॥

त्रिकटुप्रियाङ्गुकेसरलापाश्चैषां कृतं रज श्लक्ष्णम् ।

उद्धूलनेन रक्तगवित्तजपातोरियत्त पापि ॥

निस्तीक्ष्णैर्वपितिक कुष्ठस्फुटन विनाशयति ॥ २ ॥

सर्पपादि चूर्ण—सरसो, करज, दलही, दारुहृदी, मजीठ, हरद, बडेदा, आंवला, कचूर, चन्दन, श्वेत सारिवा अथवा अतीस, मूर्बामूल, भ्रियङ्गु, सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, केसपात, नागकेसर और लाल को समभाग लेकर विधिपूर्वक महीन चूर्ण कर कुष्ठ के त्रणों पर छिद्यकने से रक्तज, पिच्छम और वातज कुष्ठ नष्ट होते हैं तथा तीस (शुई चुमाने के समान पीछा) और भेद (टूटने के समान पीछा) से युक्त कुष्ठ मग, पिटिका, कुष्ठ और कुष्ठ का पूट २ कर करना ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

विट्हादिचूर्णम्—

विट्हादिचूर्णं छीद समाधिकम् । हन्ति कुष्ठं हृमीमेहासादीदुष्टमगदरान् ॥ १ ॥

विट्हादि चूर्ण—वायव्यम, हरद, बडेदा, आंवला और पीपल को समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के अनुपात से चाटने से कुष्ठ, कृमि प्रमेह, नाटीम्रण, दुष्टम्रण तथा मगदर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ गुटिकाः ।

तत्राऽऽरी सर्वाङ्गुदरी गुटिका—

भक्लातकसप्तस्रैक त्रिफलाधारिणि क्षिपेत् । द्रोणमात्रे पचेत्तायथावसाक्षवशेषितम् ॥ १ ॥

शर्कराया दश पलान्येक वाकुचिकापलम् । तथा चैवात्र देयानि पलानि दश गुग्गुलो ॥२॥

खदिरारिष्टमजिष्ठाथोजक चेन्द्रवारुणी । चित्रक द्वे हरिद्रे च देवदारहरीतकी ॥ ३ ॥

भाङ्गिं घचेति सर्वेषां प्रत्येकं च पलार्थकम् । प्रसिष्य गुटिका कार्या नागना सर्वाङ्गुदरी ॥

प्रत्यह भण्येकुष्ठी स्वैतां पदरमाश्रया । सर्वाण्येवोद्गुष्ठानि शीघ्रमेव व्यपोहति ॥ ५ ॥

सर्वाङ्गुदरी गुटिका—एक हजार गुठ मिलावा एक द्रोण त्रिफला के स्वरस अथवा क्वाथ में डाल कर पकाये जब चौथाई शेष रह जाये तब उतार-छानकर उसमें शकरा दस पल, वाकुची का चूर्ण एक पल, शुद्ध गुग्गुल दस पल और रीर तथा नीम की छाल मजीठ विजयसार माहरि, चीते की नष्ट, हृदी दारुहृदी देवदारु, हरद, बभनेठी और वन प्रत्येक का चूर्ण आधा २ पल मिलाकर गुटिका के विधान से बर के समान बटी बनाये इस सर्वाङ्गुदरी गुटिका को प्रतिदिन कुष्ठ का रोगी खावे तो इसमें सब प्रकार के उग्र कुष्ठ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १-५ ॥

त्रिफलागुटिका—

त्रिफलाद्यपकरलोहैः सायवगुजमृत्तलाङ्गुलीष्योपैः । सगुडैर्वराहकदैः पलिकैरेकत्र सन्मिश्रै ॥

गुटिकां प्रकल्प्य तादेदेकैकामन्त्रसन्मिता प्रात ।

कुष्ठषट्कुण्डिलस जिस्वा घषण सर्वथा पलितम् ।

जीवति चर्पशातम्बे दीप्तहुताशो युवेच सोऽसाह ॥ २ ॥

त्रिफला गुटिका—हरद, बडेदा, आंवला, गुठ मिलावा, लोहमर्म, कृष्ण जीरक (एधु) भांगरा, शुद्ध कलिहारी, सोंठ, मरिच, पीपल, पुराना गुठ तथा वाराहीकन्द प्रत्येक एक २ पल लेकर विधिपूर्वक सूट पोसकर एक अक्ष के प्रमाण की बटी बनाकर एक वर्ष तक प्रतिदिन प्रात एक २ बटी खाने से कुष्ठ, श्लु, जिस्वा, एवं पलित रोग को सर्वथा नष्ट कर देता है । इससे अभिन्न दीप्त रहती है और युवा के समान उस्ताह सहित मनुष्य सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहता है यह निश्चित है ॥ १-२ ॥

एकविंशतको गुग्गुलु—

चित्रकत्रिफलाभ्योपमजाजीकारवीवचाः । सैन्धवातिविषा कुष्ठ चम्पैलायावशुकजम् ॥ १ ॥

विट्हाण्यजमोदा च मुस्तान्यमरदारु च । यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्माश्रस्तु गुग्गुलु ॥२॥

सङ्कटस्य सर्वथा मार्गं मुक्तिर्वा कारयेन्निरुद्धम् । प्राणमोचनकारो वा भयपन्नस्य समावृत्तम् ॥ ३ ॥  
 हन्यन्त्याह्वानं सुष्ठानि हृदिदुष्टप्रजागमि । प्रहृद्यसोर्विकारोऽथ सुखासमपण्डितान् ॥ ४ ॥  
 गृध्रममीमय भयं च मुपमं चापि त्रियस्यद्वयि । व्याधीर्यशोऽह्वानां प्राण्योऽपेक्षित्वास्तुतान् ॥  
 पृथ्विःशक्तिं प्रमुञ्च—वित्रक, हृदय, शरीर, आरणा, मोह, मीम, दोष, शीत, वय, मेषानम, ५, १५, २५, ३५, ४५, ५५, ६५, ७५, ८५, ९५, १०५, ११५, १२५, १३५, १४५, १५५, १६५, १७५, १८५, १९५, २०५, २१५, २२५, २३५, २४५, २५५, २६५, २७५, २८५, २९५, ३०५, ३१५, ३२५, ३३५, ३४५, ३५५, ३६५, ३७५, ३८५, ३९५, ४०५, ४१५, ४२५, ४३५, ४४५, ४५५, ४६५, ४७५, ४८५, ४९५, ५०५, ५१५, ५२५, ५३५, ५४५, ५५५, ५६५, ५७५, ५८५, ५९५, ६०५, ६१५, ६२५, ६३५, ६४५, ६५५, ६६५, ६७५, ६८५, ६९५, ७०५, ७१५, ७२५, ७३५, ७४५, ७५५, ७६५, ७७५, ७८५, ७९५, ८०५, ८१५, ८२५, ८३५, ८४५, ८५५, ८६५, ८७५, ८८५, ८९५, ९०५, ९१५, ९२५, ९३५, ९४५, ९५५, ९६५, ९७५, ९८५, ९९५, १००५

त्रिपञ्चमोऽङ्कः—

श्रेयसायं तु पूजय्य पठानि द्वा पञ्च च । मस्य चैव विद्वद्भ्यां साहचर्यं पञ्चमम् ॥ १ ॥  
 नाथ भयनासक्तानां च पलाशि द्वा पाकुपी । शिलातनु पलाश तु द्वे पञ्च सुगुणयोग्या तान् ॥  
 पञ्च पुष्करमूढस्य पलाश द्विपुत्रस्य च । सचित्रकं समीपं विप्वही विधयेत्तन्मम् ॥ २ ॥  
 त्वसपन्नं तु कुम्भं मुस्ता कापिकागुणकृपयेत् । पाणनयेगानि पूजानि तापण्यस्य प्रशस्यन् ॥ ३ ॥  
 पाठिकाममादवा हृत्वा प्राणशुष्याय निरुत्थाः । पूर्यैकं यद्यथाप्यस्य सधेष्टं चाथ भयानकम् ॥  
 पुष्टान्यस्यदायादा पृथीहृद्युक्तममगन्द्वात् । जनीति वायुमनासांश्चातिराध पतिद्वान् ॥ ४ ॥  
 विपतिं रथे भिन्नांश्चापि संपृष्टान्गात्रिद्वानिहान् । दण्डययगजसोर्गात्रं शिराविभ्रतनांशुधा ॥  
 कण्ठ्याऽनुगातांश्चापि त्रिहायासुपत्रिद्वचम् । उष्यजनुगते रोमे मुक्तामोपसि द्वापयेत् ॥ ५ ॥  
 शारीरं द्वापयेत्पुष्पमौद्रे मध्यभोगने । निदिष्टेरोगास्तमप्यिक्रान्तमार्गं शशावसम् ॥ ६ ॥

विश्वामित्र—विपन्न ( हृदय, शरीर, आरणा ) का समान भित्ति पूर्यै १५ पत्र, कद  
 विटा का पूर्यै ७ पत्र, सोहमाम रो पत्र, सुद्ध शतक भिन्ना ५८ ली, वाकुपी ६५ पूर्यै द्वापन्न,  
 सुद्ध वि लक्ष्मी ५८ ली, पुत्र पुष्कर दो पत्र, पुष्करमूढ का पूर्यै २०५ पत्र, शिखर का पूर्यै २८ ली,  
 वित्रकपुत्र, मरीच, पीपल, मोह, लक्ष्मीनी, शैवराज, देवरा और नागमोम ५८ पूर्यै १५५ १  
 पत्र २८ ली और समी भित्ति पूर्यै के बराबर बराबर विपन्न और शी विपि १५५ १ पत्र १५५  
 प्रमाण का मोरक बनाकर शिरा पात्र काम ५८ २ ली ५५ पत्र तथा शशावृत्त ( ५५५ )  
 भोजन को भी हगने अहार प्रमाण के कुछ शरीरा सुग्म, भयान २०५ पत्र ५८ ली, ५८  
 २० प्रमाण के तिलोम, २० प्रमाण के कटोम तथा माणव ( हृदय ) लक्ष्मी, शशावृत्त  
 ( कर्पूरमुत्र ) शिरोम जपित्वा भयान, कण्ठ्या, पापुत्र, कश्मि और कर्पूरमुत्र १५५ १  
 काम होता है । इन रोगों में भोजन के १५५ १ ली मोरक शिरा कामा करिने । हृदय के बराबर हृदय  
 में भोजन के पूर्यै और १५५ १ ली में भोजन के मध्य में ही तम विपन्न और कर्पूर का शिरा कामा  
 ५ दिने । इस रोगान्त के शिरा से उतर करे मरे मरी रोग मरान हृदय शीरे ५८ १ ५८

अष्टादशोऽङ्कः

पञ्चमोऽङ्कः—

वित्रकमोपलाहृद्योऽप्यमीविश्वामित्रम् । सर्वान्पुष्करमामासक्तान्द्रिष्यन्ममम् ॥ १ ॥  
 पात्रा सुष्टी वनी मार्गं वासामुद्रियकामकम् । शशावृत्तस्यैवपूर्यैविद्वत्तित्तिकावसम् ॥  
 हृदिगठ्यांशुपदाष्टं पुर्यैकं समीपुचम् । कृष्णास्यप्रमादाद्विपि च पलाशस्य ॥ २ ॥  
 मन्त्रिणा त्राहृदी तासा मन्त्रमन्त्राः कुम्भजः । द्वागी शीतकामास्य मुष्टाकमुष्टास्य ॥ ३ ॥  
 पलाशस्यपिहास्यमापुष्टास्यै विप्रपदेत् । अष्टमामास्यै च कश्मिपलाशस्यै ॥ ४ ॥  
 अष्टमामास्यै चिन्दिन्नामाम्नेप्रमथि । मनुष्यतास्यै च कश्मिपलाशस्यै ॥ ५ ॥  
 ती कश्मि पलाशस्य कश्मि तु कश्मि । पूर्यै कश्मि कश्मि ली पुष्टान्द्रिष्यन् ॥ ६ ॥  
 मुस्तास्यै कश्मि शशावृत्तस्यै चिन्दिन्नामाम्नेप्रमथि । अष्टमामास्यै च कश्मिपलाशस्यै ॥ ७ ॥  
 विद्वत्तित्तिका सुग्मं विद्वत्तित्तिकं तथा । पञ्चमं रोगिण्यै कृष्टं शिपुस्यै च कश्मिपलाशस्यै ॥ ८ ॥

चातुर्थांश च सम्पूर्णं पूतभाण्डे तिथापयेत् । सौर्गाधिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥१०॥  
महाभस्मलातको द्वेष महादेवेन निर्मितः । प्राणिनां तु द्वितीयांशं नाशयेच्छीघ्रमेव च ॥११॥  
श्वित्रमौद्गमर दद्रुमृष्यजिह्व सकाकणम् । पुण्डरीक च चर्माक्ष्य विस्फोट रक्तमण्डलम् ॥१२॥  
कृच्छ्र कापालिक कुष्ठ पात्रां चापि विपादिकाम् । वातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं यमीन्कृमीन् ॥  
अर्शोसि पट्ट प्रकाराणि श्वास कास भगन्दरम् । अनुपानेन दातव्यं द्विज्जातोयेन संप्रियम् ॥  
भोजने न सदा योज्यमुष्णं चाग्ल विशेषतः । अन्यान्यपि च कुष्ठानि नाशयेच्चात्र सशय ॥

मन्त्रातकावलेह—तीम की छाल, श्यामलता, अतीस, कुन्बी, त्रायमाणा, हरद, बहेडा, आंवला, नागरमोथा, पित्तपापडा, वाडुची, अनंतमूल, वच, खैर, चन्दन, पुरंदरपादो, सोंठ, कचूर, वमनेठी, अरुसा, चिरायता, कुटज की छाल, काली निशोभ, माहरि, मूषा, वायविडग, अतीम, चीते की जड़, इस्तिवर्ण, पलास की जड़ अथवा गजकर्णकन्द, गुरुच, नागरमोथा, परबल के पत्र, इल्ली, दारुइलदी, पीपल, अमलतास की गुद्दी, क्षितवन की छाल, सीरोप की छाल, घृषुची का फल, मजीठ, शुद्ध कलिहारी, रासना, पृथ्वरज, पुनर्नवा, दन्तीमूल, विजयसार भांगरा और कटसरैया ( विपादासा ) को पृथक् २ दो दो पल लेकर एकत्र औ कुट कर एक द्रोण ( ४ आडव ) जल के साथ पाक कर अष्टमांश शेष काय बनाकर छान लेवे और घृषुपक एक हजार शुद्ध भिलावे को छोडकर एक द्रोण अल में डाल कर चतुर्थांश शेष काय बनाकर छान लेवे और दोनों काथों को लेकर वस्त्र से छानकर एकत्र कर पुन अग्नि पर रख कर पाक करे और इसमें पुराना शुद्ध एक तुला ( सौ पल ) मिलाकर धोलकर छान लेवे और अवलेह पात्र की विधि से पुन उसका पाक करे जब अवलेह सिद्ध होने के समय आवे तब इसमें उपरोक्त भिलावे के हजार बीजों को कुट-पीस कर टाल दे और थिकड सोंठ, मरिच, पीपल, वा चूर्ण एक पल, शिपला ( आंवला, हरद, बहेडा ) का चूर्ण एक पल और नागरमोथा, वायविडग, चीते की जड़, चन्दन, संधानमक, कुट और जवाहन प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल और चातुर्जात ( दालचीनी, इलायची, सेजपात, नागकेसर प्रत्येक समभाग ) का चूर्ण एक पल तथा शुद्ध गन्धक का चूर्ण चार पल मिलाकर मलीर्मांति मर्दन कर पत्र से स्निग्ध पात्र में रख लेवे । इस महाभस्मलातक नाम के अवलेह को मदान्वे जी ने पहले पहल प्राणियों के हित के लिये निर्माण किया था । इसके सेवन करने से शीघ्र ही श्वित्र, उदुम्बर, दद्रु, ऋष्यजिह्व, काकण, पुण्डरीक और चर्म कुष्ठ तथा विस्फोट, रक्तमण्डल कष्ट साध्य कापालिक कुष्ठ, पात्रा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त, पाण्डु, वमन, कृमिरोग छै प्रकार के अर्श रोग, श्वास, कास, भगन्दर आदि सभी रोग नष्ट होते हैं । इसकी शुरुच के स्वरस अथवा काय के अनुपान से भेवन करना चाहिये तथा इसके सेवन करने के समय पथ्य जो भोजन करने को दिया जावे उसमें विशेष कर लण्य तथा अम्लरस प्रधान कमी नहीं माना चाहिये । इसके सेवन करने से उल्लिखित कुष्ठों के अतिरिक्त अन्य कुष्ठ भी अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-२५ ॥

शशाङ्कलेखादिलेह—शशाङ्कलेखा सविद्धस्सारा सपिप्पलीका सदुताशमूला ।

सायोमला सामलका सत्तैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लीटा ॥ १ ॥

शशाङ्कलेखादि लेह—वाकुची, वायविडग के बीज, पीपल, चीते की जड़, मण्डूरमर्म और आंवला इन सबके चूर्णों को पृथक् २ समभाग लेकर सबको तिल के तेल में मिलाकर चाटने से सब प्रकार के कुष्ठरोग नष्ट होते हैं । इस लेह का नाम शशाङ्कलेखादि लेह है ॥ १ ॥

धाम्यवलेह—धाम्यवप्यासविद्धवद्धिमन्त्रलातकावर्णगुजलोद्भृद्गा ।

भागाभिपृद्देस्तिलतैलमिश्रः सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेह ॥ १ ॥

धाम्यवलेह—आंवला, बहेडा, हरद, वायविडग, चीते की जड़ शुद्ध भिलावा, वाकुची लौहमर्म और भांगरा इन सबको क्रम से भाग वृद्धि कर अर्थात् आंवला १ भाग, बहेडा २ भाग, हरद तीन भाग वायविडग ४ भाग चीते की जड़ ५ भाग, भिलावा छै भाग, वाकुची ७ भाग, लौहमर्म ८ भाग और भांगरा ९ भाग लेकर विधिपूर्वक घुणकर तिल के तेल में मिलाकर लेह बनाकर चाटने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

तिक्तपट्टलं घृतम्—निम्ब पटोलदान्द्यौं दुरालमां तिक्तरोहिणीं त्रिकलाम् ।

कुर्यादर्घ्यपलाशान्पटकं प्रायमाणां च ॥ १ ॥

सलिलाहकसिद्धानां रसेऽष्टमागस्थिते पूते । चन्दनकिराततिक्तकमागधिकाप्रायमाणं च ॥२॥  
मुस्तं यस्तकयीजं कफकीं हृत्वायधकार्षिकामागान् । नवसर्पिषश्च पट्टलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥  
कुष्ठज्वरगुणमार्षां प्रहृणोपाण्ड्वामपाहृति । पामाद्विसर्पपिट्टिकाकण्डूगण्डमणालिसिद्धम् ॥३॥

नित्त पट्टल घृत—नीम की छाल, परवल के पत्र, दारुहृत्की, जवासा, कुटवी, भांडला, हरद, बडदा, पिप्पलापदा और प्रायमाणा प्रत्येक आधा-आधा पल (दो २ कर्प) लेकर एक आड़क (४ प्रस्थ) जल के साथ विधिपूर्वक काय करें जब अष्टमांश शेष रहे तो उतार-छानकर रख दें और लालचन्दन, चिरायता, पीपल, प्रायमाणा, नागरमोधा और इन्द्रकी प्रत्येक आधा २ कर्प पृथक २ लेकर विधिपूर्वक क्वथ कर लें, तथा नवीन घृत छै पल लेकर मूच्छित कर सरको एकत्र मिलाकर घृत पाक विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से कुष्ठ, ज्वर, गुण्ड, अर्श, प्रहृणो, पाण्डुरोग, पामा, विसर्प, पिट्टिका, कण्डू, गण्ड और मणरोगादि नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

पञ्चतिक्तक घृतम्—

निम्ब पटोल व्याघ्रीं च गुहूर्ध्वं घासकं तथा । कुर्याद्दशपलां भागानेकैकस्य सुगुहृतान् ॥ १ ॥  
जलद्रोणे विपक्षर्ष्यं यावत्पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं पचत्तेन त्रिकलागर्भसुतम् ॥ २ ॥  
पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्पि कुष्ठविनाशनम् । अक्षीतिं घातजान्तोर्गात्रस्थारिंदाघं पैसिकान् ॥  
विशतिं श्लैष्मिकार्षचैव पानादघापकर्षति । दुष्टमण्डूमीनर्शं पञ्चकासांश्च तादायेत् ॥ ४ ॥

पञ्चतिक्तक घृत—नीम की छाल, परवल के पत्र छोटी कटेरी, गुरुच, अहसा इन सबको कटा हुआ पृथक् १ दस २ पल लेकर एक द्रोण (४ आड़क) जल में काय की विधि से पाक कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छानकर रख दें और मूच्छित गोघृत एक प्रस्थ तथा मिटला समान मिलित का बल्क १२ प्रस्थ मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर लें। इसका नाम पञ्चतिक्त घृत है यह कुष्ठरोग नष्ट करने के लिये प्रसिद्ध है इसके पान करने से अस्ती प्रकार के वातन रोग, चालिस प्रकार के विचित्र रोग, बीस प्रकार के कफज रोग नष्ट होते हैं तथा दुष्टमण्डू, इमि, अर्श तथा पांचो प्रकार के काल नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

महातिक्तकं घृतम्—सप्तखण्ड प्रतिविषां क्षाम्याकं तिक्तरोहिणीं पाटाम् ।

मुस्तामुशीरं त्रिकलां पटोलपिञ्जुमदपट्टकम् ॥ १ ॥

घन्वयवासकचन्दनमुपकुश्यापन्नकरजयौ च । पद्मप्रथां सवितालां दातावरीं सारिये चोमे ॥  
घस्तकयीजं घासां मूर्धामगृतां किराततिक्तं च । कफकान्कुर्यान्मन्त्रिमान्यपदाहु प्रायमाणं च ॥  
कफकस्य चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।

द्विगुणो घृताप्रदयस्तसर्पिः प्रादायेत्सिद्धम् ॥ ४ ॥

कुष्ठानि रक्षपित्तं प्रयथान्द्यौंसि रक्षवाहीनि । वीमर्षमण्डलपित्तं घातासृग्वाण्डुरोगं च ॥ ५ ॥

विषेणोदकान्सपामानुन्माद् कामलां उपरं कण्ठम् ।

हृद्योगं गुस्मपिट्टिकां भगद्वरं गण्डमालां च ॥ ६ ॥

दुग्ध्यादस्तासघ पीतं घाले यथाबलं सर्पिं । योगशतैरप्यजिताममहाजिकारां महातिक्तम् ॥१॥

महातिक्तक घृत—द्विचतवन नी छाल, अतोस, भमलास की छाल, कुटवी, पुररननादी, नागरमोधा, नम, कांडला, हरद, बडदा, परवल के पत्र नीम की छाल, विषपापका, जवासा, लालचन्दन, पीपल, दुष्टमकांड, हृत्की, दारुहृत्की कच, मादरि, सदावरीमूक, सारिवा, इण सारिवा इन्द्रकी, अहसा, मूर्धामूक, गुरुच, चिरायता, जैटीमण्डू और प्रायमाणा प्रत्येक की एक २ भाग लेकर विधिवत् क्वथ कर रख दें और पृथक् इनको गोघृत्तियों के कण्ड में अष्टगुना जल मिलाकर पराबे, जब चतुर्थांश शेष रहे जावे तब उतार-छानकर रख दें और पूर्वोक्त कण्ड से चौगुना मूच्छित गोघृत और घृत के दुग्धना आंशके का खरस तथा उपरोक्त सिद्ध काय कर मिटाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर इन मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर घाटी से

कुष्ठ, रक्त पिच्छ, प्रबल अर्श भिन्नमें रक्त रहता रहता हो, विसर्प, अम्लपिच्छ, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पागा, उन्माद, कामला, ज्वर, बन्धू, दद्रोग, गुल्म, पिडिका, भगन्दर और गण्डमाला नीचे गट होते हैं । इसी समय पर बलायुसार मात्रा से पात्र करना चाहिये । सैकड़ों लोगों से भी जो महारोग नष्ट नहीं हुए हैं उनको भी यह महातिलक घृत शीघ्र गट करता है ॥ १-७ ॥

महाखदिरघृतम्—

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिवापासनयोस्तुले । तुलार्धं सर्वं पयैते करञ्जारिष्टवेतसा ॥ १ ॥  
पर्यन्तः कुट्टग्रश्चैव घृण कृमिहरस्तथा । हरिद्रे कृतमालद्य गुहूची त्रिफला त्रिघृत् ॥ २ ॥  
सप्तपर्णश्च सद्युष्णो दद्याद्गोणे तु वारिणि । अष्टभागावशेषं तु कपायमवतारयेत् ॥ ३ ॥  
घात्रीरसं च तुष्यांदा सर्पिणश्चाऽऽडक पचेत् । महातिलककृष्णकैस्तु यथोक्तैः पलसमितैः ॥४॥  
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाम्यङ्गनिषेवणात् । महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविकारनुत् ॥ ५ ॥

महाखदिर घृत—छैर पात्र तुला ( ५०० पल ), सीसम की छाल एक तुला ( १०० पल )  
त्रिजयतार की छाल एक तुला ( १०० पल ), करज, नीम की छाल, बेत की छाल, पिच्छपापदा,  
कीरया की छाल, अरुसा, बायविहग, हल्दी, दारुइली, अमलतास की गुड़ी, गुरुच, हरद  
बहेदा, आवला, निशोध और खितवन की छाल इन सबको समान मिलिन भाषा तुला ( ५०  
पल ) लेकर कूट कर दस द्रोण ( ४० आदक ) जल में मिलाकर काय की विधि से अष्टमांश शेष  
रहने पर उतार—दानकर रस लेवे और आवले वा स्वरस काय के समान लेवे, नवोन पत्र  
मूच्छित गोघृत एक आदक ( ४ प्रस्थ ) लेवे तथा महातिलक घृत की वरजोय ओषधिया अर्थात्  
खितवन की छाल, अतीस, अम्लतास की अड़ वा छाल, कुटकी, पुरहनपाटी, नागरमोथा खस,  
हरद, बहेदा, आवला, के पत्ते, नीम की छाल, पिच्छपापदा, जवासा, लालचन्दन, पीपल पदुम  
काठ, इलदी, दारुइली, बच माहरि, सतावारि, सारिवा, कृष्ण सारिवा, इन्द्रजौ, अरुसा, मूबांमूल,  
गुरुच, चिरायता, मुलइठी और त्रयमाथा प्रत्येक एक २ पल लेकर विधिपूर्वक कूट कर सबको  
यथाविधि मिलाकर घृत पाकविधि से घृत सिद्ध कर पान तथा गर्दन करने से सब प्रकार के कुष्ठ  
रोग नष्ट होते हैं । यह महाखदिर घृत सभी प्रकार के कुष्ठ के विकारों को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

अथ तैलानि ।

चित्रकादितैलग्—

शुद्धस्य करवीरस्य रसो घेहल च चित्रकम् । त्रिभिश्च पाचित तैलमम्यङ्गाकुष्ठजातिनुत् ॥१॥

चित्रकादि तैल—श्वेत पुष्प वाले कनेर का स्वरस, बायविहग और चीते की जड़ को समान  
भाग लेकर विधिवत् कूट कर जितना तैल हो उसके चौगुना मूच्छित सरसों वा तेल और तैल  
से चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्धकर लगाने से कुष्ठ नष्ट होता है ॥

वज्रतैलम्—

सप्तपर्णकरञ्जाकमालतीकरवीरजान् । मूलं स्नुहीशिरीषाम्भ्यां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ १ ॥

करञ्जयीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम् । सिद्धार्थकं विडम् च प्रपुष्पाट च सहरेत् ॥ २ ॥

मूषपिष्टैः पचेत्तैलमेभि कुष्ठविनाशनम् । अभ्यङ्गाद्बज्रक नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ३ ॥

वज्र तैल—खितवन, करञ्ज, मदार, मालती लता, कनेर, यूहर, सारिस, चीता और मदार  
की जड़, करज का बीज, हरद, बहेदा, आवला, सोंठ, पीपल मरिच इली, दारुइली, श्वेत  
सरसों, बायविहग और चक्रवर्त के बीज को समभाग लेकर विधिपूर्वक गोमूत्र के साथ पीस कर  
कूट कर जितना हो उसके चौगुना मूच्छित सरसों का तेल तथा तेल से चौगुना पाकार्थ जल  
मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध करे यह वज्र तैल लगाने से सभी प्रकार के कुष्ठ तथा  
नाडीवग और दुष्ट व्रण गट होता है ॥ १-३ ॥

मञ्जिष्ठाद्यं तैलम्—

मञ्जिष्ठारुन्निशाद्यकमर्दारवधपद्मल्यै । तुणकस्वरसे सिद्ध तैल कुष्ठहर परम् ॥ १ ॥

मञ्जिष्ठादि तैल—ममीठ, कूट, इलदी, चक्रवर्त और अमलतास के पत्ते प्रत्येक समभाग लेकर  
विधिपूर्वक कूट कर जितना हो उसके चौगुना मूच्छित सरसों का तेल तैल के समान भाग तुणक



( गण पुग वा गुलाबकण्ठा ) का स्वरस और तेल के चौगुना जल मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर लगाने से कुछ नष्ट होता है ॥ १ ॥

### अथाऽऽसवाः ।

तथाऽऽदौ खदिरासव—

खदिरस्य तुलार्धं तु तप्तुष्य देवदार्वपि । वराया विंशतिर्दार्वाः पलानां पञ्चविंशतिः ॥ १ ॥  
याकुर्याद्वाद्वा पलान्यष्टद्रोणेऽमसः पचेत् । द्रोणशेषे कपाये तु पूतशेषे विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥  
घातकया विंशतिपल माषिकस्य शतद्वयम् । चार्करायास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३ ॥  
कङ्गोलक लघुङ्ग च पृलाजातीफलस्य चम् । केशरं मरिच पत्र पलिका युपकल्पयेत् ॥ ४ ॥  
पिप्पलीनां तु कुड्य स्थापयेद्दृष्टभाजने । मासादूर्ध्वं विषेन्मात्रामनपेषय बलायलम् ॥ ५ ॥  
सर्वकुष्ठहरो क्षेप पाण्डुद्वद्रोगकासनुत् ।

कृमिग्रन्थवर्द्धप्रन्थिगुरमप्लीहोदरान्तकृत् । पृष पै खदिरारिष्ट कृष्णाश्रेयेण पूजितः ॥ ६ ॥

खदिरासव—द्वैर भाषा तुला ( ५० पल ), देवदारु शेर के समान अर्थात् भाषा तुला ( ५० पल ), त्रिफला समान मिलित २० पल, दारहरदी २५ पल और बाकुची २२ पल सबको मूट कर आठ द्रोण ( १२ आन्क ) जल में मिलाकर काय की विधि से काय करे जब अष्टमांश एक द्रोण जल शेष रह जावे तब उतार—खानकर एक बड़े मिट्टी के पात्र में रख छेवे और इसमें पाय का पूल २० पल, माहद २०० पल तथा शकर पत्र तुला ( १०० पल ) और लागे लिखी औषधियों का चूर्ण अर्थात् ककूल, मरिच, लवंग, इलायची, जायफर, दालचीनी, नागकेसर मरिच, शैत्रवात प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल और पीपल का चूर्ण एक कुड्य ( ६ मानिका ) मिलाकर मूट से जिकने किये हुए पात्र में रख कर भासव की विधि से एक मास तक रख पश्चात् भासव सिद्ध हो जाने पर बल के अनुसार मात्रा से पान करने से यह सब प्रकार के कुछ भी नष्ट करता है और पाण्डु, कृमोग, कास, कृमि, प्रथिरोग अर्बुद, प्रथिगुन्म, प्लीहा और उदररोग को भी नष्ट करता है । कृष्णाश्रेय ऋषि ने इसे खदिरारिष्ट माना है । ॥ १-६ ॥

कनकारिष्ट—खदिरफण्य द्रोणं सपिष्कुम्भे निधापयेत्सप्ये ।

पलिकामात्रांशेष्यान्कृत्वा सानेष सूषमचूर्णं तु ॥ १ ॥

त्रिफला त्रिकटुरजनीकनकध्वबाकुची गुहूची च ।

सविद्धमत्र मधुपलघातहृयं प्रक्षिपेत्सर्षपम् ॥ २ ॥

घातकयाश्च पलाम्यष्टौ क्वायेऽस्मिन्प्रदेयानि ।

प्रातः प्रातस्तु विषंघाशयति खिराखित कुष्ठम् ॥ ३ ॥

मासेन सवरोगान्विनिहन्ति च सर्वतोफमेहार्थम् ।

निजितकासश्वासो गुदकीलभगादरैर्मुक्तः । कनकारिष्टे प्रविष्यमषति पुमान्कमकृत्वात्तिष्ठ ॥

कनकारिष्ट—द्वैर का काय एक द्रोण ( ४ आठरु ) लेकर मूट से सिन्ध पात्र में रख देवे और उसमें त्रिफला समान मिलित, त्रिकटु समान मिलित, हल्दी, धतूर को छाल, बाकुची, गुरुन और पायविट्ठ प्रत्येक के एक २ पल चूर्ण उसमें मिला देवे और माहद २०० पल, तथा पायकाकुन आठपल मिलाकर अरिष्ट की विधि से एक मास तक बन्ध रखे । अरिष्ट सिद्ध हो जाने पर प्रति दिन प्रातः बन्धनासत्र मात्रा से पान करने पर पुराना कुछ नष्ट होता है । एक मास निरंतर इसके नेबन करने से सब प्रकार के शोष, प्रमेह, क्षय, श्वस, श्वस, अर्श और भगन्दर आदि नष्ट होत हैं । इस कनकारिष्ट के पान करने से मनुष्य स्वर्ण के समान कान्तिप्राप्ता हो जाता है ॥ १-४ ॥

द्विचिकित्सा—

कासमर्द्धकमूलानि सौवीरेण तु पेययत् । द्दुकिटिमकृष्टानि जपेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १ ॥

द्विचिकित्सा—कसादी ( बड़े चक्रवर्त ) को नद की सौवीरेण के साथ पीसकर लेप करने से दृष्ट तथा विटिगनाम के कुछ आदि नष्ट होत है ॥ १ ॥

शोषानि वा मूलकसर्षपाणौ टाघारजन्यो प्रपुनादधीजम् ।

श्रीवेष्टक श्योषविद्धकृष्ट पिप्पु च मूत्रग विष्टेपन स्यात् ।

द्विगुणि सिन्ध द्विटिमाणि पामां कपालकृष्ट विषमं च हन्सु ॥ २ ॥

मूलकबीजादि योग—मूली के बीज, सरसो के बीज, लाल, हल्दी, दारुहल्दी, चक्रवर्त के बीज, चील की लकड़ी का दूध (गोंद या लासा), सोंठ, मरिच, पीपल, वायविटङ्ग और कूट प्रत्येक समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से दद्रु, सिन्धु, विटिम नाम का कुष्ठ, पामा और कपाल कुष्ठ यदि विषम भयङ्कर भी हो गये हों तो नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेपयेत् । तद्भूकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिन्धुमसंशयः ॥ ३ ॥

आरग्वध प्रयोग—अमलतास के पत्तों को पांजी के साथ पीसकर लेप करने से दद्रु, विटिम कुष्ठ अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

प्रपुष्पाटस्य बीजाणि धात्री सजरसः स्तुही । सौवीरपिष्ट दद्रुणामेतदुद्धर्तनं परम् ॥ ४ ॥

दद्रु में प्रपुष्पाट योग—चक्रवर्त के बीज, भाँवला, राण और गूँद प्रत्येक समभाग लेकर सौवीराम्ल के साथ पीस कर लेप तथा उबटन करो से दद्रु नष्ट होता है । दद्रु के लिये यह उत्तम योग है ॥ ४ ॥

दूर्वाभयासौधवचकमदकुठेरका काञ्जिकतक्रपिष्टा ।

त्रिभिः प्रलेपैरपि दद्रुमूल इष्ट च कण्डू च विनाशयति ॥ ५ ॥

कण्डू में दूर्वादि योग—दूब, हरद, संधानमक, चक्रवर्त के बीज, श्वेत तुलसी, प्रत्येक समान भाग लेकर कांजी और तक के साथ पीस कर तीन बार दो लेप करने से दद्रु एवं घन मूलकण्डू अर्थात् पुरानो तमो दद्रु भी कण्डू (जुजली) नष्ट होती है ॥ ५ ॥

विटङ्गैर्गजाकुष्ठनिशासिभूत्यसर्पपैः । धान्याम्लविट्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठनिपूदनः ॥ ६ ॥

विटङ्गादि लेप—वायविटङ्ग, चक्रवर्त के बीज, कूट, हल्दी, संधानमक और सरसो प्रत्येक समभाग लेकर धान्याम्ल के साथ पीस कर लेप करने से दद्रु तथा अन्य कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

लघुमरीचाद्य तैलम्—

मरिचालशिलाब्दाकंपयोऽश्चारिजटाघ्नित्पृष्ट । क्षुद्रसविशालदग्निशामुग्दास्त्वन्वैः ॥ १ ॥

कटुतैल पचेत्प्रस्य दूधये विषपलान्वित । सगोमूत्र तदभ्यङ्गाद्द्रुधिघ्नविनाशकृष्ट ॥ २ ॥

लघुमरिचाद्य तैल—मरिच, दरताल, मैनसिल, नागरमोथा, मदार का दूध, कनेर की खड़, निशोध, गोबर का रस, मादरि, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, देवदास और लालचन्दन प्रत्येक एक २ अङ्ग (एक २ बर्ष) और मोठा विष एक पल लेकर सबका विधिपूर्वक बत्न कर जितना कष्ट हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसो का तैल और तैल के चौगुना गोमूत्र डाल कर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से दद्रु और शिथ कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

दरदाविलेप—धरग-धकपारदपिप्पलीविषविटङ्गनिशाग्रिमरीचकम् ।

अभयशुण्ठिघनादिधकवाकुचीकटुनृपद्रुममेढगजाग्वितम् ॥ १ ॥

सममिद खलु निम्बरसैर्युत हरति दद्रुजकण्डूविसर्पकात् ।

हरति खतभगन्दरमण्डल तनुविलिसमहो षणतो नृणाम् ॥ २ ॥

दरदादि लेप—हिण्डुल (सिंगरिफ), गंधक, पाद, पीपल, मोठाविष, वायविटङ्ग, हल्दी, चीते की जड़, मरिच, हरद, सोंठ, नागरमोथा, समुद्रफेन, बाकुची बीज, फुटकी, राजशुद्ध (अमलतास) के पत्ते, चक्रवर्त के बीज, प्रत्येक समभाग लेकर पहले पारद-गन्धक की षज्जली कर सबको एकत्र कर नीम के पत्ते के स्वरस अथवा छाल के काप के साथ सबको पीसकर लेप करने से दद्रु, कण्डू, विसर्प, लज्जाविष, भगन्दर, मण्डलवृष्ट आदि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥

चर्मोत्थचिकित्सा—

सूतगंधकयोः पिष्टा कज्जलीका विधाय च । घृष्टजेन विमर्द्याय करिस्वग्लेपने हितम् ॥ १ ॥

चर्मोत्थ कुष्ठ चिकित्सा—पारद और गंधक समभाग लेकर विधिपूर्वक षज्जली बनाकर (मर्दन कर) मक्खन के साथ लेप करने से गज चर्मरोग (चर्मोत्थ वृष्ट वा चर्मरोग) नष्ट होता है ॥

कषायगौरीगदतुर्यजीरघस्त्रोमवं बर्षमिदं पृथक्च ।

शिलायली सौ रविकर्षस्यौ सार्धौ विभाग किल पारदस्य ॥ २ ॥

कपैश्च विशद्वमितैर्घृतस्य सर्वं विमर्द्यं किल ताम्रपात्रे ।

ततोऽङ्गलेपाघ्नित्वं च तीर्मा हरेत्तु रोगी गजकर्णपामाम् ॥ ३ ॥

कवाचारि लेप—कवाच चीनी, हल्दी, कूट, तृत्तिया, जीरा और मरिच प्रत्येक घृषक २ एक २ कर्ष लेवे और मैनसिल तथा गन्धक घृषक २ बारह २ कर्ष लेवे तथा पारल छै कर्ष लेपर प्रथम पारद-गन्धक की बज्जली कर सबको एकत्र मर्दन कर उसमें २० कष गोघृह मिलाकर घाम्बे के पात्र में भलीमूर्ति मर्दन कर ( घिस कर ) लेप करे तो तीन दिन तक ही इसके लेप करने से तीव्र गजकर्ण रोग और पामा रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

शुभाचिघ्नकशङ्खमस्मरजनीद्व्याभयालाहलीरसुविस-धृष्यकुमारिकाजलघराकंशीरधूमेशजैः ।

यश्चगुण्डगजाविषह्नमरीचघ्नैश्चैस्वारीयुतै कार्यं चै गजचर्मदमूरकसाकण्डूग्नमुद्धर्तनम् ॥४॥

शुजादि उद्धतन—शुजा ( रचिया ), चीते की जड़, शङ्खमरम, इलदी, दूब, हरड़, बरिपारी विष, सेंहुड, सेंधानमक, भिकुवार, नागरमोषा, मदार का दूध, गृध्र घूम ( शाळा ), पारल, बाकुची, चकवड के बीज, वायविडग, मरिच, शब्द और स्वारी ( बड़ी खनूर ) प्रत्येक समान भाग पीसकर छवटन करने से गज चर्म कुष्ठ, दद्रु, रकसा और कण्डू नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

भारग्यघदलै पिष्टैल्लैः फाञ्जिकयुक्कृत करिखग्दुकुष्ठानि हति पामा विचर्चिकाम् ॥ ५ ॥

भरग्यघपत्र योग—अमलतास क पत्रों को काँबो के साथ पीस कर लेप करने से गज चर्म, दद्रु कुष्ठादि, पामा और विचर्चिका नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

किटिभचिकित्सा—

चक्राह्वीज श्वकधीरभावित मूत्रसयुक्तम् । रविवेतसकन्द च लेपां कटिभाषहम् ॥ १ ॥

किटिभ चिकित्सा—चकवड के बीज और दालचीनी को समान भाग लेकर दूध से भावित करे और मदार तथा वेत की जड़ की भी उसी के समान लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से किटिभ कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १ ॥

पिप्पलीपूतिकायरथाकुष्ठोपिचित्रिकै । लेप सम्यक्प्रदासन्ति किटिभञ्च चिक्रिमका ॥२॥

पिप्पल्यादि लेप—पीपल, पूति वरंज, हरड़, कूट, गौ का पित्त ( गोरोचन ) और चीते की जड़ प्रत्येक समभाग लेकर भलीमूर्ति पीस कर लेप करने से किटिभ कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २ ॥

गोमूत्रवारिसम्पिष्टैः शिटाकामीसतुत्यकै । लेप किटिभयीसर्पकुष्ठेनाशाय पूजित ॥ ३ ॥

गोमूत्रादि लेप—गोमूत्र मैनसिल, कासीस और तृत्तिया प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से किटिभ कुष्ठ, बीसपै तथा अन्याय कुष्ठ रोग भी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सिष्मचिकित्सा—

घात्रीफल सर्जरमो यावशूकरिखवृं प्रथम् । सीवीरपेपितं सर्वं सिष्मशूलविदारणम् ॥ १ ॥

धाष्यादि लेप—भांडले के फल, राज और जवागर प्रत्येक समान भाग लेकर सीवीरान्न भयवा काँजी के साथ पीस कर लेप करने से सब प्रकार के सिष्म शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिलरीरसेन पिष्ट मूलक्यीज प्रलेपतः सिष्मम् ।

शारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २ ॥

शिलरी रसादि योग—अपामार्ग के रस के साथ मूली के बीजों को पीस कर लेप करने से भयवा केले के छार में हल्दी का चूर्ण मिलाकर लेप करने से सिष्म नष्ट होता है ॥ २ ॥

कुष्ठ मूलक्यीज प्रियङ्गवः सर्पपा दुरालम्बा । पुस्तकेसरपिष्ट निहन्ति घिरकाटज सिष्मम् ॥३॥

कुष्ठादि योग—कूट, मूली का बीज फूल प्रियङ्गु, सरसो, जवाहा और केसर प्रत्येक समान भाग पीस कर लेप करने से पुराना सिष्म रोग भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

गंधपाषाणमिश्रेण यवपारेण लेपितम् । सिष्म नाशमुपैत्याशु कृतैलयुगेन च ॥ ४ ॥

गंधपाषाणादि लेप—गन्धक और यवाहार समान भाग पीस कर ठेक में मिलाकर लेप करने से शीघ्र ही सिष्म रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

काम्यमदक्षुषीजानि मूलकानां तथैव च । गन्धपाषाणमिश्रानि सिष्मार्गा परमौषधम् ॥ ५ ॥

कासर्तन बीज लेप—कसायी ( बड़े पठवक ) के बीज और मूली के बीज तथा गन्धक प्रत्येक समान भाग पीस कर लेप करने से सिष्म रोग नष्ट होता है । दद्रु अल्पम औषध है ॥ ५ ॥

सीज मूलकज निग्वपत्राणि मितसर्पपात्रम् । गृहधूमं च समिप्य जनेनाह प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥

उद्धर्य नवनीतेन छालयेदुष्णवारिणा । श्यहाश्वनेन सिध्मानि शाम्यत्याद्यु क्षारीणिाम् ॥७॥  
मूल बीजादि लेप—मूली के बीज, नीम के पत्ते, श्वेत सरसों, गुह धूम ( शाला ) प्रत्येक समभाग जल के साथ पीस कर जिस भङ्ग पर सिध्म हुआ हो उस भङ्ग पर लेप करे पश्चात् मक्खन से बटन कर के उष्ण जल से धो दे । इस प्रकार तीन दिन तक करने से सिध्म रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६-७ ॥

छाया धीवेष्टक कुष्ठ हरिद्रा गौरसर्पपा । व्योष मूलकथाजानि प्रपुष्पाटफलानि च ॥ ८ ॥  
पुस्तान्वय प्रविष्टानि कुष्ठेपूद्वर्तन परम् । सिध्मानां किटिमासां च द्यूणां च विदोपतः ॥ ९ ॥  
छायादि रूप—छाया, राल, कूट, हल्दी, श्वेत सरसों, सोंठ, मरिच, पीपल, मूली के बीज और चकवड़ के फल ( बीज ) प्रत्येक समभाग लेकर जल के साथ पीस कर बटन करने से कुष्ठ, सिध्म, किटिम और दद्रु में विशेष लाभ होता है ॥ ८-९ ॥

कार्पासिकापत्रविमिश्रकाकजङ्गाष्टतो मूलकयीजयुक् ।

समेण लेप चित्तपुत्रवारे सिध्मानि सद्यो नयति प्रणाशनम् ॥ १० ॥

कार्पासपत्र रूप—कपास के पत्ते, काकभट्टा और मूली के बीज प्रत्येक समभाग लेकर मट्ठे के साथ मगलवार को लेप करने से सिध्मरोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १० ॥

गोमूत्रेणाय समेण जीर्णसौवीरकेण वा । पिष्टमूलकयीजानां लेपनास्सिध्मनाशनम् ॥ ११ ॥

सिध्मरूप—गोमूत्र से अथवा मट्ठे से अथवा पुराने काँजी से मूली के बीजों को पीस कर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

विपादिकाचिकित्सा—

धत्तूरबीजकल्केन म्नागरुपारवारिणा । कटुतैल विपक तु हुत हन्याद्विपादिकाम् ॥

विपादिका-चिकित्सा—धत्तूरे के बीजों का विषिवत् कल्क बना उससे चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल के चौगुना मानकन्द के दार का जल मिलाकर विषिवत् तेल सिद्ध कर लगाने से विपादिका रोग नष्ट होता है ॥

तुण्डीरसेन ससिद्ध घृत हन्ति विपादिकाम् ॥ १ ॥

तुण्डी घृत—तुण्डी ( बिम्बाफल ) के स्वरस से विषिवत् सिद्ध किया घृत सेवन करने से विपादिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

पामाकण्डकण्डुविसर्पविरुपोटचर्मदलविचचिकाचिकित्सा क्रमेण व्याख्यास्याम —

सिन्दूरजीरह्वयरात्रियुग्ममन शिलावह्निजगन्धकानाम् ।

रसान्वितानां घृतयोजितानां पामा घजेदूरतर त्रिलेपात् ॥ १ ॥

सिन्दूरदि योग—सिन्दूर श्वेतजीरा, कृष्णजीरा, हल्दी, दाहहल्दी, मैसिल, मरिच गन्धक और पारद प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक को कण्डली बना कर उसमें अन्य सभी औषधियों के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर घृत में मिलाकर तीन बार लेप करने से पामा रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

सेधय चक्रमर्दं च सर्पपिप्पली तथा । सेधयेदारनालेन पामाकण्डूविनाशनम् ॥ २ ॥

सेधयादि योग—सेधानमक, चकवड़ के बीज, सरसों और पीपल इन सबको पीस कर काँजी मिलाकर लगाने से पामा और कण्डू नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

जीरकतैलम्—

जीरकस्य पल पिष्ट्वा सिन्दूराधपल तथा । कटुतैल पचदाभ्या सद्य पामाहर परम् ॥

वृद्धवेद्योपदेशेन पाष्य तैल पलायकम् ॥ १ ॥

जीरक तैल—जीरा एक पल लेकर पीस ले और सिन्दूर आधा पल ( २ कर्ष ) ले पश्चात् इन दोनों को ८ पल सरसों के तेल में पचावे । इसके लगाने से शीघ्र ही पामा रोग नष्ट होता है । वृद्ध वैद्यों के उपदेश से यहाँ आठ पल तेल लेना चाहिये । ( इसलिये वृद्ध वैद्य का नामालिया गया है कि योग के अनुसार तेल छै पल ही लिया जाता क्योंकि कल्क के चतुर्गुण ही मूर्च्छित तेल ग्रहण करने का विधान है ) ॥ १ ॥

## शरत्सिन्दूराय तैलम्—

सिन्दूर चन्दन मांसी विटङ्गं रजनीद्वयम् । प्रियङ्गु पत्रक कुष्ठ मञ्जिष्ठां खदिर पचाम् ॥१॥  
 जात्यर्कत्रिवृत्तानिग्वक्त्रञ्ज विपमेध च । कृष्णविप्रकलोध्र च प्रपुष्पाट च सहरेत् ॥ २ ॥  
 शल्यगपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्सैलमानया । अम्यङ्गेन प्रयोज्य तद्गुणैश्चकुष्ठनाशनम् ॥ ३ ॥  
 पामा विचर्चिका कण्डू विसर्प विपमेध च । रक्तपित्तोत्थितान् हन्ति रोगानेय विधान् यद्गुण् ॥  
 सिन्दूरायमिदं तैलमश्विण्यां निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥

शरत् सिन्दूराय तैलम्—सिन्दूर, लालचन्दन जटामांसी इलरी, दारइलरी, फूलप्रियङ्गु, पटुम-  
 काठ, कूट, मजीठ, खैर बच चमेली के पत्ते, मगर के पत्ते, निशोप, नीम के पत्ते, बरज के पत्ते,  
 मीठा बिष, पीपल, चोते की जड़, लीप और चपबद्ध के बीज प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक  
 सक्षम पीपल कर उसके चौगुना मूच्छित सरसों का तेल और तेल से चौगुना पाचार्थ जल मिलाकर  
 तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर मदन करने से शरीर का बग सुदूर होता है और कुछ बग  
 नाश होता है। यह पामा, विचर्चिका, कण्डू, विसर्प विषरोग और रक्तपित्त से उत्पन्न हुए अनेक  
 प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। इस सिन्दूराय तैल को सर्वप्रथम अश्विनीकुमारों ने निर्मांन  
 किया था ॥ २-४ ॥

## शरत् मरिचाय तैलम्—

मरिच त्रिवृत्ता घृन्ती धीरमाकं शकृद्भस\* । देवदारु हरिद्रे द्व मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १ ॥  
 विशाला करवीर च हरिताल मन शिला । धिप्रको छाङ्गली चमप्य विटङ्गं चकमदुकम् ॥ २ ॥  
 शिरोपकुटजौ निरुध सप्तपर्णाऽमृता स्नुही । शम्याको मक्तमालोऽब्द\* खदिर विष्पली पचा ॥  
 ज्योतिष्मती च पलिका विपस्प द्विपल भवेत् । आशकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥३॥  
 मृत्पात्रे लोहपात्रे वा क्षानैर्घृह्णित्वा पचेत् । पक्वथा तैलं घट्टेत्तन्नाशयेत्कोष्ठबन्धनात् ॥ ५ ॥  
 पामाविचर्चिकाकण्डूदुर्विस्फोटकानि च । घलम पलित छाया नीला ध्यङ्ग तर्पय च ॥  
 अम्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ ६ ॥

शरत् मरिचाय तैलम्—मरिच, निशोप, दन्तीमूल, मवार का दूध, गोबर का रस, देवदारु  
 इलरी, दारइलरी, जटामांसी, कूट, लालचन्दन, माहरि, कनेर की छड़, इरताल, मैगसिल, पीता  
 की जड़, करिमांरी बिष, चाक, वापबिडङ्ग, चक्रवर्ध के बीज, शिरिष की छाल, कुटन की छाल  
 नीम की छाल, शिठवन की छाल, गुरहच, सेकुड़, अमलतास, बरज, नागरनीषा, छैर, पीपल, बच  
 और मालकांगनी प्रत्येक एक २ पल और बिष दो पल लेकर विधिपूर्वक पाक बनाकर उसमें एक  
 आड़क सरसों का मूच्छित तेल और तेल के चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैलपाक की विधि से मिट्टी  
 के बणवा छोड़े के पात्र में रख कर धीरे २ मन्द २ अग्नि पर पका कर तल माय शेष रहने पर  
 उठार-धानकर रग ल । इसके मर्दन से कोठरोग, मगरोग, पामा, विचर्चिका, कण्डू, ऋदु, विरगो  
 रक, बलीपलित छाया ( छाही ), नीम, ध्यंग आदि सभी रोग नष्ट होत हैं और धनुमाया  
 होती है ॥ १-६ ॥

माहेश्वर घृणम्—हृत्वा कज्जलिकां रथौ कुनटिकां द्वे जोरक द्वे निने  
 शोइन्तोपगनाग ०७गजिका याकुशिका सपिया ।  
 लौहे लोहविमर्दित इतर माहेश्वराख्यं घृत  
 कण्डूदुर्विचर्चिकादिनामन पामाहर सेपनात् ॥ १ ॥

माहेश्वर घृत—यारद-गन्धक को समान सफर बखली कर उसमें मगर का दूध, मैगसिल,  
 सफेद बीरा, कुम्भनीरा इलरी, दारइलरी, गोन्ती ( इरताल ), मरिच, सीता का भरण, पक्वबद्ध  
 के बीज, वाडुथी के बीज और घृत समान भाग लेकर चूर्ण कर ओढ़ के पात्र में खोद से ही भली  
 भाँति मर्दन कर रख ले । इस माहेश्वर घृत के सेवन करने से कण्डू, कुष्ठ, विचर्चिका आदि  
 शयन होते हैं और पामारोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

मांसीचन्दनशम्याककरशारिदसर्पणम् । यष्टीकुटतद्वार्थभिहन्ति कण्डूमयं शगा ॥ १ ॥

कण्डू नाशक मांसादि योग—जटामांसी, लालचन्दन, अमलतास के पत्ते, बरज के पत्ते,

नीम के पत्ते वा छाल, सरसो, जेठीमधु, जुरैया की छाल तथा दाहद्वली प्रत्येक समान भाग लेकर विभिन्न पीसकर मर्दन करने से कण्ड नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथगुग्गुज फासमर्द चक्रमर्द निशायुतम् । मणिमन्थेन तुह्यमांश मस्तुकाञ्जिकपेपितम् ॥

कण्डू कण्डू जपस्युष्मां सिद्ध एव प्रयोगराट् ॥ ३ ॥

अथगुग्गुजादि योग—वाकुची के बीज, कसौजर ( बड़े चक्रवर्ण ) के बीज, चक्रवर्ण के बीज, हल्दी प्रत्येक समान भाग लेव और इन सबके समान संधानभव लेकर एकत्र कर दही के पानी और काजी के साथ पीस कर लेप करने से उग्र कण्डू तथा कण्डू आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

कोमलसिंहास्यदल सनिश सुरभीचलेन सम्पिष्टम् ।

दिवसत्रयेण नियत शमयति कण्डू विलेपनतः ॥ ४ ॥

सिंहास्यपत्रव लेप—अहते के कोमल पत्ते और हल्दी दोनों को समभाग लेकर गोमूत्र में पीस कर तीन दिन लेप करने से कण्डू रोग निश्चय नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

हरिद्राकृत्कसंयुक्त गोमूत्रस्य पलद्दयम् । विषेसरः कामचारी कण्डूपामाविनादानम् ॥ ५ ॥

हरिद्रादि योग—हल्दी के बरक में दो पल गोमूत्र मिलाकर पान और इच्छानुकूल आहार व्यवहार करने से पामा और कण्डू रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

गन्धपापाणचूर्णं तु कटुतैलेन योजितम् । लेपनाद्यथ पानाद्वा कण्डूपामाविनादानम् ॥ ६ ॥

गन्धकादि योग—गन्धक के चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर लेप अथवा पान करने से कण्डू और पामा रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

सिन्दुराद्य तैलम्—

सिन्दुरगुग्गुलुरसाञ्जनमिषधतुल्यैः कृत्कैकृतैः कटुकतैलमिदं सुपक्वम् ।

कण्डू खवत्पिठिकामथ घाऽपि शुष्कामभ्यक्षनेन सकृद्दुद्धरति प्रसह ॥ १ ॥

सिन्दुरादि तैल—सिन्दूर, गुग्गुलु, रसवत्, मधु का मोम और तूतिया प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक बरक कर जितना हो उसके चौगुना सरसों वा तेल लेकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्धकर मर्दन करने से कण्डू, स्रावयुक्त अथवा शुष्क सभी प्रकार के पिठिकायें एक बार के ही मर्दन करने में नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

अर्कतैलम्—

अर्कपत्ररसे पक्व रजनीकृत्कसयुतम् । कटुतैल हरेत्पूर्णं पामाकण्डूविचर्चिकाः ॥ १ ॥

अर्क तैल—मदार के पत्तों के स्वरस को मूर्च्छित सरसों के तेल से चौगुना और हल्दी के कृत्क को तेल से चतुर्धास लेकर विधिपूर्वक तल सिद्ध कर लगाने से पामा, कण्डू और विचर्चिका रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

राजिकागुडयुक्तेन सैद्येन प्रलेपितम् । विजल चर्मणा यद् नाश चमदल प्रजेत् ॥ २ ॥

चर्मदल पर लेप—राई, गुड़ और नमक प्रत्येक समान भाग लेकर पीसकर लेप करने से निर्मल शुष्क तथा चमड़े से जब पकड़े हुये भी चर्मदल का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदी विजयेश्वरी रस —

शुद्धताल मृत सूत तुल्य साम्यां चतुर्गुणाम् । भर्जित्वा विजया योज्या सर्वतुल्यं गुड शिपेत् ॥ श्वेतकुष्ठहर निष्कं रसोऽयं विजयेश्वर । द्वाधीखदिरनिम्बानां काय तदनु पापयेत् ॥ २ ॥

विजयेश्वर रस—शुद्ध हरताल और पारद मसम दोनों समान भाग और दोनों के चौगुना भूजा हुआ भाग तथा सबके समान पुराना गुड़ मिलाकर घोट लेवे । यह विजयेश्वर रस प्रतिदिन एक निष्क (३ मासा) खाकर ऊपर से दाहद्वली, खैर और नीम की छाल का काय पीवे तो श्वेत कुष्ठ ( शित्र ) का नाश होता है ॥ १-२ ॥

शिश्राण्याह—

शिश्रिणो हृत्सदोपस्य हृत्तरक्तस्य वा सृष्टम् । खदिराम्बुयवाद्यानां घृतस्य मलयूरसः ॥

सगुडः क्षस्यते पाने यवागूमण्डभोजिनः ॥ १ ॥

श्वित्र को चिकित्सा—श्वित्र के रोगी के दोषों का (निरेचनादि) दूरण कर एक बार एक मोक्षण करावे और खैर के जल से सिद्ध किया औ अन्न के बने पदार्थों का भोजन बरा कर मद्य के स्वरस (कण्डूमर या जगली अक्षीर) में पुराना गुठ गिलाकर पान कराने से इस रोग में यवागू तथा माट का भोजन कराया चाहिये ॥ १ ॥

सदिरामलककपाय चाकुचित्रीजावित्त विवेचित्यम् ।

सहस्रैन्दुकुन्दघवल श्वित्र हन्तीष्ट तश्चिप्रम् ॥ २ ॥

सदिरादि कपाय—खैर और आवला का विधिपूर्वक काय बना कर बाबची के बीजों के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नित्य पान करने से श्वित्र, चन्द्रमा और बुद्ध के पुष्प के सगान भी श्वेत वर्ण के श्वित्र वृष्ट नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिलापामार्गमसितलेपाश्चिधत्र विनाशयेत् । किं पुनयदि पुण्येत धनशयजटाश्वचा ॥ ३ ॥

शिलादि लेप—मैनसिल और अपामार्ग के भरम दोनों समभाग पीस कर लेप बना से श्वेत वृष्ट नष्ट होता है । यदि इसमें अर्जुन वृक्ष की जड़ के छाल भी ममान भाग मिला दिया जाय तो श्वित्र अशुभ ही नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

त्रिफला गोलिनीपत्र लोहचूर्णं रसाञ्जनम् । श्वेतगुञ्जा दृन्विततभरम सुष्यं च माकयम् ॥४॥  
मेपीहुग्धेन सम्पिप्य स्यापयेश्लोहभाजने । हितमेक ततो लिङ्गे मुहु धिष्येव्यनुक्रमात् ॥

श्वित्राप्यनेन लेपेन मित्रवर्णं त्यजन्ति वै ॥ ५ ॥

श्वित्र नाशक त्रिफलादि लेप—हरड़, गहटा, आँवला, नील के पत्त, लोहे का चूर्ण रसवत्, श्वेत वर्ण की रक्षिणी, हाथी दाँतका भरम, तृतिपा, भांगरा प्रत्येक समभाग लेकर भेड़ी के दूध के साथ पीसकर एक दिन लोहे के पात्र में रहने द पश्चात् क्रम से श्वित्र पर लेप करे तो श्वित्र अपने वर्ण (श्वेत) को त्याग देता है ॥ ५ ॥

सायोरज कृष्णतिलाञ्जनानि सावयगुजान्यामलकानि दग्वा ।

पिष्टानि शृङ्गस्य सहस्रसेन हन्यात्किंलास परिपूष्टलेपात् ॥ ६ ॥

अयोरवादि लेप—लोहे का चूर्ण, कृष्णवर्ण का तिल, रसवत्, चाकुची के बीज और आँवला प्रत्येक समान भाग जलाकर पीसकर भांगरे के स्वरस में गिलाकर किलास बुष्ट पर पिमकर बार २ लेप करने से किलास बुष्ट नष्ट होता है ॥ ६ ॥

विषतेलम्—

नक्तमालो हरिद्वे द्वे शर्कं छगरमेव च । करवीरवचाकुष्ठमास्फोता इच्छत्तदमम् ॥ १ ॥

मालती सप्तपर्णं च मञ्जिष्ठा सिन्धुवारिका । प्यामर्घपलान्मागान्यिपरस्य द्विपल भवेत् ॥२॥

चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थ विपाचयेत् । श्वित्रविस्फोटकिटिभक्षीटल्लापिषचिकाः ॥ ३ ॥

कण्टकशृङ्गिकाराश ये प्रणा विपट्टपिता । विपतेलमिदं नाम मर्षमणविशोधनम् ॥ ४ ॥

विपतेलम्—करघ के पत्ते, दलनी, दासदलनी, मदार के पत्ते, एगर, कनेर, बघ, बूट, अपराजिता, लालचन्दन, मालती के पत्त, छितवन की छाल, मन्डीठ, सिपुमार (सेदुद) प्रत्येक भाग ३ पल मीठा बिच दो पल लेकर विधिपूर्वक बन्ध बनाय और मूर्च्छित सरसों का तेल एक प्रण लेवे तथा तेल क चौगुना ( ४ प्रस्थ) गोमूत्र लेकर सबको मिठाकर तलनाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से श्वित्र, विस्फोटक, बिटिमकुष्ठ कीट, प्रणा, विपचिका, बूट, कण्टक विकार और बिच से दूषित होने के कारण उत्पन्न मण ये सभी रस बिच तैल से नष्ट होये ई और सभी प्रकार के मणों का इससे शोधन होता है ॥ १-४ ॥

ज्वोतिष्मतीतैलम्—

मयूरकचारजले सप्तशृव परिश्लयम् । सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमग्न्यापिष्टव्रनाराशनम् ॥ १ ॥

ज्वोतिष्मतीतैलम्—हालकांगी के तैल की अपामार्ग के छारवाल अन्न के साथ तेज पाकविधि से तैल के चतुर्गुण धारोरेक मिठाकर) सातबार तैल सिद्धकर मर्दन करने से श्वित्ररोग नष्ट होता है ॥

शशिजलावरी—

शुद्धसुतं सम गन्ध शुष्यं च शृङ्गसाप्रकम् । मर्दितं चाकुचोक्षापेदिगैकं पट्टकीशृङ्गम् ॥ १ ॥

निष्कमात्रां सदा सादेरिष्टवर्गां शशितैलिकाम् । चाकुचीतैलकपैकं सर्वाग्निननुपापमेव ॥

शशिशेखर वटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गणक समान भाग लेकर विभिन्न कज्जली कर उसमें एक भाग तापत्रयमिलाकर मर्दन कर बाकुची के काथ के साथ एक दिन भर मर्दन कर विभिन्न एक िष्क के प्रमाण की वटी बनाकर नियम सेवन करने से यह शशिशेखर नाम की वटी भिन्न की नष्ट करती है इस वटी को खाकर बाकुची का तेल एक कर्प के प्रमाण से लेकर मद्य मिलाकर अनुपान में देना चाहिये ॥ १-२ ॥

पथ्यापथ्यम्—

अन्नपान हिसं कुष्ठे न खम्ललवणोपणम् । दधिदुग्धगुडानूपतिलमार्पास्त्यजेत्तराम् ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—कुष्ठ रोग में साधारण अन्नपान करना हितकर है । परन्तु अम्लरस, लवण, मरिच, अथवा अन्य तोक्ष्ण पदार्थ, दही, दूध, गुड़, अनूप मांस, तिल, और उद्द कभी नहीं खावे ॥ इति कुष्ठशिरप्रकरणं समाप्तम्

### अथ शीतपित्तोर्दकोटनिदानम् ।

आशौ तस्य दोषप्रयत्न-यत्वमाह—

शीतमाहृतसस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमाहृतौ । पित्ते सह सम्मूय यद्विरन्तविसर्पत ॥ १ ॥

शीतपित्त का निदान—शीतल वायु के लग जाने से कुपित हुए कफ और वायु पित्त के साथ मिलकर त्वचा में और रक्तादि भातुओं में फैल जाते हैं, इससे शीत पित्त रोग होता है ॥ १ ॥

तस्य पर्वरूपमाह—

पिपासारुचिह्वहासदाहसादाङ्गुरयम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २ ॥

शीत पित्त का पूर्वरूप—जब शीत पित्तादि रोग होने को होते हैं तब उसके पहले प्यास, अरुचि, उबकाई, दाह, अङ्गों की अक्सत्रता और शुष्कता होती है तथा नेत्र रक्तवर्ण के हो जाते हैं ॥

लक्षणमाह—

घट्टीदप्लूसस्यान शोफ सञ्जायते यहिः । सकण्डूतोदयहलरुद्धिर्द्विज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥

उर्द्वमिति स विद्याच्छीतपित्तमथापरे । वाताधिक शीतपित्तमुद्वस्तु कफाधिक ॥ ४ ॥

उर्द्व के लक्षण—जिसमें बर्त के काटने के कारण होने वाले कोष्ठ मण्डल के समान कोष्ठ (दोरे) चम पर हो जावे और उस शोथ (दोरे) में कण्डू, उई जुमान के समान अधिक पीड़ा, बमन, वर और दाह हो उसे उर्द्व कहते हैं । कोई आचार्य इसे ही शीत पित्त कहते हैं परन्तु वात को अधिकता हो तो शीत पित्त और कफ को अधिकता हो तो उर्द्व जानना चाहिये ॥

उर्द्वस्य धर्मान्तरमाह—

सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमन्त्रिश्च मण्डलैः । शैशिरः कफजो व्याधिरुर्द्वं परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

उर्द्व का धर्मान्तर लक्षण—जिस दोरे में उसके मण्डल के किनारे उठे हुए अर्थात् गहरे रागयुक्त (लारुं सहित) और कण्डू युक्त हों उसे उर्द्व कहते हैं । यह शिशिर श्दु में कफ के कोष से होने वाला रोग बढ़ा गया है ॥ ५ ॥

त्वग्दोषसामायादत्रैव कीठ प्रोच्यते—

असम्यग्वमनोदीर्घापित्तश्लेष्माक्षनिग्रहैः । आरनालैश्च ह्युक्तैश्च आसुरीलवणेन च ॥ १ ॥

वर्षाकाले प्रकुप्येत्स तथा दुष्टैश्च कारणैः । मण्डलानि सकण्डूनि रागयन्ति यद्गुनि च ॥ २ ॥

कीठ रोग—भलीमूर्ति बमन नहीं होने से (बमन के सिध्या प्रयोग होने से) बडे हुए पित्त तथा कफ के अवरोध हो जाने से पर्व भन्न के ही बमन के अवरोध (उपस्थित वेग के रोकने) से और कांजी के अधिक सेवन से सिरका के अधिक सेवन से आसुरी लवण (विद्वलवण) के अधिक सेवन से अथवा राइ और लवण के अधिक सेवन करने से तथा अन्य दूषित कारणों से वर्षाकाल में बह (कीठरोग) कुपित होता है इसमें जो मण्डल होते हैं उसमें कण्डू होता है और रागयुक्त (लालिमा सहित) बहुत से मण्डल (गौड-कमल आदि के समान) होते हैं उन्हें कीठ कहते हैं ॥ १-२ ॥

उत्कोठः सानुष-घञ्च कीठ इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥



उत्कोठ के लक्षण—भ्रिस बोठरोग में अनुबन्ध होता है उसे उत्कोठ कहते हैं । भ्रिस बोठ में अनुबन्ध नहीं होता है वह क्षण में उत्पन्न और नष्ट होता रहता है ॥ ३ ॥

### श्रय शीतपित्तादीना चिकित्सा ।

अभ्यङ्ग कटुतैलेन स्वेदश्चोष्णेन वारिणा । तथाऽऽशु घमनं कार्यं पटोलारिष्टपासकैः ॥ १ ॥

शीतपित्तादि चिकित्सा—सरसों के तेल का अभ्यङ्ग करने से, उष्ण जल से स्वेद देने से और परबल के पत्र, नीम की छाल तथा श्वसे के काय को पिला कर शीम बमन कराने से शीत पित्तादिरोगों में लाभ होता है ॥ १ ॥

त्रिफलापुरकृष्णानिर्विरेकश्च प्रशस्यते । सर्पि पीठ्ठा महातिक्त्वा कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥

सपारसि-पुतैलैश्च गाग्राम्बह्व प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥

अथवा ओवला, हरद, बड़ड़ा, गुडगुग्गुल और पीपल प्रत्येक समान भाग लेकर उसका काय पिला कर विरेचन कराना शिक्तर है, अथवा कुण्ठाधिकार में कटु महातिक्त्वा घृत को पिला कर रक्तमोक्षण कराव और क्षार से बातमक और सरसों का तेल समान भाग लेकर क्षरीर में मर्दन करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

गम्मारिकाफल पक्व शुष्कमुस्येदितं पुनः । चारेण शीतपित्तघ्नं स्नादितं पथ्यसेविना ॥ ३ ॥

गम्मारिका फलादि योग—गम्मारी के मलीमोति पके हुए फल को जल में उबाल कर दूध के साथ खाने से और पथ्य से रहने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ३ ॥

षष्टी मधूकपुष्पं च सरारन चन्दनद्वयम् । निर्गुण्डी सकणाप्राथ शीतपित्तहर पिपेत् ॥ ४ ॥

षष्टीयादि योग—जेठीमधु, मधुआ का फूल, रासना, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, निर्गुण्डी तथा पीपल को समभाग लेकर विधिपूर्वक काय कर पान करने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अमृतारजनीनिग्मघञ्चयामैः पृथक् शृतम् । प्राणिनां प्राणदं चेतश्छीतपित्ते समाचरेत् ॥ ५ ॥

अमृतादि योग—गुरुच, हल्दी, नीम का छाल और भमासा इनमें स किसी एक का काय बनाकर पान करावे यह जीवों को जीवन देने वाला और शीतपित्त को नष्ट करने वाला है ॥ ५ ॥

सगुह दीप्यकं यस्तु स्वादेश्यप्याद्यमुह्नरा । तस्य मस्यति सप्ताहाद्दुदः सर्वददजः ॥ ६ ॥

सगुह दीप्यकयोग—गुह के साथ अजवायन खाने से और पथ्य सेवन करने से एक सप्ताह में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त उदर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

षषानीं पायथेद्वाऽपि सन्धोषां शीरसयुताम् । पिप्पलीवर्धमाना वा ट्ठुनं वा प्रयोजयत् ॥ ७ ॥

षषान्यादि योग—अजवायन सौंठ, मरिच, पीपल प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर दूध के साथ सेवन करने से अथवा वर्धमान पिप्पली का सेवन करने से अथवा ट्ठुन सेवन करने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अग्निमन्थमथ मूल पिष्ट पीत च सर्पिणा । शीतपित्तोदककोटान्साहादेयं नादानयेत् ॥ ८ ॥

अग्निमथ योग—अग्निहार की जड़ को पीस कर घृत में गिलाकर पान करने से एक सप्ताह में शीत पित्त, उदर और कोठ नष्ट होता है ॥ ८ ॥

निग्मस्य पत्राणि सदा घृतेन घाघ्रीविमिष्ठाण्यथ वा प्रयुज्यात् ।

विस्फोटकोठघ्नतशीतपित्तं कण्डूवृक्षपित्तं सकृत् निह्नयात् ॥ ९ ॥

निग्मपत्र योग—नीम की पत्तियों के चूर्ण को सत्रा घृत के साथ सेवन करने से अथवा नीम की पत्तियों और आंबे के चूर्ण को घृत में गिलाकर सेवन करने से विस्फोटक, कोठ, क्षण, शीत पित्त, कण्डू और रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

कृष्ट हरिमे सुरस पटोल निग्माश्चगन्धे सुरदाद निम्नः ।

ससर्पपं गुग्गुलुघाम्यकं त्वक्काण्डावचूर्णाणि समापि कुर्वात् ॥ १० ॥

तैस्तान्निघ्नेः प्रथमं क्षरीरं सैलात्सुद्वर्षयितुं यतेत् ।

तथा सकण्डूः पिपिका मकोटा कुष्ठानि शोफश्च क्षम प्रशन्ति ॥ ११ ॥

कुष्ठारि चूर्ण—ट्ट, हल्दी, दादरकी, गुग्गुली, परबल, नीम, असगन्ध, देवदार, छरिजन, सरसों, सेबल क फल और अनिबो इनमें से किसी को सत्रा त्रिमी का कण्डू आदि समभाग

लेकर चूर्ण कर पक्व कर मूठे के साथ पीसकर पड़े शरीर पर कड़ुवा तेल लगा कर इसका उबटन करने से कण्डू, पिङ्गिका, कोठ, कुष्ठ और शोथ शमा हो जाते हैं ॥ १०-११ ॥

ससैधयेन कुण्डेन सर्पिषा लेपमाचरेत् । सुरसास्वरसैर्वाऽथ लेपयेत्परमौषधम् ॥ १२ ॥

सैधवादि योग—सैधानमक और कूट दोनों समान लेकर चूर्ण कर घृत में मिलाकर लेप करने से अथवा तुलसी के खरस का शरीर पर लेप करने से शीत पित्त, उदर और कोठ रोग नष्ट होते हैं । यह अति उत्तम योग है ॥ १२ ॥

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रमुद्गातिलैः सह । कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्धतन हितम् ॥ १३ ॥

सिद्धार्थादि योग—एवंत सरसों, इलशी, कूट, चकवच के बीज और तिल इनकी समभाग लेकर चूर्ण कर कड़ुवा तेल में मिलाकर उबटन करने से शीत पित्तोदर और कोठ में लाभ होता है ॥ शीत पित्ते उदरें च तथा कोठाभिधे गये । कृमिद्वद्गृह कार्यं शीतपित्तेऽखिलः क्रम ॥ १४ ॥ रिनग्यस्विघ्नस्य सशुद्धिमादौ कोष्ठे समाचरेत् । ततः कुष्ठहर सर्वो विधेयो विधिरादरात् ॥

शीत पित्तादि चिकित्सा—शीत पित्त, उदर और कोठ रोगों में कृमि तथा दद्रुनाशक सभी प्रयोग करने के पश्चात् स्नेहन तथा स्वेदन कर के प्रथम कोष्ठ की शुद्धि करनी चाहिये तत्पश्चात् कुष्ठ नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १५ ॥

पथ्यापथ्यम्—

शालिमुद्गकुलत्पांश्च कारयेत्कमुपोदिकाम् । येग्राग्र तसनीर च पित्तश्लेष्महराणि च ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—शालिधान के चावल, मूंग, कुलथी, करैली, पोई शाक, वेत का अग्रभाग ( पत्र ) , उष्ण जल और पित्त-कफ नाशक पदार्थ ये सभी शीत पित्त, उदर और कोठ रोग के रोगियों के लिये पथ्य कहे गये हैं ॥

शीतपित्तोदरकोठरोगिणां पथ्यमीरितम् । स्नानमातपमग्लं च गुर्वन्नं च विवर्जयेत् ॥ २ ॥

स्नान, ताप सेवन, अम्लरस वाले पदार्थ का भोजन और गुरु अन्न यह शीतपित्तादि रोग के रोगी को त्याग देना चाहिये ॥ १-२ ॥

इति शीतपित्तोदरकोठरोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथाम्लपित्तनिदानम् ।

तस्य संभासिनाह—विद्वद्बुद्ध्याग्लविदाहपित्तप्रकोपिपानाक्षभुजोविदग्धम् ।

पित्तं स्वहेतूपधित्त पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रयदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

अम्लपित्त का निदान—परस्पर विरोधी (क्षीर, मत्स्यादि) पदार्थों के, दूषित पदार्थों के, अम्लरस वाले पदार्थों के, विदाही ( दाहकारक ) पदार्थों के और पित्त को कुपित करने वाले ( तक्र घृता आदि ) पान और भग के अतिसेवन करने से विदग्ध ( अम्लत्व को प्राप्त ) दुग्ध पित्त तथा पूर्व से ही अपने कारणों से ( वर्षा ऋतु में पित्तकारक जल औषध तथा अन्न आदि के अधिक सेवन से ) कुपित दुग्ध पित्त अम्लपित्तरोग को उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

तस्य लिङ्गमाह—

अविपाकबलमोख्लेशतिष्ठाग्लोद्गारगौरवैः । हृत्कण्ठदाहरुचिभिश्चाग्लपित्तं वदन्निपक्वम् ॥ २ ॥

अम्लपित्त के लक्षण—जिस रोग में अन्न नहीं पचे, क्लान्ति ( बिना परिश्रम के ही थकान ) हो, उबकाई आवे, तिक्त अथवा अम्लरस युक्त उकार आवे, शरीर गुरु हो, हृदय और कण्ठ में दाह हो और अन्न में अरुचि हो उसे अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ २ ॥

तस्य कराचिन्धोगनिनाह—

दृग्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।

दृष्टासकोठानलसादहर्षस्येदाङ्गपीतत्वकर कदाचिद् ॥ ३ ॥

अधोगामी अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में तृषादाह, मूर्च्छा, भ्रम और मोह ( विपरीत पान ) हो, नीचे की ओर जाने वाला हो और अनेक प्रकार के हरा, पीला, काला, लाल, आदि ) वर्ण का गंध युक्त गुदा के मार्ग से मल निकलता हो, दृष्टास ( उबकाई ) होता हो, कोठरोग हो,

मन्दाग्नि हो, रोमाघ हो, र्वेद हो और कभी २ अङ्ग की भी पीला कर देता हो उसे अयोगामी अम्लपित्त कहते हैं ॥ ३ ॥

कदाचिदूर्ध्वगतिमाह—

यासं हरिपीषकनीलकृष्णमारक्षरक्षाममतीप चोम्लम् ।  
 मांसोदकाम त्वतिपिच्छुलाच्छु श्लेष्मानुयात विविध रसेन ॥ ४ ॥  
 मुक्ते विदग्धेऽप्यथयाप्यमुक्ते करोति तिक्काम्लवसि कदाचिच् ।  
 उद्गारनेत्रविधमेव कण्ठं हस्तुषिदाह शिरसो रुजे वा ॥ ५ ॥

कर्ध्वगामी अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में हरा, पीला, नीला, काळा, घोडा भयना अत्यन्त छाल, खट्टा, मांस के धोवन के समान, अत्यन्त पिच्छिल, स्वच्छ, कषयुक्त तथा अनेक ( लक्षण तिकादि ) रसयुक्त वसन हो, भोजन करने पर भोजन के विदग्ध अवस्था में भयना भोजन नहीं करने पर भी तिक्त भयना अम्लरस का बग्गी २ वसन होता हो तथा रसी प्रकार वा तिक्त अम्ल रसादि युक्त बकार होता हो और कण्ठ, हृत्प तथा कुक्षि स्थान में दाह हो तथा शिर में पीडा हो उसे उर्ध्वगामी अम्ल पित्त कहते हैं ॥ ४-५ ॥

कफपित्तजन्यमाह—कषयरणदाहमौष्ण्य महतीमरुचिं ज्वर च कफपित्तम् ।

जनयति कण्डूमण्डलपिटिकाधितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

कफ पित्तज अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में हाथ, पोंव में दाह, कष्णता, अत्यन्त शक्ति, ज्वर, कण्डू, मण्डल, पिटिकायें और रसी प्रकार के शरीर पर अत्याय रोग उत्पन्न हो उसे कफ पित्तज अम्लपित्त कहते हैं ॥ ६ ॥

रोगोऽपमम्लपित्ताख्यो यस्नास्ससाध्यते नवः ।

चिरोत्थितो भवेद्याप्य कष्टसाध्य स कस्पचिच् ॥ ७ ॥

साध्यासाध्यता—अम्लपित्तरोग यदि नथीन हो तो यत्न से साध्य और पुराना हो तो असाध्य होता है किन्तु हितकर बाहार विहार करने वाले का पुराना भी अधिक यत्न करने से साध्य हो जाता है ॥ ७ ॥

तरिमयनिकरससर्पानाह—

सानिलं सानिलकर्म सकफ तच्च लक्षयेत् । दोषलिङ्गेन मतिमान्मिषय्योहकर हि तच् ॥ ८ ॥

वात-कषयुक्त वाला अम्लपित्त—यह अम्लपित्त वात युक्त, वात-कष युक्त और केवल कष युक्त भी होता है । इसे वैच दोषों के लक्षणों से जाने । यह रोग वैशों को मोह में डाल देता है क्योंकि इसमें वसन और अतीसार होने से उन्हें रोगान्तर का भ्रम होने लगता है ॥ ८ ॥

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिरात्रावसाद्गुलाणि । समसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षा अण्डियुते ॥

वात युक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमाद ( बीगि काटने के समान पीडा ), शरीर में ग्लानि, शूल, नेत्रों में अन्धकार, भ्रम, मोह ( भ्रमण ) और हर्ष ( रोमाघ ) हो उस वातयुक्त अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ ९ ॥

कफानुगतमाह—

कफनिष्ठीवनगौरवजहतारुचिनीतसाद्यमिलेया । दहनयत्नमादकण्डूनिद्रापिच्छ करानुगतये ॥

कषयुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में अधिक कष शूल में भारे, शरीर शुष्क हो, लक्षणा हो ( शरीर मरुद् जाये ), अरुचि हो, अजीर्णता घात हो, ग्लानि हा, वसन हो, उग में रुक स्थित रह, अग्नि और पल की हानि हो, कण्डू हो और निद्रा हो उसे कफ की अधिकता वाला अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ १० ॥

वातश्लेष्मानुगतमाह—उभयमिदमेव विद्वं माहस्तकर्ममये सज्यमस्ते ।

कट्यम्लपलणरसासेवित कोपं गजल्पय । तिक्काम्लकण्डूकोत्रावसिद्धकण्टदाहपृत् ॥ ११ ॥

वात-कषयुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में उरुंक्त वात और कष के मिश्रित रूप लक्षण दिखारे दे उसे वात कषज अम्लपित्त जानना चाहिये । यह कण्डू-अम्ल और अरण रस के अधिक सेवन से होता है और इसमें तिक्त-भ्रमण और कण्डू रस युक्त बकार और वसन होता है तथा दग्ध और कण्ठ में दाह होता है ॥ ११ ॥

कफपित्तमाह—

भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिरुद्धिर्दाहोऽप्यं च शिरोरुजा । प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥  
कफपित्त युक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, शिर में पीडा, लालासाव और मुख माधुर्य ( मुख का मधुर रहना ) हो उसे कफ पित्त युक्त अम्लपित्त मानना चाहिये ॥ १२ ॥

अथाम्लापित्तस्य चिकित्सा ।

अम्लपित्ते तु घमनं पटोलारिष्टवारिणा । कारयेत्तदनपीदसि-पुयुक्तं सत्वो भिषक् ॥

विरेचन त्रिपृष्णं मधुना त्रिफलाद्यै ॥ १ ॥

अम्लपित्त की सामान्य चिकित्सा—अम्लपित्त में परबल के पत्र और नीम की उवाल कर उनके काथ में मेनफल का चूर्ण, मधु और सेंधानमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करा कर वमन कराना चाहिये और त्रिफला के काथ में निशोथ के चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर पान पताकर विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

कृतवमनविरेकस्यापि क्षोषोपशान्तिर्भवति न यदि कार्यो रक्तमोक्षश्च युक्त्या ।

कृतशितिरविलेपस्याम्लपित्तघ्नभक्ष्यपीदनसमुदितसुखेर्वातरथा च कार्या ॥ २ ॥

यदि वमन-विरेचन आदि कराने पर भी रोगों की शान्ति नहीं हो तो युक्ति पूर्वक रक्तमोक्षण कराना चाहिये और शीतल द्रव्यों का लेप करना चाहिये तथा अम्लपित्त नाशक भक्ष्य पदार्थों तथा चावल के भात को तिलाकर चूत करना चाहिये और दात से रक्षा बरनी चाहिये ॥ २ ॥

रक्षमणोत्सवात्—उपल-तमिव चाऽऽभ्रमान मन्यते योऽम्लपित्तवान् ।

तस्य सशोधनं पूर्वं कार्यं पश्चाच्च भेषजम् ॥ ३ ॥

रक्षमणोत्सव की चिकित्सा—जो अम्लपित्त बाला रोगी अपने आप की जलता हुआ मानता हो ( अधिक दाह जिसे होता हो ) उसको प्रथम संशोधक औषधियों द्वारा संशोधन करा कर पश्चात् अन्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

पूर्वं तु घमनं कार्यं पश्चान्मृदु विरेचाम् । कृतवातविरेकस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ ४ ॥

अम्लपित्त के रोगी को सब प्रथम वमन तत्पश्चात् मृदुवीय औषधियों से विरेचन और वमन विरेचन कराने के पश्चात् स्नेहन औषधियों से भलीभाँति स्निग्ध कर अनुवासात कराना चाहिये ॥ आस्थापन चिरोत्थेऽस्मिन्देय क्षोषाद्यपेक्षया । दोषससगजे कार्यमौपधाहारकवपनम् ॥ ५ ॥

अम्लपित्त यदि पुराना हो गया हो तो उसमें आस्थापन कर्म करना चाहिये, दोषों के ससर्गज ( मिलित ) होने पर दोष आदि को अपेक्षा कर के उसमें औषध और आहार देना चाहिये ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वदेहस्थिते घान्त्याऽप्यधस्थ रेष्वनेर्हरेत् । पाचन तिक्तवह्ल पथ्य च परिकल्पयेत् ॥ ६ ॥

दोष यदि उर्ध्व देह में अधिक कुपित हो तो वमन करा कर और यदि अधोभाग में अधिक कुपित हो तो विरेचन कराकर तिक्त रस की अधिकता वाले द्रव्यों का पाचन और पथ्य सेवन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

विहारान्यचगोधूमकृत्वांस्तीक्ष्णविवर्जितान् । अक्षयेक्ष्णजसवत्क्ष्ण सिताक्षौद्रयुतापिभेत् ॥७॥

जौ और गेहू के बने पदार्थ और तीक्ष्ण द्रव्य ( मरिच आदि ) छोड़कर अन्य भक्ष्य पदार्थों को भक्षण कराना चाहिये और लज्जा ( धान के खील ) के सत्त्व में शकैरा और मधु मिलाकर विलाना चाहिये ॥ ६ ॥

बृन्दात्—

अम्लपित्ते प्रयोक्तव्य कफपित्तहरो विधि । गुडकृष्णामण्डक चैव तथा खण्डामलकयपि ॥ १ ॥

बृन्द मठ से चिकित्सा—अम्लपित्त रोग में कफ-पित्त नाशक क्रिया और गुड़ कृष्णामण्ड तथा खंडामलकी का सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत् । सवाते सविषन्धेऽस्मिहिता कसहरीतकी ॥ २ ॥

अम्लपित्त रोग में पुराना गुड़, गौका दूध और पीपल से विधिपूर्वक सिद्ध किया घृत और यदि इसमें विषय भी हो तो 'कसहरीतकी' का सेवन करना हितकर है ॥ २ ॥

अथ कायाः ।

यवकृष्णापटोलानां काय चैद्रयुतं पियेत् । नाशयेदम्लपित्तं च क्षरुचिं च घर्मिं तथा ॥ १ ॥

जवादि काय—जी, पीपल और परबल के पत्र, प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय बनाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, अरुचि और वमन नष्ट होत है ॥ १ ॥

निस्तुपययवसृपधात्रीकाय त्रिसुगन्धिमधुयुतं पीत्वा ।

अपहरति चाम्लपित्तं यदि मुहूर्त्ते मुद्गयूषेण ॥ २ ॥

निस्तुपयवादि काय—दिलका रहित जी, भरुसा और जीबला प्रत्येक समभाग लेकर विधिबद्ध क्वाथ कर उसमें त्रिसुगन्धित ( दालचीनी, इलायची, तेजपात्र ) का समान मिलित चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर मूंग के यूप के साथ पान करे तो अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ २ ॥

गुडुचीचित्रकारिष्टपटोलैः कथितं पियेत् । चैद्रयुक्तं निहन्त्येतद्भृङ्गिं पिच्छाम्लसममोम् ॥ ३ ॥

गुडूच्यादि काय—गुरुच, चीते की जड़, नीम की छाल और परबल के पत्र प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक काय कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान कराने से अम्लपित्त से उत्पन्न वमन नष्ट होता है ॥ ३ ॥

भूमिन्मयत्रिफलापटोलवासाशुतापर्वटमार्कषाणाम् ।

कायो हरेच्चैद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा चारपधूकटापैः ॥ ४ ॥

भूमिन्वादि काय—निरायता, नीम की छाल हरद, बहेड़ा, जीबला, परबल के पत्र, अरुमा, गुरुच, पित्तपापुका और भागरा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान कराने से अम्लपित्त इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार गुकरी वेदना के काल से चित्त नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

पटोलत्रिफलात्रिगन्धकार्यं चैद्रयुतं पियेत् । अम्लपित्तं हरेच्छर्दिदाहशूलरुफान्वितम् ॥ ५ ॥

पटोलादि क्वाथ—परबल के पत्र, हरद, बहेड़ा, जीबला, नीम की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिबद्ध क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, वमन, दाह, शूल और कफ का नाश होता है ॥ ५ ॥

कण्टकायशुतायासाकपाय मधुसमुतम् । शम्लपित्तं जयेत्यौषा श्वास कर्त्तं घर्मिं उपरम् ॥ ६ ॥

कण्टकावादि क्वाथ—घोंटी कटेरा, गुरुच, अरुसा प्रत्येक समभाग लेकर विधिबद्ध क्वाथ बनाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करे से अम्लपित्त, दाह, काय वमन और ज्वर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चित्रकैरण्डमूलाणि यथाथ सपया सकाः । जलेन कथितं पीतं कोष्ठदाहाम्लपित्तजित् ॥ ७ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चीते की जड़ परण्ड की जड़ और जवाला प्रत्येक समभाग लेकर विधिबद्ध क्वाथ बनाकर पान करने से कोष्ठ का दाह और अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

परणवादिचूर्णम्—पलाशुगाधोषधियाभयानां समन्वियपीटीरद्वलावलकानाम् ।

चूर्णं सिगात्रुफमपाकरोति श्रौढाम्लपित्तं दियसासयमुष्णम् ॥ १ ॥

परवादि चूर्ण—शण्डकी के दाने, यशोपा, दाक्षीनी, जीबला ( जिहा हरद या जीबला ) हरद, पिपरामूल, पन्डन तेजपात्र और अकरका प्रत्येक समभाग लेकर विधिबद्ध चूर्ण कर उसके समान भाग शर्करा मिश्रकर मर्दा का वज्रिण मान से प्रायः काष्ठ सेचन करने से पुगना भी अम्लपित्त रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

विद्वद्वाचं चूर्णं केदम्—

त्रिफलकामकण्टकारीपर्वटवारिकुटन्नकोतानाम् । सौराष्ट्रिकापटोलीप्रापन्तीदाहन्तूषाणाम् ॥ १ ॥

त्रिकामूनालमलयत्रकलिङ्गकैलाहिरानतिष्ठानाम् ।

मदधातिदिपाकेमरदीप्यकमधुनिम्बीजानाम् ॥ २ ॥

चूर्णं पटपृष्टमिदं पीतं निगिरेण कारिणा प्रातः । चैद्रयुक्तं चाप टीरं प्रादजायोगतं हन्ति च

अतिविषममाग्लदित्तं पथ्यमुजो धातरा वैदित् ॥ ३ ॥

विद्वद्वादि चूर्ण—सोठ, मरिच, पीपल, घोंटी कटेरी, तिलानरु, एण्डबनाम, हरद, ...

फिटिरी पटोलपत्र, शायमाणा, देवदारु, मूर्बामूल, कुटवी, कमलनाल, श्वेतचन्दन, कोरवा की छाल, श्लायची के दाने, गिरायता, बन्ध, अतोस, नागकेसर, भजवाहन और मीठे सद्विजन के बीज प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर कपड़े में ध्यान कर उचित मात्रा से प्रातः काल शीतल जल के साथ पान करने से अथवा गधु के साथ लेद बनाकर चाटकर शीतल जल पीने से अयोगामी अम्लपित्त यदि विष युक्त भी हो तो कुछ ही दिनों में नष्ट होता है । इसके सेवन करते समय पथ्य से रहने से विशेष लाभ होता है ॥ १-१ ॥

माधादिशुटिका—द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां शिपेत् ।

सकुटवाद्यद्वयमित्वां सत्पिण्डीं कारयेन्निकम् ॥ १ ॥

तां स्यादेष्टम्लपित्तात् हृत्कण्ठवह्नापहाम् । कृष्णमूर्च्छाभ्रममन्दाग्निनाशिनीमामवातहाम् ॥

द्राक्षादि शुटिका—दाख और हरदू बराबर २ छेवर उसमें दोनों के समान शर्करा मिलाकर कूट कर दो अक्ष के प्रमाण की बटी बनाकर राने से अम्लपित्त की पीड़ा और हृदय तथा कण्ठ की दाह नष्ट होती है तथा कृष्ण, मूर्च्छा, भ्रम, मन्दाग्नि और आमवात नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

अभयावबलेह—अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धन्वयवासकम् ।

मधुना कण्ठद्वहादमूर्च्छारलेभाम्लपित्तनुत् ॥ १ ॥

अभयावबलेह—हरदू, पीपल, दाल, शक्कर और जवासा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ सेवन करने से कण्ठ और हृदय की दाह, मूर्च्छा और कफयुक्त अम्लपित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

खण्डपिप्पयवलेहो योगरसावल्या —

पिप्पल्या कुटव चूर्णं घृतस्य कुड्यद्वयम् । पलपोटशाक खण्डाच्छ्रुतायवां पलायकम् ॥ १ ॥

सिवायाः स्वरसस्यापि पलपोटशाक मतम् । शीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र निधिपेत् ॥२॥

त्रिजातफामयाजाजीधान्यमुस्तशिवामुगा । पृतेषां कापिक चूर्णं कर्षार्धं कृष्णजीरकम् ॥ ३ ॥

नागर नागक जातिफल समरिष हिमम् । दृत्वा पलत्रय शीर्द्रं स्निग्धभाण्डे चिनिधिपेत् ॥४॥

प्रातर्यथायल लिङ्गादम्लपित्तप्रशान्तये । हृत्कण्ठसारोचकच्छूर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥

शूलद्रोघोगदानम हृद्यं चेद् रसायनम् ॥ ५ ॥

खण्डपिप्पली—अवलेह—पीपल का चूर्ण एक कुडूब ( आधा मानी ), गोघृत दो कुडूब, शक्कर १६ पल, शतावरी का चूर्ण ८ पल, आँवले का स्वरस १६ पल और गोदुग्ध दो प्रस्थ लेकर एकत्र कर अवलेह पाक की विधि से पाक करे । पाक आसन होने पर इसमें दालचीनी, श्लायची, तेजपात, हरदू, जीरा, धनियाँ, नागरमोधा, हरीतकी और बशलोचन प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष कृष्णजीरा का चूर्ण ३ कर्ष, नागवेमर, जायफर, मरिच और कर्पूर का चूर्ण आधा २ कर्ष मिला कर मर्दन कर उतार ले और शीतल होने पर उसमें तीन पल शहद मिलाकर घृत से स्निग्ध पात्र में रख दे । इस अवलेह की बलानुसार मात्रा में प्रातः काल सेवन करने से अम्लपित्त हलास अरुचि वमन कृपा, दाह शूल तथा हृद्रोग शमा होते हैं । यह हृद्रोग के लिये विशेष द्रव्य और रसायन है ॥ १-५ ॥

नारिकेलखण्डपाको योगतनावल्या—

कुटवमितमिह स्याद्यारिकेल सुपिष्ट पलपरिमितसपिपाचितं तुड्यस्रण्डम् ।

निजपयसि सदेतप्रस्थमात्रे विपक कुडूबमय सुशीते शानमात्र शिपेच्च ॥ १ ॥

धान्याकपिप्पलपयोदमुगाद्विजीरैः साक त्रिजातमिभकेसरवद्विचूर्ण्य ।

हृन्त्यम्लपित्तमरुचिं शयमन्नपित्त शूल यमि सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ २ ॥

नारिकेल खण्ड पाक—नारियल को मलीभाँति पीसकर एक कुडूब ( ३ मानिका ) छेवे, गोघृत एक पल छेवे और नारियल के समान शक्कर मिलाकर पकावे और इसमें एक प्रस्थ नारियल का जल मिलाकर अवलेह पाक की विधि से पाक सिद्धकर शीतल होने पर उसमें धनियाँ, पीपल, नागरमोधा, बशलोचन, जीरा, कृष्णजीरा, दालचीनी, श्लायची के दाने और नागकेसर प्रत्येक का पृथक् २ श्लङ्ग चूर्ण एक २ शान ( ३ ३ माशा ) मिलाकर रख ले इसको यथा बल मात्रा से सेवन करने पर अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल और वमन नष्ट होता है । यह शक पुरुषों के सम्पूर्ण पुरुषार्थ ( शक्ति ) को देने वाला है ॥ १-२ ॥

गुटाघो मोदक —

गुडपिप्पलिवर्ष्यामिस्तुत्यामिमोदकं कृत । पित्तश्लेष्महरं प्रोक्षते मन्दासित्यं च मागपेत्य च  
गुटादि मोदक—पुराना गुड, पीपल और हरद का चूर्ण समभाग लेकर विभिन्नक बने  
बनाकर सेवन करने से पित्त-कफ और मन्दाग्नि नष्ट होता है ॥ १ ॥

खण्डकूपमाण्ड—

कूपमाण्डस्य रसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रक । रसतुल्यं गर्वांश्चैर धात्रीचूर्णं पलायकम् ॥११  
खण्डप्रिना पचेत्तावद्यायद्भवति पिण्डितम् । धात्रीसुधया सिता योग्या पलायं छरयेद्गुण ॥  
खण्डकूपमाण्डक स्यात्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ २ ॥

खण्ड कूपमाण्ड—खेत्र कूपमाण्ड का स्वरस सौ पल ( ४०० तो० ) और स्वरस के समान  
( १०० पल ), गाय का दूध तथा आंवले का चूर्ण आठ पल सबको मिलाकर गुड अग्नि पर अवलेह  
की विधि से पकाये और पाक सिद्ध हो जाने पर उसमें आंवले के चूर्ण के समान ( आठ पल )  
शर्करा मिलाकर आधा पल के प्रमाण की मात्रा से प्रविदिता चाटने पर यह कूपमाण्ड खण्ड अम्ल  
पित्त को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मधुपिप्पल्यादियोग—पिप्पली मधुसमुक्षाप्यम्लपित्तविनाशिनी ।

जम्बीरस्वरस पीतः साय हृन्वयम्लपित्तकम् ॥ १ ॥

मधुपिप्पल्यादि योग—पीपल के चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से और जम्बीरी नीबू के स्वरस  
को नियम सायकाल पात्र करने से अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

पिप्पलीपूतम्—

पिप्पलीकायकस्केन पूतं सिद्धं मधुप्लुतम् । पिपेष्मासः समुत्थाय अम्लपित्तनिपूतये ॥ १ ॥

पिप्पली पूत—पीपल के क्वाथ और कर्क से पूत सिद्ध कर अर्थात् पीपल का कर्क विधि  
पूर्वक बनाकर जितना हो उसके बौगुना मूच्छित्त गोघृत और घृत से बौगुना पीपल का विभिन्न  
बना क्वाथ स्वर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर उस मधु के अनुमान से मात्र नियम से  
करने से अम्लपित्त की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

द्राक्षादिपूतम्—द्राक्षाभयानाकपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीवषण्णैश्च ।

श्रायन्तिकापद्मकिरातघान्यैः क्यकैः पचेत्सर्विरेतेभेभिः ॥ १ ॥

मुञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वं तु पानं द्रष्टव्यमपि च ॥ २ ॥

द्राक्षादि पूत—द्राक्ष हरद इन्द्र जी, परबल के पत्ते, गुस, आंवला, औ, काक गन्ध,  
त्रायमाण, पदुमकाठ, चिरायता और धनियां प्रत्येक समभाग लेकर विभिन्न कर्क का मिश्रण  
कर्क हो उसमें चतुर्गुण मूच्छित्त गोघृत और घृत से चतुर्गुण पाकार्य खण्ड मिलाकर पूत पाक  
की विधि से घृत सिद्ध कर भोजन के साथ यथोचित मात्रा से सेवन करने पर अम्लपित्त नष्ट  
होता है । सभी अवस्थाओं में यह पूत अमृत के समान लाभदायक है ॥ १-२ ॥

शतायरीपूतम्—

शतायरीमूलकन्दके पूतं प्रथमं पयः समम् । पचेन्मृद्भिना सत्यस्वीरं दद्यात् षट्पुण्ड्रम् ॥१॥  
माग्येदम्लपित्तं च वातपित्तोज्ज्वान्दान् । रक्तपित्तं सृषां मूष्णोश्चैव सन्तापमेव च ॥ २ ॥

शतायरी पूत—शतायरी मूल का कर्क छे प्रथम और गोघृत एक प्रथम छहसे एक दश पानी  
और ४ प्रथम गोदुग्ध मिश्रकर मन्द १ अग्नि पर घन पाक की विधि से घृत सिद्ध कर घन  
करने से अम्लपित्त, वात-पित्त, रक्तपित्त, कृषा, मूष्ण, श्याम और सन्ताप ( वाह्य-हृरीय  
नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

मातायगपूतम्—

जले द्वागुणे क्वाथं पिप्पलीनां पलायकम् । पादार्थं ह्येष्टार्थं कापतुल्यं पूर्णं विनेत् ॥  
यम्लपित्तहरं श्रेष्ठं पूतं मातायगं महत् । गुडशीरबजापिद्धं सविभावापि द्योतयत् ॥ २ ॥

महानातायग पूत—८ पल पीपल को गुड पर उसमें दशगुण ( ८० पल ) जल डाल कर  
विभिन्न क्वाथ परे चतुर्गुण ( १० पल ) श्याम रसो पर उन्नत रूप लाभ है । उसमें क्वाथ के

समान ( २० पल ) मूच्छित गोष्ठन मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से यह अम्लपित्त नष्ट होता है । इसमें शुद्ध, दूध और पीपल से पकाया हुआ घृत सेवन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

**श्रथ रसा आरभ्यन्ते ।**

तत्राऽऽनौ लीलाविलासो रस—

शुद्धसूतं सम गन्ध शृतताम्राभ्ररोचनम् । गुण्याश मर्दयेधामरुद्भवा लघुघुटे पचेत् ॥ १ ॥  
अशुधाग्रीहरीतकीः क्रमघृदवा विपापयेत् । जलेताटगुणेनैव ब्राह्ममटावशेषकम् ॥ २ ॥  
अनेन भावयेत्पूर्वं पक्वसूत पुन पुन । पद्मविशतिवारं च तावता भृङ्गजद्वयै ॥ ३ ॥  
शुष्क सचूर्णितं पावेत्पञ्चगुञ्ज मधुप्लुतम् । रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्त नियच्छति ॥४॥  
लीलाविलास रस—शुद्ध पारद शुद्धगन्धक, ताम्रमरम, अभ्रकमरम और वशलोचन प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक को कज्जली कर सब मिलाकर एक पदर तक मलीमौति नदन कर शराब सगुट में रख कर लघुघुट में फूक दे और बहेड़ा एक भाग, आंवला दो भाग और दरद ३ भाग लेकर जो फुट कर अठगुने जल के साथ विषिबद्ध काय कर अष्टमाश रोष रद्दने पर उतार कर धान देवे तथा इस काय से विषिपूर्वक उपरोक्त पुटपक्व पारदादि को बार २ करके पचीस बार भावित करे और फिर भांगरे के स्वरस से पचीस बार भावित करे तत्पश्चात् गुलाकर चूर्णकर ले । इसकी ५ रत्नी प्रमाण मात्रा से मधु के साथ मिलाकर सेवा करने से अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १-४ ॥

**रसामृतम्--**

त्रिकटु त्रिकला मुस्ता विट्कश्चिन्नक तथा । एषां सम्चूर्णितानां तु प्रत्येकं तु पल भवेत् ॥ १ ॥  
कर्पद्रव्य गन्धकरस्य तदर्थं पारदस्य च । चिडालपद्मात्र तु लिष्टात्त-मधुसपिपा ॥ २ ॥  
शितोदक चानु विद्येत्क्रमाद्गम्य पयस्तथा । अम्लपित्तमग्निमा-द्य परिणामरुजां तथा ॥  
कामलां पाण्डुरोग च हन्यादेतद्रसामृतम् ॥ ३ ॥

रसामृत—सोंठ, मरिच, पीपल, दरद, बहेडा, आंवला, नागरमोथा, वायविद्यग और चंति की जड़ का चूर्ण प्रत्येक २ पल २ पल लेकर उसमें शुद्ध गन्धक २ कर्प और शुद्ध पारद १ कर्प मिला कर विषिपूर्वक कज्जली करके मलीमौति मर्दन कर एक कर्प के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथा बल मात्रा से मधु और गोघृत के साथ चाट कर शीतल जल का अनुपान करे पश्चात् गौ का दूध पान करे । इस क्रम से इस रसामृत सेवन करने से अम्लपित्त, मन्दाग्नि, परिणाम शूल कामला और पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

**स्रतशेखररस सारसंग्रहात्—**

शुद्ध सूत मृत स्वर्णं दह्णण वरसनागकम् । श्योपमु-मत्तधीजं च गन्धक ताम्रमरमकम् ॥ १ ॥  
चतुर्जातं शङ्खमरम विषयमज्जा कषोरकम् । सय सम द्विपेत्खपवे मर्द्यं भृङ्गरसैर्दिनम् ॥२॥  
गुञ्जामात्रां घटीं कृत्वा द्विगुञ्जे मधुसपिपी । भक्षयेदम्लपित्तघ्नो यान्तिशूलाभयापहः ॥ ३ ॥  
पञ्च गुहमापञ्च कासा-प्रहृष्यामयनाशनः । त्रिदोषोत्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्निनाशनः ॥  
उग्रहिक्का मुदावर्तं देहयाप्यगदापहः । मण्डलान्नात्र सदेहः सर्वरोगहर परः ॥

राजयक्ष्महर सापाद्रसोऽयं सूतशेखर ॥ ५ ॥

स्रतशेखर रस—शुद्ध पारद, स्वर्णमरम, शुद्ध दह्णण, शुद्ध वरसनाम, विष, सोंठ, मरिच, पीपल शुद्ध धतूर के बीज, शुद्धगन्धक ताम्रमरम दाएचीनी, श्लायची, तेजपात नागकेसर, शङ्खमरम, कच्चे मेल की गुहो और कषूर प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों का चूर्ण और मरमादि सब लेकर एकत्र कर फिर भांगरे के स्वरस के साथ दिन भर मर्दन कर एक रत्नी के प्रमाण की विषिपूर्वक बढी बनाकर दो रत्नी मधु और घृत के साथ सेवन करने से अम्लपित्त, वमन, शूल पाँचों प्रकार के शुष्म तथा कास, प्रहृणी त्रिदोषज अतीसार, श्वास, मन्दाग्नि उग्र हिक्का, उदावर्त तथा शरीर के अन्य वाय्वरोग भी नष्ट होते हैं । एक मण्डल ( १८ दिन तक ) सेवन करने से यह स्रतशेखर रस राजयक्ष्मा को भी नष्ट करता है । यह रस प्राणी के भी रोगों को नष्ट करने में महीष है ॥ १-५ ॥



अथ पथ्यापथ्यम् ।

धमगोधूममुत्राश्च पुराणा रक्तशालयः । जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधु सक्तम् ॥ १ ॥  
 कर्कोटक कारवेदल रम्भापुष्पं च घास्तुकम् । वेध्रा बृहकृष्माण्ड पटोल दाहिन तथा ॥ २ ॥  
 पानाद्यानि समस्तानि कफपित्तहराणि च । अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ ३ ॥  
 पथ्यापथ्य—जी, गहू, मूंग, पुराने छाल चावल, तथा कर शीतल किया जल, कदम, मू  
 सत्तू, बादावकीदा, करेली, येले वा फूल, चडुआ का शाक, वेध के पहाव, पुराना दूधेत कृष्णार,  
 परवल, अनार और कफ-पित्त नाशक सभी अन-पानादि अम्लपित्त रोग में सेवन करग  
 चाहिये ॥ १-३ ॥

धमिवेग विछान्मापान्कुल्लयोरित्तलभक्षणम् । धविदुग्ध च धान्याम्ल लवणाम्लकट्टि च ॥  
 सुर्वन्म वधि मघ च धर्जयेदम-पित्तवान् ॥ ४ ॥

धमन का वेग, तिल, उडल, कुलथी तिल के बने पदार्थ, भेंद्री का दूध, धान्याम्ल (कांजी),  
 लवण, अम्ल तथा कट्ट रस वाले द्रव्य, गुट अ-ा, दही और मघ ये सब अम्लपित्त का रोगी  
 त्याग देये ॥ ४ ॥

शयम्भुपित्तप्रकरण समाप्तम्

अथ विसर्पनिदानमाह ।

तस्य सम्प्रतिमाह—

लवणाम्लकट्ट्यादिससेयाद्दोषकोपतः । विसर्पं सप्तधा ज्ञेयः सयंतः परिमर्पणात् ॥ १ ॥  
 विसर्प निदान—लवण और उष्ण पदार्थ के अनिसेवन से वागादि दोष कुपित होकर राग  
 प्रकार के विसर्परोग उत्पन्न करत हैं । यह सम्पूर्ण शरीर में फैहन वाला होत स पक्ष भित्तिरो-  
 क्कृष्णता है ॥ २ ॥

तस्य संख्यामाह—

वातिक पैतिकशैव कफज सान्निपातिक । चत्वार एते धीमर्षा वक्ष्यन्ते ह्यङ्गजाग्रय ॥ २ ॥  
 विसर्प के भेद और लक्षण—वातिक, पैतिक, कफज तथा सान्निपातिक और तीन प्रकार के  
 इन्द्रज भेद से सात प्रकार के विसर्परोग होते हैं ॥ २ ॥  
 आग्नेयो घातपित्तामर्षा प्रन्व्याक्य कक्षजातज । परशु कर्दमको घोरा सपित्तकफसमय ॥ ३ ॥  
 इन्द्रज विसर्प के भेद माल और पित्त दोष के मिश्रण से भाग्यय विसर्प भात और वानरौष  
 के मिश्रण से प्रन्थि, विसर्प और पित्त तथा कफ के दोष के मिश्रण से कर्दमक विसर्प होते हैं । ये  
 तीन प्रकार के इन्द्रज विसर्प कठिन होते हैं ॥ ३ ॥

रक्त लसीका ध्वरुमांतं दूप्यं क्षोपाजयो मलाः । विमर्षाणां समुत्पत्तौ त्रिभया सप्त धातव ॥  
 विसर्प के कारण—विसर्प में रक्त, लसीका, ल्वबा और मांस ये दूध हैं तथा वात, पित्त और  
 कफ ये तीन दोष हैं । ये सातों विमर्षों की उत्पत्ति के कारण हैं ॥ ४ ॥

तत्र वातिकमाह—

यत्र वातापरौसर्पा घातज्वरसमन्वयः । शोकारफुरगनिम्बोक्षेदायामार्ति हर्षयान् ॥ ५ ॥  
 वातिक विसर्प—जिम विसर्परोग में वात उबर के समान पीड़ा, शोथ, स्फुरण ( फट्टकाहट )  
 तो- ( धई पुमान के समान पीड़ा ) और भेद पटभे के समान म्बया हो तथा श्री फैने बाग  
 हो, पीड़ा से मुक्त हो और त्रिभये रोगाघ हो उसे वात दोष का वीसर्प मानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैतिकमाह—पित्ताद् दुष्णगति पित्तज्वरलिहोऽसिद्धाहितः ॥  
 पैतिक विसर्प—जो विसर्प रोग बढ़ने वाला हो, जिममें पित्त उबर के लक्षण के समान लक्षण  
 हो और जो अत्यन्त रक्त वर्ण का हो उसे पैतिक विसर्प कहत हैं ॥

कफजमाह—कफात्कफुमुसः स्निग्ध कफज्वरसमानरुग् ॥ ६ ॥  
 कफज विसर्प—जिस विसर्प में सुखमारट, चिदमारट और कफ उबर के समान पीड़ा हो उसे  
 कफज विसर्प कहते हैं ॥ ६ ॥

सन्निपातिकमाह—

सन्निपातसमुत्पद्य सर्वलिङ्गसमन्वितः । गणायाम्भयद्विर्मेदाहितरपः पठितो द्विषा ॥ ७ ॥

सात्रिपातिक विसर्प—भिन्न विसर्प में तीनों दोषों के सब लक्षण एकत्र हों उसे सात्रिपातिक<sup>१</sup> विसर्प कहते हैं । यह सात्रिपातिक विसर्प अन्तर बाह्य भेद से दो प्रकार का होता है ॥ ७ ॥  
मर्मोपतापासंमोहाद्यनानां विघट्टनात् । सृष्णादियोगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥ ८ ॥  
विद्याह्विसर्पमन्तर्जमाद्यु चाग्निबलक्षयात् । अतो विसर्पणाद्वाद्यमन्य विद्यासुलक्षणैः ॥ ९ ॥

अन्तरजं और बाह्यज विसर्प—मर्म स्थानों में ताप अथवा आपात होने से, मोह होने से, अयनों अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन के विघट्टन से अथवा स्रोतों के बन्द होने से, अधिक व्याध से, वेगों के उचिन्न प्रवृत्त नहीं होने से और अग्नि बल के क्षय ( मन्दाग्नि ) होने से शीघ्र अन्तरज विसर्प हो जाता है और इससे विपरीत लक्षण होने पर बाह्यज विसर्प हो जाता है ॥८-९॥

द्वंद्वमाह—

घातपित्ताज्वररुद्धिर्मूर्च्छातीसारवृद्धमै । अस्थिमेवाग्निसदनसमकारोचकैर्युतः ॥ १० ॥  
करोति सर्वमङ्गं च क्षीणाहारावकीणयत् । य य देश विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स स ॥ ११ ॥  
शान्ताहारासितो मोल्लो रक्ते वाऽऽशु च शीयते ।  
अग्निदग्ध ह्य रफोटै शीघ्रगत्वाद् मुत च सः ॥ १२ ॥  
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्तत । व्यथेताह हरेत्सशां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥  
हृष्मां च स गतोऽयस्थामीदृशीं लभते न ना ।

कचिच्छर्मारतिप्रस्तो भूमिपय्यासनादिषु ॥ १३ ॥

चेष्टमानस्ततः विलष्टो मनोदहभ्रमोद्गाम् । दुष्प्रबोधोऽरुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥  
भारतेय विसर्प—द्विज विसर्प में ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतोसार, घृषा, भ्रम, अस्थिभेद, मन्दाग्नि, तमक श्वास और अरुचि होता है और सम्पूर्ण अङ्ग ऐसे हो जाते हैं मानो जलते हुए अङ्गारे छिड़क दिये गये हों, जिस २ स्थान पर विसर्प रोग फैलता है उस २ स्थान पर ऐसा घात होता है मानो गुनाये हुए कृष्णवर्ण के अङ्गार हैं अथवा नील वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के फफोले पड़ जाते हैं और वे फफोले शीघ्रगामी होने के कारण हृदयादि मर्मों की ओर फैलते हैं जिसके कारण वात अति बलवान हो जाता है और अङ्गों की पीडित तथा संश्र (वेगना) और निद्रा का नाश होता है, प्रब श्वास और हृदिका की रुद्धि कर देता है । इस प्रकार की अवस्था होने पर मनुष्य व्याकुल होकर भूमि, शय्या तथा आसन इत्यादि किसी स्थान पर शान्ति नहीं पाता है । इस कष्ट से शान्ति मिलने की चेष्टा करने पर उसे मन-देह के यकिन होने के कारण दुष्प्रबोध निद्रा अर्थात् मरण मुख्य निधेय भाव का हो जाता है । ऐसे विसर्प को वात-पित्त के क्रोप का प्रयोजन विसर्प कहते हैं ॥ १०-१५ ॥

कफमारुतजग्रन्थिविसर्पमाह—

कफेन रुद्धः पथनो भिरवा स बहुधा कफम् । रक्तं वा बुद्धरक्तस्य त्वविशारास्नायुर्मांसगम् ॥  
दूषयित्वा च क्षीर्षाणुवृक्षस्थूलखरात्मनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां क्षीघ्ररुज्वराम् ॥  
श्वासकासास्यवैरस्म शोषहिष्मावभिभ्रमै । मोहवैषम्यमूर्च्छाङ्गमङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ १८ ॥  
हृदयं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपश्च ॥

कफवाजज ग्रन्थि—विसर्प िस विसर्प में कुपित कफ से अवरोधित कुपित वायु उस कफ को अनेक प्रकार से भेदित कर अथवा बड़े हुए रक्त वाले मनुष्य रक्त को भी भेदित कर के उसकी रक्ता, शिरा, स्नायु और मांस में स्थित रक्त को दूषित करके बढी, छोटी, गोल, मोटी और कठिन गाठों की माला को उत्पन्न कर देता है यह ग्रन्थियां रक्त होती हैं उनमें तीव्र पीड़ा और उ्वर होता है तथा श्वास, कास, मुख की धीरसता, शोष, हृदिका, वमन, भ्रम, मोह, विवण्ता, मूर्च्छा अङ्गों का दृटना और मन्दाग्नि आदि होते हैं उसको कफ और वायु के कोप का ग्रन्थि विसर्प कहते हैं ॥ १६-१८ ॥

कफपित्ताज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ॥ १९ ॥

अद्वावसाद्विषेपप्रलापारोचकभ्रमा । मूर्च्छाग्निहानिर्मर्दोऽस्थनां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥२०॥  
आमोपवेशनं श्लेष स्रोतसां स च सर्पति । प्रायेणाऽऽमाशयं गृह्येषुकदेपा न चातिरुक् ॥ २१ ॥

पित्तकैरथकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरे । सिग्धोऽसितो मेघकामो मलिनः शोथयान्मुहः ८  
गम्भीरपाकः प्राग्ज्योत्स्ना स्पृष्टः क्लिप्तोऽवदीर्यते । पङ्कजस्तीर्णमांसस्य स्पृष्टस्नायुशिराणां ॥  
शयनश्च स धीमर्षः कर्द्वमाख्यमुदाति तम् । अग्निर्कृत्वमको घोरोः स पिच्छरूपमयः ॥

कफ पिच्छ कर्दम विसर्प—जिस विसर्प में चर, रम्यता निद्रा, तद्रा, शिर में पीरा  
अर्धों में शिथिलता, विषेन, प्रणय, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, अथि भेद ( इन्द्रियों का  
दृटना ), तथा और शिद्रियों में गुरुता हो तथा मन स्वाग के समय भाव निकलता हो, नासिकादि  
में कफ लिपटा हुआ हो, आमाशय को ही ग्रहण कर फँटता हो, उसमें पीड़ा भी अति नहीं हो,  
तथा अत्यन्त पीत, छोहित और पाण्डु वर्ण को विक्रियायें स्वाप्त हो गयी हों सिग्धता हो, शयान्ता  
हो, अजन के वर्ण का वर्ण हो, मलिन हो, शोथ युक्त हो, गुरु हो, श्रुत भीतर से पकने वाला  
हो, अत्यन्त उष्ण हो, स्वर्ण करने पर आर्द्र मात हो, पट्टता हो, शीघ्र क संज्ञान रत्न का लक्षण  
हुआ मांस निकलता हो और मांस निरस जाति से शिरा, स्नायु आदि स्पृष्ट दिताई देता हो  
और शव के समान गंध निकलता हो तो उसे कफ-पिच्छ के घोप सं होने बाधा कर्म गाम का  
विसर्प कहते हैं । यह भयवर होता है ॥ १०-२४ ॥

सूत्रमाह—

याद्यहेतोः शताकुद्भुः सरक पिच्छभीरयेत् । विमर्षं मान्न कुपरिपुल्यसत्तनीक्षितम् ॥  
स्फोटैः शोथश्चरुज्जादाहाह्य न्यावलोहितम् ॥ २५ ॥

। सूत्रज विमर्ष—सूत्रज विसर्प में बाध आयात सं सूत्र हो जाने पर रक्त के अधिक रोग होने  
से वायु कुपित होकर रक्त के साथ पिच्छ को लेकर विमर्ष रोग को उत्पन्न कर देता है जिसमें  
विसर्प को विक्रियायें कुलपी के आकार की स्वाप्त हो जाती है तथा शोथ, चर, पीड़ा और दाह  
भी वसमें अधिकता होती है तथा वर्ण श्याम अथवा छोहित होता है ( भोज ने रक्त पिच्छ विसर्प  
ही माना है ) ॥ २५ ॥

विसर्पोद्भवानाह—

ज्वरातिसारवमणुष्यद्मांसदरण्यवत्तमाः । आरोधकापिपाकौ च विमर्षाणामुपद्रवाः ॥ २६ ॥

विसर्प के उपद्रव—विसर्परोग में चर, अजीर्ण र मन, तथा तथा मांस का पटना कर्णा-त  
अरुचि और अविपाक ( भोजन का न पचना ) आदि उपद्रव होने हैं ॥ २६ ॥

साध्यासाध्यमाह—क्षिप्यन्ति वातरुफपिच्छतृता विसर्पाः सर्वात्मक एतदृशस्य स सिद्धमेति ।

पित्तात्मकोऽभून्नवपुष्य मयदमाप्यः शृङ्गाय मर्मसु मययित्ति द्वि सय एव ॥ २७ ॥

विसर्प के साध्यासाध्यता—वात-पिच्छ और चर के दोषों से होत वाला विसर्प साध्य है ।  
साध्यासाध्य और सूत्रज विसर्प असाध्य है । पिच्छ के अत्यन्त बढ़ जाने से काम कर्ण के ममा र  
कृष्ण वर्ण बाधा अथि विसर्प असाध्य है । अर्धरथानों में होने वाले सभी विमर्ष कफ साध्य होते हैं ॥

अथ विसर्पचिकित्सा ।

पूर्वमेव विसर्पेषु कुर्वाणकृद्भनरूपने । त्रिकैवमनात्पसाधनाष्टमिदोऽनौ ॥

उपाशोषपाशोष विसर्पाग्निसिद्धिसिः ॥ १ ॥

विसर्प चिकित्सा—विमर्षरोगों में सर्वप्रथम सहन और स्थिर करने तथा शिथिल, शान्त,  
रुच, सव ( सिंचा ) और रक्तमोक्षण कराना चाहिये और शोथों के अयुक्त विरिधता करने  
चाहिये । विशेष कर अग्निदी पदार्थों का सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

शिरसनम्—

पिच्छलासार्सयुक्त सपिच्छितृता सह । प्रयोक्तव्यं विरकार्यं विमरुत्तरागतये ॥

शिरसन रोग—शिरसा रोगों के रसास अथवा हाथ में सूत और निशीर का पूर्ण गिलाह  
प्रयोग करने से अथवा शिरसा के रोग से शिथिल र घृत् मिश्र कर सेवन करने से शिरसा हो  
कर विसर्प और चर शान्त होता है । अथवा निशीर और इरुह के पूर्ण के सेवन करने से  
विसर्प शोथन होता है ॥ १ ॥

धननम्—

पट्टेऽपिच्छमन्दायाम्पि पिच्छाया मद्भनेन वा । विसर्पे धमर्षं कर्म्यं तथा योग्यद्वयै सह ॥ १ ॥

धमनकारक योग—परबल और नीम की छाल का हाथ पान कराने से अथवा पीपल और मैनफल के चूर्ण को बल से सेवन कराने से अथवा इन्द्रजी के चूर्ण वा जल से पान कराने से विसर्परोग में धमन होता है ॥ १ ॥

श्लैष्मिकेऽग्न यमिः कार्या पूर्ण रेचकात् सतः । मधुन मधुक निम्ब घसकरय फलानि च ॥  
पृत्तैवमिर्विधातव्या विसर्प करुसम्भवे ॥ २ ॥

कफज विसर्परोग में पहले धमन पश्चात् विरेचन कराना चाहिये । मैनफल, मुल्हठी, नीम की छाल और इन्द्रजी प्रत्येक समान भाग लेकर विभिपूर्वक हाथ अथवा चूर्ण बना कर सेवन करने से कफज विसर्प में धमन होकर लाभ होता है ॥ २ ॥

### अथ लेपः ।

रासना नीलोत्पल दाह घवून मधुक पला । पिष्ट्वाऽऽज्यधीरवाङ्गुलेपो यातधीसपनाशन ॥ १ ॥

रासनादि लेप—रासना, नीलब.मल, देवदारु, रक्तचन्दन, मुल्हठा भरिआरा प्रत्येक समभाग लेकर घृत और दूध के साथ पीस कर विभिपूर्वक लेप करने से वायुज विसर्प नष्ट होता है ॥ १ ॥  
प्रपीण्ढरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनै । सयष्टीदीवरै पृत्ते चीरपिष्टै प्रलेपनम् ॥ २ ॥

प्रपीण्ढरीकादि लेप—पुष्करिया काठ मजीठ, पदुमकाठ, खस, रक्तचन्दन, जेठीमधु, नील कमल प्रत्येक समभाग लेकर दूध के साथ पीसकर लेप करने से पित्तज विसर्प में लाभ होता है ॥

कसेरुश्मद्गाटकपद्मगुञ्जाः सशैयला सोपलकदंमाक्ष ।

घस्त्रात्तरा पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेया सपृता सुशीता ॥ ३ ॥

कसबादि लेप—कसेरु, सिंघाड़ा, कमल, रत्तियां, सेवार (जल की काह), नीलकमल और कीचड़ प्रत्येक समान पीसकर गाधृत मिलाकर विभिपूर्वक लेप बना कर शीतल ही शीतल बख पर लगाकर लेप लगाने से पित्तज विसर्प में लाभ करता है ॥ ३ ॥

गायत्रीसप्तपर्णाब्दुवासारगवधदारुभिः । कुटञ्जटैमधेष्टेपो विसर्प श्लेष्मसम्भवे ॥ ४ ॥

गायत्र्यादि लेप—रीर, द्रितवन की छाल, नागरमोषा, कुरुसा, अमलतास, देवदारु, आलू (सोता पाठा) की छाल प्रत्येक समभाग पीस कर विभिपूर्वक लेप लगाने से कफज विसर्प में लाभ होता है ॥ ४ ॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरधीरकम् । नष्टमूलमनता च लेपे श्लेष्मविसर्पहा ॥ ५ ॥

त्रिफलादि लेप—हरड़, श्वेदा, आवला, पदुमकाठ, खस, मजीठ, कनेर की जड़, नररट की जड़ और अनन्तमूल प्रत्येक समभाग पीस कर विभिपूर्वक लेप करने से कफज विसर्प नष्ट होता है ॥  
सर्पिणा दातघौतेन कृतो लेपो मुहुर्मुहुः । निहन्ति सर्ववीसर्पं सर्पं पतगरादिव ॥ ६ ॥

शतघौतसर्पिलेप—घन की सोवार शीतल जल से धोकर बार २ लेप करन से सब प्रकार के विसर्प इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार गरुड से सर्प नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

दशान्नलेप — शिरीषयष्टीनसचन्दनैलामांसीहरिद्राह्वयकुष्ठनालैः ।

लेपो दशान्न सपृत्त प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठम्रणशोधहारी ॥ १ ॥

दशान्नलेप—शिरीष की छाल, जेठीमधु तगर, रक्तचन्दन छोटी श्यायची, जयामासी, हल्दी दाहहल्दी कुट, मृगशबाला प्रत्येक समभाग बल से पीस कर घृत मिलाकर लेप करने से विसर्प, दुष्टम्रण और शोध (म्रण शोध) नष्ट होते हैं । (यहां लेपविधि के अनुसार घृत सब द्रव्यों के पञ्चमाश म्रण करना चाहिये ॥ १ ॥

### मांस्यादिलेपः—

मांसी सर्जरसो छोत्रं मधुक सहरेणुकम् । मूर्धा नीलोत्पल पद्म शिरीषकुसुमानि च ॥

पृत्तैः प्रदेहः कथितो वह्निवीसपनाशन ॥ १ ॥

मांस्यादि लेप—बटामांसी, राल, सोध, मुल्हठी, रणुका, मूवामूल, नील कमल (नीलोफर) कमल और शिरीष के फूल प्रत्येक समभाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से अग्नि-विसर्प नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतघौतघृतविमिश्र कफकरयवपद्मकरय लेपेन । यहुवाहकरमुश्चैरग्निविसर्पं विनाशयति ॥

पञ्चत्वगादि लेप—सौ बार पुछे हुए घृत में पञ्चवत्कल ( बट, पीपर, [ अदकाय ], गूदर, पाकड़ और बेत के छाल ) के समान भाग चूर्ण को मिलाकर लेप करने से शल्पन्त दाह बरने वाला और लव्च ( उठा हुआ ) अग्नि विसर्प नष्ट होता है ॥ २ ॥

न्यग्रोधपादो गुञ्जा च कद्दलीगर्म एव च । एतैर्मन्त्रियविसर्पज्ञो लेपो धौतागपसंयुतः ॥ ३ ॥

न्यग्रोधपादादि लेप—बट वृक्ष की जड़, गुञ्जा ( रत्तिया ) और केठे के बीज का गूना प्रत्येक समान भाग पीस कर सौ बार पुछे हुए घृत में मिलाकर लेप करने से अग्नि विसर्प नष्ट होता है । शतधौतघृतोन्मिध शिरीषत्वग्गज कृत । लेपः क्षमयति विप्र विसर्पं कर्तुं गामिघम् ॥ ४ ॥

शिरीषत्वगादि लेप—सौ बार पुछे हुए घृत में शिरीष की छाल के चूर्ण को मिलाकर लेप करने से वर्दम नाम का विसर्प नष्ट होता है ॥ ४ ॥

**अथ फायाः ।**

फनीयाः पञ्चमूलस्य यययकलकस्य वा । कपायाः पित्तवीसर्पे पाने सेकेऽपि क्षम्यते ॥ १ ॥

लघुपञ्चमूलादि काय—लघुपञ्चमूल ( शालिवर्णी, पृथिवर्णी, छोटी बटेरी बड़ी कटेरी, गोलरू ) और यव का थिलका समान भाग लेकर बनाया हुआ विभिपूर्वक काय में पान कपसा सिपन करने से पित्त विसर्प में लाभ होता है ॥ १ ॥

पटोलादि—कुलकयूपक्रितातारिष्टिकाक्षपध्यामलयमलयजानां कौशिकाश्व कपायाः ।

सकलगद्दसुमथं हन्ति वीसर्पमुग्र ज्वरवमिविपदाहभ्रान्तिवृष्णाकग्नाभिः ॥ १ ॥

पटोलादि काय—परबल पत्र, अरुसा, चिरामठा, नीम की छाल, कुटकी, बदेदा, हरद, आंबला, चन्दन प्रत्येक समान भाग लेकर विभिपूर्वक काय बनाकर उसमें शुद्ध गुग्गुलु का प्रथम देकर पान करने से ज्वर, वमन, विष, दाह, भ्रम, वृषा और पीडा युक्त बहिन रोग तथा विसर्प भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

**शुद्धव्यादि—**

अमृतधूपपटोल निम्बककैरपेत त्रिकलसदिरसार व्याधिघातं च गृह्यम् ।

कथितभिवमनोप गुग्गुलोः पादयुक्त हरति विपविसर्पां कुष्ठसन्नातमाशु ॥ १ ॥

शुद्धव्यादि काय—गुरुची, अरुसा, परबल पत्र, नीम की छाल, आंबला, हरद, बदेदा, शीर अमलतास प्रत्येक समान भाग लेकर विभिन्न काय कर उसमें यजुर्बीज शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर पान करने से विष रोग, विमर्ष रोग और कुष्ठ समूह शीघ्र नष्ट होत है ॥ १ ॥

भूमिदाप—भूमिन्मवासाककुष्ठापटोल फलशिकं चन्दननिम्बसिद्धः ।

विमपदाहज्वरतोफकण्डूविस्रोटवृष्णायमिन्नुत्कपायाः ॥ १ ॥

भूमिदादि काय—चिरामठा, अरुसा कुटकी, परबल पत्र, आंबला, हरद, बरसा, चन्दन और नीम की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विभिपूर्वक काय बनाकर पान करने से विसर्प, दाह, ज्वर शीघ्र, कण्डू विस्फोट, वृष्णा और वमन नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

**दुरालभादि—**

दुरालभापपटकं शुद्धधी विद्यभयञ्जम् । निशापर्युषितं दद्यात्पुष्पाधीसर्पसाम्पत् ॥ १ ॥

दुरालभादि योग—ब्रह्मा, विचारा-दा, गुरुची और शीत प्रत्येक समान भाग लेकर की कुट कर जल में िरस कर रात भर पड़ा रहने दे । प्रातःकाल छानकर पान करने से वृष्णा और विमर्ष नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पटोल विषुमग्द च शर्षपी बटुकरोहिणीम् । यष्टवाह्ने श्याममालां च दद्यात्सीसर्पसाम्पत् ॥ १ ॥

द्वितीय पटोलादि काय—परबल पत्र, नीम की छाल, दाह बटेरी, कुटकी, जेठीमनु, वाच माग प्रत्येक समान भाग लेकर विभिन्न काय करके सोहन करने से विमर्ष शान्त हो । है ॥ १ ॥

**दुरालभादि—**

मुस्तादिष्टपटोलानां कायः सर्पविसर्पयुतम् । चाग्नीपटोलमुहानामाद्यथा घृतसंयुतः ॥ १ ॥

शुद्धादि काय—नादरमोका नीम की छाल, परबल पत्र प्रत्येक समान भाग लेकर विभिन्न काय पान करने से अथवा आंबला, परबल पत्र और मूला प्रत्येक समान भाग लेकर विभिन्न काय कर घृत का प्रयुक्त देकर पान करने से विसर्प रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

तथादौ गौराष सर्पि—

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम् । मधुक मधुपर्णी च पद्मक पद्मकेसरम् ॥ १ ॥  
 उशीरमुपल मेदा त्रिफला पद्म पद्मकलम् । कर्कशैरुसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥  
 विपवीसर्पविरफोटकीटलुतामणापहम् । गौराषमिति विख्यात सर्पि श्लेष्ममहप्रणुत् ॥ ३ ॥  
 गौरादि घृत—इली, दारुइली, जालिपनी, मूर्वामूल, सारिवा, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, गुल्मी, गुरुची कयवा गम्मार की छाल, पद्मकाठ, पद्मकेसर, सस, नीलमल, मेदा, भाँवला, इरु, बदेवा और बट, अश्वत्थ, गुल्म, पाण्ड तथा बेत की छाल प्रत्येक एक २ अङ्ग लेकर विधिपूर्वक कस्क कर उसमें एक प्रथम मूर्च्छित गोघृत और पाकार्थे जल चार प्रथम मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से विष, विसर्प, विस्फोटक, कीट, लूता (मकड़ी का विष) और म्रग को नष्ट करता है । यह घृत गौरादि नाम से विख्यात है तथा कफ और वायु के दोषों को नष्ट करता है ॥ २-३ ॥

वृषादिसर्पि—घृपलदिरपटोलपत्रनिग्ध सममगृतामलकीकपायकफके ।  
 घृतमभिनयमेताद्वाशु पत्र जयति सदाऽस्तविसर्पकुण्डगुह्यमान् ॥ १ ॥

वृषादि घृत—अरुसा, रौद्र, परबल पत्र, नीम की छाल, गुरुची और भाँवला प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कस्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गाय का नया घी और घृत से चौगुना अरुसा आदि कश्रीय द्रव्यों का प्रस्तुत वषाथ लेकर पत्रय कर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से रक्तविसर्प, कुष्ठ तथा गुह्य शोथ ही नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

दूर्वादिसर्पि—दूर्वापटोदुग्धरजमुसालसप्तच्छदाश्वत्थकपायकफके ।  
 सिद्ध विसर्पञ्जरदादपाकविरफोटयोपान्विनिहन्ति सर्पि ॥ १ ॥

दूर्वादि घृत—दूर तथा बट, गुल्म, जामुन, साल, धितवन और पीपल की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कस्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना दूर आदि कश्रीय द्रव्यों का विविध प्रस्तुत वषाथ पत्रय कर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से विसर्प, ज्वर, दाद, पाक, विस्फोट और शोथ नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

करादितैलम्—करञ्जसप्तच्छदाग्रीलीकास्तुष्टकडुग्धानरभृङ्गराजे ।  
 तैल निशामूर्धविर्पायपत्र विसर्पावस्फोटविचचिक्राग्रम् ॥ १ ॥

करादि तैल—करञ्ज, धितवन की छाल, करियारी विष, सेडुङ्ग का दूध, चीता, भागरा, इली, गोमूत्र और मीठा विष प्रत्येक समभाग लेकर विविध कस्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तैल और तैल से चौगुना पाकार्थे जल लेकर सबको एकत्र कर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से विसर्प, विस्फोटक और विचचिका रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

मञ्जिष्ठाभया—

मञ्जिष्ठा कुटजो मुस्ता गुह्यची रजनोद्वयम् । कण्टकारी घघा शुण्ठी कुष्ठारिपटोलकम् ॥ १ ॥  
 वागी विहङ्गकामाची मोरटा प्लघदाहकम् । कलिङ्गभृङ्गप्रायन्तीपाठाकार्मीरिका थलि ॥ २ ॥  
 गायत्री त्रिफला तिष्ठा सारिवा नक्तमालक । वासोशीरमहाबृहत्सोमराजीप्रियंगुका ॥ ३ ॥  
 चन्दन पर्पटान ताविशालाप्रिघृता जलम् । कटुमिक खुरासान पलमेक घृथकघृथक् ॥ ४ ॥  
 द्वाविशतिपर्ला पथ्या जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टावशोप कर्त्तव्य फाथ सन्निपणा तत ॥ ५ ॥  
 पद्मपूता सिधा कार्या तीष्णालोहन धेधयेत् । मधुमध्ये विनिधिप्य त्रि सप्तदिनसखयवा ॥ ६ ॥  
 विनष्टं मधु सखय्य मधु श्रेष्ठ पुनः चिपेत् । तत सुरवाहसपर्धा प्रभाते भक्षयेच्छिवाम् ॥ ७ ॥  
 विसर्पाघ्नाशयोसर्वात् कुष्ठान्यष्टादशापि च । सुद पामो च कण्टू च द्दुविस्फोटविघ्नीन् ॥

अभ्यासवदोपजा रोगास्तथा रक्तसमुत्तवान् ॥ ८ ॥

मञ्जिष्ठाभया—मंजीठ, कोरवा की छाल, नागरमोथा गुरुची, इली, दारुइली, छोटी कटेरी, बच, सौंठ, कूट, नीम की छाल, परबल पत्र, बाह फकोडा, वायविटग छोटी मकोय, अङ्गोल की अङ्ग, पाकड़ की अङ्ग, देवदारु, इन्द्रजी, भागरा, त्रायमागा, पुरबनपादी गम्मार की छाल, शुद्ध

गणक, खैर, हरद, बहदा, आवला, कुटवी, मारिवा, करज, मरुसा, छस, ममन्नास, बाहुवी, बीज, प्रिमणु, रक्तचन्दन, पित्तपापदा, अन्नमूत्र, माहुरि, निशोय, सुगन्धबाला, सौंठ, पीरस, मरिच और खुरासानी अन्नवाहन, प्रत्येक एक २ पल और हरद, ३२ पल एकम कर एक डोय ( ४ भादक ) जल के साथ ढाष करे अष्टमांश दोष रहने पर जगर-खानकर हरद की वृष्य का लोहे के तीक्ष्ण काटे स छेद कर २१ दिन तक मधु में रचे, २१ में दिन जब यह मधु तराव अथवा घट जावे तब हरदों को उससे निकाल कर दूसरे उष्ण मधु में डुबा देवे पश्चात् उस छुराव हरदों को नित्य प्रातःकाल मक्षण करने से सब प्रकार के विसर्प, अठारहों प्रकार के कुष्ठ और वातरक्त, पामारोग, कण्डू, दद्रु, विस्कोटक, विद्रधि और अम्याय स्वभा के दोष वाले रोग तथा रक्त दोष से होने वाले रोग सभी नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

त्रिदोषार्त्ता क्रिया कुर्याद्विसर्प द्वद्वसम्भव । रसायनानि कुण्डेषु सर्पाणि क्वापनानि च ॥

पूर्यादीन्वपि सर्पाणि विसर्पेष्वपि तान्यलम् ॥ १ ॥

द्रव्य विसर्प चिकित्सा—द्रव्य विसर्प में विदोष नाशक क्रिया करनी चाहिये तथा कुष्ठ रोग में कड़े हुए रसायन योग, घृत, घाव और शूर्पादि सभी विसर्प रोग में देना चाहिये प्रदीर कुष्ठ की सम्पूर्ण चिकित्सा विसर्प में करनी चाहिये ॥ १ ॥

### अथ पथ्यापथ्यम् ।

विरेको घमन सेषो लहून रक्षमोषणम् । पुराणयवगोधूमरजुपट्टिकनालयः ॥

सुदुगा मसूराक्षणकास्तुषयो जाह्लो रसः ॥ १ ॥

नवनीतं पूवं ग्राचा दाडिम कारयेष्टकम् । वेशाम कुठक धात्री रादिरो नागकेसरम् ॥ २ ॥

ग्राचा शिरीषकपूरं चन्दनं त्रिलोचनम् । यथादोषं पथ्यमिदं सेवितव्यं विसर्पिणि ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—विरेचन, वान, लव, लहून और रक्षमोषण तथा पुराने पर, गेहू, कंगनी, सार और शालिधान के चावल, मूंग मटर, चना, अरहर, जांगल जावों का मांसरस, मसूरा, पूरा दास, अनार, करेली, धेनू का अम्रभाग, परबल, भावना, रौं, नागकेसर, सुनस्ता, शिरी और करपूट का सेवन तथा चन्दन और त्रिल का छेद विसर्प वालों के लिये पथ्य कहा गया है ॥

व्यायाममस्ति पापनं सुखं प्रयास कोषं शुचं वसवेष्वपिधारणं च ।

सुर्वधपानमस्ति लश्चुन कुलिथान्मापांस्तिरान्तरकलमांसमजाह्लं च ॥

स्वेद्यं विद्राहिलयणामलरट्टनि मद्यमय प्रमामपि विसर्पगृही त्पथ्ये ॥ ४ ॥

व्यायाम, दिन में गोना, मैपुन, कड़ी बाधु का सेवन, काष, शोक, बदन तथा आवाग्य देगों को भी रोचना सब प्रकार के शुभ भोज तथा पानादि का सेवन करना, लहून, कुठकी, कदु, त्रिल, जांगल जीवों के अतिरिक्त सभी जीवों के मांस, स्वेदकम, विद्राही पदार्थ, लव, मसूरा तथा कदु रस वाल पदार्थ, गरिदा और पूर इन सबको विसर्प का रागी रोग देवे ॥ ४ ॥

इति विगयपचरण मम तम्

### अथ विस्कोटनिदानम् ।

क्यूमलश्रीपगोष्पाशिशिरुचचाररमीर्ण्यसनातपक्ष ।

सपयुंशोपग विपर्ययैश्च सुप्यन्ति दायाः पचनादुपरतु ॥ १ ॥

विस्कोटक निदान—स्त्वन् बड, अन्न तीव्र, उष्ण, दाहदारक, कष और घात रूप के अतिसेवन करने से तथा अमीर्ण में मोहन करने से अथवा कष्ये पथ्य के सेवन से और अरयन ( भोजन करने पर पुनः भोजन करने ) से, अधिक ताप ( घूर ) सेवन से, अट्ट के दोष ( रोग उष्ण आदि के अधिक रूपी ) से और अट्ट के विररीण आवरण करने से वास्तविक दोष कुष्ठ होकर विस्कोट रोग को उत्पन्न करने है ॥ १ ॥

त्वचमाश्रियं तं रक्तमावापानि मद्रूप्यं च ।

धोराम्बुप्यन्ति विस्कोटमसर्थाभ्यरजुससात् ॥ २ ॥

विस्कोट की संज्ञाति—उष्ण कार्त्तों से कुष्ठ वास्तविक दोष स्वभा के अतिवृद्धि से

रक्त, मांस और अग्नि को दूधित करके ज्वर के पूर्वरूप के समान लक्षणों को धरते हुए ज्वर सहित गोर विस्फोट को उत्पन्न कर देता है ॥ २ ॥

वैषां रूपमाह—

अग्निवृद्धनिभा स्फोटा सज्वरा रक्तपित्तजाः । कश्चित्सर्वत्र घा वेदे विस्फोटा इति सस्मृताः ॥ -

विस्फोट के रूप—शरीर पर अग्नि से जले हुए के समान ज्वालने और उसके साथ २ ज्वर अथवा रक्तपित्त के कारण जो स्फोट किसी २ स्थान पर अथवा सम्पूर्ण शरीर पर हो जाते हैं वही विस्फोट कहते हैं ॥ ३ ॥

वातिकमाह—

शिरोरुक्मशूलभूयिष्ठज्वरकृत्पर्यभेदनम् । सक्तुष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

वातिक विस्फोट—जिस विस्फोट में शिर में पीडा, उदर में अधिक दाल, ज्वर, गुषा, संधि स्थानों में भेद ( टूटने के समान पीडा ) और ज्वालने वा वर्णकृष्ण हो उसे वातिक विस्फोट कहते हैं ॥ ४ ॥

पैतिकमाह—

ध्वरवाहुरुज्जास्त्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् । पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

पैतिक विस्फोट—जिस विस्फोट में ज्वर दाह, पीडा, साव, पाव, तृष्णा और विस्फोट का वर्ण पीत अथवा लोहित हो उसे पित्तज विस्फोट कहते हैं ॥ ५ ॥

श्लेष्मिकमाह—

छर्द्यरोचकजाक्यानि कण्डूकाटिभयपाण्डुताः । अथेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटाः कफात्मकाः ॥ ६ ॥

कफज विस्फोट—जिस विस्फोट में वमन, अरिचि, जड़ता विस्फोट में कठिनता और वर्ण पाण्डु हो, पीडा नहीं हो और बहुत दिन में विस्फोट में पाक हो उसे कफ के कोप का विस्फोट जानना चाहिये ॥ ६ ॥

कफपैतिकमाह—कण्डूर्वाहो ज्वररद्यदिरसैस्तु कफपैतिकः ॥ ७ ॥

कफ-पित्तज विस्फोट—जिस विस्फोट में कण्डू, दाह, ज्वर और वमन हो उसे कफपित्तज कहते हैं ॥ ७ ॥

वातपित्तजमाह—वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥

वात-पित्तज विस्फोट—जिस विस्फोट में तीव्र वेदना हो उसे वात-पित्तज कहते हैं ॥

कफवातिकमाह—कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जातीयाकफवातिकम् ॥ ८ ॥

कफ-वातज विस्फोट—जिस विस्फोट में कण्डू हो, आर्द्रता हो ( जीजे हुए पक्ष से आच्छादित हुए की भाँति हो ) और गुरुता हो उसे कफ-वातज विस्फोट कहते हैं ॥ ८ ॥

त्रिदोषजमाह—

निम्नमप्य उन्नतोऽन्ते च कठिनोऽक्षप्रपाकयान् । दाहरोगतृप्तामोहच्छर्दिमूर्च्छाश्चो ज्वरः ॥

प्रलापो येपथुस्तग्ना सोऽसाध्यस्तु त्रिदोषजः ॥ ९ ॥

त्रिदोषज विस्फोट—जिस विस्फोट का मध्य गहरा और किनारा ऊँचा हो, तथा कठिन हो, - पीडा पाक जिसमें हो, दाह हो, वर्ण कृष्ण २ लाल हो और गुषा, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, - ज्वर, प्रलाप, कृष्णन, तथा तन्द्रा हो उसे त्रिदोषज विस्फोट कहते हैं । यह असाध्य होता है ॥ ९ ॥

रक्तजमाह—

रक्ता रक्तसुरथाना गुल्फाविद्रुमसनिभाः । वेदितव्यास्तु रक्तेन पैसिकेन च हेतुना ॥ १० ॥

य से सिद्धिं समापान्ति सिद्धैर्योगवैररपि ।

रक्तविस्फोट—जिस विस्फोट का वर्ण गुलाब के समान अथवा मूंगे के समान लाल हो उसे रक्तज विस्फोट कहते हैं । ये विस्फोट रक्त पित्त के दोष से उत्पन्न होते हैं और उत्तम सिद्धयोगों से भी नहीं छूटते हैं ॥ १०-१० ॥

पुण्ड्रोपोस्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ ११ ॥

सर्वरूपान्वितो घोरसवसाध्यो भूसुपत्रवः ॥ १२ ॥

साध्यासाध्यता—एक दोष से उत्पन्न होने वाला विस्फोट साध्य और दो दोषों से उत्पन्न



होने वाला कष्ट साध्य तथा विशेष भयवा अनेक उपद्रवों वाला कठिन विस्फोट असाध्य होता है ।  
 -द्विष्ठा श्वासोऽरिष्टस्तृष्णा धातुमर्दो हृदि व्यथा । विषपंगुरदृष्टासविस्फोटानामुपद्रवाः ॥१३॥  
 विस्फोट के उपद्रव—विस्फोट रोग में हिनका, श्वास, अरुचि, घृणा, अहमर्द ( उरीर का टूटना ), हृदय में पीडा, विसर्प, ज्वर, हृत्कण्ठ ( उरुकार्द ) आदि उपद्रव कहे गये हैं ॥ १३ ॥

**अथ विस्फोटचिकित्सा ।**

सत्राऽऽद्यौ लङ्घन कार्यं धमन पथ्यभोजनम् । यथादोष यत्न धीष्य प्रोक्तं पुष्कं च रेचनम् ॥  
 विस्फोट चिकित्सा—विस्फोट रोग में चिकित्सा के पूर्व प्रथम लङ्घन, धमन, पथ्य सेवन और दोषशानुसार विरेचन करना चाहिये ॥ १ ॥

द्विपञ्चमूर्त्तौ रासनां च दाम्युर्दुर्दारुलाभाम् । सामृत धान्दक मुस्तां कापयित्वा मृत्तं विवेत् ॥  
 विस्फोट वातसभूत निहन्त्येतन्न संशयः ॥ १ ॥

द्विपञ्चमूर्त्तौ वशाथ—द्विपञ्चमूल ( स मूल की पृथक् २ वसीं भोवधियां ), रासना, गारुडकी रस, जवासा, गुल्फि, धनियो और नागरमोषा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक वशाथ कर कुछ उष्ण रहते ही पान करे तो वायु के दोष से उत्पन्न विस्फोट अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

**द्राक्षादि—**

द्राक्षाकारभयस्रजूरपटोहारिष्टवासकैः । बटुकालाजदुस्पर्तैः प्रायाः दार्दरया युतः ॥  
 विस्फोटं पिचज हन्ति सोपद्रवमसंशयम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि वशाथ—द्राव, गम्माटी के पत्र, स्रजू, परबल क पत्र, नीम की छाल, अहसा, गुटरी, धान की शीश और अवासा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक वशाथ करके दार्दरा या मधुन रहकर पान करने से उपद्रवों से युक्त पिचज विस्फोट अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

**भूमिश्वादि—**

भूमिश्वादि वशाथ—चिरायता नीम की छाल, अहसा, हरद, बरदा, भावना, शम्भू, अशाना, नीम की छाल, परबलपत्र प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक वशाथ बना उसमें शर्करा का प्रथम देकर पान करने से कफ के दोष से उत्पन्न विस्फोट अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

**द्वारशाह—**

किराततिककारिष्टपटोहारिष्टुदपदैः । पटोलवातकोटीरिष्टिकाकैरुतैः मृत्तम् ॥ १ ॥  
 द्वादशाहं भरः पीत्वा विस्फोटैभ्यो विमुच्यते । इन्द्रभ्रम्यद्विदोषोत्पाद्मकाश्च हिताशामः ॥

द्वारशाह वशाथ—चिरायता, नीम की छाल, जेठी मधु नागरमोषा, पिचवाइका, परबल पत्र, अहसा, राम, हरद, बरदा, भावना और शम्भू प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक वशाथ करके पीने से द्वादश, विदोषक, रक्तक और अपाय्य दोषों से उत्पन्न विस्फोट नष्ट हो जाते हैं । हममें शिक्कर पथ्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

**अमृतारिक्शाथ—**

अमृतारिक्शाथ—अमृतक सप्तपर्ण स्वविरमसितपत्रं निम्बपत्रं हरिद्रैः ।  
 मृत्तमिति स विस्पर्णमुष्णविस्फोटकण्डूरपनपति मसूर्त्तौ क्षीतचित्तवर्ग ॥ १ ॥

अमृतारि वशाथ—गुरुपी, अहसा परबल पत्र, नागरमोषा, शिपबन की छाल, शीर, काशी बेंत, नीम के पत्र इन्दी, गारुडकी, प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक वशाथ कर पात्र काये तो विसर्प, कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

**पटोकाशुन—**

पटोकाशुनभूमिश्वादिहृत्कण्ठैः । सदिशान्दुत्तैः प्रायो विस्फोटपरशाम्भवे ॥ १ ॥  
 पटोकाशु वशाथ—परबल पत्र, गुल्फि, चिरायता अहसा, नीम की छाल, पिच वाइका, और नागरमोषा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक वशाथ कर पात्र करने से विस्फोट और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

। ।

निम्बादि—

निम्बरवक्रादिरः सारो गुडूची शक्रजोऽथ वा । क्वायो माषिकसंयुक्तो विस्फोटादिज्वरापहः ॥  
निम्बादि क्वाथ—नीम की छाल और रौंर दोनों को समान भाग लेकर विभिन्न क्वाथ कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर शीतल होने पर पात्र करने से अथवा गुरुच और इद्रजो को समभाग लेकर विभिन्न क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से विस्फोटादि ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूनिम्बादिचिकित्सासारात्—

भूनिम्बवासाकटुकपाटोल फलत्रिक च दूधनिम्बसिद्धः ।

विसर्पदाहज्वरशोफकण्डूविस्फोटतृष्णावमिन्नुत्कपाय ॥ १ ॥

द्वितीय भूनिम्बादि क्वाथ—चिरायवा, अरुसा, कुटवी, परबलपत्र, भाँवला, हरद, बहेदा, रत्न चन्दन और नीम की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, कण्डू, विस्फोट, तृष्णा और वमन रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पत्रक घृतम्—

पत्रक मधुफ लोध्र नागपुष्पस्य फेशरम् । हरिद्रे द्वे विद्वहानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ १ ॥  
कुष्ठ छाया पत्रक च सिक्कयक सुथमेव च । तोयेनाऽऽलोढ्य तत्सर्वं घृतमर्द्यं विपाचयेत् ॥  
याश्च रोगास्त्रिहत्यादि साध्विबोध महासुने । सपकीटासुदृष्टेषु नाडीदुष्टविसर्पिषु ॥ ३ ॥  
विविधेषु च विस्फोटे छत्तामूत्रपत्तेषु च । नाडीषु गण्डमालासु प्रमिश्रासु विशेषतः ॥

आस्तीकपिहित धन्य पत्रक सु महद्घृतम् ॥ ४ ॥

पत्रक घृत—पडमकाठ, मुल्लूठी, लोध्र, नागकेसर, हलदी, दाहहलदी वायविहंग, छोटी इलायची, तगर, कुट, छाया, सेत्रपात, मोम और सूयिया प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक करके पत्रक प्रथम मूर्च्छित गोघृत में मिलाकर घृत से चौगुना जल में घोल कर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर लवे । आस्तीक मुनि के बड़े हस्त घृत को सर्प दंश, कीट दंश मूत्रक दंश, नाडी मग, दुष्ट मग, विसर्प, अनेक प्रकार के विस्फोट, छत्ता मूत्र रोग ( मकड़ी के मूत्र से उत्पन्न मग ), क्षत, नाडी मग और गण्डमाला में तथा विशेष कर गण्डमाला के फूटने पर लगाने से ये सभी रोग दूर होते हैं ॥ १-४ ॥

पञ्चत्रिक घृतम्—पटोलसप्तप्लव्दनिम्बवासाफलत्रिकश्लेष्मरुहाविपकम् ।

तत्पञ्चत्रिक घृतमाशु हन्यान्निदोषविस्फोटविसर्पकण्डू ॥ १ ॥

पञ्चत्रिक घृत—परबल पत्र, खितवन की छाल, नीम की छाल, अरुसा, भाँवला, हरद, बहेदा तथा गुरुच, प्रत्येक समभाग लेकर उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के चौगुना पाकार्थ अन्न मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से त्रिदोषत्र विस्फोट, विसर्प और कण्डू नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

चन्दनादिलेप —

चन्दन मागपुष्प च सण्डुलीयकत्राणि । शिरीषवृक्षकल जाती लेपः स्याद्दाहनाशन ॥ १ ॥

चन्दनादि लेप—लालचन्दन, नागकेसर की छाल, चमेली के पत्ते इन सबको चौरार के स्वरस से पीस कर लेप करने में दाह नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

शोभिते लक्षिते धान्ये जीर्णशालियवादिभि । मुद्गाडकीमसूराणां रसैर्वा विधसयुतैः ॥ १ ॥

सुनिपण्णकवेप्राप्तपहुलीयकश्लकैः । कुलकाभीरुकरैभि सपर्पटसतीमकैः ॥ २ ॥

दह्यारयेरुलैः कुसुमैर्निगमपल्लवविवयसैः । तिक्तयूपसमायुक्तैर्भोजनं संमयोजयेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—रोगी को शोषन, लह्वन, और वमन कराकर पुराने शालिधान के चावल, जौ आदि का भोजन करावे । मूंग, अरहर और मटर के रस ( यूप ) में सोंठ मिलाकर पान करावे तथा सुनिपण्णक ( चनेपत्ती ) का शाक, वेत के अगले भाग का शाक, चौरार का शाक, करेछी परबल, शतावर, पिचपापड़ा और मटर के शाक, टेकारी धुप का शाक, वायविहंग, नीम की कोमल पत्तियाँ, बेल के फूल और तिक्त रस वाले पत्तियों के यूप से युक्त भोजन विस्फोट रोग में पथ्य है ॥

तिला माया कुलियांश्च लवणांश्च कट्टूनि च । विदाहि रूपमुष्ण च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥१॥  
 विस्र, घृण, कुरुथी, लवण, मस, मट्ट, दादकारक, रुध और उष्ण पदार्थों को विस्फोट का रोगी स्वाग देवे अर्थात् वे अपच्य है ॥ ४ ॥

इति विस्फोटप्रवरणं समाप्तम्

**अथ स्नायुक्रनिदानम् ।**

पूवरूपमाह—शासु कुपितो द्योप शोथं कृत्वा विमर्षवत् ।  
 भिनत्ति सत्पते तत्र सोष्ण स्नायु विशोष्य च ॥ १ ॥  
 कुर्यात्तन्निभ जीव घृष्टं श्वेतघृति यदि । शने शने चताघाति द्वेद्वारकोपमुपैति सः ॥ २ ॥  
 सपाताच्छ्लोकशान्तिः स्यात्पुन श्यानान्तरे भवेत् ।  
 स स्नायुकेति विषयातः कियोक्तास्तु विसर्षवत् ॥ ३ ॥

स्नायु का पूवरूप—शय पैर आदि में कुपित हुए वातादि शीघ्र त्वचा पर विसर्ष के समान शोथ ( पफोले वा पुसियां ) बरके उन शोथों को भेदन कर देते हैं और वहां पर उष्णता बढ़कर स्नायु को सूखा कर उसमें तन्तु के समान, गोल, भेन बर्ण का जीव उत्पन्न कर देते हैं, वह जीव धीरे २ क्षत से बाहर निकलता है और यदि उसका छेदन हो जाता है तो वह कुपित होकर दुःखदाई होता है उसके निकल जाने से शोथ गमन हो जाता है और फिर दूसरे स्थान में होता है इस रोग को स्नायुक्ररोग ( नहरूभा ) कहते हैं । इसको चिद्विज्ञान विसर्ष के समान करनी चाहिये ॥ १-३ ॥

याहोर्थादि प्रमादेन जल्योरशुटपति कथित् । सकोचं यज्ञार्तां चैव स्तुघ्नतन्तुः करोत्यसौ ॥  
 यदि बाहुओं अथवा अङ्गुलीयों में उत्पन्न हुआ यह स्नायुक्र कथयित् भ्रम वा असावधानी से टूट जाता है तो उससे बाहु में संकोच और पैर में लज्जा हो जाती है ॥ ४ ॥

वातेन श्यायुरूपः सदगम्य दृढनाथीलपीतः सहायोऽ  
 धरयेत् श्लेष्मणा स्यात्पृथुगर्भमयुतोऽथ द्विदोषो द्विविद्धी  
 रक्तेभाऽऽरक्तकान्तिः ममथिकदृहनोऽपायिष्टैः सर्वश्लिष्टो  
 रोगोऽसावष्टेय्य मुनिभिरभिहितः स्नायुक्रस्तन्तुकीटः ॥ ५ ॥

वासादि भेत् से लयण—वात के अधिक कोप से जो स्नायुक्र होता है वह श्याम, रुध और अधिक पीदायुक्त होता है । पित्त के अधिक कोप से जो स्नायुक्र होता है वह पित्त से दहम होने के कारण नीला अथवा पीला और दाहयुक्त होता है । कफ के अधिक कोप से जो स्नायुक्र होता है वह मोटा और भारी होता है । दो दोषों के दाह से जो स्नायुक्र होता है उसमें दो दोषों के मिलित लक्षण होते हैं । रक्त के अधिक कोप से जो स्नायुक्र होता है उसका वर्ण कुछ लाली लिये होता है तथा उसमें दाह होता है । सतिपात ( त्रिदोष ) के कारण जो स्नायुक्र होता है उसमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं । इस प्रकार स्नायुक्र रोग को मुनिगो ने ऋद्ध प्रचार का कहा है तथा इसको तन्तुकीट अथवा कीट में महत्त्वा करते हैं ॥ ५ ॥

**अथ स्नायुक्रत्रिक्रिस्ता ।**

शेहरवेदमलेपादि कर्म कुर्यात्पामलम् । अर्द्धिमांशुगोभूयत्तद्वशाश्लेपसु वातजे ॥ १ ॥  
 स्नायुक्र निश्चिन्ता—स्नायुक्ररोग में भेदन, श्वेदन तथा शैवन कर्म करणा चाहिये । प्रायः स्नायुक्र रोग में कृष्णकपाली घृष्ट की रुद्ध को शीघ्र के माप रोग कर निरिपूर्वक करक रोगकर देव करना चाहिये ॥ २ ॥  
 पञ्चयज्ञकृत्स्नश्चैव हितो सेषोऽत्र दित्तजे । श्लष्मामे स्नायुके श्लेषः प्रसारतः काञ्चनारजः ॥३॥  
 रित्तम स्नायुक्ररोग में पञ्चयज्ञकृत्स्न ( बद्ध, कथय, गृह्य दापय और वेन की शाक ) को शीघ्रकर निरिपूर्वक करक वाहर देव करना चाहिये । काञ्च स्नायुक्ररोग में कथमर को वात को शीघ्रकर देव करना चाहिये ॥ ३ ॥  
 शङ्खायां हृद्भजे श्लेषः सर्वगोः सर्वत्रे हिता । रत्तजे स्नायुके सेने मरत्तपचयको दित्तः ॥  
 विमर्षोक्तः क्रियाः सर्गाः स्नायुके तु दित्तः अगाः ॥ ३ ॥

द्रन्द्रज स्नायुक्रोम में दो दो दोषों के नाशक द्रव्यों को मिलाकर लेप करना चाहिये । त्रिदोषघ्न ( सपिपात ) स्नायुक रोग में तीनों दोषों की मिलित भोषधियों का लेप करना चाहिये । रक्तज स्नायुक्रोम में बड़ और पाकड़ की छाल को पीस कर लेप करना चाहिये । विसर्प रोग में कहीं हुई सभी चिकित्सा स्नायुक्रोम में दितकारो है ॥ ३ ॥

बभ्रूलक्ष्मीमादिलेप —

यभ्रूलक्ष्मीज गोमूत्रपिष्ट हन्ति प्रलेपनात् । स्नायुकानि समस्तानि सशोयानि सद्यश्चि ॥ १ ॥

बभ्रूलक्ष्मीमादि लेप—बभ्रूल के बीजों को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के शोय, पीड़ा युक्त स्नायुक्रोम नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिशुमूलादिलेप —

शिशुमूलदलैः पिष्टैः काञ्चिकेन ससैः धवैः । लेप स्नायुकुरोगाणां शमनः परमः स्मृतः ॥ १ ॥

शिशुमूलादि लेप—सहिजन की बड़ और पत्तों को काजो के साथ पीस कर उसमें सैयानमक का चूर्ण मिलाकर लेप करने से स्नायुक्रोम नष्ट होता है । यह स्नायुक्रोम की शमन करने के लिये अति उत्तम बह्ना गया है ॥ १ ॥

सुघष सह छोगार शमनः परमः स्मृतः । अनेन तु प्रयोगेण त्रिदिनादेव नश्यति ॥ २ ॥

सुधादि लेप—सुधा ( चूने ) के साथ लोनी मिट्टी का क्षार ( लवणक्षार ) समान भाग मिला कर अल के साथ घोलकर लेप करने से तीन दिन में स्नायुक्रोम नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

पातालगरुडीमूल विवेरस्नायुकनाशनम् ।

पाताल गरुडीमूल योग—पानालगरुडो की जड़ को अल के साथ पीस कर पान करने से स्नायुक्रोम नष्ट होता है ॥

तिलविण्वाकलेपो वा द्वारनालेन पेयित् ॥ ३ ॥

तिलविण्वाक लेप—तिल की खली को काजो के साथ पीस कर लेप करने से स्नायुक्रोम नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सक्रेण वाऽथ तैलेन ह्यश्वगंधा प्रलेपयेत् । श्वेतविष्णुकान्तया वा शिशुमूलेन वा पुनः ॥ ४ ॥

अश्वगंधादि लेप—मठ्ठा अथवा तेल के साथ अश्वगंध को पीस कर अथवा श्वेत अथवा सपिपात की मठ्ठे अथवा तेल के साथ पीस कर अथवा सहिजन की बड़ को मठ्ठे अथवा तेल के साथ पीस कर लेप करने से स्नायुक्रोम नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पुंमूत्रैः काञ्चनीं पिष्ट्वा लेप स्नायुकजिह्वयेत् । घातांकमूलपुंमूत्रैः पत्रेर्वाऽश्वत्थजैश्च वा ॥

सुतप्तौघघयेच्छीघ्र शमयेत्स्नायुक गदम् ॥ ५ ॥

काञ्चनी लेप—पुरुष के मूत्र के साथ कचनार की जड़ अथवा बैंगन की जड़ को पीस कर लेप करने से स्नायुक रोग नष्ट होता है अथवा पीपल के पत्तों की पुरुष के मूत्र के साथ पीस कर गरम गरम कर के स्नायुक्रोम पर बाधे तो स्नायुक्रोम शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रामठाण्योग —

रामठ टङ्कण चार प्रत्येक क्षाणसम्मितम् । चूर्णयित्वा सप्तदिनं स्वादेःसध्याह्नये नरः ॥

अनेन योगराजेन स्नायुको नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥

रामठादि योग—गुड हींग, टङ्कण और यवाखार प्रत्येक एक २ क्षाण ( १-३ मशा ) लेकर चूर्ण कर प्रात साय दोनों सं या सात दिन तक सेवन करने से स्नायुक्रोम अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अतिविषयं चूर्णम्—अतिविषयमुस्तकभाङ्गीविश्वौषधपिप्पलीविभीतानाम् ।

चूर्णं तन्तुकृमिघ्नं पुसामुष्णेन धारिणा पीतम् ॥ १ ॥

अतिविषादि चूर्ण—अनीस, नागरमोथा मारगी ( बभनेठी ) सोंठ, पीपल और बहेड़ा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर उष्णोष्ण के अपुपान से सेवन करने से स्नायुक्रोम नाश होता है ॥ १ ॥

कुष्ठादिचक्रक—

कुष्ठरामठगुण्ठीभिः चक्रक शिशुसमन्वितम् । पानलेपनयोगेन तन्तुकीटविनाशनम् ॥ १ ॥

। दुग्धादि कस्क—कूठ, शींग, सोंठ और सहिजन की घात प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक कस्क बनाकर पान और इती कस्क का लेप करने से स्नायुरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

वायु सर्पिरम्पह पीखा निर्गुण्डीस्वरसं ज्यहम् । पीखा स्नायुकामयुग्मं हृत्पयवरय म संतायाः ॥  
गोघृणादि योग—गौ का घृत और निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस को तीन दिन पान करने से अत्यन्त बड़ा दुग्धा स्नायुकरोग भवत्य नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

मूल सुपम्पादिमवारिपिष्ट पानाद्दिनान्ते शु गर्वं प्रघण्डम् ।  
शान्ति मयेस्तमणमाशु पुसा गार्धवर्गधश्च पूतेन पीत ॥ ३ ॥

सुपवीमूलादि योग—सुपवी ( काला जोंडा अथवा करेल ) को बड़ को रिमवारि ( बरक के बल ) अथवा सुगंधवाला के स्वरस के साथ पीस कर दिन के अन्त में ( सायंकाल ) पान करने से अत्यन्त बड़ा दुग्धा रोगों से युक्त स्नायुकरोग रोग शान्त हो जाता है । अथवा अक्षरिष को चुर्न कर घृत में मिलाकर पान करने से स्नायुकरोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

पारावतपुरीपस्य मधुना कश्चित्तस्य च । गिलिता गुटिका हेति स्नायुकामयगुदुष्टतम् ॥ ४ ॥  
पारावतविद्या योग—बभूवर की विद्या को मधु के साथ कस्क कर बरो बना कर निगल जाने से अत्यन्त बड़ा दुग्धा स्नायुकरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

निम्बाम्पाकजात्यकसप्तपर्णाश्वमारका । किमिह्या भूयसंयुथाः सेरुडेपनघ्रापतैः ॥ ५ ॥

निम्बादि योग—नीम की छाल, भमलतास की छाल, चनेली, मयार, शिखरा और बनेर प्रत्येक समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर सिंचन, लवण और धावन ( धोने ) से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

घृन्ताक भर्जित भाण्डे पूरया दुग्धा सहोपरि ।

घर्धयेस्नायुको घटिः पठति पुवं सप्तदिन कार्यम् ॥

घृन्ताकयोग—बैंगन को दही के साथ एक पात्र में रग कर भूल कर स्नायुकरोग पर रौपने से स्नायुका का छोट बाहर निकल जाता है । इस प्रकार ही किया मात्र नित्य तब करनी चाहिये ॥  
घ्राणवीजचूर्ण भागमेक गोधूमपिष्टं भागमेकं हृत्पमेकीकृत्य पूतेन पक्ष्मर्षं गुणेन भक्षयेत् ॥  
पुवं त्रिदिनं कार्यं स्नायुको नश्यति ।

घ्राणवीजादि योग—सतर्क के बीजों का चूर्ण और गेहू का आटा समभाग एक में एककर (गून कर) पुराने गुड़ के साथ मिलाकर तीन दिन तक मघन करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥  
इति स्नायुरोगप्रहरणं समाप्तम्

### अथ मसूरिकानिदानम् ।

तन्नाम दो नरसमातिनाद—

कृष्णमूलाद्यणधारविरुद्धाप्यशातानैः । दुष्टनिष्पायणाकार्ये मधुह पयनादकैः ॥

कृद्भ्रमेदेषणाद्वाऽपि बद्ध वायाः समुद्रताः ॥ १ ॥

जनयन्ति शरीरेऽग्निमन्धुष्टरुष्टेन सङ्ख्याः । मसूराहुतिस्तस्यानाः पीडिकाः स्तुमसूरिकाः ॥ २ ॥

मसूरिका रोग—अत्यन्त बद्ध, अम्ल, लवण और क्षार रस के सेवन, श्वेत भोजन, कृष्णजन, तथा आदमन दूषित शीम और पत्र आकार के अधिक खाने से, दूषित वायु और अन्न के सेवन से, कृद्भ्रम मूत्र ( उमि आदि ) को इष्टि पकने से शरीर में ( आकार ) कुपित होकर दूषित रस से निष्कर शरीर पर मसूर के आकार की जो निरुकार्ये उत्पन्न कर देते हैं । वे हैं मसूरिका मसूर हैं ॥

तासां पूर्वस्वरनाद—

तासां पूर्व स्वरः पुष्पद्वर्गाप्रमहोऽरुचिर्भ्रमः । त्वयि कोया सखेययो मेघतोमन्तयैव च ॥ ३ ॥

मसूरिका के पूर्वस्वर—मसूरिका रोग होने के पहले स्वर, कण्ठ, शरीर का दूटना, अश्वि भ्रम, तथा पर शोक, विषय और नेत्र रोग ( अभिभ्रंशदि ) हो सकते हैं ॥ ३ ॥

वाजसायन—

रकोद्या हृत्पापत्ना रुपाशीमरुदमयाऽग्निना । कनिष्ठाधिरुक्ताश्च भवन्त्यनिलगम्भयाः ॥  
शन्त्यरिषयर्षयो भेदः कालकृत्तानिभ्रमाः । शेषरुपाकोद्विद्धायां पुष्पा आरतिपुत्रा ॥

वातज मयूरिका—जिस मयूरिका के फोड़े वृष्ण वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के हों, सूख हों, तीव्र पीड़ा करने वाले हों, बठिन (स्पर्श में बठिन) हो और बहुत देर में पकने वाले हों और सचि, अस्थि, तथा पर्वों में टूटने के समान पीडा हो और कास, कम्पन, अरवि, (विकलता), भ्रम, तथा ताड़ु, भोठ और मिठा में शोध हो, एग्या हो और अरुचि हो उसे वात के कोप से उत्पन्न मयूरिका कहते हैं ॥ ४-५ ॥

पित्तजामाह—रक्ताः पीता सिताः स्फोटाः सदाहास्तीग्रयेवनाः ।

शुद्धोऽधिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥

विद्भेद्व्याह्नमर्दक्ष दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा । मुखपाकोऽधिपाकश्च उवरस्तीग्रः सुदारुणः ॥७॥

पित्तज मयूरिका—जिस मयूरिका के फोड़े रक्त, पीत, अथवा श्वेत वर्ण के हों उनमें दाह हो, तीव्र पीडा हो और स्पर्श में चूड (कोमल) हों, शीघ्र पकने वाले हों और मल पतला हो, शरीर सूटे, दाह हो, एग्या हो, अरुचि हो, मुख पक जावे तथा नेत्रों में पाक हो और भयङ्कर तीव्र वेग वाला उवर हो उसे पित्त के कोप से उत्पन्न मयूरिका कहते हैं ॥ ६-७ ॥

रक्तजामाह—रक्तजायां भयन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥

रक्तज मयूरिका—जिस मयूरिका में पित्तज मयूरिका के सभी लक्षण (विद्भेदादि) उपस्थित हों उसे रक्तज मयूरिका कहते हैं अर्थात् पित्तज मयूरिका के समान ही रक्तज मयूरिका के लक्षण होते हैं ॥

कफजामाह—कफप्रसक्तं रतैर्मिथ्य शिरोरुग्माग्रगौरवम् ॥ ८ ॥

दृष्ट्वासथाश्चिन्दिना तन्द्राऽऽलस्यसमन्विताः ।

श्वेता स्निग्धा शृश स्थूलाः कण्ठूरा मन्दयेवनाः ।

मसूरिकाः कफोत्पाश चिरपाका प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

कफज मयूरिका के लक्षण—जिस मयूरिका में कफ का प्रसेक हो (मुख से कफ गिरे), शरीर आद्र रहे, शिर में पीडा हो, शरीर भारी रहे, हृन्कास (बमनेञ्जा) हो, अरुचि हो, निद्रा अधिक हो, तन्द्रा हो और आलस्य हो तथा श्वेत वर्ण के स्फोट (फोड़े) स्निग्ध हों, अत्यन्त स्थूल हों, कण्ठ युक्त हों, मन्द मन्द (अर) पीडा करने वाले हों और बहुत दिन में पकने वाले हों उसे कफ के कोप से उत्पन्न मयूरिका जाननी चाहिये ॥ ८ ९ ॥

/ सन्निपातजामाह—

नीलाक्षिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः । प्रभूताश्चिरपाकाश्च पूतिघ्रायाक्षिदोपजाः ॥

सन्निपातज मयूरिका—जिस मयूरिका का वर्ण नीला हो, आकार चिपटा और फैला हुआ हो तथा बीच में दबा हुआ हो, पीडा अधिक हो, बहुत पिठिकायें हों, बहुत दिन में उनका पाक हो और दुर्गन्धित स्राव हा उसे तीनों दोष के कोप से उत्पन्न मयूरिका जाननी चाहिये ॥ १० ॥

चर्मपिटिकामाह—

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापारतिसयुताः । दुष्किरस्याः समुद्दिष्टाः पिटिकाधर्मसञ्चिता ॥११॥

चर्मपिटिका के लक्षण—जिस पिठिकाओं के होने में कण्ठ का अवरोध, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और विकलता होती है उसको चर्म पिटिका कहते हैं वह दुष्किरस्य है ॥ ११ ॥

रोमान्तिकामाह—

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्य कफपित्तजाः । कासारो चक्रसयुक्ता रोमान्त्यो उवरपूर्विका ॥

रोमान्तिका के लक्षण—जिस मयूरिका में पिठिकाओं का आकार रोम के समान ऊचा हो, रागयुक्त (कुछ लाली लिये) हो कफ और पित्त के दोष से उत्पन्न होने वाली हो, उसमें कास और अरुचि हो तथा उसके उत्पन्न होने के पूर्व उवर हो उसे रोमान्तिक मयूरिका कहते हैं ॥१२॥

अथ सप्तधातुगताः ।

तत्र रसजा —

सोयसुदुसदसद्वासासवग्मतास्तु मसूरिकाः । स्वल्पद्रोया प्रजायन्ते भिन्नास्तोर्यं चरन्ति च ॥

रसगत मयूरिका—जिस मयूरिका का आकार जल के बुलबुले के समान हो, अल्पद्रोयो के कारण ही उत्पन्न हुई हो और फूटने पर उससे जल निकले ऐसी मयूरिका को रस धातु में अथवा रसजा में प्राप्त मयूरिका कहते हैं ॥ १ ॥

रक्तजामाह—रक्तस्या लोहिताकारा रतीन्द्रपाकास्तनुवचः  
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं चयन्ति च ॥ २ ॥

रक्तगत मयूरिका—जिस मयूरिका का वर्ण लोहित हो, जोम पत्नी वाली हो, त्वचा भिन्नो पतली हो, जिसमें दोष अत्यन्त दूषित नहीं हो अतएव साध्य हो और फूटने पर बिछने रक्त निकले उसे रक्त बाहु गत मयूरिका कहते हैं ॥ २ ॥

मांसरयामाह—मांसस्या कठिना रिग्घाश्चिरपाकास्तनुवचः ।  
शाप्रशुल्लोऽतिकण्डूस्तृष्णाञ्जरसमन्विताः ॥ ३ ॥

मांसगत मयूरिका—जो मयूरिका रस में कठिन, चिबनी, देर में पकने वाली और भिन्न की त्वचा पतली हो, दृग्घाकाल में शरीर में पीड़ा, बेचैनी, मुग्धता, तृष्णा, ज्वर हो उसे मांसगत मयूरिका कहते हैं ॥ ३ ॥

मेदोगतामाह—

मेदोजा मण्डलाकारा मृद्व्य किञ्चिदुष्मताः । घोरञ्जरपरीसाश्च रथूलाः रिग्घाः सपहनाः ॥  
समोहारतिसन्तापा कश्चिदाग्नौ विनिस्तरेत् ॥ ४ ॥

मेदोगत मयूरिका—[जिस मयूरिका का आकार मण्डलाकार हो, रस में मृदु हो, कुछ बड़ा हुआ हो, घोर ज्वर से पीड़ित हो, पिचिकायें रमूल ( मोटी ), मुक्त हों, रोगी को मोह, व्याकुलता और सन्ताप हो उस मेदोगत मयूरिका कहते हैं । इससे कोई सौभाग्यवाणी हो मुक्त होगा है अर्थात् यह असाध्य है ॥ ४ ॥

अरियमज्जगतामाह—

सुद्धा गात्रसमा रूपाश्चिपिताः किञ्चिदुष्मताः । मज्जोष्णा मृतसामोहपेद्मार्त्रित्तुताः ॥ ५ ॥  
छिन्दन्ति मर्मभामानि प्राणानाद्यु दहन्ति च । भ्रमरेणैव विद्वानि पुर्व्यन्त्यरथीनि सर्वातः ॥

अरिध और मज्जगत मयूरिका—जो मयूरिका छोटी आकार वाली हो, शरीर के रस के समान वर्ण की हो, सूख हो, चिपटी हो, कुछ ऊँची हो, अत्यन्त मोह-पीड़ा और व्याकुलता करने वाली हो, मर्मरणों को छेदन करने वाली हो, यह सम्पूर्ण अस्त्रियों को भ्रमर के कोड़े हुए काष्ठ को छरछर कर देती है तथा प्राणों को जोम इत लेनी है उसे अरिध और मज्जगत मयूरिका कहते हैं ॥ ५-६ ॥

पुत्रगतामाह—पुत्राभा विटिका रिग्घा रक्षणाध्याप्यविहताः ।

स्त्रीरिपरतिसमोद्दवाहो मादुसमन्विता ॥ ७ ॥

पुत्रजायां मसूर्यो तु लक्षणानि भवन्ति हि । निदिष्टं केषलं चिह्नं हरयते न तु लीवितम् ॥

पुत्रगत मयूरिका—जिस मयूरिका को निदिष्टाये पक्षी हुई हो ( पीली और गरम ) हो, रिग्घा हो, चिपटी हो, अत्यन्त पीड़ा करने वाली हो, मादुर हो, व्याकुलता करने वाली हो, मोह-दाह और ज्वर करने वाली हो, उसे पुत्रगत मयूरिका कहते हैं । यह असाध्य है ॥ ७-८ ॥

साध्यासाध्यरयामाह ।

क्षीपन्निष्ठाश्च सप्तैता म्रष्टया दोषलक्षणेः । त्वगता रक्तजामैव विज्याः रक्षेप्यतास्तथा ॥ ९ ॥  
रक्षेप्यसिंहृत्तारणैव सुखसाध्या मयूरिकाः ।

पूता विनाऽपि क्षिपया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ १० ॥

साध्यासाध्यता—बातादि दोषों के लक्षणों के अनुसार रज्जुल घाती पक्षर की मयूरिका का जो तथा सम्भव दोष मुक्त आनना आदिसे कर्पाटु दोषों के लक्षणों को दैश कर शीघ्र का दाह कर केना आदिसे । त्वपागत मयूरिका रक्त मयूरिका रिक्त मयूरिका, कर्म मयूरिका और कर्म रिक्त मयूरिका, ये सब मयूरिकायें सुख-साध्य हैं । ये विना पिच्छा के भी रस के दमन हो जाती हैं ॥ ९-१० ॥

बातजा वासुदित्तोरया रक्षेप्यतास्तथा ॥ ११ ॥ कृपदूसाध्या कृतातरमात्तमादेता कृपाक्षीय ॥  
बात मयूरिका, वासु-रिक्त मयूरिका और कर्म-बात मयूरिका यह साध्य होती हैं ॥ ११ ॥  
विच्छिन्ना कर्ति दान मे करती आदिसे ॥ १२ ॥

अतोऽन्यास्तु विनिर्दिष्टा यास्तु सम्यनिक्रयां विना ।

न सिध्यन्ति यतस्तस्मात्तास्तु यस्मादुपाधरेत् ॥ ४ ॥

इनके अतिरिक्त ओ मद्यरिवायें बड़ी गयी हैं वे सभी मली भाँति चिकित्सा नहीं करने से सिद्ध नहीं होती इसलिये दहनपूर्वक उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

असाध्याः सस्त्रिपातोऽथास्तासां यथयामि लक्षणम् ।

प्रवालसदृशाः काश्चिकाश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ ५ ॥

लोहजालनिभा काश्चिद्वससीफलसन्निभाः । आसां यहुविधा वर्णा जायन्ते द्योपमेवतः ॥ ६ ॥

सपिपात्रज मद्यरिका असाध्य होती है । कोर्र २ सत्रिपात्रज मद्यरिका मूंगे के सदृश होती है, कोर्र २ जामुन के फल के समान होती है, कोर्र लोह गोलक के समान कृष्ण वर्ण की होती है और कोर्र तीसी के फल के समान होती है तथा दोबों के भेद से इनके और भी प्रकार के वर्ण होते हैं ॥ ५-६ ॥

कासो हिष्ठा प्रमोहश्च उदररतीमः सुदारणः । प्रलापश्चारतिर्भूर्धृष्टां कृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥

मुखेन प्रस्रवेद्रक्त तथा घ्राणेन चक्षुषा । कण्ठे घुर्धुरक कृत्वा मसिर्यात्यर्थदारणम् ॥ ८ ॥

मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः । लक्षणानीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ९ ॥

जिस मद्यरिकावाले को कास हो, दिक्का हो, मोह हो, घीमज्वर हो, दारण प्रलाप हो, म्याकुलता हो, मूर्च्छा हो, तृषा हो, दाह हो, अत्यन्त अम्भारें जाती हो और मुख, कान तथा आँख से भी रक्तस्राव होता हो, कण्ठ में घुर्धुराहट होता हुआ अत्यन्त कठिन खास आता हो उसे वैष औषध नहीं देवे क्योंकि ये अत्यसाध्य हैं ॥ ७-९ ॥

मसूरिकाभिभूतो यो भृश घ्राणेन निश्चसेत् । स भृश त्यजति प्राणारक्षुष्णार्तो घायदूषितः ॥

मद्यरिका के आक्रान्त ओ मनुष्य वायु के दूषित होने के कारण नाक के द्वारा अत्यन्त दवास लेवे और तृषा से अत्यन्त पीड़ित रहे वह अवश्य मर जाता है ॥ १० ॥

मसूरिकान्ते शोथ स्यारक्षूपरे मणिष्यधके । तथोऽसफलके घाडपि दुश्चिकित्स्यः सुदारण ॥

मद्यरिका रोग के अन्त में कूर्पर ( नेहुनी ) मणिबन्ध पहुँचा और कंधे पर कठिन शोथ का होगा घोर उपद्रव है । अतः यह दुश्चिकित्स्य है ॥ ११ ॥

### अथ मसूरिकाचिकित्सामाह ।

मसूरिकायां सुष्टोष्ठा लेपनाद्विद्विधा हिता । पित्तरलेपमविसर्पोष्ठा क्रिया घाऽत्र प्रशस्वते ॥

मसूरिका-चिकित्सा—मसूरिका रोग में बुध में कक्षी हुइ लेपन आदि क्रिया अथवा पित्त-कफज विस्फूर्ण रोग में बहो हुइ चिकित्सा हितकारी है ॥ १ ॥

सर्पासां धमन पूर्ण पटोलारिष्टवासकैः । कपायश्च घघावससयष्टवाहूपलकल्कितै ॥ २ ॥

सचौद्ग पाययेत्साहीरस वा हिलमोषकम् । घात्तरय रेषन देय धमन त्यदले नरे ॥

उभाम्यां हतद्योषस्य विष्टुष्यन्ति मसूरिका ॥ ३ ॥

सब प्रकार की मद्यरिकाओं में प्रथम परबल नीम तथा अरुसे के बाध में बच्च, इन्द्र जी, जेठी मधु, आँबला, हरह, और बहेडा का क्वक मिलाकर पान करना चाहिये । अथवा मन्दी के स्वरस में मधु मिलाकर अथवा हुरहुर के स्वरस पिछाना चाहिये । धमन कराये हुए रोगी को विरेचन और निर्बल रोगी को सशमन औषध देना चाहिये । धमन-विरेचन के द्वारा दोबों के दारण होने पर मद्यरिका दख जाती है अर्थात् नष्ट हो जाती है ॥ २-३ ॥

वेणुत्वगादिधूप —

वेणुत्वक्सुरसालादाकार्पासारिधमसूरिका । यवपिष्ट विष सपिर्वचा दाह्नी सुवर्चला ॥ १ ॥

धूपनाय यथोलाभ धूपमेन प्रयोजयेत् । आदावच प्रयोक्तव्यो नश्यन्त्यस्मान्मसूरिकाः ॥

न गृह्णति विष केचिद्यथालाम श्रुतेरिह ॥ २ ॥

वेणुत्वगादि धूप—बाँस की छाल, तुलसी, लाख, कपास की गिरि ( बीज ), मधुर की दाह, औ की पीठी, मिठा विष, धी, बच्च माक्षी और सुवर्चला ( हुरहुर ) इनमें से जिनने द्रव्य प्राप्त हो सकें उतने का धूप मद्यरिका रोग के आरम्भ में देने से मद्यरिका रोग नष्ट होता है । कोर्र वैष



विष को नहीं छेदे, श्वेत भोजयियों में ही जो प्राप्त हो जाती हैं उसीको छेकर पूरित करते हैं ॥१-२४  
इवेत्तचन्दनादि—

श्वेतचन्दनकण्डकाद्यद्विलसोच्चाभयं ब्रह्मम् । विवेकमसूरिकारम्भे नैर्घ्यं वा केवलं रमम् ॥ १ ॥

इवेत्त चन्दनादि योग—इवेत्त चन्दन के बल्क में छुरछुर का स्वरस मिलाकर अथवा मद्यिका रोग के आरम्भ में केवल नीम का स्वरस ही पिलावे तो लाभ होता है ॥ १ ॥

गुडूची मधुक द्राक्षा मोरठ दाडिमै सह । पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥

तेन कुप्यति नो वायुः पाक यान्ति मसूरिकाः ॥ २ ॥

गुडूचादि योग—गुडूच, मुलहठी, द्राक्षा और अंकोल के चूर्ण की आनाक के स्वरस में गुड मिलाकर मद्यिका के पकने के समय पिलाने से वायु कुपित नहीं होती और मद्यिकाने पक जाती हैं ॥ २ ॥

बृहस्पटीलारिकाय—

पटोल सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । रश्मिरः विद्युमन्वद्य यत्ना प्राप्ती विकृताः ॥

पूर्वा कषायपानं तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥

बृहस्पटीलादि काय—परबल के डालपत्र, सारिवाकता, नागरमोथा, पुराननाड़ी, कुटकी, धर, नीम की छाछ, बरिमाटा, आंबला और विकटून ( राम बरू ) की छान इन सब भोजयियों को समभाग छेकर विधिपूर्वक काय बनाकर पान करने से वातत्र मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

दशमूलादि—

द्वे पद्ममूयौ रासना च पाण्डुतीर सुराठमा । सामृत धान्यकं मुस्तं जपेहातमसूरिकाम् ॥१४

दशमूलादि कषाय—दशमूल को घृषकू २ दसो भोजयियों रासना, आंबला, पट, यकाजा, गुडूच, धनियां, नागरमोथा प्रत्येक समान भाग का विधिपूर्वक बना कराय पान करने से वातत्र मद्यिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

म्यघोपादिलेप—

म्यघोषच्छमजिहासिरोपोदुग्धरश्मिचाम् । ससर्पिकं मसूर्को तु पातजापो मलेपनम् ॥ १ ॥

म्यघोपादि लेप—बट और पाकू की छान मयोठ, शिरीष और गुग्गु की छाछ प्रत्येक समभाग छेकर विधिपूर्वक पीनकर उत्तमें घन मिलाकर वातत्र मद्यिका में लेप करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

सोषर्नं विषकायो न कार्यं यैद्येन जानता । तत्राऽऽशी तपनं काय छात्रचूर्णं ससर्करैः ॥

विषत्र मद्यिका निशिक्षा—विषत्र मद्यिका में सोषर्न त्रिधा बरिमा है । उद्यमे पृष्ठ भाग के सोष ( लाश ) के चूर्ण और चर्न ( मिश्रित रोगी को दर्शन के लिये देना आदि ) ॥ २ ॥

आशुपेक्ष मसूर्णं तु विषत्रायां प्रयोक्तव्यम् । निम्बादिष्वपि तं धनं प्रशास्यति मसूरिका ॥ ३ ॥

विषत्र मद्यिका के आदि में हो ( निम्बोत्त ) निम्बादि कषाय का प्रयोग करना आदि जे मद्यिका ज्ञात हो जाती है ॥ ३ ॥

तपसा—

विष्याः पर्यटक पाटा पटोल चन्दनह्वयम् । पासा सुराठमा प्राप्ती लेर्घ्यं कटुकरोहिणी ॥ ४ ॥

पूनेपो अचित्तं क्षीतं तितया मजुसीह्वयम् । मसूरिकां विषत्रतां हृषित रण्येष्ठरामणि ॥ ५ ॥

निम्बादि कषाय—नीम की छाछ, विषत्रापदा, पुराननाड़ी, परबल पत्र, लालपत्र, इवेत्त चन्दन, अरुणा, यकाजा आंबला, पट और कुटकी प्रत्येक समभाग केकर विधिपूर्वक कषाय कर जोतक होने पर चर्न ( मिलाकर पान करने से विषत्र और रण्य मद्यिका भी नष्ट हो ॥ ४ ॥

हाथ्यादि—

द्राघाकारमधुसर्पूरपटोलारिकासकैः । लाजामलकदुग्धस्यैः क्वचित् कण्टारिभ्यश्च ॥

मसूरिकां विषत्रतां हृषयती च विनासयन् ॥ १ ॥

हाथ्यादि कषाय—दाश गम्भार का पत्र, मजु, परबल पत्र, नीम की छाछ, यकाजा काय का लीम आंबला और यकाजा प्रत्येक समभाग केकर विधिपूर्वक कषाय कर ज्ञाने छेकरा कर प्रथेन देकर पान करने से विषत्र और रण्य मद्यिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

पद्ममूलादिक्वाथ—

वृद्धतः पद्ममूलस्य वृषपत्रयुतस्य च । कपाय क्षामयेत्पीतः कफोत्थां तु मसूरिकाम् ॥ १ ॥

पद्ममूलादि क्वाथ—वृद्ध पद्ममूल (बेल गम्मार, सोनापाठा, पाइर और गनियार की छाल) एक २ भाग और अरूमा का पत्ता एक भाग मिलाकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से कफज मद्यरिवा नष्ट होती है ॥ १ ॥

वृषपत्ररस दद्यात्पानार्थं मधुसंयुतम् । कफजायां मसूर्यां तु कठिनायां विशेषतः ॥ २ ॥

वृषपत्र रस योग—अरूसे के पत्तों के बने स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कठिन कफज मद्यरिवा नष्ट होती है ॥ २ ॥

खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरीषोद्गुचररत्वचाम् । कुर्यात्स्लेप कफोत्थानां मसूर्यां भिषगुत्तमः ॥ ३ ॥

खदिरारिष्ट लेप—खैर, नीम की पत्तियां, शिरीष और गुलर की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् पीस कर लेप करने से कफज मद्यरिका में उत्तम लाभ करता है। वैषों को यह प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुरालमादि—

दुरालभा पर्पटक पटोळं कटुरोहिणी । पियेन्मसूर्यांमेतेषां फ्राथं पित्तकफामनि ॥

दुरालमादि क्वाथ—जवासा, पित्तपापड़ा, परबल के पत्र और कुटकी प्रत्येक की समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर पान करने से पित्त कफज ( द्राद्रज ) मद्यरिका नष्ट होती है ॥ ४ ॥

गुहृष्यादि—

गुहृषीपपदान ताकटुकापथित पियेष । वातपित्तमसूर्यां तु घोरोपद्रवमाजि च ॥ १ ॥

गुहृष्यादि क्वाथ—गुरुच, पित्तपापड़ा, अनन्तमूल और कुटकी प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर पान करने से वात पित्तज मद्यरिका में जो अत्यन्त उपद्रव वाली भी होती है, वे समी शान्त हो जाती हैं ॥ १ ॥

नागरादि—नागरमुस्तगुहृषीधान्यकभार्द्रवृषै कृत फ्राथः ।

वातरलेष्ममसूर्यां दूरीकुरुतेऽनुपानत सत्यम् ॥ १ ॥

नागरादि क्वाथ—सोंठ, नागरमोथा, गुरुच, धनिया, बमनेठी और अरूसा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से वात कफज मद्यरिका अवश्य ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

निम्बादिक्वाथ—

निम्ब्य पर्पटक पाठा पटोळ कटुरोहिणी । वासा दुरालभा घात्री ससेभ्य च द्धनद्वयम् ॥ १ ॥

पुपनिम्बादिक क्वाथः पीत शर्करयाऽपिषतः । मसूर्यां सर्षजां हति ज्वरघीसर्षसयुताम् ॥ २ ॥

निम्बादि क्वाथ—नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पुरधनपादी, परबल पत्र, कुटकी, अरूसा, जवासा, आंवला, खस, रक्त चन्दन और इवेत चन्दन प्रत्येक समभाग लेकर निम्बादि क्वाथ बनावे। इसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के ज्वर, बीसर्ष आदि से युक्त भी मद्यरिका नष्ट हो जाती है ॥ १-२ ॥

काञ्चनारादिक्वाथ—

काञ्चनाररवचः फ्रायस्ताप्यधूर्णावधूर्णितः । निर्गस्यात्त प्रविष्टां तु मसूर्यां चाद्यतो भयेत् ॥ १ ॥

काञ्चनारादि क्वाथ—कचनार की छाल का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें स्वर्ण माक्षिक मसम मिलाकर पान करने से निकल कर पुन अन्दर बैठ गयी हुई मद्यरिका की पिडिका बाहर निकल आती है और दोष शमन होकर मद्यरिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पटोलादि—

पटोळकुण्डलीमुस्ताधूपध्वयवासकैः । मूनिग्धनिग्धकटुकापपटैश्च श्रुत षालम् ॥ १ ॥

मसूर्यां क्षामयेदामां पर्कां चैव विशोधयेत् । नातः परतर किञ्चिच्छीतलाज्वरमास्तये ॥ २ ॥

वाहे ज्वरे विसर्पे च मणे पित्ताधिकेऽपि च । मसूर्यां रक्तजां नाश यागित शोणितमोचणैः ॥

पटोलादि क्वाथ—परबल के पत्र, गुरुच, नागरमोथा, अरूसा, जवासा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी और पित्तपापड़ा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक पान करने से आम (अपवव)

मसूरिका शमन हो जाती है और पक्क मसूरिका गुद हो जाती है । इससे उष्ण और कोरें केन शीतलाम्बर ( मसूरिका ) को शमन करने के लिये नहीं है । मसूरिका के दाह में, धर में, निसर्ग में, जग में और पिण्ड की अधिकता में भी यह पटोलादि काय उत्पन्न है । रत्न मसूरिका रघोलक्षण करान से ( सिंगी भादि लगवाने से ) नष्ट हो जाती है ॥ १-३ ॥

धाम्रीकल समयुक्त कथित मधुमयुतम् । मुखे कण्ठे धने जाते गण्डुपार्यं प्रसारयते ॥ ४ ॥

कण्ठस्य मसूरिका चिकित्सा—आँखों और मुँहदो के काय में मधु मिठाकर गण्डुन पाए करने से मुख और कण्ठ के जग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अथगो सेव प्रशंसति गयेधूमधुकागुना । मधुका त्रिपञ्च मूर्त्ता दार्ढ्यात्पङ्क नीलमुरालम् ॥ उसीरलोध्रमजिष्टाः प्रलेपाद्योतने हिताः । नरयारपनेन इग्माता मसूर्यो न भवति च ॥ ५ ॥

नेत्रियुक्त मसूरिका-चिकित्सा—आँग में यदि मसूरिका हो जाये तो उसे गेड़दूध ( जल में होनेवाले पीये का पल ) और मुँहदो के काय से सिंचन करना चाहिये और मुँहदो, आँख, इरक, बड़ेका, मूर्त्तामूल, दाहदली, दालचीनी, नीलकण्ठ ( निलोकर ), लस, लोव और मनीठ प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर छेव करने से मधुवा दान भोजनियों को समभाग लेकर विधिपूर्वक काय बनाकर आद्योतन ( आँखों में प्रथम ) करने से आँखों में उत्पन्न दुर्द मसूरिकायें नष्ट हो जाती हैं । अगत् पदके से हो शक्य प्रयोग दिया जाये तो आँखों में मसूरिकाये होती ही नहीं हैं ॥ ५-६ ॥

अशनम्—दाम्भूकमांसस्वरसेन नेत्रे समञ्जसेन मसूरिकाग्नयः ।

न चापते सत्र भय भयमिति नैताः प्रजावाप्तु दामं प्रयान्ति ॥ १ ॥

अशन—शुभ्र ( ५ प ) का मात्रा वा ररस नेत्रों में टाकने से मसूरिकायें नहीं होती हैं विशेष कर नेत्रों में मसूरिका होने का भय नहीं रहता है और यदि मसूरिका उत्पन्न हो भी गयी होती है तो न शमन हो जाती है ॥ १ ॥

प्रलेप चक्षुनोदवाद्रुवारस्य पक्कलः ।

नेत्र छेव—नेत्रों की मसूरिका में तिलके की घाल को पीसकर छेवन करना चाहिये ॥

पञ्चपक्कलपूर्णं बलक्षिनीमपभूलपेक्ष ॥ १ ॥

मयपूर्ण—बिल मसूरिका में अधिक बड़े ( दावादि ) निकलता हो उस पर पञ्चपक्कल ( बट, अथस, पाकट गुजर और बेत की घाल ) का समान मिलित द्रव्य पूर्ण छिद्रकना चाहिये । इससे जग उत्पन्न नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

असमता केचिद्विन्दन्ति थविश्रोमयोलुना ।

कोरें २ केन गोरक का भरम और कीर सगे गोरक का पूर्ण मय पर छिद्रकते हैं । इससे काय पोता है ॥

निग्धात्रिमुष्णकार्कोताविगशीवतसपरकण्डम् ॥ २ ॥

जग धारन योग—नीम, मायबोला, अरराबिडा, विषी और बज के कण्डल प्रायः समभाग लेकर विभिन्न काय बनाकर मसूरिका के जगों को पीने से जग नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

अनशीत प्रयोक्तव्य मसूरीमगघावने । शकटिहुरगोत्रैश्च भूयपंचा मसूरिकाः ॥

हृमयो न पतन्मयत्र शाशाः साम्यन्ति ते ह्यम् ॥ ३ ॥

रत्नशि भूरा—दाह हीन और लज्जुन प्रायः समभाग रखन गुजर कर अगत् कर जगत् कर इसकी पूनी देने से मसूरिका के जगों में शीक्रे नहीं पड़ते, यदि बड़े गये रहते हैं तो वे शमन हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ मसूरिकामेदस्य शीतलाया चिकित्साः ।

सर्व शीतलाया कृपात् आर्य-क-पार—

दुग्धा शीतलायाःऽऽदाता मसूर्ये हि लोपता । उग्र पक्क यथा मूलाभिहितो विवमपराः ॥

शोण्य निदान—अथ प्रकट कर भूय ( गुहन कीरजुनों ) में अतिरिक्त होने पर तिलक कर कर काय है कही पक्क रीण्य भावक तिलक शुभ मुक्त दाह मूर का शीतलाये मसूरिका अत्यन्त हो जाती है नर शीतला बदलानी है ॥ ३ ॥

सा च सप्तविधा यथाता तासां भेदाप्रचयमहे । उवरपूर्वा बृहदस्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥  
 बहू शीतला रोग सात प्रकार के होते हैं अब उनके भेदों को कहते हैं । जिस शीतला में पहले उवर और पुन बड़े स्फोट ( फफोले ) हो उसे बृहती शीतला ( बड़ी माता ) कहते हैं ॥२॥  
 सप्ताहानि सरस्येषा सप्ताहापूर्णतां प्रजेत् । सत्तरतृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वधम् ॥३॥  
 बृहती शीतला एक सप्ताह में निरालती है और एक सप्ताह में इसके फफोले भर जाते हैं तथा तीसरे सप्ताह में यह सूख जाती है और इसकी स्वभावों गिर जाती हैं अर्थात् तीन सप्ताह में यह शीतला नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

तासां मध्ये यदा काश्चिपाक शक्या स्रयन्ति च । तत्रायधूलन कुर्याद्भ्रनगोमयमस्मना ॥ ४ ॥  
 उपचार—बृहती शीतला को कुन्सियां यदि पाक होकर स्रवित होने लगे तो उस पर जंगली उपलों ( गोहठी ) की राख छिड़कना चाहिये ॥ ४ ॥

निग्यसत्पत्रशाखाभिर्मधिकामपसारयेत् । जलं च क्षीतल दद्याज्ज्वरेऽपि न तु सप्तकम् ॥ ५ ॥  
 मछरिका ( शीतला ) के पत्रों पर बैठती हुई मत्तियों को नीम और कमल पत्रों से उछाता रहना चाहिये । उवर होने पर भी इस रोग में रोगी को शीतल जल ही पीने को देना चाहिये । जंगल जल कभी नहीं दे ॥ ५ ॥

स्यापयेत्त स्थले पूते रम्ये रहसि क्षीतले । नाशुचि सस्पृशेत्तु न च सस्यासितक प्रजेत् ॥६॥  
 शीतला के रोगी को पवित्र, रमणीय, एकान्त और शीतल स्थान में झुताना चाहिये । अपवित्र मनुष्य उस रोगी या स्थल नहीं करे और न उसके निकट रहे ॥ ६ ॥

यहयो भिषजो नात्र भेषज योजयन्ति हि । केचिप्रयोजयन्त्येव मत्त तेषामयो भुये ॥ ७ ॥  
 बहुत से वैद्य इसमें औषध नहीं देते और बहुत देते भी हैं । उनके मत के अनुसार आगे औषध कहते हैं ॥ ७ ॥

ये क्षीतलेन सल्लिखेन विपिष्य सम्यक् चिह्नोत्थयीजसहितं रजनीं पियन्ति ।

तेषां भवन्ति न कदाचिद्वपीह दृष्टे पीडाकरा जगति क्षीतलिकाविकाराः ॥ ८ ॥

चिचानीजादि योग—जो शीतल जल के साथ रमली के बीज और इच्छो पीसकर पीते हैं उनके शरीर में कभी भी पीडा करनेवाले शीतला के विकार नहीं होते ॥ ८ ॥

भोचारसेन सहित सितचन्दन पे धासारसेन मधुक मधुकेन चाऽप्य ।

आदौ पियन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाऽऽप्नुवन्ति भुवि क्षीतलिकाविकारम् ॥९॥

भोचारसादि योग—जो शीतला के आदि में केले के रस के साथ श्वेत चन्दन को चूर्ण कर पीते हैं अथवा पित्तकर जो अरुसे के स्वरस के साथ मुलहठी के चूर्ण अथवा मुलहठी के स्वरस के साथ मुलहठी के चूर्ण पीते हैं उन्हें शीतला के विकार नहीं होते ॥ ९ ॥

क्षीतलासु क्रिया कार्या क्षीतलारचया सह । चपनीयाश्चिग्यपत्राणि परितो भवनातरे ॥१०॥

शीतलारोग में उपयुक्त चिकित्सा के साथ घर के भीतर बाहर चारों ओर नीम की पत्तियों बांधनी चाहिये ॥ १० ॥

कदाचिदपि ना कार्यमस्पृश्यस्य प्रवेशनम् । स्फोटैस्त्वधिकदाहेषु रक्षारेणूकरो हित ॥ ११ ॥

तेन ते क्षोपमायान्ति प्रकोपं न भजन्ति च ।

अस्पृश्य के निषेध—जिस स्थान में शीतला का रोगी ही बड़ा अस्पृश्य मनुष्य का प्रवेश नहीं होना चाहिये । शीतला के फफोलों में अधिक ताह होने से उस पर बन उपलों की मरम छिड़कने से फफोले की क्या शान्त होती है और फफोले सूख जाते हैं ॥ ११ ॥

चन्दन धासको मुस्त गुहूची द्राक्षया सह ॥

पूर्वां शीतकपायसु क्षीतलाज्वरनाशन ॥ १२ ॥

चन्दनादि वषाय—चन्दन अरुसा, नागरमोथा, गुश्च और दास प्रत्येक समभाग वा त्रिभि पूर्वक साथ सेवन करने से शीतला उबर नष्ट होता है ॥ १२ ॥

जपहोमोपहारेक्ष दानस्वस्वययमाचनेः । विप्रमोक्षभुगौरीणा पूजनैस्ता क्षम भवेत् ॥ १३ ॥

जपादि क्रिया—शीतलारोग में जप, होम, उपहार, दान, स्वस्वयन, पूजन और ब्राह्मण, गौ शिव तथा गौरी की पूजा करने से शीतला शान्त होती है ॥ १३ ॥

रजोग्रं च दौतलावेण्याः पठेत्पुत्रीवलिगोऽमितके ।

मासगः अथवा युक्तस्तेन दाममन्त्रि दौतला ॥ १४ ॥

शोत्रला के रोगी के निकट शीतला देवी का रजोग्र मन्त्र पूर्वक मासग के द्वारा पाठ कराने से शीतला शांत होती है ॥ १४ ॥

शीतलाया भेदानाह—

कफमारुतसम्भूत कोद्रवो नामतो गद् । अराका कोद्रवाकारः सूचीगिरतोदकारक ॥ १ ॥  
जञ्ज्यूक इयात्रेपु विष्यतीव विरंपत । मसाहाद्रा दसाहाद्रा शार्त्ति पाति विनीरपेः ॥ २ ॥  
यदि वा भेषज दद्यात्तद्विराष्टकनिर्मितम् । कषाय हि तदा दृष्यात्कोद्रवस्य प्रसाम्पये ॥ ३ ॥

कोद्रव शीतला—कफ वायु के कोप से उत्पन्न कोद्रवा नाम की जो मण्डिका का शीतला रोगी है उसमें पाक नहीं होता । यह कोद्रो के आकार का रजोट होता है और उसमें कई चुपने के समान पोटा होती है । जल युक्त कोड़े के समान रंगो की भीषता रहता है । सात भयदाह्य दिन में बिना औषधि के ही यह रोग उभन हो जाता है । अथवा यदि रतनें औषधि दे नी उन्निराष्टक कषाय मात्र देवे रससे कोद्रवा नाम की शीतला शांत हो जाती है ॥ १-३ ॥

एषद्विरक्रियातिप्रपटोलाश्रुतवासाहा । अष्टकोऽप्यं जपेत्कृत्कृद् विरकोरुहानि च ॥ ४ ॥

विसर्पपामाकिटिभं दौतवित्तमसूरिके ।

विराष्टक काय—लेट, हट्ट, बड़ेहा, भाँसला, नीग की घाल, परबल पत्र, गुरुब और बसला प्रत्येक समभाग का पान करने से कृष्ण, कण्टक, निरगोद, विषर्ष, पाया, त्रिदिम, शोन्विष्ट और मण्डिका ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४-५ ॥

काश्चिद्दिनाऽपि पानेन सुखं विष्यति दौतलाः ॥ ५ ॥

दुष्टा कष्टतराः काश्चित्काश्चिन्विष्यन्ति वा य वा ।

काश्चिद्यैव गु तिष्यन्ति पद्यतोऽपि विक्रिसत्ताः ॥ ६ ॥

सायवासाप्यग्रा—कोई शीतला बिना पान किये हो उभनमाप्य होती है और कोई दृष्टि शोत्रला कफ से निवृत्त होती है । कोई सिद्ध मो होती है और मही भी होती है और कोई तो विक्रिसर्पों के पान करते रहने पर भी सिद्ध नहीं होती है । इस प्रकार की कृष्ण और जालाव शोत्रला होती हैं ॥ ५-६ ॥

अथ पर्यापद्यम् ।

लीलाः पष्टिकालयोऽपि चगका मुद्रा मधुरा पयाः

मयेऽपि मधुरा कपोतपटकाष्टपाद्दरापूरकाः ।

कर्करिकं कदल च तिम कुरुक द्रावापल दाहिर्म

भेष्य सुंदरामधपानमिच्छं कोलानि मांयो रसाः ॥ १ ॥

अरण्योः सेकन्धौ गवेपुमपुकोदृग्म मुशीतोदकं

दाम्बूकोदरकोशमीरमपि वा कपूरपुत्राणि वा ।

पयो मुद्रसोऽपि जङ्गलरसा काश्चिच्च दाम्बं पूर्ण

भूये गोमयभरमगुष्टममयो वाया मणोऽद्विधाः ॥ २ ॥

दृग्धं सपदना विभागविहितं पथ्यं यमाहोषता ।

संयुक्तं मुद्गमानमोति नितरां मुनां मणुरीपदे ॥ ३ ॥

पर्यापद्य—पुराने छाटी और पुराने श मिशन के पारण, जना, मृग, मण्ड, को, मनी प्रहार के मधुर ( कोप से कुरद पर उन्निराष्टक ) जलो ( दृष्टि कादि ) का गोम रस, बनीस, धासक ( लीटवा ), इति तामक भीष, लीला ककीदा रेल, कारिकन, बरबल वास अन्नप तथा गिवात्सर्क और सुंदरामयो प्रहार के अथवासाप्य, रेट कण, जंगलरस, कर्करिक दण्ड हैं । इन रोग में गेदररसा और मुद्रादी के पत्र से कोली का विषय करना चाहिये । दाम्बूक कपूर के उत अन्नप कपूर का पूर्ण जलों से देना चाहिये, शीतलावक शीतला कादिने, पट्टर रसपट्टा मुद्ग मूत्र का रस ( मृग ), मीरक बीरो का मण्डरस, शार्त्तिच दाह, कण, कूर, बस के

उपलों की मरम सिद्धकना तथा उपयुक्त प्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । इस प्रकार सभी दृष्टि से विचार करके दोष के अनुसार मधुरिका रोग में पथ्य देने से लाभ होता है ॥ १-३ ॥

वार्त स्वेदं धर्मं सैलं गुण्यं क्रोधमातपम् । कट्वग्ल वेगरोधं च मसूरीगद्वर्षास्यजेत् ॥ ४ ॥

वायु सेवन, स्वेदकर्म परिश्रम, तेज, गुण भय, क्रोध, धूप या अग्निताप, कटु और अम्लरस वाले पदार्थ, वेगावरोध आदि को मधुरिका का रोगी त्याग दे । ये सब उसके लिये अपथ्य हैं ॥४॥

इति मसूरिकाशीतलारोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथ क्षुद्रोरोगनिदानम् ।

ते समासेन चतुश्चत्वारिंशत्क्षुद्रोरोगा भवन्ति, तत्रथा

अजगल्लिका—

स्निग्धा सवर्णाप्रथिता नीरुजा मुद्गसद्यिभा । कफवातोस्थिता ज्ञेया घालानामजगल्लिका ॥

क्षुद्रोरोग-निदान—संक्षेप स क्षुद्रोरोग ४४ होते हैं । ( वैसे तो इनकी संख्या असत्य है परन्तु इस ग्रन्थ में ४४ प्रकार के दो लिये गये हैं ।

अजगल्लिका के लक्षण—बालकों को जो पिडिका चिबनी, खचा के वर्ण के समान रंग वाली गांठदार, पीड़ाहित और मृग के आकार की कफ-वात प्रकोप से उत्पन्न होती है उसे अजगल्लिका कहते हैं ॥ १ ॥

यकप्रत्यामाह—

यक्काकारा सुकठिना प्रथिता मांससंधिता । पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां यकप्रत्येति सोच्यते ॥

यकप्रत्या के लक्षण—जो पिडिका जो के आकार की, कठिन, गांठदार तथा मांस के भाग्य होने वाली और कफवात के मिलित प्रकोप से उत्पन्न होती है उसे यकप्रत्या कहते हैं ॥ २ ॥

अपालजीमाह—

घनामयवत्रां पिटिकामुद्यतां परिमण्डलाम् । अपालजीमयपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥

अपालजी के लक्षण—जो पिडिका मुखरहित अर्थात् अल्प वा सूक्ष्म मुखवाली, उठी हुई, मण्डलाकार ( गोल ) और अल्प पूय वाली हो उसे कफ वात के प्रकोप से उत्पन्न अपालजी पिडिका कहते हैं ॥ ३ ॥

विष्टामाह—

विष्टतास्यां महोदाहां पकोदुग्धरसनिभाम् । विष्टतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥

विष्टता के लक्षण—जो पिडिका खुले मुखवाली अत्यन्त दाह करने वाली पके हुए गूलर के फल के आकार की और मण्डलाकार ( गोल ) हो उसे पित्त प्रकोप से उत्पन्न विष्टता नाम की पिडिका कहते हैं ॥ ४ ॥

कच्छपिकामाह—प्रथिता पद्म वा पद्मवा वायणाः कच्छपोद्यताः ।

कफानिलाभ्यां सम्भूता ज्ञेयाः कच्छपिका सुधै ॥ ५ ॥

कच्छपिका के लक्षण—जो पिडिका प्रथित ( गठीली ) परस्पर मिली हुई एक साथ पाच अथवा छे उत्पन्न हों, अत्यन्त कठिन हों और कछुप के समान हों उसे वायु के कोप से उत्पन्न कच्छपिका पिडिका कहते हैं ॥ ५ ॥

वर्मीकमाह—प्रीयांसकृपाकरपावदेते सन्धौ गले वा त्रिभरेय दोषैः ।

प्रथिः स वर्मीकवृक्क्रियाणां जात क्रमेणैव गतः स वृद्धिम् ॥ ६ ॥

मुखैरनेके क्षुतिसोद्वचस्त्रिर्सर्पवशसर्पति चोक्षवाग्नेः ।

वर्मीकमाहुर्मिपजो विकार निष्पत्यनीक चिरस्थं विशेषात् ॥ ७ ॥

वर्मीक के लक्षण—जो पिडिका गर्दन, कंधा, कौल, हाथ, पैर, संधियों तथा गले में गांठदार वर्मीक के समान उत्पन्न हो जाती है और क्रिया ( चिकित्सा ) नहीं करने से जो वृद्धि होती जाती है एवं अनेक मुखों वाली होकर स्थावित होती रहती है तथा धर्म जुमाने के समान पीड़ा होती है और यह ऊँचे मुख वाली विसर्प के समान पैलटी है इसे वर्मीक कहते हैं । यह असाध्य है विशेष कर पुराना हो जाने पर अत्यन्त असाध्य हो जाती है ॥ ६-७ ॥

रद्रुद्रामाह—

पद्मकर्मिकयन्मध्ये विटिकां विटिकाधिताम् । दृज्जपुसां तु तां विद्याहातविद्योन्पितां निरुद्धम् ॥  
 रद्रुद्रा के लक्षण—कमल की मूर्तियों ( दानों ) की मूर्ति चारों तरफ से विटिकाओं से घिर कर मध्य में एक बड़ी विटिका हो, उसे वात-विद्य के कोप से उत्पन्न रद्रुद्रा नाम की विटिका कहते हैं ॥ ८ ॥

गर्दमिकामाह—

मण्डलं घृत्तमुत्पन्न सरकं विटिकाधितम् । रुजाकर्त्री गर्दमिकां तां विद्याहातविद्यत्राम् ॥१४॥  
 गर्दमिका के लक्षण—जो विटिका मण्डलाकार ( गोल ), चटा हुआ, रसबर्ण की छोटी व अन्य विटिकाओं से घिरी हो और पीदा करने वाली हो उसे वात-विद्य के प्रकोप से उत्पन्न गर्दमिका नाम की विटिका कहते हैं ॥ ९ ॥

पाषाणगर्दममाह—

घानरतेभ्रमसमुद्भूतं श्वयधुहुनुर्वधिसम् । स्थिरौ मन्दरुद्रः तिरग्यो श्रेयः पाषाणगर्दमा ॥  
 पाषाण गर्दम के लक्षण—जो शोष ( विटिका ) हनु की मूर्ति में उत्पन्न, स्थिर ( मध्यम ) मन्द र पीदा करने वाली और शिरग्य ( शिरग्य ) हो उसे वात-रुद्र के कोप से उत्पन्न पाषाण गर्दम नाम की शोष ( विटिका ) कहते हैं ॥ १० ॥

पनसिकास्थगमाह—

कगस्यायन्तरे जातां विटिकामुग्रवेदनाम् । स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याहन्तामपाक्षिनीम् ॥  
 पनसिका के लक्षण—जो विटिका कान के भीतर उत्पन्न, अत्यन्त पीदा करने वाली स्थिर ( मध्य ) और मोटर से पकने वाली हो उसे पनसिका विटिका कहते हैं ॥ ११ ॥

बाणगर्दममाह—

विसर्पकामपति यः शोफस्तनुरवाकषाम् । दाहज्वरकरः विद्याम श्रेयो जालगर्दमा ॥ १२ ॥  
 बाण गर्दम के लक्षण—जो शोष, विसर्पदोग की मूर्ति जैसी वाली पतली, पादाहित तथा दाह और ज्वर करने वाली हो उसे विद्य प्रकोप से होने वाली जालगर्दम विटिका कहते हैं ॥ १२ ॥

हरिवेदिभ्रामाह—

विटिकामुग्रमाह्वरणां घृत्तामुग्रद्वज्जगराम् । सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गो जामीवाहिरिपक्षिचाम् ॥  
 हरिवेदिभ्रामा के लक्षण—जो विटिका उत्तमाह्व ( शिर ) में उत्पन्न, गोल आकार कठिन पीदा करने वाली ज्वर युक्त तीनों कोप के कोप से उत्पन्न और तीनों कोपों के लक्षणों से युक्त हो उसे हरिवेदिभ्रामा कहते हैं ॥ १३ ॥

कथामाह—

बाहुकृपां तापापैषु वृष्णारकेटां मरुदनाम् । रिक्तप्रकोपसंभूतां कथामिति विनिर्दिशेत् ॥१४॥  
 कथा के लक्षण—जो विटिका बाहु, कंधा कंधा और तसखियों में वृष्णारकों के प्रकोपों से युक्त तथा पीदा करने वाली हो उसे रिक्त प्रकोप से उत्पन्न कथा नाम की विटिका कहते हैं ॥ १४ ॥  
 पुष्कमेतारसो ह्युपा विटिकां रक्तसंभ्रामाम् । त्रयगतां रिक्तकोपेण मन्पमाप्तीं प्रपद्यते ॥१५॥  
 कथामाह के लक्षण—जो विटिका कथ के समान पक्षीमातृक तथा के लक्षण एक ही स्थान से उत्पन्न प्रकोप से उत्पन्न मन्पमाप्ती कहते हैं ॥ १५ ॥

अक्षिरिपक्षिचामाह—

कथामतेषु ये बहोदा व्यापने मांमदारणाः । अन्वर्हाह्वरकरा रिक्तप्रकोपसंभ्रामा ॥ १६ ॥  
 अक्षिरिपक्षिचामा के लक्षण—जो विटिका पक्ष्याह्व मन्पिमात्तवम् । ताम्रपिष्टेदिनीं विद्याह्वान्तीं सन्निपातत्राम् ॥  
 अक्षिरिपक्षि के लक्षण—जो विटिका कथ के माली में कथ की विटिका होने व ही कथाम नाम की विटिका उत्पन्न होती है तथा रिक्त प्रकोप, ज्वर और शोष तीनों के कोपों से उत्पन्न होने के लक्षण होते हैं उसे अक्षिरिपक्षि विटिका कहते हैं ॥ १६ ॥  
 पक्षरिपक्षिचामा के लक्षण—जो विटिका कथ के लक्षण एक ही स्थान से उत्पन्न प्रकोप से उत्पन्न मन्पमाप्ती कहते हैं ॥ १६-१७ ॥

विद्यप्रकोपमाह—

मत्तमांमविद्याय दाना विद्यं च देहिनाम् । कुक्षीं दानांशुं च संस्थापि विद्यप्रकोपिणम् ॥

चिप्य के लक्षण—जो मनुष्यों के नख के नीचे के मांस में बात-पित्त कुपित होकर दाह और पाक उत्पन्न कर देते हैं उस व्याधि को चिप्य कहते हैं ॥ १८ ॥

कुनरस्य लक्षणमाह—

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूपासितः खरः । भयेत्तं कुनखं विद्याच्छुभीरमिति संशितम् ॥

कुनख के लक्षण—किन्नी प्रवार के आघात आदि से जो नख दूषित होकर रूख, कृष्ण और कठोर हो जाते हैं उन्हें कुनख कहते हैं । इसकी संज्ञा कुलीर भी है ॥ १९ ॥

अनुशयो लक्षणमाह—

गम्भीरामज्जसरग्मां सवर्णांमुपरि स्थिताम् । पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्ताप्रपाकिनीम् ॥

अनुशयो के लक्षण—जो पिड़िका अतः प्रपाक के कारण गम्भीर हो, अल्पशोथ वाली हो, उसका वर्ण स्वचा के वर्ण के समान हो तथा पाद के ऊपर मस्तक पर स्थित हो और मोतर ही मोतर पकने वाली हो उसे अनुशयो नाम की पिड़िका कहते हैं ॥ २० ॥

विदारिका लक्षणमाह—

विदारिका मन्दवद्वृक्षा कपावह्वणसन्धिषु । विदारिका भवेद्रक्ता सूर्यजा सूर्यलक्षणा ॥ २१ ॥

विदारिका के लक्षण—जो पिड़िका विदारिकन्द की भाँति गोल, काल और बंधन की सन्धियों में रक्तवर्ण की हो सब दोषों के मिलित प्रकोप से उत्पन्न हो और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त हो उसे विदारिका कहते हैं ॥ २१ ॥

शर्करास्य लक्षणमाह—

प्राप्य मांस शिरास्नायुर्मैदः श्लेष्मा तथाऽनिलः ।

प्रथिं करोत्यसौ मिश्रो मधुसर्पिर्सानिमम् ॥ २२ ॥

शर्करा के लक्षण—कफ और बात जब मांस, शिरा, स्नायु और मेद में जाकर दूषित होते हैं तब प्रथि ( गाँठ ) उत्पन्न कर देते हैं और जब यह गाँठ फूटती है तो उससे मधु, घृत और बसा के समान छाय होता है तथा साव अत्यन्त होने से पूर्वोक्त कुपित बात और भी बढ़कर मांस को सुखाकर गाँठ वाला शर्करा ( अश्मशुकरा ) उत्पन्न कर देता है । इस अवस्था को शर्करा कहते हैं ॥

छयाप्राध्वमत्यर्थं सन्न वृद्धिं गतोऽनिलः । मांस विशोप्य प्रथितां शर्करां जगयेत्ततः ॥ २३ ॥

दुर्गन्धि विलम्बमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः । ध्रुवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छुकरासुधम् ॥

शर्करास्य के लक्षण—उपयुक्त शर्करा में शिराओं जब दुर्गन्धि और अत्यन्त श्लेध युक्त तथा अनेक वर्णों के रक्त को सहसा गिराने लगती हैं तब उसे शर्करासुध कहते हैं ॥ २४ ॥

पाददायां लक्षणमाह—

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूपचयोः । पादयोः क्षुरते दारीं सरुक्षां सल्लसंभिताम् ॥ २५ ॥

पाददायी के लक्षण—अधिक क्रमण करने वाले विना नूते का पैदल चलने वाले के पादों के तलवे में वायु कुपित होकर सलवों को रूक्षकर उसमें दरार उत्पन्न कर देता है और उसमें पीड़ा होती है । इस रोग को पाददायी कहते हैं ॥ २५ ॥

शर्करास्य लक्षणमाह—

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः । प्रथिं कोलवदुत्सन्नो जायते क्वद्वरः सु तत् ॥ २६ ॥

शर्करा के लक्षण—पैर के तलवे रेत, बाल, तथा कड़ूर आदि से पीड़ित अथवा कौट आदि से क्षत विक्षत हो जाने से उसमें पैर के समान जो प्रथि उत्पन्न हो जाती है उसको क्वद्वर कहते हैं । ( यदा क्वा यह रोग दाह में भी उत्पन्न होता है ) लीक में इसे गोखरू रोग भी कहते हैं तथा शाख में शर्कराकर और बात कण्टक कहते हैं, इसमें वायु और कफकुपित होते हैं ॥ २६ ॥

अलसस्य लक्षणमाह—

विलम्बाह्वयन्तरो पादौ कण्डूदाहजान्वितौ । लुष्टकर्मसंस्पृहादुलसं स विभावयेत् ॥ २७ ॥

अलस के लक्षण—पैर की अङ्गुलियों के मध्य में निरन्तर आर्द्र रहने से अथवा दूषित नीचक आदि के लगते रहने से पैर की अङ्गुलियां सड़ जाती हैं और उनमें कण्डू दाह और पीड़ा होती है उसे अलसरी कहते हैं ॥ २७ ॥



इन्द्रज्वर लक्षणम्—

रोमकूपानुगं विषं वातेन सह मूर्च्छितम् । मध्यावपति रोमाणि वृताः श्लेष्मा ससंनिताः स  
रुग्निदि रोमकूपान्तु ततोऽप्येवमसम्भव । तदिन्द्रज्वरं ग्राह्यं रक्षेति च विभाष्यते ॥३५॥  
इन्द्रज्वर के लक्षण—रोमकूपों में गया हुआ विष वात से मूर्च्छित होकर रोमों को घिरा देता है । पश्चात् रक्त रक्त के साथ मिलकर रोमकूपों को बंद कर देता है जिससे बालों के तिर जों पर पुनः उनकी उत्पत्ति नहीं होती । इस रोग को इन्द्रज्वर, माण्डित्य और रक्षा कहते हैं । यह रोग शिशुओं को कम होता है ॥ ३८-३९ ॥

दारुणज्वर लक्षणम्—

दारुणा कण्ठुरा रूपा केसभूमिः प्रपादयते । कफमाहृतकोवेन विद्याहारणक तु तत् ॥ ३० ॥  
दारुणक के लक्षण—जिस रोग में बच्चे अपने की जगह तक बाधु के कोप से कठिन (हृदय) मुक्त और रुद्ध तथा घट जाने या उस स्थान पर पपड़ियों बनाने जैसे उस रोग को दारुणक कहते हैं ॥ ३० ॥

अश्विदाह लक्षणम्—

अश्विपि यदुत्पन्नाणि बहुवलेहीनि मूर्च्छति । कफामृतमृत्तिस्रोपेण ताणि विद्याहदधिकाम् ॥३३॥  
अश्विदाह के लक्षण—मरतक में अनेक मुतों और बहुत बले से बाली (अतिप्राय करने वाली) को विक्रिये कफ, रक्त और क्रिमियों के कोप से उत्पन्न हो जाती है उन्हें अश्विदाह रोग कहते हैं प्र पलितस्य निष्ठागम्यासिपूर्वक लक्षणम्—

श्लोघशोकप्रमत्तः शरीरोष्मा शिरोगतः । विषं च शैतान्यपि पलितं तेन चापते ॥ ३२ ॥  
पलित के निदान—कोप, शोक और परिमम के कारण उत्पन्न शरीर को कफा तथा विष धित में जाकर केशों को पका देते हैं उसमें पलित रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ३२ ॥  
घातिका विषमं रूप पीतं विशास्ति संकफाम् । समरूपान्वित विष्णसत्रिपातममुच्छ्रितम् ॥

पलित के लक्षण—अधिक शान प्रदोष के कारण जो पलित होता है उसमें वाक विषम (न्यूनाधिक) रूप से पकते हैं, विष प्रदोष के कारण जो पलित होता है उसमें बहुत पीने होते हैं और कफ प्रदोष के कारण जो पलित होता है उसमें केश श्रेष्ठ हो जाते हैं । तथा शक्रियाज के कारण जो पलित होता है उसमें तीनों दोषों के निर्माण हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

शौचनिरिक्ता लक्षणम्—

शाश्वतीकण्टकप्रपयाः कफमाहृतश्लेष्माः । जायन्ते निरिक्ता भूमां विज्ञेया मुक्तवृद्धिदाः ॥  
शौचनिरिक्ता के लक्षण—जो लेमक के छाटे के ममाम कट-बाधु और रक्त के प्रकोप से मुक्त पुत्रों के मुक्त के तो रस को दूधित कर देना है उन्हें मुक्त दूधित या शौचनिरिक्ता कहते हैं ॥  
पदिनीकण्टकम्—

कण्टकैरावितं वृषं कण्ठमापाण्डुमृच्छितम् । पदिनीकण्टकप्रपयैगदाह्वं कफवातसम् ॥३५॥  
पदिनी कण्टक के लक्षण—जो निरिक्ता रमति के छाटों के साथ शरीर से विषि पूर्व, मोहाहार, कण्ठमुक्त, पाण्डु बनी ही होती है उसे पदिनी कण्टक कहते हैं यह कफ और वात के प्रदोष से उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥

अनुमतिनाम्—

समगुणसमस्तं मण्डलं कफरक्तजम् । सहनं लक्ष्यं शैलपां लक्षणे अनुमतिनाम् ॥ ३६ ॥  
अनुमति (अहसन) के लक्षण—जो मण्डल का विह लक्षणा के लक्षण हो अथवा वृषा पीला रहित और चिकना होता है उसे अनुमति कहते हैं यह कफ और रक्त के प्रदोष से होता है । और १ आचार्य इसे कफ से उत्पन्न होने वाला रक्त दाहिले लक्षण लक्षण मानते हैं । इसे जोर में अहसन करते हैं ॥ ३६ ॥

अस्य विरोधार्थं धारदेवोत्तमम्—

कृष्णः शिवधो अनुमतिर्ज्ञेयो शान्तोभरीप्रियि । अरुणं शबरो रक्तं लक्षणेऽनुमतिनाम् ॥३७॥  
रक्त के रक्त से कृष्ण रक्त का शिवध और शैल रक्त विह लक्षण लक्षणा शैल रक्त की घटित पर उत्पन्न होता है उसे अनुमति कहते हैं । और ( ३७ वि ) जो रक्त रक्त का और कृष्ण रक्त लक्षणे रक्त मानते हैं ॥ ३७ ॥

मापमाह—

अभेदग स्थिरं चैव यस्मिन्नात्रे प्रहरयते । मापयत्कृष्णाम्बुसखमनिहान्मापमाविशेत् ॥ ३८ ॥  
माप के लक्षण—जो शरीर के किसी भाग में पीड़ा रहित, स्थिर ( अचल ) माप ( उदद ) के समान आकार का, कृष्ण वर्ण और ठठा दुभा मांसाङ्कुर दिखाई देता है वह वायु के कोप से उत्पन्न होता है । उसे माप ( मरसा ) कहते हैं ॥ ३८ ॥

तथा च भोज —

घातेरिते स्वप्ति यदा दृष्येते कफमेयसी । श्लष्णं मृदु सवर्णं च कुर्वांसं मापक घवेत् ॥ ३९ ॥  
घात से प्रेरित कफ और भेद जब स्वप्ना में जाकर दूषित हो जाते हैं तब चिकना, कोमल, माप के समान अथवा स्वप्ना के समान वर्ण का मांसाङ्कुर उत्पन्न कर देते हैं । भोज के मत से उसे मापक ( मरसा ) कहते हैं ॥ ३९ ॥

तिलकालकमाह—

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरूजानि समानि च । घावपिस्तफोद्रेकात्तापिघातिलकालकाम् ॥  
तिलकालक के लक्षण—स्वप्ना के ऊपर तिल के प्रमाण कृष्णवर्ण के, पीड़ा रहित, त्वचा भी ही समाना में बात, पिच तथा कफ के कोप से जो चिद् उत्पन्न होते हैं उन्हें तिलकालक कहते हैं, लोक में इसे तिल कहते हैं ॥ ४० ॥

यच्छमाह—महद्वा यदि वा चक्षुषं श्याव वा यदि वा सितम् ।

नीरूज मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ४१ ॥

न्यच्छ के लक्षण—शरीर में मुख के अनिरिक्त किसी भी भाग में बड़ा अथवा छोटा, कृष्ण अथवा धूसर रंग का, पीड़ा रहित जो मण्डल हो जाता है उसे न्यच्छ ( लक्षण या लक्षण ) कहते हैं । यह भी ननुमणि ( लहसन ) के भौति ही माना जाता है ॥ ४१ ॥

मुखव्यङ्गस्य लक्षणमाह—

क्रोधापासप्रकुपितो वायुः पिचेन सयुतः । मुखमागत्य सहसा मण्डल विद्यजत्यतः ॥ ४२ ॥

नीरूज तनुक श्याव मुखव्यङ्ग तमाविशेत् ॥

मुख व्यंग के लक्षण—क्रोध परिश्रम आदि से कुपित दुभा वात, पिच मुख पर सहसा मण्डल बना देता है जो पीड़ा रहित, पतला और दयाम ( धूसर ) वर्ण का होता है उसे व्यङ्ग कहते हैं । लोक में इसे झार्र या छाहीं कहते हैं ॥ ४२ ॥

नीलिकामाह—कृष्णमेघ गुण गात्रे मुखे वा निलकां विदुः ॥ ४३ ॥

नीलिका के लक्षण—उपरोक्त व्यङ्ग के गुणों वाला ही चिद् यदि कृष्णवर्ण का शरीर अथवा मुख पर हो तो उसे नीलिका कहते हैं । ( लोक में इसे नीली झार्र कहते हैं यह व्यच्छ तथा व्यङ्ग दोनों से अधिक कृष्णवर्ण की होती है ) ॥ ४३ ॥

परिवर्तिकामाह—

मर्दनारपीडनाह्लाऽपि तयैवाप्यभिघातत\* । मेघुचर्म यदा वायुभजते सर्वतन्मरन् ॥ ४४ ॥

सदा घातोपसृष्टवाचर्म तत्परिघर्तते । सचेदन सदाहं च पाकं च प्रजति कश्चित् ॥ ४५ ॥

मणेरधस्तात्कोशास्तु ग्रन्थिरूपेण लभ्यते । सरुजां घातसम्भूतां विघातां परिघर्तिकाम् ।

सकण्डू कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्पिता ॥ ४६ ॥

परिवर्तिका के लक्षण—लिङ्ग को अत्यन्त मर्दन अधिक दबानेसे अथवा इसी प्रकार के अत्याय आपातादि से शरीरों में चलने वाला कुपित म्यान वायु शिश्न के चर्म में प्रवेश कर चर्म का छलट देता है जिससे घेदना, दाह और कदाचित् पाक भी हो जाता है और लिङ्ग मुण्ड के नीचे मांसकोश ग्रन्थि ( गांठ ) के रूप में छटक जाता है इस रोग की घात से उत्पन्न पीड़ायुक्त परिवर्तिका कहते हैं । यदि इस रोग में और ग्रन्थि में काठिन्य हो तो कफ के प्रकोप से उत्पन्न परिवर्तिका जाननी चाहिये । ( इसमें पिचविकार भी स्थित रहता है जिससे दाह पाकादि होते हैं पर विशेष वात और कफ ही दूषित रहते हैं ) ॥ ४४-४६ ॥

अवपाटिका लक्षणमाह—

अक्षयीवस्थां यदा हर्षाद्बलाद्भ्रष्टेऽस्थिर मरः । हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्घसिते बलान् ॥

मर्दानास्पीडनाद्वाऽपि शुक्रवेगविघातता । यथावपाटयते चर्मं ता विद्यादचपाटिकाम् ॥ ४८ ॥  
 अचपाटिका के लक्षण—अथ संकुचित ( छोटी ) योनि में र्ध्वं अथवा अल्पपूर्वक मैथुन करने से  
 अथवा हाथ आदि के ही अभिघात ( हलमैथुन ) से अथवा हाथ से बलपूर्वक लिङ्ग के मुख को  
 खोलने से अथवा मर्दान करमे से अथवा दबाने से अथवा निकलते हुए शीर्ष को रोकने से जो किङ्ग  
 मुंड के चम फट जाते हैं उसे अचपाटिका कहते हैं । इसमें वातादि दोषों का प्रचक्षु २ कोप रहता  
 है । उसे दोष के लक्षणानुसार जानना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

निरुद्धप्रकाश लक्षणमाह—

यासोपसृष्टे मेढे चै चर्मं संभ्रयते मणिम् । मणिश्चर्मावगदस्तु मूत्रस्रोतोऽरुणद्धि च ॥ ४९ ॥  
 निरुद्धप्रकाशे तरिमन्मन्दघारमवेदनम् । मूत्रं प्रवतते जन्तोर्मणिर्विम्रियते न च ॥

निरुद्धप्रकाशं विद्यात्सकृजं घातसम्भवम् ॥ ५० ॥

निरुद्ध प्रकाश के लक्षण—लिङ्गेन्द्रिय में वायु के कुपित होने से लिङ्ग के गुदा पर चर्म  
 लिगमंड पर चढ़ जाता है और मणि के चर्म से आच्छादित हो जाने से मूत्र का स्रोत अवरुद्ध  
 हो जाता है उसे निरुद्ध प्रकाश कहते हैं । इस निरुद्ध प्रकाशरोग में मन्द २ बार से पीड़ा रहित  
 मूत्र निकलता है और लिगमुंड नहीं खुलता है । उसे पीड़ा युक्त होने से वात से उपपन्न निरुद्ध  
 प्रकाश जानना चाहिये ॥ ४९-५० ॥

संनिरुद्धगुणस्य लक्षणमाह—

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदमस्थितः । निरुणद्धि महस्योत सूचमह्वारं करोति च ॥ ५१ ॥  
 मागस्य सौच्यारण्यच्छ्रेण पुरीप तस्य गच्छति । संनिरुद्धगुद व्याधिमेव विद्यात्सुदुस्तरम् ॥

संनिरुद्धगुद के लक्षण—मालादि वेग को रोकने से गुना में स्थित अपाग वायु कुपित होकर  
 मलमाग को अवरुद्ध कर सक्षम द्वार कर देता है । जिससे मल का निवृत्तना कष्ट हो जाता है ।  
 इस प्रकार के कठिन व्याधि को संनिरुद्ध गुण जानना चाहिये ॥ ५१-५२ ॥

अहिपूतनस्य लक्षणमाह—

वाहू मूत्रसमायुक्तेऽघोतेऽपाने शिशोर्भवेत् । खिन्ने वा चाप्यमानेऽस्य कण्ठ रक्षकफोत्तया ॥  
 कण्ठयनात्तत विप्र स्फोटं खावध जायते । एकीभूतं प्रणं घोरं तं विद्याद्दहिपूतनम् ॥ ५३ ॥

अहि पूतन के लक्षण—बालकों के मल मूत्रादि युक्त गुना को नहीं धोने से अथवा स्नेहादि  
 के गुना में आ जाने से अथवा बालकों को स्नान नहीं कराने से रक्त और कफ से गुना में कण्ठ  
 उत्पन्न हो जाता है और उससे शीघ्र ही गुदा में पफोल पद आते हैं तथा साथ होने लगता  
 है और कदाचित् वे सन पफोल एकत्र होकर बड़े कठिन प्रण के रूप में हो जाते हैं ।  
 उस घोर प्रण को अहिपूतन कहते हैं । ( बच्चों को ये रोग अरुच्यता एवं दूषित दूध के पान से  
 भी होता है ) ॥ ५३-५४ ॥

शृणगच्छूळशृणगमाह—

स्नानोत्पानदहीनस्य मलो शृणगसंभ्रितः । यथा प्रविलसते स्वेदाकण्ठक्षनयते तथा ॥ ५५ ॥  
 कण्ठयनात्तत विप्र स्फोटं खावध जायते । प्राहुर्पूषणकण्ठुं सां रक्षेत्पारक्षप्रकापजाम् ॥ ५६ ॥

शृणग कण्ठ के लक्षण—जो स्नान आदि नहीं करके अथवा उपटा आदि नहीं लगाते हैं  
 उनके शृणग में शिवन मल रवेदादि से आर्द्र होकर कण्ठ उत्पन्न कर देता है । इस कण्ठ से जीभ  
 ही पिड़िकायें हो जाती हैं और चासे साथ होने लगता है । इस रोग को शृणग कण्ठ कहते हैं ।  
 इसमें जो पिड़िकायें होती हैं उनमें कफ और रक्तदोष का प्रकोप होता है ॥ ५५-५६ ॥

शुभ्रंशस्य लक्षणमाह—

प्रवाहगातिसाराम्बां निर्गच्छति शुभ्रं यदि । रुच्युर्वल्लेहस्य तं शुभ्रं गमादितोत् ॥ ५७ ॥

शुभ्रंश के लक्षण—रुच्य और रुच्य शरीर वाले के प्रवाहा करने से ( अल्पपूर्वक मल  
 निकालने से ) और अजीर्ण से जो शुभ्र को नाड़ी वादर निकल आती है उसे शुभ्रंश रोग  
 कहते हैं ॥ ५७ ॥

सुकरवंशस्य लक्षणमाह—

सदाहो रक्षयन्तस्वपवाकी क्षीमयेदना । कण्ठमात्परकारी च स स्वात्सुकरदृष्ट ॥ ५८ ॥

सूकर दंष्ट्र के लक्षण—जो प्रा सुभर के बाद के भाकार का दाह युक्त, रक्त वर्ण के किनारों वाला, त्वचा को पकाने वाला, तीव्र पीडा करने वाला, कण्डू करनेवाला और ज्वर करने वाला होता है उसे सूकर दंष्ट्र कहते हैं ॥ ५८ ॥

**अथातः क्षुद्ररोगचिकित्सा ।**

अजगण्डिकाचिकित्सा—

तत्राजगण्डिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् । शुक्तिमौराष्ट्रिकाचारकदकैश्चाऽऽलेपयेत्सुहु ॥

अजगण्डिका चिकित्सा—अजगण्डिका जब पकी नहीं हो तब उसमें जोंक लगाकर रक्त निकलवा देना चाहिये और सीप तथा फिटकिरी और यवाचार प्रत्येक समभाग लेकर विधि पूर्वक कल्क बनाकर चार २ लेप लगाने से अजगण्डिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

फठिनां चारयोगैश्च द्वाघयेदजगण्डिकाम् । श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकवकैरपि विलेपयेत् ॥

पर्णां म्रणविधानेन ययोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ २ ॥

जो अजगण्डिका कठिन हो उसे क्षार द्रव्यों के प्रयोग से द्रवित करना (रहाना) चाहिये और श्यामालता, कलिहारी विष, मूर्वामूल प्रत्येक समान लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर लेप करते रहना चाहिये । जब अजगण्डिका पक जाये तब म्रण प्रकरण में कड़ी हुई विधि के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

यवप्रख्यान्धालजीचिकित्सा—

अधालजीं यवप्रख्यां पूर्वं श्वेदैरुपाचरेत् । मनःशिलादेपदाहकुष्ठकदकैः प्रलेपयेत् ॥

पर्णां म्रणविधानेन ययोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ १ ॥

अधालजी और यवप्रख्या की चिकित्सा—अधालजी और यवप्रख्या को पहले श्वेदन करना चाहिये । पश्चात् मैनशिल, देवदारु और कुं तीनों समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर लेप करना चाहिये । इनके पक जाने पर जैसी म्रण की चिकित्सा कही गयी है वैसी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

विशृत्ते द्रष्टव्यागर्दमिकाजालगर्दमानां चिकित्सा—

विशृत्तामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम् । पैसिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्विपक् ॥१॥

पाके तु रोपयेदाग्नें पक्वैर्मधुरमेपजै । नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपन हितम् ॥

जालगर्दभरूपं तु सद्यो हन्ति सयेदनम् ॥ २ ॥

विशृत्तादि की चिकित्सा—विशृत्ता, द्रष्टव्या, गर्दमिका और जालगर्दभ रोगों में पित्तज विसर्प में कड़ी चिकित्सा करनी चाहिये । पक जाने पर मधुर वर्ण की ओषधियों द्वारा सिद्ध किये हुए घृत से रोपण तथा नील और परबल की जड़ की समान भाग पीसकर उससे घृत मिलाकर लेप करना चाहिये । इस प्रयोग से जालगर्दभ यदि पीडा सहित भी हो तो शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

कच्छपिकाचिकित्सा—

कच्छपीं स्येदयेत्पूर्वं तत एभिः प्रलेपयेत् । कवकीकृतैर्निशाकुष्ठशिलातालकदारुभिः ॥

तां पर्णां साधयेच्छीघ्रं भिषज्म्रणचिकित्सया ॥ १ ॥

कच्छपिका चिकित्सा—कच्छपिका को पहले श्वेदन करके हल्दी, कुट, मैनशिल, हरताल और देवदारु प्रत्येक समभाग कर विधिपूर्वक कल्क बनाकर लेप करना चाहिये और पक जाये तो शीघ्र ही म्रण की चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वस्मीकचिकित्सा—

शस्त्रेणोरुहस्य वस्मीकं क्षारास्त्रिम्यां प्रसाधयेत् । विधानेनाबुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥

वस्मीकं तु भयेद्यस्य नातिष्टुद्रमममणि । तत्र सशोधनं कृत्वा शोणितं मोचयेद्विपक् ॥ २ ॥

कुलथकानां शूलैश्च शुद्ध्या लवणेन च । आरग्वधस्य मूलैश्च वृन्तिमूलस्तथैव च ॥ ३ ॥

श्यामामूलैः सपल्लैः सफमित्रैः प्रलेपयेत् । सुस्निग्धैश्च सुन्नोष्णैश्च भिषक्तमुपनाहयेत् ॥३॥

वस्मीक-चिकित्सा—वस्मीक को शूल से घाट धोकर क्षार और अग्नि से प्रसाध्य तथा अर्जुन रोग में कड़ी हुई विधि से शोधन और रोपण करना चाहिये । जिसका वस्मीक छोटा हो

और मर्मस्थान में नहीं हो उस रोगी का पहले वमन विरेचन द्वारा संशोधन कराकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये । कुलथो की जड़ से गुरुच और सैधानमक से भयवा श्यामालता की जड़ से भयवा सधू मिला हुआ तिल ककक से लेप करके सुरिनगध अर्थात् घृत या तैल से चिकना करके सुखोष्ण अर्थात् थोड़ा २ उपनाह करना चाहिये ॥ १-४ ॥

रुनशिलादितैलम्—

मन शिलाकम्बलतसूक्ष्मैलागुरुचदनैः । जातीपल्लवककैश्च निम्बतैश्च विपाचयेत् ॥ १ ॥  
यल्मीक नाशयेत्तद्वि घृच्छिद्रं बहुमणम् । पाणिपादोपरिष्ठात्तच्छिद्रैर्वहुभिरापृतम् ॥  
यल्मीक यत्सशोफ स्याद्द्वयं तद्वि विजानता ॥ २ ॥

मन शिलादि तैल—मैनशिल, हरताल, मिलावा, छोटी श्लायची, अमर, चदन और चमेली के पत्तों को समभाग लेकर विभिन्न ककक कर जितना हो उसके चौगुना भूच्छिद्र नोम का तैल और पाकार्य चौगुना जल देकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से यह तैल बल्मीक रोग को नष्ट करता है चाहे वह बल्मीक रोग बहुत छिद्रों वाला भयवा बहुत प्रणों वाला भी न हो, निम्बु जो बल्मीक रोग दाह पैरों के ऊपर हो, उसमें बहुत से छिद्र हो गये हों और शोषयुक्त हो उसकी चिकित्सा वैद्य नहीं करे क्योंकि वह असाम्य है ॥ १-२ ॥

पाषाणगर्दमचिकित्सा—

सुरदारुशिलाकुट्टं स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् । कफमास्तशोषघ्नो लेप पाषाणगर्दमे ॥ १ ॥

पाषाणगर्दम-चिकित्सा—पाषाण गर्दम रोग में पहले स्वेदन करके देवदारु, मैनशिल और कूट इनकी समान भाग लेकर विभिन्न ककक बनाकर लेप करना चाहिये । यह लेप पाषाण गर्दम रोग में कफ, वातज शोष को नष्ट करने वाला है ॥ २ ॥

पनसिकाचिकित्सा—

मिषक्पनसिकां पूर्वं स्वेदनैरपसर्पणैः । जयेद्विदारियक्लेपैः शिमूदेवदुमोद्भवैः ॥ १ ॥

पनसिका चिकित्सा—पनसिका रोग में पहले स्वेदन और अपसर्पण कराकर विदारी को चिकित्सा के समान सहिजन और दन्दाह के विभिन्न बने ककक का लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

हरिवेष्टिकाचिकित्सा—

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता । तस्यैव मिषगेवां च चिकित्सेद्विरियष्टिकाम् ॥

हरिवेष्टिका चिकित्सा—पैत्तिक विसर्प की जो चिकित्सा ( लेप सेकादि ) कही गयी है नही चिकित्सा हरिवेष्टिका की भी करनी चाहिये ॥ २ ॥

कक्षागन्धनयोधिकित्सा—

कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत चिकित्सकः । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियमा पूर्वमुक्त्या ॥

कक्षा और गन्ध चिकित्सा—कक्षा और गन्ध की चिकित्सा पूर्वोक्त पैत्तिक विसर्प चिकित्सा के समान ही करनी चाहिये ॥ २ ॥

अग्निरोहिणीचिकित्सा—

पित्तवीसपविधिना साधयेद्ग्निरोहिणीम् । रोहिण्यं लह्वं कुर्याद्रक्तमाषणरुद्धणम् ॥ १ ॥

शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु घृदां परियजेत् ॥ २ ॥

अग्नि रोहिणी चिकित्सा—पित्तज विसर्प की चिकित्सा से अग्निरोहिणी को सिद्ध (नष्ट) करके लह्वन, रक्तमोक्षण, स्रग्ण और शरीर को शुद्धि कराना चाहिये । किन्तु यदि अग्निरोहिणी अधिक बढ़ जावे तो उसे असाम्य समझ कर त्याग देव ॥ १-२ ॥

चिप्यकुनस्योधिकित्सा—

चिप्यं हृदिरमोषेण दोधनेनाप्युपाचरेत् । गतोभ्रामगम्येन तु सेचयदुष्णवारिणा ॥ १ ॥

चिप्य चिकित्सा—चिप्य रोग में रक्तमोक्षण और शोधन कराकर जब वह उष्ण रहित हो जाव तब उस उष्ण जल से सिंचन कराना चाहिये ॥ २ ॥

पारश्रेणापि यथायोस्यमुच्छिद्यं श्यापेत्ततः । प्रणोक्तं विधानेन रोपयेत्तु विचक्षणः ॥ २ ॥

अबसर आने पर शूल से भी चिप्य का छेदन कर साध कराकर जो रोग में कही हुई विधि से मग रोपक उपचार करना चाहिये ॥ २ ॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे हृत्वाऽऽयसेभयाम् । गृह्णा सज्जेन कथकेन लिम्पेऽपिचप्य पुनः पुनः ॥  
होई के पात्र में हरद की रखकर उसमें हलदी के स्वरस को टाल कर घिसने से जो कफ  
बने उसका लेप बार २ करना चाहिये ॥ १ ॥

कारमर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः । अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां भ्रुवमाद्यु प्रशाम्यति ॥ ४ ॥

गम्मार के सात कोमल पत्रों को लेकर चिप्य रोग वाली उंगली पर छपेट दे तो इससे शीघ्र  
ही चिप्य रोग निश्चय नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

श्लेष्मविद्वधिकक्षेपेन कुनरा समुपाचरेत् । नखकोटिप्रविष्टेन दङ्गणेन न शाम्यति ॥

कुनखरक्षेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥ ५ ॥

कुनख-चिकित्सा—वपञ्ज विद्रधि में कही हुई चिकित्सा के अनुसार कुनख की चिकित्सा  
करनी चाहिये । 'कुनख रोग टक्ण (सुहागा) से निश्चय छूट जाता है ।' यदि नख के घोंने में  
प्रविष्ट सुहागे से भी कुनख रोग शांत न हो तो मानो परपथ भी जल में तैरने लगेगा ? अर्थात्  
जैसा जल में परपथ का तैरना असंभव है वैसा सुहागे के प्रयोग से कुनख रोग का नहीं छूटना  
भी असंभव है ॥ ५ ॥

दाडिमकुसुमयवासैरभया सुरलक्ष्णचूर्णिता लेपात् ।

नखकोटिप्रतिभाय शाम्यति शूल च तरुणादेव ॥ ६ ॥

अनार के फूल, जवासा और हरद तीनों समान भाग का श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर लेप करने से  
नख के घोंने का सदा दुःखा अंश नष्ट हो जाता है और पीडा भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

अनुशयीचिकित्सा—दरेदनुशयीं घैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्वधे ॥ १ ॥

अनुशयी-चिकित्सा—अनुशयी रोग से वपञ्ज विद्रधि में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥

विदारिकाचिकित्सा—

विदारिकायां प्रथम जलौकायोजनं हितम् । पाटा च त्रिपकायां सप्तो घ्नविधिः स्मृतः ॥

अवेद्विदारिकां लेपैः सिन्धुदेवद्रुमोज्ज्वैः ॥ १ ॥

विदारिका-चिकित्सा—विदारिका रोग में पहले जोंक लगाकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये ।  
यदि विदारिका पक गयी हो तो उसे चिराकर घ्न के समान चिकित्सा करनी चाहिये । सहिजन  
की छाल और देवदारु दोनों को समान भाग पीस कर लेप करने से विदारिका नष्ट होती है ॥ १ ॥  
शर्करासुन्दर्य चिकित्सा—मेधोसुद्विधानेन साधयेच्छर्करासुन्दर्यम् ॥ १ ॥

शर्करासुन्दर्य-चिकित्सा—मेधोसुन्दर्य चिकित्सा के अनुसार शर्करासुन्दर्य की चिकित्सा करनी चाहिये ।

पाददार्याधिकित्सा—पाददार्यां शिरां प्राञ्चो भोषयेत्तलशोधनम् ।

स्नेहस्वेदोपपक्षौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥

मधुच्छिद्यस्वसामज्जाघृतीः क्षारविमिश्रितैः । सर्जोत्तमसिन्धुभ्रूपयारचूर्णं मधुघृतप्लुतम् ॥

निमग्न्य फटुत्तैलाकं हित पादप्रभाजने ॥ २ ॥

पाददारी-चिकित्सा—पाददारी रोग में तलशोधनी शिरा का मोक्षण और पैरों को स्नेहन  
स्वेदन करा धर गोम, बसा, मन्दा, घृत और वक्क्षार प्रत्येक समान भाग मिलाकर लेप करना  
चाहिये तथा राख सेंधानमक, मधु और घन प्रत्येक समान भाग और सरसों का तेल एक भाग  
मिलाकर बार बार लगाना चाहिये ॥ १-२ ॥

मधुसिन्धुपक्षैः घवघृतगुडमहिपाशुशालनिर्घातैः । गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥

मधु, सेंधानमक, घृत गुड़, गुग्गुलु, शाल का निर्घात (गोंद) और गैरु प्रत्येक समभाग  
की पीसकर लेप लगाने से पैर का फटना (पाददारी रोग) अवश्य नष्ट होता है ॥ १ ॥

उपोदिकासपनिग्धमोषककार्दकैर्वाहकमस्मतोयैः ।

तैल विपक्व लवणेन युक्त सत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥ ४ ॥

उपोदिकादि तैल—उपोदिका (पोई शाक), सरसो, नीम की छाल अथवा पत्ती, मोचरस  
ककड़ी और खीरा के नीम प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक जलाकर मरम को जल में धोकर  
देवे पश्चात् उस धारोदक में चतुर्धाश मूँच्छित सरसों का तेल मिलाकर तेल पाक की विधि से  
तेल सिद्ध कर उसमें सेंधानमक मिलाकर लेप करने से पाददारी रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

मदन घ तथा सिक्व सायुद्रलवण तथा । महिपीनयनीतेन सतत लेपनं हितम् ॥ १ ॥

ससाहास्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ ।

मदन फलादि लेप—मैनफल, मोम और सायुद्र लवण को समभाग लेकर पीसकर भैर के मशखन में मिलाकर निरन्तर लेप करना चाहिये । इस मदन फलादि लेप क सात दिन लगातार लगाने से पटे हुये पैर कमल के समान कोमल और सुन्दर हो जाते हैं ॥ १ ॥

सैन्धव चन्दन राळं मधु सर्पिः पुरो गुड ॥

गैरिका स्फुटितौ पादौ लिप्तौ स्तः पद्मजोपमौ ॥ २ ॥

सैन्धवादि केप—सैंधानमक, रक्त चन्दन, राळ, मधु, घृत, गुग्गुलु, गुड़ और गेरु प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से पटे हुए पैर कमल के समान हो जाते हैं ॥ २ ॥

मदनसैन्धवगुग्गुलुगैरिकाज्यमधुराळगुडांघ्रिविलेपनात् ।

स्फुटितमप्यविल चरणद्वय विकचतामरसप्रतिम भवेत् ॥ ३ ॥

मदनादि योग—मैनफल, सैंधानमक, गुग्गुलु, गेरु, शत, मधु राळ, गुड़ प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से पटे हुए पैर लिले हुए कमल के समान हो जाते हैं ॥ ३ ॥

कदरस्य चिकित्सा—दूधैकदरमुद्गस्य तैलेन दहनेन वा ॥ १ ॥

कदर—चिकित्सा—कदर को उखाड़ खुराच कर तेल से भयवा अग्नि से जलाना चाहिये ॥१॥

अलसस्य चिकित्सा—

पादौ सिक्ववाऽरनालेन लेपन एवसे हितम् । पटोलकुन्टीमिन्त्ररोचनामरिचैस्तिष्ठै ॥ १ ॥

अलस—चिकित्सा—अलस रोग में पैर को कानी से मिचन कर पटोल पत्र, जैनसिल, नीम, बंशलोचन, मरिच और तिल प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

शुद्धस्वरससिद्धेन कटुसैलेन लेपयेत् । सत कासीसकुन्टीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ २ ॥

छोटी कटरी के स्वरस में चतुर्थांश मूच्छित सरसो का तेल विधिपूर्वक सिद्ध कर लेप करके कासीस, जैनसिल और तिल प्रत्येक समान भाग का चूर्ण दिइवने से यह अलस रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

करञ्जवीजरजनी कासीस पद्मक मधु । रोचना हरिताळ या लेपोऽप्यमलसे हितः ॥ ३ ॥

करज के बीज, हल्दी, कासीस, पदुम काठ, मधु, बंशलोचन और हरिताळ प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से अलस रोग में लाभ होता है ॥ ३ ॥

इन्द्रजितस्य चिकित्सा—

इन्द्रजित्पापहो लेपो मधुना वृद्धतीरसः । गुजामूळ फल घाऽपि भयलासकरसोऽपि वा ॥ १ ॥  
लेप—सनयनीतो वा श्वेताभसुरजा मपी । हस्तिदन्तमर्पी वृथा द्यागदुग्ध रसाऽप्यम् ॥

रोमाप्येतेन जायन्ते लेपात्पागितलेप्यपि ॥ २ ॥

इन्द्रजित—चिकित्सा—बड़ी कटरी के स्वरस में मधु मिलाकर लेप करने से भयवा गुष्ठा (रत्नी) की जड़ किंवा फल को पीसकर लेप करने से भयवा मिलावे के स्वरस का लेप करने से भयवा मन्शन क साथ दूधे वगैरे के बोरे के सुर को अन्तधुग विधि से भरन कर मसी बाराए लेप करने से इन्द्रजित रोग नष्ट हो जाता है । तथा हाथी के दाँत को अन्तधुग विधि से मल कर मसी बनाकर रसवत और बकरी के दूध में मिलाकर लेप करने से हाथ के मल में भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं अथवा इस लेप में इन्द्रजित रोग नष्ट होकर छस रोग पर पैर निश्चय जम जाते हैं । इन्द्रजित रोग का यह महीषधि है ॥ १-२ ॥

विषपटोलीपत्रस्वरसैर्पृष्ठा क्षम प्राति । चिरकालजाऽपि निरुग्ना नियतं त्रिपसप्रयजैव ॥ ३ ॥

कटुव पटाळ पत्र के स्वरस को इन्द्रजित पर मर्दन करके स पुराना भी पीडा रहित इन्द्रजित रोग तीन दिन में कबहय नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

गोशुस्तिष्ठलुप्याणि तस्ये च मधुसर्पिणी । शिरा मलेपितं तेम केशैः समुपचीपते ॥ ४ ॥

गोशु, शिर के फूल मधु और घृत प्रत्येक समभाग पीसकर शिर पर लेप करने से इन्द्रजित नष्ट होकर केश जम पाते हैं ॥ ४ ॥

घातीकरशुद्धवर्णाकरवीरामिपाचितम् । तैलमभ्यक्षनाद्दन्त्यादिन्द्रजलस न सदायः ॥ ५ ॥

जात्यादि तैल—चमेली के पत्ते, बरश के पत्ते, घरणा की छाल, कनेर और चित्रकमूल प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक बल्क बनाकर बल्क के चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दत करने से इन्द्रजल रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

स्तुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो छाद्गली विपम् । अजामूत्रं सगोमूष रक्तिका सेन्द्रधारणी ॥  
सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम् । तैल भवति नियमात्स्त्रालित्यग्याधिनाशनम् ॥

स्तुही दुग्धानि तैल—घूर का दूध, मत्तार का दूध, भागरा, करिआरी विष, घत्सनात्र विष, बकरो का गूण, गाय का मूत्र, रत्तियाँ, माहरि, दवेन सरसो और वच प्रत्येक समभाग का विधि पूर्वक बल्क बनाकर बल्क के चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर नियमपूर्वक लगाने से रालिस्य ( इन्द्रजल ) रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ६-७ ॥

दारुणस्य चिकित्सा—

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलपो मधुसमुत् । प्रियाल्योजमधुफकुट्टमायै ससैचयैः ॥ १ ॥

फाञ्जिकैस्तु प्रिससाह लेपो दारुणकापहः । आग्नीवीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं सम द्वयम् ॥

दुग्धपिपप्रलेपोऽयं दारुणं हति दारुणम् ॥ २ ॥

दारुण चिकित्सा—दारुणरोग में प्रियाल के बीज ( चिरोओ ), गुलहठी, कूठ, सेंधानमक तथा काँची प्रत्येक समभाग पीसकर मधु मिलाकर शिर में लेप करने से दारुण रोग तीन सप्ताह ( २१ दिन ) में नष्ट हो-जाता है तथा आम के गुठली और हरड के बीजों का चूर्ण समान लेकर दूध के साथ पीस कर लेप करने से कठिन से कठिन दारुणरोग नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

शुद्धराजतैलम्—

शुद्धराजसेनैव लोहकट्टि फलत्रिकम् । सारिवां च पचोक्लकैस्तैल दारुणनाशनम् ॥

अकालपलित कण्डूमिन्द्रजल च नाशयेत् ॥ १ ॥

शुद्धराज तैल—मांगरे का रस ४ सेर, तिल का तेल १ सेर और लोहे की मैल, आँवला, हरड, बहेडा और सारिवा प्रत्येक समान भाग का बल्क १ पाव लेकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर इस तेल की मालिश से दारुण रोग अकाल में हुआ पलित ( असल में केरों का पकना ) कण्डू और इन्द्रजल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गुञ्जातैलम्—

गुञ्जाफलैः शृतं तैल शुद्धराजसेन च । कण्डूदारुणद्वृक्षकुट्टकपालग्याधिनाशनम् ॥ १ ॥

गुञ्जा तैल—गुञ्जा फल ( रत्तियों ) का विधिपूर्वक बना करके एक पाव, तिल का तेल एक सेर और मांगरे का स्वरस चार सेर मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से कण्डू दारुणरोग, कुष्ठ तथा शिर की सभी ब्याधिया नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

दुग्धेन स्वास्वस धोज मलेपाद्दारुण हरेत् । कण्टकारीफलरसैस्तुष्य तैल विपाचयेत् ॥

जपोपुष्पद्रवैर्वाऽथ सल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ २ ॥

स्वस्वस के बीजों को दूध के साथ पीसकर लेप करने से तथा छोटी कटेरी के फलों के स्वरस के साथ अथवा मयापुष्प ( ओदवल ) के स्वरस के साथ विधिपूर्वक तिल तेल सिद्धकर लेप करने से दारुणरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अरुणिकायाचिकित्सा—

शीलोत्पलस्य किञ्चरको धात्रीफलसमन्वितः । यथीमधुकुक्तश्च लेपाद्दन्त्यादरुणिकाम् ॥ १ ॥

अरुणिका चिकित्सा—नील कमल केसर, आँवला और जेठीमधु तीनों समान भाग पीस कर लेप करने से अरुणिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलाचतैलम्—

त्रिफलाया रजो यथी मार्कवोत्पलसारिवा । सैचयं पक्वेतस्तु तैल हन्यादरुणिकाम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि तैल—आँवला, हरड बहेडा, जेठीमधु, मांगरा, नीलकमल सारिवा लता और



संधानमक प्रत्येक समान भाग के ककक का चौगुना मूर्च्छित तिल तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल देकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से अरुपिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अरुपिकायां रुधिरैश्वसिक्के शिराम्यधेनाथ जलौकया वा ।

निम्याम्बुसिक्वे शिरसि प्रलेपो देयश्च वचोरससैधवाग्याम् ॥ २ ॥

अरुपिका रोग में शिरावेध अथवा जोंक से रक्तमोक्षण कराकर नीम के पत्तों के काथ से शिर का सिंचन और गोबर के रस में संधानमक मिलाकर लेप करना चाहिये । इससे अरुपिका रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीष कुक्कुटस्य च । मूत्रपिष्ट प्रलेपोऽय शीघ्र हन्यादरुपिकाम् ॥ ३ ॥

पुरानी पिण्याक ( तिल की खरी ) और मुर्गे की विष्टा की गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से अरुपिका शीघ्र नष्ट होती है ॥ ३ ॥

हरिद्राद्य तैलम्—

हरिद्राद्ययभूनिग्धत्रिफलारिष्टचन्दनै । पृथक्तैलमरुपीणां सिद्धमम्यज्जने हितम् ॥ १ ॥

हरिद्राद्य तैल—इल्दी, दारुइल्दी, चिरायता, आँवला, हरद, बडेडा, नीम की छाल और रक्तचन्दन प्रत्येक समभाग ककक का चौगुना तिल का तेल और तेल के चौगुना पाकार्थ जल देकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से अरुपिका रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

खदिरारिष्टजम्बूनां त्वग्निर्वा मूत्रसयुक्तैः कुटजवक् सैधवा छेपाद्यन्यादरुपिकाम् ॥ २ ॥

खैर की, नीम, और जामुन की छाल तीनों समान भाग गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा कुटज ( कोरैया ) की छाल और संधानमक पीस कर लेप करने से अरुपिका रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पलितस्य चिकित्सा—

अथोरजो मृद्गराजखिफला कृष्णमृत्तिका । स्थितमिष्टुरसे मास छेपनात्पलितं जयेत् ॥ १ ॥

पलित चिकित्सा—छोहचूर्ण, मांगरा, हरद, बडेडा, आँवला और वाली मिट्टी प्रत्येक समान भाग को पीस कर गन्ने के रस में मिलाकर एक मास तक रसा रहने दे पचाव उस रस का लेप करने से पलित रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

घात्रीफलद्वय पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् । पद्माश्रमज्जो लोहस्य कर्पकं च प्रदीयते ॥ २ ॥

पिष्ट्वा लोहमेव भाण्डे स्थापयेदुपितं निशि । छेपोऽय हन्ति त्रिचिरात्कालपलितं मदात् ॥ ३ ॥

आँवला दो नग, हरद दो नग बडेडा एक नग, आम की गुठली की गिरी ५ कर्प और लोहे का चूर्ण एक कर्प लेकर भलीभाँति पीसकर लोह के पात्र में रतकर उसमें जल डाल कर रात भर मका रहने दे प्रातः केशों पर मलने से शीघ्र ही महान् अकाल पलितरोग नष्ट हो जाता है ॥ २-३ ॥

निग्धस्य तैल प्रकृतिरयमेव नस्य विधेयं विधिना यथापद ।

मासेन गोपीरमुञ्चो नरस्य चिरात्प्रभूत पलितं निहन्ति ॥ ४ ॥

गुद नीम के तेल का नस्य लेने से तथा पथ्य में गोजुग्ध ही केवल भोजन करने से एक मास में पुराना से पुराना पलितरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

कारमयं मूलमायौ सहचरकुमुमं केतकस्यापि मूल

छोह पूर्ण समृद्ध त्रिफलजलपुतं तैलमेभिः पचेयुः ।

कृत्या लोहस्य भाण्डे चितितलनिहितं स्थापयन्मासमेकं

केशां काशप्रकाशा अपि मज्जुपनिष्ठा अस्व योगाद्भवन्ति ॥ ५ ॥

काशमर्दादि तैल—गम्मार की जड़, शुकु के आदि ( कस्तूर ) में ही निकले हुए आम की पूर ( मन्दी ) केतकी की जड़, लोह का चूर्ण और मांगरा प्रत्येक समभाग का त्रिभिपूर्वक बना ककक मित्रना हो उसके चौगुना तिल-तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ त्रिरत्ना का जल ( काच वा चरस ) मित्राकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर लोहे के पात्र में गुप्त कर का भूमि में गाद दे और एक मास के पचाव डालकर निकाल कर केशों पर लगाने से काश के पुत्र के समान ही श्वेत केतु भीरे के समान काले हो जाते हैं ॥ ५ ॥

त्रिकला नीलिकापत्रं शृङ्गराजो ह्ययोरजः । अविमूयेणं सन्निपटं लेपात्कृष्णाकरं परम् ॥ ६ ॥

हरद, बहेदा, आंवला, नील के पत्ते, मांगरा और लोहपूर्ण प्रत्येक समभाग लेकर भेद के मूत्र के साथ पीस कर लेप करने से केश काले हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यौवनपिटिका न्यच्छुमुल्लन्यङ्गनीलिकाचिकित्सायाद—

यौवनपिटिकान्यच्छुनीलिकाभ्यङ्गशर्कराः । शिरोपेषैः प्रलेपैश्च जयेद्व्यङ्गनैस्तथा ॥ १ ॥

यौवन पिटिकादि चिकित्सा—यौवन पिटिका, न्यच्छ, नीलिका, श्यङ्ग और शर्करा रोग शिरा वेध, प्रलेप और अभ्यङ्ग (तेल मदन) से नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

जातीफल घन्द्वनं च मरिचै सह पेपितम् । मुखलेपेन हन्याद्यु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥२॥

जायपर, लालचन्दन और काली मिरीच को पीस कर मुख पर लेप करने से यौवनपिटिका शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुष्यपिटिकापहः । सङ्गुद्गोरोचनायुक्त मरिच मुखलेपनात् ॥ ३ ॥

लोध्र, धनियाँ और वच तीनों समभाग पीस कर अथवा गोरोचन और मरिच दोनों समान भाग पीस कर लेप करने से यौवन पिटिका नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् । शम्भेन चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका ॥ ४ ॥

कण्टकै पाण्डुमलीवैश्च चोरपिष्टः प्रलेपयेत् । मुखे तस्यापि पिटिकाः सङ्घ्न्य यान्त्यपस्रायम् ॥

श्वेत सरसों, वच लोध्र और सैन्धवप्रत्येक समभाग पीस कर अथवा गाय के दूध के साथ अर्जुन की छाल को पीसकर अथवा मजीठ को मधु के साथ पीसकर अथवा सेमल के बर्तों को दूध के साथ पीस कर लेप करने से मुख पर की पिटिका नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

त्रिभुवनविजयापत्र मूल स्थविरस्य शिषापा चैभि ।

उद्भूतन विरचित न्यच्छुपङ्गापह सिद्धम् ॥ ६ ॥

भाग के पत्ते, विधारा की जड़ और शोशम की जड़ को पीसकर उबटन करने से न्यच्छ और व्यंग रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

चट्टाङ्गुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशना । व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ७ ॥

नटवृक्ष के अङ्कुर ( बरोह ) और मसूर को पीस कर लेप करने से तथा मजीठ को पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से व्यंग रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनव्यञ्च मञ्जिष्ठा घृणमाक्षिकैः । लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वसुरजा मयी ॥ ८ ॥

व्यङ्ग रोग में अर्जुन वृक्ष की छाल, मजीठ और अरुसा प्रत्येक समान भाग पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से अथवा श्वेत वण के पीठे के सुर को म तथूम विधि से भस्म बना मखलन मिलाकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्त शशस्य रुधिरेण वा । घर्णस्य कषायेण मुखं प्रचाक्ष्य लेपयेत् ॥ ९ ॥

वटस्य पाण्डुपत्राणि मालती रक्तचन्दनम् । कुष्ठ कालीयक लोध्रमेभिष्य प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

यौवनपिटिकानां तु व्यङ्गानां च विनाशनम् । मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिषा गोशकृतो रसः ॥

मुखकान्तिकरो लेपः पिटिकाभ्यङ्गकालसिक् । जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यङ्ग च नीलिकाम् ॥

शशक के रक्त का लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है और वरुणा के बवाभ से मुख धोकर वट के पीले पत्ते, चमेली के पत्ते, रक्त चन्दन, कूट, अगर और लोध्र को पीस कर लेप करने से यौवन पिटिका और व्यङ्ग रोग नष्ट होते हैं तथा भिन्नोरे नीबू की जड़, गोघृत मैनशिल और गोबर के रस को पीस कर मुख पर लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है और पिटिका तथा व्यङ्ग का नाश होता है और जायपर को पीसकर लेप करने से भी व्यङ्ग और नीलिका नष्ट होती है ॥

अर्कधीरहरिद्राम्पां मर्दयित्वा प्रलेपयेत् । मुखकाण्ड्यं शम याति चिरकालोद्भव ध्रुवम् ॥१३॥

मदार के दूध और हल्दी को मदन ( पीस ) कर ( अथवा दूध में हल्दी पीस कर ) लेप करने से पुराना भी मुखकाण्ड्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

मधुरै धीरसन्निपटैलिसमास्य घृतान्वितै । ससराग्राङ्गवेसस्यं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ १४ ॥

मधुर को दूध के साथ पीस कर घृत मिलाकर लेप करने से सात दिन में दो मुख कमल पत्र के समान स्वच्छ हो जाता है ॥ १४ ॥

## कुङ्कुमाप तैलम्—

कुङ्कुम चन्दन लोभ पतङ्ग रक्तचन्दनम् । मालीयकमुशीर च मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ॥ १ ॥  
पत्रक पत्रक पर्शु कुष्ठ गोरोचन निशा । छाया दारुहरिद्रा च गैरिक मागकेशरम् ॥ २ ॥  
पलाशकुसुमं चापि प्रियङ्गुश्च घटाङ्गुरा । मालती च मधुस्त्रिष्टुप्तं सर्षपा सुरभिर्वचा ॥ ३ ॥  
चतुर्गुणपय पिष्टैरेतैरपमितैः पृथक् । पचेन्मन्दाग्निना घैघरतैल प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ ४ ॥  
घटनाभ्यक्षनावेतद्व्यङ्ग नीलिकया सह । तिलक मापक न्यद्य नापायेन्मुखदूपिकाम् ॥ ५ ॥  
पद्मिनीकण्टक चापि हरेज्जतुमणि तथा । विक्षय्याद्भद्रन पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ६ ॥

कुङ्कुमादि तैल—केशर, श्वेतचन्दन, लोभ पत्रक (पतङ्ग काठ), रक्तचन्दन, अमर, एत मनीठ जेठीमधु, तेजपात, पदुमकाठ, कमल, कूट, गोरोचन, हल्दी, छाया, दारुहरि, वेरु नागकेशर, पलाश पुष्प, फूल प्रियङ्गु, बट के अङ्कुर ( बरोह ), मालती के फूल, मोम, श्वेत सरसई शिलाजीत और बच प्रत्येक एक २ कर्षं चौथीने दूध में पीसकर बत्क बनाकर उसमें दो प्रस्थ तिल का तेल और ८ प्रस्थ पाकार्थ जल देकर तेल पाक की विधि से मन्द २ अग्नि पर तेल सिद्ध कर तेल को मुख पर मर्दन करने से ब्यग, नीलिका, तिल माता, यक्ष्म, मुखदूपिका, पित्त कण्टक, जतुमणि आदि सभी रोग नष्ट होते हैं और मुख पूर्णचन्द्र-मण्डल के समान स्वच्छ रह सुन्दर हो जाता है ॥ १-६ ॥

## मञ्जिष्ठाप तैल योगतरङ्गिण्या —

मञ्जिष्ठ मधुक छाया माण्डुलुङ्ग सयष्टिकम् । कपप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुड्यं तथा ॥ १ ॥  
आर्जं पयस्तु द्विगुण शनैःसृद्धग्निना पचेत् । नीलिकापिटिकाभ्यङ्गानभ्यद्वादेव नाशयेत् ॥ २ ॥  
मुख प्रसादोपचित घटीपलितवर्जितम् । सप्तशत्रुप्रयोगेण भवेत्कनकसङ्गिभम् ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठादि तैल—मनीठ, मुलहठी लाख ( छाही ) बिजोरे नीबू की जड़ और जेठीमधु प्रत्येक एक २ कर्षं का कल्क तथा तिल वा तेल एक कुडव ( आधामानी ) और बकरी का दूध दो कुडव मिलाकर तेल पाक की विधि से मन्द २ अग्नि पर तेल सिद्ध कर मर्दन करने से नीलिका, पिडिका ( यौवन पीडिका ) और ब्यङ्ग आदि रोग नष्ट होते हैं और मुख प्रसन्न तथा उपचित रहता है अर्थात् यह तेल मुख को पिचकने नहीं देता बलीपलित रोग से बचाता है । केवल सात दिन के प्रयोग से मुख सुवर्ण के समान सुन्दर हो जाता है ॥ १-३ ॥

## पद्मिनीकण्टक चिकित्सा—

पद्मिनीकण्टके रोगे हृदयेक्षिग्रवारिणा । सेनैव सिद्धं सप्तोद्गं सर्षि पातुं प्रदापयत् ॥ १ ॥

पद्मिनी कण्टक की चिकित्सा—पद्मिनी कण्टक रोग में नीम के काष्ठ को पिटा कर बमन कराना चाहिये और नीम के बत्क से विधिपूर्वक सिद्ध किया घृत मधु मिलाकर पात करने को देना चाहिये ॥ १ ॥

निग्यारवधकषकैर्वा मुहुर्द्वर्तनं हितम् । चतुर्गुणेन निग्बोत्पपत्रकाधेन शोषुत्तम् ॥ २ ॥

पचेत्ततस्तु निग्बस्य हृत्तमालस्य पत्रज्ञे । कण्ठकर्म्य पचेत्सिद्धं सप्तियेण्डलसन्मितम् ॥

पद्मिनीकण्टकाद्रौगान्मुक्तो भवति नाग्यथा ॥ ३ ॥

नीम और अमलप्रास के पत्तों को पीस कर बत्क बनाकर बार २ उबटन करना चाहिये और नीम के पत्तों का काष्ठ चार भाग, मूच्छित गाधृत एक भाग और नीम तथा अमलप्रास के पत्तों का समान मिलित प्रस्तुत बत्क घृत से चतुर्गुण उबकर घृत पाक विधि से मन्द २ अग्नि पर घृत सिद्ध कर एक पल ( चार कर्षं ) के प्रमाण को मात्रा से पान करता चाहिये इससे पद्मिनी कण्टक रोग अवश्य नष्ट हो जाता है । यह अथर्व प्रयोग है ॥ २-३ ॥

## त्रिष्काण्डमापजतुमणीनां चिकित्सा—

धर्मकील जतुमणि मापकोस्तिलकालनाम् । वाहृत्प द्राजेण द्रोतपाराग्निभ्यामनोपतः ॥ १ ॥

पद्मिनीकण्टक—चिकित्सा—धर्मकील जतुमणि, माप और त्रिष्काण्ड आदि रोगों को शाखों से लगाकर बार घार तथा अग्नि से जला देना चाहिये ॥ १ ॥

## पद्मिनीकण्टकचिकित्सासाह—

स्वेदोपपाहौ परिवर्तिकायां कृत्वा समग्यस्य घृतेन पश्चात् ।

प्रथेगवर्षमं शनैः प्रविष्टे मापः सुविष्टैरपनाहयेत्तम् ॥ १ ॥

परिवर्तिका-चिकित्सा—परिवर्तिका रोग में पहले स्वेद देवे पश्चात् उपनाह करे फिर घृत लगाकर धीरे धीरे चर्म को भीतर प्रवेश कर उबद की पिठ्ठी को गरम कर उससे उपनाह करे ॥ १ ॥

भावप्रकाशात्—

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां क्षुस्विष्णामुपनाहयेत् । त्रिरात्रं पद्मरात्रं वा घातग्ने दाहयणादिभि ॥ १ ॥  
ततोऽभ्यज्य शनैश्चम घषायेऽपीडयेन्मणिम् । प्रयिष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहयेत् ॥

दद्याद्वातहरान्वस्तीस्निग्धा यद्यापि भोजयेत् ॥ २ ॥

परिवर्तिका रोग में घृत स्वेदन कर वातघ्न शास्त्रण आदि स्वेदों से तीन अथवा पांच रात पर्यन्त उपनाह करे पश्चात् घृत लगाकर धीरे २ मणि (लिंगमुण्ड) को दबाकर चर्म को भीतर प्रविष्ट करावे जब चम प्रविष्ट हो जाय तब चर्म और मणि को स्वेत् तथा उपनाह करे और वात नाशक क्वथि का प्रयोग करे तथा स्निग्ध अन्न भोजन करावे । इससे परिवर्तिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

अवपाटिकाचिकित्सा—स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यध्निक्रिसेदवपाटिकाम् ॥ १ ॥

अवपाटिका-चिकित्सा—वेध, स्नेहन और स्वेदन किया करके अवपाटिका की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

निरुद्धप्रकशस्य चिकित्सा—

निरुद्धप्रकशे नार्द्धं लौहोमुभयतोमुखीम् । द्वारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत् ॥ १ ॥  
परिपिच्छेद्रसां मज्जां शिशुमारवराहयोः । जुक्तैल तथा योज्यं घातद्वद्ग्यसंयुतम् ॥ २ ॥  
अ्याहास्वूलतरां सम्यक् मार्दी गर्भे प्रवेशयेत् । क्षोतो विवधयेदेव स्निग्धमन्नं च भोजयेत् ॥  
भिरवा वा सीवनीं मुखत्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ३ ॥

निरुद्धप्रकश-चिकित्सा—निरुद्धप्रकश रोग में दोनों ओर छिद्रवाली लोहे की काष्ठ की अथवा कास की बनी सलाह को घृत से लिप्त कर मूल स्थान में प्रवेश करावे और शिशुमार (नक्र) अथवा वाराह की मज्जा अथवा वसा से सिंचन करता रह अथवा वातघ्न द्रव्यों से युक्त परके चुक तैल का प्रयोग करे । इस प्रकार तीन दिन करने पर चौथे दिन उससे मोटी सलाई को हसी भौंति प्रविष्ट करावे । इस प्रकार धीरे २ मूत्रक्षीत की बदा देवे और स्निग्ध अन्न भोजन करावे अथवा सीवनी को छोड़कर शला से भेदन करे और सघोषण के समान उसकी चिकित्सा करे ॥

सन्निरुद्धगुदस्य चिकित्सा—

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको घातहरैर्हितः । तथा निरुद्धप्रकशक्रिया वा कथिता हिता ॥ १ ॥

सन्निरुद्ध गुद चिकित्सा—सन्निरुद्ध गुद रोग में वातनाशक तैलों से सिंचन और निरुद्ध प्रकशरोग की ही चिकित्सा दिनकर है ॥ १ ॥

अहिपूतनचिकित्सा—

सत्रं सशोधनेः पूर्वं धात्रीस्तम्भ्य विशोधयेत् । त्रिफलाशदिरण्यार्घ्येर्णानां घालनं हितम् ॥ १ ॥

अहिपूतन चिकित्सा—इस रोग में पहले सशोधन करने वाली औषधों के द्वारा धात्री के दूध को शुद्ध करना चाहिये । तदुपरान्त हरड़, बहेड़ा, आंवला और सैर प्रत्येक समभाग का काथ बना कर उससे ऋण को धोना चाहिये ॥ १ ॥

शङ्खसौवीरयष्ट्याङ्गैर्लप कार्याऽहिपूतने । पटोलपत्रत्रिफलारसाङ्गनविपाचितम् ॥

पीत घृतं नाशयति कृष्णमप्यहिपूतनम् ॥ २ ॥

शख, सौवीराञ्जन और जेठी मधु तीनों समान पीस कर अहिपूतन में लेप करना चाहिये और पटोल पत्र, हरड़, बहेड़ा, आंवला और रसबत्त प्रत्येक समभाग का क्वक कर उसमें चौगुना गोघृत और घृत से चौगुना जल मिलाकर विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर पाक करना चाहिये । इससे कष्टसाध्य भी अहिपूतन रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

श्वणकच्छूचिकित्सा—सर्जाम्बुकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकषिपतो योगः ।

उद्धर्तनेन निघृतं शामयति घृणणस्य कच्छूतिम् ॥ १ ॥

घृणण कच्छू चिकित्सा—राल कूट, सेंधानमक और श्वेत सरसो प्रत्येक समभाग पीस कर चटन करने से श्वण कच्छू अर्थात् अण्डकोशों के कण्डूरी अवश्य नष्ट होता है ॥ २ ॥

भियगृयणकच्छु तु चिकित्सेत्पामरोगवत् । अहिपूतननिर्दिष्टक्रिययाऽपि च तर्हि हरेत् ॥ २ ॥  
 वृषणकच्छु रोग में पामा और अहिपूतन की चिकित्सा के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥  
 कासीसरोचनातुल्यहरितालरसाङ्गनैः । अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककण्डवह्विपूतने ॥ ३ ॥  
 कासीस, गोरोचन, तुलिया, हरताल और रसवत् प्रत्येक समभाग काँची के साथ पीस कर लेप  
 करने से वृषण कण्डू ( वृषण कच्छु ) और अहिपूतन दोनों का नाश होता है ॥ ३ ॥

गुदभ्रशे—

गुदभ्रशो गुर्वं स्विन्न स्नेहेनाक्त प्रयेदायेत् । प्रविष्ट शोधयेद्यानाङ्गस्यसिद्धिचर्मणा ॥ १ ॥

गुग्गुलु च चिकित्सा—गुदभ्रश रोग में गुग्गु को स्वेदन करके घन से चुपट कर मन्दर प्रविष्ट  
 कर दे और गौ के चमड़े में छिद्र करके गुग्गु पर रखकर बांध दे ॥ १ ॥

पद्मिन्या कोमल पत्र यः खादेच्छुकरान्वितम् । प्लवङ्गिश्चियं निर्दिष्ट म तस्य शुद्धनिर्गमः ॥ २ ॥

कमलिनो के कोमल पत्रों को चूर्ण कर उसमें शुकरा मिलाकर जो मनुष्य खाता है उससे  
 गुदा निश्चय ही बाहर नहीं निकलती है ॥ २ ॥

मूषिकाणां घमाभिर्वा गुदभ्रशे प्रलेपयेत् । स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ ३ ॥

चूड़े की बत्ता को गुदभ्रश पर लेप करने से अथवा चूड़े के मांस को तपाकर गुदा पर स्ने-  
 करने से गुग्गुलु नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पान्नेरीकोलदध्यम्लनागरपारसयुक्तम् । घृतमुष्कपित्त पेय गुदभ्रशरुजापहम् ॥ ४ ॥

चाह्नेरी बेर, दही, काजी, सोंठ और बवात्वार प्रत्येक समान भाग का कण्डू बना कर उसके  
 चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से गुग्गुलु  
 की पीडा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

वृषाम्लानलचाह्नेरीविह्वपाठायाप्रजम् । तमेण क्षीलयेत्पायुर्भ्रशातोऽनलदीपनम् ॥ ५ ॥

वृषाम्ल ( कोकम ), चित्रकमूल चाह्नेरी ( अम्लोनी ), बेल, पुररुनपादी और बवात्वार प्रत्येक  
 समभाग लेकर चूर्ण कर तक के अनुपान से सेवन करने पर अग्नि दीप्त होती है और गुदभ्रश नष्ट  
 होता है ॥ ५ ॥

मूषक तैलम्—

मूषकान्दधाम्लानि गृहीत्याद्युभय समम् । तयोः क्रापेन क्वक्केन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ १ ॥

अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रशो विनश्यति । विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलमगन्दराः ॥ २ ॥

मूषक तैल—चूड़े का मांस एक भाग, दधमूल की मिलित ओषधियां एक भाग लेकर विधिबद्ध  
 क्वक्क बनाकर मितना हो उसके चौगुना त्रिल का तेल और तेल के चौगुना उड़ी क्वक्क द्रव्यों का  
 काथ लेकर सबको मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से गुदभ्रश और  
 गुदशूल और मगन्दर रोग भी गूढ होता है ॥ १-२ ॥

गुर्वं च शम्पयसा घेदायेद्विदाङ्गितः । दुष्प्रयशो गुदभ्रशो विंशत्याद्यु न सशयः ॥

गुग्गु को नाड़ी जो बाहर निकल गयी हो उसको गाय के दूध से भर कर पिन्डक होकर  
 प्रविष्ट करा दे इस योग से कठिन भी गुदभ्रश शोष ही मन्दर प्रविष्ट हो जाता है । इस रोग में  
 विशेष कर रसवत् का पात और लप हितकर होता है ॥ ३ ॥

शूरद्रव्यस्य चिकित्सा—

शूरद्रव्यमूलस्य रज्ज्या सहितस्य च । चूर्णं तु सहसा खेपाहारोद्विजनाशनम् ॥ १ ॥

शूरद्रव्य मूल चिकित्सा—मांशे की अद्, हल्दी दानों के समभाग का चूर्णकर लेप लगाने से  
 शूर्वा ( हठाव ) शूरद्रव्य रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

शजीवमूलकण्डूः पीतो गन्धेन सपिपा प्राथ । शानपति शूरकण्डूः संशुद्धमृत उवर घारम् ॥

कान्त की अद् का दूध बनाकर गौ घृत के अनुपान से प्राथ बाहर पान करने से शूरद्रव्य  
 रोग तथा इससे उत्पन्न अद्दूर स्वर भी शमन होता है ॥ २ ॥

रज्जो मार्कवं मूले पिष्ट्वा पीतेन घारिणा । सफ्लेपाद्गन्धि पीतेर्षं पाराह्वनानाद्यम् ॥ ३ ॥

हल्दी और मांशे की अद् को समान छेद शीतल जल के साथ पीस कर लेप करने से  
 पीसपे रोग और शूरद्रव्य रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्यम्—

दृद्रोगेषु सर्वेषु मानारोगानुकारिषु । दोषान्दृष्यान्वस्थां च निरीक्ष्य मतिमान्मिषक् ॥१॥  
सस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सवश । यथादोष यथादृष्यं यथावस्थ प्रकथययेत् ॥२॥

पथ्यापथ्य—सभी प्रकार के दृद्र रोगों में जो प्रायः अनेक रोगों के पीछे हो जाण करते हैं उनमें बुद्धिमान् यैष दोष, दृष्य, रोग तथा रोगी की अवस्था देखकर रोगों के अनुसार पथ्यापथ्य का विचार करे ॥ १-२ ॥

इति क्षुद्ररोगप्रकरण समाप्तम्

### अथ मुखरोगाणां निदानान्याह ।

सत्र मुखस्य स्वरूपमाह—

ओष्ठी च दन्तमूलानि दन्ता जिह्वा च तालु च । गलो गलादि सकृत् सप्तान् मुखमुच्यते ॥

मुख का स्वरूप—दोनों ओठ, दाँतों के मूल ( मसूड़े जबड़े ) दाँत, जीभ, तालु और गला ये सातों अंग मिलकर मुख कहे जाते हैं ॥ १ ॥

आनूपपिणिसर्षीरदधिमापादिसेवनात् । मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषा फफोत्तरा ॥२॥

मुख रोग को सम्प्राप्ति—आनूप देश के जीवों का मांस, दूध, दही तथा उदद आदि के अधिक सेवन करने से कफादि दोष कुपित होकर मुख में वेग उत्पन्न कर देते हैं ॥ २ ॥

मुखरोगाणां संख्यामाह—

स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूलेषु दश पट् तथा । दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ ३ ॥

कण्ठे त्र्यष्टादश प्रोक्तास्त्रय सर्वसराः स्मृताः । एव मुञ्जामयाः सर्वे सप्तपटिमता धुघै ॥ ४ ॥

मुख रोग की संख्या—ओठों में आठ दन्तमूल में सोल्ह, दाँतों में आठ, जिह्वा में पाँच, तालु में नौ, कण्ठ में अठारह और सम्पूर्ण मुख में विचरने वाले तीन, इस प्रकार मुख के सब रोग मिलकर ६७ होते हैं ॥ ३-४ ॥

तनीष्ठरोगास्तेषां निदानपूर्विकां संख्यां चाऽऽह—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसजस्तथा । मेदोजञ्जाभिचात्तोरथ पृथमष्टौष्ठजा गदा ॥ १ ॥

ओष्ठ रोग—ओष्ठ पर होने वाले रोग आठ प्रकार के होते हैं मातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मांसज, मेदोज और अभिषातज ॥ १ ॥

सत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

कफंशौ पशुपौ स्तब्धौ कृष्णौ तीम्रद्रजान्वितौ । दाहयेते परिपाद्येते ह्योष्ठी मास्तकोपतः ॥

वातिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ कर्कश ( शाक पत्र के समान खर रेश ), पश्य ( कठिन ), स्तब्ध ( निश्चल ) काला, तीम्र पीडा युक्त और फट जावे, चिर जावे उसे वायु के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ २ ॥

पैत्तिकमाह—

धीयेते पिटिकाभिस्तु स्रग्जाम्भिः समन्ततः । सदाहपाकपिटिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥३॥

पैत्तिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ पीड़िकाओं से युक्त हो जावे और उसमें पीडा तथा दाह हो, पाक हो और पिड़िकाओं का वर्ण पीत हो उसे पित्त के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

श्लेष्मिकमाह—

सयर्णाभिस्तु धीयेते पिटिकाभिरवेदनौ । कण्ठमन्तौ कफाच्छ्वेतौ शीतलौ पिच्छिलौ गुरु ॥

कफज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ पर ओठ के वर्ण के समान वर्ण की पिड़िकायें उत्पन्न हो जावें और उनमें वेदना कम हो, कण्ठ हो पिड़िकाओं का वर्ण श्वेत हो, शीतलता हो, पिच्छिलता हो और गुरुता हो उसे कफ के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ४ ॥

सान्निपातिकमाह—

सहृक्कृष्णौ स्रग्शीतौ स्रग्च्छ्वेतौ तथैव च । सनिपातेन विज्ञेयावनेकपिटिकाधितौ ॥ ५ ॥

सांनिपातिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में कमी कृष्ण, कमी पीत और कमी श्वेत रंग की ओष्ठ हो जायें और अनेक प्रकार की पिठिकाओं से युक्त तथा अनेक रंग की पिठिकायें हो जायें उसे सन्निपात के कोष का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥ ।

रक्तजमाह—

सर्जूरफलवर्णाभिः पिठिकाभिर्निपीडितौ । रक्तोपसृष्टौ रुधिर स्रवतः क्षोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

रक्तज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठों पर खरूर फल के समान रंग की पिठिकायें हो और उससे पीडित होने से ओठ का रंग रक्त के समान हो जावे तथा उससे रक्त का स्राव हो, उसे रक्त के कोष का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ६ ॥

मांसजमाह—

मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिण्डव्यदुद्धतौ । जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयता मुखात् ॥ ७ ॥

मांसज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ गुरु, स्थूल, मांस के पिण्ड के समान उमरे हुए हों और मुख के छिद्र के दोनों ओर (सूक्ष्णो प्रवेश में) कृमि उत्पन्न हो जायें उसे मांस के कोष का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ७ ॥

मेणोजमाह—

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू । स्वच्छ स्फटिकसकाञ्जमाध्याय स्रवतो मृदाम् ॥ ८ ॥

मेणोज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठ का रंग घृत के मण्ड के समान हो, कण्डु युक्त हो, मृदु हो और उससे स्वच्छ स्फटिक के समान कृषिक स्राव होता हो उसे मेद के कोष से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अभिघातमाह—

सतज्याभौ विदीर्यते पीडयेते चाभिघाततः । अथितौ च समाख्यातावोष्टौ कण्डूसमन्वितौ ॥ ९ ॥

अभिघातज ओष्ठरोग—आघात आदि से ओठ सब सत होने के आकार के अर्थात् रक्तवर्ण के हो जाते हैं, फट जाते हैं, पीडित हो जाते हैं, ग्रथियुक्त हो जाते हैं और उसमें कण्डु होने लगते हैं तब उसे अभिघातज ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ९ ॥

उक्त भोजेन—

शतावनिहतौ चापि रक्तावोष्टौ सवेदनौ । भरतः सपरिध्यावौ रक्तपित्तमूषितौ ॥ १० ॥

एक अथवा आघात होने से ओष्ठ रक्तवर्ण के हो जाते हैं तथा पीया और रात्र होता है, इसमें रक्त और पित्त दूषित होते हैं । भोज के मत्त में अभिघातज ओष्ठरोग के ये लक्षण हैं ॥ १० ॥

अथ दन्तवेष्टरोगाः ।

तत्र दन्तवेष्टरोगानां नामानि सस्यां चाऽऽह—

दास्तादो गद्वितः पूषं दन्तपुण्ड्रकस्ततः । दन्तवेष्टः सौपिरश्च महासौपिर पृथ च ॥ १ ॥

तत्रः परिकरः प्रोक्तस्ततस्तूपकुशाः स्मृतः । वैदभश्च तत्रः प्रोक्तः स्रष्टिबर्धन पृथ च ॥ २ ॥

अधिमांसकनामा च दन्तनाल्यश्च पथ च । दन्तविद्रधिरेष्यन्न दन्तवेष्टेषु योद्धन ॥ ३ ॥

दन्तवेष्ट रोगों के नाम—दास्ता, दन्तपुण्ड्र, दन्तवेष्ट, सौपिर, महासौपिर, परिकर, वनकुश, वैदर्भ, स्रष्टिबर्धन अधिमांसक पाच दाँत की नाडियों और दन्तविद्रधि इन नामों से दन्तवेष्टरोग (दाँत के मध्यदाँतों के रोग) ११ प्रकार के होते हैं इनमें पाँच ही अत्यन्तनाश हो होती हैं ॥ १-३ ॥

तत्र शीतारश्च मधुगमाह—

क्षोणितं दन्तवेष्टेषु पत्राकस्मात्प्रवर्तते । द्रुमाधीनि सृष्ट्यानि प्रयच्छेदीनि मृदूनि च ॥ ४ ॥

दन्तमांसाणि क्षीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् । दास्तादो नाम स प्याथिः कफजः शिथिलसंभवा ॥

शीतार के लक्षण—जिस रोग में मध्यदाँत से अरुणमाय रक्त निश्चयेने छगे मगद दुर्गंध दूक, कृष्ण वर्ण क, श्लेष्म (पीला) और कोमल हो जायें तथा दाँत की जड़ के मांस सद् गारें दर्द परस्पर एक जायें उस रोग की कफ और रक्त के कोष से उत्पन्न होने वाला शीतारोग जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

दन्तपुण्ड्रमाह—

दन्तपोषिषु धा पत्र श्वयधुजांयते मदान् । दन्तपुण्ड्रको नाम स प्याथिः कफरक्तजः ॥ ६ ॥

दन्तपुण्ड के लक्षण—जिस रोग में दो-तीन दाँतों के मूल में शोध उत्पन्न हो जावे उस रोग को कफ और रक्त के दोष से उत्पन्न दन्तपुण्ड रोग जानना चाहिये । इसमें पीटा और छालास्रावादि नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

दन्तवेष्टमाह—

स्त्रवन्ति पूय दधिर घला दन्ता भयति च । दन्तवेष्टे स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभव ॥ ७ ॥

दन्तवेष्ट के लक्षण—जिस रोग में दन्तमूल से पूय और रक्त निकलते हैं दाँत दिक्कते हैं उसे दूषित रक्त के दोष से उत्पन्न दन्तवेष्ट रोग जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सौषिरमाह—

शयधुर्वन्तमूलेषु रुजावान्कफघातजः । छालास्रायी सकण्डूश्च स ज्ञेयः सौषिरो गद् ॥ ८ ॥

सौषिर के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल में शोथ, पीटा, छालास्राव और कण्डू हो उसे कफ और वात के दोष से उत्पन्न सौषिर रोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

गणासौषिरमाह

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तासु चाप्यपदीर्यते । यस्मिन्स सर्वज्ञो व्याधिर्महासौषिरसज्ञक ॥ ९ ॥

सप्तरात्रान्मारकणायम् , यत आह भोज—

सदाहो दन्तमूलेषु शोथः पित्तकफानिलात् । महासौषिर इत्येव सप्तरात्राग्निहन्यसून् ॥ १० ॥

महासौषिर के लक्षण—जिस रोग में दाँत हिलने लगे और तासु फट जावे उसे त्रिदोषों से उत्पन्न महासौषिर रोग जानना चाहिये । यह महासौषिर रोग सात दिन में मार देने वाला है । जैसा कि भोज ने कहा है कि दाँतों के मूल में पित्त और वात-कफ के दोष से उत्पन्न होने वाला दाह सहित जो शोथ होता है वह महासौषिर कहा जाता है और यह सात रात्रि में प्राणों को नष्ट कर देता है ॥ १०-१० ॥

परिदरमाह—

दन्तमांसानि क्षीर्यन्ते यस्मिन्स्त्रवति चाप्यसृक् । पित्तासृक्कफजो व्याधिर्शयः परिदरो हि स ॥

परिदर के लक्षण—जिस रोग में दाँत की जड़ के मांस पट जावे और उससे रक्त निकले उसे पित्त-रक्त तथा कफ के दोष से उत्पन्न परिदर रोग कहते हैं ॥ ११ ॥

उपकुशमाह—

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च । अस्यर्दिताः प्रस्त्रवन्ति शोणित मन्वेदनम् ॥

आभ्यायन्ते स्त्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते । यस्मिन्नुपकुश स स्यात्पित्तरक्तसमज्ञव ॥ १२ ॥

उपकुश के लक्षण—जिस रोग में मछलों में दाह और पाक हो तथा इसी दाह-पाक के कारण दाँत हिलने लगे, तथा दाँतों में अस्यन्त पीटा हो एवं थोड़ी २ पीड़ा के साथ रक्त निकले और मसूदे फूल जायें तथा मुख स दुर्गन्ध भाने, लगे वह पित्त और रक्त के दोष से उत्पन्न होने वाला उपकुश नामक रोग कहा जाता है ॥ १२-१२ ॥

वैदर्भमाह—

घृष्टेषु दन्तमूलेषु सरग्भो जायते महान् । चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघातज ॥

वैदर्भ के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल दन्तधावन आदि से क्षिप्त जाने के कारण महान् शोथ, पीड़ा अथवा पाक युक्त हो जावे और दाँत हिलने लगे वह वैदर्भ नामक अभिघातज रोग कहलाता है ॥ १४ ॥

खलिवर्धनमाह—

मारुतेनाधिको दन्तो जायते सौषिरोऽयम् । खलिवर्धनसज्ञोऽसौ सजाते रुग्प्रदायति ॥ १५ ॥

खलिवर्धन के लक्षण—कमी २ किसी मनुष्य को वायु के दोष से जिनने दाँत होने चाहिये उससे अधिक एक दाँत उत्पन्न होने लगता है उसमें बड़ी पीटा होती है और जब वह दाँत निकल जाता है तब पीड़ा शांत हो जाती है उसको खलिवर्धन नामक रोग कहते हैं ॥ १५ ॥

अभिमांसमाह—

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महान् शोथो महारुज । छालास्रायी कफकृतो विज्ञेयः सोऽभिमांसक ॥

अभिमांसक के लक्षण—जिस रोग में हनु के कोने में अंतिम जो दाँत है उसमें महान् शोथ



हो जाता है, उससे पीड़ा और लालसाव होता है उसे कफ के कोप से उत्पन्न अभिमांसक रोग जानना चाहिये ॥ १६ ॥

पञ्च दन्तनाडीराह—दन्तमूलगतता नाडयः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ १७ ॥

पञ्चदन्त नाड़ी के लक्षण—दौंतों के मूल में पांच प्रकार की नाड़ियाँ होती हैं उहे प्रथम वर हुय नाडी ग्रण के अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुज जानना चाहिये। इसमें सन्निपातज दन्तनाड़ी असाध्य है ॥ १७ ॥

—विद्विधमाह—

दन्तमांसमलैः सार्जैर्वाहृत रवयधुर्महान् । सदाहृत्पक्षयेद्भिद्य पूयाञ्च दन्तविद्वधि ॥ १८ ॥

दन्तविद्वधिके लक्षण—जिस रोग में दौंतों के मूल के मल आदि अथवा वातादि दोषों के सार रक्त कुपित होकर बाहर की ओर महान् शोष उत्पन्न कर देता है जिसमें दाह तथा पीड़ा होती है और उसके फूटने पर पृथ तथा रक्त बहते हैं उसे दन्त विद्वधि कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ दन्तरोगाः ।

तत्र दन्तरोगाणां नामानि सख्यां चाऽऽह—

वालनः कथित पूर्व कृमिदन्तक पृथ च । प्रोक्तो भङ्गनको दन्तहर्षा ये दन्तशर्करा ॥ १ ॥

कपालिकाऽग्र कथिता श्यावदन्तक पृथ च । करालसञ्ज्ञा हृत्पष्टी दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

दौंत के रोगों के नाम—वालन कृमिदन्त, भङ्गनक, दन्तहर्ष, दन्तशर्करा, कपालिका, श्याव दन्तक और कराल ये आठ प्रकार के दन्तरोग होत हैं ॥ १-२ ॥

तत्र वालनस्य लक्षणमाह—

धीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते । वालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ३ ॥

वालन के लक्षण—जिस रोग में दौंतों में फटने के समान पीड़ा हो वह वायु के कोप से उत्पन्न वालन नाम का रोग है ॥ ३ ॥

कृमिदन्तमाह—

कृष्णच्छिद्रश्छलः स्यावी ससंरम्भो महारुजः । अनिमित्तस्यो यातास ज्ञेयाः कृमिदन्तकः ॥ ४ ॥

कृमिदन्तक के लक्षण—जिस दन्त रोग में दौंतों में कृष्ण वर्ण के छिद्र हो, दौंत हिलने लगें, स्याव, शोष और अत्यन्त पीड़ा हो उसे वायु के कोप से उत्पन्न कृमिदन्तक रोग जानना चाहिये ॥

भङ्गनकमाह—

यत्र यत्र भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते । कफवातकृतो व्याधिः स भङ्गनक उच्यते ॥ ५ ॥

भङ्गनक के लक्षण—जिस दन्त रोग में मुस टड़ा हो जावे और दौंत टूट जायें उसे कफ-वात के कोप से उत्पन्न भङ्गनक रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥

दन्तहर्षमाह—

शीतलरूपप्रयाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजा । यत्र स्युर्धातुविस्तार्या दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ६ ॥

दन्तहर्ष के लक्षण—जिस दन्तरोग में शीत, रुक्ष, वायु और अम्लरस का स्पर्श दौंतों में नहीं सहा जाय उस वात और पित्त के कोप से उत्पन्न होने वाला दन्तहर्ष रोग जानना चाहिये ॥ ६ ॥

दन्तशर्करामाह—

मलो दन्तगतो यस्तु कफक्षानिलशोपित । शर्करैव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ७ ॥

दन्तशर्करा के लक्षण—जिस दन्तरोग में दौंतों का मैत्र कफ और वायु से शीघ्र होकर शर्करा (बाह्य) की भाँति खर स्पर्श हो जाता है उसे दन्तशर्करा रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

कपालिकामाह—

कपालेष्विव दीर्यसु दन्तेषु समलेषु च । कपालिकेति विज्ञेया दन्तविद्वदन्तशर्करा ॥ ८ ॥

कपालिका के लक्षण—जिस दन्त रोग में दन्तशर्करा होने के पश्चात् दौंत कपाल (ठीरै) की भाँति निर्गम हो जायें उसे कपालिका रोग कहते हैं। यह रोग दौंतों को नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

श्यावदन्तमाह—

शोऽसृष्टिभ्रंशेन विज्ञेय दग्धो दन्तस्त्वभायत । श्यावतामीलता चाऽपि शनः स श्यावदन्तकः ॥ ९ ॥

श्यावदन्तक के लक्षण—जिस दन्तरोग में रक्त पित्त कुपित होने से दौंत सम्पूर्ण दग्ध होकर श्याव अथवा मोडवर्ण के हो जाते हैं उसे श्यावदन्तक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

करालमाह—

शनिः शनैः प्रकुपितो यत्र घन्ताभितोऽनिल । करालान्यिकटादन्तासकरालो न सिष्यति ॥  
कराल के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के आश्रय में रहने वाला वायु धीरे २ कुपित होकर दाँतों को कराल ( विषम ) और भयङ्कर ( ऊँचा, नीचा, टेढ़ा मेढ़ा बिकृष्ट ) कर देता है उसे कराल कहते हैं । यह असाध्य है ॥ १० ॥

हनुमोक्षमाह—

घातेन सैस्तेर्भावैस्तु हनुसधिषिसहितः । हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्यापिरदितलक्षण ॥ ११ ॥  
हनुमोक्ष के लक्षण—जिस रोग में वात कुपित होकर हनु की सधि को ढीली कर देता है इसे हनुमोक्ष जानना चाहिये । यह रोग अदित रोग के लक्षणों वाला होता है । इसकी चिकित्सा अदित के समान करनी चाहिये ॥ ११ ॥

तत्रान्तरे—

भारामिघाताज्जन्तोश्च हनुसधिर्विमुष्यते । निरस्तजिह्वः कृच्छ्रेण भाषितु तत्र शक्नोति ॥  
सकृच्छ्रमनिलय्याधि हनुमोक्ष विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

तत्रान्तरे से हनुमोक्ष के लक्षण—अत्यन्त भार आदि के दाने से अथवा आघातादि से मनुष्य की हनुसन्धि ढीली होकर छूट जाती है जिससे उसकी जिह्वा असमर्थ हो जाती है और वह फट से बोलता है यह अत्यन्त वात व्याधि हनुमोक्ष कही जाती है ॥ १२ ॥

अथ जिह्वारोगाः ।

तत्र जिह्वारोगाणां निदानं नामानि सख्यां चाऽऽह—

घातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससञ्जक । उपजिह्विका च गदा जिह्वार्यां पद्म कीर्तिताः ॥१॥  
जिह्वा रोगों के नाम—वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका ये पाँच जिह्वा के रोग कहे गये हैं ॥ १ ॥

घातजमाह—जिह्वाऽनिलेन स्फुटिका प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छुदनप्रकाशा ॥

घातज जिह्वा रोग—इस रोग में वायु के कोप से जिह्वा पट्टी, रसादि शान शून्य और शाक के पत्तों की तरह रूख रहती है ॥

पित्तजमाह—पित्तासदाहैरनुधीयते च दीर्घे सरवतैरपि कण्ठकेश्च ॥ २ ॥

पित्तज जिह्वा रोग—इस रोग में पित्त के कोप से जिह्वा दाढ़-युक्त और बड़े २ रक्तवर्ण के कण्ठकों से युक्त रहती है ॥ २ ॥

कफजमाह—कफेन गुर्वी घृष्टाऽविता च मासोच्छ्रयैः शाखमलिकण्ठकामैः ॥ ३ ॥

कफज जिह्वा रोग—इस रोग में कफ के कोप से जिह्वा गुरु स्थूल और सेमल के काँटों के समान माँसाङ्कुरों से व्याप्त रहती है ॥ ३ ॥

अलासमाह—जिह्वातले य श्वयथुः प्रगाढा सोऽलाससञ्ज कफरक्तमूर्ति ।

जिह्वां स मु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ४ ॥

अलास जिह्वा रोग—जिस जिह्वा रोग में जिह्वा के नीचे कफ और रक्त के कोप से कठिन शोथ उत्पन्न हो उसे अलास नामक जिह्वा रोग कहते हैं । इसमें जिह्वा स्तम्भित ( कार्य में असमर्थ ) हो जाती है और शोथ बढ़ जाने पर जिह्वा के मूल भाग में अत्यन्त पाक हो जाता है ॥ ४ ॥

उपजिह्विकामाह—जिह्वाप्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्मय जात कफरक्तयोनि ।

प्रसेककण्ठपरिदाहयुक्त प्रकष्यते सा उपजिह्विकेति ॥ ५ ॥

उपजिह्वा रोग—इस रोग में जिह्वा के नीचे जिह्वा के अग्रभाग के आकार का शोथ हो जाता है जिससे जिह्वा उठी हुई रहती है और उसमें लालासाय कण्ठ और दाढ़ होता है । यह कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न होता है । इसको वैद्य लोग उपजिह्वा रोग कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ तालुरोगाः ।

तालुरोगाणां नामानि संख्या चाऽऽह—

गलशूण्डीतुण्डिकेर्यध्रुवाः कर्णपृथ्व च । तालवबुद्धश्च कथितो मांससंघात पृथक् ॥ १ ॥

तालुपुण्डनामा च तालुनापस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ २ ॥

तालु रोगों के नाम—गलगुण्ठी गुण्टिकेरी, अभ्रव, कच्छप, तात्वबुद्, मांससंघात, तालुपुण्ड, तालुशोष और तालुपाक ये नौ प्रकार के तालु रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र गलगुण्ठीलक्षणमाह—

श्लेष्माभृग्म्यां तालुमूलाध्मपृद्धो दीघः शोफो भ्मातयस्तिप्रकाशाः ।

मृणाकासश्वासकृत्त वदन्ति ध्याधि वैद्याः कण्ठशुण्ठीति गग्ना ॥ ३ ॥

गलगुण्ठी के लक्षण—जिन रोग में कफ और रक्त के कोष से उत्पन्न तालु के मूल से उठकर बढ़ो हुई लम्बी शोष जो वायु से पूर्ण चमड़े की कुप्पी के समान हो और उसमें दुग्ना, कास और श्वास हो उसे कण्ठशुण्ठी अथवा गलगुण्ठी रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

गुण्ठीकेरीमाह— शोष शूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां गुण्टिकेरी मता तु ॥

गुण्ठीकेरी के लक्षण—जिस रोग में पूर कथिन कफ और रक्त के कोष से गुण्टिकेरी (बन कपास के फल) के समान तालु मूल से उत्पन्न शूल युक्त, घट्ट मुमाने के समान पीड़ा, दाह और पाक करने वाला शोष उत्पन्न होता है उसे गुण्टिकेरी कहते हैं ॥

अभ्रवलक्षणमाह—शोषः स्तब्धो लोहितः शोणितोरथो ज्ञेयोऽभ्रवः सज्वरस्तीग्ररुच ॥ ४ ॥

अभ्रव के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में रक्त के कोष से उत्पन्न और लोहित वर्ण का शोष हो जाने और उसमें उजर तथा तीव्र पीड़ा हो, उसे अभ्रव तालु रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

कच्छपमाह—कूर्मोत्सघ्नोऽवेदनोऽशीघ्रजग्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा च ॥

कच्छप के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में कफ के कोष से कच्छप के आकार का उठा हुआ पीड़ा रहित एवं चिरकाल में उत्पन्न होने वाला शोष हो उसे कच्छप तालु रोग कहते हैं ॥

तात्वबुद्माह—पश्चाकार तालुमध्ये तु शोथं विघादक्कादयुंक् प्रोक्तलिङ्गम् ॥ ५ ॥

तात्वबुद् के लक्षण—जिस रोग में तालु क मध्य में कफ के आकार का रक्त कोष से शोष हो उसे पूर्ण बधित अर्बुद रोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाला तात्वबुद् रोग जानना चाहिये ॥

मांससंघातमाह—दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरजं च तात्वन्तःस्थं मांससंघातमाहुः ॥

मांस संघात के लक्षण—जिस रोग में कफ के कोष से तालु के मध्य में दूषित मांस शोष की मौति हो जाता है और उसमें पीड़ा नहीं होती है तब मांस संघात रोग कहते हैं ॥

तालुपुण्डमाह—नीरुत्पापी कौलमात्रः कफात्तमान्मेदोयुक्तापुण्डस्तालुवदो ॥ ६ ॥

तालु पुण्ड के लक्षण—जिस रोग में कफ, शोष, पीड़ा रहित, रिपर, वेर के फल के प्रमाण का शोष हो जाय तालुशोषमाह—शोपोऽययं दीयसे श्वासे ॥

तालु शोष के लक्षण—जिन रोग में तालु, उसमें श्वास भी तालुपाकमाह—

तालु पाक, तालु पाक रोग में विस्तार दे उसे ॥ ७ ॥

शोधिणी पञ्चधा ततो भृम्भं

गलरोगों के न बुन्दक, बुन्द शम्बनी, कण्ठ देश में अठारह

गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरैर्निहन्यसूत्रं व्याधिरय तु रोहिणी ॥ ३ ॥

रोहिणी को सम्प्राप्ति—गले में वात, पित्त, कफ कुपित होकर मांस और रक्त को दूषित करके गले को रोकने वाले मांसाङ्कुरों को उत्पन्न कर गले को रोक देते हैं जिससे प्राणों का नाश हो जाता है इस व्याधि को रोहिणी कहते हैं ॥ ३ ॥

तत्र वातजलक्षणमाह—

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधना स्युः ।

सा रोहिणी घातकृता प्रदिष्टा घातारमकोपद्रव्यावयुष्टा ॥ ४ ॥

वातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर अत्यन्त पीटासुक्त कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले मांस के अदूर उत्पन्न हो जाते हैं और वात के कोप के सभी उपद्रव अतिवेग से उत्पन्न हो आते हैं उसे वातज रोहिणी कहते हैं ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—श्लिषोद्भूता विप्रविदाहपाका सीमन्तवरा पित्तनिमित्तजाता ॥

पित्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर शीघ्र उत्पन्न होने वाले, शीघ्र दाह करने वाले, शीघ्र पाक होने वाले और शीघ्र उबर करने वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो आते हैं तथा कण्ठ को अवरुद्ध कर देते हैं उसे पित्तज रोहिणी कहते हैं ॥

श्लेष्मजमाह—स्रोतोनिरोधि-यपि मन्दपाका गुरु स्थिरा सा कफसमया तु ॥ ५ ॥

कफज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर कण्ठ के स्तनों को रोकने वाले, मन्दपाक वाले गुरु और स्थिर (अचल) मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे कफज रोहिणी कहते हैं ॥ संनिपातनामाह—गम्भीरवाकिन्मनिघार्यवीर्यां त्रिदोषलिङ्गा त्रिभया भवेत्सा ॥

संनिपातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर मांस के अदूर कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले गम्भीर (अदूर तक) पकने वाले, बिन्दसा से शमन नहीं होने वाले और स्तनों दोषों के लक्षणों से युक्त उत्पन्न हो जाते हैं उसे त्रिदोषज रोहिणी कहते हैं ॥

रक्तजमाह—स्फोटैक्षिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रघिरारिमिका तु ॥ ६ ॥

रक्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के चारों ओर कण्ठको अवरुद्ध करने वाले छोटे २ फफोलों से युक्त और पित्तज रोहिणी के लक्षणों के समान लक्षण वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे रक्तज रोहिणी कहते हैं ॥ ६ ॥

सद्यद्विदोषजा हन्ति म्यहात्कफसमुद्भवा । पद्माहारपित्तसम्भूता ससाह्यारपथनोत्थिता ॥ ७ ॥

असाध्य रोहिणी की मर्यादा—त्रिदोषज रोहिणी रोगी को शीघ्र मार डालती है और कफज रोहिणी तीन दिन में पित्तज रोहिणी पाच दिन में तथा वातज रोहिणी सात दिन में रोगी को मार डालती है ॥ ७ ॥

कण्ठशालुकमाह—कोलास्थिमात्रं कफपमवो यो ग्रन्थिर्गले कण्ठकशूलसूत्र ।

खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्त कण्ठशालुकमिति मुचन्ति ॥ ८ ॥

कण्ठशालुक के लक्षण—जिस रोग में गले में घेर वी गुठली के प्रमाण की (शीघ्र) गांठ उत्पन्न हो जाती है और कण्ठक या जल शूल कीट के समान गले का अवरोध कर लेती है वह गांठ कठिन, स्थिर और शस्त्र कम में (चौर फार करने में) साध्य होती है उसे कफज कण्ठ शालुक रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

अभिजिह्वाह—जिह्वाग्ररूपः खयथुः कफात्तु जह्मोपरिष्ठादसृजैव मिभ्रात् ।

ज्ञेयोऽभिजिह्वं खलु रोगं पृष विवर्जयेदानासपाकमेनम् ॥ ९ ॥

अभिजिह्वा के लक्षण—जिस रोग में जिह्वा पर जिह्वा के अप्रमाण के समान कफ के कोप से और रक्त के कोप से शोथ हो जाता है उसे अभिजिह्व जानना चाहिये । इस रोग में जब पाक हो आवे तब इसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य हो जाता है) ॥ ९ ॥

बलयमाह—घलास पृषाऽऽयतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।

त सर्वथैवाप्रतिवायवीर्यं विवर्जनीयं यलयं घदन्ति ॥ १० ॥

बलय के लक्षण—जिस गल रोग में कफ कुपित होकर भ्रत बहान करने वाली नादी के मार्ग का अवरोध कर विरहृत और उन्नत शोथ उत्पन्न कर देता है वह रोगी के सङ्गे के सामर्थ्य से

तालुपुष्पुटनामा च तालुनापस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अस्मी नव ॥ २ ॥  
तालु रोगों के नाम—गल्गुण्ठी तुण्डिकेरी, अभ्रव, कच्छप, तास्वदु, मांससंपात एतु  
पुष्पुट, तालुशोष और तालुपाक ये नौ प्रकार के तालु रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र गल्गुण्ठीलक्षणमाह—

श्लेष्माभृग्म्यां तालुमूलाध्रुद्धो दीघा शोफो ध्मातयस्तिप्रकाशाः ।

तृष्णाकासश्वासकृत्सं यदति व्याधिं वैद्या कण्ठशुण्ठीति नाम्ना ॥ ३ ॥

गल्गुण्ठी के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोष से उत्पन्न तालु के मूल से उदर  
बढी हुई लम्बी शोथ जो वायु से पूर्ण चमड़े की कुप्पी के समान हो और उसमें तृष्णा, श्वास और  
श्वास हो उसे कण्ठशुण्ठी अथवा गल्गुण्ठी रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

तुण्डीकेरीमाह—शोथ शूलस्तोददाहमपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ॥

तुण्डिकेरी के लक्षण—जिस रोग में पूर कथित कफ और रक्त के कोष से तुण्डिकेरी (रक्त  
कपास के फल) के समान तालु मूल से उत्पन्न शूल युक्त घर्ष सुमाने के समान पीड़ा, श्वास  
और पाक करने वाला शोथ उत्पन्न होता है उसे तुण्डिकेरी कहते हैं ॥

अभ्रवलक्षणमाह—शोथः स्तब्धो लोहित शोणितोरथो ज्ञेयोऽभ्रवः सज्वरस्तीघ्ररुषश्च ॥ ४ ॥

अभ्रव के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में रक्त क कोष से रुग्ण और लोहित वर्ण का  
शोथ हो जावे और उसमें ज्वर तथा तीव्र पीड़ा हो, उसे अभ्रव तालु रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

कच्छपमाह—धूमोश्वासोऽप्येदनोऽशीघ्रजग्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा च ॥

कच्छप के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में कफ के कोष से कृष्ण के आकार का उष्ण  
द्रव्य पीड़ा रहित एक चिरवात में उत्पन्न होने वाला शोथ हो उसे कच्छप तालु रोग कहते हैं ॥

तास्वदुमाह—पद्माकार तालुमभ्ये तु दोषं विद्यादक्काद्युदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥ ५ ॥

तास्वदु के लक्षण—जिस रोग में तालु क मध्य में कमल के आकार का रक्त कोष से शोष  
हो उसे पूर्व कथित अर्जुन रोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाला तास्वदु रोग जानना चाहिये ॥

मांससंपातमाह—दुष्टे मास श्लेष्मणा मीरुजं च तास्वन्तस्थ मांससंपातमाहुः ॥

मांस संपात के लक्षण—जिस रोग में कफ के कोष से तालु के मध्य में दूषित मांस शोष की  
मौलि हो जाता है और उसमें पीड़ा नहीं होती है उसे मांस संपात रोग कहते हैं ॥

तालुपुष्पुटमाह—नीरस्थायी कोलमात्रः कफात्पामेदोयुक्तापुष्पुटस्तालुपुटे ॥ ६ ॥

तालु पुष्पुट के लक्षण—जिस रोग में कफ और नेत्र के दोष से उत्पन्न मोठ पीड़ा रहित,  
स्विर, वीर के फल के प्रमाण का शोष हो जाता है उसे तालु पुष्पुट नामक रोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तालुशोषमाह—दोषोऽन्यथं दीर्यसे श्वापि तालु श्वासो घातात्तालुशोषोऽपमुक्तः ॥

तालु शोष के लक्षण—जिस रोग में तालु अत्यन्त सूखा रहता है और फट जाता है तथा  
उसमें श्वास भी बंद जाता है यह वायु कोष से उत्पन्न तालु शोष रोग कहा जाता है ॥

तालुपाकमाह—पित्तं कुर्यात्पाकमार्यघोरं तालुन्यथं तालुपाकं यदिति ॥ ७ ॥

तालु पाक के लक्षण—जिस रोग में पित्त के कोष से तालु में अत्यन्त कठिन पाक उत्पन्न हो  
जाता है उसे तालुपाक रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ गलरोगाः ।

तत्र गलरोगानां नामानि धृत्यां वाऽऽह—

रोहिणी पद्मया प्रोक्ता कण्ठशालूक यश्च । अधिभिद्रिच्छश्च धरयोऽष्टासामिकयुम्बुक ॥ १ ॥  
रातो वृन्द क्षतप्ती च गिलायु कण्ठविद्रधिः । गलौघश्च स्वराशश्च मांसतामरतथैव च ॥

विद्यारी कण्ठवेदो तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ २ ॥

गलरोगों के नाम—वाच प्रकार की रोहिणी, कण्ठशालूक, अधिभिद्रि, कश्य अष्टाष्ट, एव  
युम्बुक, वृन्द क्षतप्ती गिलायु कण्ठविद्रधि, लकोष, स्वराश, मांस ताम और विद्यारी नाम के  
कण्ठ रोग में अठारह रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र पञ्चानामि रोहिणीनां नामान्यां संज्ञातिमाह—

गलेनिलः विरक्तयै च मूर्च्छितौ प्रकूच मांस च तथैव द्योतितम् ।

गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरैर्निहन्यस्व् व्याधिरप तु रोहिणी ॥ ३ ॥

रोहिणी की सम्प्राप्ति—गले में वात, पित्त, कफ कुपित होकर मांस और रक्त को दूषित करके गले को रोकने वाले मांसाङ्कुरों को उत्पन्न कर गले की रोक देते हैं जिससे प्राणों का नाश हो जाता है इस व्याधि की रोहिणी कहते हैं ॥ ३ ॥

तत्र वातजलक्षणमाह—

जिह्वासमन्ताद्भृशयेदनास्तु मांसाङ्कुरा कण्ठनिरोधना स्युः ।

सा रोहिणी घातकृता प्रदिष्टा घातारमकोपद्रवगाढद्वष्टा ॥ ४ ॥

वातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर अत्यन्त पीडायुक्त कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले मांस के अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं और वात के कोप के समी उपद्रव गतिवेग से उत्पन्न हो जाते हैं उसे वातज रोहिणी कहते हैं ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—सिपोद्भूमा सिप्रविदाहपाका तीघ्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥

पित्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर शीघ्र उत्पन्न होने वाले, शीघ्र दाह करने वाले, शीघ्र पाक होने वाले और तीव्र ज्वर करने वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं तथा कण्ठ की अवरुद्ध कर देते हैं उसे पित्तज रोहिणी कहते हैं ॥

श्लेष्मजामाह—स्रोतोनिरोधि-यपि मन्दपाका गुरु स्थिरा सा कफसभवा तु ॥ ५ ॥

कफज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर कण्ठ के स्रावों को रोकने वाले, मन्दपाक वाले गुरु और स्थिर (अचल) मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे कफज रोहिणी कहते हैं ॥

संनिपातजामाह—गम्भीरवाक्चिन्त्यनिवार्यवीर्या द्विदोषलिङ्गा द्विभया भवेत्सा ॥

सान्निपातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर मांस के अङ्कुर कण्ठ की अवरुद्ध करने वाले गम्भीर (अदर तक) पकने वाले, चिकित्सा से शमन नहीं होने वाले और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त उत्पन्न हो जाते हैं उसे त्रिदोषज रोहिणी कहते हैं ॥

रक्तजामाह—स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्य्य प्रदिष्टा रघिरामिका तु ॥ ६ ॥

रक्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के चारों ओर कण्ठकी अवरुद्ध करने वाले छोटे २ फफोले से युक्त और पित्तज रोहिणी के लक्षणों के समान रक्षण वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे रक्तज रोहिणी कहते हैं ॥ ६ ॥

सद्यश्चिदोपजा हन्ति श्वहाकफसमुद्भवा । पद्माहारपित्तसम्भूता ससाहारपयनोत्थिता ॥ ७ ॥

असाध्य रोहिणी की मर्यादा—त्रिदोषज रोहिणी रोगी को शीघ्र मार डालती है और कफज रोहिणी तीन दिन में पित्तज रोहिणी पाच दिन में तथा वातज रोहिणी सात दिन में रोगी को मार डालती है ॥ ७ ॥

कण्ठशालकामाह—कोलासिधमात्रः कफसभवो यो प्रथिर्गले कण्ठकशूलसूतः ।

स्वरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालकमिति प्रुचन्ति ॥ ८ ॥

कण्ठशालक के लक्षण—जिस रोग में गले में नेत्र की गुठली के प्रमाण की (शोथ) गांठ उत्पन्न हो जाती है और कण्ठक या जल शूक बीट के समान गले का अवरोध कर लेती है वह गांठ कठिन, स्थिर और शूल कम में (चौर फार करने में) साध्य होती है उसे कफज कण्ठ शालक रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

अभिजिह्वामाह—जिह्वाभरूपः श्वयथुः कफात्तु जह्मोपरिष्ठादसृजैव मिश्रात् ।

ज्योऽभिजिह्वः श्लु रोग एव विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ९ ॥

अभिजिह्वा के लक्षण—जिस रोग में जिह्वा पर जिह्वा के अभ्रभाग के समान कफ के कोप से और रक्त के कोप से शोथ हो जाता है उसे अभिजिह्व जानना चाहिये । इस रोग में जब पाक हो जावे तब इसको चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य हो जाता है) ॥ ९ ॥

बलयामाह—धलास पृथाऽऽयतमुद्धत च शोथ करोत्यन्नगतिं निवार्य ।

त सत्यैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीय चलयं घटति ॥ १० ॥

बलय के लक्षण—जिस गल रोग में कफ कुपित होकर अन्न बहान करने वाली नाड़ी के मार्ग का अवरोध कर विस्तृत और उन्नत शोथ उत्पन्न कर देता है वह रोगी के सङ्गे के सामर्थ्य से

बाहर होता है उसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य है) इस रोग को बल्य करते हैं ।  
अलासमाह—गले तु शोथं कुस्तः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।

मर्मच्छिद्रं दुस्तरमेनमाहुरलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ ११ ॥

अलास के लक्षण—जिस गल रोग में दुग्ध कुपित कफ और वात श्वास और पीड़ा युक्त मर्म छेदक कठिन ( दुःसाध्य ) शोथ को गले में उत्पन्न कर देते हैं उस रोग को अलास कहते हैं ॥११॥

एकशृन्दमाह—शृत्तोन्नतोऽन्तःश्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपावयशृन्दुगुरुश्च ।

नाम्नैकशृन्दं परिकीर्तितोऽसौ श्याधियलासपतजप्रसूतः ॥ १२ ॥

एकशृन्द के लक्षण—जिस रोग में कफ रक्त के कोप से गले के मन्दर गोलाकार उठा हुआ, दाह युक्त, कण्डूयुक्त, पाकरहित वा थोड़ा पकने वाला, कठिन, अथवा थोड़ा मृदु और शुभ शोथ उत्पन्न हो जाता है उसे एक शृन्द नामक रोग कहते हैं ॥ १२ ॥

शृन्दमाह—समुन्नतं शृत्तममन्दवाहं तीव्रज्वरं शृदंसुवाहरन्ति ।

तश्चापि पित्तपतजप्रकोपाद्विद्यारसतोदपयनामकं तु ॥ १३ ॥

शृन्द के लक्षण—जिस रोग में पित्त और रक्त के कोप से गले में अधिक उठा हुआ, गोर, तीव्रवाह तथा तीव्र ज्वर करने वाला शोथ उत्पन्न हो जाता है उसे शृन्द नामक रोग कहते हैं । इसी रोग में यदि सूई जुमान के समान पीड़ा हो तो उसमें वात की प्रधानता रहती है ॥ १३ ॥

शतशनीमाह—वर्षिर्घना कण्ठनिरोधिनी या घिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।

अनेकरुवमाणहरा त्रिवोपाज्जेवा दातपनीसदृशी दातशनी ॥ १४ ॥

शतशनी के लक्षण—जिस गल रोग में त्रिवोप के कोप से गले में बत्ती के आकार की, घनी, कण्ठ को अवरुद्ध करने वाली, मासादुरों से अत्यन्त घिरी हुई, अनेक प्रकार के प्राणनाशक तीव्र दाह, कण्डू आदि तीनों दोषों की कठिन पीड़ा युक्त शतशनी ( छोड़े के कांटों से घिरी हुई मरान् शिला की दातशी कहते हैं ) के समान ( असाध्य ) रोग जानना चाहिये ॥ १४ ॥

गिलायुमाह—प्रयिरगले श्वाभलकास्थिमात्रं स्थिरोऽपपरकस्याकफरकमूर्च्छिः ।

संलक्षयते सक्तमिवाशनं च स दाहसाध्यस्तु गिलायुस्तथाः ॥ १५ ॥

गिलायु के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से गले में भौंके की गुठली की भौंठि स्थिर ( अचल ), अल्प पीड़ा करने वाली और भोजन क्रिया पार्य गले में रुका है ऐसा प्रतीत होता है उसे गिलायु नामक रोग कहते हैं । यह गल माध्य रोग है ।

गलविद्रधिमाह—

सर्वं गलं श्याप्यं समुत्थितो यः शोफो रजः सन्नि च यत्र सर्वा ।

स सर्वदोषैर्गलविद्रधिरसु तस्यैव तुष्यः सखु सर्वप्रस्य ॥ १६ ॥

गलविद्रधि के लक्षण—जिस रोग में त्रिदोष के कोप से सम्पूर्ण गले में श्याम शोथ उत्पन्न हो जावे और उसमें सब दोषों ( वात-पित्त-कफ ) की मिलित पीड़ायें ( तीव्र दाह कण्डू आदि ) होवें उसे सब दोषों से होने वाली गलविद्रधि कहते हैं । इसे सनिपातज विद्रधि के समान जानना चाहिये किन्तु इसकी चिकित्सा भिन्न होती है । इसी कारण इसकी गानना सनिपातज विद्रधि से भ्रम की गयी है ॥ १६ ॥

गलीपमाह—शोथो महान्मज्जलायरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।

कफेन जातो रुधिराम्बितेन गले गलीपं परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ १७ ॥

गलीप के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से गले में महान् शोथ उत्पन्न हो जाने से अन्न जल का अवरोध हो जाता है अर्थात् जोष से गले का सिद्ध और उसमें तीव्र ज्वर तथा उस शोथ के कारण उष्ण वायु की गति भी रुक जाती है ( उद्गार आदि का अवरोध हो जाता है ) उस रोग को गलीप कहते हैं ॥ १७ ॥

स्वरप्रमाह—मस्तापमानं कमिति प्रमर्षं शिग्मास्वराः शुष्कविमृशकण्ठः ।

कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोग इयमनात्स्वराणाः ॥ १८ ॥

स्वरप्रम के लक्षण—जिस रोग में वायु के अधिक कोप के कारण गले में महान् शोथ होना है

जिससे रोगी अन्यवार के समान देखता हुआ भयवा मूर्च्छित होता हुआ निरन्तर श्वास केता है और उसका श्वर भंग हो जाता है, गला शुष्क रहता है एवं अपने कार्य में स्वाधीन नहीं रहता (ज्यादि को निगलने में असमर्थ रहता है) तथा वायु के स्रोतों में कफ भर कर उसे अवकट कर देता है जिससे श्वास आदि कष्ट से आते हैं इस रोग को स्वरभ्रम कहते हैं ॥ १८ ॥

मांसवातामाह—प्रतानपान्य श्वयथु सुफटो गलोपरोध कुरुते क्रमेण ।

स मांसतानः पथितोऽप्यलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ १९ ॥

मांसतान के लक्षण—जिस रोग में त्रिदोष के कोप से सम्पूर्ण गले में पसरी हुई महाकट्टयाक शोथ उत्पन्न होकर क्रम से गले का अवरोध कर लटफती रहती है उसे मांसतान रोग कहते हैं वह प्राण का नाशक है ॥ १९ ॥

विदारोलक्षणमाह—सदाहृतोद श्वयथु प्रसफमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ।

पित्तेन विष्णाद्भुने विदारी पार्श्वे विशोपास्य तु येन शोते ॥ २० ॥

विदारी के लक्षण—जिस रोग में पित्त के कोप से गले के भीतर जिस पार्श्व में मनुष्य विशेष सोता है उस पार्श्व में शोथ उत्पन्न हो जाती है और उसमें दाह छर्च चुभाने के समान पीड़ा और गले का मांस दुर्गन्धित एवं विशीर्ण (पटा हुआ या सड़ा हुआ) हो जाता है उसे विदारी रोग कहते हैं यह कभी २ दूसरे पार्श्व में भी हो जाता है ॥ २० ॥

### अथ समस्तमुखरोगाः ।

तत्र तेषां निदानं संख्या चाऽऽह—

पृथग्दोषैश्चयो रोगा समस्तमुखजा स्मृताः ॥ १ ॥

समस्त मुख रोगों के निदान—चात्ता दोषों से होने वाले समस्त मुखरोग तीन प्रकार के (वातिक पैथिक और कफज) कहे जाते हैं ॥ १ ॥

तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

रुकोटैः सप्तोद्धर्षदन समन्ताद्यस्याऽऽचित्त सर्वसरः स चातात् ॥

वातिक सर्वसर—जिसमें ओछादि सातों स्थानों के सहित सम्पूर्ण मुख छर्च चुभाने के समान पीड़ा युक्त फफोलों से भर जावे उसे वातज सर्वसर रोग, कहते हैं ॥

पैथिकमाह—रयतैः सदाहैः पिठकैः सपीतैर्यस्याचित्त चाऽपि स पित्तकोपात् ॥ १ ॥

पैथिक सर्वसर—जिस रोग में मुख रक्तवर्ण दाह युक्त पिठिकाओं से भयवा पीतवर्ण दाह युक्त पिठिकाओं से भर जावे उसे पित्तज सर्वसर रोग कहते हैं ॥ १ ॥

दलेभिकमाह—भवेदनेः कण्डुयुतैः सघर्णैर्यस्याचित्त चाऽपि स पैथिकेन ॥

कफज सर्वसर—जिस रोग में मुख पीड़ा रहित भयवा अल्प पीड़ाकारक कण्डुयुक्त और मुख की त्वचा के वर्ण की पिठिकाओं से श्वास हो उसे कफज सर्वसर कहते हैं ॥

कैश्चिन्मुखपाकरोग एक एक प्रदिष्ट —

रक्तेन पिथोदित एक पृथ कैश्चिद्विष्टो मुखपाकरोगः ॥ २ ॥

कई आचार्यों ने मुखपाक रोग को एक ही माना है और कई आचार्यों ने रक्त के कोप से भी उत्पन्न मुखपाक रोग माना है । इसके लक्षण पित्तज मुखपाक के समान ही होते हैं । मुख के ओछादि सातों स्थानों में होने के कारण इस रोग को सर्वसर कहते हैं ॥ २ ॥

मुखरोगेष्वसाध्यानाह—

ओष्ठप्रकोपे घर्ज्याः स्युर्मोसरफत्रिदोषजा । दन्तयेष्टेषु घर्ज्यां तु त्रिलिङ्गगतिस्त्रिपिरी ॥ १ ॥

मुखरोग की असाध्यता—ओष्ठ रोगों में मांसज रक्तज और त्रिदोषज ओष्ठरोग असाध्य है ।

दन्तवेष्ट (दन्तमूल) के रोगों में त्रिदोषज नाड़ी और महासीपिर रोग असाध्य है ॥ २ ॥

दन्तेषु च न सिद्धयन्ति श्यावदालनभङ्गनाः । जिह्वारोगे घलासस्तु तालुजेष्वर्जुद तथा ॥२॥

दन्तरोगों में श्याववन्त दालन और भङ्गन सहज रोग असाध्य है । जिह्वारोगों में अल्पस और तालुसरोगों में अर्जुदरोग असाध्य है ॥ २ ॥

स्वरभ्रो घलयो घृदो बलास सविदारिक । गलौषो मांसतानश्च दातप्री रोहिणी गले ॥३॥



गलरोगों में रक्तम, क्लय, घृन्द, कलास, विदारो गन्भी, मांसतान, उतप्त्वी और रोहिणी संज्ञक रोग असाध्य हैं ॥ ४ ॥

असाध्या कीर्तिता ह्येग रोगा ददा भवोत्तराः । तेषु चावि क्रिया वैद्य प्रत्याहपाय समाधरेत् ॥  
इस प्रकार कुछ रोगों में २९ रोग असाध्य हैं । इनमें यापनार्थ यदि वैद्य की चिकित्सा करनी नही हो तो असाध्य कह कर चिकित्सा करे ॥ ४ ॥

### अथ मुखरोगाणां चिकित्सा ।

तत्रौष्ठरोगेषु—

गलदन्तमूलदधानच्छद्रेषु रोगाः कफाघ्नभूयिष्ठा । तस्मादेतेष्वसकृद्बुधिर विद्यावेद्यदुष्टम् ॥  
गलादि रोग चिकित्सा—गला, दन्तमूल और ओष्ठ में प्रायः कफ और रक्त के दोष से रोग उत्पन्न होते हैं । इस लिये इनमें से कफ २ दूषित रक्त का ह्राव कराना चाहिये ॥ २ ॥

वातज—स्नेहांसाधोष्णान्परिपेकलेपान्पूतस्य पान रसमोजनं च ।

अभ्यञ्जनस्वेदनलेपन सद्रोष्ट्रे विदुष्यात्पयनाभिभूते ॥ १ ॥

वातज ओष्ठरोग चिकित्सा—वातज ओष्ठरोग में स्नेह, तथा उष्ण परिवेक और लेप आदि तथा पान मांसादि रसों का भोजन, अभ्यङ्ग ( मर्दन ) स्वेदन और लेपन करना चाहिये ॥ १ ॥

तैल घृत सज्जरसं सप्तिकथं रास्नागुहं सै चवगैरिक्तं च ।

पक्वा समोदा दधानच्छदानां रयमेवहन्त् धरोपणं च ॥ २ ॥

तैलादि योग—तिल का तेल, गाण का घृत, रान, मीम, रास्ना, गुद, संधानमक और गेरू प्रायिक समभाग मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर ओठों पर लगाने से यह ओठ की पटी हुई त्वचा को नष्ट करता है और रोग का रोगन करता है इस तैलादि योग की विधि में राल आदि का प्रयुक्त कर विधिपूर्वक घृत अथवा तैल सिद्ध कर लगाना अति उत्तम योग है ॥ २ ॥

राल मधुपिष्टुष्टुषेन पक्वं तैल घृत वा विनिहन्ति लेपात् ।

त्वक्कोदपाहृष्यहजोऽधरस्य पूयाघ्नसंघ्राघमपि प्रसह्य ॥ ३ ॥

रालादि तैल वा घृत—राल, मीम, गुद तीनों समान भाग का ककक बनाकर कफ के चौगुना तिल तैल अथवा घृत और इसके चौगुना जल मिलाकर पाक करके लेप करने से त्वचा में कई जुमाने के समान होने वाली पीड़ा, कठोरता और ओठ की पीटाये नष्ट होनी है तथा पूष और रक्त का ह्राव होना भी बन्द होता है ॥ ३ ॥

पित्तजे—वेध शिराणां घमन विरेकं तिक्तस्य पानं रसमोजनं च ।

शीताः प्रवेहाः परिवेषनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १ ॥

पित्तज ओष्ठ रोग चिकित्सा—पित्तज ओष्ठ रोग में शिरा मोक्ष करना, बमन और विरेचन कराकर तिक्त रस वाली भोजपियों से निम्न वेध ( बमन घृतादि ) मांस रसादि, शीतल लव और परिवेक करना चाहिये इनसे पित्तज ओष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

कफजे—

शित्तोपिरेचनं धूमः स्वेदा क्वथलं पूष च । हृते रक्ते प्रयोक्तव्यं ओष्ठकोपे कफामके ॥ १ ॥

कफज ओष्ठ रोग चिकित्सा—कफज ओष्ठ रोग में रक्तमोक्ष, शित्तोपिरेचन ( मधु कर्मा ), घृतपान स्वेद कर्म और कफन धारण करना चाहिये । इससे कफज ओष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥  
मेदोजे स्वेदिते भिन्ने क्षोभिते कण्ठो हित । त्रियगु त्रिकला छोत्रं सप्तौर्द्रं प्रतिमारणम् ॥

मेदोज ओष्ठ रोग चिकित्सा—मेदोज ओष्ठ रोग में मर्दन, वेदन, कर्क शोषन करने देते और पश्चात् क्वथल धारण करे और फिर त्रियगु, कौश्ल, इन्ड, बहेडा, लोष मन्वेक समभाग का घृत कर मधु मिलाकर घने २ प्रतिमारण ( मर्दन ) करना चाहिये ॥ ३ ॥

प्रतिमारणस्य विधिमाह—

द्वयत्रिहामुपानां यत्पूर्णांस्त्रकावलेदके । दानैर्घर्षगर्मगुफया सप्तपत प्रतिमारणम् ॥ १ ॥

प्रतिमारण की विधि—दोन, त्रिहा और ओठ गुदा इन रसानों में घृत, कर्क क्वथा अरुण ( मधु क्वथ ) को घने २ अंगुलियों से मथन करने की प्रतिमारण कर्तव्य है ॥ २ ॥

ओष्ठरोगोन्वशेषेषु दृष्ट्वा षोषमुपाचरेत् । तेषु घणत्व वातेषु घणपरसमुपाचरेत् ॥ २ ॥

अवशिष्ट ओष्ठ रोगों की चिकित्सा—श्लेष ओष्ठ रोगों में दोषादिकों को देखकर यथोचित चिकित्सा करना चाहिये । ओष्ठ में लज ग्रग हो जाय तब ग्रग के समान उनकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ २ ॥

दन्तमूलरोगानां चिकित्सा—

दन्तमूलसमुत्थेषु दन्तोत्थेषु गवेषु च । रक्तमोक्ष प्रदासन्ति जलौकालामुशुद्धके ॥ १ ॥

दन्तमूल चिकित्सा—दन्तमूल ( मधुछे ) में होने वाले तथा दाँतों में होने वाले रोगों में लौक, तुम्बी अथवा सिंगी आदि के द्वारा रक्तमोक्षण करना लाभदायक है ॥ १ ॥

शीतादस्य चिकित्सा—

शीतादेऽन्नसृत्तिं कुर्यात्तया गण्डूपधारणम् । शृण्ठीपर्वतशवायै कयोप्यैश्च सुहृर्मुहुः ॥ १ ॥

शीताद चिकित्सा—शीताद दन्त रोग में रक्त निवृत्तवा कर सोंठ और पिचपापका के लष्ण पचाय से बार २ गण्डूप धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

शीतादे हृत्तरक्तेषु सोष्ये नागरसर्पपान् । निष्काप्य त्रिकलां चापि कुर्याद्गण्डूपधारणम् ॥ १ ॥

भावप्रकाश के मत से शीताद रोग में रक्तमोक्षण कराकर सोंठ, सरसो, हरद, बहेड़ा और आँबला के काय वा गण्डूप धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

कासीसलोध्रहृष्णामनशिलासमियगुतेजोह्नाः । पूर्वां चूर्णं मधुयुक् शीतादे प्रतिमांसहरम् ॥

कासीस, लोध्र, पीसल, शुद्ध मेनसिल, प्रियंगू और तेज बल प्रत्येक समभाग के चूर्ण को मधु मिलाकर मधुनों पर लगाने से दुर्गन्धित ( सड़े हुए ) मधुछे के मांस को नष्ट करता है ॥ १ ॥

सैल घृतं वा चातपन शीतादे समदास्यते ॥ २ ॥

शीताद रोग में वात नाशक तेल अथवा घृत का व्यवहार लाभदायक होता है ॥ २ ॥

दन्तपुष्पुटकस्य चिकित्सा—

दन्तपुष्पुटके कार्यं सधरे रक्तमोक्षणम् । सपञ्चलवणधरैः सचौद्वैः प्रतिसारणम् ॥ १ ॥

दन्तपुष्पुट चिकित्सा—नवीन, दन्त पुष्पुट रोग में रक्त मोक्षण कराकर पाँचों लवण और पञ्चदर आदि क्षारों को मधु में मिलाकर अङ्गुलियों से मधुनों पर शनै २ मर्दन करना चाहिये ॥

दन्तवेष्टस्य चिकित्सा—

दन्तवेष्टे विधिः कार्यो रक्षपित्तनिवर्हण । शिरोविरेकश्च द्वितो नस्य स्निग्ध च भोजनम् ॥१॥

दन्तवेष्ट चिकित्सा—दन्तवेष्ट रोग में रक्त पित्त नाशक विधि करनी चाहिये । शिरोविरेचन, नस्य कम और स्निग्ध भोजन करना चाहिये ॥ १ ॥

विद्याविते दन्तवेष्टे घण तु प्रतिसारयेत् । लोध्रपत्तङ्गमधुकलाचाचूर्णैर्मधुष्पुतै ॥ २ ॥

दन्तवेष्ट रोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध्र, पतङ्ग काठ, मुलशठी और लाख प्रत्येक समान भाग का चूर्ण मधु मिलाकर घण पर अङ्गुलियों से शनै २ मर्दन करना चाहिये ॥ २ ॥

गण्डूपे श्रीरिणो योग्याः सशौद्रघृतशर्करा । चलदन्तस्थैर्यंकर कार्यं यकूलचर्वणम् ॥ ३ ॥

गण्डूप धारण करने के लिये क्षीरी ( पञ्चबल्कल ) चूर्णों के काय में मधु, घृत एव शर्करा वा प्रक्षेप देकर प्रयोग करना चाहिये और ( मौलसरी ) की छाल अथवा फल का चर्वण करना चाहिये । इससे दिलते हुए दाँत बैठ जाते हैं ॥ ३ ॥

मद्रमुस्तादिवटिका—

मद्रमुस्ताभयाम्पोपविट्टहारिष्टपल्लवै । गौमूत्रपिष्टैर्गुटिका छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

सो निधाय भुल्ले हवण्याचलदन्तात्तुरो नरः । नातः परतर किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ २ ॥

मद्रमुस्तादि बटिका—मद्रमोथा, हरद, सोंठ, मरिच, पीपल, चायविदंग और नीम के पत्र प्रत्येक समभाग गौमूत्र के साथ पीस कर विधिपूर्वक बटी बनाकर छाया में सुखा कर रख लेवे । इस बटी को जिसके दाँत हिलते हो वह मुख में रख कर सो जावे तो इससे दाँत बैठ जाते हैं । चल दन्त की यह सर्वोत्तम औषधि है ॥ १-२ ॥

सदाचरादितैश्च—तुलां घृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽभसः संश्रपयेद्यथायत् ।

घृतशतुर्भागसे तु सैल पचेच्छनैर्यपलप्रमाणैः ॥ १ ॥

कफकैरनन्तात्तदिरारिमेदजम्ब्याप्रयष्टीमधुकोपलानाम् ।

तत्सैलमारवेव घृतं मुखेन शैर्यं त्रिजानां विदधाति सद्यः ॥ २ ॥

सङ्करादि तैल—नीली कटसरैया एक मुष्ठा ( १०० पल ) लेकर एक द्रोन ( चार भाङ्ग ) जल में डालकर विधिपूर्वक बवाय करे जब चुनुथीय शेष रह आवे तब उतार कर घान छेदे और उसमें चतुर्थीय ( एक प्रस्थ ) तिल का तैल तथा अनन्तमूल, सैर, विट्खदिर, आमृत की घास, जेठीमधु और नील कमल प्रत्येक आधा २ पल लेकर विधिपूर्वक कस्क बनाकर सबको एकत्र कर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर उस तैल को मुख में धारण करने से दाँतों को शीम हो रिप्त करता है ॥ १-२ ॥

बीरकाय घूर्णम्—

जरणालपणपम्यादाशमलीकण्टकानामनुदिनमसृष्ट दन्तमूलेषु घूर्णम् ।

मगद्वरणरुग्ग्रावघ्राह्यक्षयक्षोथानपनयति यिषस्वानघकारानिवाऽऽशु ॥ १ ॥

बीरकादि घूर्ण—जीरा, सेंधानमक, इरुद, तथा समर के कटि प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक घूर्णकर प्रतिदिन दन्तमूल में घिसने से मधुओं के अण, मगुठों का पटना, पीड़ा, रच्छान, दाँतों का हिलना और शीम शीम हो इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार अचकार को घननष्ट करते हैं ॥ १ ॥

घणार्घ घूर्णम्—

कणासिन्धूरयजरणघूर्णं घूर्णं व्यपोहति । घर्षणाहन्तघ्राह्यक्षयक्षोधाघ्नसंरुघाम् ॥ १ ॥

करादि घूर्ण—पीपल, सेंधानमक और बीरा प्रत्येक समभाग घूर्ण कर दाँतों तथा मधुओं पर घिसने से शीम हो दाँतों का हिलना, पीड़ा, शीम तथा रच्छान बन्द हो जाते हैं ॥ १ ॥

दशमूलादितैलघृते—

पुशामूलीकपायेण सैल या घृतमेव वा । विपक केवल घास्त सचौद्रं दन्तघालने ॥ १ ॥

दशमूलादि तैल वा घृत—दशमूल की औषधियों को पृथक् २ लेकर विधिपूर्वक उनका वापन कर उसमें चुनुथीय तिल का तैल अथवा घृत मिलाकर सिद्ध कर उसमें मधु मिलाकर ऋणाने से दाँतों का हिलना बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

सौषिरस्य चिकित्सा—

सौषिरे हृत्तरके तु लोघमुस्वारसाञ्जनैः । सचौद्रैः सस्यते लेपो गण्डूषे सौषिरो हिताः ॥ १ ॥

सौषिर-चिकित्सा—सौषिर रोग में रफनोश्ण कराकर सौष, नागरमोषा और रसन के समान मिलित घूर्ण में मधु मिलाकर लेन करने से और शीरी गृहों के क्षय विधिपूर्वक बनाकर गण्डूष धारण करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

परिदरोपकुष्ठयोश्चिकित्सा—

क्रियां परिदरे कुर्वाण्डीतायोष्ठां विचक्षणः । संशोष्योभयतः कार्यं शिरधोपकुष्ठो तथा ॥ १ ॥

परिदर और उपकुष्ठ की चिकित्सा—परिदर और उपकुष्ठ रोग में शीघर में करी द्वार चिकित्सा करनी चाहिये और कपन-विरचन आदि से शरीर का शोषण और नखादि से शिर शोषण प्रथम ही कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

काकोदुग्धरिकापद्मैर्मजं विज्राययेज्जिपक् । लघुणः सौद्रयुष्टैश्च सत्योषः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

कटूमर के पत्रों से जग को घिस कर रफ का खाव कराकर पश्चात् सेंधानमक, शोंठ, मरिच और पीपल समान मिलित घूर्ण में मधु मिलाकर कम पर ऋणितियों से शरीर २ मर्दन करे, बगले परिदर और उपकुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

वैदग्ध्यलिखनानिमासकान् विद्विभिरोगानां विभिन्नामाह—

शारंगेगोतकृत्य वैदग्ध्यं दन्तमूलानि शोषयेत् । सप्तः पारं प्रयुज्यते म्रियाः सर्वाश्च शक्तिताः ॥

वैदग्ध्य रोग चिकित्सा—वैदग्ध्य रोग को शारंग से उजाड़ कर मधुओं को दूध करना चाहिये । पश्चात् छार का रस पर प्रयोग करना चाहिये तथा सप्तमी शीघ्रतः शिकारों को करना चाहिये ॥ १ ॥

बद्धव्याधिकपृष्ठं वा सतोऽग्निमवधारयेत् । कृमिदन्तव्यथाप्र विधिं कार्षीं विजानता प्रथम

अधिकदन्त ( रालिवर्द्धन ) रोग में अधिक दात भी उखाड़ देना चाहिये और दन्तमूल को अग्नि से दाग कर क्रिमिदन्त रोग में कड़ी दुर्ब चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥२॥  
छिन्वाऽधिमांसं सद्योद्वैरेतैश्चूर्णरपाधरेण । पघातेजोघतीपाठाऽर्वाजिकायावशूकजै ॥ ३ ॥  
सौद्रव्द्वितीयपिप्पल्याः कवले चाप्र कीतित्ताः । पटोलनिम्बत्रिकलाकपायश्चात्र घाघनः ॥ ४ ॥

अधिमांस रोग में अधिमांस को काट कर उस पर बच, तेज बल, पुरइनपाड़ी, सज्जीखार और यवाखार के समान मिलित चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर लगाना चाहिये तथा पीपल के काय में मधु मिलाकर कवल धारण और पटोलपत्र, निम्बपत्र, हरड़, बहेड़ा, तथा आंवला का विधिपूर्वक काय कर उससे अधिमांस को घोना चाहिये ॥ ३-४ ॥

विद्रव्युषत्तं च विधिबद्धिद्वेष्यादन्तविद्रव्यौ । शक्यकर्म नरस्तत्र कुशलेभ्य कारयेत् ॥ ५ ॥

दन्तविद्रधि रोग में कड़ी दुर्ब चिकित्सा और कुशल वैद्य से शक्यकर्म कराना चाहिये ॥ ५ ॥  
नाडीगणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् । यद्दन्तमध्ये जायेत नाडीदन्त समुदरेण ॥ ६ ॥

दन्तनाडी चिकित्सा--नाडीगण नाशक चिकित्सा दन्तनाडी रोग में करनी चाहिये और जिस दाँत में नाड़ी उत्पन्न हो जावे उसे उखाड़ देना चाहिये ॥ ६ ॥

छिन्वा मांसानि दास्रेण यदि भोपरमो भवेत् । उदृष्टस्य च बहुधापि चारेण ज्वलनेन वा ॥७॥  
शक्य से मांस को छील देने पर भी यदि शान्ति नहीं होवे तो दाँत को उखाड़ कर क्षार से अथवा अग्नि से उस गण स्थान को जला देना चाहिये ॥ ७ ॥

भिनयुषेपेक्षिते दन्ते हनु सास्थिगतिर्भुवम् । उदृष्टते तूत्रे दन्ते शोणित प्रज्येदिति ॥ ८ ॥  
दाँत की उपेक्षा करने से वह दाँत अस्थि की गति के साथ २ इंच को भी भेद देता है ऊपर के दाँत को उखाड़ने से अत्यन्त रक्त का क्षय होता है ॥ ८ ॥

रक्तातिसेकापूर्वोक्ता घोरा रोगा मघन्ति हि । काण संजायते जन्तुरर्दितं तस्य जायते ॥९॥  
चलमप्युत्तर दन्तमतो नैद्योद्वरेन्नपक् । समूल दधान दस्मादुद्वरेऽन्नमस्थि च ॥ १० ॥

रक्त के अधिक क्षय होने से ( अनेक प्रकार के ) मयङ्कर रोग होते हैं । इससे मनुष्य काना हो जाता है तथा उसे अर्द्धित रोग हो जाता है इसलिये ऊपर के दाँत यदि हिलते भी हों तो वैद्य उन्हें नहीं उखाड़े । दाँत को मूलसहित और दूटी दुर्ब हड्डी सहित उखाड़ना चाहिये ॥ ९-१० ॥

जात्यादितैलम्--

कपायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकै । मञ्जिष्ठालोभ्रखदिरपटथाङ्गैश्चापि याकृतम् ॥  
तैल यरसापित तत्र हन्याद्दतगतां गतिम् ॥ १ ॥

जात्यादि तैल--चमेली के पत्र, मैनाफल, छोटी कटेरी और विककत को समभाग लेकर विधि पूर्वक काय कर गितना प्रस्तुत काय हो उसके चतुर्थांश तिलका तैल और तैल के चतुर्थांश मचीठ, लोप, खैर तथा जेठीमधु का समान मिलित करक मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर सेवन करने से दाँत की नाड़ी नष्ट होती है ॥ १ ॥

दन्तरोगाणां चिकित्सा--

दन्तरोगेषु सर्वेषु वास्तो वासहरो विधि । पक्क तैल कवोष्ण च दास्त कवलधारणे ॥ १ ॥  
दन्तरोग-चिकित्सा--सम्पूर्ण दन्तरोगों में वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वात-नाशक औषधियों द्वारा वातनाशक सिद्धतैलतैल को कुछ उष्णकर कवल धारण करना चाहिये इससे दन्तरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

जयेद्विस्त्रायणै स्विनमचल कृमिदन्तकम् । तथाऽवपीदैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूयधारणै ॥ २ ॥

क्रिमिदन्त-चिकित्सा--अचल कृमिबन्त में स्नेह देकर विस्त्रायण कराना चाहिये और वात नाशक अवपीठन नस्य देकर प्रथम वातनाशक स्नेहों का गण्डूय धारण करा कर क्रिमिदन्त को नष्ट करना चाहिये ॥ २ ॥

भद्रदावांदिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः । कृमिदन्तापहं क्रोष्ण दिग्गु दन्ताम्बरे स्थितम् ॥  
भद्रदावांदि गण की औषधियों तथा पुनर्नवा को पीस कर लेप करने से, स्निग्ध पदार्थों के भोजन करने से स्निग्ध पच्य सेवन करने से और क्रोष्ण ( कुछ गरम २ ) हींग को दाँतों में रखने से कृमिदन्त रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बुद्धीभूमिकदग्धीपद्माङ्गुलकण्टकारिकायाः । गण्डूषपस्तैलयुक्तः कृमिदन्तकषयेद्गुणाद्यमकः ॥४७॥  
 बड़ी कटेरी, गोरखमुण्डी, परण्डमूल और छोटी कटरी को समभाग छेकर विभिपूर्वक काय कर  
 इसमें तेल का प्रथेय देकर गण्डूष धारण करने से कृमिदन्त को पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

नीलीवायसजङ्घाकट्टुगुग्गीमूलमेकैकम् । सचूर्ण्य दशमयिष्टत दशानक्रिमिपातन प्राहुः ॥ ५ ॥  
 नील की जड़, काकजङ्घा और कडवी तरौइ की जड़, इनमें से किसी एक को लेकर चूर्ण कर  
 दाँतों में रखने से दाँत के कीड़े गिर जाते हैं ॥ ५ ॥

पिप्प्ला च सारिवापर्णं दृष्ट दत्तेषु धारयेत् । पतन्ति दन्तकीटाश्च चाद्भ्यर्षं हरति चण्णात् ॥६॥  
 सारिवा के पत्तों को पीस कर दृष्टा के साथ दाँतों में धारण करने से दाँत के कीड़े गिर जाते  
 हैं और दाँतों का दिखना भी शीघ्र ही बन्द हो जाता है ॥ ६ ॥

कासीसं हिङ्गु सौराष्ट्री देवदास सम जलः । गुटिकां धारयेद्भृशकृमिशूलहरां पराम् ॥ १ ॥  
 कासीस, हींग, फिटकिरी और देवदास इनकी समभाग छेकर जल के साथ बटी बनाकर दाँतों  
 में धारण करने से दन्त कृमि और दन्तशूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दन्तहर्षनिक्रिस्ता—

स्नेहानां कषला फोष्णा सर्पिपत्रिषूतस्य च । निर्युहाश्चानिलज्जामां दन्तहर्षप्रमदनाः ॥१॥  
 दन्तहर्ष निक्रिस्ता—दन्तहर्ष रोग में स्नेह पदार्थों को कुक्ष २ उष्ण करके उनका कषल धारण  
 तथा निशोष के कषक के साथ सिद्ध किया हुआ घृत का व्यवहार करना चाहिये और वात नासक  
 द्रव्यों के बने हुए काय का सेवन करना चाहिये । इससे दन्तहर्ष रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

स्नेहिकोऽत्र द्वितो भूमो नस्य स्नेहिकमेय च । रसा रसयथाव्यश्च सीरं सत्ताणिकापृतम् ॥  
 शिरोषस्तिहितश्चापि क्षमो यश्चानिलापहः ॥ २ ॥

दन्तहर्ष रोग में स्नेह प्रशदि युक्त घूम और सैर्णा का नस्य तथा रस युक्त भोज्य पदार्थ,  
 मांसरस और रस युक्त यथागू, दूध मलाई और घृत देना चाहिये तथा शिरोषस्ति और  
 वातनाशक सभी उपाय करना चाहिये ॥ २ ॥

आच्छिद्य दन्तमूलानि शर्करामुदरेन्निपक् । लापाचूर्णमधुयुतेस्तस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ३ ॥

दन्तशर्करा निक्रिस्ता—दन्त शर्करा रोग में मण्डों को बिना धुशन किये ही शर्करा को शर्करा  
 को उखाड़ देवे और पश्चात् छाग के चूर्ण में मिलाकर दाँतों पर रखने से शर्करा अणुलियों के द्वारा  
 मर्दा करे ॥ ३ ॥

दन्तहर्षक्रिया यात्र कुर्याच्चिरवशेपता ।

दन्तशर्करा रोग में दन्तहर्ष रोग को संपूर्ण निक्रिस्ता करे ॥ ३ ॥

कपालिका कृष्टतमा सत्राप्येषा क्रिया दिता ॥ ४ ॥

कपालिका-चिक्रिस्ता—कपालिका रोग कष्ट साध्य है उसमें भी दन्तशर्करा रोग को निक्रिस्ता  
 लाभदायक होती है ॥ ४ ॥

सामान्यनिक्रिस्ता—

अरिमेदवच घृष्णां पचेद्भूतपलोम्भिताम् । जलद्रोणेन सत्पार्थं गृहीयात्पादाश्रितम् ॥ १ ॥  
 सैलस्यार्थादकं दद्या कर्कै कर्पमितैः पचेत् । अरिमेदवचघृष्णां गेरिकामुदरान्दरेः ॥ २ ॥  
 मञ्जिष्ठाशोभमधुकैलांशान्यप्रोचमुस्तकैः । श्वत्सामीक्य कर्पूरकद्रोहसदिराजया ॥ ३ ॥  
 पत्रश्वत्सकीपुष्पसूचमैलानागहेतरे । कटूफलेन च संमिद सैलं मुद्यत्यं जयत् ॥ ४ ॥  
 मनुष्टमांसं चटितं पार्णवृत्तं च मीपिरम् । सीतावं दन्तहर्षं च विद्वधि हृदिदत्तम् ॥  
 दन्तहर्षदन्तहर्षं मिह्याताववाष्टजो रणम् ॥ ५ ॥

अरिमेदवच तैल—निर्यसिरी की दूरी ११११ का भी कुछ चूर्ण को पत्र श्वत्स एक डींग ( आठ  
 भागक ) जल में मिलाकर काय करे घनुषाउ रोष रखने पर उष्ण-दान कर उडमें आभा आइक  
 ( २ प्रत्य ) तिल का तैल और विरयति, सर्वप, गद, भगर, पट्टमकाठ, मन्दीक, क.व, सुपदी,  
 काम, बटवृष की शाक, नागमोहा, शालबीनी, आपकर, कपूर, बद्रोम मरिच, धैर, पत्र काठ,  
 भाय के पुन, सींगे हलावकी, नागकण्ठ और काषकर प्रायेक एक २ हर्ष केकर विभिपूर्वक कषक  
 कर उबधे पत्र मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल मिड कर; व्यवहार में करने से दन्त

की पीड़ा नष्ट होती है, मयूरे के दूधिन मांस, हिलते हुए दाँत सड़े हुए दाँत, सौधिर, झीताद, दन्तदर्प, दन्तविद्रधि, कुमिदन्त, दन्तस्पुटन, दौर्गन्ध्य, निहा की पीड़ा, ताछ की पीड़ा और ओष्ठ की पीड़ा इन सबको यह तेल नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

लाक्षादितैलम्—

तेलं लापारसं पीरं पूषकप्रस्थमितं पचेत् । द्रव्यैः पलमितैरेतैः कायैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ १ ॥  
 शोधकटफलमञ्जिष्ठापद्मेसरपद्मेः । चन्दनोत्पलवटवाहैस्तसैल पद्मे पृतम् ॥ २ ॥  
 शालनं दन्तपाटं च दन्तमोक्षकपालिकाम् । क्षीताद्यं पूतिषत्रं च विरधिं विरसास्पताम् ॥  
 इत्याद्याद्यु गवानेताङ्कुर्यात्तानपि स्थिरान् । लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥४॥  
 लाक्षादि तैल—तिल का तैल, छाल का रसरस, गोदुग्ध प्रत्येक एक २ प्रस्थ और लोष, हायपर, मजीठ, कमल केसर, एतुमनाठ, रसचन्द्रा, नील कमल और जेठी मधु प्रत्येक एक २ पल ( ४-४ कर्प ) लेकर विधिपूर्वक बरक कर लेवे तथा इन्हीं लोष आदि द्रव्यों का विधिपूर्वक बना प्रत्युत काय ४ प्रस्थ लेवे ( लोष आदि समान मिलित सौ पल और जल एक द्रोण मिलाकर स्वाय करे चतुर्धा अर्थात् एक आदक वा ४ प्रस्थ रहने पर उतार कर छान लेवे ), इन सब ( तैल, छाल के रस, दूध, कल्क और काय आदि ) को एवत्र कर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मुख में धारण करने से दालन, दन्तचाल, दन्तमोक्ष, कपालिका, क्षीता, पूतिषत्र, अरुचि और मुख की शीतता आदि शीघ्र नष्ट होते हैं और दाँतों को भी स्थिर करता है । यह लाक्षादि नामक तैल दाँत के रोगों के लिये अति उत्तम माना गया है ॥ १-४ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—कुष्ठ द्वार्यां शोधकटफलसमन्ना पाठा तिष्ठा सेजरी पीतिका च ।  
 पूर्णं शरत्तं धर्पणे सद्द्रिजानां रसच्छाय हृत्त कण्डूक्य च ॥ १ ॥  
 कुष्ठादि चूर्ण—कुष्ठ, दाहदलदी, लोष, नागरमोषा, मजीठ, पुरहनपाड़ी, कुटकी, वच अथवा माल कागनी, इलदी, प्रत्येक समान भाग का चूर्ण बनाकर दाँतों पर पिसने से रस छाव, कण्टू और पीड़ा आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

सौराष्ट्रीप्रिकलामदग्रुटिकृमिद्विदुत्तुत्पप्रशाङ्कं  
 कासीसं खदिरस्य सारममल मायाफल चाऽऽयसम् ।  
 जीमूतं च समांशकं हि सकलं सकुटप यच्छे मृशं  
 पूत सोपयुत रवेपु रवृहृत्विच्छिदुत्तिष्ठद् दृष्टकम् ॥ २ ॥

सौराष्ट्र्यादि योग—फिटिकरी, हरद, बहेड़ा, आंवला, सुपारी, श्लायची, हायविठग, सुतिया, पतंग नामक छवड़ी, कासीस, लैंग, माजूरुल और लौद्विष्ट तथा नागरमोषा प्रत्येक समभाग लेकर कूट पीतकर वल में छान कर जल में मिलाकर दाँतों पर पिसने से दाँतों की पीड़ा नष्ट होती है और दाँत स्वच्छ होता है ॥ २ ॥

द्विघ्नया विष्टया घासा दन्तशूलो विनश्यति । स्वेदिता रवितोयेन च्छलतां नाशयेद् भ्रुवम् ॥  
 दन्तशूल नाशक योग—गुरुच की पीसकर मकोय का रस मिलाकर दाँतों पर लगाने से दाँत की पीड़ा नष्ट होती है और आक के दूध में मकोय का रस मिलाकर स्वेदन करने से दाँतों का दिलना अवश्य ही नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

जातीपत्रादिचूर्णम्—जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरुण्टकुष्ठ घघा  
 शृण्टीदीप्यहरीतकीतिष्ठसम श्लक्ष्णं भृदां चूर्णयेत् ।  
 सश्चूर्णं पद्मे प्लस विजयते दौर्गन्ध्यवत्तव्ययां  
 चाञ्चदयस्वमतिघ्नश्वयधुरुक्ष्णशूकमिष्यापदः ॥ १ ॥

जातीपत्रादि चूर्ण—चमेली के पत्ते, पुनर्नवा, गजपीपरि, बेर की छाल, कूट, वच, सोंठ अजवाइन, हरद और तिल प्रत्येक समभाग का श्लक्षण चूर्ण मुख में धारण करने से दुर्गन्धि, दाँतों की पीड़ा, दाँतों का दिलना, म्रग, घोष, पीड़ा, कण्टू और कुमिदन्त आदि सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

फलान्यम्लानि क्षीताग्यु रूपाक्षं दन्तघावनम् । तथाऽतिकठिन भक्ष्यं दन्तरोगी विषजयेत् ॥

२ तरोग में अपथ्य—अम्बरस, शीतल जल, कृश अन्न, दन्त धावन तथा मलय ३ बनि ( कडा ) पत्तार्थ दांत का रोगी त्याग दे ॥ २ ॥

अथ जिह्वारोगाणां चिकित्सामाह ।

जिह्वागतविकाराणां शस्त द्वाणितमौलणम् । गुग्गुलीपिप्पलीनिषकवल् कटुभिः सुखः ॥१॥

जिह्वा रोग चिकित्सा—जिह्वा रोगों में रफमौलण पराकर गुग्गु, पीपल, नीम की छाल तथा शिबुटा (सोठ, गरिच, पीपल) प्रत्येक समभाग का काष बनाकर कवलधारण करना कामनायक है ॥ ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राविचक्रिणिसतम् । कण्टकेऽनिलोत्थेषु सत्कार्यं भिषगा खलु ॥२॥

वातज जिह्वा रोग चिकित्सा—वातज ओष्ठरोग में चिकित्सा पहले यही गयी है वही चिकित्सा वातज जिह्वा रोग अर्थात् वात के कोप से जो जिह्वा में कटि के समान रोग होता है उसमें करनी चाहिये ॥ २ ॥

पित्तत्रेषु विष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगण्डूपं नस्य च मधुरं हितम् ॥ ३ ॥

पित्तज जिह्वारोग चिकित्सा—पित्तज जिह्वारोग में जिह्वा के कण्टकों को पिसकर दूधित रक्त निवाल कर मधुर ओषधियों के योग से प्रतिसारण, गण्डूष, नस्य और मधुर द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये । इससे लाभ होता है ॥ ३ ॥

उपनिह्नां तु संलक्ष्य चारेण प्रतिसारयत् । शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैवागुपाचरेत् ॥ ४ ॥

उपनिह्नां तु संलक्ष्य चारेण प्रतिसारयत् । शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैवागुपाचरेत् ॥ ४ ॥

उपनिह्ना रोग चिकित्सा—उपनिह्ना रोग में सुख कर क्षार से प्रतिसारण अर्थात् क्षार इस पर लगाया चाहिये और शिरोविरेचन, गण्डूषधारण तथा धूमपान कराना चाहिये और सोठ, गरिच, पीपल, क्षार, हृदय, चित्रकमूल प्रत्येक समभाग के धूम को उपनिह्ना पर पिसना चाहिये अथवा इही ओषधियों के कण्टक के साथ विधिपूर्वक तेल सिद्धकर सवन करने से उपनिह्ना रोग शमन होता है ॥ ४-५ ॥

गृहधूमारागलेन यथाय समधुसैधयम् । पाणिना मन्वच्छाऽऽस्य उपनिह्नाप्रशासनम् ॥ ६ ॥

गृहधूम ( क्षाया ) और कानो का काष बना कर उसमें मधु और सैधानमक मिलाकर अण्डु लियों से मर्दन करने से उपनिह्ना नष्ट होती है ॥ ६ ॥

निर्गुण्ठी मुसलीकन्दं चयमेदुपनिह्नमित् । काष्ठनासपचः छाद्य प्रातरास्य पत्रा मुग्गः ।

कुर्मासपदिरो जिह्वादरणोऽमूलन मुग्गु ॥ ७ ॥

निर्गुण्ठी योग—निर्गुण्ठी और मुसली का कट्ट चयाने से उपनिह्ना नष्ट होती है और कचनार की छाल का कषाव वातज उसमें रीर मिलाकर प्रातः काल वात २ गुण में धारण करने से जिह्वा का दर्ण ( फटा ) नष्ट होता है ॥ ७ ॥

गन्गुलीचिकित्सा—

पुष्पाकफहर गुण्डवां रस गण्डूषधारणे । कुष्ठोपगवचासिःपुष्पावादाप्लवैः सह ॥ १ ॥

गन्गुली चिकित्सा—गन्गुली रोग में कानाद्यक ओषधियों के रस का गण्डूष धारण कराकर दूध, गरिच, कष, सैधानमक, पीपल, सुरबाव दी और नागरनापा प्रत्येक समभाग के धूम को मधु मिलाकर गण्डूष रोग पर लगाया चाहिये ॥ १ ॥

सर्वाङ्गैर्मिश्रणा कार्यं गन्गुलीप्रपणम् । अण्डुणाङ्गुलिमर्दनेनाऽऽत्प्य गन्गुलिनाम् ॥२॥

सर्वाङ्गैर्मिश्रणा कार्यं गन्गुलीप्रपणम् । अण्डुणाङ्गुलिमर्दनेनाऽऽत्प्य गन्गुलिनाम् ॥२॥

हीनमधुपुष्पाकफहर गुण्डवां रस गण्डूषधारणे । सर्वाङ्गैः प्रयानेन हृदकर्म विचारयः ॥ ३ ॥

अण्डु और अणु से मर्दन ( चिमटी ) को करके कर गन्गुली को रोग कर जिह्वा पर पिसने गन्गुली को गन्गुली नामक रस से पुरान के छाल से न करे । कदोकि आपन टेरन को से अधिक रस का सात हो । है जिसमें रोगी मर जाता है और कम टेरन करने से पीप, वातासार और अन्तोग धारि होते हैं । इसलिये दानपूर्वक टेरनादि कर्म करो दुष्टकर्म करो को कधी इस कार्य को कर मुका हो ॥ २-४ ॥

गन्गुलीं तु संदिष्य छर्मात्प्राप्तमिदं कनम् । निष्पद्यतिविवाकुट्टवचामरिचनारैः ॥ ५ ॥

गन्गुलीं तु संदिष्य छर्मात्प्राप्तमिदं कनम् । निष्पद्यतिविवाकुट्टवचामरिचनारैः ॥ ५ ॥

पुष्य पुष्य विधि कार्यों विशेषः दास्यकर्मणि । तालुपाके तु कर्तव्य विधानं पित्तनाशाम् ॥

गलगुण्टी का छेदन करके पीपल, अतिस, कूट, बच, गरिच, सोंठ तथा नमक प्रत्येक समभाग छेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उसमें मधु मिलाकर गलगुण्टी पर अँगुलियों से दाने २ मर्दन करे । गुण्टिकेरी, अभ्रव अथवा अभ्रपरोग, कच्छप, सघात और ताज्ज पुष्पुट इन सब रोगों में इसी विधि से शस्त्र कर्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

स्नेहस्वेदी तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ७ ॥

तालुपाक रोग में पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । ताज्ज शोषरोग में स्नेहन, स्वेदन कर्म करके वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

रोहिणी चिकित्सा—

रोहिणीनां तु साध्यानां हित शोणितमोक्षणम् । यमन धूमपान च गण्डूपो नस्यकर्म च ॥१॥

रोहिणी चिकित्सा—साध्यरोहिणी रोग में रक्तमोक्षण और यमन, धूमपान, गण्डूषधारण और नस्यकर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

घातज्ञो तु हृते रक्ते लघुणैः प्रतिसारयेत् । सुखोष्णा स्नेहगण्डूपाधारयेचाप्यमीषगणः ॥२॥

वातरोहिणी चिकित्सा—वातजरोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर लघुण से प्रतिसारण और वात हारोष्ण स्नेह का गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

विज्ञाम्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियङ्गुभिः । मर्पयेत्कवलो द्राशापरपै कथितैर्हितः ॥ ३ ॥

पित्तज रोहिणी चिकित्सा—पित्तज रोहिणी रोग में रक्तमोक्षण कराकर शकरा, मधु और प्रियङ्गु के चूर्ण का कवक बनाकर उससे घषण और दास तथा फाल्से के घाघ या कवल धारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् । श्वेताविट्कव तीषु तैल सिद्ध ससै चवम् ॥ ४ ॥

कफज रोहिणी चिकित्सा—कफजरोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर श्वेदधूम (शाला), सोंठ, मरिच और पीपल प्रत्येक समान भाग का कवक बनाकर उससे प्रतिसारण कराकर श्वेत अपरा जिता या फिट्किरी बायविठण और दक्षीमूल द्वारा सिद्ध विषा तेल में सैधानमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नस्य लेना चाहिये और इसी तेल का कवलधारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

नस्यकर्मणि घातम्य कवलं च कफोच्छ्रये । पित्तशस्ताधयेद्वैद्यै रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥ ५ ॥

रक्तजरोहिणी की चिकित्सा पित्तजरोहिणी के समान ही करनी चाहिये ॥ ५ ॥

पित्ताम्य कण्ठशालुकं साधयेत्तुषिहकेरिषत् । एककाले घषाग्न च मुञ्जीत सिग्धमदपश ॥

कण्ठशालुक चिकित्सा—कण्ठशालुक रोग में रक्तमोक्षण कराकर गुण्टिकेरी के समान चिकित्सा करनी चाहिये और उसमें एक ही समय रितग्ध तथा अल्प प्रमाण में यवाण का पच्य देना चाहिये ॥ ६ ॥

उपजिह्वकवथापि साधयेदधिजिह्वकम् ।

अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा—अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा उपजिह्वकरोग के समान करनी चाहिये ॥

एकवृन्दं तु विज्ञाम्य विधि शोधनमाचरेत् ॥ ७ ॥

एकवृन्द-चिकित्सा—एक वृन्द रोग में रक्तमोक्षण कराकर शोधन करना चाहिये ॥ ७ ॥

एकपृ-दमिष प्रायो घृद च समुपाचरेत् ।

वृन्द-चिकित्सा—एकवृन्द के समान ही वृन्द रोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ॥

गिलायु रोग चिकित्सा—गिलायु रोग को शस्त्र से चीर फार कर ऋणवत् चिकित्सा करनी चाहिये ॥

अममर्षं सुसम्पद्येद्येद्गलविद्रधिम् ॥ ८ ॥

गलविद्रधि चिकित्सा—गल विद्रधि जो मर्मस्थान में नहीं हो और मली मूर्ति पक गयी हो उसका शस्त्र से छेदन कर ऋण के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

सामान्यानां गलरोगाणां चिकित्सा—

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षैस्तीषणैर्नस्यादिकर्मभिः । चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥



गठ रोगों की सामान्य चिकित्सा—गठ रोगों में दुग्धाल सेव रक्षणोद्यन कराकर शीतल नस्यादि कर्म करे ॥ २ ॥

कायं दूषाद्य दार्वात्वमिन्मुत्ताद्यकटिह्ननम् । हरीतकीकपायो वा हितो मात्तिकसंयुतः ॥२॥  
गण्ड्यादि काय—दारुहल्दी, दालचीनी, नीम की छाल, रसबल और इन्द्र जो प्रत्येक समभाग लेकर विपिपूर्वक बवाय बनाकर विषावे भयवा हरीतकी का बवाय बनाकर वसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान कराये ॥ २ ॥

कटुकाविषिपादारुपाठामुस्ताकटिह्नका । गोमूत्रप्रविद्या पीताः कण्ठरोगविनासनाः ॥ ३ ॥  
कटुकादि काय—कुटकी, अतीस, दारुहल्दी, पुरहनपादी, नागरमोषा और इन्द्रो प्रत्येक समभाग लेकर गोमूत्र के साथ काय करके पान करने से कण्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

शुद्धीकाकटुकाभ्योप दार्वात्वमिन्नफला घनम् । पाठा रसाञ्जन दूषा सेजोद्वैति सुचूर्णितम् ॥४॥  
शुद्धीयुक्तं विधातव्य गलरोगे महीषघ्नम् । योगासयेत् त्रयः प्रोक्ता यातविषयकपापदा ॥ ५ ॥

त्रिणोष नाशक योग—मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मरिच और पीपल के समभाग चूर्ण को शहर में मिलाकर या गोली बनाकर गले में धारण करे तो वासिक गन्धरोग नाश होता है । दारुहल्दी, दालचीनी, इरक, बहेदा, अंबिका, नागरमोषा के समभाग चूर्ण को शहर में मिलाकर चाटने से विषम गलरोग नाश होता है । पुरहनपादी, रसबल, दूब और सेनबल के समभाग चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर गुप्त में धारण करे भयवा चाटे तो कफज गल रोग नष्ट होते हैं ॥

यथाप्रज सेजवतीं सपार्णं रसाञ्जनं क्षारुनिर्णां सकृत्प्याम् ।  
चौत्रेण पुर्वाद्गुटिकां मुखेन सां धारमेत्ययं गलामयेषु ॥ ६ ॥

यथाप्रमादि बटी—यवाखार, सेनबल, पुरहनपादी, रसबल, दारुहल्दी और पीपल प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर विपिपूर्वक बटी बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के गन्धरोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

समस्तमुत्तरीगानां चिकित्सा—

पातासर्वसर्गं चूर्णलंपणैः प्रति सारयेत् । सैलं पाठहरैः सिद्धं हितं कपलमरचयोः ॥ १ ॥

वातज सर्वसर चिकित्सा—वातज सर्वसर रोग में वातनाशक औषधियों के चूर्ण में सेबालमक मिलाकर प्रतिसारण करके वातनाशक औषधियों से सिद्ध दिये वैज का मरच सेना और कपल धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः । सर्वविकहरः कायं विधिर्मपुरसोत्तल ॥ २ ॥

पित्तज सर्वसर चिकित्सा—पित्तज सर्वसर रोग में बमन-विरेचन न शरीर की शुद्ध कराकर सर्व प्रकार की पित्तनाशक, मधुर तथा शीतल चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

प्रतिसारणगण्डूवधूमसंशोधनानि च । कफामके सवसरे त्रयं कुर्वाकफापहम् ॥ ३ ॥

कफज सर्वसर चिकित्सा—कफज सर्वसर रोग में कफनाशक औषधियों से प्रतिसारण गण्डूष, धूमपान और बमन, विरेचनादि चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सुरसार्के शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम् । मधुमूत्रपूतस रैः शोथैश्च कपलम्रदः ॥ ४ ॥

सुरसार्क रोग चिकित्सा—सुरसार्क रोग में शिरावेध कराकर शरीरविरेचन देना चाहिये और मधु गोमूत्र, गोपृष्ठ गोदुग्ध और अन्य शीतल पदार्थों का कफन धारण करना चाहिये ॥४॥

जातीपत्राशुताद्रापायामदार्वाकटिह्निकैः । कायः चौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकमुत् ॥२॥  
जातीपत्रादि काय—बनेनी के पत्र, गुरुच, राग, बवासा, दारुहल्दी, इरक, बहेदा और अंबिका प्रत्येक समभाग का काय बनाकर वसमें मधु का प्रक्षेप देकर गण्डूष काय करने से सुरसार्क रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

कार्यं च बहुधा मिथं जातीपत्रस्य सर्वेभ्यः ॥ ३ ॥

सुरसार्क रोग में बनेनी के पत्रों को मिथ्य अनेक बार बराना चाहिये ॥ ३ ॥

शुष्काशरीरकटुद्रव्यवर्षणतद्वदात् । मुखपाकमुत्तरेणैर्गण्डूषमुपवाग्यति ॥ ४ ॥  
शुष्काशरीरकटु रोग—शुष्काशरीर, कूट, इन्द्रो और कपतीन दिन तक कराये से मुखपाक, मधु, बहेदा ( कालासा ) और मधु शीतल नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्याम्रमालतीनवपल्लवैः । पद्मपल्लवजः श्लेष् कपायो मुखघायने ॥ १ ॥

मुखपावन योग—परवल, नीम, जामुन, आम और मालती के पत्ते को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर सेवन करने से मुखरोग दूर होता है ॥ ५ ॥

पद्मपल्लवजः क्वाथस्त्रिकलासम्भवोऽथ वा । मुखपाके प्रयोक्तव्यः सद्योऽत्रो मुखघायने ॥ ६ ॥

उपयुक्त पद्म पल्लव का बना काथ अथवा हरद, बहेड़ा और आंवला का बना हुआ काथ शीतल का उसमें मधु का प्रयोग देकर मुखपाक रोग में प्रयोग करना चाहिये ॥ ६ ॥

श्वरसः क्षथितो दारुर्घनीभूतो रसक्रिया । सद्योऽत्रो मुखरोगाद्युपनाढीप्रणापह ॥ ७ ॥

रसावन योग—दारुहल्ली का काथ बनाकर गाढ़ा कर रस क्रिया द्वारा रसवत् बनाकर उसमें मधु मिलाकर मुख में धारण करने से मुख रोग, रक्तोष और नाड़ी मग ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

ससप्तशुषो क्षीरपटोलमुस्ताहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।

पष्टवाह्वाराजदुमचन्दनैश्च यथायं पिपेरपाकहृ मुखस्य ॥ ८ ॥

ससप्तशुषदादि योग—क्षितवन की छाल, खस, परवल के पत्र नागरमोषा, हरद, कुटकी, जेठीमधु, अमलतास को गुदी और रक्त चन्दन को समभाग लेकर विधिपूर्वक काथ सिद्धकर पान करने से मुखपाक रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिकलाविशालाघ्रायन्तिक्तद्विनिशामृतानाम् ।

पीतः कपायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितघ्नाऽऽस्यमदानशेषान् ॥ ९ ॥

पटोलादि योग—परवल के पत्त, सोंठ, हरद, बहेड़ा, आंवला, माहरि, प्रायमाणा, कुटकी, हल्ली, दारुहल्ली और गुरुच को समभाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रयोग देकर पान करने से अथवा मुख में धारण करने से सब प्रकार के मुख रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

तिला नीलोपल सर्पिः शर्करा क्षीरमेघ च । सलोऽत्रो दग्धवधप्रस्य गण्डूपो दाहनाशनः ॥ १० ॥

दग्धमुख चिकित्सा—तिल, नील कमल, घृत, शर्करा और दूध तथा लोष इन सबको पीसकर गण्डूष धारण करने से दग्ध मुख का दाह नष्ट होता है ॥ १० ॥

हरिद्रातेलम्—

हरिद्रां निम्बपत्राणि मधुक नीलमुपलम् । तैलमेनिर्विषपक्ष्म्य मुखपाकहृ परम् ॥ १ ॥

हरिद्रा तेल—हल्दी, नीम के पत्ते, मुलहठी और नीलकमल समान भाग का कक कर अतना ही उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल देकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर सेवन करने से मुखपाक नष्ट करने में उत्तम है ॥ १ ॥

यष्टीमध्वादितैलम्—

यष्टीमधुपलमेक त्रिंशक्षीलोपलस्य तैलस्य । प्रस्यं तद्द्विगुणपयो विधिना पक्व तु नस्येन ॥

निशि वदनस्य स्याव षपयति गाप्रस्य द्योपसहातम् ।

यधुस्वर्णरवमधर्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जत्तुनाम् ॥ २ ॥

यष्टीमध्वादि तेल—जेठी मधु एक पल, नीलकमल तीस पल दोनों का विधिपूर्वक बल्क करे और मूर्च्छित तिल का तेल एक प्रस्य तथा तेल के दुगुना ( २ प्रस्य ) गोबुध और चौगुना ( पाकार्थ ) जल लेकर सबको एकत्र कर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर रात्रि में इस तेल का नस्य लेने से मुखदाह तथा मुख के अनेक रोग समूह नष्ट होते हैं । यदि मनुष्य इस तेल का नित्य अभ्यङ्ग ( मर्दन ) करे तो शरीर स्वर्ण के समान कान्ति वाला अवश्य हो जाता है ॥ १-२ ॥

खिरादिशुटिका—

खविरस्य गुलां तोयद्रोणे पत्रत्वाऽऽशेषिते । जातीकोशेन्दुपुगैश्च चातुर्जातमृगाण्डजैः ॥ १ ॥

पृथक्कर्मितैः पिष्टैर्मैल्यिरवा चणोपमाम् । गुटीं कृत्वा भूक्षे धार्यां सा निहन्यखिलाङ्गदान् ॥

जिह्वोष्ठवन्तवदनगलताल्लसमुञ्जवान् ॥ २ ॥

खिरादि शुटिका—खैर की छाल एक गुला ( १०० पल ) और जल एक द्रोण ( ४ भाद्रक ) लेकर काथ की विधि से पाक करे, जब अष्टमांश ( २ प्रस्य ) शेष रहे सब उत्तार—धानकर उसे

फिर औटा कर गाढ़ाकर उसमें जावित्री, कपूर, सुपारी, दालचीनी, श्यावपी, शकपात, नगकेसर और फस्ती पृथक् २ एक २ वर्ष पूर्ण मिलाकर सरल में मर्दन कर घने के प्रमाण की बटी बना पर मुख में धारण करने से जीम, ओठ, दौग, मुँस, गला और ताल के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥

अथ—

पुण्य सखिरसारस्य खेषां पूर्णं त्रिनिश्चिपेत् । जातीकडूलेकपूर्वकमुकाणां विचक्षणं ॥

शुटिकास्तु प्रकृतस्या सुरै र्याप्याः सखैव हि ॥ १ ॥

जावित्री, कडूल मरिच, कपूर तथा सुपारी को पृथक् २ समाग भाग का पूर्णर पूर्ण के समान सैर का घूण मिलाकर मग्न कर जल के साथ विधिपूर्वक बटी बनाकर नित्य मुग में धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

ताम्बूलमध्यस्थितचूर्णकेन दग्ध मुख यस्य भवेत्कर्पवित् ।

सैलेन गण्डूपमसौ विदध्यादम्भारनालेन पुनः पुनर्वा ॥ २ ॥

पान के घूने से जले मुग की चिन्तना—पान में एगे हुए घूने से यदि किसी का मुख बल (कट) जावे तो बार २ सेल अथवा अम्बुकाजी का गण्डूप धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

पध्यापध्वविधि —

स्वदो विरेकी धमन गण्डूपः प्रतिसारणम् । कषटोऽसृक्प्लुतिर्नस्य धूमः शशाजिह्वमि ॥१॥

गुणधान्य यथा मुद्गाः कुलथ्या जाङ्गलो रसः । गण्डूपत्रो कारयेद्वलं पटोलं घाटमूढकम् ॥ २ ॥

कपूर्वनीर ताम्बूल सप्तम्यु सदिरो घृतम् । कटुतिक्तौ च घर्गाऽथ मित्रं स्यात्सुररोगिणाम् ॥

पध्यापध्व—रवेद कर्म, विरेचन, वमन, गण्डूपधारण, प्रतिसारण, पथलधारण रक्षण (रक्तनोक्षण), नस्यकर्म, ध्रुपवान, शक्यकर्म (धीर-पार) और अत्रिकर्म (जा का अलना) से सभी कियामें तथा एतापान्य, जी, मूग, कुडवी, जांगलजीरी का मांसारस, मूसली करंडो, परबल, छोटी मूली, कपूर का पानी, पान, उणोदक, रीर, घृत, कडूरस द्रव्य और जिकरस वाले द्रव्य ये सभी सुररोग वाले के लिये पध्य हैं ॥ १-२ ॥

दन्तकाष्ठं रानानमलं मास्यमानूपमामिपम् । दधि चीर गुडं मायं रणार्त्तं कठिनाशगम् ॥३॥

अधोमुखेन क्षयनं शुचिभिष्यन्वकारि च । सुररोगीषु सर्वेषु दिवानिर्वा च वर्जयेत् ॥ ५ ॥

दंतपावा, रान, अमल रस वाले पदार्थ, गडली, आनूप जीरो का मां, दही, दूध, गुड, उदद, रूक्ष अन्न, कठि (पवान वाले) पदार्थ का मयग, नीचे मुँह करके सोना, गुग तथा अभिष्यन्दी पदार्थ तथा शिवा का सोना ये सब सुररोग में अपध्य हैं ॥ ४-५ ॥

अथ कर्णरोगाधिपारः ।

अधरवायजलक्रीडाकर्णकण्डूपमैमदम् । मिथ्यायोगेन शङ्करप वृषितोऽन्वैद्य कोपनैः ॥ १ ॥

प्राप्य श्रोत्रशिरा कुर्यात्पूजं घ्रातमि यगयान् । स वै कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिता ॥

कर्ण रोग निदान—श्रोत्र में अधिक रहने से, मूत्र में अधिक श्लेष्मा बरों से, कान को अधिक शुभ्रबाने से और प्यथं शक्य प्रयोग करने से अथवा अन्य प्रकार के कुर्वित होने वाले कारणों से कर्ण रोग उत्पन्न हो जाता है । वे कान में उत्पन्न होने वाले रोग २८ प्रकार के बने गये हैं ॥ १-२ ॥

तत्र कर्णरोगानां नामानि संसदा चार—

कर्णशूल प्रगाह्व च धारिर्षं चरुध प्व च । कणघ्रातः कर्णकण्डू अण्णगुधरुणधैव च ॥ ३ ॥

प्रतिमाहो जम्बुकर्णो विद्रधिर्द्विद्विषस्तथा । कर्णपाकः पूतिकर्णरुणधैवाणांश्चगुविषम् ॥ ४ ॥

सशार्मुर्वं सप्तविधं शोकघ्नाति चगुविषं । पृथे कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिता ॥ ५ ॥

कर्ण रोगों के नाम—कर्ण शूल, प्रगा, धारिर्षं श्लेष्म, कर्णकण्डू, अण्णगुध, प्रति माह जम्बुकर्ण, दो प्रकार की विद्रधि, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकार के अर्ण, अण्णगुध, सप्त विष रोग और चार प्रकार के श्लेष्म रोग प्रष्टार कर्ण रोग २८ होते हैं ॥ ३-५ ॥

तेषु कर्णशूलस्य संज्ञातिपूर्वकं कणघ्रात—

समाह्वयः श्रोत्रगतोऽन्वेषा चाम्भसमन्ततः शूलमतीव कर्णवाः ।

करोति क्षपेव यदायवमाहृतः स कर्णशूला कथितो दुरामद्ः ॥ १ ॥

कर्णशूल की सम्प्राप्ति—जिस कर्ण रोग में अपने कुपित होने वाले कारणों से कुपित प्रति लोमचारी वायु अन्य कुपित दोषों ( अपने २ कुपित होने वाले कारणों से कुपित रक्त कफादि ) से युक्त होकर कान में प्रवेश करके चारों ओर कान में घातादि दोषानुरूप अत्यन्त शूल उत्पन्न कर देता है उसे कर्ण शूल कहते हैं । कर्णशूल कष्ट साध्य है ॥ १ ॥

मूर्च्छाचुपद्रवसर्गात्कर्णशूलस्यासाध्यतां चाह—

मूर्च्छां चाहो ज्वरः कास बलमोऽथ पमथुस्तथा । उपद्रवा कर्णशूले भयन्येते भरिप्यतः ॥

कर्णशूल की असाध्यता—जिस कर्णशूल में मूर्च्छा, दाह, ज्वर, कास, क्लान्ति और पमन हो मरने वाले के लिये यह कर्णशूल दुःखा है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् ये कर्णशूल असाध्य हैं ॥२॥

कर्णनादस्य लक्षणमाह—

कर्णस्रोतस्थिते चाते शृगोति विविधास्परान् । भेरीमृद्गृहशृङ्गानां कर्णनाद स उच्यते ॥३॥

कर्णनाद के लक्षण—जब कुपित वायु कर्णस्रोतों में प्रवेश कर जाने से कान में भेरी ( नगाड़ा ) शृङ्ग और शृङ्ग आदि अनेक प्रकार के शब्दों का शब्द निरन्तर सुनाई पड़ता है तब उसे कर्णनाद रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

बाधिर्यमाह—यदा शब्दमह पायु स्रोत आधुर्य तिष्ठति ।

शुद्ध श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ४ ॥

बाधिर्य के लक्षण—जिस कर्णरोग में कुपित वायु कफ युक्त अथवा रक्तपित्त युक्त होकर अथवा अकेले जब शब्द यह स्रोत को घेर कर बैठ जाती है तब उससे बाधिरता होती है । ( उसे बाधिर्य कहते हैं ) ॥ ४ ॥

कर्णश्वेदनाह—वायु पित्तादिभिर्युक्तो येणुधोपोपम स्वनम् ।

करोति कर्णयोः श्वेद कर्णश्वेद स उच्यते ॥ ५ ॥

कर्णश्वेद के लक्षण—जिस कर्णरोग में कुपित वायु पित्तादि दोषों से युक्त होकर कर्णस्रोतों में स्थित होती है तब उसमें स वंशी के शब्द के समान अथवा फटे बॉल के छिद्रों में वायु प्रवेश करने से जो शब्द होता है उसके समान शब्द कानों में निरन्तर करता है उसे कर्णश्वेद कहते हैं ॥

कर्णस्त्रावमाह—

शिरोभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथ वाऽपि विद्रव्येः ।

श्वेद्वि पूयं श्रयणोऽनिच्छादितं स कर्णजं स्त्राव इति प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥

कर्णस्त्राव के लक्षण—जिस रोग में शिर में आघात लगने से अथवा जल में डूबने से अथवा कान में दुर्गन्धि विद्रवि के पक जाने से वायु क कोप से पीड़ित कान से पूय का स्त्राव होवे उसे कर्ण स्त्रावरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

कर्णकण्डूमाह—मातः कफसयुक्तं कर्णे कण्डूं करोति हि ॥

कर्णकण्डू के लक्षण—जिस रोग में कुपित वायु कफ से युक्त होकर कान में कण्डू उत्पन्न करे उसे कर्णकण्डू कहते हैं ॥

कर्णगूथमाह—पित्तोष्णशोपितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ ७ ॥

कर्णगूथ के लक्षण—जिस रोग में पित्त की वृद्धा से कान में प्रास हुआ कफ अधिक प्रमाण में सञ्चल जाता है उसे कर्णगूथ ( कान की मील वा खूंट ) कहते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिनाहमाह—

सकर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलापितो घ्राणमुख प्रपद्यते ।

तदा स कर्णप्रतिनाहसञ्ज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥ ८ ॥

प्रतिनाह के लक्षण—उपरोक कर्णगूथ जब स्नेह ( तेल आदि के कान में छोड़ने से ) तथा श्वेदादि से द्रवित हो जाता है और विनीन हो जाता है तब नासिका और मुख में प्रास होता है । उसे कर्ण प्रतिनाह नामक रोग कहते हैं । इस प्रतिनाह के कारण शिर में अर्धभेद रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ८ ॥

कृमिवर्णमाह—यदा तु मूर्च्छान्त्यथवाऽपि जातय सृजन्त्यपत्यायथवाऽपि मक्षिकाः ।

सहस्रअनन्याच्छ्रवणे निरुच्यते मियग्मिराद्यैः कृमिकणको गद ॥ ९ ॥

कृमिकर्ण के लक्षण—बिच कर्णीय में जब ( मांस रक्तादि के कोष होने पर ) कानों में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं अथवा कानों में जब मसिकार्ये बैठकर कृमि उत्पन्न कर देती हैं तब कृमिकर्ण के लक्षणों से युक्त इस रोग को कृमिकर्णक कहते हैं ॥ ९ ॥

पत्रहाण्डि कर्णमविष्ट्यु लक्षणमाह—

पत्रहाण्डि पातपद्यश्च कर्णस्रोता प्रविश्ये हि । भरति व्याकुल्यते च मृदा कुर्वन्ति येदनाम् ॥ १० ॥  
कर्णा निस्तुघते तस्य तथा फरफरायते । कीटे चरति कृच्छीमा निष्पन्दे मन्दपदना ॥ ११ ॥

कानों में पौटाणि प्रविष्ट वे लक्षण—जब कीट पत्रहाण्डि कान के स्रोतों में किसी प्रकार प्रवेश कर आते हैं तब उससे व्याकुलता और कान में छर्ल चुमाने के समान पीड़ा तथा फरफराहट होती है तथा जब वह नहीं चलता है तब पीड़ा मन्द हो जाती है । इस प्रकार के लक्षण बर उत्पन्न हो तब कानों में कीट प्रवेश किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ १०-११ ॥

द्विविधं कर्णविद्रधिमाह—

उतामिपातमभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा क्षोपकृतोऽपरा पुनः ।

स रक्तपीताह्वगमलमाद्यवेत्प्रसोद्भूमायनवाहक्षोपवान् ॥ १२ ॥

कर्ण विद्रधि के लक्षण—कानों में छत और अमिपात से तथा वागादि दोषों के कारण भी विद्रधि उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार कानों में दो प्रकार की विद्रधि उत्पन्न होती है । इनमें रक्त पीत और भ्रूण वर्ण लाव होता है, तथा छर्ल चुमाने के समान पीड़ा, भ्रूमोदनन के समान होने वाली पीड़ा, दाह तथा चोच ( चूमने के समान पीड़ा ) होता है ॥ १२ ॥

कर्णपाकमाह—कणपाकस्तु पित्तैः कायविषलेद्भूतयेत् ॥

कर्णपाक के लक्षण—पित्त दोष के अधिक कोष से कान के भीतर पाक हो जाता है जिसमें कोष होता है और आर्द्रता रहती है ॥

पृथिकर्णमाह—

कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् । पूय स्वति या पृथि स ज्ञेयाः पृथिकर्णकः ॥ १३ ॥

पृथि कर्ण के लक्षण—कान में उत्पन्न छर्ल विद्रधि के एक जाने से अथवा कान में जल भर जाने से जो दुर्गन्धित पूय का आवरण होता रहता है उसे पृथिकर्ण कहते हैं ॥ १३ ॥

कथगगानां क्षोधासुंदासंसां लक्षणान्याह—

कर्णोक्षोधासुंदासंसां विजानीयायुक्तलक्षणैः ॥ १४ ॥

कान में होने वाले क्षोधादि के लक्षण—क्षोष, अर्जुद और कर्णीय के लक्षण जो पहले निर्यात में कह आये हैं उसीके अनुसार जानना चाहिये । केवल स्थान का भेद होगा ही अर्थात् कर्णीय कर्णों के लक्षणों के समान इनके भी लक्षण हैं ॥ १४ ॥

इदानीं चरकोर्ण कर्णीयवर्णस्य वातपित्तकफसंनिपातवृत्तमाह—

नाक्षोऽतिरञ्जर्णमलस्य क्षोषः ग्रायस्तनुवाधधर्मश्च पातात् ।

वातक कर्णीय—वायु के दोष से जो कर्णीय होगा है उसमें माद ( भोक प्रसर के शब्द ) होगा है, अत्यन्त पीड़ा होती है, कान का मल ( मूत्र ) सूख जाता है, दाह उत्पन्न होता है और सुनार नहीं पड़ता है ॥

क्षोषः सहागो दूरण विदाहः सपृथिपीतस्ववर्णश्च पित्तात् ॥ १५ ॥

पित्तक कर्णीय—पित्त के दोष से जो कर्णीय होगा है उसमें क्षोष होगा है क्षोष का वर्ण ल ठिगा सुख होता है, कान के समान पीड़ा होगी है दाह होगी है और पीतवर्ण का दुर्गन्धित लाव होता है ॥

सैमुपकण्टकृत्तिपरक्षोषद्वारिण्यग्निः सवर्णद्वयः कश्चाप्य ।

वातक कर्णीय—कान के दोष से जो कर्णीय उत्पन्न होगा है उसमें कण्टक-वर्ण सुनार होगा है कर्णक कह दुर्ल और सुने सुख, काम में कण्ट होगी है, पित्त ( निधन ) क्षोष होगा है, रोग वर्ण का तथा निनव लाव ( पूर ) होगा है और पीड़ा उत्पन्न होगी है ॥

सर्वानि रूपानि च संनिपातानि च सत्प्रतिषेधोपवर्णैः ॥ १६ ॥

सतिपातत्र कर्णरोग—सतिपात से जो कर्णरोग होता है उसमें यातादि सभी दोषों के लक्षणों से युक्त और सभी दोषों के वर्णों से युक्त अधिक स्थाव होता है तथा जिस दोष की बाहुल्यता होती है उसके प्रत्यक्ष लक्षण और वर्ण भी दीखारं पड़ते हैं ॥ २६ ॥

### अथ कर्णपालीरोगनिदानम् ।

तत्र परिपोटलक्षणमाह—

सौकुमार्याधिशास्त्रे सहसैवातिवर्धिते । कर्णपाक्ष्यां भवेच्छोथः सरुजः परिपोटवान् ॥ १ ॥

कृष्णारुणनिभः स्तब्ध स घातात्परिपोटक ॥

परिपोट के लक्षण—सुकुमारता के कारण कान के छिद्रों की बहुत दिनों तक उपेक्षा करने से और एकाएक उभे अत्यन्त बढ़ाने से कर्णपाली में शोथ हो जाता है, उसमें पीड़ा होती है परिपोट होता है, वर्ण उसका कृष्ण या अरण वर्ण का स्वरूप (निश्चल) होता है उसे परिपोट कहते हैं, यह वात के कोप से होता है ॥ २६ ॥

उत्पातमाह—गुर्वाभरणसयोगात्ताडनाद्वर्षणादपि ॥ २ ॥

शोथः पाक्ष्यां भवेच्छोथो दाहपाकरजान्वितः । रक्षो घा रक्षचित्ताभ्यामुत्पातःस गदो मतः ॥

उत्पात के लक्षण—कान में गुह आभूषण के अधिक पहनने से, कान पर मारने से अथवा प्रयण होने से कर्णपाली में शोथ हो जाता है जिसका वर्ण श्याम होता है उसमें दाह होती है, पाक होता है और पीड़ा होती है तथा वर्ण रक्त भी होता है । इस रोग को उत्पात रोग कहते हैं, यह रक्त और विच के कोप से होता है ॥ २-२ ॥

उन्मथकमाह—

कर्णं यलाद्वर्धयतः पाक्ष्यां घायुः प्रकुप्यति । कफसमुदाहृते शोथ स्तब्धमपेदनम् ॥

उन्मथकः सकण्डूको विकारः कफपातजः ॥ ४ ॥

उन्मथ के लक्षण—बलपूर्वक कान को बढ़ाने से कर्ण पाली में वायु कुपित हो जाती है और कफ को लेकर शोथ उत्पन्न कर देता है वह शोथ निश्चल, पीड़ा रहित अथवा अल्प पीड़ा युक्त होता है और उसमें कण्डू भी होता है । उसे उन्मथक रोग कहते हैं । यह वात और कफ के कोप से होता है ॥ ४ ॥

दुःखवर्धनमाह—सवर्धमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहृजान्वितः ।

शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्धन ॥ ५ ॥

दुःखवर्धन के लक्षण—कान को बढ़ाते हुए यदि उसमें दुर्विद्ध हो जावे (देवकृत छिद्र के अतिरिक्त शोथ कर बढ़ाने का ध्यान किया जावे) तब उसमें कण्डू, दाह और पीड़ा युक्त शोथ हो जाता है तथा उसमें पाक भी होता है । उसे दुःखवर्धन कहते हैं । यह त्रिदोष के कोप से होता है ॥ ५ ॥

परिलेहिनमाह—कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सपपाभा विसर्पिणः ।

कुर्वन्ति पिटिका पावयां कण्डूदाहृजान्विताः ॥ ६ ॥

कफासृक्कृमिसमूता स विसर्पश्चित्तस्ततः । विलिङ्गात्सकलां पालीं परिलेही च स स्मृतः ॥ ७ ॥

परिलेहिन के लक्षण—कफ और रक्त के कृमि जो सरसों के समान श्वर उधर पसरने वाले होते हैं । वे कुपित होकर कर्णपाली में पिटिका उत्पन्न कर देते हैं उसमें कण्डू, दाह और पीड़ा होती है । वह कफ-रक्त के कृमियों से उत्पन्न पिटिका श्वर-उधर पसरती है और सम्पूर्ण पाली को चाट लेती है (पाली के मांस को नष्ट कर देती है) उसे परिलेही कहते हैं ॥ ६-७ ॥

### अथ कर्णरोगाणां चिकित्सा ।

कर्णपूरणविधि—

स्वेदयेत्कणदेशं सु किञ्चिन्नुः पारवशायिनः । मूत्रै स्नेहै रसैः कोष्पैस्तच्च धोत्र प्रपूरयेत् ॥ १ ॥

कर्णपूरण विधि—कर्ण रोग के रोगी को एक करबट सुलाकर उसके कर्ण प्रदेश को पहले स्वेदन करके पक्षाण गोमूत्र, स्नेह पदार्थ (घन तैलादि) और ओषधियों के स्वरस को थोड़ा गरम कर उससे कान के योत को पूरा करना चाहिये ॥ १ ॥

कर्णं च पूरितं रक्षेद्भूत पञ्च पातानि च । सहस्र वाऽपि मात्राणां शोथकण्ठशिरोगदे ॥ २ ॥  
 कान के रोगों में कान में पूरण औषधियों की भरकर एक छोटी मात्रा तक गरा रहने देवे  
 अर्थात् भागे जो मात्रा का प्रमाण वहेग उसक अनुसार १०० मात्रा की भ्रषि तक औषधि को  
 कान में रहने देवे । कण्ठ के रोगों में जो कर्ण पूरण करे उसे ५०० मात्रा की भ्रषि तक औषधि  
 को कान में रहने देवे और शिर रोगों में जो कर्ण पूरण करे उसे १००० मात्रा की भ्रषि तक  
 औषधि को कान में रहने देवे ॥ २ ॥

स्वजानुगः करावर्तं कुर्याच्छ्रोत्रिकया पुतम् । एषा मात्रा भवेदेका सर्वप्रैव विनिश्चयः ॥ ३ ॥  
 मात्रा का प्रमाण—अपने जानु के पास जुटकी बजाते हुए हाथ को ले जाये, इसमें जिज्ञा  
 समय लगे उसे एक मात्रा कहते हैं ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ३ ॥

रसाद्यै पूरणं कर्णे भोजनाप्रापमदास्यते । तैलाद्यै पूरणं कर्णमास्करेऽस्तमुपागते ॥ ४ ॥

कर्ण पूरण का समय—औषधियों के रस (स्वरस) आदि से यदि कर्ण पूरण करना हो तो  
 भोजन के पहले करना चाहिये और यदि औषधि सिद्ध तैलादि से कर्णपूरण करना हो तो अर्थात्  
 होने पर करना चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशूले कर्णनादे वाधियं द्येद एव च । चतुष्पथि च रोगेषु सामान्यं भेषजं श्युतम् ॥ ५ ॥  
 कण्ठशूल, कर्णनाद, वाधियं और कण्ठशूल रोग में सामान्य औषधि का व्यवहार करना चाहिये ॥  
 शूलेयरम शौथ सभय सैत्मेय च । कटुष्ण कर्णयोर्धार्द्यमेतत्स्याद्देहनापहम् ॥ ६ ॥

कर्णशूल की चिकित्सा—अदरक का स्वरस, मधु, सेंधानमक और सरसों का तैल गरम कर  
 कान में डालना चाहिये । इससे कान की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

लघुनादकंशिमूर्णां धारण्या मूलकस्य च । कडुषयाः स्वरसं श्रेष्ठं कटुष्णः कर्णपूरणे ॥ ७ ॥  
 लघुनाद, अदरक, सडिजा की छाल, माहुरि की जड़ और केले के पत्र के स्वाम को धीरे  
 उष्ण करके कान में डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अर्काङ्कुरानगुलपिष्टान्तरतैलैस्तथगान्वितान् । सतिश्रुप्यासुधाकाण्डे कोरिते शूलनाथाऽऽगृते ॥  
 पुटपाकक्रियास्विन्नं पीद्येदारसागमात् । सुतोष्णं सद्रसं कर्णे मधिपेषुल्लान्तपे ॥ ९ ॥

अर्काङ्कुरादि योग—मन्तार के अङ्कुरों को कांती के साथ पीसकर उसमें (सरसों का) तैल  
 और सेंधानमक मिलाकर उसे शूल के तेल में सिद्ध बनाकर उसमें भरकर मिट्टी से बन्दकर फिर  
 उस पर शिथिपूर्वक पुटपाक की क्रिया से मिट्टी का लेप करके पाक कर स्वरस तैलादि से  
 स्वरस को सुतोष्ण करने कान में छोड़ने से कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ९ ॥

शपस्य पण परिणामपीतमाभ्येगं द्विसंशिरिषोगतसम् ।  
 थापीद्य सस्यागु सुतोष्णमेव कर्णं निविर्कं हरेत्सर्विष्टम् ॥ १० ॥

मदार के पके हुए पीले पत्तों को छिरा उस पर गूँथ लगा कर अंगीरे पर गरम कर उसको  
 मसल कर रग निचोड़ कर कत सुतोष्ण स्वरस को कान में छोड़ने से अल्पसंशिरिष कर्णशूल भी  
 नष्ट होता है ॥ १० ॥

सीमशूलगुरे कर्णे सरागे बन्धुवादिनि । क्षामगूरं प्रजातन्त्रि कोष्णं सैम्पयसंयुगम् ॥ ११ ॥

क्षामगूर योग—क्षीर बनी शूल जिसमें क्षाम डोला हो, पाक हो गया हो कर्ण में बरती के गूर  
 में सेंधानमक मिलाकर शिशिर कण्डू कान में छोड़ने से शूल पाक गूर बन्धु भी अल्पसं  
 नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

सैतं स्पेनाहमूलेगं मन्वेऽग्नी विधिना श्यम् । हरेदाद्यं त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रहृतम् ॥ १२ ॥

स्वोत्तक रीज—स्वोत्तक की जड़ के कण्डू के साथ तेल पाक की शिथि से मूत्र को मन्  
 अग्नि पर पाक कर क्षाम पूरण करने से त्रिदोषक कर्णशूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १२ ॥

द्विष्टगुणैः पञ्चशुष्ठीमिरुसैतं सपपसम्भवम् । शिथिकर्णं हरेत्स्वरसं कर्णशूलं प्रहृतम् ॥ १३ ॥

द्विष्टादि तैल—हीन, सेंधानमक और मोठ के कण्डू के साथ तैल पाक की शिथि से सरसों के  
 तैल मसकर कर्णशूल करने से कर्णशूल अल्पसं नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

कर्णशूले कर्णनादे वाधियं द्येद एव च । पूरणं कटुष्णैश्च द्विसंशिरिषोऽगृते ॥ १४ ॥

कर्णशूल कर्णनाद, वाधियं और कर्णशूल रोग में क्षामनादक कोष्णों के स्वरस के साथ तैल

पाक की विधि से सरसों के तेल को पकाकर कर्णपूरण करने से उपर्युक्त चारों रोगों को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

**अपामार्गतेलम्—**अपामार्गपारजले सारकृतकश्केन साधित तिरजम् ।

अपहरति कर्णात्तद् बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ १ ॥

**अपामार्ग तैल—**अपामार्ग क्षार के जल में चतुर्धा मूँछित तिल वा तेल और तेल के चतुर्धा अपामार्ग क्षार का कलक मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्णनाद तथा बापीयता भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

**बित्थतेलम्—**

शर्वा मूत्रेण विद्वानि विद्वान् सैल विपाचयेत् । सजल च सदुग्ध च तद्बाधिर्यंहर परम् ॥ १ ॥

**बित्थ तैल—**गोमूत्र के साथ कच्चे बेल को पीस कर कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूँछित तिल वा तेल और तल के चौगुना जल और गोदुग्ध समान मिलाकर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से बाधिर्य रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

**चरवारितैलम्—**सैल काञ्जिकवीजपूरकरसर्पौद्रेः समुग्रै शृतं

स्यात्सौद्राद्रकक्षिप्रमूलकदलीकन्दद्रघैर्वा समम् ॥

शुण्ठीतुम्यहृद्दिङ्गुभि शृतमपि स्यात्कर्णशूलापहं

सिद्ध विद्वगरेण साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यंजित् ॥ १ ॥

**चत्वारि तैन्—**काजी, बिजौर नीबू का रस, मधु और गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पकाया हुआ तेल अथवा मधु, आर्द्रक का रस, सहिजन की जड़ का रस और केले की जड़ का स्वरस इनके साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा सोंठ, तेजबल के फल और हींग के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा बेलगिरि की गोमूत्र के साथ पीसकर बहक कर उसमें चौगुना मूँछित तिल का तल और बकरी का दूध मिलाकर तलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर इन चारों योगों में से किसी एक योग युक्त तेल को कान में डालने से बधिरता और कर्णशूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

**दिङ्गुवादितैलम्—**

हिङ्गुवन्ददारुमिसिमूलकमस्मभूजत्वष्टारसिन्धुरुचकोन्निदक्षिप्रुविशै ।

सस्वर्जिकायिद्वचञ्जनमातुलुङ्गैरम्भारसै समधुसूक्ष्मिदं विपकम् ॥ १ ॥

सैल प्रसिद्धमिति तच्छूयणामयध्न कर्णप्रणादयधिरवहर नाराणाम् ।

भ्रूमस्तकध्रवणशकुलिकान्तरालशूलापह धरकसुश्रुतपूजित च ॥ २ ॥

**दिङ्गुवादिहार तैल—**हींग, नागरमोधा, दारुहलदी, सीप, मूली का भरम, भोजपत्र, यवाखार, खैदानमक, रुचक नमक, उद्भिद् नमक सहिजन की छाल, सोंठ, सज्जी विद्वलवण, वच, अञ्जन ( कृष्णाञ्जन ) अथवा रमवत और बिजौर नीबू के रस को समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूँछित तिल वा तेल और तेल से चौगुना केले का स्वरस और मधु युक्त ( आगे मधुयुक्त बनाने की विधि पढ़ेंगे ) एकत्र कर तलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कर्णप्रणाद बाधिर्य तथा भ्रूदेश, मस्तक, कानों की शकुली के अन्दर होने वाले शूल आदि रोग नष्ट होते हैं । रस प्रसिद्ध तेल को चरक और सुश्रुत ने भी अष्ट माना है ।

**मधुयुक्तम्—**

जंयीराणां फलरस प्रस्यैक कुटवोन्मितम् । माषिकं तत्र दातव्य विप्वली च पलोन्मिता ॥

घृतभाण्डे निधायैतद्धान्यराशौ विधारयेत् । मासेन तज्जातरस मधुसूक्ष्म प्रजायते ॥ २ ॥

**मधुयुक्त की विधि—**जम्बीरी नीबू के रस एक प्रस्य, मधु एक कुटव ( १६ कर्प ) और पीपल का चूर्ण एक पल लेकर सबको एकत्र कर घृतभाण्ड में रस कर मुखमुद्रण करके धान्यराशि में रख देवे, एक मास के पश्चात् जब उसमें रस हो जावे तब उसे निवाल कर छान कर रस लेवे । इसे मधुयुक्त कहते हैं ॥ १-२ ॥

**- दीपिकातैलम्—**

महसः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलिभि च । सौमेणाऽऽपेष्टस्य ससिन्धु तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १ ॥

यसैल द्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेनैव पूरयेत् । शैथं तद्दीपिकातैल कुष्टदेवतरोस्तथा ॥ २ ॥



कर्णं च पूरित रवेऽद्युत पद्म दासानि च । सहस्र वाऽपि मात्राणां भोजकण्डिरोगदे ॥ २ ॥  
 कान के रोगों में कान में पूरण ओषधियों का भरकर एक सौ को मात्रा तक करा रहने देव  
 अर्थात् भागे जो मात्रा का प्रमाण बढ़े उसको अनुमार १०० मात्रा की अवधि तक ओषधि को  
 कान में रहने देवे । कान के रोगों में जो कर्ण पूरण करे उसे ५०० मात्रा की अवधि तक ओषधि  
 को कान में रहने देवे और शिर रोगों में जो कान पूरण करे उसे १००० मात्रा की अवधि तक  
 ओषधि को कान में रहने देवे ॥ २ ॥

स्वजानुन कारावर्त कुर्याच्छ्रोत्रिकृपा युतम् । एषा मात्रा भवेदेका सप्तशैव विनिश्चयः ॥ ३ ॥  
 मात्रा का प्रमाण—अपने जानु के पास जुटकी बजावे हुए हाथ को छ जावे, इसमें जितना  
 समय लग उसे एक मात्रा कहते हैं देखा सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ३ ॥

रसाद्यैः पूरण कर्णे भोजनाभ्यावप्रदास्यते । तैलाद्यैः पूरण कर्णे भास्कोऽस्तमुपागते ॥ ४ ॥

कर्ण पूरण का समय—ओषधियों के रस (स्वरास) आदि से यदि कर्ण पूरण करना हो तो  
 भोजन के पहले करना चाहिये और यदि ओषधि सिद्ध तैलादि से कर्ण पूरण करना हो तो घरास  
 होने पर करना चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशूले कर्णनादे वाधिष्ये श्वेद एव च । क्षुण्णोऽपि च होगेयु सामान्य मेपजं श्लुत्तम् ॥ ५ ॥

कर्णशूल, वर्णनाद, श्वापिय और कण्ठघट रोग में सामान्य ओषधि का व्यवहार कराना चाहिये ॥  
 श्लुत्तमेरस सौद्र सघ्नय तैलमेव च । कटूष्ण कर्णयोर्घ्रायमेतत्स्वाद्देदनापहम् ॥ ६ ॥

कर्णशूल की निवृत्ति—अदरक का स्वरस, मधु, सेषानमक और सरसों का तेल गरम कर  
 कान में डालना चाहिये । इससे कान की पीडा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

एतुनाद्रकशिम्प्रां वारुण्या मूलकस्य च । कद्रव्या स्वरस श्लेष् कटुष्णाः कणपूरणे ॥ ७ ॥

लहान, अदरक, शिम्प्रा की घाल, माहुरि की जड़ और श्लेष् के दम्ब के स्वरस को डोडा  
 रण करके कान में डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अर्काङ्गुरानग्लपिष्ठान्ततैलैश्चैषाणावितान् । सनिद्रभ्यामुपाकाण्ठे कोरिठे मृशजपाऽऽशृते ॥

पुटपाकक्रियास्विन्न पीडयेदारसामाह । सुखोष्ण तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेत्तूलतान्तये ॥ ९ ॥

अर्काङ्गुरादि योग—मदार के अङ्गुरों की काँजी के साथ पीसकर उसमें (सरसों का) तेल  
 और सेषानमक मिलाकर इसे मूर के टंठे में छिद्र बनाकर उसमें भरकर मिट्टी से बन्द कर फिर  
 उस पर विधिपूर्वक पुष्पाक की त्रिपा स मिट्टी का लेप करके पाक कर स्वरस निकाल लेंगे । उस  
 स्वरस को सुखोष्ण करके कान में छोड़ने से कर्णशूल गमन होता है ॥ ९ ॥

अर्कस्य पत्र परिणामपीतमायेन लिप्त निखियोगतप्तम् ।

आपीड्य सस्याम्बु मुषोष्णामेज कर्णे निषिक्त हरतेऽतिशूलम् ॥ १० ॥

मदार के पत्रों के हुए पीले पत्रों को लेकर उस पर पूट लगा कर अंगीरे पर रखाकर उसको  
 मसल कर रस निकोड़ कर उस घुसोष्ण स्वरस को कान में छोड़ने से अत्यन्त उग्र कर्णशूल भी  
 नष्ट होता है ॥ १० ॥

सीयशूलातुरे कर्णे सरागे वलेदवाहिनि । द्यागम्य प्रमंमन्ति कोष्णं सौषवसपुतम् ॥ ११ ॥

द्यागम्य योग—सीय कर्ण रण जिसमें श्राव होता हो, पाक हो गया हो उसमें बरों के मूत्र  
 में सेषानमक मिलाकर मिश्रित रणका कान में छोड़ने से श्राव पाक हुए कर्णशूल भी नष्ट  
 हो जाता है ॥ ११ ॥

सैले स्तोनाकमूलेन भन्देऽम्बौ विधिना श्लुत्तम् । हरेदाद्य त्रिदोषोर्षं कर्णशूल प्रपूरणम् ॥

स्तोनाक तैल—स्तोनाक की जड़ के बरक के साथ तैल पाक की विधि में तैल की गर  
 मित पर पाक कर कर्ण पूरण करने से त्रिदोष का कर्ण शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १२ ॥

द्विदुग्धैः चवशुण्ठीभिस्तैले संपपसन्मवम् । विनश्य द्रवतश्वार्षं कर्णशूलं प्रपूरणम् ॥ १३ ॥

द्विग्धादि तैल—शौण्ठी सेषानमक और शौठ के बरक के साथ तैल पाक की विधि से एतरी का  
 तैल पकाकर कर्ण पूरण करने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

कणशूले कर्णनादे वाधिष्ये श्वेद एव च । पूरण कटुश्लेष्णैः क्षिप्तं वानप्रसौपयम् ॥ १४ ॥

कर्णशूल कर्णनाद, श्वापिय और कण्ठघट रोग में मात्रायाव और रोगों के बरक के साथ तैल

पाक की विधि से सरसों के तेल को पकाकर कर्णपूरण करने से उपर्युक्त चारों रोगों को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

अपागार्गतेलम्—अपागार्गधारजले तारुतकषकेन साधित तिलजम् ।

अपहरति कर्णनाद धार्धिर्यं चापि पूरणत ॥ १ ॥

अपागार्ग तेल—अपागार्ग धार के जल में ननुर्धारा मूच्छित तिल या तेल और तेल के चतुर्धारा अपागार्ग धार का एक मिलाकर तेल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्णनाद तथा धार्धियता भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

निम्बतेलम्—

शर्वां मूत्रेण विष्वानि पिष्ट्वा तैल विपाचयेत् । सजलं च सदुग्धं च तद्गार्धिर्यं हर परम् ॥ १ ॥

निम्ब तेल—गोमूत्र के साथ कच्चे बेल को पीस कर कूक बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूच्छित तिल का तेल और तल के चौगुना जल और गोदुग्ध समान मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर कान में डालने से धार्धिर्य रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

चरवारितैलम्—तैल काञ्चिकयीजपूरकरसर्पौद्रेः समुग्रै शृतं

स्यात्पौद्गाद्रकदिप्रमूलकदलीकन्दद्रघैर्वा समम् ॥

शुण्ठीतुग्यहृद्दिग्भुभि शृतमपि स्यात्कर्णशूलापहं

सिद्ध विष्वगरेण साजपयसा मूत्रेण धार्धिर्यं जित् ॥ १ ॥

चत्वारि तैल—काजी, बिजौर नीबू का रस, मधु और गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पकाया हुआ तेल अथवा मधु, आर्द्रक का रस, सहिजन को जड़ का रस और केले की जड़ का स्वरस इनके साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा सोंठ, तेजबल के फल और हींग के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा बेलगिरि की गोमूत्र के साथ पीसकर बरक कर उसमें चौगुना मूच्छित तिल का तेल और बकरी का दूध मिलाकर तलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर इन चारों योगों में से किसी एक योग युक्त तैल को कान में डालने से बधिरता और कर्णशूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दिग्वादितैलम्—

हिङ्गवन्ददाहमितिमूलकभस्ममूजत्वणारसिन्धुवृषकोद्भिदक्षिप्रविशै ।

सस्वर्भिकापिद्वचाञ्जनमातुलुङ्गैरम्भारसैः समधुसूक्तमिदं विपकम् ॥ १ ॥

तैल प्रसिद्धमिति तच्छूणामयत्न कर्णप्रणादधार्धिर्यवहर माराणाम् ।

भ्रूमस्तकप्रघणशाकुलिकान्तरालशूलापहं धरकसुश्रुतपूजितं च ॥ २ ॥

दिग्वादिहार तैल—हींग, नागरमोथा, दाहहलो, सौंफ, मूली का भस्म, भोजपत्र, यनाखार, खैरानमक, रुचक नमक, उद्भिद नमक, सहिजन की छाल, सोंठ, सन्जी, विट्कवण, वच, अञ्जन (कृष्णाञ्जन) अथवा रमबत और बिजौर नीबू के रस की समभाग लेकर विधिपूर्वक कूक बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूच्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना बेंके का स्वरस और मधु युक्त (आगे मधुयुक्त बनाने की विधि कहेंगे) एकत्र कर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर कान में डालने से कर्णप्रणाद, धार्धिर्य तथा भ्रूदेश, मस्तक, कानों की शम्बुटी के अन्दर होने वाले शूल आदि रोग नष्ट होते हैं । इस प्रसिद्ध तैल को चरक और सुश्रुत ने भी श्रेष्ठ माना है ।

मधुसूक्तम्—

जघीराणां फलरसः प्रस्यैकः कुट्टवोन्मितम् । मापिकं तत्र दास्य्य पिप्पली च पलोन्मिता ॥

शृतभाण्डे निधायतद्धान्यराशीं धिधारयेत् । मासेन तज्जातरस मधुसूक्तं प्रजायते ॥ २ ॥

मधुसूक्त की विधि—जन्वीरी नीबू के रस एक प्रस्य, मधु एक कुट्टव ( १६ कर्ष ) और पीपल का चूर्ण एक पल लेकर सबको एकत्र कर शृतभाण्ड में रख कर सुखमुद्रण करके धान्यराशि में रख देवे, एक मास के पश्चात् जब उसमें रस हो जावे तब उसे निकाल कर ध्यान कर रस लेवे । इसे मधुसूक्त कहते हैं ॥ १-२ ॥

- दीपिकातैलम्—

महत्तं पद्ममूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गलानि च । शौमेणाऽऽवेष्टय ससिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १ ॥

यत्तैलं स्वयते तेभ्यः सुखोष्णं तेनापूरयेत् । श्रेयं सदीपिकातैलं कुष्ठवेपथरोस्तथा ॥ २ ॥

दोपिका तेल—मद्दत्तशमूल ( बेल, गम्भार, गनिया, पावर और सोनापाठा ) की भाठ-भाठ अशुभ को लम्बी छद्दियों को लेकर रेशमी वस्त्र से छपेट कर तेल में मिगोकर जला देवे उसके चो तेल चूवे उस सुखीय ( चोड़े २ गरम ) तल से कर्ण पूरण करने से कर्णरोग नष्ट होते है । इसको दोपिका तेल कहते हैं । इसी प्रकार शूट और देवनास का भी तेल निकाल कर कर्णपूरण करने से कर्ण रोगों में लाभ होता है ॥ १-२ ॥

निगुण्डयादितैलम्—

निगुण्डिजातिरविशृङ्गरसोनरम्भाकार्पासशिमुसुरसार्द्रफकारवेक्षयः ।

पुषां रसे तिलभव सविष मुकणवाधिपनादृमिवेदनपूययुक्ते ॥ १ ॥

निगुण्डयादि तेल—निगुण्डी के पत्त, चमेली के पत्ते, भाक के पत्त, मांगरा, छद्दुन, केला, कपास, सद्दिजन, तुलसी, अदरक और करैली इन सब औषधियों के क्वाथ अथवा स्वरस को समान मिश्रित लेवे और उसमें चतुर्थांश मूष्छित तिल का तेल और तेल के चतुर्थांश बसन्तनाम विष का मूक्त मिलाकर तेल पाक की विधि से सिद्ध कर कान में डालने से बधिरता, कर्णनाद, कुमि, पीडा तथा पूय युक्त कर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नागरादितैलम्—

नागरसैन्धवमागधिसुरता द्विद्वेषच्छाद्युन तिलतैलम् ।

अकसुपकपलाक्षरसेन कर्णरुज पधिर विनिहन्ति ॥ १ ॥

नागरादि तेल—सोठ, सेंपानमक, पीपल, नागरमोथा, हींग, बच और छद्दुन को समभाग लेकर कश्क कर जितना हो उसके चौथुना मूष्छित तिल का तेल और तेल के समान नगर और पलास के पत्ते इय पत्तों का स्वरस मिलाकर तल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कान की पीडा और बधिरता नष्ट होती है ॥ १ ॥

कर्णस्त्रावपूतिकर्णकुमिकर्णानां चिकित्सायाह—

कर्णस्त्रावे पूतिकर्णे तथैव कुमिकर्णके । सामान्य कर्म कुर्वीत योगान् वैशेषिकानपि ॥ १ ॥

कर्णस्त्रावादि चिकित्सा—कर्णस्त्राव, पूतिकर्ण और कुमिकर्ण रोग में सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये और विशेष योग भी करना चाहिये । जिसे आगे लिखते हैं ॥ १ ॥

स्वर्जिकाचूर्णसयुक्त वीजपूररस चिपेत् । कर्णस्त्रावद्विप्रादाहस्तेन मद्यम्यसदायम् ॥ २ ॥

सज्जी के चूर्ण में बिजौरि नीयू का रस मिलाकर कान में छोड़ना चाहिये । इससे कर्णस्त्राव, और दाह अवश्य नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

समुद्रफनचूर्णम्—

समुद्रफेनचूर्णं तु न्यस्त धवगतध्रये । पूयन्वायं धर्षं सान्द्रं हन्ति प्यान्तमिवाद्यमान् ॥ १ ॥

समुद्रफन चूर्ण—समुद्रफन के चूर्ण को कान के छिद्रों में छोड़ने से पूय का स्राव होना तथा आ भी इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार धर्ष से अन्धकार ॥ १ ॥

सर्जित्वचूर्णसयुक्त कार्पासीफलजो रस । मधुसम्मिश्रितः सायुः कर्णस्त्रावे पदारथते ॥ २ ॥

सर्जित्वादि योग—सर्ज (राल) की त्वचा का चूर्ण, कपास के पत्र का रस और मधु मिलाकर कान के स्त्राव में छोड़ना चाहिये । इससे लाभ होता है ॥ २ ॥

जम्बवाप्रपत्र तद्वर्णं समीरं बधिर्यकार्पासफल च सान्द्रम् ।

हृत्वा रसं तन्मधुना विमिश्रं सायापहं सम्प्रवृन्ति तज्ज्ञा ॥

पतैः शृतं निम्बकरजतैल ससार्पपं सायहरं प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

जम्बवाप्रपत्र योग—जामुन और आम के कोमल पत्र के पत्र का फल और कपूर के पत्रे पत्र का रस निकाल कर उनमें मधु मिलाकर कान में डालने से कर्णस्त्राव नष्ट होता है और कर्ण ( जामुन-आम के पत्ते आदि ) के स्वरस अथवा दाह से नीम का छल, कपूर छल का तेल अथवा सरसो का तेल विविध प्रकार सिद्ध कर कान में डालने से भी कर्ण स्त्राव नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अम्ब्यायं तैटं शृणु—

आम्रजम्बूपाठाभि मधुकस्य पटरस च । धनिरतु साधितं तैटं पूतिकर्णगद्दोत् ॥

सातिपत्ररसे तैल विषकं पूतिकर्णत्रि ॥ १ ॥

जम्बूराय तैल—आम और जामुन के पत्ते, मुलद्दी तथा बट के पत्ते का काथ अथवा स्वरस के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तैल कान में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है । इसी प्रकार चमेली के पत्तों के स्वरस के साथ सिद्ध किया तैल भी कान में डालने से पूति कर्ण रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कर्णप्रक्षालने पद्मकषाय —

कर्णप्रक्षालने दारुस्तं कषोष्णं सुरमीजलम् । पथ्यामलकमञ्जिष्ठालोध्रतिशुक्रयात्र वा ॥ १ ॥

पद्मकषाय—कर्ण प्रक्षालन के लिये गोमूत्र थोड़ा गरम करके कान में डालना चाहिये अथवा दरद, आँवला, मन्जीठ, लोध और तिन्दुक (सेंदू) का काथ करके इससे कान धोना चाहिये ॥ १ ॥

अयश्च—राजपृष्ठादितोयेन सुरसादिजलेन वा ।

कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्छूर्णैरेतैस्तु पूरणम् ॥ १ ॥

अमलतास के काथ से अथवा सुरसादि गण की ओषधियों के काथ से कर्ण प्रक्षालन करने से और इन्हीं के चूर्ण को कान में छोड़ने से कर्ण स्त्रावादि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रसाभनादियोग —

घृष्ट रसाक्षतन भार्याः चरिण चौद्रसयुतम् । प्रशस्यते विरोत्ये सस्त्रास्त्राये पूतिकर्णके ॥ १ ॥

रसाभनादि योग—रसनग की स्त्री के दूध के साथ घिसकर उसमें मधु मिलाकर कान में छोड़ने से पुराने स्त्राव युक्त पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुष्ठादितैलम्—

कुष्ठं द्विह्रुवपादादशताह्वापिष्वसैर्ध्रुवै । पूतिकर्णापहं सैल यस्तमूत्रेण साधितम् ॥ १ ॥

कुष्ठादि तैल—कुष्ठ, होंग, बज, दारुहल्दी, सारु, सोंठ तथा सैधानमक समान भाग लेकर विधिपूर्वक बरक कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसो का तैल और तैल से चौगुना बकरे का मूत्र मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्धकर कान में डालने से पूतिकर्ण नष्ट होता है ॥१॥

शम्बुकतैलम्—

शम्बुकस्य तु मांसेन कटुतैल विपाचयेत् । तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ १ ॥

शम्बुक तैल—शम्बुक (पोंधे) के मांस के साथ तैल पाक की विधि से सरसो का तैल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्ण नाड़ी नष्ट होती है ॥ १ ॥

गन्धकतैलम्—

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभनेन सुष्टयशकेन कटुतैलपलायकम् ॥

घृत्तूरप्रसरसतुक्षयमिदं विपक्षं नार्थी जयेच्चिरभवाभमपि कर्णजाताम् ॥ १ ॥

गन्धक तैल—गन्धक, मैनसिल और हल्दी का समान भाग चूर्ण कर बरक बनाकर आठपल सरसो के तैल में मिलाये और तैल के समान धतूरे के पत्ते का रस मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्धकर कान में डालने से पुराना कर्ण नाड़ी रोग भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृमिकर्णविनाशाय कृमिर्ही कारयेत्क्रियाम् । घातार्कधूमश्च हितः सार्षपः स्नेह एव च ॥ २ ॥

कृमिकर्ण निवृत्तिसा—कृमि कर्णरोग में इमिनाशक क्रिया करनी चाहिये । बैंगन का धूर्ण कान में देना चाहिये तथा सरसो का तैल कान में डालना चाहिये ॥ २ ॥

पूरितं हरितालेन गव्यमूत्रयुतेन च । धूपने कर्णदौर्गन्धे गुग्गुलु श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३ ॥

गो के मूत्र में दरताल वा चूर्ण मिलाकर कान में भरना चाहिये इससे कृमिकर्ण रोग नष्ट होता है तथा कण दौर्गन्ध रोग में गुग्गुलु वा घृण देना उत्तम है ॥ ३ ॥

कृमिकर्णे योगचतुष्टयम्—

सूर्यावर्तकस्वरसं रसं वा सिन्धुवारजम् । लाङ्गलीमूलतोय वा श्यूपर्णं घाऽपि चूर्णितम् ॥१॥

पुले योगास्तु चत्वारः पूरणारकृमिकर्णके । कृमीक्षिमूलयन्त्रयाष्ट शतपञ्चत्तपाधिकान् ॥ २ ॥

कृमिकर्ण में योग चतुष्टय—सूर्यमुखी अथवा निगुण्डी का स्वरस अथवा कलिहारी के मूल का स्वरस अथवा सोंठ, मरिच और पीपल का समान मिलित चूर्ण इन चारों योगों में से किसी एक योग को कान में डालने से कृमिकर्णक रोग के शतपदी, अष्टपदी आदि कृमि शीघ्र नष्ट होते हैं ॥

गोमाक्षकाया योग—

दृग्तेन घर्षयेन्मूल नन्धापर्तपलाशयो । तस्त्राद्यापूरिते कर्णे ध्रुव गोमाक्षका जयेत् ॥ १ ॥

गोमक्षिका नाशक योग—तगर और पलास की जड़ को दौता से चनाकर उसमें बने छार को कान में डालने से गोमक्षिका ( गौ के ऊपर की मक्षिका जो कान में प्रवेश कर जाती है वह ) अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

शुभिकर्णे योगः—

हृत्पिबिभक्तिर्योपानेकीकृत्य प्रकल्पयेद्बृहस्पत्या । वसनान्तरे रसेन ध्रुवणे परिपूरयेद्युक्त्या ॥ १ ॥

कर्णजलीका नियत कृमिकीटपिपीलिकास्तथाऽन्येऽपि ।

निपतन्ति निरयरोपाः कारण्डाश्चापि सुषुप्तस्थाः ॥ २ ॥

कृमिकर्ण योग—टागडी ( कलिहारी ), खर्यमुन्वी, सोठ, मरिच और पीपल को समान लेकर एकत्र कुटकर कपड़े में बाँधकर युक्ति पूर्वक इनका रस निशोध कर कान में डालने से कान की जलीका ( कान खजूरे ), कृमि, कीट, पिपीलिका तथा अन्य छिर भाण्ड में होने वाले कारण्ड शुभिसमी नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

कर्णकण्डूकर्णगूधप्रतिनाहकर्णविद्रधिर्कर्णवाकानां चिकित्साभाह—

स्नेहः स्वेदोऽप्य धमन धूम मूर्ध्नि विरेधनम् । विधिश्च कफहा सर्पः कर्णे कण्डूमत्तीव्यते ॥ १ ॥

कर्णकण्डू, आदि की चिकित्सा—कर्णकण्डू रोग में स्नेहन कर्म, स्वेदन, धमन, धूमपान, शिरोविरेचन और कफ नाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

प्रविलिख्य धीमांस्त्वैलेन प्रविलाप्य च शोधनम् । कणगूधं तु मतिमान्निपयजद्वाञ्छुलाकया ॥

कान में तेल डालकर मेल को ब्येदित ( पीला ) करके सलाई से उसे निकाल कर शोधन पारे । इससे लाभ होता है और कर्णगूध रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् । ततो विरक्तसिरस क्रियां प्रोक्षां समाचरेत् ॥ ३ ॥

कर्ण प्रतिनाह रोग में स्नेहन, स्वेदन और शिरोविरेचन करके भाग की कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

विद्रघ्नौ चा प्रकुर्वन्ति विद्रघ्न्युक्तं चिकिरिसतम् । कणवाकस्य भैषज्यं कुर्पादृतिविमपत्तम् ॥ ४ ॥

कर्ण विद्रधि रोग में विद्रधि रोग में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये और कर्णवाक रोग में अतिविषर्प के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशोथकर्णाद्यैर्कर्णवृन्दानां चिकित्सा—

चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णाशसामपि । कर्णासुदामां कुर्वति शोथार्थोऽर्जुनसिपत् ॥ १ ॥

कर्णशोथ, कर्णाद्यै और कर्णाद्यै चिकित्सा—कर्णशोथ, कर्णाद्य और कर्णाद्य रोग की चिकित्सा शोथ, अर्जुन और अर्जुन की अति करनी चाहिये अर्थात् कर्णशोथ की शोथ के समान, कर्णाद्य की अर्जुन के समान और अर्जुन की कर्णाद्य के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

रास्नाथो गुग्गुलु — रास्नासृतेरुषडमुराहविशं हृष्य सुरेणोपयिगृह्य लायेत् ।

यातामयी कणशिरोगदी च मास्तीमणी चापि भगन्दरी च ॥ १ ॥

रास्नादि गुग्गुलु—रास्ना, गुग्गु, परण्टमूल की शक्वा, देवदारु और सोठ प्रत्येक १-२ माग और सबके बराबर शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर मर्दन कर साँसे वायु के रोगी, कान और छिर के रोगी, नाडीमग्न के रोगी और भगन्दर रोग के रोगी रोग मुक्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ कर्णपालोपिकाराणां चिकित्सा ।

पाटीसंशोषणे क्षुपाद्वातकर्णरुग्ः क्रियाम् । स्वेदयेत्पानतरां तु शिप्या सवर्षयतिष्ठैः ॥ १ ॥

पाटीसंशोषण चिकित्सा—पाटी को चरवा खाते पर बातिक कण्डू में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये तथा यज्ञपूर्वक कर्णपाली का रक्षण करना चाहिये और स्वेदन के पश्चात् तिल को मल कर कर्णाधी की रक्षा चाहिये ॥ १ ॥

साक्षिभयनीतमुत्तं तस्यार्धं धान्यरागिगुपितम् ।

मधुसालिकन्दपूर्णं बृद्धिपरं कर्णवाडीनाम् ॥ २ ॥

नवीन मूसलीकन्द के चूर्ण को भोज के मन्तन में मिलाकर पात्र का मुखमुद्रण कर एक सप्ताह तक पाचराशि में रख देने पराद्य निकाल कर उसे कर्णपाली पर लगाने [से कर्णपाली भी वृद्धि होती है ॥ २ ॥

शतावरी तैलम्—

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्णबीजकैः । तैल विपक सपीर पालीं सवधयेत्सुखम् ॥ १ ॥

शतावरी तैल—शतावरी, असगन्ध, शोरबिंदारी और एरण्ड के बीजों को समान छेकर विधि पूर्वक कूक कर मितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और तैल के चौगुना गोदुग्ध मिलाकर तैलपाक विधि से तैल सिद्ध कर मन्ते से छत्रपूर्वक कर्णपाली बद्ध जाती है ॥ १ ॥

जीवनीय तैलम्—शीतैलैर्पैर्जलैकाभिरुपातं समुपाचरेत् ।

उष्णत चिकित्सा—कर्णपाली में होने वाले उष्णत रोग में शीतल लेप लगावे और जलोका से रक्तमोक्षण करावे । इससे उष्णत नष्ट होता है ॥

जीवन्याचाश्रयघार्कैवाकुषीयीजसैन्धवैः ॥ १ ॥

दुहिलीसुरसाम्यां च गोधाफड्वसामितम् । तैल विपकमम्पद्गादुन्मय माशयेद् ध्रुवम् ॥२॥

जीवनीय तैल—जीवन्ती, असगन्ध, मदार, बाकुची के बीज, सैधानमक कश्मिरी और दुहिली को समानभाग लेकर विधिपूर्वक कूक कर मितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और गोद तथा चोहर की बसा तैल के समान मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कर्णपाली में होने वाला उष्णत रोग अवश्य नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

दुःखवर्धनक सिक्त्वा जम्बवान्नाश्रयपत्रजैः । फार्थैस्तैलेन सुस्निग्ध तश्चूर्णैश्चावधूलयेत् ॥३॥

दुःखवर्धन चिकित्सा—दुःखवर्धन नामक कर्णपाली रोग को जामुन, आम और अशरथ के पत्तों के काष्ठ से धोना चाहिये और बर्हों के काष्ठों से विधिवत् तैल सिद्ध कर उसमें सिंचन करना चाहिये और बर्हों के चूर्ण का अवधूलन करना चाहिये । इस प्रकार की क्रिया से दुःखवर्धनरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पद्मसो गोमयैस्तस्य स्पेक्षित परिलेहितम् । घनसारैः समालिम्पेदनामूत्रेण कषिकतैः ॥ ४ ॥

परिलेहित चिकित्सा—कर्णपाली के परिलेहित रोग में गोबर को बहुत बार तथा २ कर स्वेदन करना चाहिये और बकरी के मूत्र में कपूर को पीस कर कूक बना कर लेप करना चाहिये इससे परिलेहित रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

पथ्यापथ्यम्—

स्वेदो विरेका वमन मस्यं धूम शिराश्रयथ । गोधूमा दालयो मुद्गा यथाथ प्रसन्नं हवि ॥

छावो मयूरो हरिण स्तित्तिरो घनकुबकुट । पटोल शिशु घातक सुनिपण्ण कठिष्ठकम् ॥ २ ॥

रसायनानि सर्वाणि मक्काचयमभायणम् । उपयुक्त यथाज्ञोपमिद् कर्णामये हितम् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, घृष्टपान शिरामोक्षण ( रक्तमोक्षण ) आदि कर्म और गेहू, शालीभान वा चावल, मूंग, जौ, पुराना घृत, हावापक्षी, मोर, हरिण, तिथिर और बन कुबकुट का मांस, परबल, सदिजन बैंगन, सुनिपण्णक शाक, करैला, सभी प्रकार के रासायनिक औषधियों, मक्काचय और अवभायण ये सभी कर्णरोग में पथ्य कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

घ्नन्तकाष्ठ शिरःस्नान व्यायाम श्लेष्मल शुद्ध । कण्डूयन तुषार च कर्णरोगी परिश्यजेत् ॥ ४ ॥

काष्ठ का दनुवन करना, शिर से स्नान करना, व्यायाम करना, कफकारक और गुरुपदार्थ का भोजन करना, कान को सुजलाना और तुषार ( शीत ) संवन इन सबको कान का रोगी श्याग देवे ॥ ४ ॥

इति कर्णरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ नासारोगाधिकारः ।

अवश्यायानिलरजोभास्यातिस्वप्नजागरैः । नीघ्रास्युष्णोपधानेन पीतेनाम्येन चाग्निषा ॥१॥  
अल्पमुपानरमणैश्छुदियाप्यप्रहादिभिः । मृद्धा घातोश्चण्णा द्योवा नासायां स्वानतां गताः ॥  
नासारोग निदान—भोज में अधिक रहने से, वायु के अधिक सेवन करने से, घूल अधिक

नासा में प्रवेश करने से, अत्यन्त भाषण करने से, अत्यन्त सोने और आगने से, नीचे ऊँचे तकिये पर सोने से, अनुचित (नासा आदि) से जल पीने से, अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मैथुन करने से, यमन और अन्न आदि के वेग को रोकने से कुपित हुए वातादि दोष नासिका में बढ़ कर नासारोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र नासारोगाणा नामानि सख्यां चाह—

आदौ च पीनस प्रोक्तं पूतिनासस्ततः परम् । नासापाकोऽत्र गणितः पूयशोणितमेव च ॥  
 एवमुर्ध्वशोणितैः प्रतिनाहः परिश्रवः । नासाशोषः प्रतिशवायाः पञ्च सप्तार्धुदानि च ॥ ३ ॥  
 चत्वार्यर्शोसि चत्वारः शोधाश्चत्वारि तानि च । रक्तपित्तानि नासायां चतुर्विंशद्भेदाः स्मृताः ॥

नासारोगों के नाम—पहले पीनस रोग कहा गया है पश्चात् पूतिनास, नासापाक, पूवशोणित क्षय, अर्धशु, शोष, प्रतिनाह, परिश्रव, नासा शोष, पांच प्रकार के प्रतिशवाय, सात प्रकार के अर्धुद, चार प्रकार के अर्श, चार प्रकार के शोम और चार प्रकार के रक्तपिच इस प्रकार नासिका में होने वाले ३४ रोग कहे गये हैं ॥ ३-५ ॥

तेषु पीनस्य लक्षणमाह—

आनाद्यते शुष्यति यस्य नासा प्रवलेदमायाति च धूपयते ।

न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्थस्य तु पीनसेन ॥

तं चानिलरलेष्मभव विकारं द्यूयाप्रतिशवायसमानलिङ्गम् ॥ ६ ॥

पीनस के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका (नासारभ्र) वात अथवा पित्त के द्वारा शोषित कफ से आवृद्ध होती हो अर्थात् कफ आकर नासारभ्र को आवृद्ध कर उठा हो और उससे श्वास का अवरोध हो जाता हो और नासिका रस आती हो, बलेदित (भार्द्र) रहती हो तथा संशय युक्त रहती हो एवं गन्ध और रस का ज्ञान जिसमें नहीं रह गया हो उसे पीनस रोग कहते हैं । इस रोग को वात और कफ के मिलित कोप से उत्पन्न मानना चाहिये तथा इसके लक्षण प्रतिशवाय के समान जानना चाहिये ॥ ६ ॥

पूतिनासमाह—शोषैर्विदग्धैर्गलसालामूलासन्दूषितो यस्य समीरणस्तु ।

निरिति पूतिर्मुलनासिकाभ्यां सं पूतिनास प्रवदन्ति रोगम् ॥ ७ ॥

पूतिनासा के लक्षण—जिस नासारोग में कफ, पित्त और रक्त के विदग्ध होने से गन्ध और ताड़मूल से दूषित हुआ वायु दुग्ध युक्त होकर मुख और नासिका से बाहर निकलना है उसे पूतिनासा रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

नासापाकमाह—

प्राणाश्रितं पित्तमरुपि कुर्याद्यस्मिन्विकारे यलवांश्च पाकः ।

तं मालिकापाक इति व्यवस्थद्विकलदकोयावय वाऽपि यत्र ॥ ८ ॥

नासापाक के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका में रहने वाला पित्त कुपित होकर नासिका में छोटी २ पुंसियों को उत्पन्न कर देता है और उसमें पाक भी अधिक हो आता है तथा भार्द्रता रहती है और कोष ( दुर्गन्ध ) भी रहता है उस नासिका पाक कहते हैं ॥ ८ ॥

पूररक्तमाह—

शोषैर्विदग्धैरयं वाऽपि क्षन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य सैस्तैः ।

नासा सप्रेतूपमसृग्निर्ध्रं च पूररक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ९ ॥

पूररक्त के लक्षण—जिस नासारोग में दोषों के विदग्ध होने से अथवा ललाट में आघात होने से नासिका से रक्त मिलात पूय का शाव होता है उसे पूररक्त ( पूवशोणित ) रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

क्षयशुमाह, तथाऽप्यौ शोषशमाह—

प्राणाश्रिते मग्नौ सम्प्रदुष्टो यस्यानिको नासिकया निरतिः ।

कफानुयातो बहुशोऽप्य वाप्यरक्त रोगमाहुः क्षयशुं विधिनाः ॥ १० ॥

शोष क्षयशु के लक्षण—जिस नासा रोग में प्राणैन्द्रिय के आश्रित भी मर्म ( नासिका, नेत्र और शुकुटि का मध्य भाग ) है उसमें दूषित हुआ वायु रक्त से मिलकर अत्यन्त शुष्क होता हुआ नासिका के द्वारा निकलता है उसे क्षयशु ( क्षयशु ) रोग कहते हैं ॥ १० ॥

भयाऽऽगन्तुजमाह—

सीष्णोपचोगादतिभिन्नतो वा भयान्कट्टनर्कनिरीचणाद्वा ।

सुप्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्धाटितेऽप्यः श्ववधुर्निरिति ॥ ११ ॥

भाग-तुम श्ववधु के लक्षण—तीक्ष्ण द्रव्यों के भक्षण करने से, कड़, सोंठ, मरिच आदि पदार्थों के भक्ति छपने से, सूर्य को देखने से और छत्र, तृणादि से नासिका की तरुणास्थि के मर्म (शृंगाटक नामक मर्म) को उद्वेगित करने से जो श्ववधु उत्पन्न हो जाती है उसे भाग-तुम श्ववधु कहते हैं ॥ ११ ॥

अंशुमाह—प्रघ्नरपते नासिकया हि यस्य साद्रो विदग्धा लवणः कफस्तु ।

प्रावसञ्चितो मूर्धनि पित्ततसरत भ्रमाथु रोगमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

अंशु के लक्षण—जिस नासारोग में पूर्व ही से शिर स्थान में सञ्चित हुआ कफ पित्त से सतप्त होकर घना, विदग्ध और लवण रस युक्त नासिका से गिरता है उसे अंशु रोग कहते हैं ॥ दीप्तमाह—घ्राणे शृशं दाहसमन्विते तु विनि सरेवभूम इवेह वायुः ।

नासा प्रदीप्तेषु च यस्य जन्तोर्ध्वाधि तु त दीप्तमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

दीप्त के लक्षण—जिस नासा रोग में नासिका अत्यन्त दाह युक्त हो और नाक से जो श्वास निकले वह भूम की भाँति हो तथा नासिका निरन्तर जलनी हुई प्रतीत हो उसे दीप्तरोग कहते हैं ॥ प्रतीनाहमाह—

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सयातो रच्याध्पतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥

प्रतीनाह के लक्षण—जिस नासारोग में कफ वायु से युक्त होकर उच्छ्वास मार्ग का अवरोध कर देता हो उसे प्रतीनाह रोग कहते हैं ॥

स्त्रावमाह—घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोष सयेत्सायमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥

स्त्राव के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका से पीत वर्ण का अथवा श्वेत वर्ण का गाढ़ा अथवा पतला कफ का स्त्राव हो उसे स्त्राव रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

नासाशोषमाह—घ्राणाधिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गात्र परिशोपिते च ।

कृष्ण्राष्ट्रवसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुपरिमन्स नासापरिशोप उक्तः ॥ १५ ॥

नासा शोष के लक्षण—जिस नासा रोग में नासिका में रियत कफ, वायु और पित्त के कोप से अधिक घब जाणा है जिससे मनुष्य को श्वासोच्छ्वास में कष्ट होता है उस रोग को नासा परिशोप कहते हैं ॥ १५ ॥

प्रतिश्यायमाह—तस्य निदानं द्विविधम्—एकं सघोजनकं तद्वलवत्वेन चय नापेक्षते । यत् उक्तम्—

न केवल चयं प्राप्य शोपाः कुप्यन्ति देहिनाम् ।

अन्यथाऽपि हि कुप्यन्ति हेतुपाहुष्यतोरणात् ॥ १ ॥

प्रतिश्याय के निदान—प्रतिश्याय का निदान दो प्रकार का है एक प्रतिश्याय सघोजनक होता है जो शीघ्र उत्पन्न हो जानेवाला होता है वह बलवान होने के कारण चय (एकत्र) होने की अपेक्षा नहीं करता । जैसे कहा गया है कि वातादि दोष मनुष्यों के शरीर में केवल संचय को प्राप्त होकर ही कुपित नहीं होते हैं अन्य भी अनेक कारणों को बहुलता से कुपित हो जाते हैं ॥१॥

चयान्क्रमशोपजनकमपरम् । तथा च—

सञ्चयः सञ्जायात्प्रकोप प्रकोपात्प्रसर , प्रसरारस्थानसधयस्ततो व्यक्तिस्ततो भेद इति ।

चयादि क्रम से शोष जनक दूसरा जो होगा है उसे कहते हैं उसमें पहले दोषों का सञ्चय होता है, उससे कोप होता है और कोपहोने पर उसका प्रसार होता है प्रसार होने पर एक स्थान में शोष का आभय (निवास) होना है और तदनन्तर रोग की उत्पत्ति होती है और उत्पत्ति के पश्चात् उनमें भेद होता है अर्थात् अनेक रूपों और लक्षणों से युक्त होकर पृथक् २ नामों से यह विख्यात होता है ॥

तत्र प्रतिश्यायस्य सघोजनकनिदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह—

सञ्चारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधतुवैपम्यशिरोभितापैः ।

प्रजागरात्स्वप्ननवाम्बुशीतावश्यायकैर्मथुनवाप्पशोकैः ॥ १६ ॥



सस्यानक्षीये शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत् ॥

प्रतिश्याय की सम्प्राप्ति—मलमूत्रादि के वेगों की रोकने में, अजीर्न रोग से, पूछ आदि के नाक में प्रवेश हो जाने से, अत्यन्त बोलने से, अत्यन्त क्रोध करने से, श्वेत के विरहीत आहार विहारादि वरों से, शिर के संतप्त होने से (धुँआँ और धाम आदि के शिर में लगने से), अधिक तागने से, अधिक सोने से, नदीय जल के पीने से, अधिक शीत के सेवन से, ओस, गुप्ता आदि के लगने से, अधिक मैथुन करने से, अधिक अनुपात होने से, शोक से और दीप (कफ) के शिर में अत्यन्त भर जाने से—वायु पदपर प्रतिश्याय रोग उत्पन्न करता है ॥ १६-॥

चयातिक्रमशो जनकनिदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—

चयं गता मूर्धनि माकृतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव क्षोणितम् ।

प्रमुच्यमाणा विविधैः प्रकोपनैस्तथा प्रतिश्यायकरो भवन्ति हि ॥ १७ ॥

शिर में वात, पित्त, कफ पृथक् २ तथा समस्त तीनों मिलित विद्वेष और रक्त ये पांचो संचित होकर अनेक प्रकार से अपने प्रवृत्ति होने पर प्रतिश्याय को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १७ ॥

पूर्वरूपमाह—

क्षयप्रवृत्ति शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।

उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसरा स्मृताः ॥ १८ ॥

प्रतिश्याय होने के पूर्व घीक, कफ से शिर मारी, स्तम्भ, शरीर का जकड़ना, देह का टूटना, रोमाश और अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं ॥ १८ ॥

यातिकस्य प्रतिश्यायस्य लक्षणमाह—

श्वानद्वा विद्विवा नासा तनुक्षायप्रसेकिनी । गलताक्षयोद्यसोपक्ष निस्तोद दाक्ष्योस्तथा ॥ १९ ॥

भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलारामके ॥

यातिक प्रतिश्याय—असि प्रतिश्याय रोग में नासिका भान्द्र (भारी दुर्ब) हो और बन्द हो, पतला और अल्प दाब होना हो, गला, ताल और शीत उरते हैं, उष्ट देश में धरं चुमाने के समान पीड़ा होती हो और स्वस्वग हो उसे वात के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ १९ ॥

पेच्छिक्रमाह—उष्णः सपोतक स्याद्यो ग्राणाद्यपि पित्तिके ॥ २० ॥

कृशोऽपि पाण्डुसन्तप्तो भवेदुष्णामिपीहित । नासया तु सधृमांसि पमतीय स मानप ॥

पेच्छिक प्रतिश्याय—असि प्रतिश्याय रोग में नासिका से उष्ण और पीत बगै का स्राव होता हो और शरीर अत्यन्त कृश और पाण्डु बगै का हो, गला संतप्त और कम्पा से अत्यन्त पीड़ित हो तथा नासिका से ऐसा श्वास निकलता हो मानी धूमयुक्त अभि का बमन होता हो, उसे पित्त के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

रत्नेभिक्रमाह—

ग्राणात्कफकृताः श्वेतः कफः शीतः क्षयेद्गु । शुष्काभ्मास शून्यापो भवेद्गुणितरा गरः ॥

गलताक्षयोद्यशिरसां कण्डूमिरतिपीडितः ॥ २२ ॥

कफ प्रतिश्याय—असि प्रतिश्याय रोग में नासिका से श्वेत बगै का, शीतक और बहुत सा कफ गिरना हो, कांति दपत हो, नेत्रों में जोष हो शिर मारी हो और गला, ताल शीत और शिर में कण्डू होशो हो उसे कफ के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २२ ॥

साविवाविक्रमाह—भूत्या भूत्या प्रतिश्यायो ओऽङ्करमाप्यसिपतति ।

स्वप्नको वाऽप्यपको वा स सवप्रभावः स्मृतः ॥ २३ ॥

साविवाविक प्रतिश्याय—असि प्रतिश्याय में प्रतिश्याय स्वप्न बार २ बन् और पत तथा अकरनात् पक्ष अथवा अथक किनी भी अकरना में हो जाने पर सविवाव के बीच का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २३ ॥

हुष्ट-प्रतिश्यायक्रमाह—

प्रनिलघये मूर्धनांसा पुनश्च परिहृष्यति । पुनस्तान्घने वाऽपि पुनर्विचियते तथा ॥ २४ ॥

निश्वासे यापि दुर्ग-पो मरो गन्धाश्च वेत्ति य । पर्वं हुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृत्वापमम् ॥

दुष्ट प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका बारबार बलेदित ( आर्द्र ) हो और फिर र खेज जावे, नासिका में कफ भरकर बन्द हो जावे और फिर गुल भी जावे तथा खास गति दुर्गन्धित निबले और नासिका में गन्ध का घान नहीं रहे उसे दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं । यह कष्ट साध्य है ॥ २४-२५ ॥

रक्तजमाह—

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तघ्रायः प्रवर्तते । पित्तप्रतिश्यायकृतेऽपि सप्तमिवतः ॥ २६ ॥

साग्रास्यस्य भयेजान्तुदोषातप्रपीडितः । दुर्गन्धोष्णमासवकप्रथमं गन्धानपि न वेत्ति स ॥

रक्तज प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका से रक्त का स्राव होता हो और पित्तज प्रतिश्याय के सभी लक्षण उसमें सम्मिलित रहते हों, उस रोगी के नेत्र तापवर्ण के हो तथा उरोपात रोग से पीडित हो, इवास तथा मुँह में दुर्गन्ध हो किन्तु नासिका में गन्ध का घान नहीं रहता हो । उसे रक्त के कोष का प्रतिश्याय कहते हैं ॥ २६-२७ ॥

असाध्यता भवन्तीत्याह—सर्वं पृथ प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।

दुष्टतां पान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ २८ ॥

प्रतिश्याय की असाध्यता—मनुष्य के सभी प्रकार के प्रतिश्याय प्रतिकार ( चिकित्सा ) नहीं करने से कुछ दिनों में दूषित हो जाते हैं और असाध्य हो जाते हैं ॥ २८ ॥

प्रतिश्यायेषु कृमयोऽपि भवन्तीत्याह—

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेता स्निग्धास्तथाऽणवः ।

कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्य सेनाप्र लक्षणम् ॥ २९ ॥

प्रतिश्याय में कृमि की उत्पत्ति—प्रतिश्याय रोग की उचित चिकित्सा नहीं होने से तथा रक्त के दोष से होने वाले प्रतिश्याय में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं जो श्वेत वर्ण के, स्निग्ध ( चिकने ) और सूक्ष्म होते हैं उनके सब लक्षण कृमिज शिरोरोग के समान जानना चाहिये ॥ २९ ॥

प्रतिश्याया अपरानपि विकारान्बुर्वन्ति तानाह—

धाधिर्यमाध्यमत्रय घोरंश नयनामयान् । शोफामिसादकसांश्च दृष्ट्वा कुर्षन्ति पीनसाः ॥

प्रतिश्याय से रोगांतर की उत्पत्ति—प्रतिश्याय-पीनस की जब उचित चिकित्सा नहीं होती है तब यह बढ़कर धाधिर्य, अपाचन, प्राण शक्ति नाश, घोर ( कठिन ) नेत्ररोग, शोथ, मन्दाग्नि और कासररोग की उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३० ॥

पीनसमारम्य प्रतिश्यायपर्यन्त पञ्चदशोक्ता । अपरांश्चतुर्ल्लिखत्स्वरयापूर्णायाऽऽह—

अर्बुद सप्तधा शोथाश्चाप्यारोऽर्शाश्चतुर्विधम् । चतुर्विध रक्तपित्तमुक्तं प्राणेषुपि तद्विदुः ॥ ३१ ॥

सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार के शोथ, चार प्रकार के अर्श और चार प्रकार के रक्तपित्त ये १९ रोग जिस प्रकार पहले कहे हैं उसी प्रकार नासिका में भी रहें समझे अर्थात् ये १९ रोग नासिका में भी होते हैं । पक्ष च १५ × १९ = ३४ रोग नासिका में होते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥

चिकित्साभेदात्पीनसस्याऽऽमस्य लक्षणमाह—

शिरोगुण्यमरुचिर्नासाज्जाबस्तनुस्वरः । आम द्वीवति चामीकणमामपीनसलक्षणम् ॥ ३२ ॥

आम पीनस के लक्षण—पीनस रोग में शिर का भारी रहना, अरुचि होना, नासिका से स्राव होते रहना, स्वर का क्षीण हो जाना, रोगी का दुर्बल होना और बार २ शूकना यह लक्षण जब तक रहे जब तक पीनस रोग आम है यह जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

पक्षपीनसस्य लक्षणमाह—

आमलिङ्गावितं श्लेष्मा घाः खेषु निमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्षपीनसलक्षणम् ॥

पक्ष पीनस के लक्षण—पीनस रोग में जब आम लक्षणों वाला कफ गाढा हो जावे और श्लेष्मों में ही छप्त हो जावे तथा रोगी के स्वर और वर्ण रोग के पूर्व की अवस्था के अनुसार हो जावें तो पीनस पक्ष हो गया यह जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ नासारोगाणा चिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ पीनसस्य चिकित्सायाह—

सर्वेषु पीनसेष्वेवादी निवाताग्नरगो भवेत् । शिरसोऽभ्यङ्गनैः स्वेदैर्नैस्वैर्मन्दोप्यभोजनैः ॥

चमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ १ ॥

पीनस रोग विकिरता—सब प्रकार के पीनस रोगी को निर्वात स्थान में रहना चाहिये, शिर में तैल मर्दन करना चाहिये, स्वेदन करना चाहिये, नस्य लेना चाहिये, कुष्ठ २ उष्ण भोजन करना चाहिये, व्रतन करना चाहिये, घृतपान करना चाहिये और मया दीप अथवा अन्य उपचार भी करना चाहिये ॥ २ ॥

सर्जार्जुनोदुग्धरवासकानां त्वष्पाकपाय परिभाषनेन ।

कपायकरुकरपि चैभिरेव सिद्ध घृत घ्राणविपाकनाति ॥ २ ॥

सर्जार्जुनोदुग्ध—सर्ज ( चील ) वृक्ष, अजुन वृक्ष, गुल्म और कुटज की घास समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बना कर उससे नासिका धोना चाहिये और इन्हीं औषधियों के कपाय और करु में घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से नासापाक नष्ट होता है ॥ २ ॥

मरीचादियोग —

सर्वेषु सर्वकाल पीनसरोगेषु जातमात्रेषु । मरिच गुह्येन दध्ना मुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ १ ॥

मरिचादि योग—सब प्रकार के पीनस रोग उत्पन्न होते ही मरिच का चूर्ण पुराना गुड़ और दही मिलाकर भोजन करे तो अधिक लाभ होता है ॥ १ ॥

पद्ममूल्यादियुग —

पद्ममूलीयुस शीरं किंवा स्याच्चिप्रकाभया । सर्पिर्गुह्ये विद्वद्भ्य युग पीनसदान्तये ॥ १ ॥

पद्ममूल्यादि युग—पद्ममूल से विधिपूर्वक शीर सिद्ध कर पित्रावे भयवा चिपकमूल और इरद को समान भाग लेकर चूर्ण या काथ बना कर सेवन करे भयवा घृत, पुराना गुड़ और विद्वद्भ्य का युग विधिपूर्वक बना कर सेवन करे तो इससे पीनसरोग शमन होता है ॥ १ ॥

गुडाद्यो योग —

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकाम हरति दधि भराणां पीनसं दुर्निवारम् ।

यदि तु सश्वतमन श्लक्ष्णगोधूमचूर्णैः कृत्स्नमुपहरतेऽसौ संकुतोऽस्यायकाशा ॥ १ ॥

गुडादि योग—पुराना गुड़ और मरिच का चूर्ण दही में मिलाकर रक्षापूर्वक पान करने से कठिन पीनसरोग भी शीघ्र नष्ट होता है और यदि घृत के साथ गीहू के उत्तम चूर्ण का पूयादि बनाकर सेवन किया जावे तो इससे भी पीनसरोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

वेतनोधूमयोगी—

वेतनोधूममोजी च निद्राकाले च पीतलम् । जल पिबति चो रोगी पीनसाशुष्यते मरः ॥

वेतनोधूम योग—जो पीनस का रोगी बादविटंग या चूर्ण और गैहू का चूर्ण मिलाकर रोटी आदि बनाकर भोजन कर और सोने के समय शीतल जल पी कर सोवे तो वह पीनसरोग से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

व्योपादिशटी—

व्योपचिप्रकटासीसतिसिद्धीकाम्लपेतमम् । सद्यस्याजाजितुषपांसामेलायवपप्रपादिकम् ॥ १ ॥

व्योपादिकमिद् चूर्णं पुराणगुह्यमिभितम् । पीनसघासकासघ्न कश्चिरपरकरं परम् ॥ २ ॥

व्योपादि शटी—सोठ, मरिच, पीपल, चिप्रकमूल, ताशोत पत्र, हमरी, शम्भवेत, चाब और औरा का समान भाग चूर्ण लेव और श्लायभी क दाने, दालचोनी और तेजपान पीपार २ भाग लेवे और सम्पूर्ण चूर्ण नितने हों उसके दुग्धना पुराना गुड़ मिलाकर विधिपूर्वक शटी बना कर या चूर्ण ही सेवन करने से पीनस, श्वास और कास नष्ट होते हैं तथा भोजन में रुचि होती है और स्वर बढ़ता है ॥ १-२ ॥

कट्फलाचूर्णं वापय—

कट्फल चौबर्करं शूरी व्योप वासध कारणी । चूर्णं पूर्णं कपायं वा दद्यादाज्जुह्वैः रमैः ॥ १ ॥

पीनसे स्वरभेदे च समके सहलीमके । सन्निपाते चक्रे चाते कासे श्वासे च वास्यते ॥ २ ॥

कट्फलादि चूर्ण और चाल—कापूर, उदकरमूल, वाकडामिरी, सोठ मरिच, पीपल, जवासा और कृष्णबीरा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण भयवा काथ बना कर उसमें शम्भु का स्वरस मिलाकर सेवन करने से पीनस स्वरभेद, समरुबास, शूलोग, श्वासिना, कट, वात, कास और श्वास में लाभ करता है ॥ १-२ ॥

पाठात्तैलम्—

पाठाद्विरजनीमूर्धाविषप्लीजातिपण्ड्यै । प्निष्य तैल सतिद्ध मस्यसः पीनसापहम् ॥ १ ॥

पाठादि तैल—पुरापादो, हृष्यो, दारुणशी, मूर्धामूल, पीपल और चमेली के बीजों के समान भाग लेकर विषिवत् बरक बनाकर यथा प्रमाण मूर्च्छित तैल के तैल में मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर नस्य लेने से पीनस रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पट्टिदुष्टम्—मृद्ग लघुं मधुकं च कुण्डं सनागर गोघृतमिधित च ।

पट्टिन्दु मासास्थिगत च पीनसं निरोगत रोगघातं च हन्ति ॥ १ ॥

पट्टिन्दु घृत—मांगरा, लवंग, मुलहठी, कूट और सोंठ को समान भाग लेकर विषिवत् बरक कर यथा प्रमाण मूर्च्छित गोघृत में मिलाकर घृतपाक विधि से घृत सिद्ध कर इस पट्टिन्दु घृत को नाक में डालने से पीनस और शिर में होने वाले संकटों रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

फलिकान्तपोट—

फलिकान्तपोटमरिचलापास्वरसकटफले । कुण्डप्रशिप्रुजन्तुर्नैरपपीठ प्रशस्यते ॥ १ ॥

फलिकादि भवपीठक—कलिङ्ग ( रुद्रजी ), हींग, मरिच, लातका स्वरस, कायफल, कूट, बच, सहिजन और वायविडग को समान भाग पीस कर इसका भवपीठनस्य लेने से पीनस रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

कफघ्नमनं घातार्क कुलयाविकमुद्गजाः । यूना ससैचवयोपाः शस्ताभोप्यास्तु पीनसे ॥ २ ॥

पीनसरोग में पश्य—कफनाशक अन्न, वैगन, कुलथी भरहर और मूंग का घृत सैधानमक और सोंठ-मरिच-पीपल का घृत मिला उष्ण पाक करने से पीनस रोग में लाभ करता है ॥ २ ॥

अपररोगाणां चिकित्सा, म्याप्रीतैलम्—

म्याप्रीदन्वीषचाशिप्रसुरसाव्योपसिधुजै । सिद्ध तैल नसि पिसि पूतिनासागदापहम् ॥ १ ॥

म्याप्री तैल—छोटी कटेरी, दन्तीमूल, बच, सहिजन, पुल्सी, सोंठ, मरिच, पीपल और सैधानमक के बरक के साथ विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नासिका में डालने से पूतिनासारोग ( नाक की दुर्गन्धि ) नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिम्शुदितैलम्—

शिम्शुद्विहीनिकुम्भाना धीजै सव्योपसैचवै । पित्तपत्रसे सिद्ध तैल स्यात्पूतिनस्तनुत् ॥ १ ॥

शिम्शुदि तैल—सहिजन के बीज, छोटी कटेरी, दन्ती के बीज, सोंठ, मरिच, पीपल और सैधानमक के बरक और विश्वपत्र के स्वरस के साथ विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर नाक में डालने से पूतिनस्य रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

नासापाके पिच्छनाश विधान कार्य सर्वं शान्नाभ्यन्तर च ।

हरेद्रक क्षीरिष्टुषत्वचश्च योज्या सेके सपृताश्च प्रलेपा ॥ २ ॥

नासापाक चिकित्सा—नासापाक रोग में पिच्छनाशक सभी बाह्य और आभ्यन्तर चिकित्सा करनी चाहिये और रक्तमोक्षण तथा क्षीरिष्टु क्षी त्वचा ( पशुबल्कल ) के कषाय से सिद्धन करना चाहिये और इही ( पशुबल्कल ) के कर्क में घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

प्याले रक्तपित्तना कषया नाशनानि च । पाकदाहादिरोगेषु शीता लेपादिकाः क्रिया ॥ ३ ॥

प्याले चिकित्सा—प्याले ( पूरक ) रोग में रक्तपित्त नाशक कषाय और नस्यादि देना चाहिये । पाक दाहादि रोगों में ( नासा पाक-दाह में ) शीतल लेप आदि क्रिया ( चिकित्सा ) करनी चाहिये ॥ ३ ॥

घृतगुग्गुलुमिध्रस्य सिष्यकस्य प्रयत्नतः । धूम क्ष्वयुरोगेषु भ्रशुभन च निर्दिशेत् ॥ ४ ॥

क्ष्वयु-भ्रशु चिकित्सा—घृत, गुग्गुलु और मोम को मिलाकर यत्नपूर्वक नासिका में धूम देने से क्ष्वयु और भ्रशु रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

शुष्ठीकुष्ठकणाविषवद्रापाककषकषायवत् । तैलं पक्रमथाऽऽज्य वा नस्यात्क्ष्वयुनाशनम् ॥ ५ ॥

क्ष्वयुनाशक तैल घृत—सोंठ, कूट, पीपल, बेल की छुरी और दास इनके कर्क और कषाय से विधिपूर्वक तैल भयवा घृत सिद्ध कर नस्य लेने से क्ष्वयुरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

नस्य हित निम्बरसाक्षनाभ्यां क्षीप्ते शिरस्वेदनमवपशास्तु ।

नस्ये कृते चीरजलावसेकान् शसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूपै ॥ ६ ॥

दीप्तरीग चिकित्सा—दीप्तरीग में नीम और रसवत का नस्य शिर में अल्प स्वेद और नस्य देने के पश्चात् दूध और जल से सिंचन करना चाहिये तथा मूंग के दूध के साथ मोहन करना चाहिये । इससे दीप्तरीग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नासावनाहे कर्तव्य पान गण्डस्य सपिप ।

नासावनाह चिकित्सा—नासावनाह ( नासावक ) रोग में घृत का पान करना चाहिये ॥

नासाशोथे चीरपान ससित च प्रशस्यते ॥ ७ ॥

नासाशोथ चिकित्सा—नासाशोथ रोग में शर्करा मिश्रित दूध पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

नासास्त्रावे घ्राणयोरचूर्णसुक्त नाढ्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः ।

सीष्णान्धूमान्देवश्रावसिकाभ्यां मांस चाऽऽजं पथ्यमाप्राऽऽदिशन्ति ॥ ८ ॥

नासास्त्राव चिकित्सा—नासास्त्राव रोग में नाकों में पुष्ककथित लामदायक चूर्णों को नाड़ीवन्त द्वारा देना चाहिये अवपीडन नस्य तथा देवदारु घिन्नव, मूलादि स युक्त सीष्ण घृणों को देना चाहिये और बकरो का मांस आदि पथ्य देना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रतिदवायप्रतीकार —

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृह घातवियर्जितम् । यस्त्रेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ १ ॥

प्रतिदवाय चिकित्सा—सब प्रकार के प्रतिश्यायो में वातरहित गृह में रहना चाहिये और गुरु तथा उष्णवस्त्र से शिर को वेष्टित करना चाहिये ॥ १ ॥

घातमूलकयोज्युपः फुल्लयोत्पथ्य पूजित । स्वेदोष्ण च हिम भोज्यं पाचनाय प्रशस्यते ॥ २ ॥

उत पङ्क कफ शारवा हरेष्ट्डीर्षविवेचनैः ।

छोटी गूली और कुलथी का दूध पिलाना चाहिये, स्वेद देना चाहिये, शीतल मोहन करना चाहिये, पश्चात् जब कफ पवा हुआ घात हो तब शिरोविवेचन देकर कफ को निकाल देना चाहिये ॥ २ ॥

पिप्पल्यः शिम्रपीजानि विद्वद्भ्र मरिचानि च ॥ ३ ॥

अवपीडः प्रदास्तोऽयं प्रतिश्यायनियारणम् ।

पिप्पल्यादि नस्य—पीपल, सहिजन के बीज, वायविर्य और मरिच को समान भाग का दलक्षण चूर्णकर अवपीडन नस्य देने से प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

घातिके च प्रतिश्याये पियेस्वर्षिसंयाक्रमम् ॥ ४ ॥

पञ्चमिलयणै सिद्ध प्रथमेन गणेश च ।

वातिक प्रतिश्याय चिकित्सा—वातिक प्रतिश्याय रोग में पांचों नमक के कण्ड से सिद्ध किया घृत अथवा वागनाशक गणेश की ओषधियों से त्रिविध सिद्ध किया घृत स्याक्रम से घात करना चाहिये, इससे वातिक प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रक्षपिच्छोत्पयोः पेय सर्षिपपुरकै शृतम् ॥ ५ ॥

परिषेका-प्रदेहाद्य शुर्वाक्षि च शीतलान् । हितं पित्तप्रतिश्याये पाचनार्थं घृतं पयः ॥ ६ ॥

रक्षपिच्छ प्रतिश्याय चिकित्सा—रक्षपिच्छ से वायव्य प्रतिश्याय में मधुर रस की ओषधियों से सिद्ध घृत का पान करना चाहिये और शीतल द्रव्यों का मधुर ( केन ) और सिंचन करना चाहिये । पिच्छ प्रतिश्याय के पाचन के लिय दूध में घृत मिश्रित रिलाना चाहिये ॥ ५-६ ॥

शुद्धयेण पयसा शुद्धपेरमघावि पा ।

अदरक वा सोंठ की दूध में पक्कट रिलाना चाहिये अथवा कैवल अदरक का स्वरस वा सोंठ का शाय रिलाना चाहिये । इससे पिच्छ प्रतिश्याय का पाचन होता है ॥

सर्षिपा मृष्टया घाम्या गिरसो छेपत्रं चान् ॥ ७ ॥

नासायां संघृष्ट च रुधिरं च विनश्यति ।

पानी सेन—नासके को पीपल घृत में भूनकर शिर पर रज करने से घन मर में काशिरा से रहता हुआ रक्त ( रन्द ) हो जाता है ॥ ७ ॥

कफजे सर्पिषो शिग्घ तिलमापविषकया ॥ ८ ॥

यथागवा धामयिश्वा तु श्लेष्मणं क्रममाचरेत् ।

कफज प्रतिश्याय निविस्ता—कफज प्रतिश्याय में तिल और उद्द की यथागू घृत से रितम्ब विलाकर बमन कराकर कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

दार्दीहृगुद्दुनिकुम्भैश्च किण्विद्या सरलेन च । यत्तयोऽत्र कृता योजया धूमपाने यथाविधि ॥

दान्यादिवर्ति—दारहल्पी, दिगोट, दती, अयागार्ग और सरल काष्ठ को पीसकर विधिपूर्वक बची बनाकर धूमपान करने से प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ९ ॥

विदह्न सैधय हिङ्गु गुग्गुलुः समन शिल्डः । प्रतिश्याये यथायुक्त शकृत्या धूम पिपेन्नरः ॥ १ ॥

एतच्छूर्णं समाग्रात प्रतिश्याय विनाशयेत् ।

वियद्वादि धूप—वायविडग, सैधानमक, हींग, गुग्गुलु, मैनसिल और बच को समान भाग पीसकर विधिपूर्वक बची बनाकर शक्ति के अनुसार धूमपान करना चाहिये और रहीं उपरोक्त औषधियों के चूर्ण का नस्य लेना चाहिये । इससे प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

एततैलसमायुक्तं सप्तधूम पिपेन्नरः ॥ २ ॥

स धूमः स्यात्प्रतिश्यायकासद्विक्काहरः पर ।

सप्तधूम—एत और तेल को सप्त में मिलाकर विधिपूर्वक धूमपान करने से प्रतिश्याय, कास और द्विक्का रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

प्रतिश्याये पिपेद्धूम सर्वं गन्धसमायुतम् ॥ ३ ॥

धूमयोग—प्रतिश्याय में सब प्रकार के धूमों में गोघृत मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ३ ॥

चातुर्जातकचूर्णं वा श्रेयं वा कृष्णजीरकम् । प्रतिश्यायेषु सशिर पीठेषु नवसागरम् ॥ ४ ॥

चातुर्जातक नस्य—दालचोनी, श्लायधी क दाने, सजपात और नागकेसर का समान भाग इलक्षण चूर्ण कर नस्य लेने से अथवा कृष्ण जीरा के चूर्ण का नस्य लेने से प्रतिश्याय और शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

समाग कलिकाचूर्णं सूषम सचूर्णितं द्वयम् । गुञ्जामात्र तु सच्छूर्णं नस्य प्रथमन चरेत् ॥

नस्यनस्यनेन नस्यन प्रतिश्यायशिरोरुज । प्रतिश्यायेषु सशिर पीठेषु नवसागरम् ॥ ५ ॥

कलिका नवसागर नस्य—नौसादर और चूना के चूर्ण को समान भाग लेकर गुञ्जा के प्रमाण की मात्रा से प्रथमन नस्य देवे तो प्रतिश्याय और शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५-५ ॥

स्वघाचूर्णमाग्रात वाससा पोष्टलीकृतम् । कारवी घञ्जपदा धा प्रतिश्यायमपोहति ॥ ६ ॥

बचादि पोष्टली—बच के चूर्ण की कपडे की पोष्टली में बंधकर सूखने से अथवा कृष्ण जीरा के चूर्ण को कपडे में बंधकर घड़न से प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शटीतामलकीष्योपचूर्णं सर्पिर्गुणचित्तम् । हरेदोर प्रतिश्याय पार्श्वद्वद्विस्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

शट्यादि चूर्ण—कचूर, भुर और बला सौंठ, मरिच और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उसमें घृत और पुराना गुड़ मिलाकर खाने से घोर प्रतिश्याय, पार्श्वद्वल, हृदयशूल और शरिरशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पुटपक्व जयापत्र तेल सैधवसयुतम् । प्रतिश्यायेषु सवपु दौलित परमौषधम् ॥ ८ ॥

जयापत्र योग—भाग के पत्ते को पुटपाक की विधि से पाक कर उसमें तेल और सैधानमक मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रतिश्याय रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

वित्रकदरीतकी—चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुकपञ्चमूलामृता ।

धात्रीणामुदकर्मणे त्रिभिरपां द्रौणैश्च सफाययेत् ॥

पादस्थे कथने गुडस्य च घृत पम्पाडकेनान्वित  
पक्कष्यं शृतशीतले च मधुन प्रस्थार्धमात्रं चिपेत् ॥ १ ॥

ध्वोपस्य त्रिसुगन्धकस्य च पलाय्यत्रैव पट् प्रचिपे

एषारस्याधपल रसायनमिद् संसेव्यते सर्वदा ।

शोषघातमलायकाशघमधुरश्लेष्मप्रतिश्यायिभि

शीणोर'सतद्विचिकभिः कफशिरोरुभिः प्रनष्टाग्निभिः ॥ २ ॥

चित्रक इरीनकी—चित्रकमूल, दोनों पचमूल ( समान मिलित दशमूल ) गुह्य और कौश्ल्य को ४०० पल अर्थात् प्रत्येक एक एक सौ पल लेकर जो कुटकर तीन द्रोण ( १२ भाद्रक ) ऋ में देकर भाष की विधि से भाष कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार धानकर उसमें पुराना गुह्य एक सौ पल मिला विभिन्न घोल कर इरीनकी एक भाद्रक ( चार प्रस्थ ) का पूण उसमें दान कर अवष्टेह पाक की विधि से अवष्टेह सिद्ध कर उसमें भाषा प्रस्थ मधु सालकर सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक का समान मिलित दशमूल पूर्ण छे पल तथा जवाहार भाषा पल मिलाकर रख लेवे । इस रसायन को सबदा सेवन करे तो शोष, श्वास, मलावरोध, वमन, कफज प्रतिदयाय, क्षीणरोग, उरःक्षत रोग, कफ रोग, शिरो रोग ( शिर की पीड़ा ) और मन्दाग्नि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

दिङ्ग्वादितैल चिकित्साकलिकात् —

दिङ्गुप्योपविदङ्गकटुफलवचारुकीपगगधैःपुतै  
र्छाणारवेतपुननवावन्दकुञ्जैः पुष्पोन्नयैः सीरसे ।

इस्येभिः कटुतैलमेतद्गुणैः मन्वे समूहं शृत

पीत नासिकया घषाविधि भवञ्जासामपिभ्यो दितम् ॥ १ ॥

दिङ्ग्वादि तैल—हींग सोंठ, मरिच, पीपल, वायविकग, वायफल, बच, कूट, छोटी इषावनी, छात्र, एवेत पुनर्नवा नागरमोषा, कुटज और गुल्फती के पुष्प को समान भाग लेकर विधिपूर्वक बरक कर गितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल के समान भाग गोमूत्र मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर नासिका द्वारा पात करने में नासिका रोग में लाभदायक होता है ॥ १ ॥

कृमिहा ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्यै कृमिषु योजयेत् ।

घायमानि कृमिहानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ १ ॥

नासाकृमि चिकित्सा—कृमिरोग को चिकित्सा में कृमिनाशक औ चिकित्सा यही गदी है वे सभी नासाकृमि में करें और कृमिनाशक द्रव्यों के भाष से नासाका प्रयाण करे तो श्मशे नासाकृमि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रक्षाश्रस्वरसः द्युद्धस्तप्त्रेण सद्म नस्यतः । तस्य पर्णानि पिष्ट्वा च वस्नीयाद्नासिकामुले ॥ २ ॥  
पतन्ति कोटकाः सद्यो योगोऽयं त्रिदिनैर्हितः । पीनसाग्मुष्पते रोगी शतशोऽनुमितं विदम् ॥  
रक्षाप्रस्वरस योग—रक्ताने के आम ( सेंडरिवा आम ) का गुह्य रारस तब में मिलाकर नरय देने से और वसी आम के पत्तों को पीसकर ताक के मुह पर बांधने से शीघ्र ताक के कीड़े गिर जाते हैं, इस प्रयोग को तीन दिन करना चाहिये तथा इस योग से रोगी पीनस रोग से मुक्त हो जाता है, यह मेकड़ों वार का अतुभूत माग है ॥ २-२ ॥

रक्षपित्तानि क्षोधाध तथाऽर्षोरमधुर्दानि च । नासिकायां ह्युरेतेषां स्व रवं कुर्वाञ्छिकित्सितम् ॥

रक्षपित्तादि चिकित्सा—रक्षपित्त रोग, शोष रोग, अग्ने रोग और अर्शु रोग यदि नासिका में उत्पन्न हो तो उनको रक्षपित्तादि चिकित्सा—रक्षपित्त, शोष और अर्शु रोग यदि नासिका में हो तो इनको चिकित्सा गैस पहले इन रोगों के प्रकरणों में कर आये हैं यैरे ही करें ॥

गृहभूमकणावाहणारत्नद्रव्यैर्गन्धैः । सिद्धं सिरारिदीजैश्च तैल मामार्जमे हितम् ॥ ३ ॥

गृह भूमदि तैल—रसोद पर का भूम ( हाटा ) पिप्ली, दावहली, यवागार बड़े बड़े के बीज सेषानमच, बषामार्ग के बीज प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक पका हुआ तैल मागार्ज में दिहर कर होना है ॥ ३ ॥

रक्षकरवीरपुष्पं ताप्य वा तथा मण्डिकायाः । पतैः समं तिलतैलं नासाशानाघ्नन परमम् ॥

कवीर पुष्प तत्र—साठ बनेर का पुष्प, चमेरी का पुष्प या कूटो का पुष्प इनके समान त्रिज का तैल सालकर पचाया हुआ तैल नासान रोग में परम लाभ दायक होता है ॥ ३ ॥

नासातोषे चीरसर्पिः प्रपामं तैलं सिद्धं वायुहृदकेन मरयम् ।

सर्पिपाने भोज्यं छाहृष्टैश्च स्नेहस्यैवै स्नेहिकघात्र भूमः ॥ ४ ॥

नासाशोक चिकित्सा—नासिका में छजन होने पर दूध, घृत तथा अणुधान के कस्क से पकाया हुआ तेल नस्य में देना चाहिये तथा घृत खाने को दे और कलिहारी का बना तेल नासिका में लगाकर स्नेहन तथा लंगली का स्नेहन देवे और स्नेहयुक्त घृष्ट पान करावे ॥ ४ ॥

चारोर्जुवेदर्शांसे च क्रियाशयेऽप्ययेष्य च । स्थितिनिर्वातनिलये प्रगाढोष्णीपधारणम् ॥  
गण्डूयो लहान नस्यं धूमश्छदिः शिराष्यघः ॥

सामान्य चिकित्सा—नासाभेद तथा नासार्श रोग में क्षार का प्रयोग करे तथा शेष नासारोग में विचार कर चिकित्सा करे और रोगी वातरहित स्थान में रहे, भारी पगड़ी सिर में लपेटे रहे, पाण्डूय धारण करे, लहान, नस्य, धूम, वमन तथा शिराशेष करावे ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यम्—

स्वेदः शिरोभ्यङ्गः पुराणा यथशालय स्नेहः । कुलिस्थमुद्गयोर्युषो प्राग्म्या जाङ्गलजा रसा ॥  
घाताक कुलक शिम्बु कर्कोट घालमूलकम् । लहृमं दधि तताम्बु वाष्णी च कटुत्रयम् ॥ २ ॥  
कटुषण्डलवण स्निग्धमुष्ण च लघु भोजनम् । नासारोगे पीनसादी सेष्यमेतद्यामलम् ॥३॥

नासारोग में पथ्य—स्नेहन, स्वेदन, सिर पर तैलाभ्यंग, पुराना जी, शालिधाय, कुलथी और मूंग का घृष, प्राग्म्य तथा बांगल जीवों का मांसरस, बैगन, परवल, सुदात्रना, ककोडा, नरम मूली, लहसुन, दही, उष्णजल, वाष्णी ( मध ), त्रिकुटा, कटु, अम्ल, लवण स्निग्ध उष्ण तथा हल्का भोजन ये सब पीनसादि नासा रोगों में दोषानुसार सेवन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

स्नान क्रोध दाहन्मूत्रवातवेगान्शुच द्रवम् । भूमिदास्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥

नासारोग में अपथ्य—स्नान, क्रोध तथा मल, मूत्र और अधोवायु के वेगों को रोकना, शोक, द्रव पदार्थों का अशन और भूमि पर शयन करना नासारोगी यत्नपूर्वक छोड़ देवे ॥ ४ ॥

इति नासारोगप्रकरण समाप्तम्

### अथ शिरोरोगनिदानम् ।

धूमातपतुपारागुम्भीडासिस्वप्नजागरैः । अस्तेधातिपुरोयातयापनिग्रहरोदनैः ॥ १ ॥  
अत्यन्तमध्यानेन कृमिभिवर्गधारणै । उपधानमृजाम्बुद्गैपाच्य प्रततेक्षणै ॥ २ ॥  
असात्म्यगघटुष्टासभायाद्यैश्च शिरोगतैः । शिरोरोगास्तु जायन्ते घातपित्तकफैस्त्रिभि ॥ ३ ॥  
सन्निपातेन रक्तेन चयेण कृमिभिस्तथा । सूर्यावर्तानन्तयातशङ्ककार्धावभेदिकाः ॥

पृक्दाक्षविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥

शिरोरोग निदान—अत्यन्त धूम लगने से, अत्यन्त आठप ( घाम ) के लगने से, अत्यन्त शीत लगने से, अत्यन्त जल में क्रीड़ा करने से, अत्यन्त सोने से, अत्यन्त आगने से, शोथ से, सन्मुख अथवा पुरवैया वायु के अत्यन्त सेवन करने से, आँसुओं के रोकने से, अत्यन्त रोने से, अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मध पीने से, कृमि के क्षोष से, मल वातादि के वेगों को रोकने से ऊँचे तकिये पर शिर रख कर सोने से, अत्यन्त तैलादि मर्दन कराने से, द्वेष करने से, निरन्तर देखते रहने से, असात्म्य ( दूषित या प्रतिकूल ) गन्ध संश्लेष से, दूषित अन्न खाने से और अत्यन्त बोलने से शिर में रहने वाले वात-पित्त तथा कफ तीनों दोष कुपित होकर, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज तथा सूर्यावर्ण, अनन्तवात, शङ्क और अर्धावभेदक नाम के ११ प्रकार के शिरोरोग को उत्पन्न कर देते हैं जिनके लक्षण ( भागे ) कहते हैं ॥ १-४ ॥

अथ चोक्तम्—

सर्वं पृथ शिरोरोगाः सन्निपातसमुद्भवाः । औक्कर्व्यात्कीर्तितास्ते हि वृषाकक्ष चयेण च ॥ १ ॥

शिरो रोगों का सन्निपातत्व—सभी प्रकार के शिरोरोग प्रायः सन्निपात से ही उत्पन्न होते हैं परन्तु दोषों की उत्कृष्टता ( उत्कृष्टता ) के कारण विद्वानों ने दोषानुसार दस प्रकार की संज्ञा की है और एक क्षय से होने वाला कहा है इस प्रकार सब मिलाकर ग्यारह प्रकार के शिरोरोग होते हैं । जिनमें सन्निपात ही प्रधान है ॥ १ ॥

वातिकस्य लक्षणमाह—

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति सीमा निशि स्वातिमाघ्रम् ।



यद्योपतापै प्रथमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरगेन ॥ ५ ॥

वातश्च शिरोरोग—जिस शिरोरोग में मनुष्य क शिर में अकारण ही तीव्र पीड़ा होने लगती है तथा रात्रि में वह पीडा और भी अधिक हो जाती है और शिर को बांधने अथवा सेकादि करने से शान्त होती है उस शिरोरोग को वात के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमाह—यस्योष्णमङ्गारचित्त यथैव भवेच्छिरो दग्धति चाग्निनासम् ।

शीतेन रात्री च भवेच्छूमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ६ ॥

पित्तश्च शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर जलते हुए मङ्गारों से श्वास की भाँति घाव हो भाँखों और नासिकायों में दाह हो और वह दाह शीत के कारण रात्रि में अथवा शीतश्च क्रिया से शान्त हो उस शिरोरोग को पित्त के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ६ ॥

इलेम्बिकमाह—

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्ध गुरु प्रतिद्वन्द्वमयो हिम च ।

शूनाक्षिणासावदन च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ७ ॥

कफश्च शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर कफ से आच्छादित हो, मारी हो, अकटा हुआ हो, शीतल हो और नेत्र, नासिका और मुँह पर शोष हो उस शिरोरोग को कफ के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सान्निपातिकमाह—

शिरोभितापे त्रिनयनप्रसृप्ते सर्वांगि लिङ्गानि समुत्तपन्ति ॥

सान्निपातिक शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर में तीनों दोषों के सब लक्षण एकत्र उपस्थित हो जाते हैं उसे त्रिदोष के कोप का शिरोरोग जानना चाहिये ( इसमें वायु के कोप से दृष्ट-भ्रम और कम्प, पित्त के कोप से दाह-मर और सूषा तथा कफ के कोप से गुरुता और तन्द्रा आदि होते हैं ) ॥

रक्तजमाह—रक्तामक पित्तसमानलिङ्गं स्वर्णसहस्रं शिरसो भवेच्च ॥ ८ ॥

रक्तश्च शिरोरोग—जिस शिरोरोग में पित्तश्च शिरोरोग के लक्षणों के समान लक्षणों अथवा कट दो और शिर का स्वर्ण सहस्र नहीं हो उसे रक्त के कोप का शिरोरोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

क्षयजमाह—यसाबलात्मचतसम्भवानां शिरोगतानामतिरसंक्षेपेण ।

क्षयप्रवृत्ताः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेद्युमरुजोऽतिमात्रम् ॥ ९ ॥

संस्वेदमण्डुर्दानधूमनस्यैरसग्विसौषैश्च विद्वद्भिरेति ॥

क्षयश्च शिरोरोग—जिसके शिर में रहने वाले बसा कफ और रक्त अत्यन्त क्षय हो जाते हैं उसे क्षयश्च शिरोरोग उत्पन्न होता है वह कष्टायक अथवा कष्टसाध्य होता है, उसमें अत्यन्त कठिन पीडा होती है और श्वेत देने से, वमन कराने से बह बद्धा है अर्थात् इससे और क्षय होता है और पीडा बढ़ती है इन प्रकार के शिरोरोग को क्षयश्च जानना चाहिये ॥ ९ ॥

हृदिजमाह—

निस्तुषते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भवमात्रं ह्युत्तरीयं चान्तः ।

प्राणाश्च गच्छेद्भुक्तिं संपुंसं शिरोभितापं हृदिमि स घोरा ॥ १० ॥

हृदिजश्च शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर में अत्यन्त तो ( पर्यं पुमाने के समान पीडा ) हो, शिर के भ्रम भाग में खाया जाता हुआ ( छोड़े कारने के समान पीडा ) और पूरा हुआ घाव हो तथा प्राणिका से रक्त और पूय निकलता हो उसे हृदि के कोप से उत्पन्न शिरोरोग जानना चाहिये, यह अत्यन्त कठिन होता है ॥ १० ॥

एतर्वावर्तमाह—सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमचिह्नवो दशमसुपैति गाडम् ।

विषयं च प्राणमता संद्वयं सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ११ ॥

शीतेन शान्ति लभते कदाचिदुष्णेन जग्नुः सुषमाप्नुयाच्च ।

सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवृत्तं समुपादास्ति ॥ १२ ॥

एतर्वावर्त के लक्षण—जिस शिरोरोग में शिर में एतर्वावर्त होते हो भाँखों और भीरों में दृष्ट मन् पीडा प्रारम्भ होकर इस प्रकार बढ़ती हो जिस प्रकार चर्च बढ़ते हो अर्थात् श्वेत-श्वेत दिन

बढ़ता हो बैसे बैसे पीड़ा बढ़ती जाती हो और जैते-जैते धर्म पटते हों पीड़ा भी उसी प्रकार पटती जाती हो और कभी शीत क्रिया से उसमें शान्ति आती हो कभी उष्ण क्रिया से शान्ति आती हो, इस सब दोषों से उत्पन्न कष्टदायक शिरोरोग को यर्षावृत्त अथवा यर्षावर्ष कहते हैं ॥

अनन्तवातमाह—

दोषास्तु दुष्टाश्रय एव मन्यां सपीडय गाढं सरुजां सुतीमाम् ।

कुर्वन्ति साधिभ्रुषि शङ्खदेशे स्थितिं कारोत्याद्यु विदोषतस्तु ॥ १३ ॥

गण्डस्य पार्श्वे च करोति कम्प हनुग्रह लोचनजान्यिकारान् ।

अनन्तवातं तमुवाहरन्ति दोषत्रयोर्त्यं शिरसो विकारम् ॥ १४ ॥

अनन्तवात के लक्षण—जिस शिरोरोग में वातारिक तीनों दोष कुपित होकर मन्या नामक शिराओं को पीड़ित कर शिर के पिछले भाग (श्रीवा) में दारुण पीड़ा उत्पन्न हो और वह पीड़ा विशय कर आँव, भौंह और शङ्ख देश में स्थित हो तथा वही नेत्रादि स्थानों को पीड़ित करती हो और कपोल के समीप एक भाग में कम्प होता हो, हनुग्रह हो और नेत्ररोग हो उसे अनन्त वात नामक शिरोरोग कहते हैं । इसमें तीनों दोष प्रबल रहते हैं ॥ १३-१४ ॥

शङ्खमाह—

पित्तरक्तानिला दुष्टा शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः । तीव्रस्वादहरोर्गं हि शोथ कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १५ ॥

स शिरो विपवद्भेगान्निरुद्धाऽशु गल तथा । त्रिरात्राञ्जीवितं हन्ति शङ्खको नाम नामत ॥

न्यह जीवति नैपश्यं प्रत्याप्यायास्य कारयेत् ॥ १६ ॥

शङ्ख के लक्षण—जिस शिरोरोग में पित्त, रक्त और वायु दूषित होकर शङ्खदेश में स्थित होकर तीव्र पीड़ा दाह तथा भयानक शोथ उत्पन्न हो और वह शोथ विष के वेग की भाँति बढ़ कर शीघ्र शिर और गले को अवरुद्ध कर तीन ही रात्रि में जीवन को नष्ट कर दे उसका नाम शङ्खरोग है । इसमें रोगी तीन ही दिन जीवित रहता है, इसलिये वैद्य इस रोग को चिकित्सा असाध्य समझकर करे यदि रोगी, वैद्य, परिचारक और औषध ये चारों ईश्वर की कृपा से अनुकूल हो जाये तो रोगी बच भी जाता है ॥ १५-१६ ॥

अर्थावभेदकमाह—

रूपाशानादभ्यशानात्प्राग्वासावरयमेथुनै । वेगसघारणायासभ्यायामै कुपितोऽनिल ॥ १७ ॥

केयलः सक्रोधो घाऽर्घं गृहीत्वा शिरसो बली । मन्वाभ्रशङ्खकर्णादिल्लटाटार्घेषु वेदनाम् ॥ १८ ॥

शान्नाशनिनिर्मां कुर्यात्तीघ्रां सोऽर्घ्यावभेदकः । मयन घाऽथ वा भ्रोग्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥

अर्थावभेद के लक्षण—जिस शिरोरोग में रूक्ष पार्श्वों के मध्य करने से, अभ्यशन करने से, पुरवैया वायु के अधिक सेवन करने से अतिशीत के सेवन से, अतिमेथुन करने से वात-मलादि के वेगों को धारण करने से, अति परिश्रम करने से और अधिक ध्यायाम करने से बलवाने वायु कुपित होकर वायु स्वयं अथवा रूप के सहित मिलकर आधे शिर को ग्रहण कर मन्या भी, शङ्ख देश, कर्ण, नेत्र और आधे ललाट में पीड़ा उत्पन्न कर देता है । वह पीड़ा इतनी तीव्र होती है जितनी शङ्ख अथवा वज्र से काटने के समान होती है अर्थात् काटने कीरने के समान तीव्र पीड़ा होती है, उसको अर्थावभेदक नाम का शिरोरोग कहते हैं । यह रोग जब अत्यन्त बढ़ जाता है तब नेत्र अथवा कान को नष्ट कर देता है ॥ १७-१९ ॥

अथ शिरोरोगाणां चिकित्सा ।

वातिकस्य चिकित्सागोह—

वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदनमर्दनम् । पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥

वातिक शिरोरोग चिकित्सा—वातज शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन और मर्दन करना चाहिये तथा वातनाशक पान, आहार और उपनाह कर्म करना चाहिये अर्थात् भोजन, पानादि समी वातनाशक करना चाहिये ॥ १ ॥

कुष्ठमेरुण्डमूल च त्रागरं तक्रपेपितम् । कटुघ्ना च शिरपीडां भाल्लेपनतो हरेत् ॥ २ ॥

कुष्ठादि लेप—कुष्ठ, परण्डमूल की त्वचा और सोंठ समान भाग लेकर रक्त के साथ पीस कर लेप बनाकर थोड़ा गरम करके ललाट पर लेप करने से वातज शिर, वी. पीडा नष्ट होती है ॥ २ ॥

रसं श्वासकुठारो यस्तस्य नस्य विरोधतः । शिरःशूल हरत्येव विधेयं नाम संख्यया ॥ ३ ॥  
 । श्वासकुठार रस नस्य—श्वासरोग की चिकित्सा में बड़ा दुष्मा जो श्वासकुठार रस है उसका नस्य लेने से विशेष करके वातिक शिरःशूल नष्ट होता है । इसमें सशय मही करना चाहिये ॥ ३ ॥

देवदारु मत् कुष्ठं मलद्व विश्वमेपजम् । सकाशिका स्नेहयुक्तो छेपो घातशिरोतिन्जुत् ॥ ४ ॥  
 देवदारुनादि छेप—देवदारु वा पूष, तगर, कूट, अठामाही, और—सोठ समान भाग ऐर काजी के साथ पीस कर उसमें स्नेह (घृत) मिलाकर शिर पर छेप करने से वातजन्य शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

कुष्ठमेरण्डमूल च छेपं काशिकवेपितः । शिरोतिं घातजां हृन्धापुष्प वा मुक्षुकुन्दजम् ॥ ५ ॥  
 कुष्ठदि छेप—कूट और परण्डमूल की त्वचा को समान भाग लेकर काजी के साथ पीस कर शिर पर छेप करने से अथवा मुक्कुन्द के पुष्प को काजी के साथ पीस कर शिर पर छेप करने से वातजन्य शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५ ॥

शिरोवस्तिविधि —आशिरोध्यापि तद्यमं योद्धशाङ्गुलमुनिद्रुतम् ।

तेनाऽऽषष्टय शिरोऽधस्तान्मापकफकेन छेपयेत् ॥ १ ॥

निश्चलस्योपधिष्ठस्य तैल कोष्ठीं प्रपूरयेत् । धारयेद्धारजः शाश्वेयामं वामार्धमेव वा ॥ २ ॥  
 शिरोवस्तिद्वारस्येप शिरोरोगं मरुद्भ्रमम् । हनुमन्याचिकर्णातिमर्दितं मूषकपनम् ॥ ३ ॥

शिरोवस्ति विधि—शिर पर छपेटने के योग्य लम्बा तथा सोल्ह अङ्गुल का चौटा चमड़ा लेकर शिर पर छपेट देने और उसके नीचे भाग में चक्र के कर्ण से छेप कर मुद्रण कर देने पश्चात् रोगी को मछीमौति नियम बैठे का उस सोल्ह अङ्गुल गहरे शिर पर के पमटे की डोपी में कुछ लण तैल भर देवे तथा उसे जब तक पीड़ा शान्त नहीं हो तब तक धारण किये रखे । यह शिरोवस्ति वात के कोप से उत्पन्न शिरोरोग को नष्ट करती है और हनु, मया, भोल और वान की पीड़ा को नष्ट करती है तथा अश्रितरोग और शिर कम्प को नष्ट करती है ॥ १-३ ॥

विना भोजनमेवैप शिरोवस्तिः प्रयुज्यते । पश्चाद् वाऽपि सप्ताह पश्चद् चवमाचरेत् ॥ ४ ॥  
 ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोक्षयेद्वस्तिबन्धनम् । शिरोललाटघट्टमग्नीवासाद्योन्यमर्दयेत् ॥

सुसोष्णेनाग्मसा गात्र प्रचाक्ष्यारान्ति यद्विद्वत् ॥ ५ ॥

इस शिरोवस्ति क्रिया को बिना भोजन किये ही पाच दिन अथवा सात दिन अथवा छे दिन तक लगातार करनी चाहिये पश्चात् उस स्नेह ( तैल ) को निकाल कर बरत की सपिनो को सुका कर शिर, ललाट, मुद्र, ग्रीवा और कर्णों का मर्दन करे और सुकोष्ण जल से अन्नो को धोकर हितकारी ( पष्य ) भोजन करे ॥ ५ ॥

पैत्तिकनिकित्सायाह—

विस्तारामके शिरोरोगे सिन्धुस्य सज्यतिवरेचयेत् । गृहीकानिपलपूणं रसैः पीरपूरैरपि ॥ १ ॥  
 मार्कण्डीरसलिष्टैः शिरस्य परिचेचयेत् । सर्पिषः शतघौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ २ ॥

पैत्तिक शिरोरोग चिकित्सा—पैत्तिक शिरोरोग में रोगी को स्नेहन देकर रिनष्प करके मुनक्का त्रिकला, हरद, बहेड़ा और आँवला के पूरों इत के रस, दूध और घृत शिरेचन के लिये देना चाहिये तथा चक्र, दूध और मल से शिर का सिपन करना चाहिये और ग्री वार का बोवा हुआ घृत शिर में लगाना चाहिये । इससे लाभ होता है ॥ १-२ ॥  
 निमज्जनं च शिरसः शीतले कल्पयेत्स्मृति । पुस्तुशैलकपधानां कीतानां चन्द्रभागुनिः ॥  
 रपर्णाः सुखास्यप्रबनाः सेव्या याद्वारित्तान्तये ।

शिर को शीतक बन्ध में डुबाना चाहिये । कुम्भ ( कुम्भनी ), भीष कम्प और द्रप (रक्त कमल) से युक्त बन्दन के द्वारा शीतल शिरे जल के रस ( शिरेचन ) से और इस प्रकार ( शीतल-मन्द सुगन्ध ) वायु के लगने से दाह और पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

चन्द्रगोशीरपट्टवाङ्गुलाम्पाप्रमद्योत्पले ॥ ४ ॥

पीरपिष्टैः प्रदेहः स्वाच्छतैर्वा परिचेचयेत् । यद्ववाङ्गुलाम्पाप्रमद्योत्पले ॥ ५ ॥  
 चन्दन, सस, जेठीमयु बरिभारा, चन्द्रमल और भीष कम्प दूध के साथ पीतलर केन करना चाहिये अथवा इन द्रव्यों को दूध में पका कर शीतल कर ( शिर पर ) सिपन करना

चाहिये । इससे पिचत्र शिरो रोग नष्ट होता है । अथवा जेठीमधु, चन्दन और अनन्तमूल को समान भाग लेकर कक्क कर चिपना हो उसके चौगुना मूत्रित्त गोघ्न और घृत के चौगुना गौदुग्ध मिलाकर पाक की विधि से घृत सिद्ध कर नस्य लेने से वैतिक शिरोरोग में लाभ होता है ॥

माघनं शर्कराद्राचामधुकैर्याऽपि पित्तत्रे ।

अथवा शर्करा, द्राक्षा और मुलहठी के द्वारा विधिवत् सिद्ध घृत का नस्य पिचत्र शिरो रोग में देना चाहिये ॥

धात्रीकसेरहीवेरपद्यपद्यकचन्दनैः ॥ ६ ॥

दूर्धोक्षीरनलानां च मूले क्षुर्याऽप्रलेपनम् । शिरोर्तिं पित्तजां हृत्प्याद्रकपित्तह्रत्र तया ॥ ७ ॥

धात्र्यादि लेप—आबला, कसेरू, हाउवेर ( सुगन्धवाला ), कमल, पद्म काठ, चन्दन, दूध, हस और नलमूल समान भाग पीसकर शिर पर लेप करना चाहिये । इससे पिच से उत्पन्न शिर को पीड़ा तथा रक्तपित्त से उत्पन्न शिर की पीडा नष्ट होती है ॥ ६-७ ॥

रसः श्वासकुठारोऽप्य कर्पूरः कुङ्कुमं नवम् । सिता ह्यामीपयं सर्वं चन्दनेनानुषर्षयेत् ॥ ८ ॥

तस्य नस्यं निषम्बद्यापित्तजायां शिरोरुजि ।

श्वास कुठारादि नस्य—श्वास कुठार रस ( श्वास रोग की चिकित्सा में कहा हुआ ), थोडा कपूर और नवीन केमर, मिर्ची, बहरी के दूध से चन्दन घिस कर नस्य देवे तो पिचत्र शिरोरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेव हित मसम् । गुहनागरकवकस्य मस्य मस्तकशूलसुव ॥ ९ ॥

सब प्रकार के शिर-शूल में यह योग लाभदायक है । गुह तथा सौंठ के कस्क का नस्य शिर के शूल को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

श्लैष्मिक चिकित्सा—

श्लैष्मिके लह्वमं रुच लेपस्येदादि कारयेत् ।

जपत्र शिरो रोग चिकित्सा—कफत्र शिरो रोग में लह्वन, रुक्षण, लेपन और स्वेदन करना चाहिये ॥

हरेणुनतक्षेलेयमुस्तेलागुरुदारुभि ॥ १ ॥

मांसीरासोऽस्युक्तंश्च कोष्णो लेप कफार्तिनुव ।

हरेण्वादि नस्य—रेणुका या सम्माह के बीज, तार, शैलज, नागरमोधा, इलायची, अगर, देवदारु, जयमासी, रासना और परण्डमूल स्वचा को समान भाग पीसकर विधिपूर्वक लेप बनाकर थोडा गर्म कर लेप करने से कफत्र शिरो रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

शुण्ठीकुष्ठप्रमुखाटवेयकाष्ठे समाह्रियै । मूत्रपिष्टे सुखोष्णैश्च लेप श्लैष्मिशिरोर्तिनुव ॥ २ ॥

शुण्ठ्यादि लेप—सौंठ, कुट्ट, पनबाइ ( चकबइ ) और देवदारु, समभाग लेकर भेंस के मूत्र के साथ पीसकर थोडा गर्म कर लेप करने से कफत्र शिर-शूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

सनिपातिकचिकित्सा—

सनिपातसमुत्थेऽथ घृत तैल च यस्तयः । धूमनस्यशिरोर्कलेपस्येदाथमाचरेत् ॥

पुराणसर्पिषः पान विशेषेण दिशन्ति हि ॥ १ ॥

सनिपातिक शिरोरोग चिकित्सा—सनिपात से होनेवाले शिरोरोग में घृत और तेल का प्रयोग, वसिकर्म, धूमपान, नस्य कर्म, शिरोविरेचन और लेप लगाना चाहिये तथा स्वेदादि कर्म कराना चाहिये और विशेष कर पुराने घृत को पिखाना चाहिये ॥ १ ॥

स्मरफलादिप्रथमनम्—

स्मरफलातिलपट्ण्णीबीमसंयुक्तमूर्ता कुशदलघटबीजत्वप्रजाऽर्धोक्षसुर्यम् ।

प्रथमनविधिमा तद्वत्तमाथ शिरोरुत्रप्रलयनकफतन्द्रासधिपात निहन्त्यात् ॥ १ ॥

स्मरफलादि प्रथमन—मैनाफल तिलपणी, लाल चन्दन के बीज कुष्ठ के पत्त, जमालगोटे के बीज के दिलके इन सबको एक २ भाग और आधाभाग क्षुत्तिया लेकर चूर्ण उत्तम बनाकर प्रथमन नस्य देवे तो अतिशीघ्र शिर की पीड़ा, प्रलय, कफ, तन्द्रा और सनिपात रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

स्वेदन, नस्य, घृघ्नान, विरेचन, क्षेपन, सिंचन, लहन, शिरोरसि, रक्तगोक्षण, अग्निकर्म (दाहादि कर्म) उपनाह तथा पुराना घ्न, शालिषान और साठीषान का चारु, घृष, दूध, घन्व शीशों के मांस, परबल सक्षिजन, द्राक्षा, बज्रुआ-करली, आम, भौवला, अनार, जमीरी नीबू, सेल, सक, कांशी, मारियल, हरद कूट भांगरा, घृतकुमारी, नागरभोषा, खस, चन्द्रमा धे किरण, चन्दन तथा कपूर ये सभी शिर के रोगों में मनुष्यों को पयादोष सेवन करना चाहिये अर्थात् दोषानुसार ये सभी पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

अपथ्यम्—उपयुक्तमाभ्युषवाप्यनिद्राविद्वेगमज्जनम् ।

दुग्धं नील विरुद्धाश्च विबुद्धजलमज्जनम् । दन्तकाष्ठ दिवानिद्रां शिरारोगी परित्यजेत् ॥ १ ॥

अपथ्य—शीक अम्लमर्, मूत्र, आँसू, निद्रा और मूत्र के वेग को रोकना और दूध, पानी, विरुद्ध भोजन, जल में विरुद्ध बुझकी लगाया अर्थात् शिर नीचा, कर्के छलांग आदि मारना, रुकड़ी का दन्तधावन करना और पिन में सोना इन सबको शिरो रोगी त्याग देने ॥ १ ॥

इति शिरोरोगप्रकरण समाप्तम्

### अथ नेत्ररोगाणामधिकारः ।

नेत्रस्य प्रमाणमाह—विघाद् द्व्यङ्गुलबाहुष्यं स्वाङ्गुलद्वयसमितम् ।

द्व्यङ्गुल सर्वत सार्धं निषङ्गनयनमण्डलम् ॥ १ ॥

नेत्र का प्रमाण—नेत्र गोलक को बैध अपने अंगुठे के मध्य भाग के समान दो अंगुल के प्रमाण वाला जाने और नेत्र के चारो ओर से वा लम्बाई चौड़ाई से इतका प्रमाण वाममण्डल को लेकर दाईं अंगुल जाने अर्थात् वर्तमण्डल की छोड़कर नेत्र की लम्बाई दो अंगुल प्रमाण की अंगुठोदर के समान है और वर्तमण्डल सहित दाईं अंगुल है ॥ १ ॥

नेत्रस्वाहायाह—

पद्मवर्त्मस्थेत्कृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु । अनुपूर्वं तु त मध्याश्रयारोऽन्या यथोत्तरम् ॥२॥

नेत्र के अङ्ग—नेत्र में पद्म, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण तथा दृष्टि ये अङ्ग होते हैं इनमें सबसे मध्य में दृष्टि होती है, फिर दृष्टि सहित कृष्ण मण्डल श्वेत श्वेतादि अंगों के मध्य में होते हैं फिर कृष्ण सहित श्वेत भाग वर्त्मदि अंगों के मध्य में होते हैं और श्वेत भाग सहित वर्त्म पद्म के मध्य में होता है ॥ २ ॥

तत्र नेत्रमण्डलेऽष्टसप्ततिर्न्यायवी मन्तोत्पाह—

ह्योदा व्याघयो हृष्यां सत्रैयान्यौ गङ्गायुमी । कृष्णभागे तु चारवारी दक्षिण-शुद्धभागमा ॥  
वार्त्मन्वेको विशतिश्च पचमजो ह्यौ प्रकीर्तिवौ । नव मंधिषु सप्तविमशेषे सप्तशतादिताः पश ॥

एव नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्तविरामया ।

नेत्रमण्डल में रोग—दृष्टि में १२ प्रकार के रोग होन हैं और श्ची (दृष्टि) में दो और भी रोग होते हैं जो अनिमिच्छक और अनिमिच्छक होते हैं, इस प्रकार दृष्टिगत १४ रोग हुए तथा कृष्ण भाग में ४ रोग होते हैं, शुष्ण भाग में ११ रोग होते हैं, वर्त्म में ११ रोग होते हैं, पद्म में २ प्रकार के रोग होते हैं, नेत्र की छत्रियों में १२ प्रकार के रोग होते हैं और अनुपूर्व श्रेणी में १७ रोग होते हैं । इस प्रकार सब मिलकर ७० प्रकार के नेत्र में रोग होते हैं ॥ ४-४ ॥

सुश्रुतीकान्तमन्त्रिर्धसंशाम्भू—

वाताहता तथा पित्तकफारूपैव श्वयोद्धा ॥ ५ ॥

रक्षात्पोद्धवा विज्ञेयाः सर्वत्रा पद्मविशति । बाकी पुनर्ही मयने रोगा पर सप्ततिः स्युताः स  
सुश्रुत के मंत्र से वात कोष से १०, पित्त से १० और कफ के कोष से १२, रक्तोष से १६, विशेष से १५ और पुनर्ही के बाहर भाग में दो २ रोग होते हैं । इस प्रकार सब मिलकर ७२ प्रकार के नेत्र में रोग होते हैं ॥ ५-५ ॥

नेत्ररोगान् लंगा वनो विदुः शंभिरुत्थं निरन्तरम्—

उज्ज्वलानि सस्य जलप्रवेशाद्दृष्टीक्षमसकल्पविषयवाह ।

स्वेदाद्भोजोपमनिषेवनात् स्युर्द्विवाताह्रमंमातिथेगात् ॥ ६ ॥

प्रयासपानातिनिषेयणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ।

प्रसक्तसरोदनशोक्तापाच्छिद्रोर्भिघातादतिमद्यपानात् ॥ ८ ॥

तथा श्वासनां च विपर्ययेण बलेनाभितापादतिमैथुनाच्च ।

बाष्पग्रहासूचमनिरीक्षणञ्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः ॥ ९ ॥

नेत्र रोगों के निदान—उष्मा से अभितप्त होकर अर्थात् भूप अग्नि आदि से, शीतल जल में प्रवेश करने से, दूर तक दृष्टि दीक्षाने से, सोने में विपरीत आचार करने से ( दिन में सोने और रात्रि में जागने से ), नेत्र में स्वेद धूल और घूम रखने से, वमन के वेग का अवरोध करने से वा अवरोध होने से अत्यन्त वमन होने से, अत्यन्त द्रव अन्न तथा पेय पदार्थों के अति सेवन करने से, मल, मूत्र और अधोवायु के वेग को क्रम से निरन्तर रोकें रहने से, निरन्तर शोक करने से, ताप अधिक लगने से, शिर में आघात हो जाने से, अत्यन्त मद्य पीने से, ऋतु के विपरीत कार्य ( आहार विहार आदि ऋतुचर्या ) करने से, बलेश ( मानसिक बलेश ) के अधिक होने से, मानसिक ताप के अधिक होने से अत्यन्त मैथुन करने से, नेत्र के बाष्प ( आनन्द वा शोक के कारण नेत्रों में उत्पन्न हुए अर्ध वा अक्षुवेग ) को रोकने से, अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ को प्रयास करके देखने से, वाताणिक दोष कुपित होकर नेत्र में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं ।

नयनरोगसंप्राप्तिं शुश्रुते पठ्यते—

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाध्रिकैः । जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥

नेत्रभागेषु नेत्रस्य दृष्टयाद्यवयवेषु च ॥ १० ॥

शिराओं के अनुसार चरने वाले यातादि दोष जब नियुगित ( दूवित वा कुपित ) होकर नेत्र के ऊपर हो जाते हैं तब कठिन २ रोग उत्पन्न हो जाते हैं । अर्थात् नेत्र के निम्न २ भागों में तथा नेत्र की दृष्टि आदि जो अवयव हैं उनमें रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १० ॥

आदौ दृष्टिरोगानाह, तत्र दृष्टिलक्षणम्—

मसूखदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रशादजाम् । खद्योतविस्फुल्लिङ्गानां सिद्धां तेजोभिरव्ययै ॥ ११ ॥

आघृतां पटलेनाषोर्पोयाद्भेन विचारकृतिम् । शीतसारम्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥ १२ ॥

दृष्टि के लक्षण—मद्य के दाने के प्रमाण पञ्चभूतों के ( पृथ्वी आदि महाभूतों के ) प्रसाद ( अंग ) से उत्पन्न हुई खद्योत के प्रकाश तथा अज्ञारे के समान अक्षय तेज से निर्मित आँखों के बाहर के पटलों से घिरी ( ढकी ) हुई विवर ( छिद्र ) की आकृति वाली शीतसारम्य ( शीतल से सारम्य रहने वाली ) जो वस्तु नेत्र में है उसे दृष्टि कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

तत्र पटलानि चरभारि मन्थित तायाह—

तेजोजलाधिस बाह्य सेष्वयस्त्रिंशताधितम् ।

मेदुस्तृतीय पटलमाधिस रथस्त्रिं चापरम् । पञ्चमांशसप्त दृष्टेस्तेषां बाहुष्यमिष्यते ॥ १३ ॥

दृष्टिपटल प्रथम पटल नेत्र के बाहर का है वह तेज तथा जल के आश्रय है, ( यहाँ पर तेल से रक्त और जल से रस ग्रहण करना चाहिये अर्थात् प्रथम पटल रक्त और रस के आश्रय है ) द्वितीय पटल मांस के आश्रय है, तृतीय पटल मेद के आश्रय है और चतुर्थपटल अस्थि ( कालक नाम की अस्थि ) के आश्रय है । इनमें प्रत्येक का विस्तार दृष्टि के पाँचवें अंग के समान जानना चाहिये ॥ १३ ॥

तत्र प्रथमपटलगतस्य दोषस्य स्वभावमाह—

प्रथमे पटले दोषो घस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः । अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिद्ध परयति ॥

पटलगत दोष—प्रथम पटल में जब दोष कुपित होते हैं तथा मनुष्य कभी कभी अव्यक्त अस्पष्ट वा दोषों के अनुसार नीले, काले, पीले, दूबे और चिन्तित ( क्रम से वात, पित्त-कफ और सन्निपात के दोष के अनुसार ) रूपों को देखना है और जब दोषों के कोप में न्यूनता होती है तब स्पष्ट भी देखना है ॥ १४ ॥

दृष्टेरभ्यन्तरे दोषा पटले समधिष्ठिताः । एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायापटलान्तरम् ॥ १५ ॥

दृष्टि के भीतर की ओर पटल में स्थित हुए दोष क्रम से एक पटल के बाद दूसरे पटल में तथा क्रम से प्राप्त हो जाते हैं ॥ १५ ॥

द्वितीयपटलगतदोषस्वभावमाह—

दृष्टिर्मुंदां विह्वलति द्वितीयं पटल गते । सधिकाभसाकान्केशान्जालकानीय परपति ॥ १६ ॥  
मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च । पारिप्लवाश्च विविधान्वयमंभ्रं समोसि च ॥  
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपत । समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ १७ ॥  
यस्यवानपि चायमर्थं सूचीपासं न परयति ।

द्वितीय पटल गत दोष—जब दोष मनुष्य की दृष्टि के दूसरे पटल में प्राप्त हो जाते हैं तब दृष्टि अत्यन्त व्याकुल हो जाती है जिससे मरीची, मण्डल, केश और जाल आदि की भाँति नेत्रों के सामने निरन्तर दिखाई देते हैं और मण्डल, पताका, किरण, कुण्डल, अनेक प्रकार के परिप्लव ( मेटक आदि का कूटना फौटना आदि ) दिखाई देना, अनेक प्रकार के वर्षां मेघ और अंधकार आदि का दिखाई देना, दूर की वस्तुओं का समीप दिखाई देना और समीप की वस्तुओं का दूर दिखाई देना ऐसा दृष्टि में भ्रम हो जाता है तथा अत्यन्त यत्न करने पर भी धर्र के विद की नहीं देखता है ॥ १६-१८ ॥

तृतीयपटलगतदोषमाह—

ऊर्ष्यं परयति माघस्तासुतीयं पटलं गते ॥ १९ ॥

सहान्वयि च रूपाणि छाद्रितानीय चाग्धरेः । कर्गनासाधिरूपाणि विवृतानीय पश्यति ॥  
तृतीय पटलगत दोष—जब दोष मनुष्य की दृष्टि के तीसरे पटल में प्राप्त हो जाते हैं तब वह मनुष्य ऊपर की वस्तु को देखता है और नीचे की वस्तु को नहीं देखता और मरान् अथवा बड़ी वस्तु को भी बस अथवा मेघादि से आच्छादित को भाँति देखता है तथा दूसरे मनुष्य के मुख को देखकर उसके कान-नाक और भौंस के रूप ( आकार ) को विकृत देखता है ॥ १९-२० ॥  
रागप्राप्तिमाह—

यथादोष तु रज्येत दृष्टिर्वेपि यलीयसि । अघस्ये तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थित ॥ २१ ॥  
पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति । समन्तत स्थिते दोषे सकुलानीय परपति ॥  
दृष्टिमण्यस्थिते दोषे महद्भ्रम्य प्रपश्यति । दोषे दृष्टिस्थत त्रिपणेक येमन्यते द्विधा ॥ २३ ॥  
द्विधा स्थिते त्रिधा परयेद्बहुधा याञ्जवस्थिते ॥

राग प्राप्ति—दृष्टि में जो दोष ( वातारिक ) बल्बान होते हैं उनके अनुसार उस वर्ण का दृष्टि के सामने रूप दिखाई देता है अर्थात् यदि वात का दोष अधिक होगा है तो अरुण वर्ण दिखाई देता है, पित्त का दोष अधिक होगा है तो पीत वर्ण दिखाई देता है और कफ का दोष अधिक होगा है तो श्वेत वर्ण दिखाई देता है । जब दोष, नेत्र मण्डल के नीचे भाग में कुपित होते हैं तब समीप की वस्तुयें नहीं दिखाई देती हैं और जब दोष ऊपर के भाग में कुपित होते हैं तब दूर की वस्तुयें नहीं दिखाई देती हैं और जब दोष नेत्र के शोभो पार्श्व भाग में कुपित होते हैं तब अगल बागल की वस्तुयें नहीं दिखाई देती हैं तथा जब दोष नेत्रमण्डल के चारों ओर कुपित होते हैं तब मिश्रित वा अचान्य रूपों की वस्तुयें दिखाई पड़ती हैं अर्थात् स्थित रूप नहीं दिखाई पड़ता है । अब दृष्टि के मध्य में दोष कुपित होते हैं तब बड़ा पदार्थ भी छोटा दिखाई पड़ता है । दोष जब दृष्टि में तिरछा कुपित होते हैं तब एक वस्तु दो दिखाई देता है । दोष जब दृष्टि में तिरछे दो भागों में कुपित होते हैं तो एक वस्तु तीन भागों में विभक्त दिखाई देता है और यदि दोष अन्वस्थित ( अनिश्चित ) स्थान में कई अणु वा बहों बड़ी नेत्र में कुपित होने हैं तब अनेक प्रकार का रूप दिखाई देता है ॥ २१-२३ ॥

चतुर्थपटलगतदोषमाह—

विमिराकपः स वै दोषश्चतुर्थं पटलं गत ॥ २४ ॥

रजद्रि सर्वतो दृष्टि निहन्नाहा ह्यि कश्चिन् । अस्मिन्नपि तसोमृते जातिरुद्धे महागरे ॥ २५ ॥  
अत्राद्रिषो सन्नचत्रायन्तरिक्षे च विद्युत् । निमज्जानि च त्रेजामि आक्रिण्णुमि च परपति ॥  
चतुर्थपटल गत दोष—जब दोष नेत्र मण्डल के चतुर्थपटल में कुपित होने हैं तब विमिराक कल्पना करते हैं । शब्दे पता और की दृष्टि कष्ट भागी है । और १ तीव्र की कहते हैं इस महारीक के आदय प्रबल नहीं होने पर अन्वकार मात्र ही ११ ॥ २४ ॥

अवस्था में भी चन्द्रमा, चर्यं, नक्षत्र, आकाश का विप्लुत, निर्मल तेज और दीप्त तेजों को देखना है ॥ २४-२६ ॥

स पृथ लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञिता ॥

यही लिङ्गनाश रोग नीलिका और काच भी कहा जाता है ।

दृष्टिरोगाणा संख्या नामानि चाऽऽह—

दृष्ट्याश्रयाः षट् च पथेषु रोगाः षड्लिङ्गनाशा हि भवन्ति सत्र ॥

घातेन पिप्तेन कफेन चैव रक्तात्परिग्लाय्यभिघ्न्य पट्टः ॥ २७ ॥

दृष्टि के रोगों की संख्या—दृष्टि के आभित छे रोग होते हैं और अन्य भी छे लिङ्गनाश होते हैं इस प्रकार बारह रोग कहते हैं । उनमें वात, पित्त, कफ, शिरोप, रक्त और परिग्लायो भेद से छे प्रकार का लिङ्गनाश होता है ॥ २७ ॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यसवय धूमवर्शी ॥

यो ह्रस्वजात्यो नकुलाध्यसशो गम्भीरसज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥ २८ ॥

मनुष्य को दृष्टि पित्त से विदग्ध होती है तथा कफ से कफविदग्ध दृष्टि, धूमवर्शी, ह्रस्वजात्य, नकुलाध्य और गम्भीर नामक दृष्टि के छे रोग होते हैं । इस प्रकार लिङ्गनाश और दृष्टि के मिलकर बारह रोग होते हैं ॥ २८ ॥

तत्रैव दाहान्यावाह—सत्रैवान्यौ गदौ ह्यौ च सन्निपातनिमित्तकौ ॥

इसी प्रकार सन्निपात के कारण दो अन्य और भी दृष्टिरोग होते हैं ॥

तेषु वातजस्य लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—

घातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥ २९ ॥

आविलान्यस्याभानि व्याविद्वानीय मानवः ॥

वातज लिङ्गनाश—वात का कोप जिस लिङ्गनाश में होता है उसमें रोगी रूपों को घूमता हुआ देखता है और मलिन अरुण आम्रायुक्त तथा कुटिल रूपों को देखता है ॥ २९ ॥

पैथिकमाह—पिप्तेनाऽऽदिरयव्यद्योतशक्रघापतविद्वगुणान् ॥ ३० ॥

मृत्यत्तरचेवशिखिन सर्वे नील च पश्यति ॥

पैथिक लिङ्गनाश—पित्त के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी चर्यं, खद्योत ( जुगन् ) इन्द्रपुत्र तथा विद्युत् ( बिजली ) आदि के रूपों को देखता है अर्थात् उसके नेत्रों में इन सब पदार्थों की आभा अनायास हुआ करती है और उसे नाचते हुए और की भाँति पथ सब वस्तुओं का रूप नील वर्ण का दिखाई देता है ॥ ३० ॥

श्लैथिकमाह—कफेन परयेभूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥ ३१ ॥

सलिलप्लावितानीव परिजाडयानि मानवः ॥

कफज लिङ्गनाश—कफ के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी स्निग्ध और श्वेत रूपों को देखता है और जल में खूब कर सब पदार्थ गोले हो गये हैं इस प्रकार के भीगे हुए वर्ण के रूपों को देखता है ॥ ३१ ॥

सन्निपातजमाह—सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥ ३२ ॥

बहुधाऽपि द्विधा घाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः ॥

हीनाधिकान्नन्यथ वा ज्योर्साध्यपि च भ्रूयसा ॥ ३३ ॥

सन्निपातज लिङ्गनाश—सन्निपात के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी चित्रविविचित्र और विपरीत वा विकृत रूपों को देखता है यथं सभी प्रकार की वस्तुओं को अनेक प्रकार के रूपों से युक्त देखता है और प्राय करके अच्छे रूप को भी हीनाङ्ग वा अधिकाङ्ग देखता है अथवा ज्योतिषों ( नक्षत्रादिकों ) को देखता है ( इस प्रकार के रूपों की आभा उसके सामने चमका करती है ) ॥ ३२-३३ ॥

रक्तजमाह—

परयेदक्तेन रक्तानि तमोसि विविधानि च । हरिताम्यथ ह्युष्णानि पीतान्यपि च मानवा ॥

रक्तज लिङ्गनाश—रक्त के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी रक्त वर्ण का ही सब



प्रकार की वस्तुओं का रूप देखता है और अनेक प्रकार के अणुकारों को देखता है तथा हरे, कृष्णवर्ण के तथा पीत वर्ण के भी रूपों को देखता है ( उसको सब वस्तु छाल, काठी इरी, पीने दिखाई पड़ती है ॥ ३४ ॥

परिम्लायिनमाह—

रक्तं मूर्च्छितं पित्तं परिम्लायिनमाधरेत् । तेन पीता विशाः परपदुच्चान्तमिव भास्करम् ॥३५॥  
विकीर्यमाणान्द्रघोतैर्वृक्षांस्तेजोसि चैव हि ॥

परिम्लायी लिङ्गनाश—दूषित रक्त से मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिङ्गनाश रोग को उत्पन्न कर देता है । परिम्लायी लिङ्गनाश का रोगी दिशाओं को उदय होते हुये घूर्णक समान पीतवर्ण का देखता है और वृक्षों को खोतों ( जुगजुओं ) से म्यास देखता है एवं तैयों की विकीर्ण ( छितराया हुआ ) देखता है ॥ ३५ ॥

नेत्रवर्णं पट्टिभिर्ह लिङ्गनाशमाह—

घातादि जनितैर्नग्रवर्णैरपि च पद्विधि ॥ ३६ ॥

लिङ्गनाशो निगदितो वर्णो घातादिजो यथा ॥

लिङ्गनाश के भेद—घातादि दोष से उत्पन्न हुए नेत्रों के वर्णों के अनुसार ही प्रकार का लिङ्गनाश महा गया है । उसमें नेत्र का वर्ण घातादि दोष के वर्णों के समान ( जो भागे कहा आयेगा ) होता है ॥ ३६ ॥

रागोऽरणो मादसज्जं प्रदिष्टो ग्लायी च नीलश्च तथैव विसात् ।

कफाक्षितः क्षीणितजः सरक्तः समस्तद्योपप्रभवो विचित्र ॥ ३७ ॥

घात के कोप से नेत्र का वर्ण अरुण होता है, परिम्लायी और पित्त से ग्लायी ( पीत नील मिश्रित ) और नीलवर्ण नेत्र का होता है, कफ से नेत्र का वर्ण श्वेत होता है, रक्त से नेत्र का वर्ण श्वेत होता है, रक्त से नेत्र का वर्ण रक्त होता है और सब दोषों ( त्रिदोषों ) से चित्र विचित्र ( अनेक वर्ण का ) नेत्र का वर्ण हो जाता है इन वर्णों के अनुसार भी नेत्र में ये प्रकार के लिङ्गनाश होते हैं ॥ ३७ ॥

घाताग्निना हेतुभूतेन जनिसे नेत्रमण्डले रूपविशेषमाह—

अरुण मण्डलं घाताद्यञ्जल पर्यं तथा । पित्ता मण्डलमागीलं कास्वाभि पीतमेव च ॥ ३८ ॥

रलेष्मणा बद्ध स्निग्धं सङ्कुन्द्वन्दुपाण्डुरम् । अल्पपद्मलाशरया हृत्पटो विन्दुरिवामरतः ॥ सकुष्पपातपेज्यर्थं क्षापायां विरततो भवेत् । सधमाने तु भवने मण्डलं तद्विरापति ॥ ३९ ॥

घातादि दोषों के कारण नेत्र मण्डल के विशेष लक्षण—घात के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में नेत्र का मण्डल अरुणवर्ण का, सञ्जल और कठोर ( सरसपदं ) होता है । पित्त से होने वाले लिङ्गनाश में हृत् पण्डल श्वेत नीलवर्ण कासे के वर्णों का ( पीठका मुक्त पाण्डु ) भवता पीत वर्ण का हो जाता है । कफ के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में हृत्पण्डल घना वा आदन्त नीला स्निग्ध, सञ्ज के समान वा दुन्द के पुत्र समान श्वेत तथा अद्रया के समान का भवता हृत्पटो मुक्त कमल के पत्र पर स्थित अल्प विन्दु के समान श्वेत वर्ण का हो जाता है तथा वह मण्डल पूर में आवण्त सङ्कुचित हो जाता है और रसाय में फेक जाता है एवं अर्थ के गरुने पर वह मण्डल श्वेत-श्वेत फेक जाता है ॥ ३८-४० ॥

मण्डलं तु भवेच्चिर्न लिङ्गनाशो त्रिदोषजः । प्रवालपद्मपद्मानं मण्डलं क्षीणितायकम् ॥ ४१ ॥

त्रिदोष के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में हृत्पण्डल चित्र-विचित्र वर्ण का ही भाग्य है । रक्त के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में हृत्पण्डल प्रवाल ( मूले ) के वर्णों का भवता रक्तवर्ण दल के वर्णों का हो जाता है ॥ ४१ ॥

रक्तजं मण्डलं हृत्पटुं काशात्मप्रसम् । परिम्लायिनि रोगे श्यामलाभि नीलं च मण्डलम् ॥ दोषव्यवहारपर्यं तत्र कदापिगपात्तु इत्यम् ॥

हृत्पटु में रक्त के प्रसाद का लक्षण अल्पम मण्डल श्वेत ( नीला ) रक्तवर्ण के यथा ही भाग्य का ही भाग्य है । परिम्लायी नामक लिङ्गनाश में हृत्पण्डल श्याम ( पीत-नील मिश्रित वर्ण का ) और नीलवर्ण का ही भाग्य है और कदा १ दोषों के कोप से भाग्य ही भाग्य ( रक्त )

सन पदार्थों का रूप दिखाई देने लगता है अर्थात् इस रोग में कमी २ दृष्टि बिना चिकित्सा के भी ठीक हो जाती है ॥ ४२ ॥

अनुक्तव्यपादाहगौरवादिदोषलिङ्गसङ्ग्रहार्थमाह—

यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४३ ॥

सभी प्रकार के लिङ्गनाशों में दोषों के अपने २ लक्षण प्रकट होते हैं ॥ ४३ ॥

पित्तेन पुष्टेन गतेन, वृद्धि पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ।

पीतानि रूपाणि च तेन परयेत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टि ॥ ४४ ॥

पित्त से निवृत्त दृष्टि के लक्षण—जिस मनुष्य की दृष्टि कुपित होकर बढ़े हुए पित्त के कारण पीतवर्ण की हो जाती है उसे सभी वस्तुयें पीतवर्ण की ही दिखाई देती हैं । उस मनुष्य की दृष्टि को पित्त विदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयं पटल गते रूपविशेषेण दिक्काललक्षणमाह—

प्राप्ते तृतीय पटल तु क्षोपे दिवा न परयेन्नशि शीघ्रते स ।

रात्रौ स क्षीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताक्षपभावासकलानि परयेत् ॥ ४५ ॥

दिवाभ के लक्षण—जिस मनुष्य की दृष्टि पित्त से विदग्ध हो जाती है और वह दूषित दोष जब तृतीय पटल में प्राप्त हो जाता है तब उसे दिन में नहीं दिखाई देता, रात्रि में दिखाई देता है और रात्रि में शीत (दृष्टि के पित्त के शमन करने में) सहायक होता है इसीसे रात्रि में उसे दिखाई देता है तथा पित्त के भ्रष्ट हो जाने से उस सभी वस्तु दिखाई देता है ॥ ४५ ॥

श्लेष्मविदग्धदृष्टिलिङ्गमाह—

तथा नर श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ।

श्लेष्म विदग्ध दृष्टि के लक्षण—उसी प्रकार कफ के कुपित होकर बढ़ जाने से दृष्टि कफ से दूषित हो जाती है, उसमें मनुष्य सभी प्रकार के रूपों को श्वेतवर्ण का ही देखता है । इस नेत्ररोग को कफ विदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥

नक्ताध्यमाह—त्रिषु स्थितो य पटलेषु क्षोपो नक्ताध्यमापादयति प्रसद्य ॥ ४६ ॥

दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पर्येषु रूपाणि कफाक्षपभावात् ।

नक्ताध्य के लक्षण—जब दोष (कफ) तीनों पटलों में स्थित हो जाता है तब नक्ताध्य रोग को उत्पन्न कर देता है अर्थात् रात्रि में उसे नहीं दिखाई देता है । दिन में सूर्य के तेज से कफ को भ्रष्टता होती है इसलिये दिन में सभी प्रकार के रूपों को देखना है । इस रोग का प्रचलित नाम रत्नौषी है । (दिवाध्य में दिन को नहीं दिखाई देता है, नक्ताध्य में रात्रि में नहीं दिखाई देता है । दिवाध्य में पित्त दूषित होता है, नक्ताध्य में कफ दूषित होता है । दिवाध्य में तृतीय पटल में पित्त दूषित होता है, नक्ताध्य में तीनों पटल में कफ दूषित होता है । यद्यपि दिवाध्यमें तृतीय पटल में पित्त का दूषित होना कहा है किन्तु प्रथम द्वितीय पटल के दूषित हुए बिना तृतीय में दोष प्राप्त होना असम्भव है । अतः इन दोनों में प्रतिकूल समता है ऐसा जानना चाहिये) ॥४६॥

धूमन्निदानमाह—

शोक्ज्वरायासशिरोमितापैरग्याहता यस्य नरस्य दृष्टि ॥ ४७ ॥

धूम्रास्तु यः पश्यति सवभावान्स धूमदर्शाति नर प्रदिष्ट ।

धूमदर्शी के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि शोक, ज्वर, परिश्रम, शिरोम्यथा आदि कारणों से पीड़ित होती है और बदन सम्पूर्ण द्रव्यों को धूम के समान ही देखता है उसे धूमदर्शी कहते हैं अर्थात् धूमदर्शी के ये लक्षण हैं । इसमें भी पित्त दोष का ही कोप रहता है और दिन में ही अब पित्त का प्रकोप रहता है सभी धूम के वर्ण की सभी वस्तुयें दिखाई देती हैं रात्रि में नहीं । आचार्य गदाधर के मत से यह रोग वाक्त्र (प्रथम) पटल में होता है और आचार्य कार्तिक के मत से तृतीय पटल में, किन्तु पित्त का प्रकोप सभी मानते हैं और निदान भी पित्त प्रकोप के ही है । अतः पित्तक जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

ह्रस्वजात्यमाह—यो चासरे पश्यति कष्टतोऽथ रूपं महं लक्ष्मिं निरीक्षतेऽप्यम् ॥ ४८ ॥

रात्रौ पुनर्यं प्रकृतानि परयेत्स ह्रस्वमाद्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ।

हृदयमाद्य के लक्षण—जो मनुष्य दिन में अचिन्ता से देखता है और मर्याद वस्तु को भी भ्रम ( लघु ) देखता है और रात्रि में सभी वस्तुओं के वचित रूप देखता है उस मनुष्य के नेत्र दोष की हृदयजाद्य रोग कहते हैं । यह भी वैचिक रोग है और इसमें दोष की स्थिति दृष्टि के मध्य में होती है ॥ ४८ ॥

तन्त्रान्तरे—दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्दृष्ट्यस्य न पर्यति ।

राश्री पिच्छाह्यमावास्तु तानि रूपाणि पर्यति ॥

हृदयजाद्य के लक्षण—जब मनुष्य की दृष्टि के मध्य में दोष स्थित होता है तब वह मर्याद रूप को हृदय ( लघु ) देखता है और रात्रि में विष की भ्रमणा होने से कृती रूप को ( एत ) देखता है ॥

नकुलान्वयमाह—

विद्योत्तवे यस्य मरस्य दृष्टिर्दोषामिषया नकुलस्य यद्भव ॥ ४९ ॥

चिद्राशि रूपाणि दिवा स पर्योस ये विकारो नकुलान्वयस्य ।

नकुलाप्य के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि दोषों ( विदोषों ) से व्याप्त होकर नकुल की दृष्टि के समान वर्ण और प्रतिमा वाली हो जाती है और वह मनुष्य दिन में अनेक प्रकार के वर्णों ( तीनों दोषों के वर्णों ) का रूप देखता है उस रोग की नकुलाप्य कहते हैं ॥ ४९ ॥

गम्भीरकामाह—

दृष्टिविरूपा श्वसनोपसृष्टा सकोचमभ्यंतरतरु याति ॥ ५० ॥

रुजापगाथा च समचिरोग गम्भीरकेति प्रयश्नित वृद्धाः ।

गम्भीर दृष्टि के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि वायु से दूषित होकर विरूप ( विद्युत ) हो जाती है और भीतर की ओर संकुचित हो जाती है तथा अत्यन्त पीड़ा करती है उसे गम्भीरिका कहते हैं ॥ ५० ॥

बाधो निमित्तानिमित्तसंज्ञी लिङ्गनाद्याहाह—

पादो पुनर्जांविह संप्रद्विष्टौ निमित्ततथाप्यनिमित्तत्वम् ॥ ५१ ॥

निमित्ततस्तत्र निरोमितापाज्जेवस्यमिष्यभ्दनिर्द्वान् रस ।

सुरार्पिगम्पर्वमहोरगाणां सदर्शनैवापि च भास्वरागाम् ॥ ५२ ॥

हृष्येत दृष्टिर्मुञ्जय यस्य स लिङ्गनासवनिमित्तसंज्ञः ।

बाध लिङ्गनाद्य के लक्षण—बाध अर्थात् आगन्तुक लिङ्गनाद्य रोग को प्रचार का और भी होता है, एक निमित्तक ( कारण से होनेवाला ) और दूसरा अनिमित्तक ( अकारण ही हो जाने वाला ) उनमें जो निमित्त ही होता है वह चिरीमिठाप ( मरुतक पीड़ा ) से होता है, अर्थात् विषाक्त पुष्पादि ( विषैले वृक्षों के पुष्पादि ) के स्पर्श से वा विषाक्त वायु के लगने से उत्पन्न समस्त दिग् में जो वपताप ( अमिठाप वा पीड़ा ) होता है उससे नेत्रगत रक्त दूषित होता है और दृष्टि शक्ति नष्ट हो जाती है तथा अनिमित्तक रोग के लक्षणों के समान बाध लिङ्गनाद्य के भी लक्षण होते हैं और अनिमित्तक को होता है वह वेदना श्रम, गर्भ, बड़े शर्त ( नागादि ) और घर्षादि के इत्यत् इत्येवम हो होता है अर्थात् जलके साथ मनुष्य की दृष्टि दूषित कर जाती है तब मनुष्य की दृष्टि नष्ट हो जाती है इसे अनिमित्तक कहते हैं । पर वहां लिखा होती है कि इसे अनिमित्तक क्यों कहा गया ? तबका उत्तर यह है कि निमित्तक से वहां कोटिक जगद वारम लिये करते हैं और इत्यदिहो के संज्ञान लीटिक जगद कारण नहीं होने से वह अनिमित्तक है ॥ ५१-५२ ॥

अनिमित्ततो लिङ्गनाद्यस्य लक्षणमाह—

तत्रापि क्लिष्टमिच्छावनाति सेदूर्ध्ववर्गा विमटा च दृष्टि ॥ ५३ ॥

अनिमित्तक लिङ्गनाद्य में नेत्र के रूप—अनिमित्तक लिङ्गनाद्य में नेत्र एतद् ( विमट ) एवं सेदूर्ध्वगो से समान विमट वर्ण वाले ( अर्थात् बाध अर्थात् वप दृष्टि ) विचार्य देते हैं । ( पर दृष्टि शक्ति नष्ट हो कर रहती है ) ॥ ५३ ॥

दृष्टिमण्डलप्रत्यासन्नतया कृष्णगतविकारानाम्—

यस्समग्न शुक्रमधामर्णं च पाकात्ययश्चाप्यञ्जका तस्यैव ।

पाचार एते जयनाभयास्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥ ५४ ॥

दृष्टिमण्डल प्रत्यासन्नतया कृष्णगत विकार—‘समग्न शुक्र’ नाम का नेत्र रोग, ‘अमग्नशुक्र’ नाम का नेत्र रोग, ‘पाकात्यय’ नाम का नेत्र रोग और ‘अञ्जका’ नाम का नेत्र रोग नेत्र के कृष्ण प्रदेश (कृष्णमण्डल वा कृष्ण भाग) में ही उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनके होने का नियत स्थान कृष्ण मण्डल ही है ॥ ५४ ॥

तत्र समग्नशुक्रलिङ्गमाह—

निमग्नरूप तु भवेदि कृष्णे सूक्ष्मेव विद्वं प्रतिभाति यद्वै ।

स्त्रावं खवेदुदुष्टमतीथ यच्च सस्समग्न शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५५ ॥

समग्न शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में निमग्न हुआ शुक्र (फूल-कुछ निम्न अर्थात् थोड़ा गहरा) दिखाई देवे तथा उससे कुछ बीधा हुआ सा छात होवे और जिससे अत्यन्त दूषित स्त्राव (आँसू आदि) होवे उसे समग्न शुक्र कहते हैं ॥ ५५ ॥

विदेहेऽप्युक्तम्—रक्तगामिनिर्भं कृष्णे द्विधाभ यत्र लक्ष्यते ।

सूक्ष्ममेव तश्चुकमुष्णाशुजाधि सघणम् ॥

विदेह के मत से समग्न शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में रक्तवर्ण की रारें के समान दिखाई देवे और उसमें के अग्रभाग से धिंदा हुआ प्रतीत हो तथा उससे अत्यन्त उष्णस्त्राव ही उसे समग्न शुक्र कहते हैं ॥

अपात्य साप्यासाप्यलक्षणमाह—

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चायगाढ च संस्त्रयेच्च ।

अवेदन वा न च युग्मशुक्र ससिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ ५६ ॥

समग्नशुक्र के साप्यासाप्य लक्षण—जो समग्नशुक्र नेत्र के दृष्टिभाग के समीप नहीं होता है, तथा जो गम्भीर मूल वाला नहीं होता है, तथा जो अधिक स्त्राव करनेवाला नहीं होता है, तथा जिसमें पीड़ा नहीं होती है, तथा जो युग्म (दो शुक्र एवत्र) नहीं होता है वह समग्न शुक्र कदाचिदपि सिद्ध हो जाता है नहीं वो प्रायः असाध्य ही होता है ॥ ५६ ॥

अमग्नशुक्रमाह—

त्यन्दात्मक कृष्णगत तु शुक्र शब्दस्वेन्दुकुदप्रतिभावभासम् ।

वेहायसाभ्रमपतनुप्रकाश तं चामर्णं साप्यतमं घटितं ॥ ५७ ॥

अमग्न शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में अभिभ्यन्द के कारण उत्पन्न हुआ शुक्र (फूल) शब्द, चन्द्रमा और कुन्द के पुष्प के समान द्रवत वर्ण का होता है, एवं आकाश में स्थित तट्टे (निर्जल स्वच्छ) प्रकाश वाले बादल के समान द्रवत वर्ण का होता है (वेहायसाभ्र कहने का तात्पर्य यह है कि जल वाले बादल पर्वतीय कहे जाते हैं, उनका वर्ण नील होता है, और यहाँ श्वेत मेघ की उपमा देनी है इसलिये सजलाभ्र के छेत्रन के लिये स्पष्टीकरण किया गया है यसा कार्तिकेय का मत है) उसे अमग्न शुक्र कहते हैं और यह साध्यतम (सुखसाध्य) होता है। (साध्यतम कहने का तात्पर्य सुखसाध्यता प्रतिपादन करने का है यदि यह नहीं होता तो कुछ साध्यता की आन्ति ही जाती क्योंकि गम्भीरजातम् और त्यन्दात्मकम् इन दोनों में कुछसाध्यता ही समझी जाती रही से यह दिया गया है) ॥ ५७ ॥

साध्यतमरवाप्यवस्थामेदेन कष्टसाध्यतामाह—

गम्भीरजातं बहुल च शुक्रं चितोभिधत चापि घदन्ति कृच्छ्रम् ।

साध्यतम शुक्र जो शुक्र गम्भीर मूल वाला (दो तीन पटलों तक पहुँचा हुआ), हो बहुत (सूख एव वृद्ध अथवा सूक्ष्म बादलों के समान नहीं होकर घने बादलों के समान) हो तथा जो घिरकाल से उत्पन्न ही वह अमग्न शुक्र कष्ट-साध्य कहा जाता है ॥

असाध्यता चाऽऽह—

विच्छिन्नमभ्यर्ष पिशितादृतं वा चल दितारसुषममदृष्टिकृच्छ ॥ ५८ ॥

अभिन्नवर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक बार २ धीने पर भी बरत नही धीने पर आपस में सटा करे और वर्त्म में किसी प्रकार का पाक भी नही हो, उसे अभिन्न वर्त्म मानना चाहिये ॥ ८९ ॥

वातहतवर्त्माऽऽह—

विमुक्तसंधि निरचेष्ट वाम यस्य निमीक्यते । तद्वातनिहतं वर्त्म जामीयाद्द्विचिन्तकः ॥९०॥  
 वातहत वर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक वर्त्मदुपल गत संधि के रक्त भ्रष्ट हो जाने से निरचेष्ट (कियाहीन) होकर बन्द हो जाते हैं उसे वातनिहित (वातहत) वर्त्म कहते हैं ॥ ९० ॥

वर्त्मातुरमाह—

वर्त्मातुरस्य विषम प्रन्यभूतमवेदनम् । आचक्षतेर्बुद्धमिति सरक्तमवलम्बितम् ॥ ९१ ॥  
 वर्त्मातुर के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के अन्दर विषम (असमान वा ऊँचा नीचा, टेढ़ा मेढ़ा) और बिना पीड़ा के वा अल्पपीड़ा रक्तवर्ण की तथा क्षीम उत्पन्न होनेवाले प्रथि सी उत्पन्न हो जाती है उसे वर्त्मातुर कहते हैं ॥ ९१ ॥

निमेषमाह—

निमेषी शिरा वायुः प्रविष्टः संधिसधयः । सञ्जाह्वयति वर्त्मानि निमेषः स न सिध्यति ॥  
 निमेष के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के वर्त्मदुपल की संधि में होनेवाली निमेषिनी (सञ्जाहित करनेवाली) शिराओं से व्यान वायु प्रवेश करके (दूषित होकर) पलकों को निरन्तर सञ्जाहित किया घरे (पलक बराबर आयात चलते रहें) उस निमेष रोग कहते हैं यह अमाप्य है ॥ ९२ ॥

शोणितार्शोऽलक्षणमाह—

वर्त्मस्यो यो विपर्यस्य लोहितो मृदुरक्षुर । तद्भक्तं शोणितार्शिरुद्धं वाऽपि विपर्यते ॥९३॥  
 शोणितार्श के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में लोहित वर्ण के क्षीम उत्पन्न होयें और बढ़ते जायें, वे रक्त के दोष से होनेवाले होते हैं, उन्हें शोणितार्श कहते हैं और ये घटने पर भी बढ़ते ही रहते हैं ॥ ९३ ॥

तथा च विदेह—वायुशोणितमावाय शिराणां प्रमुस्रिष्यतः ।

अनपत्यद्वार तावत्तमनि रिद्धुद्धरोहिणम् । तद्दोशितार्शोऽभास्यं रवाद्भक्त्यापय रक्तम् ॥  
 जिस रोग में नेत्र के पलकों में वायु कुशिल होकर शोणित (रक्त) को क्षीम शिराओं के सम्मूल स्थित होकर (गुप्त में जाकर) तावत् (रक्त) वर्ण के मांसातुर की उत्पन्न कर देता है वे मातुर वादने पर पुन उत्पन्न हो जाते हैं और उनमें से रक्त नहीं होगा है यह रक्त है इसे विदेह के मत से शोणितार्श कहते हैं और यह अमाप्य है । वादान्तर में 'रक्तम्' के स्थान पर 'नीरम्' है जिससे यह अर्थ होता है कि इस रोग में पीड़ा पही होती है ९४ ॥

भग्नमाह—

क्षपाकी कटिम र्गुली प्रथिव्यममयोऽञ्ज । सक्तदूर विविपुल्लोऽलप्रमाणो लक्षणः समुत्तः ॥  
 भग्न के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में पाक रहित, कटिम, भूल पीड़ा रहित कण्डुल, विविपुल और भोज (बदती) फल के प्रमाण की प्रथि उत्पन्न हो उसे भग्न कहते हैं । यह अथय होता है ॥ ९५ ॥

विश्वार्शोऽह—

प्रयो दोषा वहि शोथं कुमुदिद्वानि वर्त्मानाम् । प्रक्षयमाप्यतदुक्तं विपयद्विसवर्त्मं तम् ॥  
 विश्वार्श के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में तीनों दोष अहित होकर पलकों के बाहर (बाहर) शोथ उत्पन्न कर देते हैं और अहित की और विष (मृगण) के विदो के समान विदो की कर देते हैं तथा इन विदो से अथय उत्पन्न होता होता है उसे विश्वार्श कहते हैं (यह शोथ भीतर ही से होता है जो बाहर दिगर्श होता है) और यह अमाप्य है ९६ ॥

कुपनमाह—

वातात्ता वर्त्मान्कोशे अनेपथि प्रका बरत । तदा दृष्टं न वार्षोति कुपनं नाम तद्विदुः ॥९७॥

कुष्ठन के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों की घाटादि दोष (त्रिदोष) कुपित होकर सङ्कुचित कर देते हैं, देखने की शक्ति नहीं रह जाती है। उस वर्ग सङ्कोचन को कुष्ठन नामक रोग कहते हैं ॥ ९७ ॥

### अथ पद्मरोगौ ।

तत्ररथयो रोगयोर्नामनी आह—

पद्मकोपः पद्मशातो रोगो ह्ये पद्मसंश्रयो ।

पद्म रोगों के नाम—पद्म ( वर्ग लोम वा बरौनी ) में होने वाले रोग दो प्रकार के होते हैं जिनमें एक को पद्मकोप और दूसरे को पद्मशात कहते हैं ॥

तत्र पद्मकोपमाह—

प्रचालितानि घातेन पद्ममाण्यधि विशति हि । असिते सितभागे च मूलकोशापतन्त्यपि ॥  
यूप्यन्त्यधि मुहुरताति सरम्भे जनयति च । पद्मकोप स विश्वेयो व्याधिः परमदाह्य ॥

पद्मकोप के लक्षण—जिस रोग में वायु से प्रचालित किये हुए पलकों के लोम आँसु के भीतर की ओर प्रवेश करते हैं और वे लोम नेत्र के कृष्ण भाग और श्वेत भाग में लगते रहते हैं ( जिससे नेत्र में बट्ट होता है ) और मूल कोश ( बरौनी ) से गिर भी जाते हैं अथवा नहीं भी गिरते हैं । उनके घर्षण से नेत्र के कृष्ण और श्वेत भाग में शोथ उत्पन्न हो जाता है । उसे पद्मकोप रोग कहते हैं, यह अत्यन्त कठिन रोग है ॥ ९८-९९ ॥

पद्मशातमाह—

वार्मपद्ममादायगतं पिच्छं रोमाणि शातयेत् । कण्डू दाह च कुरुते पद्मशात तमादिशेत् ॥१००॥

पद्मशात के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के लोम के स्थान में धाकर कुपित हुआ पिच्छ पलकों के लोमों को गिरा देता है और उसमें कण्डू तथा दाह उत्पन्न कर देता है उसे पद्मशात रोग कहते हैं । लोक में इसे बधनी कहते हैं ॥ १०० ॥

### अथ सधिरोगाः ।

संधिव' बटतानाह—पद्मवयसंगत संधिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः ।

शुक्लकृष्णागतसवन्धः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च ॥

तसः कनीनिकागतः पृष्ठ्यापाङ्गसन्धितः ॥ १०१ ॥

नेत्र की संधियाँ—पहली सन्धि पद्म तथा वर्म में होती है, दूसरी वर्म तथा नेत्र के शुक्ल भाग में होती है, तीसरी नेत्र के शुक्ल भाग तथा कृष्ण भाग के मध्य में होती है, चौथी कृष्ण भाग तथा दृष्टि ( पुतली ) के मध्य में होती है, पाँचवीं संधि कनीनिकाओं ( नाक के निकट के नेत्र भाग में होती है ) और छठवीं संधि नेत्र के अपाङ्ग भाग ( नेत्र के पुच्छ भाग या अन्तिम काने ) में होती है । इस प्रकार नेत्र में छे संधियाँ होती हैं ॥ १०१ ॥

तत्रत्यानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

पूयालसः सोपनाहः स्रावाश्चरवार पृच च । पर्यणीकाऽलजी जन्तुम्रियः संधौ मवाऽऽमयाः ॥

संधियों में होने वाले रोग—पूयालस, उपनाह, चार प्रकार के स्राव पर्यणिका, अलजी और जन्तुम्रिय इस प्रकार नौ रोग संधि में होते हैं ॥ १०२ ॥

तेषु यालसमाह—

पक्वः शोथः संधिभो यः सतोद्ः स्ववेत्पुय पृति पूयालसाख्यः ।

पूयालस के लक्षण—जिस संधिरोग में नेत्र के कनीनिका में ( नाक के निकट के कोने में ) उत्पन्न हुआ शोथ पक्व जाता है और उसमें छहें जुमाने के समान पीड़ा होती है तथा उसमें से दुग्धित पूय का स्राव होता है उसे पूयालस रोग कहते हैं । यह रोग सन्निपातज, साध्य एवं श्वेद्य है ॥

उपनाहमाह—

प्रन्धिर्नास्यो दृष्टिसघावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजशोपनाहः ॥ १०३ ॥

उपनाह के लक्षण—जिस सन्धिरोग में कृष्णमण्डल और दृष्टि की संधि में म्रिय की ओर बट्ट छोटी नहीं हो अर्थात् बड़ी हो, उसमें पाक नहीं हो अथवा थोड़ा पाक हो तथा

भ्रिसमें कण्डु हुआ करे और पीदारहित भयवा अल्प पीडा वाली हो उसे उपनाहरोग कहेते है  
यद् कफय रोग है और साध्य एव भेष है ॥ १०३ ॥

घावाणां सम्प्राप्तिमाह—

गत्वा सन्धीनद्युमार्गेण दोषां कुपुं छावोल्लस्यै स्वैरुपेतान् ।

स हि साव नेत्रनादीति चैके सरया लिङ्ग कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥ १०४ ॥

सधि के साव रोगों की सम्प्राप्ति—वागादि दोष अनुवादिनी भग्नियों के मार्ग स नेत्र के  
सधियों में जाकर अपने २ लक्षणों के अनुसार छावों को उत्पन्न कर देते है। उसी साव को  
कीर् २ वैय नेत्रनादीरोग भी कहते हैं। वही छावों के चार प्रकार के लक्षण होते हैं जिसे भाने  
कहेंगे। चतुर्भास्य से साविपातिक, रक्तज, कफज और पिचम साव ग्रहण किया गया है। स्यादि  
के स्वभाव से ( पिचम गणगण्ड की भाँति) वातज साव नहीं होता है ॥ १०४ ॥

पैच्छिक घावमाह—

हरिद्राभं पीतमुष्णं जल या पित्तघ्नाय सन्नयेरसधिभस्यात् ॥

पैच्छिक साव—जिस सधि रोग में हल्दी के बर्ण का (पीत लोहित) भयवा होत  
पीत वर्ण का और सन्न एवं केवल जल के समान नेत्र की सधियों से छाव हो उसे पैच्छिक साव  
कहते है। यह असध्य है ॥

श्नेष्मसावमाह—

रयेतं सान्द्र विच्छिद्य यः ख्येषु श्लेष्मघावोऽसौ विकार प्रदिष्ट ॥ १०५ ॥

कफज छाव—जिस सधि रोग में नेत्र की सधियों से श्लेष्म वर्ण का, घना (गहरा)  
और विच्छिद्य साव हो उसे कफ कोष का साव कहते हैं यह भी असध्य होता है ॥ १०५ ॥

सविपातसावमाह—

शोथः सन्धौ सन्नयेद्यस्तु पथः पूष घ्राय सवजः सम्मथ सः ॥

सविपातज साव—जिस सधि रोग में नेत्र की सधियों में शोथ होकर पाक होने और  
उससे पुष का साव हो उसे त्रिरीष के कोष का साव कहते है। कीर् २ वैय पूर्वसाव भी कहते  
हैं। यह भी असध्य है ॥

रक्तसावमाह—रक्तघ्राय शोणितायो विकारो गच्छेद्दुष्ट सन्न रक्तं प्रभूतम् ॥ १०६ ॥

रक्तसाव के लक्षण—जिस सधि रोग में नेत्र की सधियों से दूषित एवं अल्पिक साव  
में रक्त का साव होता है उसे रक्त के कोष का रक्तसाव कहते हैं। यह भी असध्य है ॥ १०६ ॥

पर्वणीकालप्रदासाह—

साञ्जा सन्धौ साहपाकोपपञ्चा रक्ताग्नेया पवणी कृत्तशोषा ।

पर्वणी रोग के लक्षण—जिस नेत्र सधि रोग में कृष्ण तथा सुशुभ्र भाग की सधि में रक्त  
दोष के कोष से ताप वर्ण की श्लेष्म (खोदी) दाह और पाक में पुषज, वृष्ट (गोल) एवं शोष  
सुष्ठ विदिका उत्पन्न हो जाती है उसे पर्वणी रोग कहते हैं ॥

जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽऽग्नौ स्यात्सन्धिमन्वेव स्याद्गुणा पूर्वलिङ्गैः ॥ १०७ ॥

भ्रमरों के लक्षण—जिस नेत्र सधि रोग में उष्ण (कृष्ण श्वेत भाग की) सधि में उत्पन्न  
होने वाली और पुषकमिग पर्वणी के लक्षणों में पुषज (किन्तु श्लेष्म नहीं रक्त भयवा) मदेर रोग  
में पहले बरे हुए भ्रमरों के लक्षणों से पुषज) विदिका उत्पन्न हो जाती है उसे भ्रमरों कहते हैं।  
यह भी असध्य है ॥ १०७ ॥

अनुपम्वियम्—

अनुपम्वी धर्मतः पथमनस कण्डं कुमुत्स्यया सन्धज्जाताः ।

गामारया धर्मस्तुष्यतास्तमग्नी सन्धमगतर्लोचन दूषयन्तः ॥ १०८ ॥

अनुपम्वी के लक्षण—जिस नेत्र सधि रोग में रक्त कफ पुषज (धर्मभेष) की सधि  
रक्त में सधि साव होकर ताप वर्ण कण्डु घने वाके अलग कणों के रूप में उत्पन्न हो जाता है और  
वे ही सधि साव तथा सुशुभ्र भाग के साव की सधि में विधात वृष्ट नेत्र की कोष से दूषित कर  
देते है उसे सधि साव कहते हैं यह रोग सन्धिज रूप असध्य है ॥ १०८ ॥

अथ समस्तनेत्रजा रोगाः ।

तेषां नामानि सख्यां चाऽऽह—

रयन्दाश्वत्थुष्का हृह सग्मदिष्टाद्यत्वार भ्येह-तथाऽधिमयाः ।

पाकः सशोथः स च क्षोभहीनो हृताधिमन्योऽनिलपर्ययश्च ॥ १ ॥

शुष्काधिपाकस्त्विह कीर्तितश्च तथाऽन्यतो यात उदीरितश्च ।

दृष्टिरतथाऽम्लाभ्युपिता शिराणामुत्पातहर्षो च समस्तनेत्रे ॥ २ ॥

एष समस्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च । तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावच्छ्लक्षणा-यपि ॥ ३ ॥

समस्त नेत्र रोगों के नाम—चार प्रकार के (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और रक्तज) अभिष्यन्द, चार प्रकार के (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और रक्तज) अभिमय, दो प्रकार के सशोथ पाक और अशोथ पाक, एवं हृताधिमय, अनिल पर्यय वा यातपर्यय, शुष्काधिपाक, अन्यतोवात, अम्लाभ्युपित दृष्टि, शिरापात और शिराहय ये १७ रोग समस्त नेत्र में होते हैं जिनके पृथक्-रूपण भागे कहे जाते हैं ॥ १-३ ॥

तत्राभिष्यन्दाश्चत्वार इत्याह—

वातापिपाकाक्फाद्गुष्काद्भिष्यन्दव्युत्थिध । प्रायेण जायते घोर सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात के कोप से, पित्त के कोप से, कफ के कोप से और रक्त के कोप से (वातज, पित्तज, कफज और रक्तज) चार प्रकार के अभिष्यन्द रोग होते हैं ये प्रायः कठिन एव सभी नेत्ररोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

तेषु वातिवमभिष्यन्त्माह—

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसङ्घर्षपारुष्यनिरोमिताया ।

विशुष्कमाय शिशिराश्रुता च घाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

वातिक अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में चर्ई जुमाने के समान पीड़ा जड़ता रोमाश्र और नेत्र के पलकों में घर्षण होता है, रुद्धता होती है, शिर में पीड़ा होती है, नेत्र में शुष्कता होती है नेत्र में मल (कीचट) नहीं होते हैं और शीतल अशु का क्षाय होता है, उसे वात के कोप का अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमभिष्यन्त्माह—

दाहमपाकौ शिशिरामिनदा धूमायन वाष्पसमुज्ज्वलश्च ।

उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

पैत्तिक अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में दाह और अत्यन्त पाक होता है तथा शीतल स्पश नी रूद्धता होती है धूमोद्गमन होता है, वाष्प (अशु) बाहुष्यता और उष्णाश्रुता (उष्ण आँसुओं का निकलना) होती है और नेत्र के वर्ण पीत हो जाते हैं उसे पैत्तिक अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ६ ॥

श्लैष्मिकमभिष्यन्त्माह—

उष्णामिनदा गुरुताऽपिशोथ कण्डूपदेहाघतिशीतता च ।

स्नायो बहु पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

कफज अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में उष्णता (गरमी) लगने पर आनन्द हो और नेत्र में गुरुता, शोथ, हो तथा कण्डू हो कफ स लित नेत्रमल की बहुलता हो, नेत्र अत्यन्त शीतल रहें, श्राव अधिक हो और पिच्छिलता रहें, उसे कफज अभिष्यन्द कहते हैं ॥ ७ ॥

रक्तजमभिष्यन्त्माह—

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तावतिलोहिताश्च ।

पित्तरुष लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

रक्तज अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र से ताम्रवर्ण के अशु निकलते हैं, नेत्र लोहित वर्ण के हो गये हों, नेत्रों में चारों ओर रक्तवर्ण की रेखायें दिखाई देती हों और पित्तज अभिष्यन्द के जो लक्षण हैं दाह-पाकादि उनसे भी युक्त ही ही उसे रक्तज अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ८ ॥



अभिमथानामभिष्यन्दनन्यायमाह—

पृथैरैरभिष्यन्दैनराणामक्रियापयताम् । तावन्तस्त्वभिष्यन्त्याः ह्युर्नयने सीमवेदना ॥ १४ ॥  
 अभिमथो वी उत्पत्ति—अभिष्यन्दरोग होने पर यदि उसकी चिरिस्ता नहीं होती तो वही बढ़कर अभिमथ रोग हो जाता है और यह अभिमन्थ नेत्र में तीव्र पीड़ा करने वाला होता है । ( अभिष्यन्द ही के समान अभिमथ रोग में भी वातादि दोषों वा कोप तथा निस्त्रोरदि बेरतादि होती है और अभिष्यन्द के कारण होने से अभिमन्थ भी चार प्रकार का होता है ) ॥ १५ ॥

अभिमथानां सामान्यं लक्षणम्

उत्पाद्यते श्लेष्मापयथै तथा निर्मस्यतेऽपि च । शिरसोऽर्धं तु तं विद्यादभिमथं स्वलक्षणैः ॥ १० ॥

अभिमथों के सामान्य लक्षण—जिस नेत्ररोग में ऐसा ज्ञात हो कि माथे शिर की कोरें लज्ज रहा है तथा मथ रहा है ( मथानी मथने की भाँति घात हो ) उसे अपने कङ्कणों से युक्त ( बाहरदि दोष सं होने वाले अभिष्यन्द के लक्षणों सं युक्त ) अभिमन्थ रोग का सामान्य लक्षण जानना चाहिये ॥ १० ॥

सचाभिमथो यथात्मको यावता कालेन मिथ्याचारात्पृष्टि इति तथाह—

ह्यावृष्टिं श्लेष्मकः मत्सराप्राग्धाधिर्घोरो रक्तम पद्धरायात् ।

यद्प्राग्धाया पातिको ये निहयामिष्याचारापैतिकः सद्य एव ॥ ११ ॥

अभिमन्थ यदि कफ का दोष सं ( कफज ) होता है तो ( मिथ्याचार अर्थात् प्रतिवृत्त आहार विहारदि करन से ) सात दिन में दृष्टि को नष्ट कर देता है तथा यदि रक्तम होता है तो वह पठिन दोष ( मिथ्याचार से ) पांच दिन में दृष्टि को नष्ट कर देता है एवं यदि काष्ठम होता है तो वह ( मिथ्याचार से ) छे दिन में दृष्टि को नष्ट कर देता है और यदि वैधिक अभिमन्थ होता है तो मिथ्याचार से सप्त ( तिरास अर्थात् तीन दिन में ) दृष्टि को नष्ट कर देता है ॥ ११ ॥

सशोथं पाकमाह—

कण्डूवदेक्षाधुयुत पक्कोदुग्धरसक्षिभ । संरगभो दक्ष्यते यस्तु नेत्रपाकः ससोयकः ॥ १२ ॥

शोथ युक्त नेत्रपाक के लक्षण—जिस नेत्रपाक में नेत्र कण्डूयुक्त, नेत्र मथ और जल से युक्त और पके हुए गुग्गुलु का पत्र सं समान रक्तवर्ण एवं शोथान्वित बाहर पकते हैं उसे शोथीय नेत्रपाक कहते हैं ॥ १२ ॥

अशोथपाकमाह—दोषहीनानि छिन्नानि नेत्रशके रससोयके ॥

अशोथ नेत्रपाक के लक्षण—अयुक्त लक्षणों सं युक्त केवल शोथ रहित शो पाक हो उसे अशोथीय नेत्र पाक कहते हैं ॥

हनाभिमथमाह—उत्पेण्णादधि यदाऽभिमथो वाताधिका शोषयति प्रसङ्ग ।

द्वामिरमाभिरमाप्य एव हनाभिमथाः सन्तु नाम शया ॥ १३ ॥

हनाभिमथ के लक्षण—यह वातिक अभिमन्थ का चिह्नमा अथाभाँति जहाँ का जाती है जहाँ वह वातजनक अभिमन्थ अत्यन्त पीड़ा करता हुआ नेत्र को शया देता है ( मथ कर देता है ) इसी का नाम हनाभिमन्थ है । यह अनाप्य है ( अनाभिमन्थ होने पर अल्प चिरिस्ता नहीं करने पर बुधिय वात अत्यन्त-तरिक शिराभो में प्रवेश कर शिरा हो दृष्टि का शया देता है ) ॥ १३ ॥

वातपर्वणमाह—

वाँ वाँ च पयति ध्रुवी नेत्रे च मानसः । दमानि मृदु लोवायिः स शोथो वातपर्वणः ॥ १४ ॥

वातपर्वण के लक्षण—जिस रोग में वायु बार १ पर्वण अथ ही ( बाँटी बाँटी ही ) नेत्र और भ्रूभाग में मृदा करता है अथवा कभी नेत्र में कभी भ्रूभाग में बार १ अज्ञात है और तीव्र पीड़ा करता रहता है उसे वातपर्वण रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

दृग्धाधिरादनाह—दृग्धाधिरात् दृग्धाधिरात्पर्वणं संरक्षते वाऽ दिग्दन्तम यत् ।

दृग्धाधिरात्पर्वणं संरक्षते वाऽ दिग्दन्तम यत् ।

दृग्धाधिरात्पर्वण के लक्षण—जिस रोग में नेत्र बन्द करने पर अल्प दिग्दन्त पूर्व कथ मन्थी ही ।

नेत्र में दाह हो, पुंयला दिखाई देता हो और नेत्र खोलने में अधिक कठिनाई हो उसे शुष्काधि पाक नामक रोग जानना चाहिये इसमें रक्तान्वित वात का कोप रहता है ॥ १५ ॥

अन्यतोवातमाह—

यस्यापट्टकर्णशिरोक्षुस्थो मन्त्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा ।

धुर्याद्भ्रज वै भ्रुवि लोचने च तमयतोवातमुदाहरन्ति ॥ १६ ॥

अन्यतोवात के लक्षण—जिस रोग में म्रीवा के पीछे का भाग, कान, शिर, हनु और मया ( म्रीवा के दोनों पार्श्व की शिरा ) अथवा अन्यत्र ( पीठ आदि में स्थित वायु अर्थात् इन स्थानों की वायु बढ़कर भ्रूभाग और नेत्रों में पीड़ा करती है उसे अन्यतोवात कहते हैं ॥ १६ ॥

विदेदेनाप्युक्तम्—

मन्त्यानामन्तरे घायुरत्यक्तं पृष्ठतोऽपि वा । करोति भेद निस्तोऽशङ्गे चाचणोर्भ्रुवोस्तथा ॥

समाहुरयतोवात रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १८ ॥

जिस नेत्र रोग में मयाओं अथवा पीठ में से उत्पन्न वायु शर देश, नेत्र और भ्रूभाग में भेदने के समान तथा खर्रं चुमाने के समान पीड़ा करता है उसे अन्यतोवात रोग कहते हैं ॥

अम्लाभ्युपितमाह—

श्याव लोहितपर्यन्तं सर्वमधि प्रपच्यते । सदाहमोयं साध्रावमम्लाभ्युपितमम्लतः । १९ ॥

अम्लाभ्युपित के लक्षण—जिस रोग में सम्पूर्ण नेत्र-किञ्चित् नीलवर्ण के और अत में लोहित वर्ण के हो चाहे हैं अर्थात् किनारे २ छाल और बीच में किञ्चिन्नील वर्ण के हो जाते हैं, नेत्रों में पाक दाह, शोथ और धाव होता है उसे अम्लाभ्युपित रोग कहते हैं यह अम्ल पदार्थों के सेवन से कृपित दोषों से उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

शिरोत्पातमाह—अधेदना घाऽपि सयेदना वा यस्याशिराज्यो हि भवति ताम्राः ।

मुहुर्विरज्यति च याः स ताहम्याधि शिरोत्पात इति प्रदिष्ट ॥ २० ॥

शिरोत्पात के लक्षण—जिस रोग में नेत्र की शिरायें पीडा रहित अथवा पीडा सहित ( वा अल्प पीडा युक्त ) ताम्र वर्ण की हो जावे और बार २ उनका वर्ण अधिकाधिक रक्त वर्ण का होता जावे उसे शिरोत्पात कहते हैं ॥ २० ॥

शिरामर्ष्यमाह—सोहाच्छिद्रोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिरामर्ष्यं ।

ताम्राममद्य चयति प्रगाढं तथा ऽशयनोत्पन्निवीक्षितु च ॥ २१ ॥

शिरामर्ष्य के लक्षण—अम वश शिरोत्पात रोग होने पर उसकी उपेक्षा करने से ( चिकित्सा नहीं करने से ) जो रोग उत्पन्न होता है उसे शिरामर्ष्य कहते हैं इसमें ताम्रवर्ण का अत्यन्त गाढ़ा स्त्राव होता है और यह मनुष्य देख नहीं सकता ॥ २१ ॥

नेत्रस्य सामतालक्षणमाह—

उद्धीर्णवेदन नेत्र रागघोफसमन्वितम् । घर्षनिस्तोऽशुशुलाशुयुक्तमामान्वित विदुः ॥ २२ ॥

नेत्र रोग के आम लक्षण—जिस नेत्र रोग में अत्यन्त पीड़ा होती हो, राग ( लोहितारि वर्ण ) और शोथ हो गये हों घर्ष ( किरकिराहट ) खर्रं चुमाने के समान पीडा, शूल ( अथ प्रकार की पीडा ) और अश्रु स्त्राव होते हों उसे आमाम्बित नेत्र रोग ( नेत्र रोग की सामावस्था ) जानना चाहिये ॥ २२ ॥

नेत्रस्य निरामतालक्षणमाह—

मद्दयेदना कण्डू संरग्नाधुप्रशान्तता । प्रसन्नवर्णता चाचणोर्निरामस्य च लक्षणम् ॥ २३ ॥

नेत्र रोग के निराम ( पाक ) लक्षण—जिस रोग में नेत्रों में पीड़ा मन्द हो गयी हो, कण्डू होता हो, शोथ और अश्रु में शान्ति आगयी हो और नेत्रों के वर्ण प्रसन्न ( स्वच्छ ) हो गये हों उसे निराम ( पाक ) नेत्र रोग जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ नेत्ररोगाणां चिकित्सा ।

तथा च तन्त्रान्तरे—

सेको दिनानि चत्वारि लघ्न भोजने रसः । स्वादुस्तिक्तश्च लेपश्च चापस्वेदनमेव च ॥

प्लानि नेत्ररोगाणां सामानां पाचनानि हि ॥ १ ॥

साम नेत्र रोग की चिकित्सा—सेक, चार दिन छहून, नष्ट तदा त्रिद पदार्थ का मोचन, उ और वायु द्वारा स्वेद देना चाहिये । ये सब कर्म नेत्र रोग की साम अवस्था में वाचन के लिये करना चाहिये ॥ १ ॥

अञ्जन सर्पिण पान कर्पायं गुरुनोजनम् । नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

साम नेत्र रोग में बरिठ कर्म—नेत्र रोग को साम अवस्था में कञ्चन छानना, घृत पान, कर्पाय पान, गुरु पदार्थ का मोचन और स्नान करना तथा देना चाहिये ॥ २ ॥

अधिकृष्टिभवा रोगा प्रतिश्यापयन् श्वरा । पक्षैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति छहूनात् ॥ ३ ॥  
छहून की व्यवस्था—नेत्र रोग, उदर रोग, प्रतिश्याय, मग और न्वर रोग प्रायः में पात्र रात्र के छहून से नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

पटुसप्ततिर्लोचनत्रा विकारास्तेषामभिम्यन्दममुद्गवानाम् ।

इलेष्माग्रयन्वादिह छहून प्रावन्नस्यते सुदुरसौदन च ॥ ४ ॥

नेत्र के रोग ७६ हैं इनमें अभिम्यन्द से जो वृन्न् होत है उनमें इलेष्मा का आग्रय होने से (कृन्नित्र होने से) पढ़ते छहून कराना उचित है पथ में मूंग का रस और भात देना चाहिये ॥ अञ्जन पूरण कर्पायनमामे न सस्यते । आ चतुर्थादिनादामभिम्यन्देऽपि लोचनम् ॥ ५ ॥

सामनेत्र में निषिद्ध कर्म—नेत्र रोग की साम अवस्था में अञ्जन करना, पूजन करना (श्रीरव छोटना) और कर्पाय पीना निषिद्ध है । अभिम्यन्द में भी चार दिन तक नेत्र की सामावस्था हो रही है ॥ ५ ॥

वाण्डूपाञ्जननस्यादिहीनानां कश्च्येनत । पटुसप्ततिर्नेत्ररोगा दुःसहा स्युर्येषिता ॥ ६ ॥

नेत्र रोग की सम्भावना—गहूब धारा, अञ्जन, और नस्य नहीं देनेवालों को कठ के बीज से और इन कर्मों की वनेष्टा करने से ७६ प्रकार के नेत्र के अदकार रोग वृन्न् हो जाते हैं ॥ सेक आश्रोतन विग्दी विहाडस्तपंग तथा । पुटपाकोऽञ्जन चैमि क्वपैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ ७ ॥

नेत्र रोग के उपचार—नेत्र रोग में बन्दनान सेक सिचन, अरबोदन, पिन्दी, विहाड, वर्णा, पुटपाक और अञ्जन के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

इष्टिारोगचिकित्सानाह—

यज्येदुपसर्गोप्यां यग्मीरा इवसदिवाम् । कार्वास्तु वायवोसर्वाङ्कुष्ठान्यं समैव च ॥

इष्टियत्र रोग चिकित्सा—नेत्र रोगों में—उत्तर्ग (किली वाद्य कार्गों) से उत्पन्न रोगीयानाक नेत्र रोग को और हत्वानाक नेत्र रोग को त्याग देना चाहिये क्योंकि ये असाम्य होते हैं इनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । और सब प्रकार के वाच रोग को तथा नष्टान्य रोग को यान सनद्वर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

तिमिर नेत्ररोगेषु कष्ट सप्यत्रो हरेत् ॥ १ ॥

नेत्र रोगों में तिमिर रोग को कष्टसाध्य सनद्वर कर दान से नष्ट करना चाहिये ॥ १ ॥  
मूल इष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् । अपिमित्तद्विद तस्माद्यस्य कुयाश्चिकित्मितम् ॥  
अपिमो ने इष्टि को नष्ट करनेवाला मूल रोग तिमिर को ही हटा दे रखलिये पक्षी चिकित्सा यन्पूर्वक करनी चाहिये ॥ २ ॥

वातिकिमिरचिकित्सानाह—

स्निग्धानि मस्याञ्जनसोघनानि पाका पुष्टानामय सत्रा च ।

पृथस्य पानान्यथ दस्तिकर्मं कुर्यादमीर्णं तिमिरेऽग्निशोथे ॥ १ ॥

वातिक तिमिर रोग की चिकित्सा—वात्र के शोथ से वृन्न् तिमिर रोग में स्निग्ध नस्य, अञ्जन शोषन, पुटपाक, वर्णा, घृत पान और बलि कर्म रात्र २ करना चाहिये ॥ १ ॥  
दशमूलदिना पक्षं पृथं दुग्धचतुर्गुणम् । त्रिकलाक्ककमयुक्त तिमिरे वातने विभेत् ॥ २ ॥

दशमूल द्रव—त्रिकला का कस्तूर एक माद, गोशुड, ४ माग, गोदुग्ध १६ माग और दश मूलदि काय १६ माग इन सबको एकत्र कर छहूनाक की विधि से घृत त्रिद कर वाचक तिमिर रोग में पीना चाहिये ॥ २ ॥

नास्नाकष्टप्रदहाये दशमूलरमे श्यम् । कश्चैव जीवमीषानां पृथं तिमिरनाशकम् ॥ ३ ॥

रास्नादि घन—रास्ना, आँवला, हरद, बहड़ा की समान भाग लेकर काथ की विधि से काय कर जितना हो उसके समान भाग (समान मिलित) दशमूल का विधिपूर्वक बना हुआ काय लेवे और रास्नादि काय के चतुर्थांश मूर्च्छित गोघृत लेवे और जीवनीय गण की औषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक कस्क करे घृत से चतुर्थांश यद् कस्क मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्धकर सेवन करने से यातज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

वातिके तिमिरे पक्ष दशमूलीरसे घृतम् । त्रिघृच्छूर्णसमायुक्त विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दूसरा दशमूल घृत—वातिक तिमिर रोग में दशमूल के रस में घृत पका कर उसमें निशोध का चूर्ण मिलाकर विरेचन के लिये देना चाहिये अर्थात् दशमूल का रस १६ भाग, मूर्च्छित गोघृत ४ भाग और निशोध का कस्क १ भाग लेकर सबको एकत्र घृतपाक की विधि से सिद्ध कर सेवन करने से वातिक तिमिर रोग में विरेचन होता है और तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

त्रिफलाद्रामूलानां निर्यूहं दुग्धमिधितम् । गन्धर्वतैलसयुक्तं प्रयुञ्जीत विरेचनम् ॥ ५ ॥

त्रिफलादि योग—त्रिफला और दशमूल के समान मिलित क्वाथ में दूध मिलाकर उसमें परण्ड तेल मिलाकर उचित मात्रा से विरेचन के लिये वातिक तिमिर रोग में प्रयोग कराना चाहिये ॥ ५ ॥

पैक्तिकतिमिरचिकित्सा—

शीताञ्जनाक्षोत्तनतर्पणैश्च नस्यैर्विरेकैर्गृदुभिघृतैश्च ।

विष्णुप्रधानैस्तिमिर निदुग्ध्यास्त्रिपत्तात्मक शोणितमोक्षणैश्च ॥ १ ॥

पैक्तिक तिमिर रोग की चिकित्सा—पित्तज तिमिर में शीतल औषधियों के अञ्जन, आक्षोत्तन तर्पण, नस्य विरेचन तथा गृदु बीर्य औषधियों द्वारा सिद्ध घन पिलाने से विकरस प्रधान पदार्थों के सेवन करने से और रक्तमोक्षण करने से पित्त के कोप से उत्पन्न तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिमिरे पित्तमे सर्पिर्जावनीयघराश्रितम् । पाययित्वा शिरां विष्येस्तिताकुम्भसैर्ध्रुवै ॥ २ ॥

चूर्णमांघ्रिकसंयुक्तैरेचन कारयेन्नरः ।

पित्तज तिमिर रोग में जीवनीय गण की औषधियों और त्रिफला के द्वारा विधिपूर्वक सिद्ध गोघृत को पिलाकर शिरावेध करना चाहिये और छोटी इलायची, निशोध और सेंधानमक का विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर चटाना चाहिये ॥ २ ॥

बलाशताचरीधीरासिताक्षीलेयकै पचेत् ॥ ३ ॥

त्रिफलासहित सर्पिस्त्रिमिरघ्नमनुत्तमम् ।

बलादि घृत—बरीबारा, शतावरी, शृङ्गर्षा, श्वेत निशोध और शैलेय (शिलारस) की समान भाग लेकर विधिपूर्वक कस्क कर जितना हो उसके चौगुना गोघृत और घृत से चौगुना त्रिफला का काय लेकर घृतपाक की विधि से सिद्ध कर सेवन करने से तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सारिवात्रिफलोशीरसुक्ताचन्दनपद्मकै । पिप्लयताश्रुतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिर नृणाम् ॥ ४ ॥

सारिवादिवर्नि—सारिवा, आँवला, हरद, शंख, खस, रास्ना, लाल चन्दन और पद्मकाठ प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर बर्तिकाकार बनाकर छाया में सुखा लेवे, रस वर्ति को जल में घिसकर नेत्र में लगाने से पित्तज तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

श्लैष्मिकतिमिरचिकित्सा—

शीतानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकः पुटानामपतर्पणञ्च ।

घृतानि घासान्त्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्यात्तिमिरे कफोत्थे ॥ १ ॥

कफज तिमिर रोग की चिकित्सा—शीतल औषधियों के नस्य, अञ्जन, शोधन और पुटपाक, अपतर्पण तथा वासा घृत त्रिफला घृत और पटोल घृत का यथायोग्य उपयोग करने से कफज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कफोत्थे घराचव्यश्रुते क्राये श्रुत हविः । पाययित्वा शिरां विष्येद्रेचन तिमिरे भिषक् ॥ २ ॥

कफज तिमिर रोग में त्रिफला और चव्य के काय में चतुर्थांश गोघृत मिलाकर घृतपाक

की विधि से सिद्ध घृत पिलाकर शिराविष करना चाहिये । इस घृत से कफज तिमिर में रचन होता है ॥ २ ॥

यूयी पप्या कणा शुण्ठी कुसुम्भस्याम्बुनिर्झरा । गोमूत्रकथिता शुण्ठी त्रिभृतिरिद्धा विरेचनम् ॥  
जूही, हरद, पीपल, सोंठ, कसूम फूल का रस, पहाड़ी हारने का जल, गोमूत्र में पकाई हुई सोंठ और त्रिधृता को नेत्र में डालने से कफज तिमिर में विरेचन होकर कफ का नाश होता है ॥  
नस्यं मरीचयष्टपाह्वविद्यङ्गामरदाहनिम् ।

मरिचादि नस्य—कफज, तिमिर रोग में मरिच जेठो मधु, वायविद्यग और देवदारु को पीस कर विधिपूर्वक नस्य बनाकर देने से उच्चम लाभ होता है ॥

नेपालत्रिकलाशङ्खकान्ता ह्योष च पेपितम् । घर्षीकृत मलासोऽथमञ्जन तिमिरापहम् ॥ ४ ॥

नेपालादि बर्षयञ्जन—तपि का शुद्ध चूर्ण, हरद, बड़ेदा, भौंला, शुद्ध शङ्ख चूर्ण, रेणुका, सोंठ, मरिच और पीपल को समान भाग लेकर पीस कर विधिपूर्वक बर्तिका काट बना कर छाया में सुखा कर जल के साथ पिस कर अञ्जन करने से कफज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सानिपातिकतिमिर चिक्रिसा—

ससर्गं सनिपाते च यथाद्दोषोऽव्यक्रियाम् । धात्री रसाञ्जनं चौद्र सर्पिमिस्तु रसक्रिया ॥ १ ॥

पित्तानिलाक्षिरोगाग्नी तैर्मियंपटलापहा । दद्यादुशीरनियुहे चूर्णित कणसैचयम् ॥ २ ॥

तच्छृत सधृतं भूयः पचेत्तौद्र घने ततः । शीते चास्मिन्दृष्टमिदु सर्वजे तिमिरे द्विवम् ॥ ३ ॥

ससर्गज और सानिपातिक तिमिर रोग चिक्रिसा—ससर्गज और सानिपातिक तिमिर रोग में दोषों के अनुसार अर्थात् जेठे २ दोष हों (वात-पित्त, पित्त-कफ वा कफ-वात अथवा तीनों मिश्रित) उन २ दोषों को नष्ट करने वाले प्रयोगों की चिक्रिसा करनी चाहिये । अर्थात् आँबला, रसवन, मधु और घृत को मिलाकर रस क्रिया करने से पित्त-वात दोष से (पित्त-वात के द्बद्वय दोष से) उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट होते हैं और तिमिर के पटल रोग का नाश होता है । खस के काष में सैवा नमक का चूर्ण मिलाकर नितना दो उसके चतुर्गुण गोघृत मिलावे और घृत के समान मधु मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर जब बन (गाढा) हो आवे तब उतार कर शीतल हो जाने पर नेत्र में लगाने से संनिपातज तिमिर रोग में लाभ करता है ॥ १-३ ॥

घातपित्तकफसनिपातजां नेत्रयोऽद्भुविधामपि स्पधाम् ।

शीघ्रमेव क्षयति प्रयोजितः शिमुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ ४ ॥

शिमुपल्लवरस योग—संनिजन के कोमल पर्णों के स्वरस में मधु का प्रथेप देकर भौंख में डालने से मानज, पित्तज, कफज और संनिपातज सभी प्रकार के नेत्र रोग एवं विविध प्रकार की पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है ॥ ४ ॥

अथ तिमिरे सामान्यचिक्रित्सा ।

अञ्जनविधि —

-अथ सपकद्रोपस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । अञ्जन क्रियते येन तद्द्रव्यं धाञ्जनं भूतम् ॥ १ ॥

अञ्जनविधि—जब नेत्र रोग के दोष परिपक्व हो जायें तब अञ्जन वाली औषधि करनी चाहिये । शिन द्रव्यों से अञ्जन किया जाता है उन्हें ही अञ्जन ही कहते हैं ॥ १ ॥

। तद्यथा—गुटिकासचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जानानि तु ।

कुर्वाण्डुलकयाऽश्लुषया हीमानि च यथोत्तरम् ॥ २ ॥

अञ्जन के भेद—गुटिका, रस और चूर्ण के भेद से तीन प्रकार के अञ्जन होते हैं । ये सजाका अथवा अंगुली से ही नेत्रों में लगाये जाते हैं । ये तीनों प्रकार के अञ्जन एक दूसरे से गुण में हीन होते हैं अर्थात् गुटिका से हीनगुण रस में और रस से हीन गुण चूर्ण वाले अञ्जन में होता है ॥ २ ॥

-स्नेहन रोपण चापि लेखन सस्त्रिधा धृयक् । मधुर स्नेहसपक्वमञ्जन स्नेहर्न मत्तम् ॥ ३ ॥

-कपायतिष्ठरसमुक्तरस्नेह रोपण स्मृतम् । अञ्जन चारतीपगण्डरसैर्लेखनमुपप्यते ॥ ४ ॥

अञ्जन के अन्य भेद—अञ्जन में तीन भेद और हैं जो स्नेहन, रोपण और लेखन कहे जाते हैं मधुररस बाजी और स्नेह मिली हुई (घृतादि से युक्त) औषधियों के योग से जो अञ्जन प्रयुक्त किया जाता है उसे स्नेहन अञ्जन कहते हैं । कपाय तथा त्रिकरस वाली और स्नेह मिश्री औष

धियों के योग से प्रस्तुत किया हुआ अजन रोपण अजन कहा जाता है । धार, तीक्ष्ण और अम्ल रस वाली ओषधियों के योग से प्रस्तुत किया हुआ अजन लेखन अजन कहा जाता है ॥ ३-४ ॥

श्लेष्मात्रां कुर्वीत वृत्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक् । प्रमाण मध्यमे सार्धं द्विगुणं तु मृदु भवेत् ॥५॥  
अजन वृत्ति का प्रमाण—तीक्ष्णाञ्जने के लिये घैष को दरेणु अर्थात् बड़े चने अथवा मटर के प्रमाण की मोटी वृत्ति बनाती चादिये और मध्यम ( मध्यही ओषधि से बने ) अजन के लिये डेढ़ी अर्थात् उपरोक्त डेढ़ो मोटी तथा मृदु अजन ( मृदु बोध ओषधियों से बने अजन ) के लिये दुगुनी मोटी वृत्तिका बनानी चादिये ॥ ५ ॥

रसक्रिया सूक्ष्मा स्याद्विषिद्वह्निमिता हिता । मध्यमा द्विविद्वह्ना सा हीना रवेकविद्वह्निका ॥६॥

रस क्रिया का प्रमाण—तीन विद्वह्न के प्रमाण की ( तीन विद्वह्न के दानों के समान पदार्थ से ) जो रस क्रिया की जाती है वह उच्चम होती है । दो विद्वह्न के प्रमाण की जो रस क्रिया ( दो विद्वह्न के दानों के प्रमाण की ओषधि से ) की जाती है वह मध्यम होती है और एक विद्वह्न के प्रमाण की ओषधि से जो रस क्रिया की जाती है वह हीन होती है ॥ ६ ॥

शलाका स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्राहुरञ्जने । रोपणे तारु तिस्रः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते ॥७॥

शलाका प्रमाण—स्नेहन और चूर्ण वाले अजन में चार शलाकायें ओषधि आँसू में लगानी चादिये । रोपण अजन में तीन शलाकायें ओषधि आँसू में लगानी चादिये और लेखन ओषधि के अजन में दोशलाका ही अजन लगाना चादिये ॥ ७ ॥

सुक्षयो कुक्षिता श्लषगा शलाकाऽष्टाह्णोन्मिता ।

अरमजा धातुजा या स्यात्फलायपरिमण्डला ॥ ८ ॥

शलाका के लक्षण—शलाका नेत्र में अजन करने के लिये जो बनाई जाये उसके दोनों ओर के मुख कुञ्चित ( पतले ) हों और बीच में मोटी हो, चिकनी हो ( शलाका में किसी प्रकार की रूक्षता नहीं हो ) तथा आठ अङ्गुल प्रमाण की बड़ी हो । वह पत्थर की अथवा किसी धातु की बनानी चादिये और उसके मध्य भाग की स्थूलता ( मोटाई ) कण्ठ ( मटर ) के मण्डल के प्रमाण की होनी चादिये ॥ ८ ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता । ताम्रलोहारमसजाता शलाका लेखने मता ॥

अङ्गुलिस्तु मृदुस्वेन रोपणे कथिता युधै ॥ ९ ॥

सुवर्ण और चाँदी की बनी शलाका स्नेहन अजन के लिये प्रयोग करना चादिये । ताम्र, लोह और पत्थर की बनी शलाका लेखन अजन के लिये प्रयोग करना चादिये और अङ्गुली का ही रोपण अजन में प्रयोग कराना चादिये अर्थात् शलाका से नहीं लगाकर अङ्गुली से ही रोपण अजन लगाना चादिये क्योंकि अंगुली मृदु होती है ॥ ९ ॥

अजने केवलमपि शलाकाविशेषमाह—

द्विफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसेस्त्वह्णश्च सर्पिणा । गोमूत्रमण्डजाचौरः सिक्रो नागः प्रसापितः ॥१०॥

सख्णशलाका हरस्येव सकलाप्तयनामयान् ।

शलाका की विशेषता—नाग अर्थात् शोशा की अग्नि में तपा-तपाकर त्रिफला के वाथ में, मांगरे के स्वरस में, सौंठ के काथ अदरस के स्वरस में, घृत में, गोमूत्र में, मधु में और बकरी के दूध में क्रम से बुझावे ( अलग २ सब में तपा-तपा कर बुझावे ) पश्चात् ओषधियों से सिक शोथे की यह शलाका ही पिलने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

कृष्णभागावध कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ ११ ॥

अजन लगाने की विधि—नेत्र में कृष्ण गोलक से नीचे अर्पाग तक अर्थात् नेत्र के इस कोने से उस कोने तक अजन लगाना चादिये ॥ १ ॥

प्रथम सम्यमञ्जीयात्पश्चाद्दक्षिणमञ्जयेत् । शलाकया साञ्जनया न च तप्तयन स्मृतेत् ॥ ३ ॥

पहले बाँई आँसू में अजन युक्त अथवा ओषधि परिसिक्त शलाका से अजन करना चादिये पश्चात् दाहिनी आँसू में अजन करना चादिये और अजन लगाने के बाद नेत्रों का स्पर्श नहीं करना चादिये ॥ ३ ॥

हेमन्ते शिशिरे वाऽपि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते । पूर्वाह्ने चाऽपराह्णे वा प्रीप्ते चारद्दि क्षेप्यते ॥  
 वर्षास्वनभ्रे नार्युष्णे वसन्ते च सदैव हि । प्रातः साय च सत्कुर्याच्च च कुर्यात्सदैव हि ॥५५  
 अञ्जन लगाने का समय—हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में मध्याह्नकाल में अञ्जन करना चाहिये ।  
 प्रीप्ति और चारद ऋतु में दिन के पूर्वभाग अथवा अपराह्न ( तीसरे पहर ) में अञ्जन लगाना  
 चाहिये । वर्षा ऋतु में जिस समय बादल न गिरे हो उस समय अञ्जन लगाना चाहिये । और  
 वसन्त ऋतु में जब अधिक उष्णता नहीं हो तब सदा ही प्रातः समय अञ्जन लगाना चाहिये  
 किन्तु जब वर्षा में बादल हो, वसन्त में अधिक उष्णता हो गयी हो तो अञ्जन नहीं लगाना  
 चाहिये ॥ ४-५ ॥

श्रान्ते प्रहृदिते भीते पीतमये नवज्वरे । अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जन सप्रशस्यते ॥ ६ ॥

अञ्जन निषेध—जो थके हुए हो, जो रोये हो ( दुःख से जिन्हें अधिक अक्षुपात हुआ हो ),  
 भयभीत हो, मद्य पीये हो, नवीन ज्वर वाला हो, अजीर्णरोग वाले हो और जिन्हें वेगघात करना  
 पड़ा हो उन्हें अञ्जन लगाना उचित नहीं है ॥ ६ ॥

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमद्यो प्रयोजयेत् । पञ्चरात्रेऽपरात्रेऽप्युद्यावाणार्थं रसाञ्जनम् ॥ ७ ॥

नित्यं सौवीरमञ्जनं लगाना बाँटों के लिये हितकर परन्तु पाँच या आठ रात पर स्नान के  
 लिये रसाञ्जन ( रसवत ) अथवा ओषधियों के रसों का अञ्जन करना चाहिये ( इससे नेत्र से  
 अक्षुपात होकर नेत्र शुद्ध होते हैं ) ॥ ७ ॥

मुक्तादिमहाञ्जनं भावप्रकाशात्—

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणालैश्च सर्वं सैलवात्

शुण्ठीकङ्कोलकास्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यञ्जतुल्यम् ।

दृष्ट्वाण्डत्यक् च साधयतजयुतशिवास्त्रीतक राजवर्त

जासीपुष्प तुलस्या कुमुममभिनघ योजनस्यास्तथैव ॥ १ ॥

पूतीकनिभ्याञ्जनमद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।

प्रत्येकनेपां स्रुत्वा मापकैकं पलेन पिण्यामपुनाऽतिघृणमम् ॥ २ ॥

भयति रोगा नयनाधिता ये नितान्तमात्रोपधिताश्च तेषाम् ।

विधीयते शान्तिहरशयमेव मुक्तादिनाऽनेन महाञ्जनेन ॥ ३ ॥

मुक्तादि महाञ्जन—शुद्ध मोठी, कपूर, कांच ( काच लवण वा शुद्ध शीशा ), अमर, मरिच,  
 पीपल, सेंधानमक, पद्मभा वा तेजवल के बीज, सोंठ, ककोल, मरिच, शुद्ध कांसा, शुद्ध रांगा,  
 इल्लो शुद्ध मैमिशिल शुद्ध शङ्खनाभि शुद्ध अमरक, शुद्ध तृतिवा, कुम्कुटाण्ड की त्वचा, बरेहा  
 काश्मीरी केसर हरीतकी, मुल्हठी, लाजावर्त चमेली के पुष्प तुलसी के नूतन पुष्प और बीज,  
 करज के बीज, नीम के पत्ते सौवीरमञ्जन, नागरमोथा, लालबदन और रसवत् इन सब ओषधियों  
 को एक २ मापा लेकर विधिपूर्वक ऋण्य चूर्ण कर इसमें एक पल मधु मिलाकर भलीभाँति मर्दन  
 कर रख लेंगे । इस अञ्जन से नेत्रों के रोग जो अत्यन्त उद्वेग हो गये हैं अवश्य शान्त हो  
 जाते हैं । इस महाञ्जन का नाम मुक्तादि महाञ्जन है ॥ २-३ ॥

नयनशाणनामाञ्जनम्—

कणा सलवणोपणा सहस्राञ्जना साञ्जना सरिपतिकफा शिफा सितपुनर्नवासंभवा ।

रजपरुणचन्दनं मधुक्कुल्यपथ्या शिला अरिष्टदृष्टशावरस्फटिकशङ्खनामीन्द्रया ॥ १ ॥

इमानि तु विचूर्णयेद्विधिवाससा शोधयेत्ततोऽपनि विमर्दयेत्समभुताम्रयण्डेन तत् ।

इदं मुनिमिरीरितं नयनशाणनामाञ्जनं करोति तिमिरक्षय पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २ ॥

नयन शाण नामक अञ्जन—पीपल, सेंधानमक, मरिच, रसवत्, सौवीरमञ्जन, समुद्रफेन,  
 श्वेतपुनर्नवा की बद्ध, इल्लो, रक्तचन्दन मुल्हठी, शुद्ध तृतिवा, हरीतकी, शुद्ध मैमिशिल, नीम  
 के पत्ते, लोप फिटकिरी, शुद्ध शङ्ख नामि और कपूर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक ऋण्य  
 चूर्णकर सपन वस्त्र में घाग लेंगे, फिर इस चूर्ण को छोटे के सरल में रख कर उसमें यथायोग  
 मात्रा से मधु मिलाकर तब के सुधार से भलीभाँति मर्दन करे । इस अञ्जन को मुनिबी ने नयन  
 शाण नामक अञ्जन कहा है । यह अञ्जन तिमिर रोग को नष्ट करता है, पटल रोग तथा नेत्र पुष्प  
 ( पुली ) रोग को बलपूर्वक अर्थात् अवश्य नष्ट करता है ॥ २-२ ॥

चन्द्रोदवावर्ति —

चाक्षुनाभिविमीतस्य मञ्जापध्या मन शिला । विप्पली मरिच कुष्ठ वचा चेति समांशकम् ॥  
 छागशीरेण सविष्य घटीं द्रुमांघवोमिताम् । हरणुमाश्री सपृष्य जडेनाञ्जनमाचरेत् ॥ २ ॥  
 तिमिरं मांसघृदिं च काच पटलमनुदम् । राग्यथ पार्ष्णिपुष्प वर्तिशन्द्रोदया हरेत् ॥ ३ ॥

चन्द्रोदवावर्ति—गुड शङ्खनाभि चूर्ण, बह्ने की गुरी, हरद, शुद्ध मेनसिल, पीपल, मरिच, कुष्ठ और वच को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर यव के समान बटी बना लेनी चाहिये । इस बटी को चाा अथवा रेणुका के बीज के प्रमाण जल में पिस कर नेत्र में अञ्जन लगाने से तिमिर रोग, मांस वृद्धि, काच, पटल, अर्जुन, राग्यथ ( रतौषी ), एक वर्ष तक का फूला आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ २-३ ॥

चन्द्रप्रभावर्ति —

रजनी निग्धप्रशाणि विप्पली मरिचानि च । विद्ध भद्रमुस्त च सप्तमी स्वभया स्मृता ॥  
 अजामूत्रेण सविष्य छायायां क्षोपयेद्घटी । धारिणा तिमिर हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टिकाम् ॥२॥  
 मधुना पटल हन्ति मारीशीरेण पुष्पकम् । पूवा चन्द्रप्रभा वर्ति स्वय रुद्रेण निर्मिता ॥३॥

चन्द्रप्रभावर्ति—इच्छी, गीम बी पत्तियाँ, पीपल, मरिच, पायविठंग, नागरमोषा और दरद समान भाग लेकर बकरी के मूत्र के साथ घोट कर बटी बना कर छाया में सुखा लेवे । इस बटी को जल में पिस कर लगाने से तिमिररोग नष्ट होते हैं, गोमूत्र में पिस कर लगाने से पिष्टिका ( पिष्ट रोग ) नष्ट होता है, मधु में पिस कर लगाने से पटलरोग नष्ट होता है और खी के दूध में पिस कर लगाने से पुष्पक रोग अर्थात् फूला रोग नष्ट होता है । इसका नाम चन्द्रप्रभा बटी है और इसको स्वयं रुद्रदेव ने बताया था ॥ १-३ ॥

शशिकलावर्ति —

इसकजलजनाभि पौरशुभ्य समांशं यसनगलितमेतद्विम्बुनीरेण पिष्टम् ।

हरति शशिकलैतद्वतिरग्यजिताऽपगोस्तिमिरकुसुमकण्डूध्रावरागार्मपिष्टान् ॥१॥

शशिकलावर्ति—फिटकरी, शुद्ध शङ्खनाभि, शुद्ध नली और गुड तृतिया इन सब औषधियों को समान भाग लेकर विधिबद्ध चूर्णकर कपड़े में छानकर तीव्र के स्वरस में घोट कर बटी बना लेवे । इस बटी का अञ्जन नेत्रों में लगाने से तिमिररोग, फूला, नेत्र कण्डू, छात्र, नेत्ररोग ( नेत्रों में रक्तपीत आदि वर्ण होना ), अर्म तथा पिच्छरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लोचनशूलश्री पीट्टश्री—

कृतछाजसुराष्ट्रजाह्निफेन रुचिरं नागजगालवोरथचूणम् ।

सुकुमार्युदकेन शुद्धवपात्रे मृदितं हृष्टिरुज जयेत्पटस्थलम् ॥ १ ॥

लोचन शूलश्री पीट्टश्री—खस, फिटकरी, अफीम, केसर काश्मीरी, सिन्दूर और लोथ का चूर्ण समान लेकर चमेरी के फूलों के स्वरस के साथ ताम्र पात्र में खरल कर एक कपड़े में रख कर पीटली बना कर नेत्रों पर फेरने से नेत्र की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

नयनामृतम्—

रसेन्द्रभुजगी सुषयौ तयोद्विगुणमञ्जनम् । सूततुर्योशकपूरमञ्जन नयनामृतम् ॥ १ ॥

इतिमिरं पटल काच शुक्रममाञ्जनानि च । क्रमात्पथ्याशिनो हन्ति तथाऽन्यानपि ह्यगदान् ॥

नयनामृत अञ्जन—गुड पारद तथा गुड शंशा एक २ भाग लेवे और इन दोनों से दुग्धना ( ४ चार भाग ) सौवीराञ्जन लेवे और पारद के चतुर्थांश १ भाग कपूर लेकर एकत्र खरल कर बख में छान कर रख लेवे । इस अञ्जन को नेत्र में लगाने से तिमिररोग, पटलरोग, काचरोग, शुक्ररोग ( नेत्र शुक्र ) अर्मरोग, अर्जुनरोग तथा अन्य नेत्ररोग भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

रोपणी कुसुमिकावर्ति—

इल्लिपुष्पाण्यशीति स्युः पष्टि विप्पलितगण्डुला । जारया कुसुमपद्माशन्मरिचानि च षोडश ॥

सूक्ष्मविष्टा जलैर्वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा । तिमिराञ्जनशुक्राणां नाशनी मांसघृदिनुत् ॥

पुतस्याञ्जने मात्रा मोक्षा साथहरेणुका ॥ २ ॥



कुष्ठमिका बर्चि—तिल के पुष्प संख्या में ८०, पीपल के दाने ( पीपल के फल के कोड़ने से जो दाने राई के समान निकलते हैं वे दाने ) संख्या में ६०, चमेरी के फूल संख्या में ५० और मरिच के दाने संख्या में १६ लेकर जल के साथ उत्तम रीति से पीस कर बटी बना लेवे । इस बटी का नाम कुष्ठमिका बटी है । इस बटी के अग्नि से तिमिर रोग, अर्जुनरोग, नेत्र शुक्र आदि रोग नष्ट होते हैं और नेत्र की मांस वृद्धि नष्ट होती है । इसके अञ्जन करने की मात्रा देव धने अथवा देव रेणुका के बराबर नहीं गयी है ॥ १-२ ॥

दाह्यांजनम्—

दार्ध्वविरामधुकमम्मसि नारिकेले यक्त्वाऽष्टभागपरिशिष्टरसं पुनस्तम् ।

सान्द्र विपाष्य दाशसैन्धवमाशिकाठथ युञ्ज्याद्दृग्णातितिमिरासिषु पित्तत्रेषु ॥ १ ॥

दाह्यांदि अञ्जन—दारुइली, आंवला, हरड़, बहेड़ा और मुलट्टी की समान भाग लेकर धोलहनुने नारियल के छल में काथ की विधि से काथ कर अष्टमांश शेष रहने पर उत्तार-ध्यान कर पुन पाककर घना ( गाढा ) करे और गाढा हो जाने पर उसमें कपूर का चूर्ण सैधानमक का चूर्ण और मधु मिलाकर रख लेव । इस अञ्जन का प्रयोग पैसिक नेत्र अण में और पैसिक विमिर रोग में करना चाहिये ॥ १ ॥

शङ्खादिवटी —

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदधन मन शिला । मन शिलार्धं मरिच मरिचाधेन पिप्पली ॥ १ ॥  
सवनेकत्र समर्धं गुटिकां फारयेत्तत । धारिणा तिमिर हन्ति चार्बुद हन्ति मस्तुना ॥

पिच्छट मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तथाऽञ्जनम् ॥ २ ॥

शङ्खादिवटी—शुद्ध जल चार भाग और उसके आधा ( दो भाग ) शुद्ध मैनसिल और मैनसिल के आधा ( एकभाग ) मरिच का चूर्ण और मरिच के चूर्ण के आधा ( ३ भाग ) पीपल का चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर जल के संयोग से बटी बना लेवे । इस बटी को जल के साथ बिसकर लगाने से तिमिर रोग नष्ट होता है, दही के पानी के साथ बिसकर लगाने से नेत्र का अर्बुद नष्ट होता है, मधु के साथ बिसकर लगाने से नेत्र के पिच्छट रोग नष्ट होता है और स्त्री के दूध के साथ बिसकर लगाने से नेत्र के अर्जुन रोग नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

पुनर्नवाद्यञ्जनाम्—

दुग्धेन कण्डू चौद्रेण नेत्रलाव च सर्पिषा । पुष्प सैलेन तिमिर काञ्जिकेन विद्राघताम् ॥

पुनमवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १ ॥

पुनर्नवाद्यञ्जन—पुनर्नवा के चूर्ण वा स्वरस में दूध मिलाकर अञ्जन करने से नेत्र कण्डू नष्ट होता है, मधु मिलाकर अञ्जन करने से नेत्रलाव नष्ट होता है, प्रत मिलाकर अञ्जन करने से फूला नष्ट करता है, तिल मिलाकर अञ्जन करने से तिमिर रोग नष्ट करता है, कौमी मिलाकर अञ्जन करने से राश्वथ ( रतीथी ) नष्ट करता है, इस प्रकार से प्रयोग करने से पुनर्नवा इन ९ रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य देव अश्वकार को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

शुद्ध्यापञ्जनम्—

शुद्धचीस्वरसः कर्षं चौद्र स्यान्नापैकीमितम् । सैर्घर्षं चौद्रतृष्य स्यात्सर्वमेकत्र भर्षयेत् ॥  
अङ्गमेधयन सेन विह्वाम्तिमिर जयेत् । काच कण्डू लिङ्गनाशो ध्रुवल्लृष्णगताम्नादान् ॥ १ ॥

शुद्ध्यापञ्जन—शुद्ध का स्वरस एक कर्ष ( १ तोल ) मधु एक मासा और मधु के समान ( १ मासा ) सैधानमक का चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर नेत्र में अञ्जन करने से विस्त्र रोग, अम रोग तथा तिमिर रोग, काच रोग, नेत्र कण्डू रोग लिङ्गनाश रोग एवं ध्रुवल्लृष्ण गता तथा कृष्ण मण्डल गत सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

कतकप्रलादि—

कतकरस्य फल पृष्ठा मधुना नेत्रमञ्जयेत् । हृष्यकर्पूरसहित सारस्यानेत्रप्रसादान्मम् ॥ १ ॥

कतकप्रलादि योग—निर्मली के बीज को मधु के साथ बिसकर उसमें किञ्चित् कर्पूर मिलाकर अञ्जन करने से नेत्रों का प्रसादन होता है अर्थात् नेत्र निर्मल हो जाते हैं ॥ १ ॥

अन्यधन—

कतकस्य फल दाह्यः सैन्धव श्यूषणं सिता । फेनो रसाञ्जन शीघ्र विप्लवानि मन शिला ।

कण्डूयलेदासुदाहन्ति मण वा सुसुखायति ॥ २ ॥

निर्मली के बीज, शुद्ध शठ्ठा, सेंधानमक, सोंठ, गरिच, पीपल, शर्करा समुद्रफेन, रसकव, मधु, वायविरंग और शुद्ध मैन्सिल को समान भाग लेकर चूर्ण कर खी के दूध के साथ मली भौति मर्दन कर नेत्रों में लगाने से तिमिर रोग, पटल रोग, काच रोग, अर्म रोग और नेत्र शुक रोग नष्ट होत हैं और नेत्र कण्डू, बलेद, अर्बुद तथा नेत्र मल नष्ट होते हैं एव नेत्र को सुख होता है ॥ १-२ ॥

पिप्पल्यापञ्जनम्—

पिप्पलीत्रिफलाहापाओघक च ससै धवम् । मृद्गराजरसे पृष्ट गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥

धर्म सतिमिर काच कण्डू शुक्र तथाऽर्जुनम् । अञ्जन नेत्रजान्तोगात्रिह त्येव न संशय ॥ २ ॥

पिप्पल्यापञ्जन—पीपल, आंवला, हरद, बहेदा, लाल, लोष और सेंधानमक को समान लेकर विषिवद चूर्ण कर भागरे के स्वरस के साथ मर्दन कर (घोटकर) बटी बनाकर अञ्जन करे । इस अञ्जन के प्रयोग से अर्म रोग, तिमिर रोग, काच रोग, तत्र कण्डू, नेत्रशुक तथा अर्जुन रोग नष्ट होत हैं और इससे नेत्र में होनेवाले अचान्य रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

गुग्गामूलापञ्जनम्—

गुग्गामूल घस्तमूत्रेण पिष्ट निष्टृष्टा वा घारिणा भद्रमुस्ता ।

आप्यं सद्यस्तेमिर हन्ति पुसामस्तुद्गाढं नेत्रघोरघनेन ॥ १ ॥

गुग्गामूलापञ्जन—गुग्गु ( रत्तियों ) की जड़ को बकरी के मूत्र के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करे, अथवा नागरमोथे की जल के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करे तो इन अञ्जनों से आध्वरोग ( दिवाह नहीं देना ) और तिमिर रोग अत्यन्त प्रगाढ ( अत्यन्त बड़े हुए ) भी हों तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

तुलस्यादि—

तुलस्या विषयपत्रस्य रसो प्राह्वः समानकः । साम्यां मुखय पयो नार्याञ्चितय कांस्यपात्रके ॥ गजवद्वया इवं मर्द्यं सात्रेण प्रहर पुनः । कज्जलख्यं समुत्पाद्य तेनाञ्जितविलोचन ॥

सद्यो नेत्ररुज हन्ति सशूलां पाकसमयाम् ॥ २ ॥

तुलस्यादि गोग—तुलसी के पत्तों का स्वरस और बेल के पत्तों का स्वरस समान लेकर उसमें दोनों के समान भाग खी का दूध लेवे और इन तीनों औषधियों को कांसे के पात्र में रखकर उसमें पान का रस ( एक भाग अर्थात् तुलसी के स्वरस के समान ) मिलाकर साम्रखण्ड ( पैसे आदि ) से एक पहर तक मलीभौति मर्दन करे, मदन करने पर जब कज्जल के समान हो जावे तब उसका नेत्र में अञ्जन करे तो इस अञ्जन से नेत्र को पीछा शीघ्र नष्ट हो जाती है और नेत्र का शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है चाहे नेत्र पीड़ा और शूल से पकने के समान क्यों न हो गये हों ॥ १-२ ॥

महावासादि काथ —

घासा घन निम्बपटोलपत्र तिफामृताद्य वनवसकरवक् ।

कलिङ्गदार्वादिहन सनागर भूनिम्बघात्री क्षमया विभीतकम् ॥ १ ॥

तथा यवकाथमथाष्टमांश विवेदिम पूर्वदिने कपायकम् ।

सैमिर्यकण्डूपटलखुद च द्वाक तथा सद्यमन्नघ च ।

दाह सराग मरुज सपिब्ल ह यारसमस्तानपि नेत्ररोगान् ॥ २ ॥

महावासादि काथ—अरुसा, नागरमोथा, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी, गुणच, लालचन्दन, कुटज ( कोरैया ) की छाल, इद्रजी दारुइलदी, चीते की जड़, सोंठ, चिरायता, आमला, हरद, बहेदा और जो समान भाग लेकर काथ की विधि से काथ कर अष्टमांश शेष रहने पर दिन के पूर्व भाग में अर्थात् प्रातःकाल इस काथ ( कवाथ ) को पान करने से तिमिर रोग, नेत्रकण्डू, पटल रोग, नेत्र के अर्बुद, नेत्र शुक, सप्रग नेत्र शुक अथवा अत्रग नष्ट शुक दोनों

में कीर्त अथवा दोनों, नेत्र का दाह, नेत्र में राग होना ( नेत्र का रक्तादि वर्ण हो जाना ), नेत्र पीला, नेत्र के पिच्छ रोग तथा अन्याय नेत्र के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

त्रिफलाकाथ —

अथ स्थ त्रिफलाकाथ सर्पिषा सह योजितम् । सुक्तोपरि पिबेत्साय मासेनान्घोऽपि परयति ॥

त्रिफला क्वाथ—रोंहे के पान में विधिपूर्वक बनाया त्रिफला का क्वाथ रख कर उसमें गोशत का प्रक्षेप देकर सार्धकाल भोजन के पश्चात् एक मास तक पान करने से अथवा मनुष्य भी देखा लगता है अर्थात् इस त्रिफलादि क्वाथ के सेवन से एक मास में नेत्राधरोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

चित्रकादिकाथ — चित्रकमूलत्रिफलापटोल्यवसाधितं पिबेद्गमः ।

सधृत निशि चक्षुष्य तिमिर च विशेषतो हन्ति ॥ १ ॥

चित्रकादि काथ—चित्रक भी बड़, भीमला, हरड़, बहेरा, परवल के पत्ते और सौ की समान माग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर उसमें गोशत का प्रक्षेप देकर रात्रि में पान करने से नेत्रों का दहत होता है अर्थात् नेत्र में रोग नहीं होने पाते । विशेषतः तिमिर रोग को यह क्वाथ नष्ट करता है ॥ १ ॥

### अथ चूर्णानि ।

त्रिफलाचूर्णम्—

त्रिफलावधमायसं च चूर्णं समयष्टीमधुक् त्रिसप्तत्राग्रम् ।

मधुना सह सर्पिषा दिनात्ते पुरुषो निम्परिहारमाददीत ॥ १ ॥

तिमिराधुदरक्षराजिकण्डूक्षणदाध्यामयदाहशूलसोदान् ।

पटल च सशुक्लकाचपिच्छ क्षामयत्येष निषेवित प्रयोगः ॥ २ ॥

त्रिफला चूर्ण—आमला, हरड़, बहेड़ा, लोहमस और जेठी मधु के चूर्ण को समान लेकर मधु और गोशत के अनुपान से दिन के अन्त में अर्थात् सायंकाल २१ दिन तक जो मनुष्य सेवन करता है उसके तिमिर रोग, अर्भुद, नेत्रों के रक्तवर्ण की रक्षा, कण्डू, रात्र्यध रोग, दाह, शूल, तीद, पटल, शुक्ल, काच पिच्छ आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

न च केवलमेव लोचनानां विद्विद्यो रोगनिवहणाय योगः ।

यदानध्रवणोर्ध्वजशुजानां प्रशमे हेतुरय महाममानाम् ॥ ३ ॥

गुदजानि मगन्दरप्रमेहासहकुष्ठानि हलीमक किलासम् ।

पलितानि विनाशयेत्तयाऽग्निं धिरनष्टं कुरते रविप्रवण्डम् ॥ ४ ॥

प्रमदाभिरयं जराधिरूढ स्फुटचन्द्राभरणासु पामिनीषु ।

सुरतानि पदे पदे निषेवेत्पुरुषो योगमिमे निषेपमाणः ॥ ५ ॥

स्मृतिविग्रमधुद्विशक्तियुक्तः शरदां जीवति ये शर्तं समग्रम् ॥ ६ ॥

सुधीन क्षीलोपलघाहाग्निना शिरोरुहैरङ्गममेचकप्रभैः ।

भवेत्त गृध्रस्य समानलोचनश्चिरं मरोगपर्यन्तं तु जीवति ॥ ७ ॥

यह योग केवल नेत्र रोग को ही नष्ट करने वाला नहीं कहा गया है, प्रत्युत इससे दाँत, कान और कण्ठमधु के जितने भी महान् रोग हैं सभी नष्ट होते हैं तथा इसके सेवन से अर्भु रोग के अर्भुद, मगन्दर, प्रमेह, कुष्ठ, इत्येनक, शिशास और पलित आदि रोग नष्ट होते हैं तथा बहुत दिनों की नष्ट हुई अग्नि को भी शर्त के समान प्रवण्ड (तीक्ष्ण) कर देता है बृद्ध पुरुष भी इसके नित्य सेवन करने से शुक्ल पक्ष की रात्रि में स्त्रियों के साथ प्रतिदिन मैथुन कर सकता है अर्थात् यद्व बरा निवारण योग है और इसके नित्य सेवन करने से स्मृति, पराक्रम, बुद्धि और शक्ति सम्पन्न होकर मनुष्य पूर्ण सौ वर्ष तक अविभ्र रह सकता है तथा इसके सेवन से मूल में नील कमल के पत्र के समान स्रग्व आशी है और शिर के केश बंजन के समान कृष्णवर्ण के हो जाते हैं एवं दृष्टि गिद्ध पक्षी की दृष्टि के समान तीक्ष्ण हो जाती है ॥ ६-७ ॥

होदचूर्णम्—

मधुक्त्रिफलाचूर्णं होदचूर्णं समं लिहेत् । मधुशर्पियुक्तं सम्पन्नाभ्यधीरं पिबेद्गु ॥ १ ॥

छुई सतिमिश्र शूलमण्डपित्तं ज्वरं पनम् । आनाह मूत्रसङ्ग च शोथं चैव निहन्ति हि ॥ २ ॥  
 मधुकारि लोहचूर्ण—गुल्दटी, आंवला, हरद और बहेड़ा के चूर्ण को समान भाग लेकर सब के समान लोहभस्म मिलाकर ( यथाश्ल प्रमाण से ) मधु और घृत के साथ मिलाकर ( घोटकर ) सेवन करे और गोदुग्ध का अनुपात करे अर्थात् इन औषधियों को मधु और घृत में मिलाकर चाट कर ऊपर से गोदुग्ध पीवे तो रक्त योग के सेवन करने से बमन, तिमिर रोग, शूल, अम्लपित्त वर, कलम ( क्लान्ति ), आनाह, मूत्रावरोध और शोथ ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ २-२ ॥

शतावरीचिचूर्णम्—

शतावरी चूर्णसमा प्रदेया पृष्ठा तथा रावणमूर्धंतुल्या ।  
 देयं विद्वङ्गं वसुभि समानमृतो सम चाऽऽमलकारिषयीजम् ॥ १ ॥  
 विष्णोभुजेस्तुष्यगुण मरीच सद्दिक्रमैर्मागधिका प्रदेया ।  
 चूर्णं समध्वाज्यकर्मर्धकर्मपद्यामयानां विनिवारणार्थम् ॥ २ ॥  
 कण्ठं सधूम तिमिर सुधोरमर्माणि काच पटल त्रिदोषम् ।  
 ये चापरे रक्षमवा विकारास्तेपामयं चूर्णवरो निहन्ता ॥ ३ ॥

शतावरीचि चूर्ण—शतावरी का चूर्ण १२ भाग, छोटी श्लायची के दानों का चूर्ण दस भाग बावडिग का चूर्ण ८ भाग, आंवले की गुठली के बीजों का चूर्ण ६ भाग, गरिच का चूर्ण ४ भाग और पीपल का चूर्ण तीन भाग लेकर एकत्र मर्दन कर आधे कर्प के प्रमाण की मात्रा से मधु और घृत के अनुपात से नत्रकण्डू, घूम के समान दिखाई देना, तिमिररोग, अर्म रोग, काच, पटल और त्रिदोष नष्ट होते हैं तथा अन्य भी जो रक्त के दोष से उत्पन्न हुए रोग हैं उन सबको यद् चूर्ण नष्ट करता है ॥ २-३ ॥

द्वितीयं त्रिफलादिचूर्णं बद्धसेनात्—

लिङ्गास्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तत्रे ।  
 समीरणे तैल्युता कफात्मके मधुप्रगाढा विद्वधीत युक्ति ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—आंवला, हरद और बहेड़ा का विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर पित्तज तिमिर रोग में गोघृत के साथ, वातज तिमिर रोग में तिल के साथ और कफज तिमिर रोग में मधु के साथ सेवन करने से तीनों प्रकार के तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

विभीतकशिवाधा त्रीपटोत्कारिष्टवासकैः । पक्षमेभिघृत सर्वांश्चिरोगान्यपोहति ॥ १ ॥

विभीतकादि घृत—बहेड़ा, हरद, आंवला, परबल के पत्ते, नीम की छाल और अरुमा इनके समान मिलित बने कस्क में चौगुना मूर्च्छित गोघृत मिलाये और घृत से चौगुना जल मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से नेत्र के सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं शृङ्गारसस्य च । धूपस्य च रसप्रस्थं शतावरीश्च सःसमम् ॥ २ ॥ अजाधीर गुह्यघ्याय आमलक्या रस तथा । प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिघृतं त पचेत् ॥ ३ ॥ कश्क फणासिताद्रात्रिफला नीलमुत्पलम् । मधुक क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ तत्सद्यु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् । कर्षपानमघ पानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ ५ ॥ पावतो नेत्रजा रोगा पाना देवापकपति । सरफे रक्तदुष्टे च रफे वा विस्तृते तथा ॥ ६ ॥ नक्काभ्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे । अमिष्यन्देऽधिमन्ये च पक्षमकोपे सुदारणे ॥ ७ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रयकृतेष्वपि । परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्य महाघृतम् ॥ ८ ॥

महात्रिफलादि घृत—त्रिफला का काथ एक प्रस्थ, मांगरे का स्वरस एक प्रस्थ, अरुसे का स्वरस एक प्रस्थ, शतावरी का स्वरस एक प्रस्थ, बकरी का दूध, गुरुच का स्वरस और आंवले का स्वरस एक एक प्रस्थ लेकर एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत के साथ घृत पाक की विधि से पाक करे और इसमें आगे लिखी हुई औषधियों का कस्क समान मिलित घृत से चतुर्थांश मिलाकर घृत सिद्ध करे अर्थात् उपरोक्त औषधियों के स्वरसों के पाक होते समय पीपल, शर्करा, दाख, हरद, बहेड़ा, आंवला, नीलकमल, मुल्दटी, क्षीर काकोली, मुल्दटी और छोटी कटेरी इन सबको समान लेकर कस्क कर घृत के चतुर्थांश मिलाकर घृत सिद्ध करे, जब मलीमांति सिद्ध हुआ जान लेवे

तत्र उत्तर-ध्यानकर एक उत्तम पात्र में रख लेवे । इस धा को भोजन के पूर्व ( प्रातः ) दोपहर और सायंकाल पान करना उत्तम है । इससे बितने प्रकार के नेत्र रोग हैं सभी नष्ट हो जाते हैं । नेत्र के रक्तनेत्र रोग, रक्तदुष्ट नेत्र रोग, रक्तस्राव शुक्ल नेत्र रोग, नक्काध्य रोग, तिमिर रोग, काच रोग, नीलिका रोग, अर्बुद रोग, अभिष्यन्द रोग, कठिन पद्मरोग एवं सभी प्रकार के नेत्र रोगों तथा त्रिदोषज नेत्र रोगों में भी यह त्रिफलादि महाप्रत अत्यन्त हितकर है ॥ २-८ ॥

द्वितीय त्रिफलाद्यं घृतम्—

शतमेक हरीतक्या द्विगुण च विभोतकम् । चतुर्गुण खामलकं धूपमार्कवयोः समम् ॥ १ ॥  
 चतुर्गुणोष्क द्रव्या शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । भागं चतुर्थं सरष्य काथ समयत्तारयेत् ॥ २ ॥  
 शकरा मधुक द्राघा मधुपथी निदिग्धिका । काकोली चौरकाकोली त्रिफला नागकेशरम् ॥  
 विप्लवी चन्दन मुस्त प्रायमाणा सयोरथलम् । घृतप्रस्थ सम क्षीर कर्कशैः शनैः पचेत् ॥  
 ह यासतिमिरं काच नक्काध्य शुक्रमेव च । तथा छावं च कण्डू च श्वशु च कषायताम् ॥  
 कलुषत्व च नेत्रस्य विद्वत्रमपटलान्वितम् । बहुनाम्न किमुक्तेन सर्वाद्येनामयाहरेत् ॥ ६ ॥

द्वितीय त्रिफलाद्यं घृतम्—बड़ी हरद १००, बड़ेड़ा २०० और आमला ४०० लेकर इनके छिलके निकाल ले और सबको एकत्र कर चौगुने जल में काथ बनावे, चतुर्थांश शेष रहने पर भासे का तथा भांगरे का स्वरस १-१ प्रस्थ और शकर, मुलहठी दाख, जेठीमधु, छोटी कटरी, काकोली, क्षीर काकोली, आवला, हरद, बड़ेड़ा, नागकेशर, पीपल, चन्दन, नागरमोथा, प्रायमाण और तोलकमल प्रत्येक समान भाग लेकर त्रिभिपूर्वक करक बनाकर घृत से चतुर्थांश लेकर मिलाने और घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से तिमिर रोग, काच रोग, नक्काध्य ( रतीषी ), नेत्रशुक, नेत्रस्राव नेत्र कण्डू, नेत्र श्लेष्म, नेत्र का कषाय वर्ण का होना, नेत्र का कञ्चित होना, नेत्र मल, वर्ण और पटल आदि नेत्रों में होनेवाले सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-६ ॥

यस्य चोपहता इष्टि सूर्याग्निर्मां प्रपश्यत । तस्मै तन्नेपज शोक मुनिभिः परम हितम् ॥७७॥  
 मार्जितं द्रव्यं यद्द्वरपरीं निमलतां यजेत् । तद्देतेन पीतेन नेत्र निर्मलतामियात् ॥

चारि द्रोणद्वयं प्राय धूपमार्कवयोस्तुले ॥ ८ ॥

जिस मनुष्य की इष्टि सूर्य और अग्नि को देखने से नष्ट हो गयी हो उसके लिये यह अत्युत्तम हितकर औषध है । जिस प्रकार द्रव्य मात्र देने पर निर्मल हो जाता है उसी प्रकार इस घृत के सेवन करने पर नेत्र निर्मल हो जाते हैं । इस योग में अरुसा और भांगरे को एक एक गुला बर्षाएँ एक एक सौ पल लेना चाहिये और दो द्रोण अल में सबको पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहने पर उत्तर-ध्यान कर अर्वाय औषधियों को मिलाकर त्रिभिपूर्वक घृत सिद्ध करना चाहिये ॥

लघुत्रिफलाघृतम्—

त्रिफलाकायक्यक्याभ्यां सपयस्कं घृतम् शृतम् । तिमिराण्यथिरादन्यास्वीतमेतद्विद्वान्मुने ॥  
 लघु त्रिफलादि घृतम्—त्रिफला को लेकर अठगुन अल के साथ त्रिभिपूर्वक बनाय कर चतुर्थांश शेष रहने पर उत्तर-ध्यान कर उसमें चतुर्थांश मूच्छित्व गोघृत और घृत से चतुर्थांश त्रिफला का करक मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सायंकाल में पान करने से तिमिर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

शृङ्गरात्रोत्तम्—

शृङ्गरात्रस्यैल्लोकुडवं तथा पल च मधुकरप । चौरमस्थविपल गतमपि चक्षुनिवतयते ॥११॥  
 शृङ्गरात्र तेल—भांगरे का स्वरस एक प्रस्थ, तिल का तैल एक कुडव और मुलहठी का करक एक पल लेकर उसमें गोदुग्ध एक प्रस्थ देकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर सेवन करने से नष्ट हुई इष्टि भी पुनः हो जाती है ॥ १ ॥

धावनम्—

स्नानं घृण्यतिष्ठेन्नापि चक्षुष्यमनिलापहम् । मधुकामलकरमान पिपातं तिमिरापहम् ॥ १ ॥  
 धावन प्रयोग—तिल का करक धिर में लगा कर स्नान करने से नेत्र में काम होता है और

वायुरोप नष्ट होता है तथा गुल्दठो और भाँसे के बल्क को शिर में लगा कर स्नान करने से पित्तदोष और तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

यथाद्यैः स्नानमिच्छति श्लेष्मान्तिमिरापहम् । आमद्यैः सतसं स्नानं पर दृष्टवलापहम् ॥

वा आम् के स्नान से शिर धोने से अथवा बल्क शिर में लगा कर स्नान करने से कफ दोष और तिमिर रोग नष्ट होता है । और निरन्तर भाँसे वा कक शिर में लगाकर स्नान करने से नेत्र की दृष्टि और बल्क में वृद्धि होती है यह श्लेष्मन्तव्ययोग है ॥ २ ॥

त्रिफलापाः कपायस्तु घ्रापना-नेत्ररोगजिप् । कथला-मुत्ररोगज्ञ पानतः कामलापहः ॥ ३ ॥

त्रिफला के बाथ से नेत्र को धोने से नेत्र में होने वाले सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार पिप्पला के बाथ वा मुत्र में ककल धारण करने से गुल्क के रोग और त्रिफला के बाथ को पीने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

शुक्ला पाणितल धृष्टा चक्षुर्द्योदि दीयते । अचिरजैष हृद्धारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ४ ॥

भोजन के पश्चात् दाथ धोकर तल्दधी को परस्पर पिसकर नत्रों पर नित्य फेरने से तिमिर रोग नष्ट होते हैं अथवा तिमिर रोग होते ही नहीं है ॥ ४ ॥

### अथ काचोपक्रमः ।

काचे रक्तजलौकानिर्हृत्वा पूर्वोक्तमाचरेत् । दाणार्थं मरिच द्वौ च विष्वक्वर्णवर्षेणयो ॥ १ ॥

दाणार्थं सैधवाच्छाणा नय सौवीरकाञ्चनात् । विष्टसुस्पृष्टमचिन्नायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् ॥

कण्टकाचकफार्तानो मलानां च विरोधनम् ॥ ३ ॥

काच रोग का उपक्रम—काच रोग में कोंक के द्वारा रक्तमोक्षण कराकर पूर्व कथित मण नाशक चिकित्सा करनी चाहिये । काली मरिच आधा शान ( २ मासा ), पीपल दो शान ( ८ मासा ), समुद्रवेण दो शान ( ८ मासा ) सेंधानमक आधा शान ( २ मासा ) और शुद्ध सौवीरकाञ्चन ९ शान ( १६ मासा वा १ शो० ) लेकर विधिपूर्वक चित्रानक्षत्र में चूर्ण कर एकत्र मिला मर्दा कर अञ्जन करने से नेत्रकण्टक, काच रोग, कफज नेत्र रोग और नेत्र के मल नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

समेपश्लक्ष्णञ्जनाकाचमल व्यपोहति ॥ १ ॥

मेपश्लक्ष्णञ्जन—मेदासिगी गुद्ध सौवीरकाञ्चन और शुद्ध शल को समान भाग लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्ण कर नेत्र में अञ्जन करने से नेत्र के काच रोग और नेत्रमल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिलासैधवकासीसदाहुष्योपरसाञ्जनैः । सचौद्वैः काचक्षुद्गार्मतिमिराणी रसक्रिया ॥ २ ॥

शिलारसादि रस क्रिया—शुद्ध मेनशिल, सेंधानमक, कसीस, शुद्ध शल, सोंठ, मरिच, पीपल और रसवत् को समान भाग लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्णकर मधु में मिलाकर नेत्रों में अञ्जन लगाने से काच रोग, नेत्र शुष्क, अर्मरोग और तिमिर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

### पित्तविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—

रसाञ्जनं घृतचौद्वैतालीसस्वर्णगैरिकै । गोशुद्धसस्युर्चं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १ ॥

पित्तविदग्ध दृष्टि चिकित्सा—रसवत्, गोघृत, मधु, तालीस पत्र और स्वर्ण गेरू को समभाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर गोबर के रस में खरल कर नेत्र में लगाने से पित्तविदग्ध दृष्टि ( पित्त के कारण पीतवर्ण के देखनेवाले नेत्र रोग ) नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

कारमरीशुष्पमधुकदार्वीलोधरसाञ्जनैः । सचौद्वैमञ्जनं दुर्पात्पित्तव्याधिप्रशात्तये ॥ २ ॥

काचमर्दादि अञ्जन—गम्भार के फूल, गुल्दठो दादइलदी लोध और रसवत् को समान भाग लेकर विधिपूर्वक श्लक्ष्ण चूर्ण कर मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्र में होनेवाली पित्तज म्याधि नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

### श्लेष्मविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—

हरेणुमगधापीजमञ्जान यष्टुद्वितम् । शुकुदसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये ॥ १ ॥

श्लेष्मविदग्ध दृष्टि चिकित्सा—रेणुका, पीपल और विनोरे नीबू के बीज को मञ्जा को समान भाग लेकर बकरे के यकृत के रस अथवा गौ के गोबर के रस के साथ खरल कर नेत्र में अञ्जन करने से कफ के बीज से दूषित दृष्टि वा कफ विदग्ध दृष्टि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

दिवा-भराभ्यन्धयोश्चिकित्सायाह—

नलिनोरपलकिञ्जलैरुक्तैरिक्तसपुष्पसम् । गुटिकाजनमेतस्य दिनराभ्यन्धयोर्हितम् ॥ १ ॥

दिवाभ्यन्ध और राभ्यन्ध रोग चिकित्सा—कुमुदिनी और नीलोत्पल (निलोफर) दोनों का बेलर और गेरु को समान ( एक २ भाग ) लेकर विभिन्न चूर्ण कर बकरे के दूध के रस के साथ खरल कर बटी बनाकर अजन लगाने से दिवाभ्यन्ध और राभ्यन्ध ( रतौषी ) नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

नदीजशङ्खत्रिकटुप्रसाजन मन शिला द्वे च निशे गर्वा शङ्खः ।

सचन्दनेयं गुटिकाऽऽशु कृत्वा प्रशस्यते रात्रिदिने न परमसाम् ॥ २ ॥

नदीजादि गुटिका—सौवीराजन, शुद्ध शङ्ख, सोंठ, मरिच, पीपल, रसबल, शुद्ध मैनसिल इलरी और दारइलरी तथा लालचन्दन को समान भाग लेकर विभिन्न चूर्ण कर गोबर के रस के साथ खरल कर बटी बनाकर अजन लगाने से राभ्यन्ध ( रतौषी ) और दिवाभ्यन्ध रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

सूर्यादिवशनैश्च सत्रं शीतं प्रयोजयेत् । हेमपृष्ठं धृतोपेतमजनं चापि शस्यते ॥ ३ ॥

धर्म आदि तीक्ष्ण वस्तुओं के देखने के कारण जिसकी दृष्टि विदग्ध हो गयी हो उसके लिये शीतोपचार करना चाहिये और सुवर्ण की मिस्र कर गोष्ठय में मिलाकर अजन लगाना चाहिये इससे धर्मदि के देखने से दग्ध हुई दृष्टि ठीक हो जाती है ॥ ३ ॥

केवलराभ्यन्धचिकित्सा—

रसाजनं हरिद्रे द्व मालती निम्बपल्लवा । गोशङ्खससपुष्पा बटी नक्ताभ्यन्धनाशनी ॥

पुत्रस्याभ्याजने मात्रा प्रोक्ता साधहरेणुका ॥ १ ॥

राभ्यन्ध रोग चिकित्सा—रसबल, इलरी, दारइलरी, मालती ( चमेली के फूल ) और की समान भाग प्रथक् २ लेकर विभिन्न चूर्ण कर गोबर के रस के साथ खरल कर अजन कर नक्ताभ्यन्ध ( रतौषी ) रोग नष्ट होता है । इसके अजन करने की मात्रा वेद रेणुका या वेद कहा गया है अर्थात् देह घने के बराबर दवा पिस कर अजन लगाना चाहिये ॥ १ ॥

कणा छ्वागशङ्खमध्ये पक्का सद्मसपेविता । अचिराद्गन्त नक्ताभ्यन्ध सद्मसपौष्पमूषणम् ॥

कणादि गुटिका—पीपल को बकरी के पुरीष में मिलाकर पकावे और फिर बकरी के पुरीष ही रस से पीस कर मिश्रों में लगावे तो शीघ्र ही नक्ताभ्यन्ध रोग नष्ट होता है । ( कहीं २ १/२ शङ्खमध्ये के स्थान पर ध्यागकृन्मध्ये है यहाँ भी इसी प्रकार मरिच के दलक्षण चूर्ण को मूष मिलाकर अजन करने से नक्ताभ्यन्ध रोग नष्ट होता है ) ॥ २ ॥

करञ्जपत्राकिञ्जलैरुक्तैः । गोशङ्खससपुष्पैर्नक्ताभ्यन्धे हितमजनम् ॥ ३ ॥

करआदि बटी—करस के बीज, कमलकेसर, रक्तचन्दन, नीलकमल और गेरु को समान भाग चूर्ण कर गोबर के रस के साथ मदन कर नेत्र में अजन लगाने से नक्ताभ्यन्ध रोग नष्ट जाता है ॥ ३ ॥

रसाजनं शिला क्षार जातोपशरसो मधु । नक्ताभ्यन्धे जपेदेतदजनं साधु चोन्नितम् ॥ ४ ॥

रसाजनादि अजन—रसबल, शुद्ध मैनसिल, दारइलरी, चमेली के पत्तों का स्वरस और मधु में उपरोक्त समान मिश्रित द्रव्य चूर्ण लेकर उसमें जातोपशर स्वरस और मधु मिलाकर मर्दन अजन करने से नक्ताभ्यन्ध नष्ट होती है ॥ ४ ॥

शुद्धं च मालतीपत्रं निशाङ्गपरसाजनैः । नक्ताभ्यन्धमजनं हन्याः कृष्णा या गोमयान्विता ॥

मधु, चमेली के पत्तों का स्वरस, इलरी, दारइलरी और रसबल को समान भाग लेकर चूर्ण योग्य औषधियों का द्रव्य चूर्ण बनाकर स्वरस और मधु के साथ मर्दन कर अजन करने नक्ताभ्यन्ध रोग नष्ट होता है । अथवा पीपल के द्रव्य चूर्ण को गोबर के रस के साथ मदन अजन करने से नक्ताभ्यन्ध नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दमा पृष्टं मरीचं वा राभ्यन्धमजनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

दधि मरिचयोग—दही के साथ मरिच को पिसकर अजन करने से राभ्यन्ध नष्ट हो जाता है ॥

नकुब्जाभ्यन्धरोगस्य राग रहितस्य चिकित्सा—

बन्धा शिबूषणं च नकुब्जं च भूनिम्बनिम्बौ इजनी सबासा ।

प्रथमं जलस्य षड्विंशतिभागं पियेसुजीर्णं नकुलाध्यरोगे ॥ १ ॥

नकुलाध्य रोग चिकित्सा—बच, निशोष, लालचन्दन, गुरुच, चिरायता, नीम की छाल, हल्दी और भरुसा को समान भाग लेकर बाथ की विधि से जल में पकावे, अष्टमांश लेप रहने पर उतार कर छान लेवे और भोजन के पच जाने पर पीवे तो नकुलाध्य रोग नष्ट होता है ॥१॥

अथ घृष्णगत रोगचिकित्सा ।

तत्राऽऽग्नी सप्तगणशुक्रप्रतीकारमाह—

मृगशुक्रप्रसारपर्यं पटङ्गं शुग्गुलु पचेत् । शिरसमाऽऽहरेद्रक्ष जलौकामिथ्य लोचनात् ॥ १ ॥

मृग शुक्र का प्रसार—मृग शुक्र की शान्ति के लिये पटङ्ग शुग्गुलु बनाकर लिखावे और शिर तथा नेत्रों से जलौका ( जोंक ) द्वारा रक्तमोक्षण करा देवे ॥ १ ॥

ससैष्यथ त्रिवृत्ताथे धीन्यारापाचयेद् घृतम् । पीत्वा सर्वेषु शुक्रेषु शीघ्रं कुर्याच्चिद्राम्यधम् ॥

त्रिवृत्तादि घृत—निशोष के विधिवत् बने काथ में चतुर्थांश मूच्छित गोघृत और गोघृत से चतुर्थांश संधानमक का बहर मिलाकर तीव्र बार पका कर ( सिद्धकर ) इस घृत को पिलाकर सभी नेत्र शुक्रों में शिराम्यध शीघ्र कर देना चाहिये ॥ २ ॥

यष्टवाद्यापाक्षोत्तनम्—

यष्टवाद्वाद्युत्पलपद्मलाक्षां प्रपौण्डरीकं नलक्ष्मणुना च ।

आक्षोत्तनं स्त्रीपयसा विपकं निहन्ति तसप्तगणदाहशुक्रम् ॥ १ ॥

यष्टवाद्यादि आक्षोत्तन—जेठी मधु, दाहहल्दी, नीलकमल, रक्तकमल, लाल, पुण्डरिया काष्ठ और लवण का खरस और स्त्री का दूध सबको एकत्र पाक कर नेत्र में आक्षोत्तन करने से मृग तथा दाहयुक्त नेत्रशुक्र रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

लामञ्जकाघञ्जनम्—

लामञ्जकोत्पलसितासारियाचन्दनहृद्यैः । कार्पिकैः सारिवाभ्रयं काययेत्सट्टिलाढके ॥ १ ॥

पादशोषं परिहृत्य पचेदादर्विलेपनात् । भाजने लोहशौले चा प्रातरस्तायमञ्जनम् ॥ २ ॥

प्रधानमेतत्पद्मकण्ठ मृगशुक्र क्षम नयेत् । श्यामामूलकपाय वा मधुना मृगशुक्रिणाम् ॥ ३ ॥

लामञ्जकादि भजन—लामञ्जक एण विशेष अर्थात् पीतवर्ण का खस, नीलकमल, शंकरा, सारिवा, श्वेतचन्दन और रक्तचन्दन एक एक बर्ष और सारिवा एक प्रथम लेकर काथ की विधि से जो कुट कर एक आदक जल के साथ काथ कर चतुर्थांश लेप रहने पर उतार छानकर पुनः पाक करे और तब तक पाक करे जब तक कि वह काथ करछुल में लिपटने लग जाय अर्थात् गाढ़ा हो जाय तब उतार लेवे तथा इसे लोहे अथवा परथल के पात्र में पाक करे । इस योग का भजन प्राण और सायंकाल नेत्र में लगावे तो प्रधानतः यह नेत्रशुक्र की और मृगशुक्र की शमन ( नष्ट ) करता है । अथवा श्यामा ( कृष्णसारिवा ) की जड़ का विधिवत् काथ बनाकर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से और नेत्र में आक्षोत्तन करने से मृगशुक्र नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

चन्दनादिवर्ति—

चन्दनं गैरिकं लाघा मालतीकटिकाचिता । मृगशुक्रहरीवर्तिः क्षोणितरय प्रसादनी ॥ १ ॥

चन्दनादि वर्ति—रक्तचन्दन, गेरुमिष्ट्री, लास और चमेली की कली को समान भाग लेकर पीस कर विधिपूर्वक बची बनाकर नेत्र में भजन लगाने से मृगशुक्र रोग नष्ट होता है और इसके खाने से रक्त शुद्ध होता है ॥ १ ॥

आक्षोत्तनम्—

जात्या प्रयाल मधुक च सर्पिर्मृष्ट सुखोष्णाग्नुसुप्तातिल च ।

आक्षोत्तनं शुक्रहरं प्रविष्टं शुक्रापहं स्त्रीपयसा महाहम् ॥ १ ॥

अमृग शुक्र चिकित्सा—चमेली की कली ( जिसका सुद घुला नहीं रहे ) और मुलठी को समान भाग लेकर घृत के साथ भून लेवे और पानी के साथ तपाकर शीतल कर छानकर नेत्रों में आक्षोत्तन करे ( चुभावे ) तो नेत्र के शुक्र ( अमृग शुक्र ) नष्ट होते हैं । इस योग के साथ यदि स्त्री का दूध भी मिलाकर आक्षोत्तन किया जाय तो नेत्रशुक्र में विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥



धात्रीफलदित्तेचनम्—

धात्रीफल निम्बकपित्तपत्र यष्टवाह्लोघ्न खदिर तिलाक्ष ।

काथ सुशीतो जपनेऽभिविक सर्वप्रकार त्रिनिहति शुक्रम् ॥ १ ॥

धात्रीफलादि सेचन—भाँबला, नीम की पत्तियाँ, कैंब की पत्तियाँ, जेठीमधु, लोब खैर और तिल को समान भाग लेकर विधिवत् काथ बनाकर उससे नेत्रों का सिचन करने से सभी प्रकार के नेत्र शुक्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वर्तय—

पलाशपुष्पस्वरसेवहुशः परिमाविता । करञ्जबीजवर्तिस्तु हृत्वे पुष्पव्यपोहति ॥ १ ॥

वर्तिप्रयोग—करञ्ज के बीज की गुद्दी को पलाश के पुष्प के स्वरस से अनेक बार ( ७ वा ९ बार ) भाविन कर बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन करने से दृष्टि पुष्प ( नेत्र के फूला ) रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

समुद्रफेनसि—भूयशहृत्सदृशाग्द्वरकलै । शिम्बीजयुतैर्वर्ति शुक्राद्दोशश्च वल्लिखेत् ॥ २ ॥

समुद्रफेन वर्ति—समुद्रफेन सेवानामक, शुद्ध शल, कुशुकु ( गुर्गा ) के अण्डों की लवण और सहिजन के बीज को समान भाग लेकर विधिवत् पीसकर बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन करने से यह वर्ति नेत्रगुण आदि रोगों को हस्त प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार शल से लेखन कर लिया जाय ( सुरत्च कर हटा दिया जाय ) ॥ २ ॥

चन्द्रोदयावर्ति—

रसञ्जन सशैलेय कुङ्कुम समनःशिलम् । शाह्वलं सरवेतमरिच शर्करा चेति ससमम् ॥ १ ॥

पुष्या चन्द्रोदया नाम वर्तिर्वेदेहनिर्मिता । ह पारिवल्ल च कण्डू च शुक्र सतिमिरासुदम् ॥ २ ॥

चन्द्रोदयावर्ति—रसवत, शुद्ध शिलाजीत, कार्मरी केसर, शुद्ध मैन्शिल, शुद्ध शह, द्रवत मरिच और शकर को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन करने से विस्फुरोग नेत्रकण्डू, नेत्रशुक, निमिर और अर्जुन रोग नष्ट होते हैं । इस वर्ति का नाम चन्द्रोदयावर्ति है, इसे त्रिदेह ने बनाया था । ( यह योग अत्यन्त लाभदायक है ) ॥ १-२ ॥

अञ्जनम्—

घटघीरेण संयुक्त मुख्य कपूरज रजः । सिप्रमञ्जनतो हति कुमुम तु द्विमासिकम् ॥ १ ॥

अञ्जन—कपूर के चूर्ण में घटघृष्ट का दूध मिलाकर मलीमाँति मर्दन कर नेत्र में अञ्जन करने से दो मास का उपवन नेत्र पुष्प ( फूला ) शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

संशुष्य विष्कली चूर्णं सफेन कार्दमोजन । सशैत्र सैन्धवोपेतमञ्ज मे शुकनाशनम् ॥ २ ॥

विष्कल्यादि अञ्जन—पीपल का चूर्ण समुद्रफेन, मधु और सेंधा नमक को समान लेकर कौसे के पात्र में मलीमाँति मर्दन (खरल) कर अञ्जन बनाकर नेत्र में लगाने से नेत्र शुक्र नष्ट होता है ॥

साप्य मधूकसारो वा योज चास्यसैचयम् । मधुनाऽञ्जनयोगा स्युधस्वारं शुकनाशनम् ॥

शुकनाशक चार योग—शुद्ध शर्णो माञ्जिक, महुए का स्वरस, बड़ेके के बीज की मञ्जा और सेंवानमक इनमें से किसी एक के साथ मधु मिलाकर अञ्जन करने से शुक्र नष्ट होते हैं, ये चारो नेत्र शुक्र को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

हृषकुटाण्डकपालानि शह्ला काघोऽथ चन्दनम् । सैचवाधोऽसंयुक्तमञ्जनं शुष्कलेपनम् ॥

हृषकुटाण्डादि अञ्जन—कुशुकु के अण्डे का धिलका शुद्ध शह काथ लवण और रक्त चन्दन प्रत्येक एक २ भाग और सेंवानमक आधा भाग लेकर विधिपूर्वक कूट पीसकर अञ्जन बनाकर नेत्र में लगाने से नेत्र शुक्र का लेखन होता है ॥ ४ ॥

लोहादिगुग्गुल—अथश्च यष्टीत्रिफलाकगानां चूर्णानि तुषयानि पुरेण नित्यम् ।

मर्विमपुण्यां सद्द महितानि सर्वाणि शुक्राणि निहन्ति शीघ्रम् ॥ १ ॥

लोहादि गुग्गुल—लोहमरम, जेठीमधु, आमला, इरड, बड़का तथा पीपल को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर सब मिलाकर जिउना हो उसके समान शुद्ध गुग्गुल मिलाकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर मधु घृत के अनुपात से मधुन करने से सभी प्रकार के नेत्रशुक शीघ्र नष्ट होते हैं ॥

पटोलायं घृतम्—

पटोल कटुकाद्वार्षीणिग्दवासाकउग्रिक्तम् । दुराटभां पर्यटकं प्रायतीं च पटोन्मिताम् ॥ १ ॥  
प्रस्थमामलकातीं च पाययेत्प्रवणऽम्भसि । तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥  
कदकैर्भूमिभ्यःकुटजमुस्तनपटुवाह्वयने । सपिप्पलीकैस्तरितसिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोजितम् ॥ ३ ॥  
प्रागकर्मोद्योतवत्पटुरारागप्रणापदम् । कामलाज्वरधीसपगण्डमालापहं परम् ॥ ४ ॥

पटोलादि घृत—पटोल पत्र, जुटकी, दाहदलदो, नीम की छाल, अरुसा, दरद, बहेड़ा, औबला जबासा, पिचपापदा और प्रागमाग प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल औबला एक प्रस्थ लेकर एक द्रोग जल के साथ पाप को विधि से पाक कर चतुर्भांश शेष रहने पर उतार-धानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ मिलाकर पाक कर और हममें चिरायता, कौरैया की छाल, तागरमोथा, जेठीमधु, रक्तचन्दन और पीपल का समाग मिलित बरक बनाकर घृत के चतुर्भांश मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत म २ भंगि पर पाक कर सेवन करने से नेत्र शुक्र और नाक, कान, आँसू, बरमे, खचा, गुग आदि के रोग तथा मग रोग एवं कामला, ज्वर, विसर्प और गण्डमाला रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

कृष्णार्थ तैलम्—

कृष्णाविहङ्गमधुयष्टिकसिन्धुनामविधौपद्यैः पयसि सिद्धमिदं हृद्यदया ।

तेलं मगं तिमिरच्छुक्रशिरोक्षियदर्शं पाकारययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुञ्जम् ॥ १ ॥

कृष्णादि तैल—पीपल, बायविलग, जेठीमधु, संधानमक और सौंठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक करक कर मित्रना हो उसके योगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से योगुना बकरी का दूध लेकर एकत्र कर तैल पाक की विधि से तेल पकाकर इसका नस्य छेने से नेत्रमग, तिमिररोग, नेत्र शुक्र, शिरोरोग, नेत्ररोग, बरमे, पाकारयय ( अधिपाकारयय ) आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अधिपाकारययचिकित्सामाह—

धूर्वासं पुण्डरीकं च गवां क्षीरावशेषितम् । रागाश्रुयेदनां हन्याद्दधिपाकारययं तथा ॥ १ ॥

अधिपाकारयय चिकित्सा—बकरी के बीज और पुण्डरीक समान लेकर दोनों मिलाकर बितना हो उसके मोलद्वारा गाय के दूध और दूध से योगुना जल मिलाकर पाक करे और दूध मात्र शेष रहने पर उतार-धानकर उस दूध को नेत्र में डालने से नेत्र रोग ( नेत्र की खाली आदि ), अश्रुपात, पीड़ा और अधिपाकारयय रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अजकाचिकित्सामाह—

मूर्धाधिर्णभ्रुगण्डशङ्खखरमाश्रिताऽजका । जायते ध्ययते नेत्रं मध्यमानमिवान्तरा ॥ १ ॥

उष्णमध्रु क्षयरथि दूषितं क्लिद्यते भृशम् । असाध्यरोगसम्भूतां दृष्टिजाह्नं चिवजयेत् ॥ २ ॥

अजका की साध्यासाध्वता—शिर, नेत्र कान, भ्रुभाग कपोल शङ्ख देश और बरमे इन स्थानों में उत्पन्न अजका रोग में नेत्र में पीड़ा होती है और बीच-बीच में नेत्र मथित होता हुआ शात होता है । नेत्र से उष्ण अश्रु का प्रवाह होता है, नेत्र दूषित रहते हैं और क्लेद युक्त रहते हैं । यह अजका यदि असाध्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई हो और दृष्टि में उत्पन्न हुई हो तो उसको चिकित्सा नहीं करनी चाहिये अर्थात् यह अजका असाध्य है ॥ १-२ ॥

स्वयं प्रवृद्धां कठिनां चिरकालोत्थितामपि । साध्यरोगसमुत्पन्नां कृष्णजां स्वजकां जयेत् ॥ ३ ॥

अजका यदि स्वयं बड़े, कठिन हो, बहुत दिनों के भी हो परन्तु साध्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई हो तो कृष्णमण्डल की अजका की भी चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् यह अजका साध्य होती है ॥ ३ ॥

अजकायां शिरां मुक्त्वा त्रिष्टुब्धूर्णैर्विरेचयेत् । घृत घातहरैः सिद्धानजकायां प्रयोजयेत् ॥

सके पाने तथाऽभ्यङ्गं भोज्ये दृष्टिविदां वरः ॥ ४ ॥

चिकित्सा—अजका में शिरा वेध करे, निशोष के पूर्ण के योग से विरेचन करावे और घातनाशक औषधियों के योग से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर उससे सिचन, पान, मर्दन तथा भोजन करावे अर्थात् इस प्रकार घृत के प्रयोग करने से अजका नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

पक्षघटपत्रपुटके निधाय मास धवलकर्कटकान् ।

पुटवद्विदद्य यद्घ्वा तद्रससेको जयेद्जकाम् ॥ ५ ॥

वटके पके पत्तों का पुटक अर्थात् बन्द मुँह का दोना बनाकर उसमें श्वेत कर्कटों (केकड़ों) को एक मास तक रखकर पुटपाक की विधि से पाक कर उसका रस निकाल कर उसे भाँव में डालने से अन्नका नष्ट होती है ॥ ५ ॥

गवामस्थिधवच कांस्ये विनिघृश्य सुखाम्बुना । पूरयेदधि तेनाऽऽशु प्रशाम्यत्यजकामयः ॥ ११ ॥

गौ की अस्थि के ऊपर के अंश को कांसि के पात्र में सुखीष्ण जल के साथ घिँस कर नेत्र में भर देने से शीघ्र अन्नका शान्त हो जाती है ॥ ६ ॥

अङ्गारपक्षशम्भुकरसेनाऽऽश्रोतनाञ्जनम् । कर्पूरचूर्णयुक्तेन शाम्यते त्वजकामयः ॥ ७ ॥

निर्धूम अग्नि पर शम्भुक (घोंघा) के मास का पाक कर रस निकाल कर उसमें कर्पूर का श्लक्ष्ण चूर्ण मिलाकर उसको नेत्र में चुमाने से और अञ्जन करने से अजका रोग का धनन हो जाता है ॥ ७ ॥

सैन्धव याजिपाद् च गोरौचनसमायुधम् । श्लेष्मत्यग्रससयुक्त पूरण चाजकापहम् ॥ ८ ॥

सैधानमक का चूर्ण, असगंध को अड़ का चूर्ण, गोरौचन चूर्ण और लछोड़े की छाल के रस को समान भाग मिलाकर नेत्र में भरने से अजका नष्ट होती है ॥ ८ ॥

शशकाण्डिप्रगम्—

शशकस्य कपाये तु घृतमस्थ विराधयेत् । कल्क दद्यात् सखीर यथोक्तान्कर्पसम्मितान् ॥ १० ॥

सारिवा मधुक लावा चन्दन नीलमुरपलम् । यला चातिवला वैध मृणाल पत्रक तथा ॥ ११ ॥

कार्षिक सविप लोभ्र जीवनीयगगान्वितम् । घृतमेतत्प्रयोक्तव्य पाने नस्ये च पूरणे ॥ ३ ॥

अजकामञ्जन काच पटल शुक्रमेव च । तथाऽङ्गिरोमान्सकलान्घातपित्तोत्तराञ्जयेत् ॥ ११ ॥

शशकादि घृत—शशक (खरदे) के मांस का क्वाथ (चार प्रस्थ), मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और गोदुग्ध (एक प्रस्थ) छेने और सारिवा, मुलहठी, लाव, रक्तचन्दन, नील कमल, बरिभारा, अतिवला (ककड़ो) मृगाल (कमंडू नाल) और तेजपात एक-एक कर्ष छेने तथा शुद्ध बरसनाम विष एक कर्ष, लोभ्र एक कर्ष और जीवनीय गण की ओषधियों समान मिलित एक कर्ष लेकर विधिपूर्वक कल्क कर उसमें घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से, नस्य छेने से, नेत्र में डालने से अजका, अर्जुन, काच, पटल, त्रय शुक्र और सम्पूर्ण वात पित्त के शोष से उत्पन्न नेत्र के रोग नष्ट होवे हैं ॥ १-४ ॥

अथ शुक्लजाः—

प्रस्तायर्माष र्नाद्यवर्म तथैवार्माधिमांसकम् । लोहितार्म सशुक्लार्म शुक्लप्राप्तानि येद्वये ॥

वमवाव्य दधिनिर्म गोल रक्तमथापि वा । घूसरं तनु यथाऽऽशु ह्यक्रवसमुपाचरेत् ॥ २ ॥

शुक्ल भाग में होने वाले अर्मों के नाम—प्रस्तायर्म, र्नाद्यवर्म, अधिमांसार्म, लोहितार्म और शुक्लार्म ये शुक्ल भाग में होने वाले अर्म हैं। जो अर्म—दही के समान श्वेतवर्ण के, नीलवर्ण के, रक्तवर्ण के और घूसर (मटमैला) तथा पयले होते हैं और जो शीघ्र उत्पन्न होने वाले होते हैं उनको चिकित्सा नेत्र शुक्र की मति करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

कृष्णादिपुटपाकः—

कृष्णालोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसि-पुञ्जै । समुद्रकेनकासीसज्जोत्तोजवधिमतुभिः ॥

छेसने वा हृते तस्य परं धारणमिष्यते ॥ ३ ॥

कृष्णादि पुटपाक—दीपल का चूर्ण, शुक्र और चूर्ण, शुक्र ताम्र चूर्ण, शुक्र घण्ट चूर्ण, शुक्र मृग का चूर्ण, सैधानमक का चूर्ण, समुद्रकेन चूर्ण, कासीस चूर्ण और सीरीराजन के चूर्ण को समान भाग लेकर दही के अन्न के साथ विधिपूर्वक घोटकर नेत्र में अञ्जन करने से श्लेष्म और धारण होता है ॥ २ ॥

पिप्पलीदिशुक्रिकाञ्जनम्—

पिप्पलीदिशुक्रिकाञ्जालोदचूर्णं ससैधयम् । शृङ्गराजमे विष्ट शुक्रिकाञ्जनमिष्यते ॥ ३ ॥

अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रमपाञ्जनम् । अजकां नेत्ररोगांश्च हन्याच्चिरवशेपठः ॥ १ ॥

विष्वक्वादि गुटिकाजा—पीपल चूर्ण, दरद, बहेदा, भौवला, लास, शुद्ध लौह चूर्ण और सेंधानमक का चूर्ण कर भांगरे के रस के साथ घोट कर विष्वक् घटी बनाकर नेत्र में अञ्जन लगाने से अर्म, तिमिर, काच, नेत्रकण्डू, नेत्रशुभ्र, अर्जुन, अक्षका तथा अन्यान्य नेत्ररोग को समूल नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मरिचादिलेप —

सशूर्ण्य मरिचाद्ये च हजम्या रसमर्दिते । लेपनादर्मणां नाश करत्येष प्रयोगराट् ॥ १ ॥

मरिचादि लेप—मरिच और बहेदे को समान लेकर चूर्ण कर कच्ची हल्दी के स्वरस के साथ मर्दन कर लेप करने से यह प्रयोगराट् अर्मरोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

पुष्पाद्यादिरमक्रिया—

पुष्पाद्यत्वात्पञ्जसितोद्धिकेनशुद्धसिन्धुयगैरिकतिलामरिचैः समांशैः ।

पिटैस्तु माषिकरसेन रसक्रियेयं हिन्यमंकाश्चसिमिरार्जनयर्जरोगात् ॥ १ ॥

पुष्पाद्यादि रसक्रिया—पुष्पाद्य ( श्वेताञ्जन ) अथवा तिल वा पुष्प, बहेदा, रसवत, शर्करा, सशुद्धकेन, शुद्ध शंख, सेंधानमक, गरु, शुद्ध मैनसिल और मरिच को समान लेकर विष्वक् चूर्ण कर मधु के साथ मर्दन कर नेत्र में लगाने से अर्मरोग, काच, तिमिर, अर्जुन और वार्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्विधा शुक्लामये कार्यां पित्ताभिष्यन्दजिष्ण्णमा । यलासाह्यपिप्लेस्तुकार्यं शोणितमोक्षणम् ॥

नेत्र के शुक्ल भाग के रोगों में पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् पित्ताभिष्यन्द को जो चिकित्सा है वही नेत्र के शुक्लपटल गठ रोगों में करनी चाहिये । बलास और पिष्टरोगों में रक्तमोक्षण कराना चाहिये और कफाभिष्यन्द नाशक सभी उपायों को करना चाहिये । कायफर, सौंठ, मरिच और पीपल के चूर्ण, बिजौरा जीव के स्वरस और रसवत के चूर्ण को समान लेकर एकत्र मर्दन कर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ २ ॥

कफाभिष्यन्दमिसर्वं क्रम कुप्यांश्चिचरण । अञ्जन कट्फलप्योपयीजपूररसाञ्जनैः ॥

अर्जुने शर्करामस्तुषौद्रैराश्रोतन द्विसम् ॥ ३ ॥

अर्जुन रोग में शर्करा, दही का पानी और मधु को समान लेकर एकत्र कर नेत्र में छोटना चाहिये । इससे अर्जुन रोग क्षमन ( गट ) होता है ॥ ३ ॥

शङ्खः शौघ्रेण सयुक्त कतकः सैन्धवेन वा । सितयाऽर्णघषेनो वा पृथुगञ्जनमर्जुने ॥ ४ ॥

शङ्खाद्यञ्जन—शुद्ध शङ्ख का चूर्ण और मधु मिलाकर अर्ध में लगाने से अथवा निर्मली के फल के चूर्ण और सेंधानमक के चूर्ण को समान मिलाकर अर्ध में लगाने से अथवा शर्करा और सशुद्धकेन को समान मिलाकर नेत्र में लगाने से ( अञ्जन करने से ) अर्जुनरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ चर्मपदमजाः ।

उरसङ्घिनी बहलकर्दमवर्मेनी च रयाव च पच पठितं त्विह अर्धवर्त्म ।

विलुप्तं च पोथकियुतं खलु धर्मं यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥

श्लेष्मोपमाहलगण च यिस च भेषा । ग्रन्थिष्व यः कृमिहृत्तोऽञ्जननामिका च ॥ १ ॥

वत्पपद्मज रोगों की चिकित्सा—वर्त्मपद्म में होने वाले उरसङ्घिनी, बहलवर्त्म, कदमवर्त्म, दयावर्त्म, अर्धवर्त्म, विलुप्तवर्त्म, पोथकी, कुम्भीकिनी वा कुम्भीका और वत्मशर्करा नामक सभी रोग छेदन क्रिया के योग्य हैं । अर्थात् इनका छेदन करना चाहिये और कफ के कारण फूले हुए लगण रोग तथा विसवर्त्म भेष ( भेदन क्रिया के योग्य ) हैं अर्थात् इनका भेदन करना चाहिये और कृमि के कारण (कृमिकृत) ग्रन्थि तथा अञ्जननामिका रोगों को भी भेष (भेदन) क्रिया के योग्य ही जानना चाहिये अर्थात् इन्हें भी भेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

स्त्रिचर्चां भिषवा विनिष्पीडय भिष्वामञ्जननामिकाम् ।

शिलैलानतसिन्धुयैः सशौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

अञ्जननामिका चिकित्सा—'अञ्जननामिका' को पहले स्वेदन करे फिर उसका पीड़न करे अर्थात् चारों ओर से दबावे फिर पद्म पर उत्पन्न पिठिकाओं का भेदन करे । फिर भेदन की हुई अञ्जननामिका में शुद्ध मैनसिल, छोटी श्लायची, तगर और सेंधानमक को लेकर चूर्ण बनाकर

मधु के साथ मर्दन कर इससे प्रतिसारण करे अर्थात् इस क्लृप्त को भेदित अजननामिका पर अङ्गुलियों द्वारा घर्षण करे ॥ २ ॥

रसाञ्जनमधुम्यां वा भित्वा शस्त्रेण घर्मवित् । प्रतिसार्याञ्जनैर्युग्ज्यादुष्णौर्वापिश्वोन्नवैः ॥३॥  
 वरमरीचों को जानने वाला चिकित्सक अजननामिका को भेदन कर रसवत् और मधु को एकत्र मर्दन कर अङ्गुली के द्वारा प्रतिसारण (घर्षण) करे, अथवा जो प्रतिसार्याञ्जन दीपक श्री शिखा (ज्योति) पर सेंक कर बनाये गये हों उनसे प्रतिसारण करे ॥ ३ ॥

स्वेदयेद् घृष्टयाऽङ्गुलया हरेद्रक्त जलौक्या । करे सङ्घुष्य दुर्घर्ममञ्जयेत्लोचने मुहुः ॥ ४ ॥

अजननामिका को अङ्गुली से घिस कर सेक करे अर्थात् अङ्गुली विसने से जो उष्णता उत्पन्न हो उससे (उस उष्ण अङ्गुली से) अजननामिका को सेंके। बलौका (जोक) के द्वारा रक्तमोह्य करावे और पलवालक को हाथ पर घिस कर धारदार अजन करे तो इस प्रयोग को दो बार अथवा तीन बार करने से कण्डू दोष शुक्त भी अजननामिका नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

द्विभिवाराशमयति कण्डूदोषान्विताञ्जनम् । रसाञ्जनं ध्योपयुतं सपिष्टं घटकीकृतम् ॥ ५ ॥  
 कण्डूपाकान्वितं हन्ति नूगमञ्जननामिकाम् ।

रसाञ्जनादि बटी—रसवत्, सोंठ, मरिच, पीपल और पिष्टमरम (सीसा मरम) को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक बटी बनाकर अजन करे तो इससे कण्डू और पाक से युक्त अजन नामिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

रोचनाचारतुस्यानि पिप्पलयः शौद्रमेव च ॥ ६ ॥

प्रतिसारणमेकैकं मिन्ने लयण हृष्यते । निमेष भाशमायासि सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ७ ॥

गोरोचनादि योग—गोरोचन, यवाखार, शूद्र घृतिवा और पीपल इनमें से एक २ द्रव्य के चूर्ण के साथ मधु मिलाकर मिश्र अर्थात् फूटे हुए लयण पर लगाकर प्रतिसारण करने से लयण रोग और निमेष रोग भी नष्ट होता है। इन्हीं औषधियों के द्वारा विधिपूर्वक पत सिद्धकर नेत्र में पूरण करना चाहिये ॥ ६-७ ॥

स्येदयित्वा घिसप्रम्यि क्षिद्राण्यस्य निराश्रयेत् । पक्वं मित्वा तु शस्त्रेण सैघवेन प्रपूरयेत् ॥

घिसप्रम्यि चिकित्सा—प्रथम घिसप्रम्यि रोग को स्वेदन करके इसके छिद्रों को छील देवे और जो पक गये हों उन्हें शस्त्र से भेदन कर उसमें सैधानमक पीसकर पूरण करे ॥ ८ ॥

क्लिन्नवर्म—

शाखवाक्यधाः पीष्टा सुरसापत्रवारिणा । छायाशुष्का कृता घर्ति विस्त्रयत्ननिवारणी ॥१॥

क्लिन्नवर्म चिकित्सा—शूद्र हरशाल, दाहहल्दी और बज को समान भाग लेकर तुलसी के पत्ते के स्वरस के साथ पीसकर अथवा घोकर विधिपूर्वक बटी बनाकर छाया में सुखा केने इस बटी के अजन लगाने से क्लिन्नवर्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

रसाञ्जन सर्जैरसो ज्ञातोपुष्य मन शिला । समुद्रकेनो लयण गैरिक मरिचानि च ॥ २ ॥

पुत्रसमांश मधुना पिष्ट्वा प्रविस्त्रयत्ननि । अञ्जनं बलेद्रकण्डूहम पत्रमर्णा च प्ररोहणम् ॥ ३ ॥

रसाञ्जनाञ्जन—रसवत्, रात, चमेछी के फूल, शूद्र मीनांसल, समुद्रपेन, सैधानमक, गेरू और मरिच को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर अजन लगाने से प्रक्लिन्नवर्म रोग नष्ट होता है। इस अजन के लगाने से बलेद्र और कण्डू भी नष्ट होते हैं और पलकों पर के गिरे हुए बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

पिष्टम्—पित्तरलेप्समक्रोषेण घर्मान्तः सरप्रकुप्यते ।

मान्नाऽतिलोमर्षा चाऽपि विविधत् विदलमेव च ॥ १ ॥

विन्मरोग के लक्षण—विच और कफ के कोष से पदम (पदम) के भीतर का भाग जड़ कुपित हो जाता है तब इसकी अतिछीमण अथवा कष्टात्यक विस्त्र रोग करते हैं ॥ १ ॥  
 बर्मावलेक्ष्यं घृष्टसस्त्राद्युष्णितमोषणम् । पुनः पुनर्विरेकं च पिष्टोर्गाहुरो भजेत् ॥ २ ॥

विस्त्र रोग चिकित्सा—विस्त्ररोग में बर्मा या बहुत बार अजलेपन करे अर्थात् बहुत बार घुंरके और रक्तमोह्य करावे तथा रोगी को बार १ विरेचन औषधियों का सेवन करवै ॥ २ ॥  
 विह्वी स्निग्धो घमेत्पूर्वं क्रियाभ्यवसृष्टेऽमुञ्चि । गिलासाञ्जनयोपयोगोविद्यैर्विज्ञानम् ॥ ३ ॥

पित्तरोग में प्रथम रक्तमोक्षण करावे और स्नेहन देकर वमन करावे पश्चात् शुद्ध मैगसिल, रसपद, सोंठ, मरिच, पीपल और गोपित्त (गोरोचा) समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक वर्ति बनाकर अञ्जन लगावे तो इससे पित्त रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पित्तघ्नं छागामूत्रेण भावितं देवदाह च । हरितालवधादारसुरसारसपेपितम् ॥  
अभयारससम्पिष्ट तगरं पित्तनाशनम् ॥ ४ ॥

देवदाह के दक्ष्य चूर्ण को बधरी के मूत्र में भावित कर नेत्र में लगाने से पित्तरोग नष्ट होते हैं तथा शुद्ध दरताल, वच और दारुहृददी को समान भाग लेकर गुलती के पत्रों के स्वरस के साथ पीस कर अथवा पीटकर आँसू में लगाने से पित्तरोग नष्ट होता है । पय हरद के रस के साथ तगर पीसकर आँसू में लगाने से पित्तरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

वाग्रपात्रे गुहामूर्च्छं सिन्धुधूमं मरिचान्वितम् । आरनालेन सङ्घृष्टमञ्जनं पित्तनाशाम् ॥५॥

गुहा (सिन्धुपर्वा वा सरिता) की जड़, सेंधानमक और मरिच को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर ताम्र के पात्र में कौनों के साथ मर्दन कर अञ्जन करने से पित्तरोग नष्ट होता है ॥ तुल्यकस्य पल श्येतमरिचानि च विंशतिः । त्रिंशता काशिरूपलैः पिष्ट्वा तात्रे निधापयेत् ॥ पित्तनामपित्तान्शुक्ते बहुचूर्णोत्थितानपि । उत्सेकेनोपदेहेन कण्डूशोषांश्च भासयेत् ॥ ७ ॥

शुद्ध सूतिया एक पल, द्रवत मरिच संख्या में २० और कांजी तीस पल लेकर पीस कर ताम्र के पात्र में रस देवे । इस योग का अञ्जन लगाने से बहुत वर्षों के पुराना पित्तरोग भी नष्ट हो जाता है और आँख में घालने और सेप करने से नेत्र के कण्डू और शोष भी नष्ट होते हैं ॥६-७॥

पद्मरोगयोश्चिकित्सा—

रघुघृष्टि दहेत्यथम तप्तलोहशलाकया । पद्मकोषे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसम्भय ॥ १ ॥

पद्मरोग चिकित्सा—पद्मरोग में छोटे क सलाके को तपाकर नेत्र को बचाते हुए पद्म को दहन करना चाहिये इस क्रिया से लोम कमी नहीं उत्पन्न होते हैं अर्थात् लोम कूप जल जाते हैं जिससे पद्मरोग होने की सम्भावना नहीं रहती है ॥ १ ॥

प्रुष्पकासीसचूर्णं वा सुरसारसभावितम् । तात्रे दशाह तद्योज्यं पद्मशतनलेपनम् ॥ २ ॥

पुष्पकासीस का चूर्ण गुलसा के स्वरस से ताम्र के पात्र में भावित कर दस दिन तक पहा रहने देवे पश्चात् पद्मशतन (नेत्र के पलकों के बाल गिरने के) रोग में इसका सेप करे तो पद्मरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

अथ सधिताना चिकित्सांमाह—

तत्र पूयालसचिकित्सा—

पूयालसे शिरां भिरवा लेपोपनाहकममि । नेत्रपाकविधिं कुर्यात्परमुष्काञ्जनं हितम् ॥ १ ॥

पूयालस की चिकित्सा—पूयालस रोग में शिरा का भेदन कर सेप और उपनाह धर्म करना चाहिये तथा नेत्रपाक विधि में कहे हुए अञ्जन को लगाना चाहिये ॥ १ ॥

आर्द्रकस्वरसैर्घृष्टं सिन्धुकासीससमितम् । छायाशुष्कां चर्तं कुर्यात्पूयालये हितमञ्जनम् ॥२॥

सेधानमक और कासीस को समान लकर अदरक के स्वरस में बिस कर बटी बनाकर छाया में सुखाकर पूयालस रोग में अञ्जन लगाना हितकर है ॥ २ ॥

उपनाहालज्योश्चिकित्सा—

द्विधोपनाहे श्वलजे पिप्पलीमधुसैधवै । विळितेन्मण्डलाग्नेण छेदयेद्वा समतत ॥ १ ॥

उपनाह और अलजी चिकित्सा—उपनाह और अलजी रोग में पीपल मधु और सेधानमक के चूर्ण को एकत्र मर्दन कर इससे खेलन करना चाहिये अथवा चारों ओर से मण्डलाग्ने शूल से छेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

छाया —

श्रावेषु त्रिफलाकार्यं यथादोष प्रयोजयेत् । सौद्रेणाऽज्येन पिप्पल्या मिश्रं विष्येच्छिरां तथा ॥

नेत्रछाया चिकित्सा—नेत्रछाया रोग में दोषानुसार त्रिफला के साथ में मधु, गोधन और पीपल के चूर्ण का क्रम से प्रक्षेप मिलाकर पिलाना चाहिये और शिरावेध पराना चाहिये ॥ १ ॥

पप्याशुधात्रीफलमध्यथीजैस्त्रिद्वयेकमागैर्विदधीतं वर्तितम् ।

तथाजयेद्वृद्धमतिप्रवृद्धमद्योहरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ २ ॥

पथ्यादिवर्ति—हरद, बहेड़ा और आमला के बीज का गुदा क्रम से तीन, दो और एक भाग छेकर ( हरद का तीन भाग, बहेड़े का दो भाग और आवले का एक भाग छेकर ) जल के साथ पीसकर बर्ति बनाकर आँखों में अजन करने से अत्यन्त बड़े हुए सार्वों को नष्ट करता है और कष्टदायक अन्य भी नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

कार्पासीफलघ्नन्याघ्नजलैर्घृष्टं रसाञ्जनम् । मधुयुक्त चिरोत्थं च चष्टुघ्नावमपोहति ॥ ३ ॥

कार्पासादयञ्जन—कपास के फल, जामुन तथा आम के खरस में रसवत को पीसकर उसमें मधु मिलाकर अञ्जन करने से पुराना भी नेत्ररोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

पवणी—

पर्वणीपिटिकां संधिभागे क्षिप्वाद्दशपथम् । क्षितमाश्रोतन तत्र योजयेन्मधुसैधवै ॥ १ ॥

पर्वणी चिकित्सा—पर्वणी पिटिका के संधिभाग में निशक होकर छेदन करना चाहिये और मधु में संधानमक के चूर्ण की मिलाकर नेत्र में चुभाया चाहिये इससे पर्वणी रोग नष्ट होता है ॥

जतुम्रिथि—

त्रिफलाभृतकासीससैन्धवै सरसाञ्जने । रसक्रियां कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यारप्रतिसारणम् ॥ १ ॥

अन्तुम्रिथि चिकित्सा—आमला, हरद, बहेड़ा, गुरुच, कासीस और संधानमक तथा रसवत की रसक्रिया विधिपूर्वक करके ( रसक्रिया की विधि से ) कृमिग्रन्थि में लगाये और जब कृमि ग्रन्थि फूट जाये तब प्रतिसारण किया करे ॥ १ ॥

अथ समस्तनेत्रजरोगचिकित्सामाह ।

तत्र सेकविधि —

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हित । मीलित्वाप्तस्य मर्यस्य प्रवेयस्तुतुल्य ॥ १ ॥

सेकविधि—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में आँसु बन्द कराकर अमलतास के घाष के घसम धाराओं से सिंचन करना चाहिये इससे विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥

सर्वोऽपि स्नेहनो वाते रक्ते पित्तं च रोपण । सेरक्ष कफे कायस्तत्र माप्राऽधुमोक्ष्यते ॥ २ ॥

बाह के कोप वाले नेत्र रोग में सभी प्रकार के स्नेहन कर्म करना चाहिये। रक्त और पित्त के कोप वाले नेत्र रोग में रोपण कर्म करना चाहिये और कफ के कोप वाले नेत्र रोग में छेदन कर्म करना चाहिये। इस कार्य को कितने समय तक करना चाहिये इसका प्रमाण आगे कहते हैं ॥ २ ॥

पट्यावशतैः स्नेहनेषु चतुर्मिश्रैश्च रोपणे । यावशतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको ऐक्षणकमणि ॥

स्नेहन कर्म करने में ६०० संख्या गिनने में जितना समय लग उतना समय लगाना चाहिये । रोपण कर्म करने में ४०० संख्या गिनने में जितना समय लग उतना समय लगाना चाहिये और छेदन कर्म करने में ३०० संख्या गिनने में जितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये ॥

कार्यस्तु दियसे सेको रात्रौ वाऽऽप्यपिके गये ॥ ३ ॥

सेक कर्म दिन में ही करना चाहिये किन्तु रोग की बक्ष्या के अनुसार ( रोग की वृद्धि जब भाव्यधिक हो गयी हो तब ) रात्रि में भी लिया जा सकता है ॥ ३ ॥

आश्रोतनविधि—

अथशाश्रोतनकार्यं निशायां न कथयन् । उन्मीलितेऽपिण्डे हृत्स्य विन्दुमिच्छं हृत्पादितम् ॥

आश्रोतन विधि—आश्रोतन कर्म रात्रि में कभी नहीं करना चाहिये। आश्रोतन करने के लिये आँसु की खोठकर दृष्टि के बीच में नेत्र से दो अङ्गुल ऊपर की छेपाई से ओषधि टाहनी चाहिये ॥ १ ॥

विन्द्वोऽष्टौ छेदनेषु स्नेहने ददा विद्वत् । रोपणे द्वादश प्रोक्षास्ते शीते कोष्पकपिण्डः ॥ १ ॥

आश्रोतन के ओषधियों की मात्रा—छेदन करने वाली ओषधियों का आठ बूँद, स्नेहन करने वाली ओषधियों की दस बूँद और रोपण करने वाली ओषधियों की बारह बूँद नेत्र में टाहना चाहिये और शीतल ऋतु में दल ( आश्रोतन की ) ओषधियों को किञ्चित् छप्य करके आँसु में टाहना चाहिये ॥ २ ॥

उष्णे च क्षीतरूपाः स्युः सर्वप्रैवैव निक्षया । घाते तिक्तं तथा स्निग्धं विस्ते मधुरक्षीतलम् ॥  
तिक्तोष्णरूपं च कफे क्रमादाश्रोतन हितम् । आश्रोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वापशतोन्मिता ॥

उष्ण शब्द में आश्चोतन की ओषधियों को शीतल करके खालना चाहिये । यह शीत उष्ण की क्रिया सब स्थानों के लिये समझनी चाहिये । वातज नेत्र रोग में तिक्त तथा स्निग्ध ओषधियों का आश्चोतन करना चाहिये । पिपत्र नत्र रोग में मधुर तथा शीतल ओषधियों का आश्चोतन करना चाहिये और कफज नेत्र रोग में तिक्त उष्ण तथा रुच्य ओषधियों का आश्चोतन करना चाहिये । यही क्रम आश्चोतन में लाभ दायक होता है । सभी प्रकार के आश्चोतनों में एक सौ तक गिनने में जितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये ॥ १-४ ॥

निमेषोन्मेषण पुसामहुवयोद्वोटिकाऽथ वा । गुर्वसरोत्थारणं वा वाह्मात्रेयं स्मृता युधैः ॥५॥

वाक् अथवा सख्या की मात्रा का प्रमाण—मनुष्य मितने समय में भौंल खोले और बन्द करे उतने समय का अथवा दो अंगुलियों से एक बार झुटकी बजाने के समय का अथवा गुरु ( दीर्घ ) अक्षर के उच्चारण में जितना समय लग उतने समय की वाक् की मात्रा विद्वानों ने कही है । ( इसी के अनुसार सौ तक, अथवा छे सौ, चार सौ, दो सौ आदि ऊपर कही हुई मात्रा वाक् गणना माननी चाहिये । आधुनिक एक सेकण्ड की भी मात्रा उतनी ही होती है ॥ ५ ॥

#### पिण्डिकाविधि —

पिण्डी क्वलिका प्रोक्ता घट्यते पल्लपट्टकैः । नेत्राभिम्यन्दयोग्या सा मणेष्वपि निराघते ॥१॥

पिण्डिका की विधि—पिण्डी का नाम क्वलिका भी है । यह बल के पट्टियों पर बांधा जाता है ( यथा काल योग्य लिखित ओषधियों को कपड़े के टुकड़ों पर लपेट कर पीटली बना कर नेत्रादि के रोगों पर फेरा जाता है ) और नेत्राभिम्यन्द रोग में उसके अनुकूल ओषधियों से युक्त कर तथा मणों में भी उसके अनुकूल ओषधियों से युक्त कर पीटली बनाकर नेत्र तथा मणों पर फेरा जाता है ॥ १ ॥

#### विडालकविधि—

विडालको यहिल्लेपो नेत्रे पश्मधिवर्जिते । तस्य मात्रा परिशिया मुखलेपविधानचत् ॥ १ ॥

विडालक की विधि—जो लेप नेत्रों के बाहर ( पलकों पर ) नेत्र पश्म ( पलकों के बालों ) को छोड़ कर लगाया जाता है उसे विडालक कहते हैं । उसकी मात्रा मुख लेप विधि की मात्रा के समान ( मुख पर लगाने वाले लेपों के समान ) जानना चाहिये ॥ १ ॥

#### तर्पणविधि —

अथ तर्पणकं यस्मिन्नेत्ररुसिकरं परम् । यश्चक्षुः परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ १ ॥

शीघ्रं पश्मशिरोत्पातकृच्छ्रान्मीलनसयुतम् । तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिम्यन्दाधिमन्यकैः ॥ २ ॥  
शुष्काधिपाकशोथान्यां युतं वातविपर्ययैः । तद्यत्र तपणे योज्यं नेत्ररोगविशारदैः ॥ ३ ॥

तर्पण विधि—नेत्रों को अत्यन्त सूख करने वाले तर्पण विधि को अंक कहते हैं—जो नेत्र शुष्क हो, कुटिल ( टेढ़ ) तथा अविल ( मलिन ) हो, शीर्णपश्म अर्थात् जिसमें पलकों के बाल गिर गये हों उस रोग में शिरोत्पात में, कृच्छ्रो मीलन अर्थात् कष्ट से जिसमें नेत्र सूखे और बन्द किये जाते हों उस रोग में तथा तिमिर, अर्जुन, नेत्र शुक्रादि रोगों में, अभिम्यन्द रोग में अधिमन्य में, शुष्काधिपाक, शोथयुक्त अथवा अशोथ युक्त नेत्र पाक रोग में और वातविपर्यय रोग युक्त नेत्रों में, तर्पण क्रिया ( चिकित्सा ) करनी चाहिये ॥ १-३ ॥

दुर्दिनारयुष्णाशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च । अशान्तोपद्रवे चाङ्गि तपणं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥

तपण के अयोग्य काल—दुर्दिन में ( भयवातादि सं युक्त दिन में ), अत्यन्त उष्ण दिन में और अत्यन्त शीत दिन में तथा चिन्तायुक्त अवस्था में, आयास ( यात ) अवस्था में और भ्रम की अवस्था में एवं मासों के रोगों के उपद्रवों के शान्त नहीं रहने में तर्पण नहीं करना उचित है ॥४॥  
घातातपरजोहीने वैशे चोत्तानदायिनः । आघारौ भापचूर्णेन विलन्नेन परिमण्डली ॥ ५ ॥  
समी द्वायसयाधौ कृतव्यौ नेत्रकोशयो । पूरयेद् घृतमण्येन विलीनेन सुसोदकैः ॥ ६ ॥

तर्पण करने की विधि—बायु, घृष और घूल आदि से रहित स्थान में रोगी उत्तान ( ऊपर मुँह करके ) झुटा कर उहद के घूर्ण को जल के साथ मर्दन कर नेत्र मण्डल के आधार भूत



अस्थियों के चारों ओर से लगा देवे ( जिससे तर्पण करने पर औषध श्वर चकर गिर न सके )  
वे पिन्डी के घेरे ( दोनों ) ऊपर से समान हों और नीचे से दृढ़ हों जिससे द्रव का स्थाय न हो  
सके ( क्षिप्ररहित हों ) । पश्चात् नेत्र के वस घेरे को प्रथम तरल घृत से पूर्ण कर जब घृत बसी में  
विलीन हो जावे तब उसको सुक्षोष्ण जल से पूर्ण कर देवे ॥ ५-६ ॥

अथ वा शतधौतेन सर्पिणा चीरजेन वा । निमज्जनयश्चिपद्मणि धावता सायदेव हि ॥ ७ ॥  
पूरयेन्मीलिते नेत्रे सप्त उन्मीलयेच्छुनै । धारयेद्दर्मरोगेषु वाक्स्माग्राणां शतं शुभः ॥ ८ ॥

अथवा सौ बार ( जल से ) धोया हुआ घृत वा दूध से निकला मक्खन को लेकर बर्षों तक  
भर देवे जहा तक अक्षिपद्म ( नेत्र के बाल ) हूब जावे और इस पूरण के समय नेत्र को बन्द  
रखे, पश्चात् धीरे २ नेत्रों को खोल देवे । इस पूरक औषध को वर्त्म रोगों में १०० तक की संख्या  
गिनने में जितना समय लगे उतने समय तक दुद्धिमान् वैष की धारण कराना चाहिये ॥ ७-८ ॥  
स्वच्छे कफे सधिरोगे भ्रात्रापक्षशतं हितम् । शुक्ले च पट्टशतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥ ९ ॥

सिंधिरोगों में कफ के स्वच्छ हो जाने पर ( हट जाने पर ) ५०० तक की संख्या कहने में  
जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये । शुक्ल पटल गत रोगों में ६०० तक  
की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये । कृष्ण पटल गत  
रोगों में ७०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये ॥  
दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमन्ये सहस्रकम् । सप्तशतं वातरोगेषु धार्यमेव हि तर्पणम् ॥ १० ॥

दृष्टि रोगों में ८०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण  
करना चाहिये, अभिमन्य रोग में १००० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय  
तक धारण करना चाहिये और वात रोगों में भी १००० तक की संख्या कहने में जितना समय  
लगे उतने समय तक तर्पण की औषधि धारण करनी चाहिये ॥ १० ॥

शुक्राह वा म्यह वाऽपि पश्चाद् धेप्यते परम् । तर्पणात्सिल्लिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥

एक दिन अथवा सोन दिन अथवा अधिक से अधिक पाँच दिन तक तर्पण करना चाहिये ।  
तर्पण करने से तप्त हुए नेत्र के ये लक्षण ( भाग ) बड़े आते हैं ॥ ११ ॥

सुखस्वप्नावधोघ्राय वैदार्यं वर्णपाटवम् । निवृत्तिर्ग्याधिशातित्त्व क्रियालाघवमेव च ॥ १२ ॥

तप्त नेत्र के लक्षण—उपण के पश्चात् जब सुखपूर्वक निद्रा आवे, सुखपूर्वक आरण हो,  
आँख विशद हों ( स्पष्ट हों ), नेत्र की वर्ण में पट्टा हो ( वर्ण उजम हो जावे ) म्याधि के निवृत्त  
हो जाने से शान्ति मालूम हो और नेत्र की क्रिया में सुगुदा ( नेत्र के कार्य में रफूति ) मालूम  
हो तब तर्पण से नेत्र तप्त हो गये हैं अर्थात् मलीर्माँति तर्पण हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ ११ ॥  
अथ साश्रु गुरु स्निग्ध नेत्र स्यादतिवर्षितम् । रूपमन्नायितं रूप नेत्रं स्यादीनतर्षितम् ॥

रूचस्निग्धोपचारान्ग्रामेतयो स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १३ ॥

अतिवर्षणादि के लक्षण—तर्पण के पश्चात् नेत्र यदि भौंसुओं से युक्त हों, शुभ हों और  
स्निग्ध हों तो तर्पण मात्रा अति हुई है यह जानना चाहिये और तर्पण के पश्चात् यदि नेत्र  
रूख हों, मलिन या अल्पयुक्त हों एवं अत्यन्त रूख हों तो तर्पण की मात्रा हीन हुई है यह जानना  
चाहिये । अति तर्पण में रूख उपचारों द्वारा और हीन तर्पण में स्निग्ध उपचारों द्वारा चिकित्सा  
करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अभिष्यन्दविहितसामाह—येषु वातिकामिष्यन्दविहितम्—

पूरण्टारवकपत्रमूलेः शृतमात्रं पयो हितम् । सुगोष्ण सेचन नेत्रे वातामिष्यन्दासनम् ॥

सेक विधि—पूरण्ट की रचना, पत्र और अड़ की बकरी के दूध के साथ पका कर कुछ समय  
रहने नेत्रों पर सिंचन करने से वातत्र अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

परिपेके हितं नेत्रे पयः कोष्ण ससैन्धवम् । रजनीदारसिद्ध वा मैग्धेन ममन्वितम् ॥

वातामिष्यन्दशमनं हितं मास्तपर्षये ॥ २ ॥

बकरी के दूध को सिद्धिद सभ्य करके इसमें संभानक का कूर्ण मिठाकर नेत्रों में सिंचन  
करने से अथवा दारहल्दी से सिद्ध दिये बकरी के दूध में संभानक का कूर्ण मिठाकर नेत्र में  
सिंचन करने से वातत्र अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथाऽऽश्रोतनम्—

विश्ववादिपञ्चमूलेन घृह्येरेण्डशिग्रुभिः । कायश्वाऽऽश्रोतन कोष्पो घाताभिष्यन्द्नाशन ॥१॥

आश्चोतन विधि—त्रिस्वादि पञ्चमूल (बेल, गमार, गनियार, सोनापाठा और पादर को छाल), बड़ी कटेरी, परण्ड मूल और सद्दिजन की छाल को समान भाग लेकर काय की विधि से सिद्ध पर घृत्तोष्ण रससे ही नेत्रों में सिंचन करने से वाताभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

क्षम्युपिष्टैर्निग्यपथैस्त्यथ ह्येभ्यस्व वेपयेत् । प्रताप्य यद्दिना पिष्ट्वा सद्दसो नेत्रप्रणवात् ॥

घातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्द् विनाशयेत् ॥ २ ॥

नीम के पत्ते और लोथ को छाल को जल के साथ पीसकर आग पर गरम करे पुन पीसकर निचोड़ कर औलों में डालने से वातज अभिष्यन्द नष्ट होने हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—घाताभिष्यन्ददानस्यार्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत् ।

एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता घातनाशिनी ॥ ३ ॥

पिण्डक विधि—वाताभिष्यन्द की शान्ति के लिये स्निग्ध तथा उष्ण पिण्डिका बनाकर व्यवहार करना चाहिये । एरण्ड के पत्ते, मूल और त्वचा को लेकर कूटपोस कर विधिपूर्वक पिण्टी बना कर स्निग्ध तथा उष्ण कर (घृत मिलाकर उष्ण कर) नेत्रों पर फेरने से लाभ होता है ॥ २ ॥

अञ्जनम्—

हरिद्रा मधुक पथ्या देवदारु च पेपयेत् । आज्ञेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्द् सद्दञ्जनम् ॥ १ ॥

अञ्जन—इलहरी, मुलहठी, हरद और देवदारु एक साथ घोटकर विधियत् अञ्जन बनाकर नेत्रों में अञ्जन करने से अभिष्यन्द रोग में उत्तम लाभ करता है ॥ १ ॥

पित्ताभिष्यन्दचिकित्सा, सेक —

च द्वात्रिंशत्पत्राणि यष्टीदार्या ससैन्धवै । पिष्ट्वाऽम्भसा भवेत्सेकः पित्ते चौद्रसमन्वितः ॥१॥

सेक विधि—रक्तचन्दन, नीम के पत्ते, जेठीमधु, दारुइलहरी और संधानमक को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर मधु मिलाकर नेत्रों पर सिंचन करने से पित्ताभिष्यन्द नष्ट होता है ॥

आश्रोतनम्—

निग्यस्य पत्रैः परिलिप्य लोभ्रं स्वेदोऽग्निना चूर्णमयापि कणकम् ।

आश्रोततं मानुषदुग्धमिध पित्तात्तथातापहमभ्यमुक्तम् ॥ १ ॥

आश्चोतन—नीम के पत्तों को पीसकर लोथ पर लेप कर अग्नि पर स्वेदित कर रस निकाल कर बख में छानकर नेत्र में जुमाने से अथवा इन उपरोक्त औषधियों का विधियत् चूर्ण बनाकर अथवा कस्क बनाकर लोथ के दूध में मिलाकर बख में छानकर नेत्र में जुमाने से पित्तज, रक्तज और वातज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षामधुकमजिष्ठाजीवनीयै शृतं पयः । प्रातराश्रोतन पथ्य दाहशूलाक्षिरोगमित् ॥ २ ॥

द्राक्षा, मुलहठी, मजीठ और जीवनीय गण की औषधियों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक दूध में पकाकर छान कर उक्त दूध को प्रातःकाल आँसु में जुमाना लाभदायक है । इससे नेत्र के दाह, शूल और राग अर्थात् लाकिया आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—पित्ताभिष्यन्दनाशाय घात्रीपिण्डी सुखावहा ।

महाभिग्बदलोद्भूता पिण्डिका पित्तनाशिनी ॥ १ ॥

पिण्डिका प्रयोग—पित्ताभिष्यन्द रोग में आँवले की विधिपूर्वक पिण्डिका बनाकर नेत्र पर फेरना हितकर है और महाभिग् (वकायन) के पत्तों की विधि पूर्वक बनाई हुई पिण्डिका नेत्रों पर फेरने से पित्त को नष्ट करती है ॥ २ ॥

विट्ठालक —

पैत्तिके चन्दनानन्तामजिष्ठाभिर्बिडालक । कार्यः सपक्षयष्टथाह्नमांसीकालीयकैस्तथा ॥ १ ॥

विट्ठालक प्रयोग—पित्ताभिष्यन्द रोग में ठाठचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ से तथा कमल, जेठी मधु जटामांसी तथा दारुइलहरी से विट्ठालक प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

च द्दने मधुक लोभ्रं जातीपुष्पाणि गैरिकम् । प्रलेपो दाह्रोग्नस्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ २ ॥

छालचन्दन, मुलहठी, छोप, चमेली के फूल और गेरू को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर लेप करे तो दाह्ररोग नष्ट होता है और सोठ (सर्ई जुमाने के समान पीड़ा) तथा अभिष्यन्द को नष्ट करता है ॥ २ ॥

श्लेष्मिकाभिष्यन्दचिकित्साभाह—

कफजे लङ्घन स्वेदो नस्य तिक्कादिभोजनम् । सीधगै प्रथमन कुर्वासीष्णैरेवोपनाहनम् ॥  
रुचतीघगविरिकैश्च मल सम्यग्विवर्हिरेत् ॥ १ ॥

कफम अभिष्यन्द चिकित्सा—कफज अभिष्यन्द में लङ्घन नस्य कर्म तिक्करस युक्त भोजन, और तीक्ष्ण ओषधियों से प्रथमन नस्य देना चाहिये तथा तीक्ष्ण ओषधियों द्वारा उपनाह करना चाहिये एवं रुच्य तथा तीक्ष्ण विरेचक ओषधियों से विरेचन देकर मल को मलीमांति बाहर निकाल देना चाहिये ॥ १ ॥

सेक —

निग्मारकपत्रसंपक लोभ्र मागचतुष्टयम् । धूप सर्पिपयोमार्गै कफे सेक सुखाम्बुना ॥ १ ॥

सेक प्रयोग—नीम तथा मगर के पत्तों द्वारा आविष्टित कर पकाया हुआ लोभ्र (पुटपक लोभ्र) चार भाग घृत एक भाग और दूध (बकरी का) एक भाग एकत्र मिलाकर थोड़े वन्य जल में मिलाकर सेक करने से अथवा इन ओषधियों का धूप देने से कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥१॥  
आश्वातनम्—ससै घव्य लोभ्रमयाऽऽज्यमृष्टं सौवीरविष्ट सितवस्त्रयद्रम् ।

आश्वातन तद्ययनस्य कुर्वासेकण्डं च दाह च रुच्य च हन्यात् ॥ १ ॥

आश्वातन प्रयोग—सैधानमक के सहित लोभ्र को घन के साथ भूज देके पश्चात् सौवीर (कांजी) के साथ उसे पीस कर द्रवैत वज्र में रख कर नेत्रों में आश्वातन करे इससे नेत्र के कण्डू दाह तथा पीड़ा आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

विण्डिका —शिप्रपत्रकृता विण्डी श्लेष्माभिष्यन्वहारिणी ।

शुण्ठीनिग्मदलैः पिण्डी सुवोष्णा स्वल्पसैध्या ॥

घार्या चद्रुपि संयोगाच्छ्लोथकण्डूम्ययाह्वरा ॥ १ ॥

पण्डिका प्रयोग—सहिबन के पत्तों को पीस कर विधिपूर्वक विण्डी बनाकर नेत्रों पर धारण करने से (केरने से) कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है और सोठ, नीम के पत्रों और सैधानमक की विधिपूर्वक बनाई हुई विण्डी थोड़ा सा उष्ण (सुवोष्ण) करके नेत्रों पर धारण करने या केरने से नेत्र के शोथ, कण्डू और म्यथा (पीड़ा) नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

विहालक —

रसाङ्गनेम या लेपः पथ्याविषदुर्लैरपि । पचाहरिद्राविरिचैर्वा तथा नागारौरिकैः ॥ १ ॥

विहालक प्रयोग—रसवत् को पीस कर नेत्रों पर लेप करे अथवा दाह और आद्रक के पत्तों को वा सोंठ और तेजपात को पीस कर लेप करे अथवा बज, दहरी और सोंठ को पीस कर लेप करे अथवा सोंठ और गेरू को पीस कर लेप करे तो कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

स्वदनम्—फण्डिकास्फोतकपिष्यविषक्वपारमङ्गाङ्गप्रयोगैः ।

भ्यर्द्दं विदुष्याद्य वा प्रलेप सतोभ्रशुण्ठीसुरदाकुट्टैः ॥ १ ॥

स्वेदन प्रयोग—फण्डिक (गन्ध शुण्ठी) मपतांबला, सैय, बल पुरा, मांग और भर्जुन के पत्तों को एकत्र कर इनक स्वेद द्रो से अथवा कोप, सोंठ, देबदार और दूध को समान भाग लेकर पीस कर नेत्रों पर लेप करने से कफाभिष्यन्द नष्ट होगा है ॥ २ ॥

सामान्योपचार—

यश्कल पारिमातरप तैल्यै-पवकानिकम् । कफत्राविज्जशूलर्ध्नं सदर्शनं कुलितं पथा ॥ १ ॥

सामान्य उपचार—पारिमाण दूध की छाल सेक, सैधानमक और कांजी को एकत्र कांजी से पीस कर उसमें तेल और सैधानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्र पर लगाने से कण्डू नेत्र रुक रुक प्रकार नष्ट होता है त्रिम प्रकार बज या बिजली से दूध नष्ट होता है ॥ २ ॥

सौवीरं सैन्धव तैलं मूर्धामूल तथैव च । कांस्थपात्रे विदुष्टं स्यादक्योः शूलनिवारणम् ॥११॥

सौवीर, कांजी, सैधानमक, तैल और मूर्धों को मूठ को कांसे ५ पात्र में पिंस कर नेत्र में लगाने से नेत्र का दण्ड नष्ट होगा है ॥ २ ॥

सलवणपटुतैल काञ्जिकं कांस्यपात्रे निहितमुपलघृष्ट धूपितं गोमयाप्तौ ।

सपवनकफकोप छागदुग्धावसिक्त जयति नयाशूलं छाद्यशोधं सरागम् ॥ ३ ॥

सैषानमक, पद्मवा तेल और काजी की कांसे के पात्र में रखकर पत्थर से घिस कर गोबर के कड़े की अग्नि पर तपाकर इसका धूआ देने से नेत्रों के घात-कफ प्रकोप नष्ट होता है और इस उपरोक्त योग को बकरी के दूध में मिलाकर नेत्रों पर सिंचन करने से नेत्रशूल, छाव, शोध और नेत्र की छापी आदि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

स्यन्दाधिमन्थे क्रममाचरेण सर्वेषु चैतेषु सदा प्रशस्तम् ॥ ४ ॥

अभिष्यन्द रोग और अधिमन्थ रोग में ये सभी पूर्व कथित उपचार क्रम से यथा अवसर करना चाहिये । अन्य नेत्र रोगों में भी पूर्वोक्त क्रम से ही चिकित्सा प्रशस्त है ॥ ४ ॥

रक्तजाभिष्यन्दचिकित्सामाह, सेक—

त्रिकलालोभ्रपटीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः । पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्षामिष्यन्दनाशन ॥१॥

रक्षामिष्यन्द में सेक—हरद, बहेड़ा, आंवला, छोध, जेठीमधु, शर्करा और नागरमोथा को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीस कर नेत्र में सिंचन करने से रक्षामिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

आश्वोतनम्—

स्त्रीस्तन्याश्वोतन नेत्रे रक्षपित्तानिलातिजित् । धीरसपिघृत घाऽपि रक्षपित्तहृज जयेत् ॥ १ ॥

आश्वोतन—स्त्री के दूध का नेत्र में आश्वोतन करने से रक्त, पित्त और वात से उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं और दूध तथा घी मिलाकर नेत्र में लगाने से अथवा घी को ही केवल नेत्र में लगाने से रक्त और पित्त स उपपन्न नेत्र के रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

छोध्रचूर्णं घृते घृष्ट रुजमाश्वोतनैर्हरैत् । शर्करात्रिफलाचूर्णमिधमाश्वोतनं परम् ॥ २ ॥

छोध के चूर्ण को घृत के साथ मदन कर नेत्र में आश्वोतन करने से नेत्र की पीड़ा नष्ट होती है और शर्करा तथा समान मिलित त्रिकला के चूर्ण को जल में मर्दित कर नेत्र में आश्वोतन करना नेत्र के लिये अत्यन्त लाभदायक है ॥ २ ॥

अञ्जनम्—

श्रीपर्णीपाटलाघात्रीघातकीतिक्वकार्शुनात् । पुष्पाप्यथ वृहत्याश्च विन्दी छोध च तुल्यथा ॥ मज्जिष्ठं चापि मधुना पिष्ट्वाऽपीशुरसेन वा । रुधिरस्यन्दशागर्यथमेतदञ्जनमिष्यते ॥ २ ॥

अञ्जन—गन्धार, पाहर, आंवला, घाय के फूल, छोध, अर्जुन की छाल बड़ी कटेरी का फूल, विन्दी फल छोध और मज्जीठ को समान भाग लेकर चूर्ण कर मधु अथवा ईस के स्वरस में मिला कर नेत्र में अञ्जन लगाने से रक्तजाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

वासात्क्रियम्—

भाटरूपामयानिग्यधात्रीमुस्तकमूलकैः । रसास्त्रायं कफ हन्ति चष्टुष्यं वासकादिकम् ॥ १ ॥

वासादि काथ—अरुसा, हरद, नीम की छाल, आंवला और नागरमोथा की छद को समान भाग लेकर काथ की विधि से काथ बनाकर पान करने से तथा नेत्र में आश्वोतन करने से रक्तछाव तथा कफदोष नष्ट होता है । नेत्रों के लिये यह अधिक हितकर है ॥ १ ॥

अधिमन्थान्यतोषातयोद्दिचिकित्सा—

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे व्यधयेच्छिद्राम् । अशान्ते सर्वथा मन्थे भ्रवोरुपरि दाहयेत् ॥ १ ॥

अधिमन्थादि चिकित्सा—सभी प्रकार के अधिमन्थ रोग में ललाट पर की शिरा का वेध छेदन करना चाहिये और यदि अधिमन्थ रोग किसी प्रकार द्रान्त नहीं हो तो भ्रूमाग के ऊपर दाह करना ( अलाना या दागदेना ) चाहिये ॥ १ ॥

अभिष्यन्देषु याः प्रोक्ताश्चतुर्विधं प्रतिक्रिया । ता सर्वा अधिमन्थेषु प्रयोज्याश्च भिषग्वरैः ॥

चारो प्रकार के अभिष्यन्दों में कही हुई चिकित्सा जो है वह सभी वेध अधिमन्थ रोगों में व्यवहृत अरे अर्थात् चारो अभिष्यन्द की सभी चिकित्सा चारो अधिमन्थ में लाभ करती है—वही करनी चाहिये ॥ २ ॥

सर्वं पृथ विधिः सर्वमन्याद्विष्वपि चेष्यते । तथा चाप्यन्यतो घाते सामान्यो वक्ष्यते विधिः ॥

सब प्रकार की चिकित्सा ( भविष्यन्दी के समान ही ) सब प्रकार के भविष्यन्दी में भी कर चुके हैं और अन्यतो बात में भी सामान्य विधि कहते हैं ॥ ३ ॥

यहाँ गुडूची त्रिफला सदाश्रीमध्यामये सर्वभवे पियेदा ।

आश्रोतनं सान्द्ररसेन दाप्यां रास्त सदा चौद्रयुतं नराणाम् ॥ ४ ॥

यद्यथादि काय—जेठीमधु, गुरुच, हरद, बहेडा, आंवला और दाहइली की समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय कर सब प्रकार के नेत्र रोगों में पिछाना चाहिये और दाहइली के तेदे स्वरस में मधु मिलाकर नेत्र में निरन्तर आश्रोतन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों में लाभ होता है ॥ ४ ॥

गुडूचीत्रिफलाकायो मधुना सह योजित । पीतः सर्वाक्षिरोगान् कृष्णाचूर्णायचूर्णित ॥ ५ ॥

गुडूची त्रिफलादि काय—गुरुच, हरद, बहेडा और आंवला की समान भाग लेकर विधि पूर्वक काय कर उसमें मधु और पीपल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार का नेत्र रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

प्रपौण्डरीकयष्टवाह्वदार्वालोभ्रं सचन्दनैः । परण्डाम्बुयुतै सेक सर्वनेत्रप्रज्ञापह ॥ ६ ॥

सेक विधि—पुण्डरीक, जेठीमधु, दाहइली, लोप, लालचन्दन, परण्डमूल और सुगन्धवाला की समान भाग लेकर काय की विधि से काय कर नेत्रों पर सिञ्चन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

श्वेतलोभ्रं घृते शृष्ट चूर्णितं ताप्यसुखकम् । कृष्णाम्बुना विमृदित सेक शूलहरः परः ॥ ७ ॥

श्वेत घृत मूला हुआ लोप शुद्ध स्वर्णमासिक और शुद्ध तृटिया के चूर्ण प्रत्येक समान भाग की पीपल के स्वरस अथवा काय के साथ मलीमोत्रि मर्दन कर नेत्रों पर सिञ्चन करने से नेत्ररोग में परम लाभदायक होता है ॥ ७ ॥

यष्टीगैरिकसिन्धूरदार्वातादयं समांशकैः । जलपिष्टैरहितैः सर्वनेत्रप्रज्ञापह ॥ ८ ॥

यद्यथादि छप—जेठीमधु, गेरू, सेंपानमक, दाहइली और रसवज की समान भाग लेकर बल के साथ पीस कर नय के बाहर बाहर छेप करने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

द्रग्वा ससैन्धव लोभ्र मधूच्छिद्युते घृते । पिष्टमश्नलेपाम्नां सद्यो नेत्रप्रज्ञापहम् ॥ ९ ॥

सेपन लोभ्रादि छेपासन—सेपानमक के सहित लोप की मोम भस युक्त गोष्ठ में बना देये, पक्षाय वसे पीसकर नेत्रों पर छेप और मज्जन करने से नेत्र के सभी रोग भी नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

खोहस्य पात्रे सपृष्टो रसो निम्बुफलोद्भवः । किञ्चिद्धनो बहिर्लेपान्नेत्रप्रज्ञापि ध्यपोष्टि ॥ १० ॥

निम्बुरस योग—लोहे के पात्र में नीबू के रस को पिस, अब पिसते २ कुण्ड गाड़ा हो जावे तब वसे नेत्र के बाहर २ छेप करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

निम्बस्य श्वेतुम्बरयष्टकलस्य परण्डयष्टीमधुचन्दनस्य ।

पिण्डो विधेया मयनप्रकोपे कफेन पिप्पेन समीरणेन ॥ ११ ॥

निम्बादि पिण्ड—नीम की छाल गुलर की छाल, परण्डमूल, जेठीमधु और लालचन्दन की समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक पिण्डो बनाकर नेत्र रोगों में प्रयोग करने से बरब, पिप्पन और वाठम नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

शोषपाकधोचिकित्सा—

जलौकापातमं श्रेष्ठ नेत्रपाके विरेचनम् । शिराम्बघ या कुर्वति मेकलेपो च दृक्कणम् ॥ १२ ॥

नेत्र के शोष और पाक चिकित्सा—नेत्र पाक रोग में जोड़ दवाबाना, नेत्र विरेचन देना, शिराम्बघ करना, मिञ्चन करना और छेप आदि करना से सभी कर्म ( चिकित्सा ) नेत्र दृक् ( फूला ) रोग के भांति ही करना चाहिये ॥ १२ ॥

विमीतकशिवाभार्प्रपटोलारिष्टवासकैः । छायो शुग्गुलुमंयुक्तं श्लेथयुल्लक्षिरोगमुत् ॥ १३ ॥

बहेडा, हरद, आंवला, पटीरूपन, नीम रू पत्र और भस्मा की समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय बनाकर उसमें शुद्ध शुग्गुलु का प्रक्षेप देकर पान करने से शोष शुद्ध शुद्ध नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

वातविपर्ययशुष्काक्षिपाकयोश्चिकित्सा—

घाताभिप्यन्द्यद्यात्र वातमारुतपर्यये । अनेनैव विधानेन निपक्वैवामिसाधयेत् ॥ १ ॥

वातविपर्यय और शुष्काक्षिपाक चिकित्सा—घाताभिप्यन्द रोग के भाति ही वातज नेत्र रोग तथा वात विपर्यय रोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

पूर्व चय्न हित सर्पिः क्षीर घाऽप्यय भोजनम् । परियेको हित नेत्रे पयः कोष्ण ससैन्यवम् ॥

पहले इस वात विपर्यय रोग में घृत अथवा दूध का भोजन करावे पश्चात् दूध को कुछ सज्ज कर उसमें सेंधानमक घोलकर नेत्रों पर सिञ्चन करे इससे वात विपर्यय में लाभ होता है ॥ २ ॥

रजनीदारुसिद्ध वा सैन्धवेन समन्वितम् । घाताभिप्यन्द्यशामनं हित मारुतपर्यये ॥ ३ ॥

शुष्काक्षिपाके च सदा हृद् सेचनक हितम् ।

अथवा हल्दी और दारुहल्दी मिलाकर पकाये हुए दूध में सेंधानमक मिलाकर नेत्रों पर सिञ्चन करने से घाताभिप्यन्द नष्ट होता है और वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक रोग में भी इस योग के सिञ्चन से सदा लाभ होता है ॥ ३ ॥

सैन्धव दारु शृण्ठी च मातुलुङ्गरसे घृतम् ॥ ४ ॥

स्तन्योदकाधं कुर्वति शुष्कपाके सवृञ्जनम् । शुष्काक्षिपाके हृषिपः पानमण्डोश्च सर्पणम् ॥

घृतेन जीघनीयेन अस्य तैलेन योजयेत् ॥ ५ ॥

सेधानमक, देवदारु और सोंठ का समान मिलित कल्क और कल्क के चौथुना बिजौरे नीम्ब का रस और गोघृत लेवे और घृत से चौथुना खी का दूध और जल मिलाकर लेवे और इन सब द्रव्यों से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर अजन करने से शुष्काक्षिपाक रोग में लाभ होता है । शुष्काक्षिपाक रोग में घृत पान करना तथा जीवनीय गण की औषधियों से सिद्ध घृत से नेत्रों में तपण करना एवं औषध सिद्ध तैल का नस्य लेना लाभदायक होता है ॥ ४-५ ॥

अम्लाप्युषितमाह—

तिक्तस्य सर्पिषः पान बहुशश्च विरेचनम् । अम्लाप्युषितशास्त्रपर्ये कुर्यात्पान्मुशीतलान् ॥

अम्लाप्युषित चिकित्सा—तिक्त द्रव्यों के योग से सिद्ध घृत को पान करने से और अनेक बार या बार २ नेत्र विरेचन देने से तथा बनाये हुए शीतल छेपों के लगाने से अम्लाप्युषित रोग शान्त होता है ॥ २ ॥

यिद्वक्त्रिफलां सर्पिर्जर्णं वा केवल पिथेत् । शिराम्यघ विना कार्यं पिचस्वन्दहरो विधि ॥

बेल, बरह, बहेड़ा और आमला के योग से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर अथवा केवल पुराना घृत ही पिलाने से और शिराम्यघ के अतिरिक्त शेष सभी चिकित्सा पित्ताभिप्यन्द की भाति ही अम्लाप्युषित रोग में करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

शिरोत्पातशिरार्हर्षयोश्चिकित्सा—

शिरोत्पात शिरार्हर्षमन्यांश्चास्त्रमायान्दान् । स्निग्धस्य कोष्णोनाऽऽप्येन शिरायेधै शाम नयेत् ॥

शिरोत्पात और शिरार्हर्ष तथा अन्य रक्तज रोगों में कुछ २ ङ्घण किया घृत पिलाकर रोगी को स्निग्ध कर शिरावेध करके रोग को शमन करे अर्थात् इन रोगों में स्नेहन कर शिराम्यघ करने से रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जन स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् । तद्द्वस्तैन्धवकासीसस्तन्यपिष्ट च पूजितम् ॥

घृत और मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से शिरोत्पात रोग नष्ट होता है । इसी प्रकार सेंधानमक और कासीस दोनों को समान लेकर खी के दूध से विधिवत् पीसकर अञ्जन करने से शिरोत्पात रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिरार्हर्षेऽञ्जन कार्यं फाणित मधुसयुतम् । मधुना तार्क्ष्यौल च कासीस वा समादिकम् ॥

शिरार्हर्ष रोग में फाणित (ईख के रस का राब) को मधु में मिलाकर बाखों में अञ्जन करना चाहिये । अथवा कासीस को मधु में पीसकर अञ्जन करना चाहिये । इससे लाभ होता है ॥ यतस्मात्क हस्तन्ययुतं फाणित तु ससैन्धवम् । पित्ताभिप्यन्द्यशामनं विधि चात्रापि योजयेत् ॥

अम्लवेत की नारी के दूध में विधिपूर्वक मिलाकर अञ्जन बनाकर नेत्रों में लगाना चाहिये अथवा फाणित को सेंधानमक के साथ मर्दन कर नेत्रों में अञ्जन करना चाहिये । इससे शिरार्हर्ष

रोग नष्ट होता है । पित्ताभिष्यन् नाशक चिकित्सा भी शिराहर्ष रोग में करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथान्तरे नयनाभिघातस्य निदानचिकित्से—

अथव्यथु ख यन्नेत्र घृत लोहितराजिभिः । निमेषोन्मेषणाशक्त सदाद्य स विनिवृत्तेः ॥१॥

नयनाभिघात रोग—जिस नत्र स मधुपात होता रहता हो, लोहित वर्ण भी रेशाओं से नत्र घिरा हुआ हो, पलक बन्द होने में और खुलने में अशक्त हो उसे भाघात के कारण हुआ नेत्र रोग जानना चाहिये ॥ २ ॥

नेत्रे स्वभिहते कुर्याच्छृतिमाश्रोतन हितम् । पुनर्मंवामूलकत्कात्पिण्डी लेपे कुचन्दनम् ॥

अन्त स्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्तमोक्षश्च शस्यते ॥ २ ॥

इस प्रकार के अभिहत नत्र रोग में शीतल द्रव्यों का आश्रोतन करने से, पुनर्नेत्रा के मूत्र का विषयपूर्वक बरक कर पिण्डी बनाकर नेत्र पर फेरने से, पीले चन्दन का लेप लगाने से, नेत्र के अभ्यन्तर स्त्री के दूध का सिंचन करने से और रक्तमोक्षण करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

दृष्टिप्रसादजनन विधिमाशु कुर्यात्स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।

स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजादितापैरभ्याहतामपि तथैव भियविचकित्सेत् ॥ ३ ॥

स्निग्ध, शीतल और मधुर प्रयोगों से दृष्टि प्रसादन का उद्योग करना चाहिये । इसी प्रकार के उपायों से स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक, रुजादि तापों से नष्ट हुई दृष्टि वापों की भी चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् इन कारणों से उत्पन्न नत्र रोगों की भी स्निग्ध, शीतल और मधुर क्रिया से ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सूर्याचिराशाभ्यरपिद्युतादिविलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।

सन्तर्पण स्निग्धहिमादि कार्यं साय त्रिपेष्यस्त्रिफलाप्रयोग ॥ ४ ॥

सूर्य की किरणों, दिशाओं तथा आकाश की विद्युत आदि के देखने से, जिनकी दृष्टि नष्ट हो गयी हो उनकी स्निग्ध तथा शीतल वस्तुओं से संतर्पण आदि क्रिया द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये तथा सायंकाल त्रिफला के प्रयोगों का सिंचन करना चाहिये ॥ ४ ॥

निशाब्दत्रिफलादार्षो सितामधुसमन्वितम् । अमिघातादिशूलम्न नारीशरीरेण पूरणम् ॥ ५ ॥

इच्छो, नागरमोया, हरक, बहेडा आंभला, दासहल्दी, अर्कुरा और मधु की समान भाग लेकर इच्छक धूर्ण पर नारी के दूध में मिलाकर नत्रों में पूरण करने से नेत्र का अभिघात तथा नेत्रों का घाल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

सायन मधुर्क तुषरं घृतमृष्ट सुचूर्णितम् । द्वागुणोरोरित्त सेकः पिचरक्तमिघातमित् ॥ ६ ॥

सायन लोष वा द्रवैत लोष और सुहृदी की समान भाग लेकर घृत में धूबकर उष्ण धूर्ण कर बकरी के दूध में मिलाकर आँसों में सिंचन करने से पिचरक्त से उत्पन्न और अभिघात से उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सौद्राशलाशालासंप्रैमरिचैर्नैर्भ्रमजयेत् । अतिनिद्रा दामं घाति ममः सूर्योवपादिव ॥ ७ ॥

अतिनिद्रादोष चिकित्सा—घोडे के मूँह की सार में बाली मरिच की पिस कर उसमें मधु मिलाकर नेत्रों में अक्षरन करने से अतिनिद्रा दोष इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अंधकार नष्ट होता है ॥ ७ ॥

जातोपुष्य प्रयाल च मरिच कटुका वचा । सैन्धव परतमूयेण पिष्ट तत्राप्रमज्जम् ॥ ८ ॥

तद्गा नाश के उपाय—घसेली के फूल, मूंगा, मरिच, कुटवी, वच और सैन्धवक की समान भाग लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर अक्षरन करने से तद्गा का नाश होता है ॥ ८ ॥

नेत्ररोगे योमतेनीकर्तुं —

सुपर्णोर्ध्वसुमागाः स्युलेला भागद्वय तथा । चन्दनं चासिपकेन च धीवं कृतवसम्भयम् ॥१०

रसाजान अद्भुततं प्रत्येकं कार्यसम्मितम् । सस्य तुष्ये विमर्शय विचरे वाधूमनिदधत् ॥ २ ॥

धृत्वा पात्रे निघापाथ त्रिपेत्याय तयोपरि । अथ प्रजालयेद्दोषं वार्यांशुदरमानया ॥ ३ ॥

ध्वं प्रहरपयन्त घट्टि सुपर्णस्य सुकित्त । पात्ररसोपरिभागं तु क्षीतं रश्चवेदुषः ॥ ४ ॥

तदाऽऽश्चेलरुपेन क्षीतयेन च चारिणा । द्वात्रयोत्तं ततो प्राप्या पश्चात्पूर्वमादौत् ॥५॥

नेत्ररोगे योमतेनीकर्तुं प्रयोगः ॥ ४ ॥

नेत्ररोग में भीमसेनी कपूर—देशी कपूर ८ भाग, छोटी इलायची के दाने २ भाग, लाल चन्दन, समुद्रफेन, निर्मली के बीज, रसवत और नागरमोथा प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष लेकर सबको दूध में खरल कर गेहूँ के गूथे दूध आटे के पिण्ड के समान पिण्डी बनावे । फिर बड़े शकरीरे या परई में रस कर ऊपर स दूसरा पात्र रस कर शराव समुद्र की विधि से उसका मुखमुद्रण कर (सन्धि बन्द कर) उसके नीचे अगूठे के समान बची बनाकर सेल में भिजा कर जलाकर लगा देवे अर्थात् बची से भौंच देवे । इस प्रकार एक पहर ( १ घंटे ) तक आँच देवे और ऊपर के पात्र को सदा ढीतल रखे । सदा भिजे हुए कपड़े को ऊपर के पात्र पर रखे और जल से उसे भिजाता रहें । जब एक पहर आच लग जाये तब बची बुझा देवे और स्वांगशीत होने पर ऊपर के पात्र में सदा हुआ द्रवत कपूर को निकाल लेवे । स्फटिक के समान अत्यन्त स्वच्छ, श्वेतहोरक मणि के समान प्रमा वाला इस भीमसेनी नामक कपूर को सभी ओषधियों में ( जहाँ आवश्यकता हो ) प्रयुक्त करे । अर्थात् यह भीमसेनी कपूर है इसकी जहाँ २ आवश्यकता पड़े व्यवहार में लाना चाहिये ॥ १-६ ॥

### अथ पथ्यापथ्यम् ।

आश्चोतन लङ्घनमञ्जन च खंदो विरेक प्रतिसारण च ।  
प्रपूरण नस्यमसृग्विमोक्ष शस्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ १ ॥  
सेको मनोनिर्घृतिरङ्घ्रिपूजा मुद्रा यया लोहितशालयश्च ।  
कीम्भ हविस्तस्य कुल्ययूप पेया विलेपी सुरण पटोलम् ॥ २ ॥  
घातार्कककौटककारवदल नवीनमोघ नयमूलकं च ।  
पुननयामार्कवकाकमाचीपपूरुशकानि कुमारिका च ॥ ३ ॥  
द्राक्षा च कुस्तुम्युक्त माणिमन्यो रोध्र यरा चौद्रमुपानहश्च ।  
नारीपयश्च दनमिन्दुखण्ड तिष्ठानि सर्वाणि लघूनि चापि ॥ ४ ॥  
विज्ञानता पथ्यमिदं प्रयुक्त यथामल नेत्रगदं निहन्ति ।

पथ्यापथ्य—आश्चोतन, लङ्घन, अजन, स्वेदन, विरेचन, प्रतिसारण, प्रपूरण, नस्य, रक्त मीक्षण, शस्रक्रिया, लेप, घृतपान, सिंचन, मन की शान्ति, गुरुजनों की पादपूजा, मूँग, जी, रक्त वर्ण के शालिधान्य के चावल, सौ वर्ण का पुराना घृत के साथ कुल्फी का यूप, पेया, विलेपी, खरनकद, परवल आदि का शाक, बैंगन, ककड़ी, करैला, नया ( कच्चा ) केला, नवीनमूली, पुनर्नवा, भांगरा, मकोय, पचूर शाक, धीकुआर, द्राक्षा, धनियाँ, सैधानमक, लोध, त्रिफला, मधु, उपनाह फर्न, ली वा दूध, चन्दन, कपूर, सभी तिक्त तथा लघु पदार्थ नेत्ररोग में पथ्य कहे गये हैं । यैध को दोषानुसार यथायोग्य इन पथ्यों का प्रयोग कराना चाहिये ॥ १-४ ॥

माघ शुचं मेथुनमधु चायुषिन्मूत्रनिद्रावसिधेगरोधम् ॥ ५ ॥  
सूचमेक्षण दत्तविघपण च स्नान निशाभोजनमातप च ।  
प्रजवपन छद्ममम्युपान मधुकपुष्प दधि पत्रशाकम् ॥ ६ ॥  
कालिद्रपिण्याकविरूहकानि भरस्य सुरा मांसमजाद्रल च ।  
साम्बूलमग्न लघण विशाहि तीषण कटूष्ण गुरु चाक्षपानम् ।  
गरो न सेयेत हिताभिलापी सर्वेषु रागेषु दगाध्रयेषु ॥ ७ ॥

कोध, शोक, मेथुन तथा आँसू, वायु, मल, मूत्र निद्रा और वमन के वेगों को रोकना, सूक्ष्म की ध्यान से विलम्ब तक देखते रहना, बहुत विलम्ब तक दौंतों को घिसते रहना, स्नान करना, रात को भोजन करना, घूप या ताप में रहना, बहुत बोलना वमन करने जलपान, मद्युप का फूल, दही, पत्रशाक, तरबूया, तिलकस्क, अङ्कुरित धान्य, मत्स्य, सुरा, जो जीव जाङ्गल नहीं हो उनका मांस, ताम्बूल, अम्लद्रव्य, नमक, तीक्ष्णद्रव्य, कटु-उष्ण और गुरु अन्न-पान सभी नेत्र रोगों में अपथ्य कहे गये हैं । इनका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ५-७ ॥

शालीपान वा चावल, गेहूँ मूँग, सैधानमक, गी वा धो गो का दूध, शकरी और मधु ये

सभी द्रव्य नेत्र रोगों में पथ्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥



सर्वं शाकमेषु चक्षुष्यं शाकपत्रकम् । जीवन्ती वास्तुनस्यापी मेघनाद पुनर्नवा ॥१॥  
सभी प्रकार के पत्र शाक नेत्र रोगों में अपथ्य है केवल पांच प्रकार के पत्रशाक पथ्य है  
१ जीवन्ती, २ बधुआ, ३ मछली, ४ चौराई और ५ पुनर्नवा ॥ १ ॥

मायारनालकटुतैलजलावगाहृद्रापुरैश्च सुरतैर्निति जागरैश्च ।

शाकाम्लमरस्यदधिकानित्येसवारैश्चु घृष्य घृजति स्यविलोकानाच्च ॥ १० ॥

दृष्टिनाशक—उदद, कान्जी, सरसों का तेल, जल में हूब कर स्नान, छोटी कट्टी, ताठ  
मखाना, मैथुन, रात्रिजागरण, पत्रशाक, अम्ल द्रव्य, मरस्य, दही, फागिन ( राव ) और वेतवार  
के सेवन तथा सूर्य की ओर देखने से नेत्रक्षय अर्थात् दृष्टि का नाश होता है ॥ १० ॥

इति नेत्ररोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथ स्त्रीरोगधिकारः ।

तत्राऽऽनौ प्रदरस्य निदानमाह—

विरुद्धमघाप्यशानादजीर्णात्रभ्रमप्रपातादतिमैथुनाच्च ।

घानाप्यशोकादसिकृपणाच्च भारामिघाताच्छ्रयनाह्रिया च ॥ १ ॥

त श्लेष्मपित्तानिष्ठसनिपातैश्चतु प्रकार प्रदर यदन्ति ॥ २ ॥

प्रदर निदान—विरुद्ध आहार ( संयोग विरुद्ध, मात्रा विरुद्ध आदि ) करने से, मद्यपान करने  
से, अपथ्यशन करने से, अजीर्ण रोग से, गर्भपात होने से, अधिक मैथुन करने से, अधिक सवारी  
पर चलने से, अधिक मार्ग चलने से, शोक करने से, अत्यन्त उपवास आदि करने के कारण वातुओं  
के क्षीय हो जाने से, अत्यन्त भार उठाने से, आपात लगने और दिन में अधिक सोने से कफत्र,  
पित्तत्र, वातत्र, और सन्निपातत्र प्रदर चार प्रकार के होते हैं ॥ १-२ ॥

प्रदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

असुग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ।

प्रदर के सामान्य लक्षण—सभी प्रदर रोगों में सामान्यतः अङ्ग दूरेता और पीड़ा होती है ॥

द्वैलम्बिकस्य लक्षणमाह—

आमं सपिच्छप्रतिम सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफाणु ॥

कफत्र प्रदर—कफ के कोप से जो प्रदर होता है उसमें आमरस युक्त विरिद्ध ( घासकी  
निर्यास की भांति ), पाण्डुवर्ण का और कृष्ट के भोजन की भांति वा मस के भोजन की भांति  
अथवा शुद्धवान्य के चावलों के भोजन की भांति योनिश्राव होता है ।

पेषिकमाह—सपीतनीलासितरक्तमुष्ण पित्तासियुक्त मृदापेगि पित्तात् ॥ ३ ॥

पित्तत्र प्रदर—पित्त के कोप से जो प्रदर होता है उसमें पीत नील, कृष्ण, रक्त और उष्ण  
तथा पित्त क्षोष की पीड़ाओं ( दाह-चिमचिमात् ) से युक्त एवं अत्यन्त वेग वाला श्राव होता है ॥

वातिकमाह—रूपाण्य फेनिलमक्षपमक्षपं घातासतोद् विशितोदकामम् ॥

वातत्र प्रदर—वायु के कोप से जो प्रदर होता है उसमें स्वच्छ, अरुण वर्ण का, फेन  
युक्त, थोड़ा र, धूर्त धुमाने के समान पीड़ा करने वाला और मस छोटे हुए जल के समान  
श्राव होता है ॥

सन्निपातिकमाह—सचौत्रसपिर्द्विराल्बर्णं मयजप्रकारं क्षुण्वं त्रिदोषम् ।

तं चाप्यसाप्य प्रयदन्ति तत्रा म सत्र कुर्वति मिवचिद्विसाम् ॥ ४ ॥

सन्निपातत्र प्रदर—त्रिदोष के कोप से जो प्रदर होता है उसमें मधु मन्त्रे हुए घृत के समान,  
हरिताल के वर्ण का, मन्त्रा के समान और सुर्ने के दुर्गन्ध के समान गन्धवाला श्राव होता है ।  
इसे विदाल् वैद्य अमाप्य कहते हैं ॥ ४ ॥

रक्षस्यातिप्रहृष्टुरक्षानाह—

रक्ष्यातिवृत्तौ दीर्घस्य प्रमो मूर्च्छां सवस्तुपा ।

इहाहा प्रत्यावा पाण्डुव्य तन्त्रा रोगाच्च वातत्राः ॥ ५ ॥

प्रदर रोग के उपद्रव—रक्त के अत्यन्त प्रवृत्त होने से ( प्रदर के रक्त जाने से ) दुर्बलता,

जम, मूच्छा, मन्, सृष्णा, दाह, प्रलाप, पाण्डुता, तन्द्रा और अनेक प्रकार के वातज रोग आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ५ ॥

असाध्य प्रदरव्याधिमतीमाह—

पाश्चर्यवन्तीमात्राय सुपादाहज्वराविताम् । दुर्बलां क्षीणरक्तां च सामसाध्यं विवर्जयेत् ॥

असाध्य प्रदर—जिस प्रदर रोग में निरन्तर घोमि से छाव होता रहे, सृष्णा, दाह, च्वर और दुर्बलता हो तथा रक्त क्षीय हो गया हो उसे असाध्य जान कर त्याग देना चाहिये ॥६॥

चिबिरसानिबृत्पर्य गुदात्तवलक्षणमाह—

मासान्निपिप्लवदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैपातिवहु नात्यक्षपमार्तव शुद्धमादिशेत् ॥७॥

शुद्धार्तव के लक्षण—मास २ के पश्चात् होने वाला, पिच्छिलता विहीन, दाह और पीड़ा रहित, पांच दिन तक रहनेवाला, न अधिक और न कम होने वाला इस प्रकार का जो रजसाव होवे उसे शुद्ध जानना चाहिये ॥ ७ ॥

दाशास्यप्रतिम यष्य यद्वा एाचारसोपमम् । सदात्तव प्रशंसन्ति यद्याप्सु न विरज्यते ॥८॥

जो रज दाशक के रक्त के समान वर्ण वाला अथवा छात्र के रस के समान वर्ण वाला और जिसका रज से शुक्त बख जल में धोने से पुन उसमें रक्तवर्ण रह जाय उसे विशुद्ध रज समझना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ प्रदरचिकित्सा ।

दध्ना सौवर्धलाजाजीमघुक नीलमुषलम् । पियेरसौद्रयुत नारी घातासृग्दरतात्तये ॥ १ ॥

वातज प्रदर चिकित्सा—सौवर्धल (सौंघर) नमक, श्वेत जीरा, मुलहठी और नीलकमल (निलोपर) को समान भाग लेकर विषिबद्ध चूर्ण कर मधु मिलाकर गाय का दही के अनुपान से पीने से वातज प्रदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

नागर मधुकं तैल मिता दधि च तस्समम् । खजेनोन्मयित पीत घातप्रदरनाशनम् ॥ २ ॥

सोंठ, मुलहठी, तिल का तेल, शर्करा और गाय का दही समान भाग लेकर एकत्र कर मथानी से मथकर पान करने से वातज प्रदर नष्ट होता है ॥ २ ॥

प्लामशुमतीं द्राक्षाशुशीरं तिक्तरोहिणीम् । चन्दनं कृष्णलवण सारियालोध्रसयुतम् ॥ ३ ॥

यातासृग्दरशान्त्यर्थं पियेद्गन्ना सहान्नना । पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं ससौद्रं लक्ष्णा पियेत् ॥ ४ ॥

श्लायची, शालपर्णी, द्राक्षा, खस, कुटकी, लालचन्दन, सौवर्धल नमक सारिवा और लोष को समान भाग लेकर विषिबद्ध चूर्ण कर गाय के दही के साथ योग्य मात्रा से पान करने से वातज प्रदर नष्ट होता है और यदि इसी चूर्ण को मधु के साथ पान करे तो पित्त प्रदर तथा रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ३-४ ॥

वासकरव गुह्यया वा रस किं वा घरीभवम् । मधुकं कर्षमेक तु चतुष्कर्षो सिता तथा ॥

सण्डुलोदकसंपिष्ट लोहिते प्रदरे पियेत् ॥ ५ ॥

रक्तप्रदर चिकित्सा—अरुसे का स्वरस अथवा गुर्बच का स्वरस अथवा शतावरी का स्वरस और मुलहठी का चूर्ण एक कर्ष और शर्करा चार कर्ष इनको तण्डुलोदक (चावल के भीवन) के साथ रक्तप्रदर में पान करना चाहिये । इससे रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

प्रदरं हन्ति यलाया मूल दुग्धेन संयुतं पीतम् ।

कुशावाटवालकमूल सण्डुलसलिलेन रक्षापयम् ॥ ६ ॥

बलामूल (वरियारे की जड़) को गोदुग्ध में पीसकर पान करने से अथवा कुश और बलामूल को समान भाग लेकर चूर्ण कर तण्डुलोदक से पान करने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

यलाकष्टविकाश्या सा तस्य मूल सुचूर्णितम् । लोहितप्रदरे स्वादेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥ ७ ॥

अतिबला की जड़ को चूर्ण कर शर्करा और मधु के साथ मिलाकर खाने से रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ७ ॥

मघौनिग्धगुह्ययाश्च रोहितरयाय वा रसम् । कफप्रदरनाशाय पियेद्वा मलयूरसम् ॥ ८ ॥

कफज प्रदर चिकित्सा—नीम का स्वरस, गुर्बच का स्वरस अथवा रोहितक का स्वरस अथवा काकोतुम्बरिका का स्वरस मधु के साथ पान करने से कफज प्रदर नष्ट होता है ॥ ८ ॥

काकजहामूलरस मधुना सह भामिनी । सलोघ्रचूर्णमापीय कफप्रदरक जयेत् ॥ ९ ॥

काकजहामूल की जड़ का स्वरस, मधु और छोप का चूर्ण मिलाकर यदि स्त्री को पिशाचा ज्वर से कफ प्रदर नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

पथ्यामलकयिभीतकविश्वौषधदाहरमनीनाम् । सपौद्रलोघ्रचूर्णक्रामो हन्येष सर्वत्र प्रदरम् ॥  
सत्रिपातज प्रदर चिकित्सा—हरड़, भांगला, बघेड़ा, सोंठ और दाबइल्ली को समान भाग लेकर विधिपूर्वक बवाभ करके उसमें मधु और छोप के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से त्रिदोषज प्रदर नष्ट होता है ॥ १० ॥

रमाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं पौद्धान्वितं तण्डुलतोषपीतम् ।

असृग्दरं सर्वमेव निहन्ति श्वासं च भार्ही सह नागरेण ॥ ११ ॥

रसवत और घौरारं शक की जड़ को चूर्ण कर मधु में मिलाकर तण्डुलोदक से पात करने से सत्रिपातज प्रदर नष्ट होता है । इसी प्रकार भार्गी चूर्ण में सोंठ का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से श्वास रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अशोकवषट्कलाफ शृतं दुग्धं पुशोतलम् । पयाथल विषयातस्तीवास्वदरनादानम् ॥ १२ ॥

अशोक की छाल का काफ तथा भांगकर शीतल क्रिया की का दूध दोनों को मिलाकर बड़ के अनुसार प्रातःकाल पान करने से तीव्र प्रदर रोग नष्ट करता है ॥ १२ ॥

कुशामूलं समुद्घृत्य पेपयेत्तण्डुलाम्युना । पुत्रपीया श्वहं मारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ १३ ॥

कुश की जड़ को तण्डुलोदक से पीसकर तीन दिन तक पिछाने से स्त्री प्रदर रोग स मुक्त हो जाती है ॥ १३ ॥

पौद्रयुक्त फलरस फाष्टोऽम्यरज पिबेत् । असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोक्षमुक्त् ॥ १४ ॥

फानोडुम्बिका के फलों के स्वरस में मधु मिलाकर पान और दूध-शर्करा से युक्त भजन का सेवन करने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ १४ ॥

मलयफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च । मधुना मोदकं कृत्या स्वादेऽप्यदरनाशनम् ॥ १५ ॥

काकोदुम्बरी (जगली बन्जीर) के फलों का चूर्ण मधु और शर्करा मिलाकर मोदक बनाकर सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

दार्धरिसाञ्जनवृषाब्दकिरावयिष्वभक्षलातकेरवकृतो मधुना कपायः ।

पीशो जययतिषल प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ १६ ॥

दाम्प्योदि काफ—दाबइल्ली, रसवत, अरुसा, नागरमोषा, चिरायता कर्पूरे बेल की गूरी और शुद्ध भिलाना को समान भाग लेकर विधिपूर्वक बवाभ कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अत्यन्त प्रबल प्रदर जो शूल सहित पीला, काला, तथा रक्तजर्न का हो, रक्त प्रदर हो, नील प्रदर हो या श्वेत प्रदर हो सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

मूग्यामलकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा । द्विप्रैरेव दिनेर्नार्याः प्रदरं हुस्तरं जयेत् ॥ १७ ॥

सुर्य भांगल की जड़ को चावल के भोजन के साथ पीसकर अपना चूर्ण कर तण्डुलोदक के अनुपात से पान करने से तीन दिन में स्त्री सर्वप्रदर रोग भीत होती है । अर्थात् रस योग से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

शुण्ठीतिरिण्टयोरचूर्णं मुषत सपृतशर्करम् । प्रबलं प्रदरं हन्ति नार्या वा कुटश्राष्टकम् ॥ १८ ॥

अन्यान्य योग—सोंठ और छोप के चूर्ण को घृत और शर्करा के अनुपात से त्रिजये अपना कुटश्राष्टक चूर्ण घृत शर्करा के अनुपात से मिलावे तो अत्यन्त बड़ा दुग्धा भी प्रदररोग नष्ट होता है ॥ घातकपाय तथा पुगीकुमुमाना विधेःशुक्लम् । नारायणप्रदरं सद्यपिदिनाद्योपिभो भुवम् ॥ १९ ॥

शय के फूल तथा गुग्गुली के फूलों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक बवाभ करके तीन दिन तक पान करने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

आमोऽप्युषं पयसा निपीय यष्टेपलादकमहशुषहं वा ।

त्रिपरी श्वहं वा प्रदरं श्रयन्त्या प्रसद्य पारं परमाप्नुपन्ति ॥ २० ॥

मूत्र की विषा को गी के दूध के रूप अत्रिबल के अनुपात एक दिन दो दिन अपना तीन दिन पान करने से स्त्री कठिन से कठिन प्रदररोग से भी मुक्त हो जाती है ॥ २० ॥

अशोकपत्रफल पिष्ट्वा सताप्यं तण्डुलाग्मसा । सचौद्रं तद्रस पीत्वा प्रदरान्मुष्यतेऽङ्गना ॥

अशोक को छाल और रसवन को समाग भाग लेकर तण्डुलोदक से पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

शुचिस्थाने श्याघ्ननक्षया मूलमुत्तरदिग्भवम् । गीतमुत्तरफालगुण्यां कटियद्द हरेदसृक् ॥ २२ ॥

श्याघ्नखी मूल योग—पवित्र स्थान में उत्तरण हुई श्याघ्नखी की उत्तर दिशा में गयी हुई मूल को उत्तराषाढगुनी नक्षत्र में बलाह कर कमर में बांधने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

पुष्यानुग चूर्णम्—

पाठा रसाङ्गनं मुस्त मज्जा जम्बवाद्ययोरस्तथा । अम्यष्टकी शिलोद्भेद समङ्गा पद्मकेसरम् ॥ १ ॥

विषयं मोचरस लोभ्र केशर गैरिकं तथा । विधौषध कटुफल च मरिच रक्तचन्दनम् ॥ २ ॥

कट्यङ्ग धातकी द्राक्षाऽनन्ता मधुकमर्जुनम् । वासकातिविपा चेति पुष्येणोद्घृत्युद्रिमान् ॥

सुहृद्यभोगानि सर्वाणि सूक्ष्माणि च विचूर्णयेत् । सचूर्णं मातृकोपेत पीत तण्डुलवारिणा ॥

जयेदक्षीत्यतीसार तथा रक्तप्रवाहिकाम् । बालानां कृमिरोगांश्च योनिदोषांश्च योपिताम् ॥

रजोदोषां तथा सर्वाप्रदरान्दुस्तरानपि । पीतनीलाक्षणश्वेतान्सर्वानेव विनाशयेत् ॥

चूर्णं पुष्यानुग नाम्नाऽपूर्वमाश्रय भाषितम् ॥ ६ ॥

पुष्यानुग चूर्ण—पाठा ( पुरश्नपाठी ), रसवन, नागरमोथा, पके जामुन के फल के बीज की गुरी आम के गुठली की मज्जा, अम्बष्ठकी ( पाठा अर्थात् पुरश्नपाठी या लक्ष्मणा मूल ), पाषाण भेद ( पत्थरचूर ) मबीठ कमलकेसर, कच्चे बेल के फल का खजा गुग्गु, मोचरस, लस, केशर, गेह, सोंठ कायफल, मरिच, रक्तचन्दन, सोनापाठा की छाल, धाय के फूल, दास, अनन्तमूल, मुलहठी, अर्जुन की छाल, कुटज की छाल और अतीस की पुष्प नक्षत्र में उलाह कर सभी को एकत्र कर उच्चमरीचि से शल्क चूर्ण बनाकर योग्य मात्रा से मधु में मिलाकर भाटकर तण्डुलोदक का अनुपान करे तो इससे सम्पूर्ण अर्श, अधीसार तथा रक्तप्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं और बालकों के कृमिरोगों को और स्त्रियों के योनिरोगों को, रजोग्ण को तथा सभी प्रकार के भयंकर पीत, नील, रक्त श्वेन आदि वर्णों के प्रदर को नष्ट करता है । इस चूर्ण का नाम पुष्यानुग है । इसे पहले पहले आश्विन मुनि ने कहा था ॥ १-६ ॥

जीरकावलेह —

जीरकं प्रस्थमेकं तु शीर द्भ्याढकनेव च । प्रस्थार्धं लोभ्रघृतयोः पचेन्मन्देन घट्टिना ॥ १ ॥

लेहीभूतेऽप्य शीते च सिताप्रस्थ विनिक्षिपेत् । चातुर्जातकणाधिश्चामजाजी सुस्तवालकम् ॥

वाढिमं रंसज घान्य रजनी पठ्वासकम् । वंशज च तपस्वीरी प्रत्येकं शुक्तिममितम् ॥ ३ ॥

जीरकस्यावलेहोऽयं प्रमेहप्रदुरापहः । उवरासद्याहृषिश्चासृष्णावाहृषयापह ॥ ४ ॥

-जीरकावलेह—श्वेतजीरा एक प्रस्थ, गोदुग्ध दो आड़क ( ८ प्रस्थ ) लोभ्र और घृत ( दोनों समान मिलित ) आधा २ प्रस्थ लेकर विधिपूर्वक जीरा और लोभ्र पीस कर सबको एकत्र कर अग्निपर चढ़ा कर मन्द २ आँच से अवलेह की विधि से पाक करे जब अवलेह सिद्ध हो जावे तब वतार कर उसमें १ प्रस्थ शर्करा मिलावे और दालचीनी, श्लायची, तेजपात, नागकेसर, पीपल, सोंठ, जीरा, नागरमोथा, सुगन्धशाला, अनारदोनों या अनार की खचा, रसबत, धनियाँ, हल्दी कटसरैया, वशलीचन और तवाशीर का दल्लग चूर्ण एक २ शुक्ति अर्थात् आधा २ पल लेकर उसमें मलीभोति मिलाकर रस देवे । यह जीरकावलेह है इसी सेवन करने से प्रमेह, प्रदर ज्वर, दुर्बलता, अरुचि, श्वास, दृग्गा, दाह और क्षय का नाश होता है ॥ १-४ ॥

निष्कमैर्द्वयच चूर्णं सिताद्विगुणितं भवेत् । उपितेन जलेनैव पीतं प्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥

इन्द्रयनां योग—ईद्रभी का चूर्ण एक निष्क लेकर उसमें दुग्गुना शर्करा मिलाकर पर्युषित जल से पान करने से प्रदर का नाश होता है ॥ ५ ॥

मुद्रार्थवतम्—

मुद्रमापस्य निचूहे रास्नाधिप्रकमुस्तकैः । सिद्ध सविष्पलीविह्वै सर्पिं श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ १ ॥

मुद्रार्थ पत्र—मूंग और उदक का विधिपूर्वक बना काय ( ४ सेर ) में रास्ना, चीते की

जह, नागरमोषा, पीपल और कच्चे बेल की गुद्दे का समाज मिलित विविध बनावक ( एक पाक ) और मूर्च्छित गोघृत ( एक सेर ) मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करके पान करे तो प्रदर रोग के नाश करने में यह योग उत्तम कहा है ॥ २ ॥

शास्त्रमलीपतम्—

शास्त्रमलीपुष्पनिर्घासः घृतिनपर्णी तथैव च । कारमरी चन्दन चेंपां कपकेन स्वरसेन वा ॥१॥ गन्ध पधेद् घृतप्रस्थं तसिद्धं तस्मिन् विधेत् । सर्वप्रदरनाशाय बलवर्णान्निघर्षणम् ॥ २ ॥

शास्त्रमलीपत—सेमर के फूलों का स्वरस, घृष्टपर्णी, गम्मार के फल और लालचन्दन के बरक अपना स्वरस के योग से घृत पाक की विधि से एक प्रस्थ गौ का घृत सिद्ध करके ( बरक के चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण स्वरस आदि जो घृत पाक की विधि है उस विधि से मन्दाग्नि पर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करके ) युवती ( स्त्री ) को प्रदर के नाश होने के लिये और बरक, बने तथा अग्नि वृद्धि के लिये पिलावे अर्थात् इस घृत से सब प्रकार के प्रदर का नाश होता है और बल-वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

गीतकल्याणकं घृतं घृन्दात्—

कुमुधं पद्मकोशीर गोधूमो रक्तशालयः । मुद्गपर्णी पयस्या च कारमरी मधुपटिका ॥ १ ॥ यलातिपलयोर्भूलमुत्पल ताळमस्तकम् । विदारी क्षतपुष्पी च शालिपर्णी सजीविका ॥ २ ॥ त्रिकला त्रापुस बीज प्रयत्न कदलीफलम् । प्लवामधपलाभागान् गन्धर्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥ पानीय द्विगुणं वावा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । प्रदरे रक्तगुवमे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ४ ॥ क्षरोक्षके ज्वरेऽजीर्ण पाण्डुरोगे मदे अमे । तस्मिन् स्वरसपुष्पा वा वा वा गर्भं न विन्दति ०५० श्वहन्यहनि च खीणा भवति प्रीतिवधनम् । क्षीतकल्याणकं नाम परमुक्त रसायनम् ॥ ६ ॥

गीतकल्याणक घृत—कुमुदनी, पद्मफाठ, खस, गेहू, रक्तवण का चाबल, मुद्गपर्णी की जड़ और अतिबला की जड़, नीलफल, ताड़ का मस्तक, विनारीकन्द, सौंफ, शालिपर्णी ( सरिया ), जीवक, इरुड, बहेड़ा, जौबला, खीरे का बीज और मया कच्चा देगा की भाषा २ पल स्वयम् १ लेकर कल्क करके चार सेर गौ का दूध और दो सेर जल को एक सेर गोघृत में मिलाकर घृत पाक विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन कराये तो प्रदर, रक्तगुण, रक्तपित्त, हकी मक, अहनि, अजीर्ण, ज्वर, पाण्डुरोग, मद रोग, भ्रमरोग आदि में लाभ होता है और जिस स्त्री का मासिक अल्प होता हो या अस्तका गर्भ स्थिर नहीं होता दो हप्ते प्रतिदिन सेवन करने से स्त्रियों की यह प्रीतिदायक होता है अर्थात् मासिक दोष शून्य करता है और गर्भधारण कराता है । इस घृत का नाम गीतकल्याणक घृत है, यह अत्यन्त रसायन कहा गया है ॥ १-६ ॥

रक्तपित्ताधिकारोक्तं कृष्णाम्बुखण्डं च प्रदरे देयम् ।

रक्तपित्ताधिकार में कहा हुआ कृष्णाम्बु खण्ड नाम का योग जो प्रदर में देना चाहिये । उससे भी प्रदर का नाश होता है ॥

अथ रसाः ।

रसं गन्धं सीसं शृतमिति समं सैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोभे हृत्तरसैः ।

रसि पिष्टे भाग्ना प्रदरिपुरेषोऽपहरति द्विषह्ला चोद्देशे प्रदरमतिदुःसाध्यमपि च ॥ १ ॥

प्रदररिपु रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सीसे का मसम एक १ भाग लेकर अतिना हो उसके समान भाग रसबल केवे और इन चारों के बराबर लोब का चूर्ण लेकर मसम पारद-गन्धक की बजबली कर उसमें भास्मरस, रसबल और लोब के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर अस्ता के साथ एक दिन ( चार पहर ) मर्दन कर दो बल ( २ रत्नी ) के प्रमाण की विधिपूर्वक बटी बनाकर मधु के अनुपात से सेवन करने से यह प्रदररिपु नाम का रस अत्यन्त मरदर प्रदर रोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

शोकरस्यै—शूतगन्धकमुक्त्वाटिकायाः पपयी समपुना समभागम् ।

शोकरस्यैविविधित प्रतिवाप्यं स्याद्रसोऽयमसाम्नामपहारी ॥ १ ॥

शोकरस्यै—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक बजबली करके

कज्जलो के समान भाग शूल ( मुसम्बर ) का चूर्ण मिलाकर पपटी की विधि से पपटी बनाकर सेवन करने से यह रस सभी प्रकार के रक्त सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

यद्वलयुग्मयुगुल प्रतिवेद्य शर्करामधुयुतः किल दत्तः ।

रक्तपित्तगुदजातृनियोनिस्त्रायमाशु विनिवारयवीक्ष ॥ २ ॥

इस रस को दो बरत ( ६ रत्नी ) से लेकर शर्करा और मधु मिलाकर रोगी को देने से रक्तक्षति ( अर्श ) से मरती के द्वारा रक्तसार ( योनिस्त्राय आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥

इति प्रदररोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथ सोमरोगाधिकारः ।

सत्र सोमरोगस्य निगानपूर्विका संमत्तिमाह—

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाश्चापि ध्रमादपि । अतिसारकयोगाद्वा गरदोपात्तयैव च ॥ १ ॥

आपः सर्पशरीरस्याः शुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।

तस्यास्ता प्रच्युता स्थानान्मूत्रमार्गं प्रजन्ति हि ॥ २ ॥

सोमरोग का निदान—स्त्रियों के साथ अधिक प्रसंग करने से, अधिक चिन्ता करने से, अधिक परिश्रम करने से, अतिसार उपपन्न करनेवाले योगों अथवा सारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा विषदीय से सम्पूर्ण शरीर में स्थित जल क्षुब्ध और प्रस्रवित होते हैं । इसलिये वे जलीय अंश अपने २ नियत स्थानों से च्युत होकर मूत्र मार्ग की ओर जाते हैं ॥ १-२ ॥

तस्य लक्षणमाह—प्रसन्ना विमला शीता निर्गन्धा नीरुज सिताः ।

ध्रवन्ति चातिमात्र ताः सा न शक्नोति दुर्धला ॥ ३ ॥

वेग धारयितु तासां न विन्दति सुखकचित् । शिरः शिथिलता सस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ मूर्च्छां जग्मा प्रलापश्च त्वमूत्रा चातिमात्रतः । भयैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥४॥

सोमरोग के लक्षण—सोमरोग में जो छाव होता है वह प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ अथवा बिना किसी दुष्टि के निर्मल, शीतल, गन्धरहित पीड़ा रहित, श्वेत होता है । और जब छाव अत्यन्त बढ़ जाता है तब इससे खी दुबल हो जाती है और वेग की वृद्धि नहीं रोक सकती उसे मुख नहीं होता है, खी के शिर में शिथिलता ( स्तम्भ ) हो जाती है । भूख और तालु सूखने लगते हैं, मूर्च्छा, जमाई तथा प्रलाप होता है, त्वचा अरयन्त रूक्ष हो जाती है, भक्ष्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से तृप्ति नहीं होती है ॥ ४-५ ॥

संधारणाच्छरीरस्य चा आप सोमसञ्जिता । ततः सोमचयास्त्रीणां सोमरोग इति स्मृत ॥

शरीर के संधारण करने के कारण इन जलों की सोम संज्ञा है । इस सोम के क्षय होने से हो स्त्रियों के इस रोग को सोमरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मात्सोमचयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा । स एव सकृज सोमो मूत्रेण स्रवते सुहु ॥ ७ ॥

इसी कारण सोम के क्षय हो जाने से शरीर निश्चेष्ट बना रहता है । वही सोम पीड़ायुक्त होकर बारबार मूत्र के साथ स्रवित होता है ॥ ७ ॥

सोमलक्षणसंघट्टः कालातिक्रान्तयोगतः । सोमक्रान्तिक्रमेणैव ध्रवेन्मूत्रमभीषणशः ॥

मूत्रातिसार हरयेथ समाहुर्यलनाशनम् ॥ ८ ॥

सोम के लक्षणों से युक्त तथा काल के अति क्रमण होने से ( पुराना हो जाने से ) इस सोम पाणु के निकलने के क्रम से ही बार २ मूत्र का स्राव होता रहता है । इसी की मूत्रातीसार कहते हैं । इससे बल का नाश होता है ॥ ८ ॥

### अथ सोमरोगस्य चिकित्सा ।

कदलीनां फलं पकं धात्रीफलरस मधु । शर्करासहित खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

सोमरोग चिकित्सा—केला, आंवले का स्वरस मधु तथा शर्करा मिलाकर खावे तो सोम के धारण करने के लिये यह उत्तम योग है अर्थात् इन योग से सोम वा जलीय पाणु का बढ़ना अथवा सोमरोग कम होता है ॥ १ ॥

मायचूर्णं समधुर्कं विद्वारीमधुशर्कराम् । पयसा पाययेद्यातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ २ ॥

जड़, नागरमोषा, पीपल और कच्चे बैक की गुद्दी का समान मिलित विषिष्य बना करके ( एक पाव ) और मूर्च्छित गोघृत ( एक सेर ) मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करके पान करे तो प्रदर रोग के नाश करने में यह योग उत्तम कहा है ॥ २ ॥

शास्त्रमलीवृतम्—

शास्त्रमलीपुष्पनिर्वासः पृश्निपर्णी सयैव च । काशमरी चन्दन खैरां कश्चकेन श्वरसेन वा ॥१॥  
गन्ध पचैद् घृतप्रस्थ तस्मिन्मृत्तणी विवेत् । सर्वप्रदरनाशाय घृतवर्णाग्निवर्धनम् ॥ २ ॥

शास्त्रमलीवृतम्—सेर के फूलों का स्वरस, पृष्ठपर्णी, गम्मार के फल और लालचन्दन के बल्क अथवा स्वरस के योग से घृत पाक की विधि से एक प्रस्थ गौ का घृत सिद्ध करके ( कल्क के चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण स्वरस आदि जो घृत पाक की विधि है उस विधि से मन्दाग्नि पर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करके ) युवती ( स्त्री ) को प्रदर के नाश होने के लिये और बल, वीर्य तथा अग्नि वृद्धि के लिये पिलावे अर्थात् इस घृत से सब प्रकार के प्रदर का नाश होता है और बल-वीर्य तथा अग्नि भी वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

शीतकल्याणक घृत घृत्नात्—

कुमुदं पद्मकोशीर गोधूमो रक्तशालयः । मुद्गपर्णी पयस्या च कारमरी मधुपष्टिका ॥ १ ॥  
बलातिषलयोर्मूलमुत्पल शालमस्तकम् । विदारी शतपुष्पी च शालिपर्णी सजोविका ॥ २ ॥  
त्रिफला त्रापुसं बीजं प्रयथ्य कदलीफलम् । पृषामधपला भागान् गन्धकीरं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥  
पामीर्यं द्विगुणं द्रवा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । प्रदरे रक्तगुग्गुले च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ४ ॥  
शरोचके ज्वरेऽजीर्ण पाण्डुरोगो मद भ्रमे । तरुणी श्वसपुष्पा वा या वा गर्भं न विन्दति ॥५॥  
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम् । शीतकल्याणकं नाम परमुक्त रसायनम् ॥ ६ ॥

शीतकल्याणक घृत—कुमुदनी, पद्मपाठ, खस, गेहूँ, रक्तवर्ण का चावल, मुद्गपर्णी की अड़ और अतिबला की अड़, नीलकमल, ताड़ का भस्तक, विदारीकन्द, सौफ, शालिपर्णी ( सखिन ), जीबक, दरद, बहड़ा, भौबला, खीरे का बीज और नया कच्चा केला को भाषा २ पल पूषक २ लेकर कल्क करके चार सेर गौ का दूध और दो सेर जल को एक सेर गोघृत में मिलाकर घृत पाक विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन कराने से प्रदर, रक्तगुग्गु, रक्तपित्त, हृष्टी मरु, भरुचि, अजीर्ण, उदर, पाण्डुरोग, मद रोग, अमरोग आदि में लाभ होता है और जिस स्त्री का मासिक अल्प होता हो या जिसका गर्भ स्थिर नहीं होता दो हप्ते प्रतिदिन सेवन करने से स्त्रियों को यह प्रीतिदायक होता है अर्थात् मासिक दोष शून्य करता है और गर्भधारण कराता है । इस घृत का नाम शीतकल्याणक घृत है, यह अरमन्त रसायन कहा गया है ॥१-६ ॥

रक्तपित्ताधिकारोक्त कूष्माण्डखण्ड च प्रदरे देयम् ।

रक्तपित्ताधिकार में कहा हुआ कूष्माण्ड खण्ड नाम का योग भी प्रदर में देना चाहिये । इससे भी प्रदर का नाश होता है ॥

अथ रसाः ।

रस गन्ध सीस मृत्तमिति समं सैसु रसजं समान सर्वैः स्थापुलितमपि शोभं शुभरसैः ।  
द्विन पिष्ट नाम्ना प्रदरविप्रेरेषोऽपहरति द्विषहलाः औद्रेण प्रदरेमतिदुःसाध्यमपि च ॥ १ ॥

प्रदररिपु रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सीसे का मदन एक २ भाग लेकर उसके समान भाग रसवत् लेवे और इन चारों के बराबर छोध का चूर्ण लेकर प्रथम की कम्बली कर उसमें नागमरम, रसवत् और छोध के चूर्ण को मिलाकर मदन के साथ एक दिन ( चार पहर ) मर्दन कर दो बल्ल ( ६ रत्नी ) के प्रमाण की कटी बनावट मधु के अनुपान से सेवन करने से यह प्रदररिपु नाम का रस अरमन्त प्रदर रोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

बोलेपर्यटी—सूतगन्धकसुकुञ्जलिकायाः पर्यटी समयुता समभागम् ।

बोलेचूर्णविहितं प्रतिवाप्यं स्वाद्रसोऽथमसृगामपहारी ॥ १ ॥

बोलेपर्यटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक

बज्रलो के समान भाग शूल (मुसम्बर) का चूर्ण मिलाकर पपटी की विधि से पपटी बनाकर सेवन करने से यह रस सभी प्रकार के रक्त सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

बहलपुत्रमधुगुल प्रतिदेय शर्करामधुयुतः क्लिष्ट दत्त ।

रक्तपित्तगुदजाघ्नतियोनिस्त्रायमाशु विनियारयतीशः ॥ २ ॥

इस रस को गो बूद (६ रसी) से लेकर शर्करा और मधु मिलाकर रोगी को देने से रक्तमुक्ति (अर्श) से गर्सों के द्वारा रक्तप्राय, योनिस्त्राय आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥

इति प्रदररोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथ सोमरोगाधिकारः ।

तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विका संज्ञातिमाह—

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाच्चापि श्रमादपि । अतिसारकयोगाद्वा गरदोपात्तयैव च ॥ १ ॥

आपः सयंशरीरस्याः शुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।

तस्वास्ता प्रच्युता स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

सोमरोग का निदान—स्त्रियों के साथ अधिक प्रसंग करने से, अधिक चिन्ता करने से, अधिक परिश्रम करने से, अतिसार उपपन्न करनेवाले योगों अथवा सारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा विषदोष से सम्पूर्ण शरीर में स्थित बल क्षुभित और प्रस्रवित होते हैं। इसलिये वे जलीय अंश अपने २ नियत स्थानों से च्युत होकर मूत्र मार्ग की ओर जाते हैं ॥ १-२ ॥

तस्य लक्षणमाह—प्रसन्ना विमला शीता निर्गन्धा भीरुज सिता ।

ध्रुवन्ति चातिमात्र ताः सा न शक्नोति दुर्यला ॥ ३ ॥

वेगों धारयित्त तासां न विन्दति सुखकचित् । शिरः शिथिलता सस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥

मूर्च्छां जुग्मा प्रलापश्च त्वमूत्रा चातिमात्रत । भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न त्सिं लभते सदा ॥५॥

सोमरोग के लक्षण—सोमरोग में जो छात्र होता है वह प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ अथवा बिना किसी दुष्टि के निर्मल शीतल, गंधरहित पीड़ा सहित, श्वेत होता है। और जब छात्र अत्यन्त बढ़ जाता है तब इससे स्त्री दुर्बल हो जाती है और वेग की वह नहीं रोक सकती, उसे सुख नहीं होता है, स्त्री के शिर में शिथिलता (स्तम्भ) हो जाती है। मुँह और तालु सूखने लगते हैं, मूर्च्छा, जंमारे तथा प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रुझ हो जाती है, भक्ष्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से त्सिं नहीं होती है ॥ ४-५ ॥

सधारणाच्छरीरस्य ता आप सोमसञ्जिता । ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥

शरीर के सधारण करने के कारण इन जलों का सोम सदा है। इस सोम के क्षय होने से हो स्त्रियों के इस रोग को सोमरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

सस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा । स पृथ सरुजः सोमो मूत्रेण खयते मुहु ॥ ७ ॥

इसी कारण सोम के क्षय हो जाने से शरीर निश्चेष्ट बना रहता है। वही सोम पीड़ायुक्त होकर बारबार मूत्र के साथ सवित होता है ॥ ७ ॥

सोमलक्षणसप्तष्ट कालातिक्रान्तयोगतः । सोमक्रान्तिक्रमेणैव क्षवेन्मूत्रमनीक्षणतः ॥

मूत्रातिसार इत्येव समाहुर्बलनाशनम् ॥ ८ ॥

सोम के लक्षणों से युक्त तथा काल के अति क्रमण होने से (पुराना हो जाने से) उस सोम भाग के निकलने के क्रम से ही बार २ मूत्र का छात्र होता रहता है। इसी को मूत्रातीसार कहते हैं। इससे बल का नाश होता है ॥ ८ ॥

### अथ सोमरोगस्य चिकित्सा ।

कदलीनां फलं पक्वं घात्रीफलरसं मधु । शर्करासहित खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

सोमरोग चिकित्सा—केला, आंवले का स्वरस, मधु तथा शर्करा मिलाकर खावे तो सोम के धारण करने के लिये यह उत्तम योग है अर्थात् इस योग से सोम वा जलीय भाग का बढ़ना सोमरोग कम होता है ॥ १ ॥

मापचूर्णं समधुर्कं विदारीमधुशर्कराम् । पयसा पाययेत्प्रातः



वृद्ध का चूर्ण, मुल्हठी का चूर्ण, विनारीकन्द का चूर्ण, मधु और शर्करा को समान लेकर प्रातः दूध के अनुपान से पान करने से सोम का उत्तम धारण होता है अर्थात् सोम रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

जलेनाऽऽमलकीबीजकफकं समघुशर्करम् । पियेद्दिनप्रयेणैव श्वेतप्रदूरनाशनम् ॥ ३ ॥

श्वेत प्रदूर चिकित्सा—मौवल के बीज को जल के साथ पीसकर विधिपूर्वक कक्क बनाकर उसमें मधु और शर्करा मिलाकर तीन दिन तक पीने से श्वेत प्रदूर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सम्प्रीदनाहाररता सम्पियेष्ठागकेशरम् । श्वेत तप्रेण सपिष्ट श्वेतप्रदूरनाशनम् ॥ ४ ॥

मूठा और भात का आहार करती हुई, तक के साथ नागकेसर को पीसकर ३ दिन तक बो खी पीती है उमका श्वेत प्रदूर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चूर्णं तु पड्वासरस्य सिलसैलेन होहयेत् । सप्तप्रेण भोषाणां श्वेतप्रदूरनाशनम् ॥ ५ ॥

कटसरैया का चूर्ण तिल के तेल में मिलाकर सात दिन तक चाटन से खियों का श्वेतप्रदूर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अथैव भूनातिसारस्य चिकित्सायाह—

स पृथ सखज सोमः खवेभूयेण चेषुहु । तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तर्प्यां सुराम् ॥ १ ॥

भूनातिसार चिकित्सा—बड़ी पीड़ा करता हुआ सोम यदि मूत्र के साथ बार बार भावे ठी इलायची के दाने और तेजपात के चूर्ण का प्रक्षेप देकर खी को सुरा पिलाना चाहिये, इससे भूना तिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

तालकन्द च खर्जूरं मधुक च विदारिकाम् । सितामधुयुषां खादेन्भूनातिसारनाशनम् ॥ २ ॥

तालकन्द का कन्द, खर्जूर, मुल्हठी और विदारीकन्द को समान भाग लेकर चूर्ण कर शर्करा और मधु के साथ खाने से भूनातिसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

चक्रमर्दकमूलं तु सपिष्ट सण्डुलाम्बुना । प्रभातसमये पीठ जलप्रदूरनाशनम् ॥ ३ ॥

चक्रवर्द के मूल को तण्डुलीकन्द के साथ पीस कर प्रातःकाल पान करने से जल प्रदूर (भूना तिसार) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कदलीवृत्तम्—

कदलीकन्दनिर्यासक्षणे शतपलान्वितम् । कदलीकुसुमं पलं धार्यं पादापशोशितम् ॥ १ ॥

घृतप्रस्य पयस्तुल्यं विषपयोलाहवक्रकम् । कविथस्य फल मौली कदलीक दधदनम् ॥ ३ ॥

न्यग्रोषादिगणैः सार्धं सर्वान्वारिसमुद्भवान् । सर्वं सम कर्पमात्रं वक्त्राहृत्वा पचेच्छनैः ॥ ३ ॥

घृत काथ च कण्ठ च पक्वा चैवापसारयेत् । प्रातःकाले विचेक्षित्यं सेषयोर्कर्पमात्रकम् ॥ ३ ॥

सोमरोग हरेद्वाह मूत्रकृष्णशर्मा तथा । प्रमेहान्विशतिं हन्यात्प्रमेहगणकसरी ॥ ५ ॥

भूनातिसारमप्यन्य व्याधिं विषयसेदु ध्रुवम् । कदलीकदनामेद घृत सर्वरुजापहम् ॥ ६ ॥

कदली घृत—वेले की जड़ का स्वरस २ द्रोण (चार भादक) लेकर इसमें वेले का मूल

सौ पल मिलाकर विधिपूर्वक काथ करे चौधारे शेष रहने पर उनाए घान लवे और गोशुन

एक प्रस्थ, गोडुग्ध एक प्रस्थ, पोपल, इलायची के दाने, लवंग फेंब का फल, जटाभासी, केले का

कन्द, लालचन्दन न्यग्रोषादि गण की ओषधियां और सभी प्रकार के कमल को एक २ कर्ष लेकर

विधिपूर्वक कक्क कर उपरोक्त सभी द्रव्य घृत, काथ तथा कण्ठादि को घटने २ मन्दाग्न पर घृत

पाक की विधि से पाक कर उतार लेवे । इस घृत को निरय प्रातःकाल एक कर्ष के प्रमाण की

मात्रा से सेवन करना चाहिये । इससे भीमरोग नष्ट होता है दाह, मूत्रकृष्ण अश्वरी तथा बोलों

प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट होते हैं । यह औषध प्रमेहरूपी क्षयी के लिये सिद्ध के समान है अर्थात्

इससे प्रमेह अवश्य नष्ट होते हैं तथा भूनातिसार भावि अन्य रोगों को भी अवश्य नष्ट करता है

यह कदलीकन्द नामक घृत सब प्रकार की पीड़ा (रोग) को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

रस—

भूनातिसारप्रसरसै पल पारदनिष्कम् । द्विनिष्कं वा चर्कं कृत्वा ज्वलने कज्जलीकृता ॥

अती समरिषः सोमरोगातिशयविनाशन ॥ १ ॥ ॥

शुद्ध पारद को एक निष्क (चार मादा) लेकर श्वेतद्रुमाण्ड के पत्तों के स्वरस में पक्के

नर स्वरस गल जावे तब उसमें २ निष्क गुद्र गंधक मिलाकर अग्नि पर ही कज्जली बरके इतमें मरिच का पूर्ण मिलाकर सेवन करने से सोमरोग तथा मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

इति सोमरोगमूत्रातिसारप्रकरणं समाप्तम्

### अथ योनिरोगाधिकारः ।

तत्र योनिन्यापद्मोपाणां निग्नानान्याह—

विंशतिर्ग्यापद्मो योनेर्निर्दिष्टा रोगसमूहे । मिष्याचरेण ताः स्त्रोणां प्रदुष्टेनाऽऽर्त्वेन च ॥

जायन्ते बीजदोषाश्च देवाद्वा शृणु ताः वृषक ॥ १ ॥

योनिन्यापद्म निदान—रोग समूह में २० प्रकार के योनि (न्यापद्म) रोग कहे गये हैं । ये रोग स्त्रियों को मिष्या आहार बिहार के कारण, आर्तव के दूषित होने के कारण, बीज दोष के कारण अथवा देव दोष से (पूर्व जन्म के फलरूप) उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

रोगिणीनां योनोर्ना नामान्याह—

उदावर्ता तथा घन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता । घातला योभिस्त्रयो घातदोषेण पञ्चधा ॥२॥

योनिरोगों का नाम—उदावर्ता बन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता और घातला ये पांच प्रकार के योनिरोग घात के दूषित होने से होते हैं ॥ २ ॥

पञ्चधा पित्तदोषेण सत्राऽऽद्री लोहितक्षया । प्रस्रसिनो वामिनो च पुत्रघ्नी पित्तला तथा ॥३॥

लोहितक्षया, प्रस्रसिनी, वामिनी, पुत्रघ्नी और पित्तला ये पांच प्रकार के योनि रोग पित्त के दोष से होते हैं ॥ ३ ॥

अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणाभङ्गपूर्विका । अतिपूर्वाऽपि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिना ॥

अत्यानन्दा, कर्णिनी, आनन्दचरणा, अचरणा और श्लेष्मला ये पांच प्रकार के योनिरोग कफ के दोष से होते हैं । आनन्दचरणा भी ही अतिचरणा भी सजा है ॥ ४ ॥

पण्ड्यपण्डिनी च महती सूचीवक्त्रा त्रिशोपिणी । पञ्चैता योनयः प्रोक्ता सर्वदोषप्रकोपतः ॥

पण्डी, अण्डिनी, महती, सूचीवक्त्रा और त्रिशोपिणी ये पांच प्रकार के योनिरोग त्रिदोष के दोष से होते हैं ॥ ५ ॥

तासोलक्षणमाह—

या फेनिलमुदावर्ता रजाः कृच्छ्रेण मुञ्चति । सा तु योनि कफेनैवमातर्धं च विमुञ्चति ॥ ६ ॥

घन्ध्या नष्टार्त्वा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना । परिप्लुतायां भवति प्राग्ग्रथमैण श्मश्रुशम् ॥

जिस योनि से आर्तव (रज) नहीं आता हो उसे नष्टार्त्वा (बन्ध्या) और जिस योनि में नित्य पीड़ा होती हो उसे विप्लुता तथा जिस योनि में मैथुन के समय अत्यन्त पीड़ा होती है उसे परिप्लुता कहते हैं ॥ ७ ॥

घातला कफदा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता । चतसृष्वपि चाऽऽघासु भयन्त्यनिलवेदना ॥

जो योनि कर्कश (रूख) स्तब्ध (कठिन) और शूल एवं तीक्ष्ण (खरें चुमाने के समान पीड़ा से युक्त होती है उसे घातला कहते हैं । इनमें (उदावर्ता, बन्ध्या, विप्लुता और परिप्लुता में) घात की पीड़ाएँ होती हैं ये घातज योनिरोग हैं ॥ ८ ॥

सदाहं क्षीयते रक्त पस्यां सा लोहितक्षया । प्रस्रसिनी क्षसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ॥९॥

पित्तजा के लक्षण—जिस योनि से शहयुक्त रक्त का क्षय होता रहे उसे लोहितक्षया और जो योनि क्षुभित होने में (मैथुन के धर्षण से) अपने स्थान से बाहर निकल आती है और कष्टपूर्वक जिससे प्रसव होता है उसे प्रस्रसिनी कहते हैं ॥ ९ ॥

सवातमुद्गिरेक्षीज वामिनी रजसा युक्तम् । स्थित स्थित हति गर्भं पुत्रघ्नीं रक्तमपयात् ॥१०॥

जो अपानवायु के विगुण होने में क्षीय सहित आर्तव को बाहर निकाल देती है उस वामिनी और जो योनि वायु द्वारा आर्तव के क्षीण हो जान पर बार बार स्थित हुए गर्भ को नष्ट कर देती है उसे पुत्रघ्नी कहते हैं ॥ १० ॥

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकवराचिता । चतसृष्वपि चाऽऽघासु पित्तलिप्तोच्छ्रयो भवेत् ॥  
जिस योनि में अत्यन्त दाह, पाक और ज्वर रहता है (तथा नील, पीत और कृष्ण वर्ण का

आर्तव निकलता है और अधिक उष्णता रहती है ) उसे पित्तला कहते हैं इन चारो योनियों में अर्थात् लोहितस्रवा, प्रससिनी, वामिनी तथा पुत्रस्थी में पित्तदोष के लक्षण प्रबल होते हैं ॥ २१ ॥ अस्थानन्दा न सतीष प्राग्भ्यधर्मेण राच्छुति । कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्म्यां प्रजायते ॥ कफजा के लक्षण—जिस योनि में मैथुन करने से सतीष नहीं होता उसे अस्थानन्दा और जिस योनि में कफ और रक्त के दोष से कर्णिका अर्थात् मासकन्द के आकार की ग्रन्थि हो जाती है ( जो की पूर्ण पुत्रावस्था से पत्र ही गर्भ धारण कर लेती है, उसके गर्भ से रुका हुआ वायु कफ तथा रक्त से मिलकर योनि में एक प्रकार की ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है, जिससे रक्त ( आर्तव ) का मार्ग रुक जाता है ) उसे कर्णिनी योनि कहते हैं ॥ २२ ॥

मैथुनेऽचरणापूर्वं पुरुषादतिरिच्यते । यदुशब्धातिचरणा तयोर्बाँज न विन्दति ॥ १३ ॥

जो योनि मैथुन के समय पुरुष से पूर ही स्वलित हो जाती है उसे अचरणा कहते हैं ( यह रोग अस्थावस्था में मैथुन करने से जियो की हो जाता है इस कारण यह स्त्री वीर्य ग्रहण नहीं करती है और इस रोग में पीठ, अङ्ग, उरु तथा वक्ष्य में पीड़ा होती है ) और जो योनि बहुत मैथुन करने पर स्वलित होती है, उसे अतिचरणा कहते हैं । ये दोनों ( अचरणा और अतिचरणा ) वीर्य नहीं ग्रहण करती हैं । ( यह रोग बहुत मैथुन करने के दोष से उत्पन्न होता है ) ॥ २३ ॥

श्लेष्मला पिच्छला योनि कण्डूप्रस्ताऽतिशीतला ।

अतसृष्वपि चाऽऽद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १४ ॥

जिस योनि में पिच्छलता, कण्डू और अत्यन्त शीतलता हो उसे श्लेष्मला कहते हैं । इन चारों योनियों में अर्थात् अस्थानन्दा, कर्णिनी, चरणा वा अचरणा और अतिचरणा में कफज लक्षण प्रबल होने हैं ॥ २४ ॥

अनातयाऽस्तनी पण्डी खरस्पर्शा च मैथुने । अतिकायगृहीतायास्तस्या जण्डिनी भवेत् ॥

त्रिदोषजा के लक्षण—जिस योनि में आर्तव न हो, जिस स्त्री को स्तन नहीं हो और उसके साथ मैथुन करने से अत्यन्त ककशा प्रतीत हो उसे पण्डी कहते हैं जो स्त्री बड़े शिश्न वाले पुरुष के साथ मैथुन करे और उसकी योनि अण्डे के समान बाहर लटक जाये उसे अण्डिनी कहते हैं ॥ २५ ॥

विभृता तु महायोनि सूचीवक्त्राऽतिसंभृता । सबलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १६ ॥

जिस योनि का मुख अत्यन्त फैला हुआ हो उसे विभृता कहते हैं । इसे ही पुत्र में महती कहा गया है जिस योनि का मुख अत्यन्त संभृत ( संकुचित ) हो उसे सूचीवक्त्रा कहते हैं ॥ २६ ॥

अतसृष्वपि चाऽऽद्यासु सबलिङ्गनिदशनम् । पद्मासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १७ ॥

पण्डी, अण्डिनी, विभृता और सूचीवक्त्रा में सभी दोषों का प्रकोप होता है । ये सर्वदोषज पाचों योनियां ( व्यापसिया ) असाध्य होती हैं ॥ २७ ॥

योनिकन्दस्य निम्नान्माह—

विवा स्यन्नावतिश्रोधादायासादतिमैथुनात् । यताश्च नखदन्ताद्यैर्वावायाः कुपिता मलाः ॥

पूयशोणितसकाश लज्जुचाकृतिसञ्चिभम् । जनयन्ति यदा योनौ जाम्ना कन्द तु योनिजम् ॥

योनिकन्द रोग का निदान—दिन में अधिक सोने से, अत्यन्त क्रोध करने से, अधिक व्यायाम करने से, अत्यन्त मैथुन करने से, नख दन्त तथा भन्व छेदक पदार्थों से छुट हो जाने से, ज्ञातदि दोष कुपित होकर पूय तथा रक्त के सङ्घ बद्दहल फल के समान आकार की ग्रन्थि योनि में उत्पन्न कर देते हैं उसे योनिकन्द रोग कहते हैं ॥ २-२ ॥

रूक्ष विवर्णं स्फुटितं यातिकं च विनिर्दिशेत् । दाहारागं यरपुत्त विद्यात्पित्तात्मकं तु तम् ॥ १८ ॥

जो योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण तथा स्फुटित हो उसे यातिक मानना चाहिये और जिस योनिकन्द में दाह हो, राग ( त्रिभिद रक्तवर्ण ) हो और ज्वर हो उसे वैतिक मानना चाहिये ॥ ३ ॥

नीलपुष्पप्रतीकाश कण्डूमातं कफात्मकम् । सर्वलिङ्गसमायुक्तं सञ्चिपातात्मकं यदेत् ॥ ४ ॥

जिस योनिकन्द रोग में योनिकन्द का वर्ण नीले पुष्प ( अलसी आदि के पुष्प ) के समान हो तथा कण्डू हो उसे कफज मानना चाहिये और जिस योनिकन्द में सब दोषों के लक्षण हों उसे त्रिदोषज मानना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा ।

व्याचिकित्सा—

भारतवाद्दानी नारी मत्स्यान्सेवेत नित्यशः । काञ्जिक च तिलान्मापामुबुधिच तथा बुधि ॥

व्याचिकित्सा—जित स्त्री को श्रुत नहीं होता हो उसे नित्य मछली खाना चाहिये और कांजी सेवन करना चाहिये, तिल, उड़क, मट्टा तथा लही पीना चाहिये ॥ १ ॥

पीत ज्योतिष्मतीपयराजिकोप्रासनं श्यहम् । शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥२॥

ज्योतिष्मती ( मालकागानी ) के पत्ते, राई, अजवाइन, असन या बिजैसार को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर तीन दिन तक पान करने से अवश्य आर्यव आना आरम्भ हो जाता है ॥ २ ॥

सगुहं श्यामतिलानां फ्रायः प्रातः सुशीलितो नायां ।

जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातद्गम् ॥ ३ ॥

कृष्ण तिलों का विधिपूर्वक क्लृप्त बनाकर उसमें गुड़ का प्रक्षेप देकर ( शीतल होने पर ) प्रातः नाल सेवन करने से बहुत दिनों का रुका हुआ भी आर्यव सहसा बिना कष्ट के आरम्भ हो जाता है ॥ ३ ॥

तिलश्लेष्कारवीणां फ्राय पीत्या च गतरजा महिला ।

सगुहं शिशिरं त्रिविनाज्जनयति कुसुमं न सन्देहः ॥ ४ ॥

कृष्ण तिल लसोदा और कालाजीरा ( कलौजी ) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्लृप्त बना कर उसमें गुड़का प्रक्षेप देकर पान करने से तीनदिन में रज आना निःसन्देह आरम्भ हो जाता है ॥

इषवाकुवीजदन्ती चपलागुहमदनकिण्वययशुकैः ।

सस्तुकुशीरैर्यतिर्योनिगता कुसुमसजननी ॥ ५ ॥

माहरि का बीज, दन्तीमूल, पीपल, गुड़, मैनफल, मुराबीज, यवाखार और सेतुड़ के दूध को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर बच्चा बनाकर योनि में धारण करने से रज आना आरम्भ हो जाता है ॥ ५ ॥

व्यायाया गर्भप्रदभेषजमाह—

बला सिता सातिबला मधुकं घटस्य शृङ्ग गजकेशर च ।

पुस-मधुपीरपूतैर्निपीय व्याया सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ १ ॥

गर्भप्रद भेषज—श्वेतबला ( बरियारा ) अतिबला, मधुआ, बटका अङ्कुर ( बरोह ) और नागकेशर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर वा चूर्ण कर घृत और मधु में मिलाकर गोदुग्ध के अनुपान करने से व्याया को गर्भधारण होकर उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अश्वगंधाकषायेण सिद्धं दुग्धं पूतान्वितम् । श्रुतुस्नाताऽङ्गना प्रातः पीत्या गर्भं दधाति हि ॥

अश्वगंध के कषाय से खोरपाक विधि से गोदुग्ध सिद्ध कर उसमें गोधृत भी मिलाकर श्रुतु स्नान के पश्चात् प्रातः काल स्त्री यदि पीवे तो उसे गर्भधारण होता है ॥ २ ॥

पुष्पोद्दृष्टं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धेन कन्यया । पिष्ट पीत्या श्रुतुस्नाता गर्भं घृष्टेन संशयः ॥ ३ ॥

पुष्प नक्षत्र में उखाड़े हुए लक्ष्मणा के मूल को कुमारी कन्या से गोदुग्ध में पीसवा कर श्रुतु से स्नान की हुई स्त्री यदि पीवे तो उसे अवश्य गर्भधारण होता है ॥ ३ ॥

कुरण्टमूलं धातक्या कुसुमानि घटाङ्कुरा । नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

पियावासा वा कटसरेया की जड़, धाय का पुष्प, घट वृक्ष के अङ्कुर नील कमल को समान भाग लेकर गोदुग्ध में पीसकर पान करने से गर्भधारण होता है ॥ ४ ॥

याऽबला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण सहितं हितायना ।

श्वेतता विशिखपुङ्खया पुस सा सुस जनयतीह नान्यथा ॥ ५ ॥

जो स्त्री पारस पीपल को नीरा के चूर्ण के सहित श्वेत सरपुंखा को मिलाकर पीती है और सहितकर पदार्थ भोजन करती है उसे अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

पद्ममेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गभिणी । पीत्या पुत्रमवाप्नोति धीर्यवन्तं न संशयः ॥ ६ ॥

जो गर्भिणी स्त्री पलास के एक पत्ते को गोदुग्ध में पीसकर नित्य पान करती है उस पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होता है इतमें संशय नहीं है। अर्थात् गर्मस्थिर होने पर यह योग प्रयोग में लाने से अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

शुक्रसिन्धुमूलं मर्ष्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम् ।

पीत्वाऽयोभयलिङ्गीयोज कन्यां न सूते स्त्री ॥ ७ ॥

सुषरासेम वा केवाच की जड़ और कौष का गुद्दा दूध के साथ पीसकर पीवे भयवा ईश्वर सिन्धी के बीज को दूध के साथ पीसकर पीवे तो स्त्री कन्या नहीं उत्पन्न करती अर्थात् गर्भधारण के पश्चात् इस योग के सेवन से पुत्र अवश्य उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

श्रीरेण श्वेतशृङ्खलीमूल नासापुटे पियेत् । पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामया कन्यवार्थिनी ॥ ८ ॥

श्वेत पुष्प की बड़ी कटेरी की जड़ को गोदुग्ध के साथ पीसकर पुत्र की इच्छा से दक्षिणा नासा से पान करना चाहिये और कन्या की इच्छा से वाम नासा से पान करना चाहिये इससे संतान अवश्य होती है ॥ ८ ॥

लक्ष्मणा क्षीरसिन्धुका मस्ये पाने प्रदाप्यताम् । तेन साऽपि लभेत्पुत्रं पुत्रो विद्याधरो भवेत् ॥

लक्ष्मण को गोदुग्ध में पीसकर नस्य लेने से और पान करने से बच्चा को भी गर्भ होता है और विद्वान पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

वामनाख्या भवेत्कन्या पुत्री दक्षिणा भवेत् । रक्तेऽधिके मवेत्कन्या पुत्रः शुक्लेऽधिके भवेत् ॥

पुत्र और पुत्री का कारण—गर्भ यदि गर्भाशय के वाम नाडी में स्थित होता है तो कन्या होती है और दक्षिणा नाडी में स्थित होता है तो पुत्र उत्पन्न होता है, तथा स्त्री का रज यदि अधिक हो तो कन्या और वीर्य अधिक हो तो पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

शुक्रशोणितमिश्रेण भवेद्योऽसौ मपुसकः । परण्डस्य तु बीजनि मातुल्लङ्घस्य चैव हि ॥

सर्पिषा परिपिष्टानि पिवेत्कर्मदानि च ॥ ११ ॥

वीर्य और रज के समान मिश्रण से जो संतान होती है वह नपुंसक होती है। परण्ड के बीज और विनोद नीबू के बीज को समान लेकर गोघृत के साथ पीसकर पान करने से गर्भ धारण होता है ॥ ११ ॥

लङ्काकार लक्ष्मणायाश्च मूल कण्ठे बद्ध सर्पिषा नस्ययोगात् ।

पीत्वा सूते पुत्रमस्य तथीर्यं पश्चाद्वन्यानप्यमन्दाङ्गयष्टि ॥ १२ ॥

लङ्का के आकार की लक्ष्मणा के मूल को लेकर कण्ठ में बांधने से तथा गाव के घी के साथ उसके चूर्ण को मिलाकर नासाद्वारा पान करने से स्त्री को अत्यन्त पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होता है तथा उसका शरीर भी क्षीण नहीं होता पश्चात् भी अन्यान्य अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

तिलतैलदुग्धफाणिसदधिघृतमेकत्र पाणिना मपितम् ।

पीत सपिप्पलीक जनयति पुत्रं पर महिला ॥ १३ ॥

तिल का तेल, गोदुग्ध, फाणिस, दही और घी इन सबको एकत्र कर हाथ से मथ कर इसमें पीपल का चूर्ण मिलाकर पान करने से स्त्री उत्तम पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥

पूकस्य मातुल्लङ्घस्य बीजानि सकलान्यपि । ऋतवन्ते दुग्धपिष्टानि पीत्वाऽऽप्नोत्यवला सुतम् ॥

एव विनोद नीबू के बीजों को लेकर गोदुग्ध के साथ पीसकर ऋतु के अन्त में (चतुर्थ दिवस) पान करने से स्त्री को पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

फलपुत्रम्—

मक्षिणा मधुकं कुष्ठ त्रिफला शर्करा चला । मेदे पयस्या काकोली मूलं चैशभगन्धजम् ॥ १५ ॥

राजमोदा हरिद्रे द्वे म्रियङ्गु कटुतोहिणी । उरपल कुमुद लाजा काकीक्षयी चन्दनद्वयम् ॥ १६ ॥

पूठेयां कार्पिकैर्मांगैर्घृतमस्यं विषाचयेत् । दातावरीरस शीरं पूनाह्यं चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

सर्पिरेसधर पीत्वा स्त्रीषु नित्यं श्रूपायते । पुत्राञ्जनयते क्षीरान्मेघाद्याग्निमयदर्शनाम् ॥ १८ ॥

या चैवास्तिरगर्मां स्वापुत्रं वा जनयेन्मृतम् । अहपायुषं वा जापेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥

यो निरोगे रजोक्षये परिखाये च दास्यते । प्रजावधनमायुष्यं सर्वप्रहनिवारणम् ॥ १९ ॥

भाग्ना फलघृतं श्वेतदुग्धमपि परिशीलितम् । अनुक्त लक्ष्मणामूलं दिपमस्यत्र विक्रितकामः ॥

जीवहृत्सैक्यर्णाया घृत एवम प्रयुज्यते । आरण्यगोमयेनेह वद्विज्वाला च दीयते ॥ ८ ॥

फलघृत—मबीठ, गुल्हठी, कूठ, हरद, बरेहा, आँवला, शर्करा (चीनी), दरियारा, मेदा, महामेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, भसगध की जड़, अजमोदा अथवा अवारन, हल्दी, दाहहलदी, प्रियंगु (मालकांगनी) कुटकी, नीलबमल कुमुदनी, लाख (लादी), काकोली, क्षीरकाकोली, लालचन्दन और इवेत चन्दन को एक २ बर्ष केर विधिपूषक पस्क कर एक प्रस्थ गोघृत के साथ मिलाकर पाक करे और इसमें शतावरो या रस ४ प्रस्थ, तथा गोदुग्ध ४ प्रस्थ को भी मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर लेवे इस घृत की पान करके मनुष्य शिर्षों की गिराय प्रसन्न कर सकता है । तथा इससे वीर-मेधावी तथा देखने में सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं । इससे जो स्त्री अस्थिर गर्भा हो अर्थात् जिस गर्भस्थिर नहीं रहता हो अथवा जिन्हें मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते हैं (मृतवत्सा हो) अथवा अस्वायु पुत्र होते हैं अथवा जिसे केवल कया ही उत्पन्न होगी हो उनके लिये तथा योनिरोग में, रजोदोष में, परिधाव (प्रदरादि) में यह घृत उत्तम कहा गया है । इससे सतान की वृद्धि होती है, आयु बढ़ती है और सब प्रकार के ग्रहों का निवारण होता है इस घृत का नाम फल घृत है इसे अश्विनी कुमारों ने निर्मित किया है । इसमें लडमणा मूल मिलाना उत्तम है इस औषध में एक बर्ष की तथा जीवित बत्सा (जिसका बहदा जीता हो) ऐसी गौ का घृत प्रयोग में लाना चाहिये तथा इन के गोमय (कण्डा) के भाँचे पर घृत सिद्ध करना चाहिये ॥ १-८ ॥

गर्भनिवारणम्—

विष्पलिविद्वद्वृणसमचूर्णं या विधेःस्पयसा । श्रुतुसमये न हि तस्या गर्भं सजायते कापि ॥

पीपल, वायविन्ग और शुद्ध सोदाग्य को समान भाग देकर, पूर्ण कर श्रुतु के समय दूध के साथ पान करे तो उसे कभी गर्भ नहीं स्थिर होता है ॥ १ ॥

आरनालपरिपेपितम्वह या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी ।

सपुराणगुडमुष्टिसेविनी सा दधाति नहि गभमहना ॥ २ ॥

बाँजी के साथ ओदल के फूल को पीस कर जो स्त्री श्रुतु के समय तीन दिन खाती है तथा पुराने गुड को एक पल प्रतिदिन खाती है वह गर्भ नहीं धारण करती है ॥ २ ॥

तैलाविलसै घयलपटसादौ निघाय रण्डा निजयोनिमये ।

नरेण सार्धं रतिमातनोति या न सी हि गर्भं लभते कदाचित् ॥ ३ ॥

जो स्त्री मैथुन के पूर्व सैपानमक के खण्ड को तल में भिगो कर अपनी योनि में रख लेती है और पश्चात् पुत्र्य के साथ मैथुन करती है उसे कभी गर्भ नहीं स्थिर होता है ॥ ३ ॥

सण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा सण्डुल्यारिणा । श्रवन्ते तु यद्द पोत्वा वन्धा कुर्वन्ति योपित ॥

चौराई शाक को मूल को धावन के जल के साथ पीस कर श्रुतु के अन्त में जो खा, तीन दिन पान कर लती है उसका गर्भ स्थिर नहीं होता है ॥ ४ ॥

धूपिते योनिरग्ने तु निम्बकाष्टैश्च युक्तित् । श्रवन्ते रमतं या स्त्री न सा गर्भसंवाप्नुवात् ॥

जो स्त्री श्रुतु के अन्त में नीम की लकड़ी से योनि के अन्दर में युक्तिपूषक धूप देकर मैथुन कराती है उसे गर्भ स्थिर नहीं होता है ॥ ५ ॥

तालीसगैरिके पीते विडालपदमात्रके । दाताम्बुना चतुर्थंशङ्खि यन्प्या नारी प्रजायते ॥ ६ ॥

जो स्त्री तालीसपत्र और गेरू को समान भाग केर एक बर्ष की मात्रा में श्रुतु के चौथे दिन नीतल जल के साथ पान करती है वह बच्चा हो जाती है ॥ ६ ॥

आप कृष्णचतुदर्या धतुरस्य च मूलकम् । कटौ बद्ध्वा रमेत्कान्तं न गर्भः संभवाकचित् ॥

मुक्ते न लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम् । तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः संभवेकचित् ॥ ८ ॥

धतूर की जड़ की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को लेकर कमर में बाँधकर जो स्त्री पति के साथ मैथुन करती है उसे गर्भ नहीं धारण होता है और जब उसे खोल देगी तो गर्भ स्थिर हो जावेगा ऐसा नागार्जुन ने कहा है । यदि धतूरे की जड़ के पूर्ण को योनि में रख लेवे तो कभी गर्भ स्थिर नहीं होगा ॥ ८ ॥

गर्भपातनविधि—

गृजनबीज टङ्कत्रितय तावच्च दादिमीमूलम् । गुयरीटङ्कहितय सिद्धं टङ्कयुगल च ॥ १ ॥

समर्थं स्वस्वमध्ये तोयेनैतस्त्रिपीय गर्भवती । रण्डा योपिर्भं येद्या या पातयत्याशु ॥ २ ॥

गर्भपातन विधि—गाजर के बीज तीन टक्के, अनार की जड़ ३ टक्के, तुवरी ( राई या अरहर की दाल ) २ टक्के और सिन्दूर २ टक्के ( ८ मास ) लेकर विधिपूर्वक पीसकर जल के साथ गर्भवती को पान करे तो गर्भ गिर जाता है । विधवा को अथवा वेश्या को इस योग से शीघ्र गर्भ गिरा सकती है ॥ २-२ ॥

निर्गुण्डीद्रवसपिष्ट चित्रमूल मधुप्लुतम् । कर्पं पीत्वा क्षयरयाशु गर्भं रण्डा कुलोद्भवम् ॥ ३ ॥

चीते की जड़ को सम्माल के स्वरस के साथ पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर एक कर्प के प्रमाण की मात्रा से पान करने से गर्भ शीघ्र गिर जाता है ॥ ३ ॥

काण्डमेरण्डपत्रस्य योनावष्टाशुल चिपेत् । चतुर्मासोद्भवो गर्भं क्षवत्येव हि तत्सणात् ॥ ४ ॥

परण्ड के पत्तों की उड़ी की आठ अङ्गुल तक योनि में प्रवेश कराने से चार मास का भी गर्भ हो तो वह उसी क्षण क्षयित हो जाता है ॥ ४ ॥

येवालये तु यश्चूर्णं कर्पक तोयपेयितम् । पिषेत्र्गर्भवती मारी गमः क्षवति तत्सणात् ॥ ५ ॥

देव मन्दिर के चूने को एक कर्प लेकर जल के साथ पीस कर गर्भवती को यदि पीवे तो उसी क्षण गर्भ क्षय हो जाता है ॥ ५ ॥

आलोढ्य काञ्चिकैर्घोटीपुरीष घृष्टगालितम् । ससिन्धुमासुरीतेलविपमागतगर्भदुत् ॥ ६ ॥

घोषी के पुरीष ( लीद ) को काँची में घोलकर कपड़े में छानकर उसमें सेंधानमक, जवारन, राई तेल और शुद्ध विष को मिलाकर पिलाने से स्थिर गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

आर्वाश्टयोनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा—

सासु योनिषु चाऽऽघासु स्नेहादिक्रम इष्यते । वसत्यभ्यङ्गपरीपेकप्रलेपाः पित्तुधारणम् ॥ १ ॥

वातज योनि की चिकित्सा—वातज योनिरोगों में स्नेहादि चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वस्ति कर्म, अभ्यङ्ग ( तेल मर्दानादि ), परिपेक, प्रलेप और पित्तुधारण ( फाहा आदि धारण करना ) लाभदायक है ॥ १ ॥

नतवातांकिनीकुष्ठसैन्धवामरदासुभिः । तिलतेल पचेन्नारी पिषु तस्य विधारयेत् ॥ २ ॥

विप्लुतायां सदा योनौ ष्यया तेन प्रशांभ्यति । वातलां कर्कशां स्तब्धामक्षरस्पर्शां सयैव च ॥ कुम्भीस्वेदैदपचरेत्स्वर्धरमनि सङ्घटे । धारयेद्वा पिषु योनौ तिलतेलस्य सा सदा ॥ ४ ॥

तगर, बड़ी कटेरी, कूठ, सेंधानमक और देवदारु को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कस्क कर तेल पाक की विधि से तिल के तेल में तेल सिद्ध कर इसका पित्तु धारण करने से ( फाहा योनि में रखने से ) स्त्री की विप्लुता, योनि की ष्यया ( पीड़ा ) शान्त होती है । वातला, कर्कशा, स्तब्धा और अक्षर स्पर्श योनि को कुम्भी स्वेद एक बन्द घर में रख कर देना चाहिये अथवा सदा तिल के तेल वा पित्तु ( फाहा ) योनि में धारण करना चाहिये ॥ २-४ ॥

रासनाशुग्राघृषकैर्योनिशूलहरं पयः । गुहृषीत्रिफलादन्तीकायैश्च परिपेषनम् ॥ ५ ॥

रासना, अशुग्रा और अरुसा को समान भाग लेकर दुग्धपाक विधि से दूध में सिद्ध कर पान करने से योनिशूल नष्ट होता है । गुहृष, आमला, हरड़, बरेड़ा और दन्तीमूल के बने हुए काय से योनि का सिंचन करने से भी योनिशूल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

विष्ववमाकवज बीजककर्क मधेन पापयेत् । तेन योनिगत शूलमाशु शांभ्यति योपिताम् ॥

बेल का गूदा और मांगरे के बीज को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कस्क कर मदिरा के साथ क्षियों को पिलाने से योनिशूल शीघ्र ही शमन हो जाता है ॥ ६ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत् । सौवर्चलेन सयुक्तां योनीशूलनिवारिणीम् ॥

कृष्णजीरा और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कस्क बनाकर उसमें सौवर्चल ममक मिलाकर यथेष्ट मात्रा में मदिरा के साथ पिलाने से योनिशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पित्तलानां च योनीनां सेकाम्यङ्गपित्तुक्रियाः । क्षीताः पित्तहरा कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥

पित्तज योनि चिकित्सा—पित्तज योनियों में सिंचन, अभ्यङ्ग, तथा पित्तु ( फाहा ) धारण करना चाहिये, शीतल तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और स्नेहन के लिये ओषधि सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रससिनीं घृताभ्यक्तां शीरस्विघ्नां प्रवेशयेत् । विधाय वेसवारेण सतो यन्ध समाधरेत् ॥ ९ ॥  
 प्रससिनी योनि को घृत से चिकनी करके दूध के बाष्प से स्वेदित कर अन्दर प्रवेश करा देना  
 चाहिये और वेसवार सेवन कराकर लंगोट आदि से बँधवा देना चाहिये ॥ ९ ॥

वेसवार —

गुण्ठीमरीचकृष्णामिर्घांयकाम्राजिदादिभिः । पिप्पलीमूलसयुक्तैर्वेसवार स्मृतो वृधैः ॥१॥

वेसवार—सोठ, मरिच, पीपल, धनियाँ, बीरा, अनारदाना तथा पिपरा मूल को समान भाग  
 लेकर चूर्ण कर एकत्र मिलाकर रख लेवे । इसे वैध वेसवार कहते हैं ॥ १ ॥

घाघ्रीरसं सितायुवत योनिदाहं पिथेत्सदा । सूर्यक्रान्ताभय मूल पिथेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥२॥

योनिदाह में भाँवले के स्वरस में श्वेत शर्करा मिलाकर पीना चाहिये अथवा तण्डुलोदक में  
 सूर्यक्रान्ता ( दधमुखी ) के मूल को पीसकर पीना चाहिये ॥ २ ॥

योन्यां तु पूयघ्रायिण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः । सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः सम्पूर्णं हितम् ॥

जिस योनिसे पूय निकलता हो शोधन द्रव्यों से बना हुआ गोमूत्र तथा सेधानमक से युक्त  
 पिण्डों से पूरण करना चाहिये अर्थात् उपरोक्त विधि से पिण्ड बनाकर धारण कराना चाहिये ॥३॥

पिचपक्ष घृताभ्यक्ताश्चन्दनाम्भसमुत्थिता । योनौ स्थाप्या क्षिया दाहदृच्छूपाकप्रदान्तये ॥

घिसे हुए चन्दन के जल में मिगोये हुए तथा घृत से त्रिन्ध किये हुए पिण्ड ( रुई के फाहा )  
 को धारण करने से योनिदाह तथा योनिपाक शमन होता है ॥ ४ ॥

योन्यां घलासज्जलायां सर्वं रूचोष्णमौषधम् । तैल सीधु पषान्न च पथ्यारिष्ट च योजयेत् ॥

कफज योनि चिकित्सा—कफज योनि रोग में सब प्रकार के रूच्य तथा ऊष्ण औषधि का  
 प्रयोग करना चाहिये और तैल, सीधु, यव अन्न का पथ्य एवं अम्यारिष्ट का प्रयोग करना  
 चाहिये ॥ ५ ॥

गुद्दुचीत्रिफलादन्ती कथितोदकधारया । योनिं प्रचालयेत्तेन ततः कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

योनि कण्डू में—गुरुच, आमला, हरड़, बहेडा और दन्तीमूल के विधिपूर्वक बने बवाय को  
 धारा से योनि का प्रक्षालन करना चाहिये, इससे सुजली का शमन होता है ॥ ६ ॥

सुद्वपुष्प सखदिर पय्या खासीफल तथा । वृकीपुर्णं च संचूर्ण्यं वज्रपूत सिपेन्नो ॥

योनिर्मयति सकीर्णां म ध्रुवेच जल ततः ॥ ७ ॥

साव चिकित्सा—मूंग के फूल, खैर ( सार ), हरड़, जायफर, पाठा ( पुरहनपाटी ) और  
 पूगीफल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर रख में धानकर भग में छोड़ना चाहिये ।  
 इससे योनि संकीर्ण ( संकुचित ) हो जाती है और उससे जल का साव नहीं होता है ॥ ७ ॥

कपिकच्छुमर्वं मूल काथयेद्विधिनाऽऽम्भसा । योनिः सकीर्णतां याति काथेनानेन सावमात् ॥

कपिकच्छु ( केवाँच ) के मूल का बवाय बनाकर उससे धोने से योनि संकुचित हो जाती है ॥  
 पिप्पल्या मरिचौर्मापै शताद्भाकुष्टसैन्धवै । वरिस्तुह्या प्रवेशिन्या धार्या योनिविशोधनी ॥

योनि शोधन—पीपल मरिच, उदद, सीफ, कूठ और सेधानमक को समान भाग लेकर  
 पीसकर विधिपूर्वक प्रदेशिनी अकूली के समान बर्तन बनाकर योनि में धारण करने से योनि का  
 शोधन होता है ॥ ९ ॥

सुरामण्डोस्थितो धार्यः पिबुर्वानौ कफारमनि । कण्डूपैच्छिद्रह्यसंघ्रायनौधिस्यविनिश्चये ॥

कफ योनि में सुरा के ऊपर के द्रव पदार्थ ( भाग ) में रुई मिगो कर बसका पिबु ( फाहा )  
 धारण करना चाहिये । इससे योनि को कण्डू, पिच्छिलता, साव और शिथिलता की निवृत्ति  
 होती है ॥ १० ॥

सुगंधानां पदार्थानां कक्कचूर्णैः शृतैः कृतः । योनौ दौर्गन्ध्यशमनः पूयपैच्छिद्रह्यमाजि च ॥

सुगन्धित पदार्थों के कक्क, चूर्ण तथा बवाय के व्यवहार से ( लेप, पूरण तथा धावन प्रयोग से )  
 योनि को दुर्गन्धि, पूय और पिच्छिलता नष्ट होती है ॥ ११ ॥

स्निपातसमुत्थार्यां कार्या योन्यां सदा क्रियाः । साधारणा वृशाद्धी श्रीमदाकापिचुर्दितः ॥

स्निपातज योनि चिकित्सा—स्निपातज योनि में सदा साधारणतः त्रिदोष नाशक



विक्रिस्ता करनी चाहिये और सन्निपातज योनि में दशमूल तथा मुण्डी के काथ का पिचु ( पाहा ) धारण करना हितकर होता है ॥ २२ ॥

जीरकद्वितीय कृष्णा सुपवी सुरभिर्वचा । वासकसैधवचापि यवघातो यवानिका ॥ १३ ॥  
 पर्या चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्टा खण्डेन मोदकम् । कृत्वा सादेयधाघृहि योनिरोगादिमुच्यते ॥

जीरकादि मोदक—द्वेत जीरा, कृष्ण जीरा, पीपल, सुपवी ( छोटी करीची या कृष्ण जीरक ) सुरभी ( राह अथवा जायफल ), वच, अरुसा, सैधानमक, यवाखार तथा जवाहन को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण करके गोघृत के साथ थोड़ा भूनकर खाद मिलाकर मोदक प्रस्तुत कर अग्नि बल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से योनि रोग से छुटकारा होता है अर्थात् इस जीरकादि मोदक से योनिरोग नष्ट होता है ॥ १३-१४ ॥

मूषककायसंसिद्धिस्तिलतैलकृतं सिचु । भाशयेद्योनिरोगास्तास्ततो योनौ न संशय ॥ १५ ॥

मूषक तैल—मूसक ( मूस ) के मांस के काथ के साथ तैलपाक विधि से तिल के तैल को सिद्ध कर घसका पिचु ( पाहा ) योनि में धारण करने से योनिरोग निश्चय ही नष्ट ही जाते हैं ॥ १५ ॥

त्रिफलादिघृतम्—

त्रिफला द्वौ सहचरौ गुहृची सपुनर्नवाम् । शुक्रनासा हरिद्रे द्वे रास्नामेदाशताधरी ॥ १ ॥  
 कक्याकृत्य घृतप्रस्थ पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । तस्मिन्न पाययेन्नारी योनिरोगप्रसात्तये ॥ २ ॥

त्रिफलादिघृत—भाँवला, हरद, बहेड़ा, दोनों सहचर ( पीली और नीली पृषक् २ ) गुरुच, पुनर्नवा, कौआठोटी इलदी, दारइलदी, रासना, मोदा और शवावरी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कक्य कर पक, प्रस्थ ( चतुर्गुण ) मूच्छित गोघृत और घृत से चतुर्गुण गोदुग्ध में मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्धकर स्त्री को पान करने से योनिरोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

योनिकन्दस्य चिकित्सा—

यैरिकाग्रास्थिजठररजज्वलनकटुफलाः । पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णं क्षौद्रसमन्वितै ॥ १ ॥

योनिकन्द चिकित्सा—गेरु, आम, की गुठली, पुरानी इलदी, सीबीराधन अथवा रसवत और कायफल समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु मिलाकर योनि में पूरण करने से योनि कन्द नष्ट होता है ॥ २ ॥

त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेचयेत् । प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ २ ॥  
 भाँवला, हरद और बहेड़ा के बने काथ में मधु का प्रक्षेप कर सिंचन करने से योनि कन्द नष्ट होता है ॥ २ ॥

आशोर्मांसं सपदि यद्गुघ्रा सूक्ष्मखण्डीकृतं तत् तैले पाच्यं प्रवृत्ति मियत्त पाययेतेन सम्यक् । संतैलाकं घसनमनिर्घो योनिभागे दधाना सत्पं मीहाजनकमदला योनि कन्दं निहन्ति ॥ ३ ॥

मूषकादि तैल—मूस की मारकर शीघ्र ही खर २ करके तैल में डालकर पकाये, मलीमौलि मांस पक जाने पर उत्तोर कर छाने लेंवे । इस तैल में बख्खे मिमोकर निरन्तर योनि में धारण क्रिय करने से लज्जाकारक योनि कन्द रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ स्त्रीगर्भरोगनिदानम् ।

तत्र गर्भस्य स्थावपातयोनिदानमाह—

भयामिवात्ताप्तीष्णोष्णपानाशननियेषणाए । गर्भे पतति रक्तस्य सखल दग्ना भवेत् ॥ १ ॥

गर्भघात निदान—भय से, अभिघातादि हो जाने से, तीक्ष्ण तथा क्षण पदार्थों के खाने-पीने तथा सेवन करने से गर्भघात की संभावना होती है । गर्भघात के समय प्रथम शूल के सदृश रक्त आन लगता है ॥ १ ॥

स्थावपातयोरवधिमाह—

अर्थात् चतुर्मासतो मासाद्यद्येद्वैर्भवतिद्वयः । तत स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमपद्योः ॥ २ ॥

गर्भघात की अवधि—गर्भापान से चार मास के अन्दर यदि गर्भ गिरता है तो उसे गर्भघात कहते हैं क्योंकि चारमास तक गर्भद्रव अवरुद्धा में रहता है । उसके बाद पायवों और घटवों मास में यदि गर्भ गिरता है तो उसकी गर्भघात कहते हैं क्योंकि चार मास के पश्चात् गर्भ स्थिर शरीर का हो जाता है ॥ २ ॥

गर्भपातस्य वृष्टात् दर्शयति—

गर्भाऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिषु फलं पतति चणेन ॥ १ ॥

असमय में गर्भपात—जिस प्रकार वृष्ट में लगा हुआ पका फल किसी प्रकार के आपात से गिर पड़ता है उसी प्रकार गर्भ भी अभिघात, विषमाशन और पीड़ा आदि से गिर जाता है ॥१॥

गावप्रकाशाद्गर्भपातस्योपद्रवानाह—

प्रद्यत्समाने गर्भं स्यादाहः शूलश्च पार्श्वयोः । पृष्ठे रुक्मद्रवानाहौ मूत्रसङ्गश्च ज्ञायते ॥ १ ॥

गर्भपात के उपद्रव—गर्भाभाव होने के समय दाह, पार्श्वभाग में शूल, पीठ में पीडा, प्रदर, आनाह और मूत्रावरोध आदि उपद्रव होते हैं ॥ १ ॥

गर्भस्य स्थानान्तरगमने चोपद्रवाणाह—

स्थानान्तरगमनान्तर तस्मिन् प्रयास्यपि च जायते । आमपकाशयादौ तु चोमः पूर्वोऽप्युपद्रवा ॥

गर्भ के स्थानान्तर गमन में उपद्रव—जब गर्भ एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है तब भी आमपकाश तथा पकाश आदि में खोभ उत्पन्न होता है तथा पूर्व के दाह आदि उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

प्रसवोचिते काले यथा मूढो गर्भां भवति सदाह ।

तत्र मूढगर्भस्य निदानसंप्राप्तिपूर्वकं सामान्यं लक्षणमाह—

मूढ करोति पवनं खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम् ।

मुष्णोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भसंख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ १ ॥

मूढ गर्भ के लक्षण—अपने दूषित होनेवाले कारणों से दूषित हुआ मूढ ( निश्चल ) वायु गर्भाशय में अवरुद्ध होकर गर्भ को मूढ कर देता है अर्थात् गर्भ की गति को रोक देता है उसे मूढ गर्भ कहते हैं । उस मूढ गर्भ से योनि और जठरादिकों में शूल और मूत्रावरोध होता है । उस समय दूषित वायु से मुग्ध ( दडा अथवा उलटा हुआ ) गर्भ कहीं हुई संरथा का भी उल्लंघन करके ( सख्याभेद आग कहेगे ) अनेक प्रकार से योनि के मुख पर उपस्थित होता है ॥ १ ॥

तत्राष्टौ प्रकारानाह—

द्वारं निरुद्धशिरसा जठरेण कश्चिद्विच्छिद्यरीरपरिवत्तनकुक्कुजदेहः ।

पुकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तियग्गसो भवति कश्चिद्वाह्मुखोऽन्यः ॥ १ ॥

पार्श्वोपसृष्टिसिगतिरेति तथैव कश्चिद्विर्यष्टया भवति गर्भगतिं प्रसूती ॥ २ ॥

मूढ गर्भ के भेद—कोई मूढ गर्भ योनिद्वार को ( विपुल ) शिर से अवरुद्ध करता है, कोई ( आध्मात ) उदर से योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई शरीर के परिवर्तित ( उल्टा ) हो जाने से कुक्कुज पन द्वारा योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई एक भुजा से योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई दोनों बाहुओं से योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई नीचे मुख किये योनिद्वार को अवरुद्ध करता है और कोई पाशों के बंग होने से विगुण गति होकर योनिद्वार को अवरुद्ध करता है । इस प्रकार मूढ गर्भ की आठ गतियां होती हैं ॥ १-२ ॥

सुश्रुस्तत्वष्टौ प्रकारान्तराण्याह—

कश्चिद्द्वाम्यां सन्धियम्यां योनिमुखं प्रपद्यते ॥ १ ॥

कश्चिदाभुग्नैकसन्धियरितरेण सकम्पा ॥ २ ॥

कश्चिदाभुग्नसन्धियरिः स्फिग्द्वेदोऽन्येन तिर्यग्गत ॥ ३ ॥

कश्चिदुदरपार्श्वोपसृष्टानामन्यतमेन योनिद्वारं पिघायावतिष्ठते ॥४॥

अन्तः पार्श्वोपसृष्टशिराः कश्चिदेकेन बाहुना ॥ ५ ॥

कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन ॥ ६ ॥

कश्चिदाभुग्नसन्धियो हस्तपादक्षिरोभिः ॥ ७ ॥

कश्चिदेकेन सकम्पा योनिद्वारं प्रतिपद्यतेऽपरेण पापुमिति ॥ ८ ॥

सुश्रुत के मत से मूढ गर्भ के भेद—कोई मूढ गर्भ दोनों सन्धियों ( जांघों ) से पहले योनि के मुख में प्राप्त होता है । कोई एक सन्धि मुड़ी हुई और एक सीधी इस अवस्था में योनि मुख पर उपस्थित होता है । कोई सन्धि तथा शरीर को समेट कर स्फिग् प्रदेश ( घुटह ) से विरह्या

होकर योनिमुख पर उपस्थित होता है । कोई वदर, पार्श्व तथा पीठ इनमें से किसी एक अंग से योनि मुख पर उपस्थित होकर योनिमार्ग को अवरुद्ध कर स्थित होता है । कोई पार्श्व के अन्त्यन्तर शिर को झुका कर अथवा उलट कर एक बाहु से ही योनि मुख पर उपस्थित होता है । कोई शिर को टेढ़ा कर दोनों बाहुओं से योनि मुख पर उपस्थित होता है कोई मध्य भाग से टेढ़ा होकर हाथ पैर तथा शिर सहित ( एक साथ ) योनि मुख पर उपस्थित होता है । और कोई एक जंघा से योनि मुख पर उपस्थित होता है और दूसरे जंघा से गुदा के द्वार पर उपस्थित होता है ॥ १-८ ॥

अपराश्वतस्यो गतीराह—

सकीलकः प्रतिस्त्रुरः परिघोऽथ धीजस्तेषूष्मबाहुचरणः शिरसा च योनौ ।

सङ्गी च यो भवति कीलकपरस कीलो । इत्यै स्त्रुरै प्रतिस्त्रुरः स हि कायसङ्गी ॥ १ ॥

गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च धीजकाक्यो योनौ स्थितः स परिघः परिघेण हृदयः ॥ १ ॥

मूढ गर्भ के और चार भेद—मूढ गर्भ के सकीलक, प्रतिस्त्रुर, परिघ और भोज ये चार गतियाँ और होती हैं । इनमें जिस मूढ गर्भ में बाहु, पैर तथा शिर ऊपर होकर कील की भाँति आकर योनि द्वार को अवरुद्ध कर लेता है उसे सकीलक मूढगर्भ कहते हैं और जिस मूढ गर्भ में प्रथम हाथ-पैर बाहर दिखाई देने शेष शरीर योनिमुख पर एक जावे उसे प्रतिस्त्रुर कहते हैं । तथा जिस मूढ गर्भ में दोनों भुजाओं के मध्य में शिर होकर योनिद्वार पर आकर अवरुद्ध हो जाता है उसे भोजक कहते हैं और जिस मूढ गर्भ में योनिमुख पर परिघ कपाट बन्द करने वाले कुण्डे ढंके की भाँति तिरछा आकर अट जाता है उस परिघ कहते हैं ॥ १ ॥

परिघमाह, परिघस्य लक्षण भोजेऽपि पठयते तथया—

योनिमाहृत्य यस्तिष्ठेत्परिघो गोपुर यथा । तथान्तर्गर्भमायान्तं विद्यात्परिघसञ्चितम् ॥ १ ॥

भोज क मत से परिघ के लक्षण—जिस प्रकार द्वार के कपाट में ढंका अड़कर कपाट को अवरुद्ध कर देता है उसी प्रकार भीतर से गर्भ तिछाँ टेढ़ा योनिद्वार पर आकर अट जाता है और प्रसव अवरुद्ध कर देता है उस मूढगर्भ को परिघ कहते हैं ॥ १ ॥

असाध्यमूढगर्भगमिण्योलक्षणमाह—

अपविद्धनिरा या तु शीतान्नी निरपयथा । नीलोद्भवतिरा हन्ति सा गभ स च तां तथा ॥१॥

असाध्य मूढ गर्भ और गमिणी—जो गमिणी स्त्री शिर धारण करने में असमर्थ हो गयी हो अर्थात् जिसका शिर झुक गया हो, अङ्ग छीतल हो गये हों, लज्जा शून्य हो गयी हो अर्थात् कट स घानहीन हो गयी हो और जिसके कोख आदि पर नीली रेखायें ( शिरायें ) उमर आर हों यह स्त्री गर्भ को नष्ट कर देती है और ऐसी अवस्था वाली स्त्री का गर्भ उस स्त्री को मार देता है ॥

मृतस्य मूढगर्भस्य प्रतिपाद्यत्वात्कर्षणार्थं लक्षणमाह—

गर्भास्पन्द्वमवावीनां प्रणाशः स्याद्यपाण्डुता । भवेद्दुष्कृत्वासपुत्तित्वं गूलक्ष्मात्तर्भृते शिशौ ॥

मृतगर्भ के लक्षण—गर्भ अब पट के अन्दर ही मर जाता है तब गर्भ का दिलना चलना गर्भस्य बालक का हृदय स्पन्दन आदि मन्द हो जाता है अर्थात् गर्भ निश्चल हो जाता है, आधी अर्थात् प्रसव काल के चिह्न मूत्रदोषेष्मा नि सरणादि प्रसव चेतना वा अभाव हो जाता है, शरीर वर्ण दयाम वा पाण्डु हो जाता है, उस स्त्री के आसोच्छ्वास में दुर्गन्धि होती है और गूल होता है ॥ १ ॥

गर्भस्य मरणहेतुमाह—

मानसागन्तुभिर्मातृरूपतापैः पृथग्विधैः । गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥१॥

गर्भ के मरने के कारण—अनेक प्रकार के मानसिक तथा आगन्तुक दुःखों से माता के दुःखी होने से तथा रोगों से आक्रान्त वा पीडित होने से गर्भ गर्भाग्रे में ही मर जाता है ॥ १ ॥

अपरमसाध्यगमिणीलक्षणमाह—

योनिमघरण सङ्गं कुक्षौ मक्ककल एव च । हृन्तु द्वियं मूढगर्भो ययोच्छाद्याप्युपद्रवाः ॥१॥

गमिणी के असाध्य लक्षण—योनि संवरण, कुक्षिसङ्ग, मक्ककल तथा अन्य आद्यनक आसादि रोग मूढ गर्भ वाली स्त्री को मार देते हैं ( योनि संवरण का लक्षण आगे वर्द्धगे । कुक्षिसङ्ग में गर्भ

कुक्षि में आसक्त हो कर बाहर नहीं निकलता है और मधुकल रोग में प्रकुपित वायु प्रयत्ना के बहते हुए रक्त आदि को रोक्कर हृदय शिर एव वसि स्थान में शूल उत्पन्न कर देता है (सुधृत के वचन से अवप्रजाता स्त्री का शूल भी मकल ही कहलाता है) ॥ १ ॥

पातलान्यस्रपानानि भ्राम्यधर्मं प्रजागरम् । अत्ययं सेयमानाया गर्भिण्या योनिमार्गम् ॥२॥  
मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य सद्युतिम् । कुरुते रुद्रमार्गत्वात् पुनरुत्तर्गतेऽनिल ॥ ३ ॥  
निरुणद्धवापायद्वार पीडयन्गर्भसंस्थितिम् । निरुद्धवदनोरच्छ्वासो गर्भश्चाऽऽशु विपद्यते ॥  
उच्छ्वासरुद्धव्यां माक्षायत्यथ गर्भिणीम् । योनिस्वरणं माम् व्याधिमेन प्रचण्ठते ॥

अन्तकप्रतिभ्र घोर नाऽऽग्नेत चिकित्सतुम् ॥ ५ ॥

योनि संवरण रोग के लक्षण—गर्भावस्था में वातकारक अपान आदि का अधिक सेवन करने से, अधिक मैथुन करने से और अधिक रात्रि जागरण से गर्भिणी के योनिमार्ग में विचरने वाला वायु कुपित होकर योनि द्वार को संवृण (सकुचित) वा अवरुद्ध कर देता है और मार्ग के अवरुद्ध होने से पुन वह वायु भीतर जाकर गर्भाशय के द्वार को अवरुद्ध कर गर्भ स्थिति को पीड़ित करता है जिस कारण गर्भ का मुह और श्वास रुक जाता है और वह गर्भ शीघ्र मर जाता है तथा उस गर्भ के मर जाने से गर्भिणी का उच्छ्वास और हृदय अवरुद्ध हो जाता है और उसने गर्भिणी का भी नाश हो जाता है अर्थात् गर्भ मर कर फूलता है, अवरोध हो जाता है और वह भी मर जाती है । इस रोग को योनि स्वरण नाम का रोग कहते हैं, यह यमराज के समान कठिनरोग है इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २-५ ॥

विकृताकृतिगर्भकारणं लक्षणंश्चाह—

शृगुस्नाना तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत् । आसंघं वायुरादाय कुक्षीं गर्भं करोति हि ॥१॥  
मासि मासि विवधत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् । कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणै ॥ २ ॥

विकृताकृति गर्भ के लक्षण—शृगुफाल के पश्चात् स्नान की हुई स्त्री यदि स्वप्न में मैथुन करती है तो उस समय योनि में विचरने वाली वायु उसके आसंघ को गर्भाशय में ले जाकर गर्भ स्थित कर देती है । वह गर्भ प्रतिमास बढ़ता जाता है और गर्भिणी को सब गर्भ के लक्षण प्रतीत होते हैं । उस गर्भ से पिता के गुणों से रक्षित कलल अर्थात् कोचङ्ग वा मांसपिण्ड के समान गर्भ उत्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

सर्वपृथिव्यकृष्ण्माण्डविकृताकृतयश्च ये । गर्भाश्चेति प्रपक्ष्ये ज्ञेया पापकृतो मृशाम् ॥ ३ ॥

साँप, बिच्छू और कुष्माण्ड आदि के आकार के तथा अ-प विकृत (कुष्ठादि विकारों से युक्त भी) आकृति के जो गर्भ उत्पन्न हो जाते हैं वे तीनों प्रकार के गर्भ अत्यन्त पाप कर्म से उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा ।

तत्र गर्भस्य स्त्रावपातयोश्चिकित्सामाह—

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि सुहृसुहृत् । तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिश्रुतं पिबेत् ॥ १ ॥

गर्भस्त्राव चिकित्सा—गर्भिणी स्त्री के गर्भ से यदि बार बार रक्त का स्त्राव हो तो उसके अवरोध के लिये वह स्त्री उत्पलादि गण से सिद्ध किया हुआ दूध पीवे । इससे रक्तस्त्राव बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

उत्पलादिगणमाह—

उत्पलं मीलमारक्तं कम्हारं कुमुदं तथा । श्वेताम्भोजं च मधुकमुत्पलादिरयं गण ॥ १ ॥

उत्पलादि गण—नाल कमल रक्त कमल कुमुद, रक्तकुमुद श्वेतकमल और मुलहठी का समान मिलित योग उत्पलादि गण कहा जाता है ॥ १ ॥

सन्नीलितो ह्रस्वैव दाहं सृष्णां हृदामयम् । रक्तं पित्तं च मूर्च्छां च तथा छूर्दिमरोषकम् ॥२॥  
उत्पलादि गण के सेवन करने से दाह, सृष्णा, हृदय, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

छज्जालुघातकीपुष्पमुत्पलं मधु लोघ्नकम् । अलरथया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ३ ॥

गर्भपात निवारण योग—छज्जालु या लघौठी धावके पुष्प नील कमल, मधु और लोघ की

समान भाग लेकर पीस कर अवस्था के अनुसार मात्रा से खी को बल में बैठाकर पिलाने से गर्भपात रुक जाता है ॥ ३ ॥

पतत्र स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्सिका । मधुच्छागीपय पीता किं वा श्येताऽपराजिता ॥३॥

कुम्हार के बतन बनाने के समय की हाथ में लगी छुर मिट्टी गर्भवती खी को घोलकर पिलाने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है अथवा श्वेतपुष्प की अपराजिता के चूर्ण की मधु तथा बकरी के दूध के अनुपात के साथ पान करने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है ॥ ४ ॥

पारावतमल पीतस्यह ताम्बूलवारिणा । गर्भिणीगमत्तो रक्त स्तम्भयेद्विषपद्रवम् ॥ ५ ॥

कबूतर के मल को ताम्बूल के स्वरस के साथ तीन दिन तक पान कराने से गर्भिणी के गर्भ से बहते हुए रक्त को रोक देता है और इस योग के सेवन से कोई दूसरा उपद्रव भी नहीं होता है ॥

शकरापिसविल समंशक माक्षिकेण सह भक्षयते यदा ।

नारित गर्भपतनोद्भवं भयं पापनीतिरिय तीर्थसेवया ॥ ६ ॥

शकर, मसीष्टा (कमलतण्डु) और तिल को समान भाग लेकर विभिन्न चूर्ण कर मधु के अनुपात से सेवन करने से गर्भपात का भय इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार तीर्थ करने से पाप का भय नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

फङ्गतीमूलमायद कुमारीसूत्रकं समैः । कटिवेशे नितम्बिन्या गमपातं निवारयेत् ॥ ७ ॥

अतिबला के मूल का कुमारी कन्या के हाथ के बते हुए गर्भवती के शरीर के बराबर लम्बे छत्र में बाँध कर कमर में बाँधने से गमपात नहीं होता है ॥ ७ ॥

वेणुप्रन्यिकुलख्यानो हरिद्राजनिष्ठ शृतम् । देयं स्यूनदिने पाते गर्भिणीनां भिषग्वरैः ॥ ८ ॥

गर्भपात की पीड़ा निवृत्तिकारक योग—बाँस की प्रथि (गाठ), कुल्थी और इलनी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय करके थोड़े दिनों का गर्भसाव जिस खी वा हुआ हो उसे देना चाहिये इससे गर्भसाव सम्बन्धी पीड़ा आदि तथा मल की निवृत्ति होती है (इस योग में कहीं १ प्रथि शब्द से पिपरामूल भी ग्रहण किया गया है) ॥ ८ ॥

हीवेरातिविषामुस्तामोचसकैः शृत जलम् । दद्याद्गर्भं प्रचलिते प्रवरे कुचिह्नयपि ॥ ९ ॥

सुगन्धबाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इद्रजी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय बनाकर जो गर्भ अपने स्थान से थल चुका हो, श्युत हो चुका हो अथवा अधिक चलता हो, उसमें प्रदरोग में तथा गर्भाशय की पीड़ा में देना चाहिये। इससे शम होता है ॥ ९ ॥

अत परं मासामुमासिकं वक्ष्याम—

मधुक पाकबीज च पयस्या सुरदार च । अरमन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवस्ती शतावरी ॥ १ ॥

मास क्रम से चिकरसा—गुलहठी, शकबीज, क्षीर काकोली और देवदारु को समान भाग लेकर क्षीरपाक विधि से सिद्धकर गर्भसाव निवारण के छिये प्रथम मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये और पाषाणभेद, कृष्णतिल, मन्दीठ और शतावरी को उपरोक्त विधि से दूसरे मास में पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

शूषावनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा । अनन्तासारिवा रासना पद्मा मधुकमेव च ॥ २ ॥

बन्दा (शोही), क्षीरकाकोली मन्दीठ, नीलोत्तर और सारिवा को क्षीरपाक कर गर्भिणी को तीसरे मास में पिलाना चाहिये तथा अनन्तमूल, सारिवा, रासना, भारंगी और मुकुट्टी का क्षीरपाक चौथे मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

शृङ्गीहृयकारमर्वशीरिशङ्खवषा घृतम् । पृथिनपर्णी वला शिमू अङ्गुला मधुपर्जिका ॥ ३ ॥

छीठी कटेरी, बड़ी कटेरी, गमार, क्षीरी वृष (बट, पीपल, गुग्गु, पाकर) के अकूट और घाल से सिद्ध घृत क्षीरपाक पाँचवें मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये तथा पृथिनपर्णी, बला (बरिभारा), सदिजन, गोतरु और गमार से सिद्ध क्षीर छठवें मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ ३ ॥

शृङ्गाटकं विसं द्रापाकसेहमधुक मिवा । सप्तैतान्पयसा योगानघरलोकसमापितान् ॥ ४ ॥

शिपाड़ा, मसीष्टा अर्थात् कमलतण्डु, द्राघा, क्लेक, गुलहठी और मिनी से सिद्ध क्षीर सातवें मास में गर्भवती को पिलाना चाहिये ॥ ४ ॥

प्रमाससप्त मासेषु गर्भं स्रवति योजयेत् । कपित्थपिहयवृद्धतीपटोलेऽनिदिग्धिजै ॥ ५ ॥

मूले श्लेष्म प्रयुञ्जीत पीर मासे तथाऽष्टमे । नयमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पियेत् ॥ ६ ॥

इस प्रकार उपरोक्त आध २ श्लोकों में कहे हुए सात योगों द्वारा क्षीरपाक विधि से क्षीर सिद्ध कर क्रम से प्रथम मास से शंकर सप्तम मास पर्यन्त गर्भवती स्त्री को गमन्नाय निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये इससे गर्भस्राव नहीं होता है । कैप, पेल, बड़ो कटेरी, परबल, ईस और छोटी कटेरी के मूल को समान लेकर क्षीरपाक विधि से क्षीर सिद्ध करके आठवें मास में गमिणी स्त्री को गर्भपात निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये और नवें मास में मुलद्दटी, अन्नन्तमूल, क्षीरकाषोधी और सारिवा से सिद्ध किया क्षीरपाक गमिणी को पिलाना चाहिये ॥ ५-६ ॥

पीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां मिद्ध स्याद्दशमे द्वितम् । सचीरा वा हिता शुण्ठी मधुक सुरदार च ॥

सोठ और क्षीरकाकोली से सिद्ध किया क्षीरपाक दशम मास में गमिणी को पिलाना चाहिये अथवा सोठ वा मुलद्दटी वा देवदारु को दूध के साथ पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

क्षीरिकासुपल दुग्धं समहामूलक शिवाम् । पियेदेकादशे मासि गमिणी शूलशान्तये ॥ ८ ॥

विरनी अथवा क्षीरकाकोली, नीलकमल, दूध, मज्जोठ छत्रजावन्ती भी जब और हरदू को विधिपूर्वक (क्षीरपाक विधि से) सिद्धकर गमिणी को ब्यारहवें मास में पिलाना चाहिये इससे गमिणी का शूल शान्त होता है ॥ ८ ॥

सिताविदारी काकोलीक्षीरिकाश्च मृणालिका । गमिणी द्वादशे मासि पियेच्छूलमौषधम् ॥

एवमाप्यायते गमस्तीमा ह्यधोपशाम्यति ॥ ९ ॥

शर्करा, विदारिकण, काकोली, क्षीर काकोली और कमलतनु के द्वारा विधिपूर्वक क्षीरपाक करके गमिणी को बारहवें मास में यह शूलघ्न औषधि पिलाना चाहिये । इससे बारहवें मास में गर्भ का शूल नष्ट होता है और इससे गर्भ पुष्ट होता है तथा तीस पीढ़ायें शान्त होती हैं ॥ ९ ॥

अन्यच्च-प्रथमान्तरे मासविशेषे गर्भेऽनाहरमौषधम्—

चलनं प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते । औषधं च तदा देयं विचक्षणभिपग्वरैः ॥ १ ॥

मृद्धीका ज्येष्ठिका चैव च दर्शनं रक्तचन्दनम् । गवां च पयसा पेय स्थिरता जायते ध्रुवम् ॥२॥

प्रथम मास में यदि गमस्राव का भय हो अथवा गर्भ अपने स्थान से चले तो मुनक्का, जेठी मधु, श्वेत चन्दन और रक्तचन्दन को समान भाग लेकर क्षीरपाक की विधि से गोदुग्ध के साथ क्षीर सिद्धकर पिलाने तो निश्चित ही गर्भस्थिर हो जाता है ॥ १-२ ॥

नीलोत्पल सवाल च श्लेष्माश्च कसेरुकम् । क्षीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणाऽऽलोह्यं तपियेत् ॥

पुंयं न पतते गम स च शूलं प्रशाम्यति ।

नीलकमल (नीलोत्पल), सुगन्धबाला, सिपादा और कसेरु को समान भाग लेकर क्षीतल जल के साथ पीसकर गौ के दूध में मिलाकर पीने से गमस्राव नहीं होता है और गर्भावस्था का शूल भी इस औषधि से शांत हो जाता है ॥ ३ ॥

द्वितीयं मासि गमस्य चलनं च भयेद्यदि ॥ ४ ॥

पयसा च तदा पेयं मृणालं नागकेशरम् । तगरं कमलं विश्वं कपूरेण समन्वितम् ॥ ५ ॥

आजाक्षीरेण तपिष्ट्वा क्षीरेणाऽऽलोह्यं पूयवत् ।

यदि दूसरे मास में गर्भ का अपने स्थान से चलना श्राव हो (गमस्राव होने की शंका हो) तो मृणाल (कमलनाल) और नागकेशर की दूध में पीसकर पीना चाहिये अथवा तगर, कमल, बेल और कपूर को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर बकरी के ही दूध में मिला कर पहेले कही हुई विधि से पीना चाहिये । इससे गर्भपात नहीं होता है और शूल भी शान्त हो जाता है ॥ ५ ॥

तृतीये मासि चलनं जायते गर्भज यदि ॥ ६ ॥

पयसाऽऽलोहितं पेयं शर्करानागकेशरम् । पद्मकं चन्द्रमं चैव चालकं पद्मनालकम् ॥ ७ ॥

विष्ट्वा क्षीतेन तोयेन क्षीरेणाऽऽलोह्यं तपियेत् । पुंयं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ॥

यदि तीसरे मास में गर्भस्राव होने की शंका हो तो शर्करा और नागकेशर को पीसकर दूध के साथ मिलाकर पीना चाहिये अथवा पद्मकाठ, लालचन्दन, सुगन्धबाला और कमलनाल को

समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर दूध में मिलाकर पीने से गर्भसाव नहीं होता है और गर्भावस्था का शूल शमन होता है ॥ ६-८ ॥

यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थे मासि जायते । सृष्णाशूलविदाहैश्च उवरेण च निपीडनम् ॥ ९ ॥

चौरं च कवुलीमूलमुत्पल धालक तथा । आलोढ्य समभागैः पिबेद्गोपशान्तये ॥ १० ॥

यदि चौथे मास में गर्भपात की शङ्का हो और साथ ही गर्भवती को उषा, शूल, दाह तथा ज्वर की भी पीड़ा हो तो दूध, कवुली का मूल, नीलकमल वा कमलमूल और गुणचवाला को समान भाग लेकर पीसकर पिलाने से उपरीक रोग नष्ट हो जाते हैं और साव भी नहीं होता है ॥ पञ्चमे मासि गर्भस्य चलनं कुग्रचिद्भवेत् । घृणा च मधुना पेय दाहिमीपत्रचन्दनम् ॥ ११ ॥ नीलोत्पल मृणाल च कौन्तीचौरी तथैव च । केशरं पत्रक चैव तोयेनाऽऽलोढ्य तपिवेत् ॥ एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ।

यदि पाँचवें मास में गर्भपात की शङ्का हो तो दही में मधु, अतार के पत्ते और लालचन्दन को पीसकर पीना चाहिये अथवा नीलकमल, मृणाल, रेणुका, खिरनी वा क्षीरकाकोली, नागकेसर और पटुमकाठ को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर घोलकर पीना चाहिये । इससे गर्भपात नहीं होता है और तरसम्बन्धी शूल भी शान्त हो जाता है ॥ १२ ॥

षष्ठे मासि तु गर्भस्य चलता जायते यदा ॥ १३ ॥

गौरिका गोमय मरम कृष्णा मृत्स्ना तथैव च । प्लेयी साधितं प्राशभिपजा चामृत तदा ॥ पेय गीत पर साकं सितया चन्दनेन च ।

यदि छठवें मास में गर्भ का चलना ( गर्भपात होना ) शान्त हो तो गेरू, गोबर की रास और कृष्ण वर्ण की ( करील ) मिट्टी को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ घोलकर शर्करा तथा चन्दन मिलाकर पीना चाहिये ॥ १३ ॥

सप्तमे मासि गर्भस्य चलन जायते यदा ॥ १५ ॥

उशीर गोष्ठुरघनी समङ्गा नागकेशरम् । सपत्रकं समधुना पाययेद्य विचक्षणः ॥ १६ ॥

यदि सातवें मास में गर्भ के पात होने की सम्भावना हो तो सप्त, गोष्ठरू नागरमोषा, मञ्जोठ, नागकेसर और पटुमकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पूर्णकर मधु मिलाकर जल में घोलकर पिलाना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

अष्टमे मासि चलनं गर्भजं यदि जायते । छोग्रमागधिकापूर्णं मधुना पयसा पिबेत् ।

यदि आठवें मास में गर्भपात होने की सम्भावना हो तो लोथ बड़ी पीपल का पूर्ण, मधु तथा दूध मिलाकर पिलाना चाहिये ॥

नवमे सुप्रसूति स्यादेव गर्भस्य पोषणम् ॥ १७ ॥

नवें मास में मशोर्भाति प्रसव हो जाता है ( नवें मास के गर्भ के चलने में हानि नहीं है उसे गर्भसाव नहीं कहा जाता है क्योंकि वह प्रसव का समय है ) । इस प्रकार के प्रयोगों से गर्भ का पोषण ( रक्षण ) होता है ॥ १७ ॥

गर्भपातस्योपद्रवार्था चिकित्सा—

स्निग्धशीताः क्रियास्तेषु दाहादिषु समाचारात् । कुशकारोरुपूकार्णा मूलेर्गोष्ठुरकस्य च ॥ १८ ॥ श्वेत दुग्ध सितायुक्त गमिण्या शूलहरपरम् । श्वदप्लामधुकद्वाघाम्बलाभिः सिद्ध पयः पिबेत् ॥ साधैरामधुसंयुक्तं गुर्विणीवदनापदम् ।

गर्भपात के उपद्रवों की चिकित्सा—गर्भ के दाहारि उपद्रवों के उपचार होने पर स्निग्ध तथा शीतल उपचार करना चाहिये । कुश, काश, परण्ड मूल तथा गोष्ठरू के साथ विधिपूर्वक दूध सिद्ध कर उसमें शर्करा मिलाकर पिलाने से गमिणी का शूल नष्ट होता है । एवं गोष्ठरू, मूलेठी, दाह और पियाशीला को समान रूपकर इनके द्वारा दूध सिद्ध कर पिलाने से गमिणी के शूल नष्ट होता है ॥ १८-१९ ॥

शुक्कोष्ठगौरिका गोदसम्भवा नपमृत्तिका ॥ २० ॥

समङ्गा घातकीपुष्प गौरिक च रसाञ्जनम् । तथा सार्जरसधैतान्यपालाभं विपूर्णमेत् ॥ २१ ॥ तरपूर्णं मधुना लिङ्गाचारी प्रवरशान्तये । कलेरुपलश्वहाटकककं वा पयसा पिबेत् ॥ २२ ॥

प्रदर चिकित्सा—घरों में जो पिलनी भयवा भजनहारी ( जो एक प्रकार की बड़ी मछिका है और मिट्टी का घोंसला अपने से बनाकर उसमें दूसरे कीड़े ( झांगुर आदि ) को मारकर रखती है जिससे पुन उसमें उसके अनुकूल जीव उत्पन्न हो जाता है ) के घर की नवीन मिट्टी मजीठ, भाय के पुष्प गेरू रसवत् तथा राल इनमें स जितनी भी औषधियां प्राप्त हो सकें सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे उस चूर्ण को मधु के अनुपात से स्त्री प्रदर को शान्ति के लिये चाटे तो प्रदर रोग शान्त होता है भयवा-कसरू, नीलकमल और सिंघाड़ा का विधिवत् बरूक बनाकर दूध के साथ पीवे तो प्रदर रोग शमन होता है ॥ ३-५ ॥

पक्ष घचारसोनाभ्यां हिन्दुसौवर्चलान्वितम् । आनाहेषु पियेषु दुग्ध गुर्विणी सुखिनी भवेत् ॥

गर्भिणी के आनाह चिकित्सा—बच, और लहसुन से दूध सिद्ध कर उसमें शुद्ध हींग और सौचर नमक का प्रक्षेप देकर पान करने से गर्भिणी वा आनाह नष्ट होता है ॥ ६ ॥

सृणपञ्चकमूलानां कश्केन विपचेरपयः । सत्पयो गुर्विणी पीत्वा मूत्रसद्गाह्निमुच्यते ॥ ७ ॥

गर्भिणी के मूत्रसंग चिकित्सा—सृणपञ्चक का विधिपूर्वक बरूक बनाकर दूध के साथ उसे पकाकर गभवती को पिलाने से उसका मूत्रारोध नष्ट होता है ॥ ७ ॥

शालीप्लुक्काकारौ स्याच्छ्रेण सृणपञ्चकम् । प्यां शृतं सृपादाहपित्तासृद्धमूत्रसद्गाह् ॥ ८ ॥

सृणपञ्चक का नाम तथा गुण—शालिधान की जड़, ईंख की जड़, कुन्ड की जड़, काश की जड़ और घर ( नरकट ) की जड़ के मिलित योग को सृणपञ्चक वा सृणपञ्चक कहते हैं । इनका क्वाथ बनाकर पीने से सृग्णा, दाह, रक्तपित्त और मूत्रारोध नष्ट होता है ॥ ८ ॥

कसेरुशृङ्गाटकपञ्चकोस्पल समुद्रपर्णामधुकं सशकरम् ।

सशूलगभध्रुविपीडिताऽथला पयोविमिश्र पमसाऽश्चमुष्पियेषु ॥ ९ ॥

गर्भिणी के उपद्रवों की चिकित्सा—कसेरू, सिंघाड़ा, पद्मकाठ, नीलकमल, सुदगपर्णी ( बन मूंग ) और मुलहठी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें दूध मिलाकर और शकरा का प्रक्षेप देकर गर्भिणी स्त्री को पिलावे तथा दूध और अन्न ( दूध मात वा दूध रोटी ) का पथ्य देवे तो गर्भिणी का शूल और गभ छाव इन दोनों रोगों को यह नष्ट करता है ॥ ९ ॥

गुर्विण्या रोगाणां चिकित्सा—

मधूकचन्दनोशीरसारिवाद्यष्टिपञ्चकैः । शर्करामधुसंयुक्तः कपायो गर्भिणीञ्चरे ॥ १ ॥

गर्भिणी के रोगों की चिकित्सा—महुआ, लालचन्दन, खस, सारिवा, जेठीमधु और पद्मकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ करके उसमें शर्करा तथा मधु का प्रक्षेप देकर गर्भिणी को ज्वर में पिलाना चाहिये इससे गर्भावस्था का ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

चन्दन सारिवालोध्रमृद्धीकाशर्कराश्वितम् । काथ कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीञ्चरशान्तये ॥ २ ॥

लालचन्दन, सारिवा, लोध और मुनक्का को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर गर्भिणी के ज्वर की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

पयस्यासारिवापात्रातोयतोयदनागरैः । शृत शीत पियेद्धारि गर्भिणीञ्चरवारणम् ॥ ३ ॥

धीरकाकोली, सारिवा, पुरहनपादो, सुगन्धबाला, नागरमोथा और सोंठ के साथ सिद्धकर शीतल किया हुआ जल गर्भिणी को ज्वर की निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये ॥ ३ ॥

मृद्धीकापञ्चकोशीरश्रीपर्णाचन्दन तथा । मधुक च पयसा च सारिवामलक तथा ॥ ४ ॥

पित्तज्वरहर कायो गर्भिणीनां प्रशस्यते ।

मुनक्का, पद्मकाठ, खस, गम्भारी लालचन्दन मुलहठी, धीरकाकोली, सारिवा और अंबला को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ करके पिलाने से गर्भिणी स्त्रियों का पित्तज्वर नष्ट होता है ॥

पीत विश्वमजाधीरैर्नाशयेद्द्विपमज्वरम् ॥ ५ ॥

सोंठ को बकरी के दूध में पीस कर पीने से गर्भिणी का विषम ज्वर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

हीपेरारल्लरक्तचन्दनथलाधाम्याकवरसादनी  
मुस्तोशीरपवासपपटविपाछार्थं पियेद्गुर्विणी ।

नामावर्णरुमातिसारकगदे रक्तछूतो वा ज्वरे

योगोऽथ मुनिभिः पुरा निगदितः सूर्यामयेपूतम् ॥ ६ ॥



हीवेरादि काथ—सुगन्धबाला, सोनापाठा की छाल, लालचन्दन, बरिभारा, पनियाँ, गुरघ, नागरमोथा, दम, जवासा, पिचपापडा और अतीस समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ करके गर्मिणी खी यदि पीये, तो अनेक वर्ण के तथा अनेक पीड़ाओं के सहित ज्वरितार रोग में, रक्त के बढ़ने में, ज्वर में तथा घृतिका रोग में लाभ करता है । पहले के मुनिवों ने इन योग की उचम कहा है अर्थात् यह योग इन सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

ज्वरातिसारे गर्मिण्या शस्तं सामे सशोणिते । समज्ञा मधुक लोभ्र फाणित शर्करान्वितम् ॥  
ज्वरातिसार में—ज्वरातिसार, आम्रातिसार और रक्तातिसार में मजीठ, मुल्हठी, छीप और फाणित को समान भाग लेकर पीस कर उसमें शर्करा मिलाकर गर्मिणी खी सेवन करे तो यह योग उपर्युक्त रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ७ ॥

प्रवाहिकायां गर्मिण्या शस्तं सामे सशोणिते । आम्रजम्बूवच कायेर्लह्येत्ताजसक्तुकम् ॥८॥  
जनेन छीठमात्रेण गर्मिणीं प्रहणीं जयेत् ।

प्रवाहिका रोग में—गर्मिणी खी प्रवाहिका रोग में जिसमें आम और रक्त दोनों मिष्टे हों ( प्रवाहिका साधारण हो अथवा आम्रातिसार तथा रक्तातिसार से युक्त हो ) उसमें आम और आम्रजम्बू के विधिवत् बने काथ में धान के खील के सत्तू को मिलाकर लेह बनाकर चाटे तो उसके रोग नष्ट हो जाते हैं और प्रहणी रोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

शुण्ठीषिपवकपायं तु यवसक्तुमन्वितम् ॥ ९ ॥

गर्मिणीं पाययेद्द्वेषदृष्टीसारनाशनम् ।

वमन और अतीसार में—सोंठ और बेल के काथ में यव का सत्तू मिलाकर गर्मिणी खी को पिलावे तो उसका वमन और अतीसार दोनों नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

पृथिनपर्णीषलावासानिर्युहो रक्तपित्तजिव ॥ १० ॥

गर्मिण्याः कामलाशोकश्वासकासज्वरापहः ।

रक्तपित्त में—पृथिनपर्णी ( पिठिवन ), बरियारा और अरुसे का काथ ( गर्मिणी के ) रक्तपित्त को नष्ट करता है और गर्मिणी खी के कामला-शोथ, श्वास, कास तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥

कुरतुम्बरीणां कषक तु तण्डुलोदकमंयुतम् ॥ ११ ॥

विद्येत्सककरं हृद्य गर्मिणीषद्धिदिवारणम् ।

वमन में—पनियाँ का विधिपूर्वक बरक बनाकर उसमें तण्डुलीरक और शर्करा मिलाकर गर्मिणी को पिलाना हृदय के लिये हितकारी है और गर्मिणी के वमन को नष्ट करता है ॥११॥

विषवमज्जा च छाजाम्बु विद्येत्सुर्दिपु गर्मिणी ॥ १२ ॥

बेल की गुरो और धान के छाबा का जल गर्भावस्था के वमन में पिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

भार्गीशुण्ठीकणाचूर्णं गुष्ठेन श्वासकासनुत् ।

श्वास कास में—भारगी ( वमनेठी ), सोंठ और धीवल रसकी समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण करके गुष्ठ के अनुपान से सेवन करने से गर्मिणी का श्वास-कास नष्ट होता है ॥

अजमोदा नागर च पिप्पली जीरक समम् ॥ १३ ॥

तच्चूर्णं समुदधीम् गर्मिण्या वद्विदीपनम् ।

मन्दाग्नि में—अजमोदा ( अजमोदा ), सोंठ धीवल और जीरा को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण करके मधु तथा पुराने गुष्ठ के अनुपान से सेवन कराने से गर्मिणी की अग्नि तीव्र हो जाती है ॥ १३ ॥

दिग्वाग्निमन्यपक्व वा पाटल्या नागरेण वा ॥ १४ ॥

सिद्धमम्बु विद्येच्छीत गर्मिणी यातरोगनुत् ।

बात्ररोग में—बल तथा गनियार की छाल अथवा पाटल छाल और सोंठ से तिक रिया हुआ ( काथ ) शीतल करके गर्मिणी को पिलाने से गर्मिणी का बात्ररोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

चन्द्रमधुकोशीर भागपुष्पं तिलास्तया ॥ १५ ॥

अजाग्नी च मज्जिष्ठा रविमूल पुमर्नवा । श्रेष्ठः शोफहरो लेपो गर्मिणीनां विनेपतः ॥ १६ ॥  
शोफहर लेप—लालचन्दन, मुल्हठी, छस, भागकेसर, तिल, नैऋती, मजीठ, मगर की

जड़ और पुनर्नवा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक छेप बनाकर छेप करने से शीघ्र को नष्ट करता है विशेष कर गर्मिणी स्त्री के शीघ्र को नष्ट करने में यह अत्युत्तम है ॥ १५-१६ ॥

वातशुष्कस्य गर्भस्य चिकित्सा—

गर्भो घातेन सशुष्को भोदर पूर्येद्यदि । सा वृहणीयै ससिद्ध दुग्ध मांसरस पियेत् ॥ १ ॥

वातशुष्क गर्भ चिकित्सा—गर्भ यदि वात दोष से शुष्क गया हो और उदर भरता हुआ नहीं घात हो अर्थात् गर्भ के बढ़ने से जो उदर की वृद्धि होती है वह नहीं होवे तो ग्रहण करनेवाले ओषधियों के द्वारा विधिवत् दूध अथवा मांसरस को सिद्धकर पीना चाहिये ॥ १ ॥

शुक्रार्तवमजाताङ्ग प्रत्यङ्ग मास्तार्दितम् । रयक्तं जीवेन तत्सस्मात्कथितं चायतिष्ठते ॥ २ ॥

यदि शुक्र तथा आतव ही वायु से पीड़ित हुए हों तो गर्भ के अङ्ग प्रत्यङ्ग नहीं बनते हैं । वह गर्भ जीवात्मा से रयाज्य होता है अर्थात् जीवात्मा से उसका सम्बन्ध नहीं रहता है इस कारण यह कथित होता हुआ पक्ता हुआ उदर में पड़ा रहता है ॥ २ ॥

शुक्रार्तवाद्गर्भो घायुरदराभमानशृङ्गपेत् । कदाचिच्छेत्तदाभमान स्वयमेवाऽऽपतेत्तराम् ॥ ३ ॥

नैगमेयेन गर्भोऽयं दूतो लोकाप्वनिस्तदा । स चापि गर्भो भयति लोके नागोदराङ्गयः ॥

घान्यकुट्टनमुसया स्याच्चिकित्सा सूभयोरपि ॥ ४ ॥

कभी शुक्र तथा आतव से आर्द्र हुआ वायु उदर में आभमान कर देता है (पेट को फुला देता है) । पुन वही आभमान स्वयं निकल जाता है । इसके लिये यह लोकापवाद है कि गर्भ को नैगमेय ने हर लिया । इसी गर्भ को लोके में नागोदर गर्भ भी कहा जाता है । उपरोक्त इन दोनों प्रकार के अवस्थाओं में धान कूटा मुख्य चिकित्सा है अर्थात् गर्मिणी के धान फूटने को कहना चाहिये इससे दोनों प्रकार के गर्भ निकल जाते हैं ॥ ३-४ ॥

प्रसवमासमाह—

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते । पृकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ १ ॥

प्रसवमास—साधारणत नवें तथा दसवें मास में स्त्री गर्भ को प्रसव करती है (यह प्राकृतिक है) । कभी २ सवारहवें और बारहवें मास में भी प्रसव करती है अथवा इससे भी अधिक तेरहवें मास में भी प्रसव करती है किन्तु ऐसा बिलम्ब रोगादि विकारों के कारण होता है ॥ १ ॥

प्रसवमासप्रतिक्रम्य स्थायिनि गर्भे चिन्त्रित्सामाह—

घातेन गर्भसकोचात्प्रसृतिसमयेऽपि या । गर्भं न जनयेद्यारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥ १ ॥  
कुट्टयेन्मुशलेनैवा कृत्वा घायमुल्लब्धे । विषम चाऽऽसन यान सेधत प्रसवार्थिनी ॥ २ ॥

प्रसव मास के (भवधि के) व्यतीत होने पर भी गर्भ प्रसव नहीं होने की चिकित्सा—जो स्त्री वात के दोष से गर्भ का सङ्कोच हो जाने से प्रसव के समय हो जाने पर भी प्रसव नहीं करती है, उसकी चिकित्सा यह है कि वह स्त्री भोलल में धान रखकर मूसल से कूटे तथा विषम आसन का सेवन करे (टड़ा-गेडा बैठे) तथा हिलने-डुलने वाले यान (सवारी) पर चढ़े । इस प्रकार करने से प्रसव हो जावेगा ॥ २ ॥

काले प्रसवबिलम्बे चिन्त्रित्सामाह—

प्रसवस्य बिलम्बे तु धूपयेदभितो भगम् । कृष्णसपस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥ १ ॥

प्रसव के बिलम्ब होने पर योनि में धूप देना चाहिये । कृष्णवर्ण के सर्प की कौजुल और मैनफल का धूप देना उत्तम है ॥ १ ॥

तन्तुना छाङ्गलीमूल घष्नीयाद्दस्तपादयो । सुवचला विशक्यां वा धारयेदाश्च सूतये ॥ २ ॥

घट में कलिहारी के मूल को बांधकर दाध आर पेटों में बांधना चाहिये । अथवा कुरकुर की या विशक्या (गिलोय, विक्कट लांगली, जिबू, पाटला, नागदन्ती वा हस्तिशुब्दी) की जड़ को बांधना चाहिये इससे शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ २ ॥

कृष्णा घचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात् ।

सुखप्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ३ ॥

पीपल और शच की जल से पीसकर उसमें परण्ड का तेल मिलाकर नाभिस्थान पर छेप करने से अनेक प्रकार के दुःखों से दुखित हुई स्त्रियों को भी सुखपूर्वक प्रसव शीघ्र हो जाता है ॥ ३ ॥

मातुलङ्गस्य मूलं तु मधुकैः सयुक्तं तथा । घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४ ॥

बिजौरे नीबू की जड़ और गुलहठी की समान भाग लेकर चूर्ण कर घृत क अनुपान से पिलाने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ४ ॥

हृषोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना वदध्वा ।

कटिविषये गभयती सुखेन सूतेऽविलम्बितेनापि ॥ ५ ॥

रौत के उत्तर दिशा की ओर के मूल को गभवती अपने शरीर के प्रमाण की लम्बाई के बराबर के सूत में बांधकर कमर में बाँधे तो शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ५ ॥

तालस्य चोत्तरमूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना । वदध्वा कट्यां तु नियतं सुरा नारी प्रसूयते ॥ ६ ॥

ताड़ के वृक्ष की उत्तर दिशा की जड़ को गभवती अपने शरीर के रारर के प्रमाण के सूत में बांधकर कमर में बाँधे तो निश्चित ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ६ ॥

प्रत्यक्पुष्पाः पारिभद्रस्य यद्वा मूलं यद्वा काकजह्वासमुत्थम् ।

कट्यां यद् योपितां सम्प्रसृतिं यावो युवत्या सहस्रं साधु कुर्यात् ॥ ७ ॥

अपामार्ग की जड़ अथवा पारिभद्र की जड़ अथवा काकजह्वा की जड़ को लेकर (उपरोक्त विधि से सूत में भलीभाँति बाँध कर) आसन्न प्रभव स्त्री के कटि में बाँध देने से सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ ७ ॥

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च मामिनि । उच्चैर्धवाश्च सुरगो मन्दिरे नियसन्तु ते ॥ ८ ॥

इदममृतमपां समुद्धृतं ये तप लघु गभमिम विमुञ्चतु स्त्रि ।

तद्वनलपवनार्कवासवास्ते सह लयणाभ्युषरेर्दिसां तु क्षान्तिम् ॥ ९ ॥

मुक्ता पाशा विपाशाश्च मुक्ता सूर्येण ररमयः ।

मुक्तः सर्वमयाद्भम एहि मा चिर मा चिरम् स्वाहा ॥ १० ॥

सुख प्रसव कारक मंत्र ज्योत्स्नार्थ—हे स्त्री ! यहाँ तेरे मन्दिर में अश्व, घोम, चित्रमानु और उच्चैःशवा सुरण (घोडा) निवास करे। यह जलों में से अमृत निकाला है। हे स्त्री ! तेरे इस छोटे से गर्भ को यह अमृत छुटा देवे अथवा निकाल देवे और अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र वा विद्युत तथा लवणाभ्युषर तुझे शान्ति देव। सब प्रकार के पाश (बन्धन) और अविषाश (बन्धन विशेष) छूट गये हैं, सूर्य देव ने अपनी रश्मि (किरणें) छोड़ दी है, सभी भयों से हे गर्भ छूट गया है, हे गर्भ अब बिलम्ब न कर बिलम्ब न कर बाहर आ, आ, यह जो कुछ कहा गया है सब ठीक है ॥ ८-१० ॥

अष्टं ज्योत्स्नमन्त्रेण समुवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी इष्टा चोभयप्रिदाकम् ॥ ११ ॥

इस ज्योत्स्न मंत्र को सात बार पढ़कर उमस जल को अभिमन्त्रित करके आसन्न प्रसव को उठे पिलाकर उमस त्रिशक (दोनों ओर से बने तीस अङ्गु के यन्त्र को दिखावे इससे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ॥ ११ ॥

फलारसाष्टभिः पञ्चदिगटादशभिः प्रमात् । अर्कैश्च मुखनेत्रैर्दमयप्रिशाक भयत् ॥ १२ ॥

उभय त्रिशक यंत्र—१६, ६, ८ एक पंक्ति में हो २ १०, १८ दूसरी १२, १५, ४ तीसरी पंक्ति में हो। इस प्रकार सब का क्रम एक जैसा हो ती दोनों ओर से जोड़ने से तीस संख्या आयेगी ॥ १२ ॥

द्विमयद्विणे पार्वे सुरसा माम यच्चिणी । तस्या मूपुरशब्देन विदाहया भव गभिणी ॥ १३ ॥

इमं श्लोकं पठित्वा तु विपेददत्तपञ्चकम् । गभिण्युपरि सद्यः सा गभ मुञ्चति गर्भिणी ॥ १४ ॥

अक्षतयोग—द्विमालय के दक्षिण भाग में सुरसा नाम की पक्षिणी रहती है, उसके नूपुर के शब्द (क्षनकार) से हे गर्भवती ! तू गर्भ को निकाल कर चुती हो, इस भय वाले श्लोक (मंत्र) की पढ़कर पाँच अक्षत (बिना टूटे हुए चादल के पाँच दानों) की लेकर गर्भवती के ऊपर फेंके तो उसे शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

मृदगर्भस्व पिदिस्तामाह—

याभिः संकटकाले वैचैर्नार्यः प्रसाविताः सम्पद्य ।

लब्धयसां समप्रास्ता एवाताः त्रियाः कुर्युः ॥ १ ॥

मूदगर्भ चिकित्सा—जो स्त्री वैद्य संकट के समय में ( मूद गर्भ की अवस्था में अथवा प्रसव के समय ) भलीभाँति अनेक रित्तों का प्रसव कराया हो तथा सम्पूर्ण यश को प्राप्त किया हो वही स्त्री वैद्य इस ( प्रसव ) क्रिया को निरन्तर करावे ॥ १ ॥

गर्भे जीवति मूद तु गर्भं यत्नेन निहरेत् । हस्तेन सर्पिपावतेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥

मृते तु गर्भं गर्भिण्या योनौ शस्त्र प्रवेशयेत् ॥ २ ॥

गर्भ यदि जीवित हो परन्तु मूद हो गया हो तो उम यत्नपूर्वक निकालना चाहिये अर्थात् हाथों में घी लगाकर योनि में प्रवेश कर के यत्नपूर्वक मूद गर्भ को पकड़ कर सोधा करके बाहर करे । यदि गर्भ आदर ही मर गया हो तो योनि में शस्त्र प्रवेश करके यत्नपूर्वक उस काट कुट कर निकाले ॥ २ ॥

दास्यशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता मयोऽज्ञिता । सचेतन तु शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत् ॥ ३ ॥

गर्भ छेदन योग्य स्त्री वैद्य—जो स्त्री शस्त्र चलान में कुशल हो और शास्त्र धान में और क्रिया में कुशल हो, जिसके हाथ में लघुता हो और जो निर्भीक हो ऐसी ( स्त्री वैद्य ) शस्त्र द्वारा मरे हुए गर्भ की काट कर बाहर निकाले । किंतु यदि गर्भ में चेतना हो तो शस्त्र से कदापि छेदन न करे ॥ ३ ॥

सदायमाणो जननीमाम्ना चापि मारयेत् । नोपेचेत् मृत गर्भं मुहूर्तमपि पण्डित ॥

स चाऽऽशु जननीं हन्ति प्रभूता न यथा पशुम् ॥ ४ ॥

यदि जीवित गर्भ शस्त्र से काटा जावेगा तो वह गर्भ गर्भवती को भा मार देगा और स्वयं भी मर जावेगा । अगर उदर में गर्भ मर गया हो तो उसे शीघ्र किसी भी दरन से बाहर कर देना चाहिये क्योंकि वह मरा हुआ गर्भ गर्भिणी को शीघ्र हम प्रकार मार देता है जिस प्रकार प्रचुर प्रमाण में खाया हुआ अन्न पशु को मार देता है ॥ ४ ॥

गर्भछेदनप्रकार—

यद्यद्गर्भं हि गर्भरय योनौ सञ्जति तन्निपक्त् । सम्यग्विनित्हीरेच्छिरवा रक्षेत्सारीं प्रयत्नत ॥ १ ॥

गर्भछेदन प्रकार—मृत गर्भ का जो २ अङ्ग योनि में फँसा हो वैद्य उसी २ अङ्ग की मलीभाँति काटकर गर्भ को बाहर निकाले तथा गर्भिणी की यत्नपूर्वक रक्षा करे ॥ १ ॥

पृथ निहृतशक्त्यां तां सिन्धेद्युष्णेन धारिणा । ततोऽभ्यक्करीराया योनौ स्नेह निघापयेत् ॥

पृथ मृही भवद्योनिस्तच्छूल चोपशाम्यति ॥ २ ॥

गर्भ को काटकर निकालने के पश्चात् उस स्त्री का शष्पीदक से निचन और तेल अथवा घी का अभ्यङ्ग करके योनि में स्नेह ( तेल या घृत ) लगा देना चाहिये । इससे योनि मृदु हो जाती है और उसकी पीड़ा भी शमन हो जाती है ॥ २ ॥

प्रयत्नाया योनौ क्षतादेस्तु चिञ्चित्तम्—

तुम्बीपत्र स्या लोभ्र समभाग तु पेययेत् । सेन खेपो भगो कार्यं क्षीघ्र श्याद्योनिरक्षता ॥ १ ॥

प्रयत्ना के योनिक्षत आदि की चिकित्सा—प्रयत्ना के योनि में क्षत हो जाने पर तुम्बी (लौकी) के पत्र और लोभ्र को समान भाग लेकर पीसकर लेप लगा देने से योनि का क्षत क्षीम ही नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पलाशोदुग्धरफल तिलतैलसमचितम् । योनौ प्रलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २ ॥

योनि का गाढीकरण—पलाश और गूलर के फलों को समान भाग लेकर पीस कर उसमें तिल का तेल और मधु मिलाकर योनि में लेप करने से योनि गाढी ( संकुचित ) हो जाती है ॥ २ ॥

प्रसूता वनिता मृद्भृङ्गिहासाय सपिथेत् । प्रातर्मथितसमिध्यां त्रिसप्ताहात्कणाजटात् ॥ ३ ॥

प्रसूता के बड़े हुए पेट को घटाने का उपाय—प्रसव के दिन से तीन सप्ताह पश्चात् के प्रातः काल पिरपामूल को मथित अर्थात् मट्ठा के साथ पीस कर पीवे तो इससे प्रसूता का वदर छोटा हो जाता है ॥ ३ ॥

गर्भसेनाय—

आसुरीहिङ्गुसिंघुय फाञ्जिकेनाषलोहितम् । गर्भाशये मृत गर्भं पातयेत्पानयोगतः ॥ १ ॥

मूढ गर्भ चिकित्सा—रारं, पुद्ग हींग और सेंधानमक को समान भाग लेकर पीस कर काँची में मिलाकर पिलाने से गमाशय में मरा हुआ गर्भ शीघ्र बाहर हो जाता है ॥ २ ॥

ओलोटदथ काञ्जिकैर्घोटीपुरीप यक्ष्मगालितम् । ससिन्धूप्रासुरीतैल विपमागतगर्भनुव ॥ २ ॥

घोटी के मल की काँची में मिला कर कपड़े में छान कर उसमें सेंधानमक, बच अथवा अजवाइन, रारं और तिल का तेल मिलाकर पिलाने से विपम मूढ गर्भ को निकाल देता है ॥ २ ॥

परुषकनिफालेप स्तिरामूलकृतोऽथ वा । नाभिपस्तिभगाद्येषु मूढगर्भापकर्षण ॥ ३ ॥

फालसा अथवा शालिपर्णी की जड़ की पीसकर लेप बनाकर नाभि, बस्ति तथा मग आदि में लेप कर देने से मूढ गर्भ बाहर हो जाता है ॥ ३ ॥

इति मूढगर्भरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

### अथ प्रसूताया उदरस्थापरोपद्रव्यानाह ।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि । तदा स कुर्वते शूलमाश्रमान घट्टिमन्दताम् ॥ १ ॥

उदरस्थित अपरा से उपद्रव—प्रसूता स्त्रियों के उदर से यदि अपरा (जेर आदि) नहीं गिरे तो उसमें शूल आश्रमान और मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं ॥ २ ॥

तथिकित्सा—

केशवेष्टितयाऽङ्गुषया तस्याः कण्ठं प्रघषयेत् । निर्मोककटुकालाम्बुकृतवेधनसर्पपैः ॥ १ ॥

छाङ्गलामूलकश्केन पाणिपादतलानि हि । प्रलिप्तेऽसूतिका योपिदपरापातनाय वै ॥ २ ॥

अपरा की चिकित्सा—अङ्गुली पर केश को लपेट कर प्रसूता के कण्ठ पर पीसना चाहिये, इससे अपरा निकल जाती है अथवा साँप की केंचुल, कटुकुम्भी, तोरी तथा श्वेत सरसो को समान भाग लेकर चूर्ण कर सरसो के तेल में मिलाकर भलीभाँति योनि को घृषित करने से अपरा गिर जाती है अथवा करियारी की जड़ के विभिन्न बने कल्क को प्रसूता के हाथ और पाँव के तलवों पर लेप करने से अपरा निश्चय ही गिर जाती है ॥ २-२ ॥

हस्त द्विघ्ननखं स्निग्ध सूतीयोनी शनैः क्षिपेत् । अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् ॥

अपरा निकालने की विधि—बच्चा पैना कराने वाली छी अपने हाथों के नखों की भलीभाँति काट कर और हाथों को घटादि से स्निग्ध कर प्रसूता के योनि में धीरे २ प्रवेश करके वहाँ हाथों से अपरा को निकाल लेवे ॥ ३ ॥

### अथ सूतिकारोगाधिकारः ।

शुचिष्वां पतिते घस्से यौनी पिण्डनमिष्यते । अग्रवशो यथा चायोस्तथा संरक्षणक्रिया ॥ १ ॥

प्रसव हो जाने पर शीघ्र ही योनि को ढकाना चाहिये और सङ्कुचित करना चाहिये, तथा ऐसी क्रिया करनी चाहिये जिससे योनि में वायु प्रवेश करने न पावे ॥ २ ॥

वायुः प्रकुपितः कुर्यात्सुरभ्य रुचिरं श्युतम् । घृताया इभिष्टुरोषस्तिशूल मध्यजसञ्जितम् ॥

मक्कल रोग के लक्षण—प्रसव काल का प्रकुपित वायु गर्भाशय से बढ़ते हुए रक्त को अवरोध कर प्रसूता के हृदय शिर तथा बसित स्थान में शूल उत्पन्न कर देता है, इस शूल को मक्कल शूल कहते हैं ॥ २ ॥

मक्कलस्य चिकित्सा—

सचूर्णित चयदार विमेशोष्णेन धारिणा । सर्पिया वा पियेञ्जारी मक्कलस्य निवृत्तये ॥ १ ॥

मक्कल चिकित्सा—चयदार का इच्छुण चूर्ण बनाकर उष्णजल के साथ प्रसूता की पीके अथवा घृत के साथ पीके हो मक्कलशूल को निवृत्ति होती है ॥ २ ॥

पीप्पली पिप्पलीमूळं मरिचं गजपिप्पली । नागर चित्रक चम्पं रेणुकैलाजमोदिकाः ॥ २ ॥

सर्पपो द्विङ्गु भार्गो च पाटेन्द्रययजीरकाः । महानिम्यञ्च मूर्धा च विषा तिक्ता विङ्गुङ्कम् ॥

विष्पक्ष्यादिगणो श्लेष कफमारतनारागः । गुग्गुलुज्वरहरी क्षीपनञ्चाऽऽमपाचनः ॥ ३ ॥

पीरल, विपरानूल, मरिच, गजपीरल, सोंठ, चित्रकमूल, चम्प, रेणुका, रत्नवती, अजमोदा, सरसो, शूद्र हींग, बमनेठी, पुररनपादी, इन्द्रजी, औरा, महानिम्य (बकपान), मूर्धा, अटीछ, फुरकी और शायविङ्ग, के समान मिलित्त योग को विष्पक्षादि गण करते हैं, इसके सेवन से

कफ, वायु, गुदम, 'एत भीर उबर का शमन होता है, अग्नि दोष होता है तथा आम का पाचन होता है ॥ १-४ ॥

काथमेपां पित्रेद्वारी लघणेन समपित्तम् । मध्वलशूलगुहमध्न कफानिलहर परम् ॥ ५ ॥

इस पिप्पल्यादि गण या विधिपृथक् काथ बनाकर उसमें मैथानमरु या प्रक्षेप देकर यदि प्रयुक्त हो तो पिलाया जाय तो मध्वल शूल और गुहमरोग नष्ट होते हैं । यह कफ तथा वायु दोष को नष्ट करने में अति उत्तम है ॥ ५ ॥

त्रिकटुकचातुर्जातिककुस्तुग्वरुचूर्णसंयुक्तं निर्यम् । सादेद्गुह पुराण मारी मध्वलदलनाय ॥

त्रिकटुकादि चूर्ण—सौंठ मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तैमपात, नागकेशर और धनियों को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर उसमें पुराना गुह मिलाकर खाने से मध्वलशूल नष्ट होता है ॥ ६ ॥

दोण योल सघृत सगुह गुटकीकृतं गिलितम् ।

मवकृलाभिधशूल हन्ति समूल सशोणिततद्गम् ॥ ७ ॥

दोणबोलादि—रक्तवर्ण के बोल को घृत तथा पुराने गुह के साथ बटी बनाकर खाने से मध्वल शूल तथा सभी प्रकार के रक्त क अन्याय उपद्रव समूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

द्विष्टुगु शुद्ध ससर्विर्कं भुक्त मध्वलशूलनुत् ॥ ८ ॥

शुद्ध हींग को घृत के अनुपात से खाने से मध्वलशूल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

प्रयत्नाया हितान्याह—

प्रसृता युक्तमाहार विहार च ममाचरेत् । व्यायाम मैथुन क्रोध शीतसेवां च वर्जयेत् ॥ १ ॥

प्रयत्ना स्त्री क हितकर कार्य—प्रयत्ना स्त्री योग्य आहार विहार को कर । व्यायाम, मैथुन, क्रोध और शीतल पदार्थ का व्यवहार आदि स्वाग्य देवे ॥ १ ॥

मिथ्याचारास्तिकाया यो ध्यादिरुपजायते । स कृष्णसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्पथ्य समाचरेत् ॥

प्रयत्ना स्त्री को मिथ्याचार अर्थात् अनुचित आहार विहारों के कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं वे कष्ट साध्य अथवा असाध्य ही होते हैं । इसलिये प्रयत्ना को पूर्ण पथ्य करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

मिथ्योपचारासवलेशाद्विपमजीणमोज्जनात् । सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥

प्रयत्ना के अनुचित आहार विहार करने से, दोष जनक अन्न के सेवन से, विषम भोजन से तथा अजीर्ण में भोजन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं वे अत्यन्त कठिन होते हैं ॥ १ ॥

अङ्गमर्दो ज्वरः कम्प पिपासा गुह्याग्रता । शोफः शूलानिसारी च सूतिकारोगलक्षणम् ॥२॥

सूतिका रोग के लक्षण—अङ्गों का टूटना, ज्वर, कम्पन, पिपासा, शरीर में गुरुता, शोथ, शूल और अतीसार होना ये सब सूतिका रोग के लक्षण हैं जो उपरोक्त कारणों से हो जाते हैं ॥२॥

ज्वरादीनां रोगावशेषाणां निदानविशेषमाह—

ज्वरातीसारशोयाश्च शूलानाह्वयलक्षणाः । तद्धारुधिप्रसेकाद्या चातरलेष्मसमुद्भवाः ॥ ३ ॥

ज्वरादि रोग—ज्वर, अतीसार, शोथ, शूल, आनाह, बल की क्षीणता, तद्द्रा, अरुचि तथा प्रसेक आदि में सभी उपद्रव वात-कफ के दोष से उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

कृष्णसाध्या हि त रोगा क्षीणमांसबलाभिस्ताः ।

ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवा ॥ ४ ॥

यदि प्रयत्ना का मांस तथा बल क्षीण हो गया हो तो ये सभी रोग नष्टसाध्य होते हैं तथा ये सभी रोग और उपद्रव सूतिका नाम के रोग कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सायाह ।

सूतिकारागशान्त्यर्थे कुर्याद्वातहरं क्रियाम् । द्वाभामूलकृतं काथं कोष्ण दद्याद् घृतान्वितम् ॥

सूतिका चिकित्सा—सूतिका रोग को शान्ति के लिये वातनाशक चिकित्सा करना चाहिये । दशमूल के सभी औषधियों को लेकर विधिवत् काथ बनाकर उसमें घृत का प्रक्षेप देकर किञ्चिद्वर्ण रहते २ पान करने से सूतिका रोग शमन होता है ॥ १ ॥

अमृतानागरसहचरभद्रोक्तपञ्चमूलत्रलद्वजलम् ।

श्रुतशीत मधुयुक्त क्षामयत्यधिरेण सूतिकातङ्गम् ॥ २ ॥

गुरुच, सौंठ, कटसरैया, भद्रमोपा, बनबाहन, लघु पञ्चमूल ( शालिपर्णी, वृषणी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी गोखरू ), नागरमोपा और सुगन्धबाला, को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काप कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र ही घृतिका रोग शमन हो जाता है ॥ २ ॥

देवदावादि—

श्लेष्माक वचा कुष्ठ पिप्पली विश्वमेपजम् । भूनिम्बः कटफल मुस्त सिंघा घान्य हरीतकी ॥  
गजकृष्णा च दु स्पर्शा गोष्ठरधन्वयासक । घृह्यतिविपा छिन्ना कर्कटं कृष्णजीरकम् ॥ २ ॥

समभागान्वितैरै सिन्धुरामतस्युतम् । फायमष्टावशेष तु प्रसूतां पायवेच्छियम् ॥ ३ ॥

शूलकासज्वरधासमूर्द्धाकम्पशिरोर्तिभिः । युक्त मलापतृद्वाहत द्रातीसारवान्तिभि ॥ ४ ॥

निहन्ति सूतिकारोग वातपित्तकफोद्भवम् । कपायो श्लेष्मावादि सूतायाः परमौषधम् ॥ ५ ॥

देवदावादि काथ—देवदारु, वच कूठ, पीपल, सौंठ, चिरायता कायपर, नागरमोपा,

कुटकी धनियाँ, हरद, गजपीपल भटकैया गोबरू, जवासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गुरुच, काकडा

सिंगी और कृष्ण जीरक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक अष्टमाशवशेष काप बनाकर शुद्ध हो

और सेंपानमक का प्रक्षेप देकर प्रयत्ना खी को पिलाने से शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्द्धा,

कम्पन, शिरःशूल प्रलाप, तृषा, दाह तन्द्रा, अतीसार और धमन से युक्त घृतिका रोग जो वात-

पित्त और कफ से उत्पन्न हुआ हो नष्ट होता है । यह देवदावादि काथ घृतिका रोग को परम

औषधि है ॥ २-५ ॥

निगुण्डयात्त्रिकाथ —

सयोजितो दलितया कणया कवोष्णो निर्गुण्डिकालशुननागरजः कपायः ।

पीतो निहन्ति कफमारुतकोपजातं सूत्यामयं सकलमेव सुदुस्तर च ॥ १ ॥

निगुण्डयात्त्रिकाथ—निगुण्डो, लक्ष्मण और सौंठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काप

करके किञ्चित् उष्ण रहते उसमें पीपल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ-वायु के दोष

से उत्पन्न घृतिका रोग जो कठिन अवस्थाओं में भी हो नष्ट होता है ॥ १ ॥

सहचरादि—सहचरकुलशयपुष्करदारुनिगादाहयेतसकायः ।

पीत सहिद्गुलदण क्षामयति शूलज्वरौ सूत्याः ॥ १ ॥

सहचरादि काथ—कटसरैया, कुलशी, पीरहरमूल, वारुहलनी, देवदारु और वेठ को समान

भाग लेकर विधिपूर्वक काप करके उसमें गुड होँग तथा सेंपानमक का प्रक्षेप देकर पान करने से

शूल ज्वर सहित घृतिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पञ्चमूलादि—

पञ्चमूलस्य या काय सप्तलोहेन संगतम् । सूतिकारोगनाशाय पिवेद्वा सद्युतां सुराम् ॥ १ ॥

पञ्चमूलादि काथ—पञ्चमूल ( लघुपञ्चमूल ) या काप बनाकर उसमें लीहा को तपाकर उसा

थर घृतिका रोग को नष्ट करने के लिये पिलाना चाहिये भयवा पञ्चमूल से युक्त शरा पिलाना

चाहिये ॥ १ ॥

पञ्चजीरकपाक—

जीरकं शूलजीरकं वातप्रुष्पाह्वयं तथा । यथानी आजमोदा च घान्यकं मेयिकाऽपि च ॥ १ ॥

शुण्ठी कृष्णा मणामूळं धित्रकं ह्युपाऽपि च । विदारीफलचूर्णं तु कुष्ठ कम्पिष्ठकं तथा ॥ २ ॥

पुस्तानि पलमात्राणि गुड पलदातं मतम् । शीर प्रत्यह्य दध्वापरिपा कुट्टवं तथा ॥ ३ ॥

पञ्चजीरकपाकोऽय प्रसूतानां प्रगस्यते । पुञ्पते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे चये ॥

कासे श्वासे पाण्डुरोगे कारये यातामपेषु च ॥ ४ ॥

पञ्चजीरकपाक—जीरा, शूलजीरक ( करजीरी ), सौंठ सीवा, जवाहन, अत्रमोपा, धनियाँ,

मेथी, सौंठ पीपल, चिरामूल, चित्रकमूल, हाउबेर, विदारीकन्द के फल का चूर्ण, कूठ और

कड़ीना प्रत्येक एक २ पल, पुराना गुड सौ पल दूध को प्रत्य और यौ एक कुष्ठ ( एक पात्र )

लेकर पाक की विधि से पाक सिद्धकर लेवे । इसे घृतिका रोग योनिरोग, ज्वर, श्वास, श्वाप,

पाण्डुरोग, कुष्ठता तथा वातरोगों में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १-४ ॥

सौभाग्यशुण्ठी—भाज्यस्याञ्जलियुग्ममत्र पयसः प्रस्यद्वय खण्डत  
पद्मानालमत्र चूर्णितमथ प्रक्षिप्यते नागरम् ।  
प्रस्यार्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टिप्रय धायका  
न्मिस्या पद्मपल पल कृमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ १ ॥  
ह्योपात्तमोददलोरोद्गसुमन सदाविद्यीनां पल  
पष्य नागरखण्डतञ्जकमिद सौभाग्यद घोषिताम् ।  
तृष्टुष्टुर्द्विज्वरवाहशोपशमन सश्वासकासापह  
प्लीहव्याधिविनाशन कृमिहरं मन्त्रामिसदीपनम् ॥ २ ॥

सौभाग्य शुण्ठीपत्र—गौ का घन दो अञ्जली, गौ का दूध दो प्रस्थ ( दो सेर ), शकरा ५०  
पल और सोंठ का चूर्ण आधा प्रस्थ लेकर गुडपाक वी विधि से पाक कर उसमें धनियों का चूर्ण  
३ पल, सौफ का चूर्ण ५ पल, वायविहग का चूर्ण २ पल, जोरा का चूर्ण २ पल, कृष्णजीरा का  
चूर्ण २ पल, सोंठ, मरिच, पीपल नागरमोथा, तेजपात, इन्द्रजौ, ब्रावित्री और छोटी इलायची  
के दाने का चूर्ण एक २ पल मिलाकर पाक प्रस्तुत कर लेवे । यह स्थियों को सौभाग्य देनेवाला  
है तथा पिपासा, बमन, ज्वर, दाह और शोथ को शमन करता है और श्वास, कास और कृमि  
रोग को नष्ट करता है तथा मन्त्राग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १-२ ॥

अन्यथा—

नागर कणशः कृत्वा प्रस्यमात्र मियवरः । अजादुग्धान्कह्वे विपचेन्मद्वह्निना ॥ १ ॥  
घनीभूते तु पयसि तस्माच्छुण्ठीं समुदरेत् । अतिसूक्ष्म विनिष्पिष्ये शोपयेदातपे खरे ॥२॥  
घृतमानीं समावाप्य तद्दुग्धं तु पुनः पचेत् । यावत्पिण्डत्वमायाति ततस्तत्र विनिष्पिपेत् ॥  
घातुर्जातं तुगा घेहल धान्यक जीरकद्वयम् । मिश्रमाकवलक शुण्ठीं ह्यङ्ग च घातावरीम् ॥  
तालमूली त्रिकटुक कपिकृष्ण च पटुकटु । जातीफल जातिपर्त्री शृङ्गाट धृद्धदारकम् ॥ ५ ॥  
त्रिभृता पद्मबीज च त्रिफलां च यलाप्रयम् । अल सेष्य याजिगधाचन्दनागहकारधीः ॥६॥  
कङ्कोलमजगधां च द्राघामाषोठवारिजे । अजमोद च यादाम नारीकेलगतं तथा ॥ ७ ॥  
कर्पूरमञ्जक लोह घञ्ज साभ्र शिलाजतु । स्वर्णमाक्षिकमप्येतत्पत्येक कर्पमात्रकम् ॥ ८ ॥  
चूर्णाङ्गुय क्षिपेत्तत्र पाणिभ्यां मधुपेद्वहडम् । ततः खण्डतुलां पक्त्वा तथा तच्च क्रियां चरेत् ॥  
खण्डनागरक नाम्ना भैषज्यमिदमुत्तमम् । यथाबलमिदं स्वादेत्प्रात साय च भेषजम् ॥१०॥

सोंठ वी खण्ड २ करके एक प्रस्थ लेवे और इसे दो आदक ( ८ प्रस्थ ) दकरी के दूध में  
मन्द २ अभ्र पर पकावे जब दूध गाढ़ा हो जाय तब उससे सोंठ के खण्डों को निकाल कर अत्यन्त  
घृष्म पीसकर तीक्ष्ण धूप में सुखावे तथा गोघृत एक मानो ( आधा प्रस्थ ) लेकर उक्त दूध  
( जिसमें से सोंठ निकाल ली गयी है ) में मिलाकर पुन इसे पकावे जब उसका पिण्ड होने लगे  
अर्थात् जब खोसा हो जावे तब उसमें उपरोक्त सोंठ मिला देवे तथा दालचीनी, इलायची तेज  
पात नागकेसर, बंशलोचन, वायविहग, धनियां जीरा कृष्णजोरा सौफ, अकरकरा, सोंठ,  
लवंग शतावरी, मूसली, सोंठ, मरिच, पीपल, केवांच के बीज, सोंठ मरिच, पीपल, पिपासामूल,  
चाव, चित्रकमूल, आयफर नावित्री, तिषासः विधारा, त्रिभृता कमल के बीज, आमला, इरड,  
बहेड़ा, बरियारा, अतिबला (सहदेयी नागबला ककड़ी) मुगबबाला, खम, असगध, चन्दन, अगर,  
करवीरी कङ्कोल, अजगन्धा ( ममरी ) दाख, अखरोट, कमल अजमोदा, यादाम, नारियल, वपूर,  
अभ्रकभस्म, लौहभस्म, बगभस्म, साभ्रभस्म शुद्ध शिलाजीत और स्वर्णमाक्षिकभस्म के इक्षण चूर्ण  
तथा भस्म को धूपक २ प्रत्येक एक २ कष वी मात्रा से लेकर उसमें मिलाकर हाथों से मलीमौलि  
मर्दन करे पश्चात् एक सौ पल शर्करा लेकर उसका पाक कर ( चाशनी बना ) उसमें मिला देवे  
इस प्रकार विधिवत् पाक प्रस्तुत कर लेवे । यह खण्डनागरक नाम की उत्तम औषधि है इम औषधि  
को बलानुसार प्रात प्रायं स्वाना चाहिये ॥ १-१० ॥

श्रीणामतिहितं चात्र पथ्यापथ्यविचारणा । ह्ये पाण्डौ ज्वरे कासे श्वासे मदानले शया ॥  
सप्रहण्यां रक्तगुहमं प्रदरे सोमरोगके । दुग्धक्षये मूत्रकृष्ण कामलायां गालग्रहे ॥ १२ ॥  
पित्तरोगेषु सर्वेषु घातपित्तगदेषु च । सूतिकापचनव्याधी शस्तमेतच्च सशय ॥ १३ ॥



अग्निन्यां पूर्णमुदित सेव्यो योगोऽयमुत्तम । पृषा सौभाग्यदा शुण्ठी स्त्रीणा पुत्रप्रदा शुभा ॥  
 यह स्त्रियो के लिये अत्यन्त हितकर है, इसके सेवन में पृष्यापय का विचार नहीं है ।  
 यह पाक क्षय, पाण्डु, ज्वर, कास, श्वास, मन्दाग्नि, सद्रहणी, रक्तज्वर, प्रदर, सोमरोग, दुग्ध  
 क्षय ( दूध की 'मूनता'), भूत्रकृच्छ्र कामला, गलप्रद, सभी प्रकार के वितरोग और वातविष  
 रोग, छतिका रोग तथा वातव्याधि अथवा छतिका के वायु में हितकर है । इन सभी रोगों को यह  
 पाक नष्ट करता है । इसे पहले अग्निनोनुमारों ने बनाया था । यह अत्यन्त उत्तम तथा सेवन के  
 योग्य है । यह सौभाग्य शुण्ठी योग स्त्रियों को पुत्र देनेवाला है ॥ ११-१४ ॥

अथ च- भागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम् ।

श्रीरावक्रेन सयुक्तं सण्डस्यार्धतुलां पचेत् ॥ १ ॥

शताह्वाजीरकम्पोपत्रिसुगांधियवानिकाः । कारवीमिसिचध्याप्रिमुस्तानी च पलं पलम् ॥२॥  
 छेहीभूतमिदं सिद्ध घृतभाण्डे निधापयेत् । तद्यथाभियल खादोस्त्विका तु विनोपतः ॥ ३ ॥  
 यत्प घर्ष्यं तथाऽऽप्युष्य वलीपलितनाशनम् । वयस स्यापन ह्यह मन्दानेर्दीपित परम् ॥४॥  
 आमवातप्रशमन सौभाग्यकरमुत्तमम् । मङ्गलशूलशमनं सूतिकारोगनाशनम् ॥ ५ ॥

सौंठ ८ पल, गोघृत २० पल, गोदुग्ध एक आठक ( चार प्रस्य ) शर्करा ५० पल, सबको एकत्र  
 कर गुब्बापाक की विधि से पाक कर उसमें सौंफ, जीरा, सौंठ, मरिच पीपल, वालचीनी, इलायची,  
 तेजपात, जवाहन, कालाजीरा या मगरेला, सौंफ, चम्य, चित्रकमूल और नागरमोथा प्रत्येक का  
 चूर्ण एक २ पल लेकर मिलाकर विधिपूर्वक लेह की भाँति सिद्धकर घृत भाण्ड (घृत से स्निग्ध पात्र)  
 में रख देवे । छतिका रोगी को इसे अग्निमूल के अनुसार मात्रा से सेवन करा जा चाहिये । यह  
 बलदायक, बर्णप्रसादक, गायुर्बन्धक, बलीपलित नाशक, आयुस्थापक और छद्म को हितकर है ।  
 यह मन्दाग्नि को अत्यन्तदीप्त करता है, आमवात को शमन करता है, उत्तम सौभाग्यदायक है,  
 मक्कलशूल को शमन करता है और सूतिकारोग को नष्ट करता है ॥ ४-५ ॥

प्रतापलङ्केश्वरौ रस —

पुकेन्दुषु धानलवार्धिवन्तीकलैकमागं क्रमसो विमिश्रम् ।

सूताभ्रगंधोपणलोद्दक्ष्णवन्त्योपलामस्मविषं च पिष्टम् ॥ १ ॥

प्रसूतिधातेऽनिलवृत्तमध्ये सार्द्राग्भसा घल्लममुष्म लिष्टात् ।

वातामयै श्लेष्मगदोऽर्शांसि स्यापुसामृताद्वाग्निक्लायुक्तोऽयम् ॥ २ ॥

सश्वयेरस्य एष हन्ति ससंनिपातं ज्वरमुपरूपम् ।

निजानुपानैर्निजपप्पमुष्ट सर्वात्सारात् प्रहणीविकारात् ॥ ३ ॥

प्रतापलङ्केश्वरनामधेयः सूत प्रयुक्तो गिरिराजपुम्भा ॥ ४ ॥

प्रतापलङ्केश्वर रस—शुद्धपारं, अशरुभरम और शुद्धगंधक १-१ भाग, मरिच का चूर्ण  
 १ भाग लौहमस ४ भाग शङ्खमस ८ भाग, अंगली मोरठ का भरम १६ भाग और शुद्ध विष  
 २ भाग लेकर प्रथम पारद गंधक की कचबली कर उसमें सब औषधियों को मिलाकर मज्जीभाँति  
 पीस कर रस भवे । प्रवृत्तिवात में जब वायु से दौँत ठेठ आवे तब इसे आर्द्रक के रस के  
 अनुपात से बरल प्रमाण ( डेढ़ रत्ती से १ रत्ती तक की मात्रा में अवरुधा तथा बरु के अनुसार )  
 घटाया चाहिये । यष, तथा अशरुभरम में इस रस को शुद्ध शुग्ध, शुक्च, आद्रव तथा निकम्पा के  
 चूर्ण अथवा काय के अनुपात से सेवन करा जा चाहिये । केवल आर्द्रक के रस के अनुपात से  
 सेवन करने से सत्रिपात छद्म ज्वर को नष्ट करता है और अपने २ अनुपात से सेवन करने  
 से और उसके अनुकूल पथ्य करने से सभी प्रकार के जनीसात और मद्दगी को नष्ट करता है  
 प्रतापलङ्केश्वर नाम के इस रस को पार्वती जी ने प्रयाग विधा था ॥ १-४ ॥

प्रघृताया नियमसमदायविमाह—

सर्वतः पतिशुद्धा स्यास्तिग्धपृष्ठाऽश्वभोग्ना । स्वैदाग्ध्रपरा तित्यं भयेग्मासमत्किद्रता ॥

प्रघृता के नियम—सब प्रकार से प्रघृता का गरिी-वक्ष गुद्दरि स्वध्व रक्षना चाहिये,  
 तथा स्निग्ध एवं अक्ष भोजन कराना चाहिये तित्य रवेद और तैनाम्पद् आदि कराना चाहिये ।  
 इस प्रकार एक मास तक बिना आलस्य के इस नियम से रखना चाहिये ॥ १ ॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरातंवे । सूतिवागामहीना ह्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ २ ॥

प्रयत्ना स्त्री वेद मास के पश्चात् अथवा पुन ऋतुमती हो जाने पर प्रयत्ना नाम से हीन हो जाती है, ऐसा ध्वन्तरि का मत है ॥ २ ॥

उपद्रवैर्विशुद्धां च विशाय चरवर्णिनीम् । ऊर्ध्वं चतुर्था मासेभ्यः परिहार विसर्जयेत् ॥ ३ ॥

अब सब प्रकार के उपद्रवों से विशुद्ध (मुक्त) होकर प्रयत्ना स्त्री पूर्णस्वस्थ हो जाये तब चार मास के पश्चात् परिहारों को ( चतिका के पथ्यादिकों को ) त्याग देवे ॥ ३ ॥

**अथ स्तनरोगस्य निदानपूर्विका चिकित्सामाह ।**

सक्षीरौ चाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनी क्षिया ।

रक्त मांस च सदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥

स्तनरोग निदान—क्षी के दूध सहित अथवा बिना दूध के ही स्तनों में कुपित वातादि दोष प्राप्त होकर रक्त और मांस को दूषित करके स्तनरोग कर देते हैं ॥ १ ॥

स्तनरोगागामतिदेशेन लक्षणान्याह—

पञ्चानामपि सेषां हि रक्तज विद्रधि विना । लक्षणानि समानानि षाड्विद्रधिलक्षणैः ॥

स्तनरोग का लक्षण—जिस प्रकार षाड्विद्रधि होती है उसी प्रकार रक्तज विद्रधि के बिना वात, पित्त, कफ, सन्निपात तथा आगन्तुक ( अग्निधाताः से उत्पन्न ) भेद से पांच प्रकार के स्तनरोग षाड्विद्रधि के लक्षणों के समाग लक्षण वाले होते हैं ॥ २ ॥

स्तनरोगचिकित्सा—

दोषं स्तनोरित्तमवेष्य भिषग्विद्वद्याद्यद्विद्रधायभिहित यद्दुघा विघानम् ।

आमे विद्वद्वाति तथैव गते च पाक यस्या स्तनी सततमेव च निगृहीतौ ॥ १ ॥

पित्तघ्नानि सुषीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयोजयेत् । जलीकाभिर्हरेद्रक्त तस्तनावुपनाहयेत् ॥ २ ॥

स्तनरोग चिकित्सा—स्तन में उत्पन्न हुए शोथ को देख कर विद्रधिरोग में कहे हुए अनेक प्रकार की चिकित्साओं को करना चाहिये । आम अवस्था में, विद्राही अवस्था में तथा पक्व जाने पर स्त्री यथाक्रम से विघनाशक एवं सुशीतल द्रव्यों का प्रयोग ( लेपादि लगाना ) जलीका द्वारा रक्तमोक्षण कराना और उसके स्तनों में उपनादादि ( सेनादि ) क्रिया करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

लेपो विशालामूलेन हन्ति पीढां स्तनोरित्ताम् ।

निशाकनककल्काभ्यो लेप प्रोक्तः स्तनातिहा ॥ ३ ॥

हृद्रामण ( माहुरि ) की बड़ को विषपूर्वक पीसकर लेप लगाने से तथा हल्दी और धतूरे के पत्तों का चूक बनाकर लेप करने से स्तन की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

लेपाक्षिहन्ति मूल स्तनरोग यम्प्यककौटया । निर्वाप्य तसलोहं सलिले तद्वा पिचक्षत्र ॥४॥

बाह्यकवोष्ठे की बड़ का लेप बनाकर लगाने में तथा छोड़े की अग्नि में तपाकर पानी में बुझाकर उस पानी को पिलाने से स्तनरोग शमन होते है ॥ ४ ॥

इति स्तनरोगप्रकरणं समाप्तम्

**अथ क्षीरदोषचिकित्सा ।**

उक्तं मुञ्चते—

रसप्रसादो मधुरः पक्काहारनिमित्तजः । कृस्नदेहास्तनौ प्राप्त स्तन्यमित्यभिपीयते ॥ १ ॥

स्तन्य के लक्षण—भोजनपाक से उत्पन्न रस का मधुर प्रसाद भाग जो सम्पूर्ण शरीर से स्तनों में आ जाता है उसे स्तन्य ( दूध ) कहते हैं ॥ १ ॥

माषवेनाप्युक्तम्—

गुरुभिर्विधैरन्नेर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् । क्षीरं घाभ्या कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ २ ॥

दूषित स्तन्य—गुरु अन्न के सेवन तथा और भी अनेक प्रकार के वातादिकों के दूषित करने वाले आहारादि के सेवन से वातादि दोष माता अथवा धाय के दूध को दूषित कर देते हैं, वह दूध अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २ ॥

कषाय सलिलप्लावि स्तन्यं मादतदूषितम् ।

वात दोष से दूषित दूध—वात दोष से दूषित दूध स्वाद में कषाय तथा जल में गिराने पर ऊपर हो ऊपर सँग्ने वाला होता है ॥

कद्व्यम्ललवण पीतराजिमत्पित्तसञ्चितम् ॥ ३ ॥

पित्त दोष से दूषित दूध—पित्त दोष से दूषित दूध स्वाद में कटु, अम्ल तथा लवणरस रास तथा पीली रेखाओं से युक्त होता है ॥ ३ ॥

कफदुष्ट घन तोये निमग्नाति सुपिच्छलम् ।

कफदोष से दूषित दूध—कफ दोष से दूषित दूध गाढ़ा, चिकना तथा जल में गिराने पर हूब जाता है ॥

द्विलिङ्ग द्रव्यज विचारसर्वलिङ्ग त्रिदोषजम् ॥ ४ ॥

द्रव्यज तथा सन्निपातज दोष से दूषित दूध—जिस में दोषों के मिलित लक्षण दिखाई दे उसे द्रव्यज और जिसमें तीनों दोषों के लक्षण दिखाई दे उसे त्रिदोषज दूध जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अविश्रुतरत्न्यमाह—

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् । मधुरं चाविवर्णं च सप्रसन्नं यिनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

शुद्ध दूध—जो दूध दूषित नहीं होता है वह जल में छोड़ने पर शीघ्र ही जल में मिल जाता है और वर्ण में पाण्डुर (श्वेत) तथा स्वाद में मधुर रस वाला होता है तथा वह वातादि दोषों के वर्ण से रहित अपने वर्ण में ही रहता है । ऐसे दूध को शुद्ध दूध कहते हैं ॥ १ ॥

सञ्चिकित्सा—

सत्र घासात्मके स्तन्ये दशमूर्त्तीं श्यह पिथेत् । घातव्याधिहरं सर्पिं पीत्वा मृदु विरेचयेत् ॥

घातज दूध चिकित्सा—वात दोष से दूषित दूध में तीन दिन तक दशमूर्त्त का कषाय पीना चाहिये । तथा वातव्याधि नाशक सिद्ध घृत मिलाकर मृदु विरेचन कराना चाहिये ॥ २ ॥

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोल निम्बच-दनम् । घात्री कुमारश्च विद्येत्कायविस्वा सदाकरम् ॥ २ ॥

पित्तज दूध चिकित्सा—पित्त दोष से दूषित दूध में शुकच शतावरी पटोलपत्र नीम की छाल और रक्तचन्दन समान भाग लेकर विभिन्न कषाय बनाकर उसमें शर्करा का प्रयोग देकर माता अथवा धाय तथा बालक को भी पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

कफदुष्टे घृत पेय यष्टीसैन्धवसयुतम् । सठपुण्यै स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दधानव्यदौ ॥ ३ ॥

सुखमेव वसेद्बालः कफकोपक्ष सागयति ।

कफज दूध चिकित्सा—कफ दोष से दूषित दूध में जेठी मधु तथा सेंधानक का घृण मिलाकर गोघृत पिलाना चाहिये अथवा सेंधानक और जेठी मधु के योग से घृत मिश्र कर पिलाना चाहिये और सैन्धवक के फूलों को पीस कर कम्क बनाकर स्तनों पर तथा शिशु के भाठों पर भी रेष कर देना चाहिये । इसमें बालक सुसंपूजक वसन कर देता है तथा कफ का कोप भी शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

द्रव्यदुष्टं द्वियोगान्घ्नां पूर्वोत्तान्घ्नां विशोधयत् ॥ ४ ॥

त्रिदोषज दूध चिकित्सा—तीनों दोषों के लक्षणों से दूषित दूध को पहले कह द्रव्य दोषों की शान्त करने वाले योगों को देकर शुद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥

स्तन्ये त्रिदोषमदुष्टे बाहूदासं जलोपमम् । मानावर्णरजं चाधरिवद्रमुपवरयते ॥ ५ ॥

त्रिदोष दूषित दूध के लक्षण और चिकित्सा—त्रिदोष दूषित दूध को पीन बाल बालक का मूत्र आमयुक्त, जल के समान, अनेक वर्ण का तथा अनेक पीडाओं से युक्त, अथवा कैंपा दुग्धा (भाषा-गाढ़ा भाषा पक्का) होता है ॥ ५ ॥

पाठा मूर्त्वां च भूमिम्बदारुण्ठीकलिङ्गका । सारिपाघनविच्छाद्य सद्य स्तन्यविशोधनम् ॥

पुररनपादो, मूर्त्वा, चिरायता, दासद्व १, सौंड, रद्रभी, सारिपा, नागरनीप और कुरभी को समान भाग लेकर कषाय बनाकर पिलाने से त्रिदोष से दूषित दूध का शोधन होता है ॥ ६ ॥

स्तन्यजननविधि—

भूमिदृग्माण्डमूल्स्य श्रीरविष्टस्य यो रसम् । पित्तसदाकं रस्याः श्रीं यद् विवर्धते ॥ १ ॥

दुग्ध वर्धक योग—विदारिकन्द को गौ के दूध के साथ पीसकर उसका रस निकाल कर उसमें शकरा मिलाकर पान करने से प्रयत्ना स्त्री का दूध बहुत बढ़ता है ॥ २ ॥

शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धनी । कबोष्ण कण्ठया पीत क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ॥ २ ॥

शतावरी को गौ के दूध के साथ पीसकर पान करने से तथा निश्चिद उष्ण गौ के दूध में पीपल का घूर्ण मिलाकर पात्र करने प्रयत्ना का दूध बढ़ता है ॥ २ ॥

चनकार्पासकेघूर्णा मूल सौवीरकेण वा । विदारिकन्द सुरया पियेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ३ ॥

चनकपास तथा ईस की जड़ को सौवीर ( काबी ) के साथ पीसकर पिलाने से अथवा विदारिकन्द के घूर्ण को सुरा के साथ पिलाने से प्रयत्ना का दूध बढ़ता है ॥ ३ ॥

वज्रकाञ्चिकम्—

पिप्पली पिप्पलीमूल घण्टी यवानिका । जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विट सौवर्चल तथा ॥ १ ॥

पृष्टैरेधौपधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् । तद्यथाग्नियत् पीत्वा प्रसूता सुखमश्नुते ॥ २ ॥

आमयातहर वृष्य कफघ्न वातनाशनम् । तद्ब्रह्मकाञ्चिक नाम्ना स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ॥

मक्कलशूलसामर्म पर क्षीरविवर्धनम् ॥ ३ ॥

वज्रकाञ्चिक योग—पीपल, पिपरा मूल, चाब सोंठ अवाहन, जीरा, कृष्णजीरा, इलदी, विट लवण और सौवर्चल लवण को समान भाग लेकर कूट पीसकर ( काबी ८ पल, जल ३२ पल, पीपल आदि प्रत्येक चार २ मासा एकत्र कर पाक करे ८ पल शेष रहने पर उतार छवे ) इस सिद्ध काबी की अग्निबल के अनुसार पीने से आमयात का नाश होता है । यह घृत कफ नाशक और वात नाशक है । यह वज्रकाञ्चिक नामक योग जियो की अग्नि को बढ़ाता है, मक्कलशूल को नष्ट करता है और दूध को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्यम्—

यत्पथ्यं यदपथ्यं च रक्तपित्तेषु कीर्तितम् । प्रदरेऽपि पथादोष तप्तु मारी रुजि त्यजेत् ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—जो पथ्य और जो अपथ्य रक्तपित्तरोग में कहा गया है, प्रदर रोग में भी वही दोषानुसार स्त्री को त्यागना चाहिये ॥ १ ॥

वातव्याधिमतां पथ्यापथ्यं च यदुदीरितम् । योनिव्यापद्यु सर्वासु विवृष्यात्त यथामलम् ॥२॥

वातव्याधि में जैसा पथ्यापथ्य कहा गया है वैसा ही सभी योनि व्यापक रोगों में दोषानुसार जानना चाहिये ॥ २ ॥

शालय पष्टिकाः मुद्गाः गोधूमा लाजसक्तयः । नवनीत घृत क्षीर रसाला मधु शर्करा ॥

पनस कदल धात्री द्राचाम्ल रवाद्दु शीतलम् ॥ ३ ॥

कस्तूरी चन्दन माला कर्पूरमनुलेपनम् । चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुदाय्या हिमानिलः ॥४॥  
सतर्पण प्रियारलेपो विहाराद्य मनोरमा । मिर्यकर चाक्षपान गर्भिणीनां हित सदा ॥ ५ ॥

गर्भिणी के लिये पथ्यापथ्य—शालिधान का चावल, साठी का चावल, मूंग गेहू, धान के लावा का सत्त, मक्खन, धन, दूध, रसाला योग, मधु शर्करा, कटइल, केला, आंवला, दाख, अम्लरस, मधुररस शीतल पदार्थ, कस्तूरी, चन्दन माला धारण और कर्पूर का लप, चन्द्रमा के किरण स्नान, अभ्यङ्ग, कीमल शय्या शीतल वायु, सुस्तिरक पदाथ, प्रिय का आलिंगन, मन को भाने वाला विहार ( आनन्द प्रमोद ) तथा प्रिय अन्न और पेय पदार्थ का सेवन ये सभी गर्भिणी के लिये पथ्य हैं ॥ ३-५ ॥

स्वेदन वमनं चार कवृक्ष विषमाशनम् । अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गुर्विणीनां महर्षिभिः ॥ १ ॥

स्वेद वमन क्षार पदार्थ, दूषित भयवा रूक्षादि और विषम भोजन को महर्षियों ने गम्बती स्त्री के अपथ्य कहा है ॥ १ ॥

सूतिकाण्येषु रोगेषु वातश्लेष्मोद्भवेषु च । सत्र शोमानुकरूपेण पथ्यापथ्याविनिर्दिशेत् ॥ २ ॥  
घृतिका रोगों में तथा वात-कफ के दोष से उत्पन्न हुए रोगों में उन २ रोगों में कहे हुए पथ्यापथ्य के अनुसार पथ्यापथ्य करें ॥ २ ॥

इति क्षीरोगप्रकरणं समाप्तम्

**अथ वातरोगाधिकारः ।**

तत्र बालरोगानि निदानानि लक्षणानि च—

धात्र्यास्तु गुरुभिर्मोक्षैपिमैर्दोषैस्तथा । दोषा वेदे प्रकृष्यन्ति सतः स्तन्य प्रदुष्यति ॥१॥

बाल रोगों के निदान—धाय अथवा माता के गुरु भोजन करने से, विषम भोजन करने से तथा दोषों को कुपित करनेवाले पदार्थ का भोजन करने से अथवा अन्य दोष वाले भोजन करने से वातादि दोष शरीर में कुपित हो जाते हैं और कुपित होकर दूध को दूषित कर देते हैं ॥ २ ॥

मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा चातादयश्च । दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते प्याधय शिशोः ॥

मिथ्या ( अनुचित ) आहार विहार करनेवाली धाय अथवा माता के शरीर में वायुज्ज्वलित दोष दूषित हो जाते हैं और दूध को दूषित कर देते हैं जिससे दूध पीने वाले शिशु को रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

वातादुदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वावगदासुरः । घामस्वरं कृष्यात् स्यादुपद्रविष्णुममस्त ॥

वात से दूषित दूध को पीनेवाला बालक वातरोग से पीड़ित होमाता है, उसका स्वर क्षीण हो जाता है, अन्न दुर्बल हो जाता है और उसका मल मूत्र तथा अधोवायु अवच्छेद हो होकर जाता है ॥ ३ ॥

स्विन्नो भिन्नमलो वाळ कामलापित्तरोगवान् । लुण्णालुलुप्यासर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥

पित्त से दूषित दूध को पीनेवाला बालक स्वेदयुक्त रहता है ( उसे निरंतर पत्थीना टुमा करता है ), उसे विद्भेद रहता है, कामला तथा पित्तरोग से युक्त रहता है, सूषावाला होता है और उसका सम्पूर्ण अंग उष्ण रहता है ॥ ४ ॥

कफदुष्ट पियं शीरं लालालु श्लेष्मरोगवान् । निद्रावितो जटः शुभवचघ्राणस्यर्ध्वनः शिशुः ॥

कफ से दूषित दूध को पीनेवाला बालक आलासार्थी होता है ( उसे निरंतर हाट गिरता है ), कफरोग वाला होता है, निद्रालु होता है, शिथिलान्न होता है, उसके मुख और नेत्र में शोथ रहता है और वजन बढ़ किया करता है ॥ ५ ॥

शिशोर्वक्षुगक्षमस्यान्तगतवेदनाशनोपायमाह—

शिशोस्तीक्ष्णामतीर्णा च रोचनाकलचयेमुग्रम् ॥ १ ॥

बालक के रोग परीक्षा—बालक की तीव्र पीड़ा अथवा मंद पीड़ा उसके रोने से जाना चाहिये । तीव्र पीड़ा में अधिक रोता है, मन्द पीड़ा में कम रोता है ॥ २ ॥

कुक्षुण्णमाह—

कुक्षुण्णकः शीरदोषारिद्रशूनामेव घामनि । जायमे तेन तन्नेत्रं कण्ठूर च सवेमुहुः ॥ १ ॥

शिशुः कुप्यांसलटापिकण्ठनासावघर्षणम् । दाक्षो नार्कप्रभां द्रष्टु म घामोमीलाचमः ॥ २ ॥

कुक्षुण्णक रोग के लक्षण—कुक्षुण्णक रोग दूषित दूध को पीने से बालकों के नेत्र की पलकों में होता है जिससे नेत्र में कण्टु होता है तथा बार २ उमसे खाव होता है और बालक मलक, नेत्र, कण्ठ देश और नासिका को घिसा करता है, उसे धूर्त की प्रभा को देखने की शक्ति नहीं रहती है और न वह नेत्र के पलकों को खोलने में ही समर्थ होता है ॥ २ ॥

पारिगमिकमाह—मातुः कुमारो गमिप्याः रतन्य प्रायः पिषन्ति ।

रवासाग्निसादवमधुतन्नासासादधिन्नमै ॥ १ ॥

युग्पते कोष्ठशुद्धया च सम्राहुः पारिगमिकम् । रोग परिमदाप्यं च तत्र युञ्जीत दीपनम् ॥

पारिगमिक रोग के लक्षण—बालक गर्भवती को का दूध पीता हुआ अथवा न पीता हुआ जो ( गर्भिणी का बालक ) प्रायः श्वात, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, कास, अश्वि और भ्रमरोगों से तथा शोथ वृद्धि ( उदर का बढ़ जाना ) से युक्त हो जाता है उसे पारिगमिक या परिमक रोग कहते हैं । इस रोग में अग्निदीपन उपचार करना चाहिये ॥ १-२ ॥

तालुप्यकमाह—

तालुमांसे कफः कृद्भः बुद्धये तालुकर्तकम् । तेन तालुप्रदेशात्प मिन्नता भूमिं प्रापते ॥ १ ॥

तालुपात रतनश्लेष्मः कृष्णप्रापानं घ्राष्टुद्रवम् । शुद्धिपिण्डात्पद्मो प्रीयादुर्परता घमिः ॥२॥  
तालुप्यक रोग के लक्षण—बालक के तालुमांस में कुपित हुआ कफ तालुप्यक नामका रोग

उत्पन्न कर देता है जिससे शिर पर ताड़ प्रदेश की निम्नता हो जाती है अर्थात् ताड़ में गद्गहा पड़ जाता है । इसमें ताड़का पात ( ताड़ का नीचे की ओर भा जाता ), स्थाद्रेय अर्थात् स्तन नहीं पीना, कष्ट से दूध पीना, मल का द्रव होना, घृषा, त्रैश-कण्ठ तथा मुख में पीडा, ग्रीवा नहीं उठा सकता और वमन होना ये सब लक्षण हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

गदापद्यमाह—विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो वसतिर्धीर्पज्ज ।

पद्ययर्णा महापद्यरोगो दोषप्रयोज्ज्व ॥ १ ॥

दाह्याभ्यां हृदयं घाति हृदयाद्यं गुदं प्रमेयं ।

महापद्यरोग के लक्षण—बालक के वसतिस्थान तथा शिर में उत्पन्न हुआ विसर्प प्राणनाशक होता है उसका वर्णकमल के वर्ण का होता है, उसका नाम महापद्यरोग है और वह सीधे दाँवों के कोप से उत्पन्न होता है यह शल प्रदेश से शुरू होकर हृदय की ओर जाता है और ( वसित्तज ) हृदय से गुदा की ओर जाता है ॥ १ ॥

शुद्धरोगो च कथिते अजगस्यस्यहिपूतने ॥ २ ॥

अजगस्यी और अहिपूतना जो बालकों को होने वाले दो रोग हैं वे क्षुद्र रोग में कहे जा चुके हैं ॥ २ ॥

अयेऽपि विकारा बालाना भवन्ति तानतिदेशेनाऽऽह—

ज्वराद्या म्याधय सर्वे महतां ये पुरेरिता । घालदेहेऽपि ते सद्भ्रजेयाः स्युः कुण्डलैरिह ॥१॥

ज्वरान् रोग जो बच्चों के लिये पहले कहे गये हैं वे सभी बालकों के शरीर में भी होते हैं और वसी के अनुसार यदा भी वैष को जान लेता चाहिये ॥ १ ॥

दन्तोन्नेकान्तोरोगानाह—

दन्तोन्नेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतः । विनोपाज्ज्वरविहृभेदकासच्छुर्दिशिरोरुजाम् ॥

अभिष्यन्दस्य पोषयया विसर्पस्य च जायते ॥ १ ॥

दन्तोद्भेदक रोग—दन्तनिष्क्रमण बालकों के लिये सभी रोगों का कारण कहा गया है । विशेष कर इसमें, ज्वर, विहृभेद ( मल का द्रव होना ), कास, वमन, शिर में पीडा, अभिष्यन्द, पोषकी तथा विसर्प रोग भी हो जाता है ॥ १ ॥

ग्रहप्रस्तबालरोगलक्षणानि—

घालग्रहा अनाधारात्पीडयति शिशु यतः । तस्मात्तदुपसर्गभ्यो रश्चेद्वाल प्रयत्नतः ॥ १ ॥

ग्रहप्रस्त बाल रोग के लक्षण—आचार ( पवित्रता ) से नहीं रहने के कारण प्रायः बालग्रह बालकों को पीडित करते हैं इसलिये उनके उपद्रवों से यत्नपूर्वक बालक की रक्षा करना चाहिये ॥

बालग्रहानां नामावाह—

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च । शकुनी रेवती चैव पूतना गन्धपूतना ॥ १ ॥

पूतना शीतपूर्वा च सयैव मुत्तमण्डिका । नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता बालग्रहा भमी ॥ २ ॥

बालग्रहों के नाम—स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, गन्धपूतना, शीतपूतना, मुत्तमण्डिका और नैगमेय नाम के नौ ग्रह बालग्रह कहे जाते हैं ॥ १-२ ॥

सामान्यग्रहजुष्टानां बालानां लक्षणान्याह—

घणादुद्विजते घालः घणाद्यस्यति रोदिति । नपैर्दन्तैर्दारयति धाम्रीमातमानमेव च ॥ १ ॥

ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेः कृजति जृम्भति । भ्रुवी सिपति दन्तोष्ठ फेन वमति चासकृत् ॥

सामोऽति निशि जागति शून्याद्भो भिन्नविट्स्वरः ।

मांसशोणितगन्धिश्च न चारनाति यथा पुरा ॥ ३ ॥

दुर्बलो मलिनाङ्गश्च नष्टसज्जोऽपि जायते । सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ३ ॥

ग्रहजुष्ट बालकों के सामान्य लक्षण—जो बालक क्षणभर में उद्विग्न ( विकल ) हो उठे, क्षण में भयातुर हो जाय, क्षण में रोने लगे, धाय अथवा माता को और अपने को भी भल तथा दाँवों से काटे, ऊपर की ओर देखा करे, दाँत खावे अर्थात् दाँत को चबाया करे, अस्फुट आतनाद करे, अधिक जम्माई लेवे, भ्रूमाग तथा दाँत ओठ की श्धर उधर चलावे तथा ओठों को काटे बार २ घेन का वमन करे, अत्यन्त दुर्बल हो जाय, रात में जागे उसके अङ्गों में शोथ हो जावे, उठे

मलमेद हो और उसका स्वर फटा हुआ (स्वरमेद युक्त) निकले, उसके शरीर से मांस और रक्त का गन्ध आवे, पूय की भाँति भोजन न करे दुर्बल हो जाय, अङ्ग की प्रमा मलिन हो जाय और चेतना भी कभी-२ उसकी नष्ट हो जाय उसे सामान्य ग्रह जुष्ट जानना चाहिये ॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणायाह, तत्राऽऽदौ स्कन्दग्रहस्य लक्षणमाह—

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्त्रायः स्यन्दनकम्पनम् । ऊर्ध्वदृष्ट्या निरोपेत चक्रास्थो रुच्छान्धिकः ॥  
 वृत्तान्तादिति विग्रस्त स्तन्यं मैवामिमग्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदन चाक्षमेव च ॥

स्कन्दग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दग्रह से जुष्ट होता है तब उसके किसी एक नेत्र से स्राव होता है, गात्र से स्राव होता है अर्थात् स्वेदयुक्त शरीर रहता है, शरीर के अङ्ग फटकर और काँपते हैं, ऊर्ध्व दृष्टि स (ऊपर की ओर) देखना रहता है, मुग्ध दृष्टा हो जाता है, उसके शरीर से रक्त की गन्ध आती है, दाँतों की खजाता रहता है, मयभीत रहता है, दूध से उसे भरवि रहती है और रोदन भी कम हो करता है ॥ २-२ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहस्य लक्षणम्—

नष्टसशो वमोक्तेन सञ्जावानसिरोदिति । पूयघोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ १ ॥

स्कन्दापस्मारग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दापस्मार ग्रह से जुष्ट होता है तब मूर्च्छित अवस्था में फेन का वमन करता है और रक्त की गन्ध आती है ॥ २ ॥

शकु या लक्षणमाह—

अस्ताङ्गो मयचकितो विहङ्गनाधि सास्त्रावमणपरिपीडित समन्तात् ।

स्फोटैश्च भविततनुः सवाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः सुतः शकुन्या ॥ १ ॥

शकुनी ग्रह के लक्षण—जब बालक शकुनीग्रह से जुष्ट होता है तब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, मय से चकित रहता है, उसके शरीर से जलचर मांसाशी पक्षी के गन्ध के समान गन्ध आती है, स्रावयुक्त मणों से स्रव और स पीडित रहता है, तथा दाह-पाक युक्त स्फोटों से (नवीन मण से) उसका शरीर व्याप्त रहता है ॥ २ ॥

रेवतीग्रहलक्षणमाह—

मणैः स्फोटैश्चित गात्र पक्वगन्ध स्रवेदसुक् । मिश्रवर्षा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १ ॥

रेवतीग्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर मणों अर्थात् को बढ़ने वाले होते हैं वा मणों तथा स्फोटों (नवीन मणों) से व्याप्त होता है और उसके शरीर से बीचड़ के गन्ध के समान दुर्गन्ध युक्त रक्त का स्राव होता है तथा उसे मलभेद, ज्वर और दाह होता है ॥ २ ॥

पूतनालक्षणायाह—

अतीसारो ज्वरस्तृण्णा तिर्यक्प्रेषणरोदनम् । नष्टनिद्रस्तघोद्विज्ञो प्रसक्तः पूतनया शिशुः ॥ १ ॥

पूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक पूतनाग्रह से जुष्ट होता है तब उसे अतीसार, ज्वर और दृष्टा होती है, तिरछा देखना है, रोवा है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर उद्विग्न रहता है ॥ २ ॥

गन्धपूतनालक्षणमाह—दुर्विः कासो ज्वरस्तृण्णा वसामघोऽतिरोदतम् ।

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत् ॥ १ ॥

गन्धपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और दृष्टा होती है उसके शरीर से वसा (चर्बी) के समान गन्ध आती है, वह अस्वस्थ रोगी है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है ॥ २ ॥

धीतपूतनालक्षणायाह—

क्षेपते कासते चीणो नेत्ररोगो विगन्धिता । धूर्ध्वतीसारमुच्छ्वस च धीतपूतनया शिशुः ॥ १ ॥

धीतपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक धीतपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर काँपता है उसे कास होता है, वमना शरीर धीन हो जाता है, उसके शरीर से दुर्गन्धि आती है, वमन होता है और अतीसार से युक्त रहता है ॥ २ ॥

सुसम्पन्ननिकाश्यायाह—

प्रसन्नवर्णवद्वन् शिराभिरभिसङ्घृत । मृत्रगन्धिरच बलाशी सुसम्पन्ननिकाश्यायाह ॥ १ ॥

मुक्षमण्डनिका ग्रह के लक्षण—जब बालक मुखमण्डिका ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका वर्ण प्रसन्न (स्वच्छ) होता है, मुख प्रसन्न रहता है, शरीर की धिरायें धमर आती हैं, उसके शरीर से मूत्र की गंध के समान गंध आती है और भोजन बहुत करता है ॥ १ ॥

नैगमेयग्रहलक्षणमाह—छर्विः स्य दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धिता ।

ऊर्ध्व परयेद्वेदोदन्तानैगमेयग्रहं पदेत् ॥ १ ॥

नैगमेय ग्रह के लक्षण—जब बालक नैगमेय ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, लालास्राव अथवा स्नेह होता है, कण्ठ तथा मुख सूखा रहता है, मूर्च्छा होती है, शरीर से दुर्गन्धि आती है, उर्ध्वदृष्टि अर्थात् ऊपर देखने वाला होता है और दंतों को चबता है ॥ १ ॥

श्वस्तासुख स्तनद्वेषी मुक्षते चानिद्रा मुहुः । त घालमधिराद्रति ग्रहः सम्पूर्णलक्षण ॥ २ ॥

असाध्य लक्षण—जब ग्रहजुष्ट बालक का नेत्र स्तम्भित हो जाय, स्तन नहीं पीवे, बार २ निरन्तर मूर्च्छित होता रहे ऐसे बालक को सम्पूर्ण लक्षणों वाला प्रत्येक ग्रह शीघ्र ही मार देता है ॥

### अथ चिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ बालरोगाणां चिकित्सा—

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्ट महतां यज्ज्वरादिषु । सदेव कार्यं घालानां किं तु द्वाहादिकं विना ॥ १ ॥

बालरोग चिकित्सा—बड़े मनुष्यों के ज्वरादिकों में जो औषधि पहले बड़ी गयी है वही बालकों के लिये भी करनी चाहिये किन्तु दाहादि किया जो बड़े मनुष्यों के लिये की जाती है वह नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

द्वाहादिकं विना अग्निदाहपारवमनविरेचनशिराम्बघादिकं विना ।

महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकान्यपि द्वाहात् ।

दाहादि के बिना अर्थात् अग्निदाह, क्षारकर्म, वमनकर्म, विरेचन कर्म, तथा शिराम्बघ आदि क्रिया के बिना वमन विरेचन आदि भी करना चाहिये ॥

यत आह सुभुत—

विरेकयस्तिवमनान्यूते कुर्वाद्यं नास्यव्यात् । त एव दोषा दूष्यारच ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥

अतस्तद्वै भैषज्य मात्रा स्वस्य फनीयसी ॥ १ ॥

बालक को विरेचन, वसिजकर्म, तथा वमन अर्थात् कष्ट के बिना नहीं कराना चाहिये । बालकों को भी वही दोष और दूष्य तथा ज्वरादिक व्याधियाँ होती हैं जो बड़े मनुष्यों को होती हैं व्याधि के अनुसार बालकों को भी वही औषधि देनी चाहिये जो बड़ों को दी जाती है केवल बालकों के लिये मात्रा लघु होनी चाहिये ॥ १ ॥

कनीयसी मात्रामाह विश्वामित्र—

विडङ्गफलमात्रं तु जातमाश्रस्य भैषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धयेत् ॥ १ ॥

बालकों की औषधि मात्रा—जब शिशु की उत्पत्ति हुई हो उस अवस्था में काष्ठौषधियों की मात्रा विडङ्ग के फल के प्रमाण की देनी चाहिये तथा इसी प्रकार प्रत्येक मास में बढ़ाकर देनी चाहिये (प्रथम मास में एक विडङ्ग दूसरे मास में दो विडङ्ग, तीसरे मास में तीन विडङ्ग के प्रमाण की मात्रा इस प्रकार बढ़ाकर देनी चाहिये) ॥ १ ॥

तत्रान्तरे स्वम्यथाऽभिहितम्—

प्रथमे मासि घालाय देया भैषज्यरक्षिका । अवलेह्या तु कर्तव्या मधुशिरसितापृतैः ॥ १ ॥

एकैकां चर्धयेत्तावघावत्सवत्सरो भवेत् । सद्रूप्यं मापयुद्धिः स्यात्तावत्पोढघावत्सराः ॥ २ ॥

ततः स्थिरा भयेत्तावघावद्वर्षाणि सप्ततिः । सप्तो घालकवन्मात्रा हासनीया दानैः शनैः ॥३॥

प्रथम मास में बालक को काष्ठौषधि एक रत्ती के प्रमाण की मात्रा में देनी चाहिये तथा मधु, दूध, शर्करा एवं घृत के अनुपान से लेइवध करके घटाना चाहिये तथा प्रथमास एक १ रत्ती बढ़ा कर मात्रा देनी चाहिये जबतक कि बालक एक वर्ष तक का होने अर्थात् प्रतिमास के बालक को उनी अनुसार उवनी ही रत्ती की मात्रा देनी चाहिये एक वर्ष के हो जाने पर १२ रत्ती (एक नासा) के प्रमाण की मात्रा देनी चाहिये ॥ इससे ऊपर अर्थात् वर्ष पूरा हो जाने पर प्रत्येक वर्ष में एक १ मासा उसी नियम से सोलह वर्ष तक बढ़ाना चाहिये अर्थात् जिसने वर्ष का बालक



मलभेद हो और उसका स्वर फटा हुआ (स्वरभेद युक्त) निकले, उसके शरीर से मांस और रक्त का गन्ध आवे, पूर को शक्ति मोहन न करे, दुर्बल हो जाय, अङ्ग की प्रमा मूलिन हो जाय और चेष्टना भी कमी २ उसकी नष्ट हो जाय उसे सामान्य ग्रह जुष्ट जानना चाहिये ॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणमाह, तत्राऽऽदी स्वप्नग्रहस्य लक्षणमाह—

एकनेत्रस्य ग्राहस्य स्थावः स्य-युनकनपनम् । ऊर्ध्वदृष्टया निरोक्षेत पक्षास्वी रक्तगन्धिकाः ॥  
 दन्तान्वाहति विग्रस्त स्तन्यं नैवाभित्तिदति । स्कन्धग्रहपृहीतानां रोदनं पादपमेव च ॥

स्कन्दग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दग्रह से जुष्ट होता है तब उसके किसी एक नेत्र से स्थाव होता है, गान्ध से स्थाव होता है अर्थात् स्वेदयुक्त शरीर रहता है, शरीर के अङ्ग परकते और कँपते हैं, ऊर्ध्व दृष्टि से (ऊपर की ओर) देखता रहता है, मुख ददा हो जाता है, उसके शरीर से रक्त की गन्ध आती है, दाँतों को खटाता रहता है, भयभीत रहता है, दूध से उसे अरुचि रहती है और रोदन भी कम ही करता है ॥ १-२ ॥

स्कन्दापरमारग्रहस्य लक्षणम्—

नष्टसञ्जी घनोक्तेन संज्ञावानविरोदिति । पूयशोणितगन्धित्व स्कन्दापरमारलक्षणम् ॥ १ ॥

स्कन्दापरमारग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दापरमार ग्रह से जुष्ट होता है तब मूत्रियन अवस्था में फेन का वमन करता है और रक्त की गन्ध आती है ॥ १ ॥

शक्रु या लक्षणमाह—

अस्ताङ्गो भयघकितो विहङ्गनाग्धिः साक्षावधणपरिपीडितः समन्तात् ।

स्फोटैश्च प्रधिततनुः सदाहृपाकैर्विशेषो भवति शिशुः चतः शकुन्या ॥ १ ॥

शक्रुनी ग्रह के लक्षण—जब बालक शक्रुनीग्रह से जुष्ट होता है तब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, भय से अभित रहता है, उसके शरीर से अलवर मांसाशी पक्षी के गन्ध के समान गन्ध आती है, स्त्रायुक्त ग्रन्थों से स्रव और म पीडित रहता है, तथा दाह-पाक युक्त स्फोटों से (नवीन मग से) उसका शरीर म्यास रहता है ॥ १ ॥

रेवतीग्रहलक्षणमाह—

मणैः स्फोटैश्चित ग्राध पङ्कगन्ध स्रवेद्युक्तु । मिधवर्षा जरी वाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १ ॥

रेवतीग्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर मणों बर्षाओं की बहने वाले होते हैं तब मणों तथा स्फोटों (नवीन मणों) से म्यास होता है और उसके शरीर से शीतक के गन्ध के समान दुर्गन्ध युक्त रक्त का स्राव होता है तथा उसे मलभेद, ज्वर और दाह होता है ॥ १ ॥

पूतनालक्षणमाह—

अतीसारो ज्वरस्तृण्णा तियकप्रेषणरोदनम् । मष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो प्रथ पृतनया शिशुः ॥१॥

पूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक पूतनाग्रह से जुष्ट होता है तब उसे अतीसार, ज्वर और एषा होनी है, निद्रा देहता है, रोता है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर उद्विग्न रहता है ॥ २ ॥

गन्धपूतनालक्षणमाह—दुर्विः कासो ज्वरस्तृण्णा वसागोऽतिरोदनम् ।

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत् ॥ १ ॥

गन्धपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और एषा होती है उसके शरीर से वसा (खर्बी) के समान गन्ध आती है, वह अत्यन्त रोना है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है ॥ १ ॥

शीतपूतनालक्षणमाह—

वेपथे कासते षीणो नेत्रयोगो विगन्धिता । दुर्धतीसारयुक्तरथ शीतपूतनया शिशुः ॥ १ ॥

शीतपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक शीतपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर कँपता है, उसे कास होता है, कमटा शरीर शीत हो जाता है उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है वमन होता है और अतीसार से पुष्ट रहता है ॥ १ ॥

मुसमण्डनिकालक्षणमाह—

मसमण्डनिकालः शिरागिरमिसहृतः । मूधगन्धिरथ चट्वाती मुसमण्डनिकासहे ॥ १ ॥

मुखमण्डनिक प्रह के लक्षण—जब बालक मुखमण्डिका प्रह से जुष्ट होता है तब उसका वर्ण प्रसन्न (स्वच्छ) होता है, मुख प्रसन्न रहता है, शरीर की शिरायें उभर आती हैं, उसको शरीर से मूत्र की गंध के समान गंध आती है और भोजन बहुत करता है ॥ १ ॥

नैगमेयग्रहलक्षणमाह—छूर्विं स्पन्दनकण्ठास्यशोयो मूच्छूर्वा विगण्धिता ।

ऊर्ष्यं पश्येद्दोहता नैगमेयग्रहं घवेत् ॥ १ ॥

नैगमेय ग्रह के लक्षण—जब बालक नैगमेय ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, लालापाव अथवा स्वेद होता है, कण्ठ तथा मुख खराब रहता है, मूर्च्छा होती है, शरीर से दुर्गन्धि आती है, उर्ष्वदृष्टि अर्थात् ऊपर देखने वाला होता है और दानों को चबाता है ॥ १ ॥

खस्ताप्राणस्तनद्वेषी मुष्णते चानिद्रा मुहुः । संबालमचिराद्भ्रन्ति ग्रहः सम्पूर्णलक्षण ॥ २ ॥

असाध्य लक्षण—जब ग्रहजुष्ट बालक का नेत्र स्तम्भित हो जाय, स्तन नहीं पीवे, बार २ निरन्तर मूर्च्छित होता रहे ऐसे बालक को सम्पूर्ण लक्षणों वाला प्रत्येक ग्रह शीघ्र ही मार देता है ॥

### अथ चिकित्सा ।

तत्राऽऽद्यौ बालरोगाणां चिकित्सा—

भैषज्यं पूर्णमुद्दिष्ट महतां यज्ज्वरादिषु । तदेव कार्यं घालानां किं तु दाहादिकं विना ॥ १ ॥

बालरोग चिकित्सा—बड़े मनुष्यों के ज्वरादिकों में जो औषधि पहल कही गयी है वही बालकों के लिये भी करनी चाहिये किन्तु दाहादि किया जो बड़े मनुष्यों के लिये की जाती है वह नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

दाहादिकं विना अग्निदाहचारवमनविरेचनशिराभ्यघादिकं विना ।

महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकान्यपि वृथात् ।

दाहादि के बिना अर्थात् अग्निदाह, क्षारकर्म, वमनकर्म, विरेचन कर्म, तथा शिराभ्यघ आदि किया के बिना वमन विरेचन आदि भी करना चाहिये ॥

यत आह सुश्रुत —

विरेकपरित्यमनायते कुर्याच्च नास्ययात् । त एष दोषा दूप्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥

अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा स्वस्य कनीयसी ॥ १ ॥

बालक को विरेचन बरित्कर्म, तथा वमन अत्यन्त कष्ट के बिना नहीं कराना चाहिये । बालकों को भी वही दोष और दूप्य तथा ज्वरादिक व्याधियाँ होती हैं जो बड़े मनुष्यों की होती हैं श्याधि के अनुसार बालकों को भी वही औषधि देनी चाहिये जो बड़ों की दी जाती है केवल बालकों के लिये मात्रा लघु होनी चाहिये ॥ १ ॥

कनीयसी मात्रामाह विश्वामित्र —

विदङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भैषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रघर्षयेत् ॥ १ ॥

बालकों की औषधि मात्रा—जब शिशु की उत्पत्ति हुई हो उस अवस्था में काष्ठौषधियों की मात्रा विदङ्ग के फल के प्रमाण की देनी चाहिये तथा इसी प्रकार प्रत्येक मास में बढ़ाकर देनी चाहिये (प्रथम मास में एक विदङ्ग दूसरे मास में दो विदङ्ग, तीसरे मास में तीन विदङ्ग के प्रमाण की मात्रा इस प्रकार बढ़ाकर देनी चाहिये) ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे त्वन्यथाऽभिहितम्—

प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका । अवलेष्टा तु कर्तव्या मधुघीरसिताधृतैः ॥ १ ॥

एकैकां वधयेत्तावद्यावत्सवसरो भवेत् । तदूर्ध्वं मापयूटिः स्थाघावत्पेदशवरसराः ॥ २ ॥

ततः स्थिरा भयेत्तावद्यावद्दुर्पाणि सप्तति । ततो घालकधन्मात्रा द्वासनीया दानैः दानैः ॥३॥

प्रथम मास में बालक को काष्ठौषधि एक रत्ती के प्रमाण की मात्रा में देनी चाहिये तथा मधु, दूध, शर्करा एव घृत के अनुपात से लेहयत् करके चटाना चाहिये तथा प्रतीमास एक २ रत्ती बढ़ा कर मात्रा देनी चाहिये जबतक कि बालक एक वर्ष तक का होने अर्थात् प्रतिमास के बालक को उसी अनुसार उवनी ही रत्ती की मात्रा देनी चाहिये एक वर्ष के हो जाने पर २२ रत्ती (एक मासा) के प्रमाण की मात्रा देनी चाहिये ॥ इससे ऊपर अर्थात् वर्ष पूरा हो जाने पर प्रत्येक वर्ष में एक २ मासा उसी नियम से सोल्द वष तक बढ़ाना चाहिये अर्थात् जितने वर्ष का बालक

मलभेद हो और उसका स्वर फटा हुआ (स्वरभेदयुक्त) निकले, उसके शरीर से मांस और रक्त का गन्ध आवे, पूष की मूर्ति मोझा न करे, दुर्बल हो जाय, अङ्ग की प्रभा मलिन हो जाय और चेतना भी कमी २ उसकी नष्ट हो जाय उसे सामान्य ग्रह जुष्ट जानना चाहिये ॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणान्याह, तत्राऽऽदौ स्कन्दग्रहस्य लक्षणमाह—

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्त्राय स्पन्दनकम्पनम् । उष्वदृष्टया निरोधेत घक्रास्यो रक्तगन्धिक ॥  
द्वतान्त्रादिति विग्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाक्षपमेव च ॥

स्कन्दग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दग्रह से जुष्ट होता है तब उसके किसी एक नेत्र से स्त्राव होता है, गात्र से स्त्राव होता है अर्थात् स्वेदयुक्त शरीर रहता है, शरीर के अङ्ग परकते और नाँपते हैं, ऊर्ध्वं दृष्टि से (ऊपर की ओर) देखता रहता है, मुँह टेढ़ा हो जाता है उसके शरीर से रक्त की गन्ध आती है, दाँतों को खँवाता रहता है, भयभीत रहता है, दूध से उसे अशुचि रहती है और रोदन भी कम ही करता है ॥ १-२ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहस्य लक्षणम्—

नष्टसंज्ञो यमेत्केन संज्ञावानतिरोदिति । पूषशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ १ ॥

स्कन्दापस्मारग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दापस्मार ग्रह से जुष्ट होता है तब मूर्च्छित अवस्था में फेन का वमन करता है और रक्त की गन्ध आती है ॥ १ ॥

शुकुन्या लक्षणमाह—

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गनाधि साधायमणपरिपीडितः समन्तात् ।

स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहृषाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः पतः शुकुन्या ॥ १ ॥

शुकुनी ग्रह के लक्षण—जब बालक शुकुनीग्रह से जुष्ट होता है तब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, मय से चकित रहता है, उसके शरीर से बलचर मानाशी पक्षी के गन्ध के समान गन्ध आती है, स्त्रावयुक्त मणों से सत्र और म पीडित रहता है, तथा दाह-पाक युक्त स्फोटों से (नवीन मण से) उसका शरीर भ्याप्त रहता है ॥ १ ॥

रेवतीग्रहलक्षणमाह—

मणैः स्फोटैश्चित गात्र पङ्कगन्ध स्रवेदुष्क । भिन्नघर्षां ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १ ॥

रेवतीग्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर मणों अर्थात् ओ बहने वाले होते हैं उन मणों तथा स्फोटों (नवीन मणों) से भ्याप्त होता है और उसके शरीर से कीचट के गन्ध के समान दुर्गन्ध युक्त रक्त का स्त्राव होता है तथा उसे मलभेद कर और दाह होता है ॥ १ ॥

पूतनाग्रहमाह—

अतीसारो ज्वरस्तृप्या त्रियकप्रेक्षणरोदनम् । मष्टनिद्रस्तपोद्भिन्नो प्रसतः पूतनया शिशुः ०१॥

पूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक पूतनाग्रह से जुष्ट होता है तब उसे अतीसार, ज्वर और तृषा होती है, तिरछा देवता है, रोता है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर उद्भिन्न रहता है ॥ १ ॥

गन्धपूतनालक्षणायाह—

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत् ॥ १ ॥

गन्धपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और तृषा होती है उसके शरीर से बसा (चर्बी) के समान गन्ध आती है, वह अत्यन्त रोगी है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है ॥ १ ॥

शीतपूतनालक्षणमाह—

वेपथे कासते शीनो नेत्ररोगो विमन्धिता । दुर्घटीसारमुष्णरश्मिपूतनया शिशुः ॥ १ ॥

शीतपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक शीतपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर कौपता है, उसे कास होता है कमळा शरीर धीन हो जाता है उसके शरीर से दुर्गन्धि आती है, वमन होता है और अतीसार में मुष्ण रहता है ॥ १ ॥

मुष्णमण्डनिकाग्रहमाह—

मस्रवर्णवह्नः शिरामिरमितहृत्तः । मृषगन्धिरश्मिपूतनी मुष्णमण्डनिकाग्रह ॥ १ ॥

शिवायां छेप—वालो योऽधिरजातः स्तन्यं गृह्णाति नो तदा तस्य ।

सौधयघात्रीमधुघृतपप्वाक्यकेन धर्षयेजिद्दाम् ॥ १ ॥

शिवा का छेप—जो बालक नूतन छरपत्र हुआ हो और दूध नहीं पीता हो उसको जीम सेंधानमक, भौबला, मधु, गोघृत तथा दरद के विधिपूर्वक बने दूध कस्क से पिते इससे बालक के दूध पीने लगता है ॥ १ ॥

पलंकपादिघूप—

पलंकपा यथा कुष्ठं गजचर्मापिचर्म च । निम्यस्य पत्रं चौध्रेण सार्धंमुक्तं तु घूपनम् ॥

ज्वरवेगं निहन्त्याष्टु बालकानां विशेषतः ॥ १ ॥

पलंकपादि घूप—गुग्गुल, बच, कूठ, हाथी का चमड़ा, भैंसी का चमड़ा और नीम के पत्ते को मधु के साथ मिलाकर अग्नि में घूप दैये इस घूप के मधु से बालकों के ज्वर का वेग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

मूर्वापुद्गतनम्—मूर्वानिजासर्षपरामसेनश्येतासमद्वाग्युदकारधीनाम् ।

छागीपयोमिं सह वेपितानामुद्धतन स्याज्ज्वरजिष्णूनाम् ॥ १ ॥

मूर्वादि उद्धतन—मूर्वामूल, श्लशी, सरसों, हाँग, श्वेत बच, मञ्जीठ, नागरमोथा और कालाजीरा को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर उबटा करने से बालकों का ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

अतिसारग्रहण्यधिकित्सा—

घनहृष्णाशुनाशुद्धीचूर्णं चौध्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरतिसारग्नं कास व्यास चर्मि हरेत् ॥ १ ॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, पीपल, मञ्जीठ और काकड़ासिंगो को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से उनका ज्वर, अतिसार अथवा ज्वरातिसार नष्ट होता है तथा कास-व्यास और बमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

छोध्रेण पिप्पली पाला यालकातिष्ठतौ हित ।

छोभादि चूर्ण—लोप, पीपल और सुगंधवाला चूर्ण बालकों के अतिसार में देने से लाभ होता है ॥

श्रीरसो माचिकयुतो घातकीकुसुमैः समम् ॥

श्रीरसादि चूर्ण—राल और धाय के फूल के चूर्ण को मधु में मिलाकर चटाने से बालकों का अतिसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

विष्व च पुष्पाणि च घातकीनां जलं सल्लोभ्र गजपिप्पली च ।

छायावलेहो मधुना विमिधौ यालेषु चोऽयायतिसारितेषु ॥ ३ ॥

विश्ववादि योग—कच्चे बेल की शुद्धी धाय के फूल, सुगन्धवाला, लोप और गजपीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय अथवा भवशेद बनाकर उसमें मधु मिलाकर बालकों के अतिसार ( रोग में देना चाहिये ॥ ३ ॥

समद्वाघातकील्लोभ्रसारिवाभिः श्लज्जलम् । बुध्रैऽपि शिशोर्द्वयमतीसारं समाचिकम् ॥४॥

समद्वादि काय—मञ्जीठ अथवा लज्जालू, धाय के फूल, लोप और शारिवा को समान भाग लेकर विधिवत् काय करके उसमें मधु का प्रक्षेप देकर बालकों के भयङ्कर अतिसार में भी देना चाहिये ॥ ४ ॥

विदङ्गाम्यजमोषा च पिप्पलीसण्डुलानि च । घृयामालिद्ध चूर्णानि सुखसन्त्पेन धारिणा ॥५॥

आमे प्रघृत्सेतीसारं कुमारं पाययेन्निकम् ।

विदङ्गादि चूर्ण—दायविदंग, अजमोदा और पीपल के बीज के समान भाग चूर्ण को ( मधु के साथ ) चटाकर सुखोष्ण जल पिलाना चाहिये । इससे बालकों का आमातिसार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मोचारसं समद्वा च घातकी पत्रकेसरम् । पिष्टैरेतैर्यथागूः स्याद्घातिसारनाशिनी ॥ ६ ॥

मोचारसादि यथागू—मोचरस, मञ्जीठ, धाय के फूल और पत्रकेसर को समान भाग लेकर पीसकर विधिवत् यथागू बनाकर देने से बालकों का रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नागरातिथिषामुस्तबालकेन्द्रयवैः श्वतम् । कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १ ॥

हो उतने ही मात्रा के प्रमाण काओषधि की मात्रा देनी चाहिये ( यदि बालक पांच वर्ष का हो तो ५ मासा १० वर्ष का हो तो १० मासा इस प्रकार करके १६ वर्ष तक का हो तब तक बढ़ाकर १६ मासा के प्रमाण की ओषधि देनी चाहिये ) पश्चात् वह मात्रा तब तक स्थिर रखनी चाहिये जबतक कि ७० वर्ष की आयु होब अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था में मात्रा पूर्ण हो जाती है और वह पूर्ण मात्रा ७० वर्ष तक रखनी चाहिये, इसके पश्चात् मात्रा बालक की मर्ति धीरे २ ( शरीर की शक्ति के हास होते आने के कारण घटानी चाहिये ॥ १-३ ॥

पूर्णकृष्णकपालेहानामिय मात्रा प्रकीर्तिता । कपायस्य पुनः सैव चिन्तातया चतुर्गुणा ॥ ४ ॥

ऊपर जो मात्रा कही गयी है वह चूर्ण-रस और अवलेह आदि ओषधि के लिये कही गयी है, बाध के लिये उसे चतुर्गुण जानना चाहिये । अर्थात् जिसे २ रत्नी ओषधि देना कहा गया हो उसे ४ रत्नी और जिसे एक मासा कहा गया हो उसे ४ मासा के प्रमाण से क्वाप देना चाहिये ॥

शरीरस्य शिशोर्वयस्यौषध शरीरसपिपा । धाम्यास्तु केवल द्येय न शरीरेणापि सपिपा ॥ ५ ॥

दूध पीनेवाले बालक को दूध तथा की के साथ ओषधि देनी चाहिये किन्तु यदि माता अथवा धाय को देना हो तो केवल ओषधि देनी चाहिये, उसे दूध और घृत नहीं देना चाहिये ॥ ५ ॥

उवरस्य चिचिस्ता—

सर्वं निवापत थाले स्तयं नैव नियार्यते । मात्रया लक्ष्येद्वार्थी शिशोरेतद्विलक्षणम् ॥ १ ॥

उवर चिचिस्ता—बालक के लिये ( जो केवल दुग्धाशी हो ) अपथ्य में सब दुग्ध त्याग कराया जा सकता है किन्तु दूध का त्याग नहीं कराया जा सकता । यदि शिशु को लहून कराने की ही आवश्यकता भापडे तो धाय को ही ( जिसका दूध वह पीता हो ) भोजनादि की मात्रा में हास कराकर सहने योग्य लहून ( जिसमें धाय छीन न दो जाये ) कराये इसी से ही बालक का लहून हो जाता है ॥ १ ॥

शिरादस्यौषध धाम्या शिरासादस्य चोमयोः ॥ २ ॥

अघ्रावस्य तु बालस्य योजयेत्कृशाला मिकम् ॥

बालक यदि केवल दूध ही पीता हो तो उसके लिये धाय को ही ( जिसका दूध पीता हो उसे ही ) ओषधि देनी चाहिये तथा यदि बालक दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो तो धाय तथा बालक दोनों को ओषधि देनी चाहिये, किन्तु यदि अन्न ही खानेवाला बालक हो तो केवल बालक को ही ओषधि देनी चाहिये ॥ २ ॥

भद्रमुस्तापि धाय सर्वजरेषु—

भद्रमुस्तामयानिग्धपटोलमशुक्रैः कृत । क्रायाः कोष्ठाः शिशोरेषु निन्दोषवरनाशनाः ॥ १ ॥

भद्रमुस्तादि क्वाप—नागरमोषा, हरद, नीम की छार, परवर के पत्र और गुच्छरी को समान भाग लेकर विभिपूर्वक क्वाप बनाकर थोड़ा उष्ण रखते बालक को पिढी से छानी प्रकार के उवर का नाश होता है ॥ १ ॥

पलाघास्थिकटुत्रिकटिकलिकावेकलम्बुश्लोविपा

छोर्ध्रं घातकिचिप्रकाहहपुपाषिष्याजमोदाः समाः ।

यस्वंशा तुरगी जया मृपलवा सर्वैः समांशा सित्ता ।

बालानां श्वरकार्यैश्चासद्यनरचूर्णोऽविसार जयेत् ॥ २ ॥

पलावि चूर्ण—छोटी शकपची, आम के गुठली की गिरि, सोंठ, गरिक, पीपळ, आंबका, दरद, बहदा, काबकिरंग, नागरमोषा काबदासिनी, अटीग, टीप, धाय क फूड, पीते की बड़, बनियाँ हावबेर, कर्पूरे बेल की गुच्छी और काबगोश को समान भाग लेकर और सब मिलकर बिनना ही उसके आठवां भाग असतप लेवे और सब के मोलद्वारा माग शुद्ध मांग लेवे तथा ये सब मिलकर भिजना ही उसके समान भाग शर्करा करार विषिय चूर्ण बनाकर ( प्रथम रूप ओषधियों का दहन चूर्ण बनाकर तब शर्करा मिलावे ) रण लेवे । इस चूर्ण को दवाकर ( इति मात्रा में ) बालकों को देने से बालकों का उवर, कुण्डा ( उष्ण रोग ), कृष्ण और अजीर्ण बड़

कर मधु के अनुपान से तीन रात अथवा पांच रात तक चटाने से बालकों का कास, श्वास रोग नष्ट होता है ॥

तृगा च चौद्रसंलीढा कासश्वासौ शिशोर्जयेत् ॥ १ ॥

तृगावलेह—घशलोचन के चूर्ण को मधु के अनुपान से चटाने से बालकों का कास श्वास रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्विकषायां क्षुर्वा च—

ए र्ण कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् । द्विकषां प्रशमयेत्प्रमृष्टं हृदि चापि चिरोत्थिताम् ॥

द्विकषा और वमन चिकित्सा—कुटकी के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चटाने से यात्र तथा द्विकषा को शीघ्र शान्त करता है और बहुत दिनों के उत्पन्न (पुराने) वमन को भी शीघ्र शान्त करता है अथवा इससे पुरानी द्विकषा और पुराना वमन भी शान्त हो जाता है ॥ १ ॥

आम्नास्थिलाजसिन्धूय सचौद्रं हृदिनुजयेत् ।

आम्नास्थ्यादि चूण—आम के गुठली की गिरि (कोयल), पान का लवण और सेंपानमक के समान चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से वमन नष्ट होता है ॥

घनशुद्धीविपाणां च चूर्णं हन्ति समाक्षिकम् । घान्तिं त्वर तथा योगो मधुनाऽतिविपारजः ॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, काकड़ासिंगो और अतीस के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से अथवा अतीस के चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बालकों के वमन तथा त्वर को नष्ट करता है ॥ २ ॥

क्षीरच्छर्पांश्च—

पीतं पीतं पमेद्यस्तु स्तन्यं स मधुसर्पिणा । द्विधातार्कीफलरस पद्मकोलं च लेहयेत् ॥ १ ॥

दूध वमन चिकित्सा—बो बालक दूध पी पीकर वमन कर देता दो उसे छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी दोनों के फलों के मिलित स्वरस में पंचकोल के समान मिलित चूर्ण को मिलाकर मधु अथवा गोघृत के अनुपान से चटाना चाहिये इससे दूध वमन करना नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पंचकोलं यथा—पिप्पलीपिप्पलीमूल चण्डचिन्नकनागरम् ॥

पंचकोल की परिभाषा—पीपल, पिपरामूल, चाव, चिन्नक और सोंठ के मिलित योग को पंचकोल कहते हैं ॥

तृणायाम्—हीयेरशर्कराचौद्रं लीठ तृणहर परम् ॥ १ ॥

तृणा रोग चिकित्सा—हाऊबेर (सुगन्धबाला) का चूर्ण, शर्करा और मधु को मिलाकर चटाने से बालकों की तृणा नष्ट होती है ॥ १ ॥

आनाह श्ले च—

शृतेन सिन्धुविरवैलाहिङ्गुमांर्गारजो लिहन् । आनाह वातिकं शूल हन्यासोयेन वा शिशोः ॥  
आनाह और शूल चिकित्सा—सेंपानमक, सोंठ, छोटी इलायची, शुद्ध हींग और मन्नादण्ड (वमनेठी) के समान मिलित चूर्ण को गोघृत के अनुपान से चटाने से अथवा अल के अनुपान से देने से बालकों के वातिक आनाह और शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रेचनम्—

पिप्पा गार्धर्वबीजानि स्वाखुविणिम्बुवारिणा । नामौ गुदे वा लेपेन शिशूनां रेचन परम् ॥१॥

रेचक योग—परण्ड के बीज और मूसे के मूल को नीबू के स्वरस में पीसकर नाभिस्थान अथवा गुण्ड पर लेप करने से बालकों का मल निस्सरण होता है ॥ १ ॥

इन्दुलोचनमेप्राणि शिल्पिभाग हि योजयेत् । घृदिगन्धकमुर्वाद्दशतपुष्पा विचूर्णिता ॥ २ ॥

मापद्मयं गवो हुग्धैः सेचयेद्दिनपञ्चकम् । रेचयेन्मृत्तिकीं शृदां शिशूनां हितमौषधम् ॥ ३ ॥

घृत्तिका विरेचन योग—बालक यदि घृत्तिका भक्षण कर लिया हो अथवा गर्भावस्था में माता के घृत्तिका भक्षण करने पर यह योग घृत्तिका का विरेचन द्वारा निस्सरण करता है । छोटी इलायची १ भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग मुर्वा शूल दो भाग और सौंफ तीन भाग छेकर विचूर्ण कर दो भागों के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथाबल मात्रा से गोबुध के अनुपान से

नागरादि काय—सोठ, अतीस, नागरमोया, मृगयबाला और इन्द्रजो का विधिबद्ध काय बनाकर प्रातःकाल पिलाने से बालकों के सभी प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

लाजाः सयष्टिमधुका शर्करा सौद्रमेव च । सण्डुलोदकयोगेन चिप्र हन्ति प्रवाहिकाम् ॥२॥

लाजादि चूर्ण—धान का छाया, जेठीमधु, शर्करा और मधु को लेकर प्रथम पान का छाया तथा जेठी मधु का चूर्ण कर उसमें शर्करा और मधु मिलाकर चावल के मुछे हुए अन्न के अनुपान से बालक को पिलाने से शीघ्र प्रवाहिका नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

लोघ्नेन्द्रयवघायाकधात्रीहीमेरमुस्तकम् । मधुना सेहयेद्वालुज्यरातीसारनाशनम् ॥ १ ॥

लोभादि चूर्ण—लोप, इन्द्रजो, धनियाँ, औषला, दावरे और नागरमोया को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर चटाने से बालकों का ज्वरातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

रजनी सरलो वारुयूहती राजविष्णुली । पृथिनपर्णी शशाङ्गा च लीला मायिकसर्पिया ॥ १ ॥

दीपनी ग्रहणी हन्ति मारुतातिं सकामलाम् । ज्वरातीसारपाण्डुत्वं बालानां सर्वरोगनुत् ॥

रत्न्यादि चूर्ण—इलदी, सरलकाष्ठ अथवा राल, देवदारु, बड़ी कटेरी, गन्धपीपल, पिठिकन और सौंफ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर मधु और गोष्ठ के अनुपान से चटाने से यह चूर्ण अग्नि को दीप्त करता है, ग्रहणी रोग को नष्ट करता है, वायु की पीड़ा अथवा वायु रोग, कामला रोग, ज्वर रोग, अतीसार रोग और पाण्डु रोग आदि बालकों के सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

कासरोगचिकित्सा—

पौष्कराविधिपाशुङ्गीमागधीघन्ययासकै । कृतं चूर्णं तु सचौद्र दिशूना पञ्चकांसत्रि ॥१॥

पौष्करादि चूर्ण—पुश्कर मूल, अतीस, काकदासिगी, पीपल और भमासा (यबासा) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से पाँचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

मुस्तकादिरस —

मुस्तकातिविपायासाकणाशुङ्गीरसं लिहन् । मधुना मुष्यते बालः कासैः पञ्चमिदभिरूतैः ॥१॥

मुस्तकादि रस—नागरमोया, अतीस, अरुसा, पीपल और काकदासिगी को समान भाग लेकर इनके रस अर्थात् घन काय को शीघ्र करके उसमें मधु का प्रथेय देकर चटाने से बालक पाँचों प्रकार के कास से मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

व्याघ्रीकुसुमावलेहिका—

व्याघ्रीकुसुमसंजातकेसरैरवलेहिका । मधुनाधिरसंजातानिशाशोः कासागम्यपोहति ॥ १ ॥

व्याघ्री कुसुमावलेहिका—छोटी कटेरी के पुष्प के केसरो को लेकर मधु से अक्लेद बनाकर चटाने से बालकों के बहुत दिनों से उपपन्न हुए कास रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

कासश्लासचिकित्सासाह—

घान्य शर्करया युक्त सण्डुलोदकसयुतम् । पानमेतत्पदातस्य कासघ्नासापहं निशोः ॥ १ ॥

घान्यादि पानक—धनियाँ को पीसकर अथवा चूर्ण कर उसमें शर्करा मिलाकर चावल के पीसने में पीसकर अथवा चावल के पीसने में ही धनियाँ और शर्करा पीसकर पीसकर पानक बनाकर बालकों को पिलाने से उनका कास, श्लास नष्ट होता है ॥ २ ॥

द्राक्षादि चूर्णम्—

द्राक्षायासामपाहृष्णाचूर्णं सौद्रेण सपिया । लीले कासं निहन्मवाह कासं च तमकं तथा ॥१॥

द्राक्षादि चूर्ण—दारु, अरुसा, इरु और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु तथा गोष्ठ के अनुपान से चटाने से बालकों के श्लास, कास तथा तमक श्लास को शीघ्र नष्ट करता है ॥ २ ॥

दुरालभादि रस—

दुरालभाकणाद्राक्षपण्याः सौद्रेण सेहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कासघ्नासहरं निशोः ॥

दुरालभादि रस—ब्रह्माण्ड, शीमल, काम और इरु को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण

कर मधु के अनुपान से तीन रात अथवा पांच रात तक चटाने से बालकों का कास, श्वास रोग नष्ट होता है ॥

तुगा च पौद्रसलीवा कासश्चासौ शिशोर्जयेत् ॥ १ ॥

तुगावसेह—वंशलोचन के चूर्ण की मधु के अनुपान से चटाने से बालकी वा कास श्वास रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

दिकायां छर्षां च—

एषं फट्टकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् । द्विकर्का प्रशमयेत्त्रिप्र छर्षि चापि चिरोस्थिताम् ॥

द्विकर्का और बमन चिकित्सा—कुटकी के चूर्ण की मधु के साथ मिलाकर चटाने से वात तथा द्विकर्का को शीघ्र शान्त करता है और बहुत दिनों के उत्पन्न (पुराने) बमन को भी शीघ्र शान्त करता है अथवा इससे पुरानी द्विकर्का और पुराना बमन भी शांत हो जाता है ॥ २ ॥

आम्रास्थिलाजसिन्धूर्य सषौद्रं छर्षिदनुद्भवेत् ।

आम्रास्थ्यादि चूर्ण—आम के गुठली की गिरि (कोयल), धान का लावा और सेंधानमक के समान चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बमन नष्ट होता है ॥

घनशुद्धीविपाणां च चूर्णं हन्ति समाचिकम् । घान्ति ष्वरं तथा योगो मधुनाऽतिविपारज ॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, काकडासिंगो और अवीस के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से अथवा अवीस के चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बालकों के बमन तथा ष्वर को नष्ट करता है ॥ २ ॥

क्षीरच्छर्षां—

पीतं पीत घनेद्यस्तु स्तन्यं स मधुसर्षिया । द्विवातांकीफलरस पञ्चकोल च लेहयेत् ॥ १ ॥

दूध बमन चिकित्सा—जो बालक दूध पी पीकर बमन कर देता हो उसे छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी दोनों के फलों के मिलित स्वरस में पंचकोल के समान मिलित चूर्ण को मिलाकर मधु अथवा गोघृत के अनुपान से चटाना चाहिये इससे दूध बमन करना नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

पचकोलं यथा—पिप्पलीपिप्पलीमूल चण्यचित्रकनागरम् ॥

पचकोल की परिभाषा—पीपल, विपरामूल, चान, चित्रक और सोंठ के मिलित योग को पचकोल कहते हैं ॥

तृणायाम्—हीवेरशर्कराक्षौद्रं छीकं सृष्णहरं परम् ॥ १ ॥

तृषा रोग चिकित्सा—हाऊबेर (सुगंधबाला) का चूर्ण, शर्करा और मधु को मिलाकर चटाने से बालकों की तृषा नष्ट होती है ॥ २ ॥

आनादे शूले च—

श्रुतेन सिन्धुविश्वैलाद्विष्णुभांगीरजो लिहन् । आनादं घातिकं शूलं हन्यास्तोयेन वा शिशोः ॥

आनाद और शूल चिकित्सा—सेंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, शुद्ध हींग और मक्कादण्डी (बमनेठी) के समान मिलित चूर्ण को गोघृत के अनुपान से चटाने से अथवा जल के अनुपान से देने से बालकों के वातिक आनाद और शूल नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

रेचनम्—

पिष्ट्वा गन्धर्वबीजानि स्वासुविष्णिग्धुवारिणा । मामौ गुद्दे वा लेपेन शिशूनां रेचन परम् ॥ १ ॥

रेचक योग—एरण्ड के बीज और मूसे के मूल को नीबू के स्वरस में पीसकर नाभिस्थान अथवा गुदा पर लेप करने से बालकों का मल निस्सारण होता है ॥ २ ॥

हन्तुलोचमनेत्राणि शिशुभाग हि योजयेत् । सृटिगन्धकमुदादशतपुष्पा विचूर्णिता ॥ २ ॥

भापद्रव्य गवां दुग्धै सेषयेद्दिनपञ्चकम् । रेचयेन्मृत्तिकां शूद्रां शिशूनां हिसनीपधम् ॥ ३ ॥

शुचिका विरेचन योग—बालक यदि शूचिका भक्षण कर लिया हो अथवा गर्भावस्था में माता के शूचिका भक्षण करने पर यद् योग शूचिका का विरेचन द्वारा निस्सारण करता है। छोटी इलायची १ भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग मुदा शूद्र दो भाग और सौंफ तीन भाग लेकर विधि पूर्वक चूर्ण कर दो भासे के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथाबल मात्रा से गोदुग्ध के अनुपान से



पाँच दिन तक सेवन कराना चाहिये । इससे बालक के बदन से शृङ्खला का रेशम ही खाता बालक के लिये यह हितकर औषधि है ॥ २-१ ॥

मूत्राघाते—

ऋणोपणसिताघौत्रसुधमैलालै चवै कृतम् । मूत्रप्रदे प्रयोक्तव्यं शिशूनां लेह उक्तमः ॥ १ ॥  
मूत्राघात चिकित्सा—वीपक, मरिच, शर्करा, मधु, छोटी इलायची और सेंचानमक के त्रि पूर्वक बने लेह का प्रयोग करने से बालकों का मूत्राघात नष्ट होता है ॥ १ ॥

कार्श्ये—

पया तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च यद्धिमान् । विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् ॥ १ ॥  
खादयेत्पदनु चौर श्वत समधुनाकर्म्म ।

विदारीकन्दादि चूर्ण—यदि उचित पाचकाग्नि वाला बालक, उचित रीति से खाता हुआ भी दुर्बल होता जाय तो विदारीकन्द, गेहूँ और जौ को समान भाग लेकर चूर्ण कर उसमें गोघृ मिलाकर औद्योग्य रूप दूध में शीतल होने पर मधु और शर्करा का प्रक्षेप करके सेवन कराने से बालकों की दुर्बलता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

सौषर्णं सुहृत् चूर्णं कुष्ठं मधुघृत यथा ॥ २ ॥

मत्स्याचका सङ्घुपुष्पी मधुसर्पिः सफाद्रामम् । अर्कपुष्पी घृतं सौमं चूर्णितं कनकपत्रा ॥ ३ ॥  
सहेमचूर्णं कैटवं श्येणचूर्णं घृत मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्रारया अर्धरत्नोक्तसमापनाः ॥  
कुमारार्णा चतुर्मेघावलयपुष्टिकरा स्मृताः ॥ ४ ॥

सुवर्ण योग—१-सुवर्ण मरुत, कूट चूर्ण, गोघृत और बच का चूर्ण । २-मत्स्याचो, सङ्घुपुष्पी, मधु, गोघृत और सुवर्णमरुत । ३-अर्कचूर्ण का चूर्ण, गोघृत मधु, स्रग्णोमरुत और बच का चूर्ण । तथा ४-सुवर्णमरुत, कावपर स्वैत वर्ण की दूध, गोघृत और मधु । आपे १ इलायची में कहे हुए प्रत्येक २ ये चारो योगों में से किसी एक योग को चयाना चाहिये । इससे बालकों के शरीर, मेधा, बल, पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ १-४ ॥

लाक्षादितैलम्—

लाक्षारससमं तैल मत्स्यन्यय चतुर्गुणे । राक्षनाचन्दनकुष्ठाप्युयाभिगन्धानिद्यामुतैः ॥ १ ॥  
चाताह्लावाकृम्येष्टपाह्नुमूर्च्छात्रिकाहरेणुभिः । संसिद्ध उपरचोत्त वलवर्णकरं शिलोः ॥ २ ॥

लाक्षादि तैल—लास का रस अथवा जाय एक भाग, मूर्च्छित तिल का तैल एक भाग दही का पाणी चार भाग और राक्षना, रक्तवन्द्य, कूट, भागरमोषा, असगण, इच्छी, सौक, दासहृषी जेठीमधु, मूवा, कुटकी और रेणुका को समान मिलित तैल के चतुर्गुण लेकर कटक कर तैलपाक की विधि से मन्दारिन पर तैल सिद्ध कर बालकों को लगाने से उपर तथा सुष्टमद के दोष का नाश करता है और बालकों का बल तथा वर्ण बढ़ता है ॥ १-२ ॥

अथगपापृतम्—

पादकण्ठकेऽश्रगघायाः स्त्रीरेऽष्टगुणिते पचेत् । घृतं देवं कुमारार्णां पृष्टिकुष्ठलघनम् ॥ १ ॥

अथगपापृतम्—गोघृत एक भाग, असगण का एक घृत के चतुर्गुण और गोदुग्ध घृत के षाठ भाग लेकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर बालकों को दिवाना चाहिये, इससे बालकों के शरीर की पुष्टि होती है और बल बढ़ता है ॥ २ ॥

सप्तपञ्चदार्कप्युद्धनकमाट्मूलैस्तुरंगारिश्वासमेतैः ।

उरसादिताह्णं पद्यमूर्त्तपिष्टैर्द्विरेऽसुष्पीसत्थिभिविष्टाः ॥ १ ॥

द्विने दिने चाति शिष्टाः मधुदि पतिः सपाणमिव शुद्धपचे ॥ १ ॥

उपवन और जमिपैर—कितवा के पचे मरार के पचे, बड़ी बरत की बड़ और कनेर की बड़ को मममाग लेकर पत्तु ( गौ ) के मूत्र के साथ पौध पर बालक के शरीर पर उपवन करने से तथा घृण भवाला और सुष्पी को बज में पकाकर सिद्धत करने से बालक के दिन प्रतिदिन शरीर वृद्धि इस प्रकार होगी है जिस प्रकार शुक्ल पद्म में पद्ममा की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

धीरे—

सुस्तकृष्णाम्बुवीरानि मन्दाहाकृष्टिर्नकात् । पिष्ट्वा सोयम संलियवेक्येयोऽयं सोयवृद्धिकोः ॥

शोध चिकित्सा—नागरमोषा, श्वेतकुम्भाण्ड के बीज, देवदारु और इन्द्रजी को समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप छगाने से बालकों का शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

नाभिशोधे—

मृत्पिण्डेनाभितप्तनेन शीरसिक्तेन सोष्मणा । श्वेद्वेदुरिथितां नाभिं शोधस्तेनोपशाम्यति ॥१॥

नाभिशोध चिकित्सा—मिट्टी के ढेरों को अग्नि में तपाकर उसे दूध से गुंथावे और उसकी ऊष्मा ( भाप ) से नाभि को श्वेदित करे तो बालकों के नाभिस्यान का शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

नाभिपाके—

नाभिपाके निशाखोध्रमियगुमधुकै शृतम् । सैलमम्पञ्जने दास्तमेभिद्यायावधूलनम् ॥ १ ॥

नाभिपाक चिकित्सा—इलदी, छोध, त्रिदंगू ( मालकागनी ) और मुलहठी क कल्क ने विधि पूर्वक तेल सिद्धकर अभ्यङ्ग करने से नाभिपाक नष्ट होता है, तथा इन्हीं औषधियों के चूर्ण को नाभिपाक पर ( छाया छाया ) लगाने से नाभिपाक में लाभ होता है ॥ १ ॥

हुग्धेन श्वागादाश्रुता नाभिपाकेऽवचूर्णनम् । स्वचूर्णैः शीरिणां वाऽपि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥

श्यागशकृत योग—बकरी की विद्या दूध में मिलाकर घुंसाकर चूर्ण कर लगाने से अथवा शीरी शृक्षों की त्वचा के चूर्ण को लगाने से अथवा चन्दन के चूर्ण को लगाने में नाभिपाक में लाभ होता है ॥ २ ॥

शुदपाके—शुदपाके तु शालानां पित्तघ्नीं कारयेद्विष्णुपाम् ।

रसाञ्जन विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ॥

शङ्खयष्टयञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां शुदपाकजुष्टम् ॥ १ ॥

शुदपाक चिकित्सा—बालकों के शुदपाक में पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । विशेष कर रसवत का पान और लेपन करना दितकर होता है । शङ्खमस, जेठीमधु और रसवत के चूर्ण को शुदपाक पर लगाने से शुदपाक नष्ट होता है ॥ १ ॥

अहिपूतने—शङ्खासौधीरयष्टयाहैल्लेषो देयोऽहिपूतने ॥ १ ॥

अहिपूतन चिकित्सा—शखमरम, सोवीराञ्जन और जेठी मधु का लेप बनाकर अहिपूतन में लगाने से लाभ होता है ॥ १ ॥

पारिगमिके—पारिगमिकरोगे तु युज्यते वक्षिदीपनम् ॥ १ ॥

पारिगमिक चिकित्सा—पारिगमिक रोग में अग्निदीपन क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

क्षतविसर्पविस्फोटज्वरेषु—

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राफथितं पिचेष्ट । क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशो ॥ १ ॥

क्षतविसर्प विस्फोट ज्वर चिकित्सा—बरबल के पत्ते, आमला, हरद, बहेड़ा, नीम की छाल और इलदी का विधिपूर्वक काष्ठ बनाकर बालकों के क्षत विसर्प विस्फोट ज्वर की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

सिध्मपामाविचर्चिकाम्—

शृङ्गधूमनिशाकुण्डराजिकेन्द्रयवै शिशोः ॥ १ ॥

सिध्मपामा विचर्चिका चिकित्सा—शृङ्गधूम ( शोला ) इलदी, कूट, रारं और इन्द्रजी को समान भाग लेकर तम के साथ पीसकर लेप करने से बालकों का सिध्म ( सेहुआ ), पामा, खुजली और विचर्चिकारोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १ ॥

मुखस्राव चिकित्सा—सारिवा, तिल, छोध और मुलहठी का काय बनाकर जिन बालकों के मुख से निरन्तर स्राव होता हो उनके मुख को धोना चाहिये ॥ १ ॥

मुखस्रावे मुखपाके च—

सारिवातिललोघ्राणां कपायो मधुकस्य च । संघ्राविणि मुखे दास्तो घायनार्थं शिशोः सदा ॥  
मुखपाके तु शालानामास्रसारमयो रसः । गैरिकं शीघ्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ १ ॥

बालकों के मुखपाक रोग में आमसार का चूर्ण, लोहमस, गेरू, मधु और रसवत एकत्र मिला कर लगाना चाहिये—॥ १ ॥

वार्वायद्यभयाजातीपन्नचौद्रैस्तु धावनम् । अथाप्यावग्द्वलचौद्रैर्मुक्षुपाके प्रलेपनम् ॥ १ ॥  
 दारुहल्दी, जेठीमधु, हरद, चमेडी के पत्ते के फाय में मधु मिलाकर मुख को धोना चाहिये  
 तथा पीपल वृक्ष की छाल और उसीके पत्ते का चूर्ण मधु मिलाकर मुखपाक में छेप करना चाहिये ॥  
 रोदन—

पिप्पलीशिकफलाचूर्णं घृतचौद्रपरिप्लुतम् । घालो रोदिति यस्त्वस्मै छेदु दध्यामुखायहम् ॥१॥  
 शिशुक्रन्दन चिकित्सा—बालक यदि अधिक रोता हो तो पीपल, हरद, बहेड़ा और भौंके  
 के समान मिलाकर चूर्ण की मधु तथा गोशत में मिलाकर चटाना चाहिये इससे बालक का रोना  
 बन्द हो जाता है ॥ २ ॥

तालुकण्टके—

हरीतकीवचाकुण्डलकं मापिकसंत्युतम् । पीपया कुम्भाद् स्तन्येन सुच्यते तालुकण्टकात् ॥३॥  
 तालुकण्टक रोग चिकित्सा—हरद, वच और कूट को समभाग लेकर विधिपूर्वक कर्क करके  
 मधु मिलाकर माता के दूध के अनुपान से बालक को पिलाने से तालुकण्टकरोग नष्ट होता है ॥२॥

तालुपाके—तालुपाके यवचारमधुम्यां प्रतिसारणम् ।

तालुपाक चिकित्सा—तालुपाक रोगमें यवासार तथा मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिये ।

कुकूणके—फलत्रिक छोम्रपुनर्नवे च समृद्धयेरं घृह्णीह्य च ।

आलेपनं श्लेष्महरं सुशोष्य कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

कुकूणक चिकित्सा—हरद, बहेड़ा, औमला, छोप, पुनर्नवा, सोंठ, छोटी कटेरी और मयी  
 कटेरी को समान भाग लेकर बल के साथ पोस कर किशिय वष्ण छेप करने से श्लेष्मा तथा  
 कुकूणक रोग नाश होता है ॥ २ ॥

नयने—धूपोर्ष समृद्ध च मनःशिलाळ करञ्जबीजं च सुपिष्टमेतत् ।

कण्डर्पदित्सागामय घर्मेनां तु श्रेष्ठ शिथूनां नयने विदुष्यात् ॥ १ ॥

नेत्ररोग चिकित्सा—सोंठ, मरिच, पीपल, दाळचीनी, मेनसिल, इरिताळ और करंज बीज  
 की गिरि को समान भाग लेकर दलक्षण चूर्ण कर बालकों के पलकों में अन्नन करने से कण्डर्पुष्य  
 घर्मेरोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

दन्तोद्देशरोगेषु—

दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । घातकीपुष्पपिप्पबवोर्षाश्रीफलरसेना वा ॥ १ ॥

दन्तोद्देश रोग चिकित्सा—दन्तपाली रोग में ( दाँत निकलने वाले मडके के रोग में )  
 धाय के कूल और पीपल के समान मिलाकर चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करने से अथवा  
 औमले के रबरस से प्रतिसारण करने से बच्चों का दन्तपालीरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

दन्तोत्थानभवा रोगा पीडयन्ति च सालकम् । जाते दन्ते हि साम्प्रति यद्यस्तद्देतुका गदा ॥

दाँत निकलने के समय उत्पन्न हुए रोग बालकों को पीडित करते हैं किन्तु ये रोग प्रायः निकल  
 जान पर आय ही शांत हो जाते हैं । ये दन्तोद्देशरोग हैं जो बालकों को प्रायः ही आते हैं ॥

प्राचीनार्त पाण्डुरसिन्दुवारमूळ शिथूनां गालके निवदम् ।

दिनोति दन्तोद्देशयेदनां च निःशेषमेकाण्डकुरण्ड एव ॥ ३ ॥

इस रोग के सिधुवार ( गेहूँ की भा सम्भाऊ ) के पुरे दिवा की ओर का गुलु लकर बालक  
 के गले में बाँधने से दाँत उत्पन्न होने के समय को पीडा नष्ट होती है और एक कण्डकोष में  
 उत्पन्न हुआ कुरण्ड रोग भी गट हो जाता है ॥ २ ॥

यस्ताप्रचूदविहगोभयपारर्यपुष्पीर्गवागपसहितैः कृतधूपयाङ्ग ।

आरग्य जन्मदिवसदिनसप्तकं हि बालस्य तस्य च कुण्डधन भीतिररित ॥ १ ॥

धूप प्रयोग—कुण्डक पत्ती के दोनों ओर के बंग और पूँध को छेद कर नीचे धूप में मिलाकर  
 बालक का जन्म हो उसी दिन से पार्य सात दिन तक उस बालक के पास धूप देने से बालक  
 को किसी प्रकार का भय नहीं होता है ॥ २ ॥

इहमस्तु बालरोगाणां चिकित्सायाः, तत्राहरी सामान्यारतुस्थानां चिकित्सा—

सहामन्त्रीनिचोदीष्यच्छात्रानां महापहम् । सप्तपददाम्यनिताराव्युत्पन्नैश्चातुलेपनम् ॥ १ ॥

ग्रहजुष्टों की चिकित्सा—मुद्गरपर्णी, मुण्डी और गुग्गुलुबाला के हाथ से स्नान कराने से बालकों की सामान्य ग्रहबाधा नष्ट होती है और खितियन, हरद, हल्दी और चन्दन का केप बनाकर लगाने से बालकों की सामान्यग्रह बाधा नष्ट होती है ॥ १ ॥

घूप—

सर्पत्वलशुन मुर्वा सर्पपारिष्टपहवाः । विद्यालविटजालोममेपशुकीवचा मधु ॥

घूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥ १ ॥

घूप—सॉप की केजुल, लहसुन, मुर्वा, सरसो, नीम के परलव, विलार की विष्ठा, बकरी के रोम, मेपशुकी, वच और मधु के योग से विधिवत् घूप बनाकर घूप देने से बालकों का ज्वर नष्ट होता है और समग्र ग्रहदोष नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

बालरोगे पर्पटीरस—

रसं गन्धं समं शुद्ध तयोः कृत्वा तु कञ्जलीम् । छोहदूर्यो घृताक्षायामाधाय कदलीवृलैः ॥  
छादयेदुपरिन्यस्तगोमयैर्पट्टीघनात् । शिखिन कोमलादेय विधेया रसपर्पटी ॥ २ ॥

बाल रोगों में पर्पटीरस—शुद्धपारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कञ्जली करके घृत सिन्धु छोड़े की कलछी में रखकर बैर के लकड़ी के अग्नि पर तपावे और भूमि को गोबर से ढीप कर उसपर केले का पत्ता बिछाकर उसी पर उस कञ्जली को बिछा देवे और ऊपर से केले के पत्ते से ढक कर दबा देवे । शीतल होने पर पपटी जैसी जमी हुई उस कञ्जली द्वारा प्रस्तुत औषध को रस पर्पटी कहते हैं ॥ १-२ ॥

पर्पटया द्विगुणो जीरः सूर्योश्चो रामठः स्मृतः । दीयते मधुना सेपां शिशोर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥

श्लेष्मपित्तानिहरवातो कासोपीनसपाण्डुताः ।

प्लीहाग्निस्तादृशूलानि हन्यादस्य ज्वर जयात् ॥ ४ ॥

उपरोक्त पर्पटी एक भाग, जीरा दो भाग और शुद्ध हींग पर्पटी के बारहवाँ अंश ( ३ १/२ भाग ) लेकर एकत्र सरल कर चार रची प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से बालकों को देना चाहिये, इससे कफ पित्त और वायु के रोग, श्वास, कास, पीनसरोग, पाण्डुरोग, प्लीहा, मन्दाग्नि, शूल और ज्वर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ३-४ ॥

अष्टमगलघृतम्—

घघा कुष्ठं तथा प्राक्षो सिद्धाथकमयापि च । सारिवा सैन्धव चैव पिप्पली घृतमष्टकम् ॥१॥  
सिद्ध घृतमिदं मेभ्यं पिथेत्प्रातर्दिने दिने । इष्टस्त्विति चिप्रमेघाः कुमारो बुद्धिमान्मभवेत् ॥२॥  
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः । प्रभवन्ति कुमाराणां पिबन्तामष्टमगलम् ॥

एलिशान्तीष्टिकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ १ ॥

अष्टमगल घृत—वच, कूट, माझी, श्वेत सरसो, सारिवा, सैन्धानमक और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक करफ करके जितना हो उसके चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण जल मिलाकर घृत पाच की विधि से घृत सिद्ध कर प्रतिदिन प्रातः काल बालकों को पिलाना चाहिये । इससे मेघा की वृद्धि होती है, स्मरण शक्ति बढ़ होती है और बालक बुद्धिमान होता है । इस अष्टमगल घृत के पीने वाले बालकों को पिशाच, राक्षस, भूत और मातृग्रह ( बालग्रह ) आदि का प्रभाव नहीं सताता है । ग्रहशान्ति के लिये बलि, शान्ति तथा ग्रह के शष्ट कर्म आदि भी करना चाहिये ॥ १-३ ॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां चिकित्सा, तत्र स्कन्धग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—

स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशस्यते । घातघ्नमुमपमार्णां छायेन परिपेचनम् ॥ १ ॥

स्कन्द ग्रह जुष्ट चिकित्सा—स्कन्द ग्रह से पीड़ित बालक को घातनाशक वृक्षों के पत्तों के काथ से सिंचन ( स्नान ) कराना चाहिये ॥ १ ॥

देवदाहनि रास्नायां मधुरेषु गणेषु च । सिद्ध सर्पिश्च सखीरं पातुमस्मै प्रदापयेत् ॥ २ ॥

देवदावादि घृत—देवदार, रास्ना और मधुर गण की ओषधियों के कल्क से विधिपूर्वक घृत सिद्ध करके दूध के अनुपान से बालकों को पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

सर्पपाः सर्पनिर्मोको यथा काकादनी घृतम् । उष्ट्राजाविगर्षो चापि शेष्णामुद्रधूपन भवेत् ॥  
 सर्पपादि धूप—सरसो, सौंष की केंजुल, बच, श्वेत कर्ण की रत्ती, घृत तथा ऊँट, बकरी, भेड़,  
 और गौ के बाल को समान भाग लेकर अग्नि में बालक के समीप धूप देना चाहिये । इससे  
 स्कन्दापस्मार नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सोमवस्त्रीमिन्द्रपृच्छं घृहसीबिषवशे शामीम् । शृगादन्धाश्च मूळानि प्रपित्तानि विधारयेत् ॥  
 सोमवस्त्र्यादि धारण—सोमवस्त्री, श्वेतकुटब, बड़ी बटेरी, विष्ट वृक्ष पर वरपन्न पुत्रं शमी  
 और शृगायण क मूल को स्रग् में गूथ कर बालक को धारण कराना चाहिये इससे स्कन्दग्रह  
 नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रक्तानि माष्यानि तथा पलाका रक्तोश्च गन्धान्विविधोश्च भक्ष्यान् ।

घण्टां च देषाय यलिं निषेध सकुक्कुट स्कन्दग्रहामिधाय ॥ ५ ॥

देकारापन—रक्तवर्ण के फूलों को मालायें, रक्तवर्ण के पलाका, रक्तवर्ण के गन्ध द्रव्य ( रक्त-  
 घदन आदि ), अनेक प्रकार के मद्य पदार्थ, और घण्टियां एवं कुक्कुट को कलि निषेधन करके  
 देव को देना चाहिये । इससे स्कन्दग्रह शान्त होता है ॥ ५ ॥

स्नान त्रिराध निदि शरदेषु कुर्यात्परं दाम्बिपदैर्निषेध ।

गायत्रिपूताभिरयाज्ञिरग्निं प्रज्वालयेद्वाऽऽहुतिभिश्च धीमान् ॥ ६ ॥

रात्रि में तीन दिन शत्रुस्वप ( चौराह ) पर बालक को शान्ति पाठ का स्तवन करके गायत्री  
 मंत्र से अभिमन्त्रित जल से स्नान करावे और आहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित ( दहन करे ) ॥  
 श्यामस्त प्रवक्ष्यामि घालानां पापनाशिनीम् । अह्न्यहमि कर्तव्या याभिरज्ञिरसग्निस्तैः ॥

रक्षा विधि के लिये बिन २ अलों को कहेंगे उन उनसे बालक रक्षित होकर प्रतिदिन बालकों  
 की रक्षा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

सपसां सेजसां चैव यक्षासां यपुर्यां तथा । निघामं घोऽधयो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥

मन्त्रपाठ—मन्त्रपाठ का अर्थ—उप, तैच, यज्ञ और शरीर के मन्दार को बिनाश रक्षित देव  
 हैं यह स्कन्द देव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

ग्रहसेनापतिर्वैशो देवसेनापतिर्विशुः । देवसेनारिपुद्गरः पातु त्वां भगवान्मुद्गा ॥ ९ ॥

ग्रहों के सेनापति देव, दैवों के सेनापति विशु और देव सेना के सशस्त्रों को नष्ट करनेवाले  
 भगवान् गृह तुम्हारी रक्षा करें ॥ ९ ॥

देवदेवस्य महतः पायकस्य च यः सुतः । गह्रोमाहृत्तिकाणां च स सेवार्थं प्रयच्छतु ॥ १० ॥

दैवों के देव महान अग्नि के पुत्र, गह्रा के पुत्र, उमा के पुत्र एवं इक्षिका के पुत्र तुम्हारी  
 रक्षा करें ॥ १० ॥

रक्षमास्याग्यरक्षो रक्षन्न्मभूषितः । रक्षद्विषयपुद्देवः पातु त्वां कौञ्जसूदनः ॥ ११ ॥

रक्तवर्ण को माया तथा रक्षवश्र को धारण करने वाले, रक्षवन्दन से मूषित रक्तवर्ण के शिष्य  
 शरीर वाले देव जो कौञ्ज को नष्ट करने वाले हैं वे तुम्हारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—

पिष्टका शिरीषो गोठोमी सुरसादिश्च यो गणः । परिवेके प्रयोक्तव्या स्कन्दापस्मारसाम्पत् ॥

स्कन्दापस्मार ग्रह जुष्ट काष्ठ की चिकित्सा—वेक का गुला, शीरिस की छान, श्वेत कूर्पा  
 और सुरसारी गण के द्रव्य को परिवेक ( सिपन वा रना ) के छिदे प्रयोग करना चाहिये ।  
 इस औषधियों के काप से स्नान कराने से स्कन्दापस्मार नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

सुरसाशिमैत्रेया—

सुरसा श्वेतसुरसा पांशु कज्जो कर्तारकः । सौमन्धिकं मूत्रगुणकं शमिद्रा केतुवर्षी ॥ १३ ॥

कटुकं चरतुण्या च कासमर्दकं शालकी । विश्वामय त्रिगुन्दी कार्णिकार उदुम्बरा ॥ १४ ॥

यथा च काष्ठापी च तथा च विपमुष्टिका ॥ १५ ॥  
 कटुकमिद्रा जपात् सुरसादिर्बं गणः । अष्टमूत्रे दिरकं च सेकमाप्यज्जने द्वितम् ॥ १६ ॥  
 सुरसादि गण के औषधियों के नाम—गुन्दी, श्वेत कुन्दी पुरानगदी, बमनेठी, कन्धरशास,

शुद्धगन्धक, गन्धक, राई, श्वेत बाजुरं तुलसी, कायपर, साधारण बाजुरं तुलसी, कसौंकर, शिलाजीत, वायविर्षग, सम्भाष्ट, धोपाष्ट, गूलर, भरिभारा, मकोय और बकायन यह छुरसादिगण है । यह छुरसादिगण कफ तथा कुमि को नष्ट करने वाला है । इनके कक्क को अष्टमूत्र के योग से तेल में देकर तेल सिद्ध कर लगाने से बालकों को लाभ होता है ॥ २-५ ॥

गूत्राटकमाह—

गोजाधिमहिषाधानां खरोष्ट्रफरिणां तथा । गूत्राटकमिति ख्यात सर्वशास्त्रेषु समतम् ॥ १ ॥

अष्ट मूत्र की गणना—गो, बकरी, भेड़ी, महिषी, घोड़ी, गदड़ी, ऊँटनी और इथिनी के सम्मिलित मूत्र को गूत्राटक कहते हैं । यह सर्व शास्त्र सम्मत है ॥ २ ॥

श्रीरिषुषकपायेण काकोल्यादिगणेन च । विपक्षस्य घृतं पश्चाद्वातस्य पयसा सह ॥ २ ॥

काकोल्यादि घृत—क्षीरी वृक्षों के फाथ और काकोल्यादि गण के कक्क द्वारा घृत सिद्ध कर दूध के अनुपात से बालकों को सेवन कराने से स्कन्दापरमार नष्ट होता है ॥ २ ॥

काकोल्यादिगणो पथा—

काकोली श्रीरुकाकोली जीवको ऋषभस्तथा । ऋद्धिर्द्धिस्तथा मेदा महामेदा शुद्धचिका ॥

मुद्गपर्णी माषपर्णी पद्मक वंशरोचना । शृङ्गी प्रपीण्डरीक च जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ २ ॥

द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिहृषीरित । स्तन्यकृद् बृंहणो घृष्यः पित्तरक्तानिलापहा ॥

काकोल्यादि गण के औषधियों के नाम—काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, शुद्धि, मेदा, महामेदा, शुरुच, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पद्माक्ष, वंशरोचन, काकहासिगी, पुण्डरीक ( पद्मकाठ ), जीवती, जेठीमधु और द्राक्षा ये काकोल्यादि गण कहे जाते हैं । यह काकोल्यादि गण दुग्धवर्धक, बृंहण, घृष्य और पित्तरक्त एवं वायु का नाश करने वाला है ॥ १-३ ॥

उत्सादनं घृष्याद्विह्वयुक्तमत्र प्रकीर्तितम् । शृङ्गोल्कपुरीपाणि केशा हस्तिनखो घृतम् ॥ १ ॥

धूपभस्म च रोमाणि योज्याम्युद्घूपने सदा । अनन्ताकुशकुटीविष्ठीमर्कटाश्वापि धारयेत् ॥

उत्सादनानि विधि—बच और हींग को पीस कर उबटन लगाने से स्कन्द ग्रह शांत होता है । गिद्ध तथा वल्लू पक्षी वी विष्ठा, केश, दाधी के नख, घन और साँद के रोम को एकत्र कर बालक के पास धूप करे तो स्कन्दग्रह शमन होता है और अनन्तमूल, सेमर का मूल, विन्वीफल और कपामार्ग को जड़ इनमें से किसी एक को दूध में बॉध कर बालक के गले में पढ़नाथे तो स्कन्दग्रह शमन होता है ॥ १-२ ॥

पशान्यामानि मौसानि प्रसन्न रुधिर पयः । मूर्त्तीदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मारिणं घटे ॥ ३ ॥

चतुष्पथे कारयेच्च स्नान तेन सह पठेत् ।

निवेदन—पकाये हुए और कच्चे मांस, घृभरक्त और दूध, जो कि सभी प्राणियों के भोज्य पदार्थ हैं उसे बट वृक्ष के नीचे स्कन्दापरमार ग्रह को निवेदन करे और वहाँ द्रव्यों से बालक को चतुष्पथ पर स्नान करावे और नीचे लिखे श्लोक ( स्तोत्र ) का पाठ करे ॥ ३ ॥

स्कन्दापस्मारसशो यः स्कन्दस्य दयितः सखा । विशास्त्र स शिशोरस्य शिवायास्तु शुभाननः ॥

पाठार्थे श्लोक का अर्थ—स्कन्दग्रह का प्रियमित्र जो स्कन्दापस्मार नामका है एवं जो विशास्त्र ( हस्तपाद रहित ) है तथा शुभ मुख वाला है वह ग्रह इस बालक के लिये कल्याणकारी हो ॥

शकुनिग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

शकुनिग्रहजुष्टस्य कार्यं वैद्येन जानता । येतसाम्रकपित्थानां काथेन परिपेचनम् ॥ १ ॥

शकुनीग्रह जुष्ट बालक की चिकित्सा—शकुनीग्रह जुष्ट बालक को कुशलेष वेत, आम, तथा कैय के काथ से स्नान करावे ॥ १ ॥

हीयेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः । लोभ्रमियगुमक्षिष्ठागैरिक् प्रदिदेचिदुष्टम् ॥ २ ॥

स्कन्दग्रहोक्षधूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि । स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥ ३ ॥

हावरे, मुल्हठी, खस, सारिवा नीलोफर, पडुमकाठ, लोभ्र मियहु, मगीठ और गेरु को समान भाग लेकर पीसकर शकुनी ग्रह जुष्ट बालक के शरीर पर छेप करावे । स्कन्दग्रह में कहे हुए धूप यहाँ भी देना चाहिये तथा स्कन्दापरमार को शमन करने वाला घृत भी इस रोग के लिये उपयुक्त है ॥ २-३ ॥

दाताधरीसुरोर्वारुणागदन्तीनिदिग्धिका । लक्ष्मणां महदेवीं च वृद्धतीं चापि धारयेत् ॥ ४ ॥

धारण—सताररी, बड़ी शूद्रायण, नागदन्ती अथवा इतिशुष्को, छोटी कटरी, रुद्रमण, महदेवी और बड़ी कटरी इनमें से किसी एक के मूल को चतुर्भुज में बाँध कर बालक के गले में बाँधना चाहिये ॥ ४ ॥

सिलतण्डुलक माला हरिताल मम-शिला । पल्लिरेपां करञ्जे तु निवेद्यो नियतामना ॥ ५ ॥  
निकुम्भोक्तेन विधिना स्थापयत्त सत्त पठेत् ।

निवेदन—तिल, चावल, माला, हरताल और मैनसिल को करञ्ज के पत्ते पर रख कर संयत मन से इन द्रव्यों की बलि देवे और निकुम्भोक्त विधि से बालक को स्नान करावे तथा मित्र 'अन्तरिक्षचरा' आदि श्लोक का पाठ करे ॥ ५ ॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारगुपिता । अयोमुक्षी सृष्मत्पुण्ड्रा पाकुनी ते प्रसीदतु ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—आकाश में विचरने वाली, सब प्रकार के भूतों से विमुक्ति, लोह के मुल वाली और धूम धुओं वाली शकुनी नाम की देवी पुम्हारे ऊपर प्रसन्न हवे ॥ ६ ॥

पूर्वर्क्षा महाकाया विज्ञात्री भैरवस्वरा । लम्बोदरी शङ्खकर्णी शकुनी त प्रसीदतु ॥ ७ ॥

देखने में भयङ्कर, बड़े शरीर वाली, भूरी आँखों वाली, कंकड़ शंख वाली, बड़े पैर वाली और शङ्ख (कील) के समान कर्णवाली शकुनी पुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ७ ॥

रेवतीग्रहजुष्टस्य चिन्तितामाह—

अरधगान्धाऽज्ज्यही च सारिवाऽय पुननवा । सहा विदारी ह्येतान्मां क्वापेन परिपेक्षन्म् ॥ १ ॥

रेवती ग्रहजुष्ट बालक को चिन्तित—असंग, मेघसिगी, सारिवा, पुननवा, मुद्रपणी और विदारीरुद्र को समान भाग लेकर विधिवत् काप करके रेवती ग्रहजुष्ट बालक को उस काप से स्नान कराना चाहिये ॥ १ ॥

तेलमम्यक्षने कार्यं कृते सर्जरसे तथा । पल्लुपाया नलदे तथा गौरकवृम्बके ॥ २ ॥

तेलाम्बु—जूट और रास के बरक द्वारा तेल सिद्ध कर बालक को रणवे और गुग्गुल, नरुद्र (रास के समान वर्ण का लामधरक लण) और देवेन कदम्ब के बरक द्वारा तेल सिद्धकर बालक को लगाना चाहिये । इसमें रेवतीग्रह शान्त होता है ॥ २ ॥

धवाशकण्ठकुकुमदावलकीतिन्दुकुषु च । काकोर्यादिगणे वाऽपि सिद्ध सर्पिः पिबेत्पिबुः ॥

दूध पान—बौ की छाल, साद की छाल, अजुन की छाल, सातमेरु (सकंद) और तिन्दुक (तेंदू) की छाल के बरक के योग से दूध मिश्र करके बालक को पिलाना चाहिये अथवा काकोर्यादि गण के भोजयियों के बरक द्वारा दूध सिद्धकर बालक को पिलाना चाहिये । इससे बालक के रेवती ग्रह एवं अन्यरोग भी शान्त होते हैं ॥ ३ ॥

कुटिरयाः शशुचूर्णं च प्रवेह्य पूर्वगणिकः । गृध्रोत्कपुरीपाणि यथान्यपथतो पूतम् ॥ ४ ॥

संभयोदभयोः कार्यमेवपुद्गुपुन गिप्तोः ।

प्रवेह तथा पूष—जुलयी तथा शल के चूर्ण और पहले ग्रहों की शान्ति के लिये बड़े हुए सुगन्धबाला आदि गन्धद्रव्यों को पीसकर विधिपूर्वक लेप बनाकर बालक के शरीर पर लेप करना चाहिये । इससे रेवती ग्रह की शान्ति होती है तथा गिद्ध पत्नी और उम्बुपत्नी की विज्ञा, अन्नवापन, धी और पूष को पकड़ करके दोनों संभ्या बालक के समीप पूष देना चाहिये । इससे भी रेवती ग्रह की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

शुद्धा सुमगसो लाभाः यथा वास्योदनें दधि ॥ ५ ॥

पल्लिनिवेद्या गोतीर्थे रेवत्यैः प्रयत्तामना । स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां सगम कारयेद्विषक ॥ ६ ॥

बलि निवेद्या—स्वेत पुत्र, पान की खील (लावा) दूध, शातिधान का भाग और बही इन सब की बलि गोतीर्थ पर संयत मन से रेवती ग्रह के शान्ति के लिये देना चाहिये । तथा वास (गावा) और कुमार दोनों को संगमस्थान पर स्नान कराना चाहिये तथा 'नामादक्षचरा' इत्यादि मित्र श्लोक का पाठ स्नान के समय करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

पाठ—मानाशरधरा देवी विघ्नप्रालम्बानुलेपना ।

चलदुग्धलिनी स्वामा रेवती त प्रसीदतु ॥ ७ ॥

दलोक का अर्थ—अनेक प्रकार के शर्कों को धारण करनेवाली, विचित्र भयवा अनेक प्रकार के माला और अनुलेप से युक्त, दिल्ते हुए कुण्डल है जिनके ऐसे श्याम वर्ण की रेवती देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ७ ॥

उपासते या सततं देव्यो विविधभूषणा । लम्बा कराळा धिनता सयैव यद्गुपुत्रिका ॥

रेवती शुष्कनासा च शुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८ ॥

जिस देवी को अनेक प्रकार के भूषणों वाली देवियाँ निरन्तर पूजती हैं, जो बहुत लम्बी हैं, अत्यन्त भयकर हैं, जो नम्र होकर रहती हैं, बहुत पुन्नोवाही हैं तथा जिनको नासिका खड़ी रहती है ऐसी रेवती देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

पूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्साग्राह—

कपोतयज्ञा स्योनाको वरुणः पारिभद्रकः । आस्कोता चैव योज्या स्युर्बालानां परिपेचने ॥

पूतना ग्रह जुष्ट बालक को चिकित्सा—भास्वी, अरुण की रवचा, वरुण की रवचा, नीम की रवचा तथा अपराजिता के विधिपूर्वक बने माथ से पूतना ग्रह जुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ १ ॥

नवा पयस्या गोलोमी हरिताल मनःशिला । कुष्ठ सर्जरसस्यैव सैलार्थं कक्क इप्पते ॥ २ ॥

तैल—नवीन धीरकाकोली, श्वेतदूर्वा, हरताल, मैनसिल, कूट और राल का विधिपूर्वक बना कक्क से तैलपाक की विधि से तैल सिद्धकर पूतना ग्रह जुष्ट बालक को लगाना चाहिये ॥ २ ॥

द्वित घृतं तुगाधीर्या ससिद्ध मधुनाऽपि च ।

तुगाधीरी घृत—वशलोचन के कक्क द्वारा घन सिद्धकर मधु के अनुपात से बालक को पिलाना चाहिये । इससे पूतना ग्रह में लाभ होता है ॥

कुष्ठतालीसखदिराः स्यन्दनोऽर्जुन एव च ॥ ३ ॥

पनसः ककुभश्चापि मज्जानो यद्वरस्य च । कुक्कुटासित घृतं चापि धूपन सह सर्षपः ॥ ४ ॥

कुष्ठादि घूप—कूट, तालीसपत्र, खैर की रवचा तिनिश ( तिरिच्छ ) अर्जुन की रवचा कटदल के फल की मज्जा, अर्जुन के फल की मज्जा और वैर के फल की मज्जा, कुक्कुट पत्ती का अस्थि, घन तथा सरसों को एकत्र मिलाकर बालक के समीप घूप देने से पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ३-४ ॥

काकावर्नी चित्रफलां बिम्बीं गुर्जां च धारयेत् ।

धारण—श्वेत रत्तियाँ, कटेरी के फल, बिम्बीफल और रक्तवर्ण की रत्तियाँ इनमें से किसी एक को घृत्त में गूथकर बालक को पहनाये । इससे पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥

मत्स्यैवर्नं बलिं यथाकृशरं पल्ल तथा ॥ ५ ॥

शरावसंगुटे कृत्वा तस्यै शून्ये गृहे भिषक् । उरुषास्त्रामिषिक्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते ॥

बलि और स्नान—मछली, मांस, कृशरा ( खिचड़ी ) और मांस की बली सक्कोरे में रखकर दूसरे सक्कोरे से ढककर शून्य गृह में रख देवे । तथा अन्नदान कराकर बालक का अभिषिञ्चन करके वक्ष्यमाण ( पृ० ८ ) मात्र द्वारा बालक को स्नान करावे । इससे पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ५-६ ॥

कुष्ठतालीसखदिरं च दर्नं स्यन्दनं तथा ।

वेद्यदाह घचा हिङ्गु कुष्ठ गिरिकवम्बक\* । पला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥ ७ ॥

घुन घूपन योग—कूट, तालीसपत्र, खैर, चन्दन, तिनिश ( तिरिच्छ ) देवदारु, वच, हींग, कूट, पर्वतीय कदम्ब, श्लायची और रेणुका को एकत्र कर पूतना ग्रह जुष्ट बालक के समीप घूप देवे तो पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ७ ॥

मलिनाग्ररसंघीता मलिना रुचमूषजा । शूयागाराश्रया देवी धारकं पातु पूतना ॥ ८ ॥

पाठार्थं श्लोक का अर्थ—मलिन बर्षों से युक्त एवं मलिन मुखवाली, रुक्ष शिरवाली अर्थात् जिसके शिर के बाल रुक्ष हैं ऐसी और शून्य गृह में रहनेवाली पूतना देवी इस बालक की रक्षा करें ॥ ८ ॥



गणपूतनामहर्षुदस्य चिकित्सा—

विष्णुद्रुमाणां पत्रेषु कायः कार्वांसनिपेषणे ॥ १ ॥

गणपूतनामहर्षुद बालक की चिकित्सा—गणपूतना ग्रह से जुष्ट बालक को विष्णु द्रुम ( विस्वादि ) के पत्तों के ब्याय से सिंचन करना चाहिये ॥ १ ॥

विष्णुद्रुमानाह—

विषय'पटोला पुत्रा च गुहृषी घासकस्तथा । विसर्पकुष्ठनुखयातो रागोऽथ पञ्चविष्णुः ॥१॥  
विष्णुद्रुमों के नाम—बेल, परबल, छोटी कटेरी, गुरुब भीर वाछा ( भरुसा ) को पञ्चविष्णु ( विष्णुद्रुम ) कहते हैं ये विसर्प रोग और कुष्ठ रोग को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरकोऽपि च । दालिपर्णी बृहस्पि च पृथग्यै सममाहरेत् ॥२॥  
पिप्पल्यादि घृत—पीपल, पिपरामूल, मधुर वर्ग के द्रव्य, दालिपर्णी, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी के कल्क से विषिषयक घृत सिद्धकर बालक की पिप्पली से गणपूतना ग्रह की दान्ति होती है ॥ ८ ॥

सर्वगन्धै प्रवेह्य ग्रामे चाप्यग्नौ शीतलैः ।

प्रवेह्य केप—गणपूतना ग्रहजुष्ट बालक के शरीर पर सर्वगन्ध अर्थात् इलायची, वेमपात्र, नागकेसर, दालचीनी, कपूर, कंकोळ, अमर, केसर, लवंग आदि की विषिषयक पीसकर केप करना चाहिये और नेत्रों पर शीतल पदार्थ ( चन्दन आदि ) का केप करना चाहिये ॥ २ ॥

पुरीर्यं क्षीबकुष्ठं कैशाक्षमसर्पमय तथा ॥ ३ ॥

लीर्णं च धीचयाधोवासो धूपनायोपकल्पयेत् ।

धूपन योग—कुक्कुटपत्ती को विष्ठा, केस, सांय धी केजुल अमवा चर्न और पुराना पत्रा हुआ अधोवक्ष एकत्र कर बालक के समीप धूप देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुक्कुटीं मर्कटीं विम्बीमनन्तां चापि चारयत् ॥ ४ ॥

भारण—सेमर वृक्ष का मूल, अपामार्ग अथवा बानरी का मूल विम्बीफल और अनन्तमूल में से किसी एक को घृत में बाँपकर बालक के गले में पहनाना चाहिये ॥ ४ ॥

मांसमन्नं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे । निवेद्यमन्तत्र गृहे शिष्टोः स्नपनमिष्यते ॥ ५ ॥

निवेदन और स्नान—पकाया हुआ मांस और सिद्ध अन्न तथा रक्त चतुष्पथ पर निवेदन करे रण देवे और गृह के आन्त्यन्तर ( को पर भीतर की ओर हो उस घर में ) बालक को रनाय कराये तथा नीचे लिखे मंत्र का पाठ करे ॥ ५ ॥

कपाला पिङ्गला मुण्डा कापावाग्वरसमुता । देवी बालमिम प्रीता रचताऽन्नमपूतना ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ—मयहूर, पिङ्गल ( भूरे ) वर्ण की, शिर सुहार्द हूर, कषायवर्ण के बरख से युक्त गण पूतना देवी प्रसन्न होकर इस बालक की रक्षा करे ॥ ६ ॥

शिवपूतनामहर्षुदस्य चिकित्सा—

गोमूत्रं बरतमूत्रं च मुस्तामनरदारु च । कुष्ठं च सर्वगन्धोश्च लेखार्थमपचारयेत् ॥ १ ॥

गोमूत्रादि लेख—गोमूत्र और बकरी का मूत्र, नागरमोषा, देवदारु, कुष्ठ और सर्वगन्ध के लीप से लेख सिद्धकर अर्थात् गोमूत्र और बरतमूत्र दोनों समान मिलित पिठना हो उसके चतुर्धर मूर्च्छित विष्णु का लेख और लेख के चतुर्धर नागरमोषा, देवदारु, कुष्ठ, सर्वगन्ध ( इलायची, वेब पात्र, नागकेसर, दालचीनी, कपूर और कंकोळ, अमर, केसर और लवंग अथवा बैंगर के रसाय पर शिलास ) के समान मिलित बल्क को लेख लेखारक की विधि से लेख सिद्ध कर शीतलना ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये । इससे शीतपूतना ग्रह की दान्ति होती है ॥ १ ॥

रोहिणीनिर्मलविद्यापलाशककुमाद्यथः । निष्काप्य तग्मिषिष्यापे सर्षीरे विपचेत् घृतम् ॥१॥

घृत—कुटकी, नीय की लवणा, रीता की लवणा, पलाश की लवणा और अर्जुन की लवणा समान भाग लेकर विषिष्यक १६ गुने बरख में भाय का चतुर्धर रहने पर हजार बर घृतन करे १ यह प्रसुप्त बाध पिठना हो उसके समान गोमूत्र और बरख के चतुर्धर मूर्च्छित लीपना सिद्धकर घृतपाक की विधि से मन्त्रान्त पर इन सिद्धकर शीतपूतना ग्रहजुष्ट बालक की पिठना करे ॥ इससे शीतपूतनाग्रह की दान्ति होती है ॥ २ ॥

गृध्रोल्कपुरीषाणि यस्तान्धामद्विखचम् । निम्बपत्राणि च तथा भूपगार्थं समाहरेत् ॥ ३ ॥  
 धूपन योग—गिद्ध की विष्ठा, उरुल की विष्ठा, अजमोत्रा, साँप की केतुल अथवा चर्म और नीम के पत्ते को समान मिलित लेकर बालक के पास धूपन करे इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥ ३ ॥

धारयेदपि गुञ्जां च घर्षां काकादनीं तथा ।

धारण—रक्तवर्ण की रची, बलामूल और द्येतवर्ण की रची को घृत में गूथ कर या बौध कर बालक को धारण कराना ( पहनाना ) चाहिये । इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥

मर्द्यां मुद्गौदनद्यापि तपयेच्छीतपूतनाम् ॥ ४ ॥

तपण—नदी में मूग की दाल और मात से शीतपूतना का तपण करना चाहिये । इससे शीतपूतना शान्त होती है ॥ ४ ॥

जलाहायान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते । देभ्यै देयक्षोपहारो, बालुणी रुधिरं तथा ॥ ५ ॥

स्नान उपहार—शीतपूतना ग्रहजुष्ट बालक को जलाशय या तड़ागादि पर ले जाकर स्नान कराना चाहिये और शीतपूतना देवी को बालुणी ( मध्य ) और रक्त का उपहार ( निवेदन ) देना चाहिये । इससे शीतपूतना शमन होती है ॥ ५ ॥

मुद्गौदनाशिनी देवी सुरासो गितपायिनी । जलाशयरता नित्य पातु त्वां शीतपूतना ॥ ६ ॥

पाठ—'मुद्गौदनाशिनी' आदि श्लोक को पढना चाहिये जिसका अर्थ है मूग की दाल और मात खाने वाली, मद्य और रक्त को पीने वाली तथा नित्य जलाशय में निमग्न रहने वाली शीत पूतना देवी तुम्हारी नित्य रक्षा करें ॥ ६ ॥

मुखमण्डिकाग्रहजुष्टस्य चिकित्सा माह—

कपिरथथिखत्रकार्शीवासागंधर्वहस्तका । कुयेराक्षी च योग्यास्तु यालानां परियेचने ॥ १ ॥

मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को चिकित्सा—पैप की त्वचा, बेल की त्वचा, गनियार की त्वचा, अरूसा, परण्डमूल और पाहर की त्वचा के काथ से मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ २ ॥

स्वरसैर्गृध्रघृषाणां तथैव हयगन्धया । तैल चर्षां च संयोज्य पचेदम्यज्जने शिशोः ॥ २ ॥

तैल—भांगरे के स्वरस और असगंध के स्वरस वा काथ तथा बच के कल्क के योग से विधि पूर्वक तैल सिद्ध कर मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ २ ॥

यचा सर्जरसं कुष्ठ सर्पिश्चोद्भूपने द्वितम् ।

बचादि धूप—बच, राल, फूठ और घृत को एकत्र कर मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक के समीप धूप देना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥

घर्षकं चूर्णकं माषयमज्जनं पारदं तथा ॥ ३ ॥

मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमभ्ये यल्लिं सतः । पायसं सपुरोद्वादा तद्रयक्ष्यर्थं मुपाहरेत् ॥

मन्त्रपूसाभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं द्वितम् ॥ ४ ॥

उपहार—हरताल, चूना, माला, सीवीराजन, पारद और मैनासिल उपहार ( निवेदन ) देना चाहिये और गोशाला के मध्य में पायस तथा घृत की बलि देनी चाहिये । एक अभिमन्त्रित किये हुए जल से उसी गोशाला में बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ ३-४ ॥

जलाभिमतत्रयमत्रमाह—

अलङ्कृता कामयती सुभगा कामरूपिणी । गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका ॥ १ ॥

अभिमन्त्रित करने का मन्त्रार्थ—अलङ्कारो से युक्त, कामनायुक्त, सीमायवती कामरूपवाली ( सुन्दर ) अथवा यथेष्टरूप धारण करने वाली, गोशाला के मध्य गृह में निवास करने वाली मुखमण्डिका देवी इस मंत्र से जल को अभिमन्त्रित कर उल्लिखित विधि से मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ २ ॥

नेगमेयग्रहजुष्टस्य चिकित्सा माह—

विश्वामित्रमन्यपूतीकै कार्यं स्यात्परियेचनम् ।

नैगमेय ग्रहलुप्त चिकित्सा—विश्ववृक्ष की त्वचा, तथा पूतिकरंज की त्वचा के स्वाद्य से नैगमेयग्रहलुप्त बालक का सिंचन करना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥

प्रियङ्गुसरलानन्तापातपुष्पाकुट्टकटैः ॥ १ ॥

पचेत्सैल सगोमूर्धं पृथिमसवग्ळकाजिकैः ।

प्रियंगुवादि तैल—प्रियंगु, सरल काष्ठ, अनन्तमूल, सौंफ और नागरमोया के कण्ड तथा गोमूर्ध, दही का पानी और अम्लकांजी के योग से तैल पाक की विधि से तैल सिद्धकर चतुर्गुण गोमूर्ध, दही का पानी और अम्लकांजी तीनों तैल के चौगुना लेकर तैलपाक की विधि से मन्दाग्नि पर तैल सिद्धकर नैगमेय ग्रहलुप्त बालक को लगाना चाहिये । इससे नैगमेय ग्रह की शान्ति होती है ॥ १ ॥

घर्षा घयस्यां जटिलां गोलोमीं चापि धारयेत् ॥ २ ॥

धारण—वच, हरद, जटामांसी और श्वेत दुर्वा इनमें से किसी को घृत में बाधकर नैगमेय ग्रह लुप्त बालक को पहनाना चाहिये ॥ २ ॥

उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ।

उत्सादन—नैगमेय को स्कन्दापस्मार नाशक जो उत्सादन (उपवन) कहा गया है वह लगाना चाहिये ॥

कमठोलकगृध्राणां पुरीपाणि पितृग्रहे ॥ ३ ॥

धूप सूते जने कार्यो यालस्य हितमिच्छता ।

धूपन—कछुआ की विष्टा, उदक की विष्टा और गिद की विष्टा एकत्र मिलाकर पिटुग्रह में जब सब लोग सो गये हों उस समय बालक की हित की इच्छा करनेवाले को धूप देना चाहिये ॥

तिलतण्डुलर्कमाह्वय भषयांश्च विविधानपि ॥ ४ ॥

कौमारभृत्यमेपाय प्लक्षमूले निवेदयेत् ।

निवेदन—तिल, चावल अथवा तिल का दाना, माला तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ कुमार के भृत्य अथवा रक्षक के रूप में भेष (भेडे) के लिये प्लक्ष (पिलखन), वृक्ष की बड़ में निवेदन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अघस्ताप्तीरष्टस्य स्नपन चोपदिश्यते ॥ ५ ॥

स्नान—क्षीरीश्ल (अश्वत्थादि) के नीचे बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ ५ ॥

अज्ञाननक्षलन्विभू कामरूपी महायशः । बाल पाण्यताद्देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु ॥ ६ ॥

पाठ—'अज्ञाननक्षलन्विभू' इत्यादि श्लोक का पाठ करना चाहिये जिसका अर्थ यह है कि जो बन्दे के मुँह के समान मुँह वाला है, जिसका भ्रूभाग निरन्तर चलता ही रहता है, कामरूपी (इच्छित रूप धारण करने वाला) है, महायश वाला है और पालन करने वाला है ऐसा नैगमेय देव इस बालक की रक्षा करें ॥ ६ ॥

प्रन्यान्तरे वस्तुल्लिकालक्षणमाह—

आध्मानयातसम्फुल्लो वृक्षकुञ्जी शिशोर्भवेत् । उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वासव्ययसुखल्लु ॥

उत्फुल्लिका रोग के लक्षण—बालक के दाहिने कुक्षि में आध्मान होकर वायु से संकुल्ल (फूला अथवा शोथ) हो जाता है तथा श्वास हो जाता है और श्वास नली में भी शोथ हो जाता है उसे उत्फुल्लिका रोग कहते हैं ॥ १ ॥

पतस्य चिकित्सागार—

नि सारयेज्जलौकामी रक्त च जठरात्तदा ।

चिकित्सा—इस रोग में बालक के उदर से जल निकालकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥

कर्कोटनागरामेचकट्टोलोत्तिविपाभवम् ॥ १ ॥

चूर्ण कुन्धेन सम्मिध पाययेन्मातरं भिषक् । धार्त्री या पाययेत्सद्यः पीरक्षोपनिवारणम् ॥ २ ॥

कर्कोटादि चूर्ण—वांश ककशा, सोंठ, नागरमोया, कङ्कोल और अतीस को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर दूध के अनुपान से माता को पिलाना चाहिये, अथवा यदि माता के स्थान पर धाय हो तो उसे पिलाना चाहिये, इससे शीघ्र ही दूध सम्बन्धी दोष निवृत्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

अग्निना स्वेदयेद्वाऽपि दाहयेच्च शलाकया । जठरे बिन्दुकाकारं घृष्टमागे यया ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अग्नि स्वेद—बालक वा उदर अग्नि से स्वेदित करना चाहिये अथवा उदर पर लोहे के सलाका को अग्नि पर तपाकर बिन्दु के आकार का दाद कर देना चाहिये और पीठ पर भी बिन्दु के आकार दाह कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

वित्तवमूलक नीरदो घृकी त्रैफलं तथा सिद्धिकाद्वयम् ।

गौडनिधितं फाधितं सम पाययेच्छिद्यु फुल्लिकापदम् ॥ ४ ॥

विस्वमूलकादि काप—विस्व का मूल, नागरमोषा, पाठा हरद, बरेड़ा, आमला, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काप करके जितना स्वाध हो उसके समान भाग गुड़ का मय मिलाकर बालक को यथा मात्रा पिजाने से फुस्लिका रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पिप्पली प्रन्धिकं विश्वा प्रायमाणा च दार्दिका । पथ्येभपिप्पली भार्गी लवङ्ग टङ्कणस्तथा ॥

कुमारीवालपथ्ये च सैघवस्रयाजवारिणा । घर्षित पाययेत्प्रातर्द्विटङ्क फुल्लिकापहम् ॥ ६ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल, विपराभूल, सोंठ, प्रायमाणा, दाहदली, हरद, गजपीपल, भारगी, लौंग, शुद्ध टङ्कण, पिकुआर का गूदा, छोटी हरद और सैधानमक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर बकरी के मूत्र में गर्दन कर दो टङ्क के प्रमाण की मात्रा से बालक को पिलाना चाहिये इससे फुस्लिका रोग नष्ट होता है ॥ ५-६ ॥

पथ्यापथ्यम्—

यस्यपथ्यं यदपथ्यं च गुणामुक्त उवरादियु । तत्तद्विधेयमौचिर्याद्वालयानां तेषु जानता ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—जो पथ्य अथवा अपथ्य ज्वरादि रोगों में कह गये हैं उन्हीं पथ्यापथ्यों की विद्वान् येच को यथा उचित बालकों के लिये भी विचार कर देना चाहिये ॥ १ ॥

पूर्वं पथ्यमपथ्यं च मन्दाग्नी यत्प्रकीर्तितम् । औचिर्याद्योजयेज्जाते यलयानां पारिगर्भिके ॥

जो पथ्यापथ्य पहले मन्दाग्नि रोग में कहे गये हैं—वही पथ्यापथ्य विचार कर बालकों के पारिगर्भिक रोग में भी देना चाहिये ॥ २ ॥

आगन्तुन्मादघातानां पथ्यापथ्यं यदीरितम् । औचित्याद्योजयेत्तत्र यालेषु ग्रहरोगियु ॥ ३ ॥

आगन्तुक उन्माद और वात रोग में जो पथ्यापथ्य कह गये हैं वही यथा उचित विचार कर बालकों के ग्रहरोगों में देना चाहिये ॥ ३ ॥

इति बालरोगप्रकरणं समाप्तम्

### अथ विपाधिकारः ।

तत्र विपस्य द्वैविध्यमाह—

स्थावर जङ्गम चैव द्विविधं विपमुच्यते । दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं योषशाश्रयम् ॥ १ ॥

विप के द्विविध प्रकार—स्थावर और जङ्गम भेद से विप दो प्रकार का होता है । उस स्थावर का अधिष्ठान दस है और जङ्गम का अधिष्ठान सोलह है ॥ १ ॥

स्थावरविपस्य दशाश्रयानाह—

मूल पत्रं फल पुष्प स्वक्वीर सार एव च । निर्यासो घासवः कन्द स्थावरस्याश्रया दश ॥१॥

स्थावर ( वनस्पति सम्बन्धी ) विप—मूल, पत्र, फल, पुष्प, स्वचा, क्षीर सार, निर्यास, धातु, एव कन्द इत प्रकार स्थावर विप दस में रहते हैं । अर्थात् स्थावर विप इन दस स्थानों से श्रयण होते हैं ॥ १ ॥

तथा—मूलविप करवीरादि । पत्रविपं विपपत्रिकादि । फलविप कर्कोटकादि । पुष्पविपं घेत्रादि । स्वक्वीरनिर्यासविपाणि करम्भादीनि । क्षीरविप स्तुद्धादि । धातुविप हरितालादि । कन्दविप घसनामसच्छुकादि ॥

मूल विप कनेर आदि के मूल में होता है । पत्र विप—विपपत्रिका ( देवदारु ) आदि के पत्र में होता है । फल विप—बांस ककोड़े आदि के फल में होता है । पुष्पविप—वेत आदि के पुष्प में होता है । स्वक्वीर और निर्यास विप—करम्भ आदि के स्वचा, सार और निर्यास आदि में होता

द्वे क्षीर विष—सुरो आदि क दूध में, भाद्र विष—हरताल आदि पातुओं में होता है । कन्दविष—  
नलनाम सक्तुकादि के कन्द में होता है ॥

अङ्गमविषस्य षोडशोऽऽश्रयानाह—

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूयमलानि च । शुक्र लाला मुखस्पर्श सन्वृशाश्च विदधितम् ॥  
गुदास्थिविषश्चकृत्कादि दश पद अङ्गमाश्रयाः ॥ १ ॥

अङ्गम विष—दृष्टि, निश्वास, दंष्ट्र ( दाढ़ ) नख, मूय, मल, शुक्र, लाला, मुख, स्पर्श, दश  
विषदित, अथोवायु, गुदा, अस्थि, विष और शुक इन सोलह स्थानों में रहते हैं ॥ २ ॥

तथा हि—दृष्टिनिःश्वासविषा दिव्याः सर्पास्तच्छकादयः । दंष्ट्राविषा मौमाः सर्पाः ।  
नखविषा मार्जारमकरव्याघ्रादयः, ते दंष्ट्राविषा अपि । मूत्रपुरीष विषा गृह—गोधिकादयः ।  
शुक्रविषाः सर्पलालानादयो मूषिकाः । लालाविषा वरटयुष्मदिह्नादयः । स्पर्श—विषा छूतादयः ।  
मुखद दशविषा मक्षिकादयः । विशद्विषतगुदघातविषाश्चिन्नक्षीपादयः । विशद्विषं नाम  
पायुकृतकुत्सितशम्बु । अस्थिविषा सर्पादयः । पिच्छविषा नकुलमत्स्यादयः । शुक्रविषा  
शुशिकभ्रमरादयः । पृतेषां च सुशुक्ते कल्पस्थाने विस्तारो ऋष्यः ।

दृष्टि निश्वास विष—दिव्य सर्प, तच्छक आदि के दृष्टि एवं निश्वास में होता है । दंष्ट्रा विष—  
भूमिस्थ सर्पादि के दाढ़ में होता है । नख विष—मार्जार ( बिल्लर ), मकर और व्याघ्रादि के  
नखों में तथा इनके दाढ़ी में भी होता है । मूत्र पुरीष विष—गृहगोधिका ( छिपकिली ) आदि के  
मूत्र एवं पुरीष में होता है । शुक्र विष—सर्प तथा एलन ( जाति विशेष मूषक ) आदि के  
शुक्र में होता है । लाला विष—घरें तथा लच्छटिङ्ग ( कीट विशेष ) आदि के लार में होता है ।  
स्पर्शविष—लड़ा ( मकड़ी ) आदि के स्पर्श में होता है । मुखसन्वृश विष—मक्षिका आदि के मुख  
सन्वृश अर्थात् इनके काटने से होता है । विशद्विष विष—गुदघात ( अपान वायु वा अथोवायु  
चिन्नक्षीर्ष, शतदारुक आदि कीट विशेषों से उत्पन्न होता है अर्थात् इनके अथोवायु में होता है ।  
विशद्विष—गुदा द्वारा जो अपशब्द होता है उसे कहते हैं । अस्थिविष—सर्प एवं मत्स्यादि  
के अस्थि में होता है । पिच्छविष—नकुल ( नेवला ) और मत्स्य आदि के पिच्छ में होता है ।  
शुक्रविष—शुशिक और भ्रमर आदि के शुक्रतुण्ड में होता है । इसका विस्तार पूर्वक वर्णन सुशुक्ते  
के कल्पस्थान में देखना चाहिये ।

स्थावरजङ्गमविषाणा सामा यलक्षणाभ्याह—

स्यावरं तु ज्वरं दिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् । केनच्युर्धरविश्वासं मूषर्द्धां च कुरुते विषम् ॥ १ ॥

स्थावर विष के लक्षण—स्थावर विष से ज्वर, दिक्का, दन्त हर्ष, गलग्रह, मुँह से पित्त  
निकलना एवं वमन, अरुचि, दबास और मूषर्द्धां उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

निर्द्रां सन्त्रां बलमं दाह सफर्णं रोमहर्षणम् । शोफं चैवातिसारं च कुरुते जङ्गम विषम् ॥२॥

जङ्गम विष के लक्षण—जङ्गम विष से निर्द्रा, सन्त्रा बलम ( नलान्ति ), दाह, कम्पन, रोम  
हर्षण, शोय और अतिसार उत्पन्न होते हैं । राबो अथवा अय शोयो के परिचारक ( निश्वास पान  
शुभ्यादि ) अन्नादि में विष मिलाकर दे देते हैं ॥ २ ॥

अथावनिपत्तेरन्वस्य वाग्नादौ निम्नतां परिकर्मिणो विषमवचारयन्ति ।

तेषां विषदातृणां लक्षणाभ्याह—

इङ्गित्तञ्जो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुल्लेखकृतैः । जानीयाद्द्विपदातारमेतैर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ १ ॥

विषदाता को जानने का उपाय—मनुष्यों को चेष्टाओं का घाटा बुद्धिमान् वैद्य अथवा  
अन्यान् राजपुरुष एवं विद्वान् मनुष्य वाणी, चेष्टा ( आकृति ) और मुख के विकृत भाव आदि लक्षणों  
से विषदाता को जाने ॥ २ ॥

न ददात्युत्तरं पृष्टो विवशुर्मोहमेति च । अपार्यं बहु सङ्कीर्णं आपते मूढवत्तदा ॥ २ ॥

अङ्गुलीः स्फोटयेदुर्वीं विच्छिद्येत्प्रहसेदपि । वेपथुश्चास्य भवति प्रस्तश्चान्योन्मयीचते ॥ ३ ॥

विषर्णवक्त्रो ध्यामसु नखः किञ्चिच्छिन्नपपि । धर्तते विपरीतं च विपदाता विचेयता ॥४॥

आलभेतासकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् । निर्वियामुत्तरपद्मैर्योचते च पुनः पुनः ॥ ५ ॥

विषदाता का स्वरूप—ओ मनुष्य कुछ पूछने पर उत्तर नहीं देता है, क्रूर करने को रब्जा

करने पर मोह अर्थात् मूर्च्छित हो जाता है अथवा विस्मृत हो जाता है अथवा बोल नहीं सकता है, मूर्ख की भौति निरर्थक बहुत अथवा अत्यन्त घृष्टम बोलता है, अंगुलियों को फोड़ता है, भूमि को अंगुलियों के नरों से रोदता है, अकारण हँसता है, कौपता है, भयभीत होकर इतस्ततः दूसरे को देखता है, मुँह का यर्ष विषर्ण हो जाता है, अग्नि से दग्ध हुए के समान प्रमाहीन हो जाता है, गल से कुष्ठ ( घृणादि ) काटता है, अपनी प्रकृति के प्रतिकूल आचरण करता है और चेतनारहित भी हो जाता है, दीन होकर कई बार हाथों से शिर को पकड़ता है अथवा शिर नोचना है, गृह के गौण मार्गों से निवृत्तना चाहता है और बार बार उन मार्गों को देखता है उसे विपदाता जानना चाहिये ॥ २-५ ॥

स्यावरविषस्य दशाध्यायानां प्रत्येकं लक्षणान्याह--

उद्वेष्टन मूलविषै प्रलापो मोह एव च ।

मूलविष के लक्षण—कनेर आदि के मूल के सेवन से उद्वेष्टन ( दण्डापात की भौति पीडा ), प्रलाप और मोह ( संहाहीनता ) होता है ।

ज्वरमर्णं येपतं श्वासो ज्ञेय पत्रविषेण च ॥ १ ॥

पत्रविष के लक्षण—पत्रविषों से जम्हारे, कम्पन और श्वास बढ़ा हुआ होता है ॥ १ ॥

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहोऽघट्टेण एव च ।

फलविष के लक्षण—फलविष से मुष्कदेश में शोथ, दाह और अन्नद्वेष (अरुचि) हो जाता है ।

मयेत्युष्णविषैरर्द्धिराध्मान श्वास एव च ॥ २ ॥

पुष्पविष के लक्षण—पुष्प विष से बमन, अध्मान और श्वास की वृद्धि होती है ॥ २ ॥

त्वक्सारनिर्यासविपरुपयुक्तैर्भवन्ति हि । आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसघ्रवाः ॥ ३ ॥

त्वक्-सार एव निर्यास विष के लक्षण—त्वचा विष, सार विष तथा निर्यास विष के उपयोग करने से मुख में दुर्गन्धि होना, शरीर में रुक्षता, शिर में पीडा तथा कफ का स्राव होना ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

फेनागमः क्षीरविषैर्विद्वभेदो गुरुभिद्धता ।

क्षीरविष के लक्षण—क्षीरविष के सेवन करने से मुँह से फेन निकलना, विद्वभेद अर्थात् अतीसारवद मलनिर्गम और निद्रा की गुरुता आदि लक्षण हो जाते हैं ।

हृत्पीडन धातुविषैर्मुँच्छां दाहश्च तालुनि ।

धातु विष के लक्षण—धातु विष के सेवन से हृदय में पीडा, मूच्छा और तालु प्रदेश में दाह होता है ।

प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ ४ ॥

प्रायः करके इन विषों को कालघाती ( कालान्तर में मारनेवाला ) जानना चाहिये ( कभी २ वे शीघ्र भी मारते हैं किन्तु इनकी गणना कालान्तर में मारक ही है ) ॥ ४ ॥

धन्वविषस्य कार्यमाह—

धन्वजान्युग्रधीर्वाणि यान्युक्तानि त्रयोदश । सर्वाण्येषानि कुरालैर्ज्ञेयानि द्वाभिर्युगैः ॥ १ ॥

धन्वविष के कार्य—धन्व से उत्पन्न होनेवाले उग्र धीरे विष जो तीरह प्रकार के बह आये हैं वे सभी बह्यमाण दस गुणों से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

स्थावर जङ्गम घापि कृत्रिम चापि यद्विषम् । सद्यो निहृति तत्सर्वयुगैश्च द्वाभिर्युगैः ॥ २ ॥

स्थावर विष, जङ्गमविष तथा कृत्रिम विष जो भी विष हो वह प्राणियों की शीघ्र नष्ट कर देते हैं । सभी विष दसगुणों से युक्त होते हैं ॥ २ ॥

सान्द्रश्च गुणानह—

रूचमुष्ण तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाद्यु भ्यवापि च । विकाशि विशद् चापि लण्डपाकि च ते द्वा ॥

दसगुणों के नाम—रूच, उष्ण, तीक्ष्ण, घृष्टम, आद्यु, भ्यवायी, विकाशी, विशद्, लण्ड और अपाकी । अर्थात् ये दस गुण सभी में होते हैं ॥ १ ॥

सैर्युगैर्विषस्य कार्यमाह—सद्रौक्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यपित्त सद्यो गितम् ।

सैर्युगैर्विषस्य कार्यमाह—सद्रौक्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यपित्त सद्यो गितम् ।

सैर्युगैर्विषस्य कार्यमाह—सद्रौक्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यपित्त सद्यो गितम् ।

विष का कार्य—रुग्ण गुण होने से वायु को कुपित करता है । उष्ण गुण होने से पित्त को रक्त के साथ अथवा पित्त और रक्त को कुपित करता है । तीक्ष्ण गुण होने से बुद्धि को मोह लेता है और मर्मस्थान के बचनों को काटता है ॥ २ ॥

शरीरव्ययानसौषम्यात्प्रविशोद्विकरोति च । आद्यात्वादाद्यु सद्भन्ति व्यघाषाय्मकृति हरेत् ॥३॥

उष्ण गुण होने से शरीर के अवयवों में प्रवेश कर विकार उत्पन्न कर देता है । आद्यु गुण होने से शीघ्र ही प्राण का नाश करता है । व्यवायी गुण होने से प्रकृति (स्वभाव) को विकृत कर देता है ॥ ३ ॥

विकाशित्वात्प्रपयति द्योपाघासुन्मलानपि । अतिरिष्येत घैदापाद्बुभिकित्स्व च छाषयात् ।

दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्कलेषपते चिरम् ॥ ४ ॥

विकाशी गुण होने से घातादि दोषों, धातुओं और मूत्रों को नष्ट करता है । विशद गुण होने से सब मार्गों को शुष्क २ कर देता है । लघु गुण होने से बुद्धिबिस्व होता है और अणकी गुण होने से दुःख से पचने वाला होता है इसीलिये चिरकाल तक क्लेश करता है ॥ ४ ॥

विषलिप्तिशस्त्रहृत्स्य लक्षणमाह—

सद्यः पाक याति यस्य क्षत तस्त्रवेद्भक्त पच्यते चाप्यभीक्षणम् ।

कृष्णीभूत क्लिन्नमायर्षपूति क्षतामांसं क्षीर्यति यस्य चापि ॥ १ ॥

विष लिप्त शस्त्रहृत् के लक्षण—जिस मनुष्य का क्षत शीघ्र ही पक जाने, उस क्षत से रक्त का स्राव होता रहे, बार बार पके तथा उससे कृष्णवर्ण का, आर्द्र, अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त सदा दुग्धा मांस गिरे अथवा क्षत का वर्ण कृष्ण हो, निरन्तर आर्द्र रहे, दुर्गन्ध युक्त हो और उससे मांस सड़ २ कर गिरे और घृष्णा, मूच्छा, ज्वर और दाह हो तो उसे विष से लिप्त शस्त्र से विद्ध (क्षत अथवा आहत) जानना चाहिये ॥

मृष्णा मूच्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाविद्ध त मनुष्य व्यवस्येत् ।

छिन्नान्येतान्येष कुर्याद्भिर्भैर्दत्तः पवेद्यो वा मरणे यस्य चापि ॥ २ ॥

विष लिप्त व्रण के लक्षण—शस्त्रों के द्वारा किसी प्रकार जब व्रण में विष दे लिया जाता है तब भी विषलिप्त शस्त्र से क्षत होने पर जो लक्षण होते हैं वे ही तब व्रण में भी होते हैं ॥ २ ॥

जह्मविभाणां कार्याण्याह, तत्र जह्मेषु तीक्ष्णतरत्वेन सर्पानाह—

घातपित्तकफामानो भोगिमण्डलिराजिला । यथाक्रम समाख्याता द्वयन्तरा इन्द्ररूपिणा ॥

सर्पविष—वात-पित्त और कफ दोष वाले भोगी, मण्डली और राजिल ये तीन प्रकार के सर्प क्रम से होते हैं अर्थात् भोगी (पणा वाल सर्प विष में वातदोष की बहुलता होती है, मण्डली (चलने वाले) सर्प के विष में पित्तदोष की बहुलता होती है और राजिल (चिमिन एवं दीर्घ रेखाओं वाले) सर्प के विष में कफ दोष की बहुलता होती है तथा इनके मध्य वाले अथवा दो दो जातियों के मिलित लक्षणों वाले सर्प दीपात्मक होते हैं, अर्थात् भोगी और मण्डली के मध्य की जाति वाले सर्पविष में वातपित्त दोनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं, मण्डली तथा राजिल के मध्य की जाति वाले सर्प के विष में पित्त-कफ दोनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं और भोगी और राजिल के मध्य की जाति वाले सर्प के विष में वात-कफ दोनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं अथवा दो जाति के सर्पों के सहूर से जो सर्प प्रपन्न होते हैं वे जाति के अनुसार दोष से युक्त द्रव्य दोषों वाले होते हैं ॥ २ ॥

मीतिप्रभृतिभिः कुर्यादेषु वाताग्नीना लिङ्गमाह—

यस्यो भोगिकृत्तः कृष्णा सर्वघातविकारकृत् । पीतो मण्डलिया क्षोयो शूद्रुः पित्तविकारवान् ॥

भोगी आदि सर्पविष—भोगी सर्प का दंशस्थान कृष्ण वर्ण का होता है और सभी वातिक विकारों को करने वाला होता है । मण्डलीक सर्प का दंश स्थान पीठवर्ण का होता है तथा उसमें शोथ होता है और शूद्रु होता है एवं वैशिक विकारों वाला होता है ॥ २ ॥

राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोषश्च पिच्छिद्धः ।

पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रावृत्सवरलेम्बविकारकृत् ॥ २ ॥

राजिल सर्प वा दंश स्थान स्थिर शोथ बाला, पिच्छिल, पाण्डुवर्ण का, स्निग्ध, अत्यन्त गाढ़ रक्त युक्त तथा सभी प्रकार के कफज विकारों को करने वाला होता है ॥ २ ॥

देशविशेषे कालविशेषे च ददस्यासाध्यत्वमाह—

अक्षरयदेवायतनरमशानवर्षमीकसभ्यासु चतुष्पथेषु ।

याग्ये च विग्ये परिवर्जनीया श्रापे नरा मर्मसु ये च वृद्धाः ॥ १ ॥

साध्यासाध्यता—अथ ( पीपल ) वृक्ष के नीचे, देवालय, श्मशान, बरमीक, साध्याकाल, चतुष्पथ, मरणी नक्षत्र और चकार से आद्रा-अश्लेषा, मघा, मूल और कृतिका नक्षत्रों में एवं पद्ममो तिथि में, पितृपक्ष में तथा मर्मस्थान में यदि सर्प दंश किया हो तो ऐसे मनुष्य को त्याग देना चाहिये । वह असाध्य है ॥ १ ॥

द्वर्षिकराणां विपमाशु हस्ति सर्पाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति ॥ २ ॥

दर्वीकर विप की असाध्यता—दर्वीकर ( भोगी अर्थात् फणा वाले ) सर्प का विप शीघ्र मारक होता है तथा सभी सर्पों का विप ( अथवा अथ विप भी ) उष्णकाल में तथा उष्ण के संयोग से द्विगुण हो जाते हैं ॥ २ ॥

दर्वीकरलक्षणमाह—

रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशाधारिणः । ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिन शीघ्रगामिनः ॥ १ ॥

दर्वीकर के लक्षण—रथाङ्ग अर्थात् चक्र अथवा चक्रवाक पट्टी हल, छत्र, स्वस्तिक चिह्न तथा अङ्कुश के चिह्नों से फणा पर धारण करने वाले और शीघ्रगामी सर्प को दर्वीकर सर्प कहते हैं ॥

तथाऽपरेषु विपमाशु मार्गं भवति तानाह—

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु घृद्धेषु पुमुचितेषु ।

स्त्रीणे चते मेहिनि कुष्ठशुष्टे रुचेऽवले गमवतीषु चापि ॥ १ ॥

दाक्षघते यस्य न रक्तमस्ति रज्यो लताभिन्न न सम्भवन्ति ।

शीताभिरद्भिन्न न रोमहर्षो विपाभिर्मूल परिवर्जयेत्तम् ॥ २ ॥

मारक विप—अजीर्ण से पीडित, पित्तदोष से पीडित आतप ( घर्म ) से पीडित, तथा बालक, वृद्ध, सुभारत, क्षीण, स्त्री, मेही, कुडी, रूख शरीर वाला, निर्बल और गर्भवती को यदि सर्प काटे तो वह विप शीघ्र मारक होता है तथा ( सर्पदंश मनुष्य को ) शय्य से काटने पर जिसके शरीर से रक्त नहीं दिखाई दे, लता ( वेद्यादि ) से ताड़न करने या बाधन करने से रखायें नहीं होती हो और शीतल जल से स्नान कराने से जिसे रोमाश्च नहीं होता हो ऐसे विप से युक्त ( सर्पदंश वाले ) को त्याग देना चाहिये ॥

जिह्व मुख यस्य च केशशातो नासावसाक्ष सकण्ठभङ्गः ।

कृष्णाश्च रक्ताः श्वययुश्च धंशो हृत्सो स्थिरत्वं च स धर्जनीय ॥ ३ ॥

जिस मनुष्य का मुख बक हो गया हो, शिरके केश गिरने लगे अथवा हाथ लगाने से उखल जावे, नासिका अबसन्न हो जावे, कण्ठ भग्न हो जावे, दंशस्थान कृष्णवर्ण का अथवा रक्तवर्ण ना हो जावे तथा उसमें शोथ हो तथा हनुस्तम्भ हो उसे त्याग देना चाहिये । ये लक्षण असाध्य हैं ॥

अपर च—वर्तिर्धना यस्य निरेति धक्त्राद्दक्ष छयेदूर्ध्वमधश्च यस्य ।

घृष्टानिपातांश्चतुरक्ष परयेद्यस्यापि घैद्य परिवर्जयेत्तम् ॥ ४ ॥

जिसके मुख से गाढ़ द्रव्यवा बची के समान निकले तथा ऊर्ध्वमार्ग ( मुख नासादि ) अथवा अधोमार्ग ( गुदादि ) से रक्त का स्राव हो, जिसके चारो दाँत ( दाढ़ ) बैठ गये हों ऐसे असाध्य लक्षण देखकर उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ४ ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाऽप्ययथा विवणम् ।

सारिष्टमत्यर्थमवेगिन च त्यजेन्नर तत्र न कम कुर्यात् ॥ ५ ॥

जो सर्प विप से उन्मत्त, अत्यन्त उपद्रवों से युक्त तथा क्षीण स्वर वाला हो गया हो अथवा जिसके शरीर का वर्ण विकृत हो गया हो, जिसको नियत मरण व्यापक लक्षण उपस्थित हो गये हों तथा मलमूत्रादि के वेगरहित हो गया हो ऐसे विपयुक्त मनुष्य की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ५ ॥



स्यावरजङ्गमविषमैश्च जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसङ्गां कथते तदाह—  
जीर्णं विषज्ञौषधिभिर्हृतं वा दावाग्निवातातपशोपितं वा ।

स्वभावतो वा गुणविप्रहानं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ १ ॥

मनुष्य के शरीर में प्राप्त स्यावर, जङ्गम अथवा कृत्रिम विष भी जीर्णता को प्राप्त होने पर अथवा विषनाशक औषधियों द्वारा अभिहत होने पर अथवा दावाग्नि (वनाग्नि) वात तथा आतप आदि से शोषित होने पर अथवा स्वभावतः हीनगुण होने पर दूषी विष में परिणत हो जाता है ॥ १ ॥

दूषीविषस्य कार्यमाह—

धीर्मांसपभावाच्च निपातयेत्तत्कफान्वितं चर्षगणानुबन्धि ।

तेनार्दितो भिद्यपुरीषवर्णो विगन्धघैरस्ययुतः पिपासी ॥ १ ॥

मूर्च्छन् अमन्य गन्धव्याग्वमिश्रं विचेष्टमानो रतिमाप्नुयाद्वा ॥ २ ॥

दूषी विष के कार्य—दूषी विष अल्प त्रीर्षं ( सामर्थ्यं हीन अथवा ग्यवायी आदि दस गुणों से हीन ) होने से शृङ्खुप्रद नहीं होता किन्तु कफ से आच्छादित होकर वर्षों पर्वत शरीर में स्थित रहता है । इस विष से पीड़ित मनुष्य-भिन्न पुरीष ( मलभेद वाला ) और मिश्र वर्ण हो जाता है, उसके शरीर-अथवा मुख से दुर्गन्धि आती है, मुख विरस हो जाता है, तथा उसे घृष्णा, मूर्च्छा अम और वागी गन्ध्राह हो जाती है, वमन होता है तथा विरुद्ध चेष्टाओं को करता हुआ कष्ट को प्राप्त होता है ॥ १-२ ॥

स्थानविशेषस्थिते दूषीविषे लिङ्गविशेषमाह—

आमाशयस्ये कफवातरोगो पक्षाघातस्येऽनिलपित्तरोगी ।

भवेत्समुद्रध्वस्तशितोरुक्षान्नो विल्लनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ १ ॥

दूषी विष के विशेष लक्षण—दूषी विष के आमाशय में स्थित होने से मनुष्य कफ-वात रोग वाला और पक्षाघात में स्थित होने से वात-पित्त रोग वाला हो जाता है तथा उसके शिर के केश एवं शरीर के रोम इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार भंख विहीन पक्षी हो जाता है ॥

तस्य रसादिधातुगतस्य लिङ्गमाह—

स्थित रसाद्विष्वथं सद्योष्कान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ।

कोपश्च क्षीतानिलदुर्दिनेषु यास्याद्यु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ १ ॥

रसादि धातुओं में दूषी विष—रसादि धातुओं में स्थित हुआ दूषी विष उन धातुओं से उत्पन्न होने वाले विकारों को करता है, अर्थात् रसधातु में रहने से अरुचि, अनीर्णादि विकार, रक्त में रहने से कुष्ठ-विसर्पादि विकार, मांस में रहने से मासाहुंदादि विकार, मेद में रहने से ग्रथि वृद्धि आदि विकार, अस्थि में रहने से अधिदन्तादि विकार, मज्जा में रहने से तमोदर्शन-मूर्च्छा आदि विकार और शुक्र में रहने से क्लेश्य शुक्राभरी आदि विकारों को करता है, तथा शीत के समय वायु के समय और दुर्दिन ( मेघाच्छन्न ) के समय शीघ्र ही दूषीविष कोप को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

पूर्वरूपमाह—निद्रां गुरुत्वश्च विजृम्भणश्च विरलेपहर्षावप्य पाऽङ्गमर्दः ।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकाधरोचकं मण्डलकोठजम् ।

मांसस्य पाणिपदादिशौर्यं मूर्च्छा तथा हृदिमयातिसारम् ॥ १ ॥

दुषीविष आसत्तुपाज्वरीक्षं कुर्यात्पृष्टं जठरस्य चापि ॥ २ ॥

दूषी विष के पूर्वरूप—दूषी विष के कोप होने के पूर्व निद्रा, शरीर में गुरुता, अन्मा, शरीर में शिथिलता, रोमाञ्च और अङ्गमर्द होता है और इसके बाद अत्रमद ( रसाजीर्ण ) अविपाक ( अन्न का नहीं पकना ) अरुचि, मण्डलों एवं कोठों की उत्पत्ति, मांस क्षय, हाय, देह और नेत्रों में शोथ, मूर्च्छा, वमन, अतीक्षार तथा र्वास, घृष्णा, उ्वर और उदर की वृद्धि ( दूषोदर ) भी करता है ॥ १-२ ॥

दूषीभेदेन विकारभेदमाह—

अन्माहमन्यङ्गनयेत्तपाऽभ्यधात्माहमन्यत्पयेत् शुक्रम् ।

गान्धमन्यङ्गनयेत्तच्छुष्टं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ १ ॥

गरविष का कार्य—उन रज मलादि मिथित अन्न के भक्षण से पुरुष को पाण्डु, कृशता, मन्दाग्नि तथा शरीर के अन्दर गर विष उत्पन्न हो जाता है, मर्मस्थानों में पीड़ा होती है, आघ्नान होता है, हाथों में शोथ होता है तथा उदररोग, ग्रहणीरोग, यक्ष्मा, गुश्म, क्षय तथा ज्वर हो जाता है तथा इसी प्रकार के अन्यान्य विस्फोटोदादि व्याधियों के लक्षण भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं ॥१॥

दूषीविषस्य निरुक्तिमाह—

दूषित देशकालाद्यद्विवास्वापैरभीषणत्वात् । यस्मारसंदूषयेद्वात्सहमादूषीविष स्मृतम् ॥१॥

दूषी विष की निरुक्ति—शरीरस्थ विष देश काल, अन्न तथा दिवास्वापादि से बारम्बार दूषित होकर पातुओं को दूषित करता है, इसीसे उसे दूषी-विष कहते हैं ॥ १ ॥

दूषीविषस्य साध्यवादिक्रमाह—

साध्यमारमवतः सद्यो चाप्यं संवत्सरोपितम् । दूषीविषमसाध्यं स्यारधीणस्याहितसेविनः ॥

साध्यासाध्यता—पथ्यसेवी एवं बलवान् रोगी का शीघ्र उत्पन्न हुआ नवीन दूषी विष साध्य होता है । इसी प्रकार (पथ्यसेवी) मनुष्य का एक वर्ष का हुआ दूषी विष याप्य होता है और क्षीण मनुष्य का तथा कुपथ्य करनेवाले का दूषी विष असाध्य होता है ॥ १ ॥

कृत्रिम विष द्विविधम्—एकं सविषं दूषीविषसंज्ञम् । अपरमविषं तदेवै गरसंज्ञम् ।

कृत्रिम विष के भेद—कृत्रिम विष दो प्रकार का होता है एक विष से युक्त जिसे दूषी विष कहते हैं और दूसरा विष से रहित जिसे गर कहते हैं ॥

तथा च काश्यपसंहितायाम्—

सयोगज च द्विविध द्वितीयं विषमुच्यते । दूषीविषं तु सविषमविष गर उच्यते ॥ १ ॥

काश्यप संहिता में भी कहा गया है कि दूसरा संयोगज विष दो भेद का होता है एक दूषी विष जो विष से युक्त होता है और दूसरा गर जो विष से रहित होता है ॥ १ ॥

तत्र दूषीविषमभिधाय गर धर्षयितुमाह—

सौभाग्यार्था स्त्रियः स्वैदुरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्वयसमिधितान् ॥

गर विष के लक्षण—अपने सौभाग्य (पति आदि को वध में करने) के लिये स्त्रियां स्वेद, रज तथा नाना अङ्गों के मल को तथा शत्रुओं द्वारा प्रस्तुत किये हुए गर विष की अन्न में मिथित कर दे देती हैं ॥ १ ॥

गरकार्यमाह—सैः स्यारपाण्डुः कृशाश्चपाग्निर्गरश्वास्योपजायते ।

मर्मप्रथमनाभ्मानं हरतयोः शोथसम्मवा ॥ १ ॥

गर विष का कार्य—उन स्वेद, रजादि मिथित अन्न के भक्षण से पुरुष को पाण्डु, कृशता, मन्दाग्नि तथा शरीर के अन्दर गरविष उत्पन्न हो जाता है, मर्मस्थानों में पीड़ा, आघ्नान, हाथों में शोथ हो जाता है ॥ १ ॥

जठरं ग्रहणीरोगो यक्ष्मा गुश्मः श्वो ज्वरः । एष विधस्य चान्यस्य व्याधेरिह च जायते ॥

दूषी विष से और भी उदर रोग, ग्रहणी रोग, यक्ष्मा, गुश्म क्षय तथा ज्वर हो जाता है और इसी प्रकार के अन्यान्य व्याधियां के लक्षण भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

उक्तानां अतृविशेषाणामुत्पत्तिनिरुक्तिसंख्यादि चाह—

यस्मात्सूत्रेण तुण प्राप्ता मुने प्रस्येद्विन्दवः । तेभ्यो जातास्तता लूता हृति स्यातास्तु पौडश ॥

लूता की उत्पत्ति—वशिष्ठ मुनि के प्रसवेद बुँद लून तुण (धेन्वर्थे कटे घास) पर गिरने से एक प्रकार के कौट विशेष की उत्पत्ति हुई इसलिये उसे लूता कहा गया, वह लूता सौलह प्रकार की होती है ॥ १ ॥

अथ सुत—विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिद्विपसत्तम ।

घसिष्ठ कोपयामास गत्वाऽऽधमपद् किल ॥ १ ॥

कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटारस्येदयिन्दवः । अपतन्दर्धानादेव द्वाघस्तात्सीमवर्षसः ॥ ३ ॥

लूने तुणे महर्षेस्तु धन्वर्थे समृतेऽपि च । सतो जातास्त्रियमा घोरा नागारूपा महाविषाः ॥

तासामष्टौ कष्टसाध्या धर्ज्यास्तावरय एव हि ॥ ५ ॥

इस पर सुश्रुत का वचन यह है कि कभी शूष श्रेष्ठ राजर्षि विश्वामित्र जी मुनिवर वशिष्ठ जी

के आश्रम पर जाकर ( बलपूर्वक उनकी कामधेनु को लेने का प्रयत्न कर ) उन्हें दूषित कर दिये उन क्रुद्ध हुए मुनि के ललाट से बड़े वेग से स्वेद की बिन्दुयें नीचे गिरकर महर्षि वसिष्ठ भी जो सृण उस कामधेनु के लिये काटकर रखते थे उसी पर पड़ी और उड़ी स्वेद बिन्दुओं से अनेक प्रकार के मयंफर महाविष युक्त लूता बीट विशेष आदि उत्पन्न हुये उनमें से आठ प्रकार की लूता कष्टसाध्य होती है और शेष आठ प्रकार की असाध्य होती है ॥ २-५ ॥

सत्र त्रिमण्डलाप्रमृत्तयः कष्टसाध्यम् । सौवर्णिकाप्रमृत्तयोऽष्टावसाध्याः ॥

यहां पर त्रिमण्डला आदि ( आठ प्रकार की ) लूता कष्टसाध्य होती है और सौवर्णिका आदि आठ असाध्य होती है ॥

वासो सामान्याना दंशलक्षणमाह—

सामिर्दंष्ट्रे दंशकोय प्रवृत्ति ऋतजस्य च । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च श्वासाः स्युश्च त्रिदोषजा ॥

लूता दंश के सामान्य लक्षण—लूताओं के दंश से दंशस्थान पर क्षोप ( पृथिभाव अर्थात् सड़ने के समान ) होता है तथा क्षतज प्रवृत्ति रक्तादि का क्षाव होता है और ज्वर, दाह, अतीसार एवं त्रिदोषज रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

पिटिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च ।

शोधा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाभ्रालस्तथा ।

सामान्यं सर्वलूतानामेतर्हास्य लक्षणम् ॥ २ ॥

अनेक प्रकार की पिड़िकाएँ होती हैं, बहुत बड़े २ मण्डल होते हैं, महान शोथ जो कोमल, रक्त एवं कृष्ण वर्ण के तथा चरु अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलने वाले होते हैं ॥ २ ॥ )

त्रिमण्डलादयोऽष्टौ दूषीविषास्तासां लक्षणमाह—

श्यामभ्ये तु यत्कृष्ण श्याव वा जालकावृत्तम् । दग्धाक्षति मृश पाकखलेदशोथज्वरान्वितम् ॥

दूषीविषाभिर्लूतामिस्तद्वृत्तमिति निर्दिशेत् ॥ १ ॥

दूषी विष के लक्षण—जिस लूता दंश में दंश स्थान का मध्य भाग, कृष्ण अथवा श्याम वर्ण का हो अथवा आलियों से घिरा हुआ सा हो, अग्नि से जलने के समान हो उस प्रण में अधिक कलेद तथा शोथ हो और शरीर में ज्वर हो तो उसे दूषी विषवाली त्रिमण्डलादि लूताओं का दंश जानना चाहिये ॥ १ ॥

सौवर्णिकादयोऽष्टावसाध्या प्राणहरास्तासां लक्षणमाह—

शोधा श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिटिका ज्वराः ।

प्राणान्तिको भवेद्दाहः श्वासो द्विकका शिरोमहः ॥ १ ॥

असाध्य दूषी विष—जिस लूता दंश स्थान में शोथ हो, श्वेत अथवा श्वेतैरक्त मिश्रित वर्ण की ( गुलाबी ) अथवा श्वेत तथा अतिश्वेत वर्ण की, रक्तवर्ण की अथवा पीतवर्ण की पिड़िकाएँ हों, ज्वर हो, दाह हो, श्वास हो, द्विकका हो और शिरोमह हो उसे प्राणनाशक लूताओं का दंश जानना चाहिये ॥ १ ॥

आसुदूषीविषलक्षणमाह—

आ दंशाच्छोणित पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः । रोमहर्षश्च दाहश्चाभ्यासुदूषीविषादिते ॥

आसु विष के लक्षण—जिस मूत्र के काटते ही दंश स्थान से रक्त का क्षाव होने लगे वर्ण पाण्डु हो आवे, पाण्डुवर्ण के मण्डल उत्पन्न हो जावें, ज्वर हो, अरुचि हो, रोमाह्र हो और दाह हो उसे आसु दूषी विष जानना चाहिये ॥ १ ॥

प्राणहरमूषकविषकार्यमाह—

मूर्च्छाङ्गशोषवैषण्यकलेदश्वत्थाशुषिज्वराः । शिरोगुरुत्वं लालाऽसुबद्धिधासाध्यमूपकात् ॥

प्राणहर मूषक विष—जिस मूत्र के दंश से मूर्च्छा, अज्ञों में शोथ वर्ण वैदृति (वर्ण विवर्णता), कलेद ( वमनेच्छा ) अथवा दंश स्थान पर कलेद ( आर्द्रता ) बधिरता, ज्वर, शिर में गुरुता, लालाक्ष्वा, रक्तक्ष्वा, वमन अथवा रक्त वमन हो उसे असाध्य मूषक विष जानना चाहिये ॥ १ ॥

कृकलासददृश्य लक्षणाह—

काष्प्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च । मोहोऽथ वर्षतो मेदो दृष्टस्य कृकलासकैः ॥१॥

कुकलास ( गिरगिट ) दंष्ट के लक्षण—अब गिरगिट काटता है तो बर्ण कृष्ण, श्याम अथवा अनेक बर्ण का हो जाता है, मोह होता है और मलभेद होता है ॥ १ ॥

वृश्चिकविषस्य लक्षणमाह—

दहत्यग्निरिवाऽऽद्यौ तु भिनत्तीषोर्ध्वमाद्यु च । वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दशोऽवतिष्ठति ॥१॥

वृश्चिक विष के लक्षण—बिच्छू जब बक मारता है तो प्रथम अग्नि से जलने के समान दाह होता है पुनः शीघ्र ही भेदन करता हुआ वा छेदने के समान पीड़ा करता हुआ विष ऊपर को जाता है, पश्चात् दंष्ट स्थान पर ही पीड़ा स्थित हो जाती है ॥ १ ॥

असाध्यवृश्चिकदृष्टस्य लक्षणमाह—

दृष्टोऽसाध्यस्तु गृद्धघ्राणरसनोपहतो नरः । मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनातो अहात्यसूनु ॥ २ ॥

वृश्चिक विष के असाध्य लक्षण—जिस बिच्छू के बक मारे हुए मनुष्य के हृदय, घ्राण और जिह्वा उपहत हो जायें। (ये अपना कार्य सम्पादन करने योग्य न रहें अथवा इन पर आघात हुआ हो) तो ऐसा दंष्ट असाध्य समझना चाहिये तथा जिसका मांस अत्यन्त गिरने लगे एवं वह मनुष्य वेदना से अत्यन्त पीड़ित हो जावे तो वह भी घ्राण को त्याग देता है अर्थात् वह और असाध्य है ॥ २ ॥

कणमददृष्टस्य लक्षणमाह—

विसर्पं श्वयथुः शूलं ज्वररक्षुर्द्विरयापि वा । लक्षणं कणमैर्वृष्टे वृंशश्चैवावशीर्यते ॥ १ ॥

कणम ( कीट विशेष ) के दंष्ट का लक्षण—कणम नामक कीट विशेष के दंष्ट से विसर्प, शोथ, शूल, ज्वर तथा बमन होते हैं और दंष्टस्थान विदीर्ण हो जाता है ॥ १ ॥

उच्चिच्छिदृष्टस्य लक्षणमाह—

दृष्टलोभोच्छिदिज्ञेन स्तब्धलिङ्गो मृशार्तिमान् । दृष्टः क्षीतोद्भकेनैव सिद्धान्यङ्गानि मन्यते ॥१॥

उच्चिच्छिदृष्ट दंष्ट के लक्षण—उच्चिच्छिदृष्ट नामक कीट विशेष ( जिसे वृश्चिक का भेद भी माना जाता है ) के दंष्ट से रोमाञ्च हो जाता है लिंगेन्द्रिय स्तब्ध हो जाती है, अत्यन्त पीडा होती है तथा शूल होता है कि शरीर शीतल जल से सिञ्चित किया गया है ॥ १ ॥

सविषमण्डूकदृष्टस्य लक्षणमाह—

एकदंष्ट्रादित शूनः सरुजः पीतकः सत् । सनिर्गुरक्षुर्दिमान्दृष्टो मण्डूकैः सविषैर्भवेत् ॥१॥

मण्डूक विष के लक्षण—विषवाले मण्डूक के काटने से मनुष्य एक दाह पीड़ित होता है, शरीर में शोथ, पीड़ा तथा शरीर का बर्ण पीत हो जाता है और उसे एषा, नीन्द तथा बमन होता है ॥ १ ॥

मत्स्यविषस्य कार्यमाह—

मत्स्यास्तु सविषा कुर्बुवाह शोथं ज्वर तथा ॥ १ ॥

मत्स्य विष के लक्षण—विषयुक्त मछलियों के दंष्ट से दाह, शोथ और ज्वर होते हैं ॥ १ ॥

जलौकाविषकार्यमाह—

कण्डू शोथं ज्वर कुर्यः सविषास्तु जलौकसः ॥ १ ॥

जलौका विष के लक्षण—विषयुक्त जलौका ( जोक ) के शरीर में लगने से कण्डू, शोथ और ज्वर होते हैं ॥ १ ॥

गृहगोषिकाविषकार्यमाह—

विदाहं श्वयथु तोषुं स्वेदं च गृहगोषिका ॥ १ ॥

गृहगोषिका विष के लक्षण—क्षिपकिली के दंष्ट से दाह, शोथ, तोष और स्वेद ( पसीना ) होता है ॥ १ ॥

शतपदीविषलक्षणमाह—

धसो स्वेदं रुजां पाह कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ १ ॥

शतपदी विष के लक्षण—शतपदी ( कान खजूर ) के काटने से दंष्ट स्थान में स्वेद पीड़ा और जलन होती है ॥ १ ॥

मशकविषलक्षणमाह—कण्डूमान्मशकैरीषच्छोयः स्यान्म दवेदना ॥ १ ॥

मशक विष के लक्षण—मशक दंष्ट से कण्डू, किञ्चित् शोथ और मन्द पीड़ा होती है ॥ १ ॥

दशोपरि नियन्नीयात्तत्तणाघतुरङ्गुलम् । चौमादिभिवेणिकया । सिद्धैर्मन्त्रैश्च मन्त्रयेत् ॥१॥

अम्बुयस्तेतुय धेन स्तन्यवे विषम विषम् ।

बचन—दंश स्थान से चार अङ्गुल ऊपर शीघ्र ही रेशम आदि के सूत्रों ( जिस किसी ) से बूट बचन कर देना चाहिये तथा सिद्ध मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये । बचन स नित प्रकार बाँप बाँपने से जल अवशुद्ध हो जाता है उसी प्रकार विष भी अवशुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

नक्तमालफलम्योपविष्यमूलनिशाङ्गयम् ॥ ७ ॥

सौरसं पुष्पमार्जं वा मूत्र घोचनमञ्जनम् ।

नक्तमालादि अञ्जन—बड़े करंड के फल, सोंठ, मरिच, पीपल, विरबृष्ट की मूल, हल्दी और दारुहलदी को समान भाग लेकर शिरीष के पुष्प ( अथवा गुलती भी मञ्जरी ) के स्वरस के साथ पीसकर अथवा बकरी के मूत्र के साथ पीसकर अथवा इनके चूर्ण को इस स्वरस वा मूत्र के साथ घोटकर विधिपूर्वक अञ्जन बनाकर लगाने से सर्पदंश से मूर्च्छित को चैतना होगी है ॥ ७ ॥

वन्ध्याककौटकीमूलं क्षानामूर्ध्रेण भावितम् ॥ ८ ॥

नस्यं काञ्जिकसपिष्टं विषोपहृतचैतसः ।

वन्ध्याककौट की नस्य—बाँझककोठे की जड़ को बकरी के मूत्र में भावित कर काजी के साथ पीसकर नस्य देने से विष से मूर्च्छित व्यक्ति चैतन्य को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

श्वेतामूलं शमीमूलमीशरीमूलमेघ च ॥ ९ ॥

भावालिका तथा पाठा पृथग्दृष्टकाधवाः ।

श्वेतादि नस्य—श्वेता (श्वेत पुनर्नवा) अथवा कण्टक शिरीष वा शमी वृक्ष, सर्पगंधा, देवदासी अथवा बाँझककोठे की जड़ तथा पाठा (पुरानपाठी) की जड़ में पृथक् ९ किसी एक का विधिपूर्वक नस्य ( चूर्ण ) बनाकर देना सर्पदंश वाले के लिये रितकर होता है ॥ ९ ॥

कुलीकमूलनस्येन कालद्वोऽपि जीवति ॥ १० ॥

कुलीक ( कण्टकपाली अथवा पटोल ) की जड़ के चूर्ण का नस्य बनाकर देने से यदि काल के समान भी सर्प बैसा हो तो वह जीवित हो जाता है ॥ १० ॥

छलेन छाङ्गलीकन्यं नस्यं सर्पविषापहम् ।

छाङ्गलीनस्य—कलिहारी के मूल को जल के साथ पीसकर नस्य देने से सर्पविष नष्ट होता है । चारिणा दृष्टुण पीतमयवाऽर्कस्य मूलकम् ॥ ११ ॥

टंकणाकं मूत्रयोग—शुद्ध सोहागे को अथवा भाक की जड़ को जल के साथ पीसकर पान करने से सर्प विष नष्ट होता है ॥ ११ ॥

धूप—कपोतविष्मस्य शिरोरुहाणि सगोविषाण शिखिपिच्छुकाग्रम् ।

ययस्य धान्यस्य तुपाश्च धीज कार्पासज घाऽप्युपिताश्च माला ॥ १ ॥

इत्यौषधीभिः परिकल्पितोत्तमो धूपोऽगदः स्यादमुञ्जौरमुक्ते ।

शुद्धे विधेयं कुशलेरनेन भक्षयन्ति सर्पाश्च घयाऽऽक्षयश्च ॥ २ ॥

धूप प्रयोग—कपोत की विद्या, मनुष्य के शिर के बाल, गौ की सींग, मोरपस का अग्रभाग जो तथा धान की भूसी, कपास के बीज, पशुपित्त ( बासी ) माला इन सब के योग से निर्मित यह छत्रम अगद धूप सर्पों से मुक्त कर देता है अर्थात् इस धूप के देने से सर्प नहीं रहते । इतिमान् इस धूप को घर में देने से इससे सर्प तथा मूमक दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

सायलाफलफेनेनाञ्जनं कृत्या सपविष नश्यति ।

सातला फेनाञ्जन—पीतदुग्ध वाली शूहर के फल के फेन का अघन करने से सर्प विष नष्ट होता है ॥

अथ मन्त्र—ॐ प्लः सर्पकुलाय स्वाहा, अनेन मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्रितां मृत्तिकां गृह

मथ्ये क्षिपेरसर्पाः पलायन्ते ॥ ३ ॥

मन्त्र—ॐ प्लः सर्पकुलाय स्वाहा' इस मन्त्र से, मिट्टी के डेले की सात बार अभिमन्त्रित कर

घर में डाल देने से सर्प भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

कालवज्राशनरस —

गरुद गन्धकं सुतथं टङ्गुण रजनीसमम् । देवदायया त्रैवैमर्षं दिनं शुष्कं तु मधयेत् ॥ १ ॥  
 कालवज्राशननिर्नाम रस सर्वविपापहः । भरमूत्र पिपेघानु कालवद्वेदोऽपि जीवति ॥ २ ॥

कालवज्राशन रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध तृविधा, शुद्ध टङ्गुण तथा हलदी को समभाग लेकर देवदाली के स्वरस में एक दिन भर मर्दन कर घुसाकर भक्षण करावे (प्रथम पारद गन्धक को कज्जली कर अन्य औषधियों को मिलाकर घोटकर तब देवदाली स्वरस में मर्दन करना चाहिये) यह कालवज्राशनि नामका रस सभी प्रकार के विषों को नष्ट करता है। यदि मनुष्य के मूत्र के अनुपान से दिया जावे तो कालरूप सर्प भी डँसा हो तो भी मनुष्य जीवित ही जाता है ॥ १-२ ॥

दुषीविषचिकित्सा—

दूषीविपातं सुस्निग्धमूर्ध्वं चाऽध्वक्ष शोधितम् । पाययेद्गदं मुषयमिदं दूषीविपापहम् ॥ १ ॥

दूषी विष चिकित्सा—दूषी विष से पीड़ित रोगी को भलोमति स्नेहन औषधि लेकर धमन रीचन करावे पश्चात् आगे कहे हुए दूषीविषनाशक मुख्य अंगद को पिलावे ॥ १ ॥

प्लेष्टी धान्यक मांसी लोभ्रमेला सुवर्चिका । मरिच बालकं चैला तथा कनकतैरिकम् ॥

चौद्रयुक्तं कपायोऽयं दुषीविषमपोहति ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि गण—पीपल, धनियाँ, जटामांसी, लोभ, इलायची, सज्जीखार, मरिच, घुग्घु गला, इलायची और सुनहरी गेरु को समान भाग लेकर काप करके मधु का प्रथेप देकर पान करने से दूषीविष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

कृत्रिमविषचिकित्सा—

कृत्रिमं तु विषं कथातं पञ्चान्मासाद्विबाधते । आलस्यं क्रुते जाड्य कासश्वासौ यल्लस्यम् ॥

रक्तक्षयो ज्वरः शोफः पीतचक्षुश्च लक्षयेत् । -

कृत्रिम विष—कृत्रिम विष का प्रयोग एक पक्ष अथवा एक मास के पश्चात् पीड़ित करता है। इससे शरीर में आलस्य, लड़ता, कास, खास, बल का नाश, रक्तक्षय, शोष तथा नेत्र पीतवर्ण के लक्षण देते हैं ॥ १ ॥

शर्कराचूर्णसंयुक्तं पूर्णं साप्यसुवर्णयोः ॥ २ ॥

छेहः प्रशामयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम् ।

शर्करा सुवर्णादि छेह—सुवर्ण माशिक भस्म तथा सुवर्ण भस्म के शर्करा (चीनी अथवा भित्री) के चूर्ण के साथ छेह बनाकर सेवन करने से अत्यन्त उग्र तथा अनेक योगों द्वारा निर्मित कृत्रिम विष भी शमन हो जाता है (मात्रा अग्निबलासनार देनी चाहिये) ॥ २ ॥

पुत्रजीवरय मज्जा च निष्कमात्रां शर्वां पयैः ॥ ३ ॥

पिष्टा चोम्र शर्वा हन्याश्चानायोगकृतं विषम् ।

पुत्र जीवमज्जा योग—पुत्रजीवक (मियापोता) के फल की मज्जा एक निष्क के प्रमाण से लेकर गोदुग्ध के साथ पीसकर पान कराने से अनेक योगों द्वारा निर्मित उग्र कृत्रिम विष भी नष्ट ही जाता है ॥ ३ ॥

गृहधूमं क्लृष्टं पिष्ट्वा सण्डुलीमूलद्वयकम् ॥ ४ ॥

शकाशतुर्गुणं चाऽऽज्य घृतात्पीरं चतुर्गुणम् । घृतशेषं पचेत्सर्वं विघ्नेस्सर्वंगरापहम् ॥ ५ ॥

गृहधूमादि घृत—गृहधूम (रसोई घर का झाला) लेकर जल के साथ पीसकर जितना उसके समान चौराई (शाक) की बड़ लेकर विधिपूर्वक कल्क करके कल्क के चतुर्गुण गोघृण या घृत के चतुर्गुण गोदुग्ध लेकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करके घृत १२ शेष रहने पर उस घृत को पान करावे तो इससे सब प्रकार के गर (कृत्रिम विष) नष्ट ही हैं ॥ ४-५ ॥

रावतामिपसटीपुष्कराद्दधुर्त्तं हिमम् । गरवृष्णाक्षजाकासश्वासहिष्माज्वरापहम् ॥ ६ ॥

पारावलादि हिम—कपोल का मांस, कचूर और पुष्करमूल को समान भाग लेकर बौटाकर विधिपूर्वक हिम बनाकर पिलाने से गर (कृत्रिम विष) एवं तरसम्भी घृष्णा, पीडा, कास, खास का तथा ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

गरनाशनरस —

शुद्धसूत मृत्यु स्वर्णं सशुद्ध हेम माषिकम् । श्रयाणां गन्धकं तुल्यं मर्चात्कन्याद्वैर्दिनम् ॥ १ ॥  
 तच्छुष्कं ससितस्यौद्र माषिकं लेहयेत्सदा । घट्टिमूलं मृत्यु सौरैरनु स्वाद्वरनाशनम् ॥ २ ॥

गर नाशन रस—शुद्ध पारद, स्वर्णमरम तथा शुद्ध स्वर्ण माषिक वा भरम की समान भाग लेवे तथा चीनों मिलकर जितना हो उसके समान शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद-गन्धक को कज्जली कर अन्य भरमों को मिलाकर मर्दन कर धन कुमारी के स्वरस में दिन भर (आध पहर) मर्दन करे। अब घट्ट जावे तब उसमें से एक माशा के प्रमाण से लेकर छकौं तथा मा मिलाकर चाटकर चित्रकमूल को दूध में पकाकर उस दूध का अनुपान करावे तो कृत्रिम शि नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

नखदन्तविषचिकित्सा—

पित्तुमन्दशमीवटककक्युतं कथितं जलमाद्यु विलोहनात् ।

नखदन्तविषाणि निहन्ति नृणां विषमाण्यखिलाण्यपि सरयमिदम् ॥ १ ॥

नखदन्त विष चिकित्सा—नीम, शमी, तथा वटकी लवचा को समान भाग लेकर कल्ल कर उस कक से काय बनाकर उस काय को नखदन्त से क्षत स्थान पर गिराने (घोने) से शीघ्र ही सभी प्रकार के नखदन्त के विष निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

आसुविषचिकित्सा—

अगारधूममल्लिहारजनीलघणोत्तमैः । लेपो जयत्यासुविषं कोशातक्यय वा सित्ता ॥ १ ॥

शुद्धधूमादि योग—शुद्धधूम, मजीठ, इल्दी तथा सैधानमक को समान भाग लेकर पीसकर लेप लगाने से मूत्र के विष को नष्ट करता है अथवा कजुरे तरोरे को पीसकर लेप लगाने से वा श्वेत शर्करा का लेप लगाने से मूत्र का विष नष्ट होता है ॥ २ ॥

उरणेण विनिर्मुक्तनिर्मोकधूमसेवनात् । पय्याशी त्रिविधं धूमो भवेदासुविषापहः ॥ २ ॥

सर्पनिर्मोक धूम—सर्प के शरीर से निकला हुआ केंजुल लेकर अग्नि पर देकर उसका सेवन करने से तथा पय्य भोजन कराने से तीन दिन में आसुविष नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

कुष्ठ वचामदनकोशावलीफलेभ सयोजितं तदिति पूर्णमिदं यतुर्णम् ।

गोमूत्रपीतमखिलासुविषं निहन्ति कोशातकीकथनमापियतोऽथ वापि ॥ ३ ॥

कुष्ठादि धूम—कुष्ठ, वच, मैनफल तथा देवनाली के फल को समान भाग लेकर पूर्ण गोमूत्र के अनुपान से पान करने से सब प्रकार के आसु विष नष्ट होता है, अथवा कजुरे तां के काय को पान करने से सभी प्रकार के आसु विष नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

शुलसीरसेन गोदन्तशिलाभ्यां क्षुरेण प्रच्छिद्य लेपे कार्या विष नश्यति ॥ ४ ॥

शुलसी रस प्रयोग—शुलसी के रस के साथ गौ का दाँत तथा मैनशिल पीसकर मूत्रे दंश स्थान को छुरे से छींचकर उस पर रसका लेप लगा देना चाहिये। इससे आसु विष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथवा चित्रकमूलपूर्ण तैले विषाध्य मरतके क्षुरेण प्रच्छिद्य पित्तसि मक्षरभ्रं मर्दं कृत्वाऽऽसुविषं नश्यति ॥ ५ ॥

चित्रक तैल—चित्रकमूल के पूर्ण द्वारा विधिपूर्वक तैल तिरकर मरतक में छुरे से छींचकर पित्त पर के मक्षरभ्र पर रस तैल का मर्दन करने से आसुविष नष्ट होता है ॥ ५ ॥

चिञ्चाफलसमायुक्तं शुद्धधूमं पलायकम् । पुराणाग्नेन सप्ताहं लिहेदासुविषं क्षुरेण ॥ १ ॥

चिञ्चाफलादि योग—हमली के फल का धूम तथा शुद्धधूम दोनों आधा एक लेकर पुराने ढं के अनुपान से एक सप्ताह तक चाटने से आसुविष नष्ट होता है ॥ २ ॥

रसा—

रसं गन्धं विषं चैव श्यूषणं दृष्टरोहिणी । पुनर्नवारसैर्मर्धं गोमूत्रे च क्षिप्रुत्तकम् ॥ १ ॥

विषेदासुविषाणां रसं क्षुरेण लिह्यम् । विषवद्वेदकपानन्याग्नेयादासुविषान्तकः ॥ २ ॥

आसुविषान्तक रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक शुद्ध मीठा विष, सोठ, मरिच, पीपल इत्यादि द्रव्यों को समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक को कज्जली कर अन्य द्रव्यों को

मिलाकर मर्दन कर गोमूत्र के अनुपान से दो गुणा प्रमाण की मात्रा से पान करने से आसुविष पीड़ितों के सब प्रकार का विष नष्ट होता है तथा विपद्दंश से उत्पन्न हुए अन्यान्य विकारों को भी यह नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

रसगन्धनिशाथ धुगुहधूमशिरीषजम् । धीजं दिनकरदीरैर्मद्विरवा विलेपयेत् ।

विशेषान्मूपकविष हन्यादन्वान्विपोऽज्ञपात्र ॥ ३ ॥

अन्य योग--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, हल्दी, पीतशाल, गृहधूम और शिरीष का बीज प्रत्येक समान भाग लेकर पारद गन्धक को कज्जली कर फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर आक के दूध में मर्दन कर लेप करने से विशेष कर मूसे के विष तथा अन्यान्य विष जनित दोषों को भी नष्ट करता है ॥ ३ ॥

वृश्चिकविषचिकित्सा—

शीरकस्य कृताः कश्चो घृतसैन्धवसंयुताः । सुशोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विष हरेत् ॥ १ ॥

शीरकादि लेप—शीरे का कल्क बनाकर उसमें घृत तथा सैन्धवमक मिलाकर तथा मधु मिलाकर किञ्चित् उष्णकर लेप करने से वृश्चिक का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

धमाप्राय मृदितं सूर्यायतंवलस्य तु । वृश्चिकेन नरो विद्धः पणान्नवति निर्विषः ॥ २ ॥

धर्मावर्त्त पत्र गन्ध—धर्मावर्त्त ( धर्मशुली ) के पत्तों को मर्दन कर उसके गन्ध को रंधने से चूड़ के ढक से पीड़ित मनुष्य क्षण भर में निर्विष हो जाता है ॥ २ ॥

यः कासमदपत्रं घटने तिथिष्य कर्णफूलकारम् ।

मनुजो ददाति शीघ्रजमति हि विषमाद्य वृश्चिकानां स ॥ १ ॥

कास मर्द पत्र प्रयोग—कसौजर के पत्तों को मुख में चबाकर विच्छू काटे हुए मनुष्य के कान फूंक देने से विच्छू का विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

जाधीरेण सपिष्टा शिरीषफलमिध्रिता । उपकुक्ष्यां विषं हन्ति वृश्चिकस्य प्रलेपतः ॥ १ ॥

जवाडीरादि योग—शिरीष फल तथा पीपल समान भाग लेकर बकरी के दूध में पीसकर प करने से विच्छू का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

कार्पासपत्रैः संपिष्टैराज्यलेपो विपापहः । वृश्चिकस्याथ वा वासनागलेपः प्रशस्यते ॥ २ ॥

कार्पास पत्रादि योग—कर्पास के पत्तों को घृत के साथ पीसकर लेप करने से विच्छू का विष नष्ट होता है अथवा वासनाग लेप विष को जल के साथ पीसकर लेप करने से विच्छू के विष में नष्ट होता है ॥ २ ॥

मनशिलाकुष्ठकरजवीजशिरीषकारमीरमयैः समौषैः ।

विनिर्मिताऽऽस्वे विष्टवा च लिप्ता संहारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥ ३ ॥

मन शिलादि गुटिका—शुद्ध मेनशिल कूठ, करज के बीज, शिरीष के बीज और गम्मार के रस को समान भाग लेकर कूट पीसकर विषिपूर्वक बटी बनाकर मुख में धारण करने से तथा श श्वान पर लेप करने से विच्छू का विष नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलं तु रविवारे समुद्धरेत् । उत्तरामिमुञ्जेनैव हीम-प्रोष्णारगात्पृषोत् ॥ ४ ॥

मातुलुङ्ग दधिणे दष्टे धामवष्टे च दधिणे । सप्तधा मार्जमनैव विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ५ ॥

मातुलुङ्ग मूल प्रयोग—विजौर नीरू के मूल को रविवार को सस्ताड़ केवे तथा उत्तर दिशा में धरकरके वृश्चिक दंश वाले मनुष्य को 'ओं ही' इस मन्त्र को उच्चारण करता हुआ स्पर्श करे । यदि दाहिने अंग में विच्छू मारा हो तो बायाँ अंग स्पर्श करे तथा यदि बायें अंग में विच्छू मारा हो तो दाहिने अंग का स्पर्श करे । इस प्रकार सात बार स्पर्श करने से ही विच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

प्लेतं पुनर्नवामूलं रविवारे समुद्धरेत् । कार्पासमूलं चविष्टा विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ६ ॥

श्वेत पुनर्नवा योग—रविवार को कपास के मूल को चबाकर श्वेत पुनर्नवा के मूल को उखाड़े से विच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

मातं हंसपदीमूलं प्रातरादित्यवासरे । सुखैरतस्मिन्कृतिः कर्णे विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ७ ॥

हंसपदी मूल योग—रविवार को प्रातः काल हंसपदी ( हंसराज ) के मूल को लेकर मुख में



भवाकर उसके रस को विच्छू मारे हुए मनुष्य के कान में डाले तो विच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥

मन्त्रविधि — ओं ह्रः फट् स्वाहा । अनेन मन्त्रेणापो मार्जयेत् ।

‘ओं ह्रः फट् स्वाहा’ रस मंत्र से जल को छिद्रिकने से विच्छू का विष नष्ट होया है ।

मन्त्र —

आदित्यरयवेगेन विष्णुपाणवलेन च । गददपचनिपातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥ १ ॥

‘आदित्यादि’ रस मंत्र को पढ़कर जल का छोटा टुकड़ा देने से अथवा इससे अभिमंत्रित जल का छोटा टुकड़ा देने से विच्छू का विष नष्ट होता है । मन्त्रार्थ—सूर्य के रथ के वेग के समान वेग से, विष्णु के पाण के बल से तथा गदद के पंख की तीव्रता के समान तीव्रता से हे महाविष ! तू भूमि में चला जा ॥ १ ॥

पानीयपिष्टजेपालककलेपेन सर्वथा । विषं वृश्चिकविद्वस्य भस्मीभवति तरुणात् ॥ २ ॥

जेपाल प्रयोग—जमालगोटे के बीज को जल के साथ पीसकर ककक बनाकर लेप करने से विच्छू के डंक का विष उसी समय नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

नवसागरहरिताले पिष्टे तोयेन लेपनाद्गते ।

तरुणमेव हि जपतो वृश्चिकविद्वस्य दुर्धरस्वेदम् ॥ ३ ॥

नवसागरादि लेप—नौसागर तथा हरताल को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लेप करने से उसी क्षण विच्छू के दंश की भयंकर पीड़ा नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

उल्लीपापाणमादायनिम्बुनीरेण संयुतम् । दंशास्थाने लेपनं स्याद्विष वृश्चिकज हरेत् ॥ ४ ॥

उल्लीपापाण लेप—संखिया विष की नींबू के स्वरस के साथ पीसकर लेप करने से विच्छू से उत्पन्न विष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कीटजलौकादिविषचिकित्सा—

कटम्यर्जुनशैरीषशोलुधीरिद्रुमत्वचाम् । कपायककचूर्णाः स्युः कीटलूताम्रणापहाः ॥ १ ॥

कीट जलौकादि विष चिकित्सा—मालकांगनी, अर्जुन, शिरीष, लसोडा और क्षीरी वृक्षों की त्वचा प्रत्येक समान भाग लेकर इनका विधिपूर्वक काथ अथवा ककक कर अथवा चूर्ण करके प्रयोग करने से कीट एवं छत्ता आदि से उत्पन्न मर्णों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

घघाहिद्गुविद्वह्नानि सैन्धव गजपिप्पली । पाठा प्रतिविषा व्योषं करवपेन विनिर्मितम् ॥ २ ॥

वृदाग्नभगवं पीत्वा सर्वकीटविष जयेत् ।

दशाङ्ग भगद—बच, हींग छूद, पायविडग, सेंधानमक, गजपीपल, पुररनपाड़ी, अठीस, सोंठ, मरिच और पीपल को समान लेकर पीसकर पीने से सब प्रकार के कीट विष नष्ट होता है । यह योग कदयप जी का बनाया हुआ है ॥ २ ॥

कीटद्वष्टक्रियाः सर्वाः समाना ह्युल्लौकसाम् ॥ ३ ॥

जलौका विष चिकित्सा—कीट दंश की चिकित्सा के समान ही जलौका दंश की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

वरटीविषचिकित्सा—

मरीचं नागतोपेतं सिन्धुसौवर्षलान्वितम् । फणियस्लीरसैलेपादन्ति सहरटीविषम् ॥ १ ॥

वरटी विष चिकित्सा—मरिच, सोंठ, सेंधानमक और सौवर्षल ममक को समान भाग लेकर पान के स्वरस के साथ पीसकर अथवा इनका चूर्ण कर पान के स्वरस के साथ पीसकर लेप करने से वरटी के विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

छत्ताविषचिकित्सा—

रजनीद्वयमजिष्ठापतङ्गाजकेसरैः । दीप्ताम्बुपिष्टैरालेपः स्रष्टो छत्ताविषापहः ॥ १ ॥

छत्ताविष चिकित्सा—हल्दी, दारुहल्दी, मभीठ, पडुमकाठ और नागकेसर को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर लेप करने से शीघ्र छत्ताविष नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

गिरिकर्णाह्वं शोष्ठः पाटला द्वे पुनर्नये । कपित्थश्च शिरीषश्च लेपो छत्ताविषापहः ॥ २ ॥

गिरिकर्णा आदि लेप—श्वेत, कृष्ण दोनों अपराभिजा ( वृषक १ ) लसोडा पाटल की छात्र, रक्त श्वेत दोनों पुनर्नवा ( वृषक २ ) कैंप तथा शिरीष को त्वचा को लेकर जल के साथ पीसकर लेप करने से छत्ताविष नष्ट होता है ॥ २ ॥

मण्डूकविषचिकित्सा—

शिरीषबीजैः कुलिशद्रुमस्य चरेण पिष्टः कृतछेपनानाम् ।

विषं विनाशप्रजतिं चणोम मण्डूकवृक्षप्रभय नराणाम् ॥ १ ॥

मण्डूक विष चिकित्सा—शिरीस के बीज को यूहर के दूध के साथ पीसकर छेप करने से मण्डूक के दंश से उत्पन्न विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

शृङ्गीमरस्यविषचिकित्सा—

कृष्णयेग्रस्य निष्ठाये कण्ठको घृतविमिश्रितः । शृङ्गीमरस्यविषं हन्ति धूमो वा पर्हिपञ्चजः ॥

शृङ्गी मरस्य विष चिकित्सा—कृष्ण वेत के काय अथवा करक को घृत का प्रक्षेप देकर पान करने से शृङ्गी मरस्य का विष नष्ट होता है । अथवा मोर के पंख का धूम देने से भी शृङ्गी मरस्य का विष नष्ट होता है ॥ २ ॥

शतपदीविषचिकित्सा—

छेपः प्रदीपतैलस्य एजूरविषनाशनः । हरिद्राहृषलेपो वा सगैरिकमनःशिल ॥ १ ॥

शतपदी विष चिकित्सा—जो दीपक कढ़वे तेल से नित्य जलता है उसमें से कुछ जल कर बचे हुए तेल का छेप करने से खजूरे ( विच्छू एवं कानखजूरे ) का विष नष्ट होता है अथवा इलदी, दासइलदी, गेरू और मैनशिल को समान भाग लेकर जल से पीसकर छेप करने से भी खजूरे का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

भ्रमरविषचिकित्सा—

मागर शृङ्खपोत्तपुरीषं बीजपूरकरसो हरितालम् ।

सैन्धवं च विनिहन्ति विछेपादाद्य शृङ्खजनितं विषमेतत् ॥ १ ॥

भ्रमर विष चिकित्सा—सोंठ, कपोत की विष्टा, बिबोरे नीबू का रस, इरताल और सेंधानमक को समान भाग लेकर छेप बनाकर छेप करने से भौरे के काटने से उत्पन्न विष को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

पिपीलिकादिविषचिकित्सा—

पिपीलिकाभिर्दृष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा । गोमूत्रेण घृशाछेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृताः ॥ १ ॥

पिपीलिकादि विष चिकित्सा—घोटी मक्षिका तथा मशक आदि के दंश होने पर आमला, इरद, बदेका तथा कृष्णवर्ण के बश्मीक की मिट्टी को समान भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर छेप करने से इन सबों के विष को नष्ट करता है ॥ १ ॥

मक्षिकापिटिकाविषचिकित्सा—

सोमवक्त्रोऽश्वकर्णश्च गोमिह्ना हसपद्यपि । रजन्यौ गैरिकं छेपो मक्षिकापिटिकापहः ॥ १ ॥

मक्षिका पिटिका विष चिकित्सा—श्वेत खदिर, राल, गोमिह्ना, हंसराज, इलदी, दासइलदी, तथा गेरू को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर छेप लगाने से मक्खियों के काटने से उत्पन्न दुर्ग पिदिकायें नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

श्वानविषचिकित्सा—

काकोदुम्बरिकामूलं कण्ठफलसयुतम् । पीस्य तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ १ ॥

श्वान विष चिकित्सा—कठगूर की छड़ तथा घट्टे के फल को चावल के धोवन के साथ पीसकर पान करने से कुकुर का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

पारस्करफलं सेष्यं क्रमबद्धं दिने दिने । सारमेयविषं हन्ति मासेन महि सशयः ॥ २ ॥

पारस्कर फल छेप—कुचला के फल को शुद्ध करके शृद्धिक्रम से ( प्रतिदिन मात्रा बढ़ाकर ) सेवन करने से एक मास में कुकुर का विष अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

पिष्ट्वाऽऽपामार्गमूलं च कर्षकं मधुना लिह्येत् । श्वप्पूज विषं हन्यात्कुमारोदलसैन्धवम् ॥ ३ ॥

। दशस्थाने घन्धयेषु त्रिदिनान्ते सुखावहम् ॥ ४ ॥

अपामार्गमूल एवं कुमारी पत्रयोग—अपामार्ग की जड़ को पीसकर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से, मधु के साथ मिलाकर चाटने से कुकुर दंश से उत्पन्न विष नष्ट होता है तथा कुमारी के पत्रों में सेंधानमक का चूर्ण भर कर दंश स्थान पर बाँधने से विष नष्ट हो जाता है ॥ १-४ ॥

कस्वरीवम्बुलपत्ररसो गोघृतेन पाने वैयः शुनो विषं नश्यति ॥

कस्तूरी आदि योग—कस्तूरी तथा बद्ध के पत्ते का स्वरस घृत में मिलाकर पान करने से कुक्कुर का विष नष्ट होता है ॥

अथवा शतावरीमूँकरसो गोदुग्धेन सह पाने देयः शुनो विष मरयति ॥

शतावरीदि रस—अथवा शतावरी के मूल का रस गोदुग्ध के साथ पान करने से कुक्कुर का विष नष्ट होता है ॥

श्वानसूत्राविषं हन्ति छेपास्कुक्कुटविष्टया ।

कुक्कुट विष्टादि छेप—कुक्कुट के विष्टा का छेप करने से श्वानदश विष नष्ट होता है ।

गुडतैलाकंदुग्धं वा छेपास्त्वनविषं हरेत् ॥ ५ ॥

शुद्ध तैलादि योग—पुराना गुड़, तैल तथा आक के दूध को समान लेकर मिलाकर छेप करने से श्वान का विष नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रोगोन्मादितश्चानविषाचिकित्सा—

॥ तैल तिलानां पल्ल शुद्धं च शीरं तथाऽऽकं सममेव पीतम् ।

आलर्कमुत्रं विषमाद्य हन्ति सद्योभय वायुरिवाभ्रहृन्वम् ॥ १ ॥

रोगोन्मादितश्चानविषाचिकित्सा—तिल का तैल, तिल का कर्क, पुराना गुड़ तथा आक के दूध को समान भाग लेकर पान करने से कुक्कुर का सद्योभय कम विष शीघ्र रस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार वायु के वेग से मेघ समूह नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ सामान्यधिषचिकित्सा ।

सैन्धव मरिच सुख्यं निम्बधीर्जं समीकृतम् । मधुसर्पियुतं हन्ति विषं स्यावरज्ज्वमम् ॥ १ ॥

सैन्धवादि योग—सैन्धानमक तथा मरिच समान भाग और उसके समान नीम का बीज लेकर सबको एकत्र पीसकर मधु तथा गोघृत के अनुपात से सेवन करने से स्यावर तथा ज्वरम दोनों विषको नष्ट करता है ॥ १ ॥

आगारधूमो महिषाचयुक्तः सवागिगन्धानततप्पुह्लीयः ।

गोमूत्रपिष्टोऽप्यगदो निहन्ति विषाणि च स्यावरज्ज्वमानि ॥ २ ॥

आगार धूमोदि योग—शुद्धधूम, महिषाद्युग्गुल, असगच, तगर और शौरारै (आक) को समान भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर सेवन करने से स्यावर तथा ज्वरम विष नष्ट होता है ॥

मयूरपिच्छेन च सपुह्लीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिषेदनपम् ।

विषाणि च स्यावरज्ज्वमानि सोपद्रवाप्यप्यधिरेण हन्ति ॥ ३ ॥

मयूरपिच्छादि योग—भोर के पल, शौरारै आक और महानीम्ब (बकान्ब) के फल को समान लेकर पीसकर जल के साथ प्रचुर मात्रा में पान करने से उपद्रव सहित भी स्यावर तथा ज्वरम विष शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

प्राचेतसं धूर्णम्—ससप्तपर्णाकुटजासतिम्भादग्दामयोदीरनवानि त्वाप्यम् ।

रोध विद्वप्याक्षवमं नवाङ्गं प्राचेतसं धूर्णमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

छोहेऽप्य हेमे स्वयं राजवे वा स्थितं सया सद्यनि भूपरीनाम् ।

शौर्ध्वेण लीढं सधराचराणि विषाणि हन्याद्भुवि मानवानाम् ॥ २ ॥

प्राचेतसं धूर्णम्—धितवन कुरैया तथा जीम को स्वया, आगरमोषा, फूट, खस, तगर, स्वर्ण माक्षिक मरम, तथा लोप को समान लेकर विषिबद्ध धूर्णकरे । इस नी ओषधियों के योग से प्रस्तुत नवाङ्ग धूर्ण प्राचेतस धूर्ण कहा जाता है । इस धूर्ण को छोटा, सोना भबवा चंदी के पात्र में भूपति लोग सदा अपने मनबनों में रखते हैं । इस धूर्ण को मधु के साथ पीने से संसार के स्यावर तथा ज्वरम समस्त विष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

रहेष्मात्करयकचवकं शुद्धं चैव नृपमुत्तमवृहतीहृद्यं च ।

पपोऽगदा सचविषाणि हन्याशास्तीकगाम्ना मुनिना प्रविष्टा ॥ ३ ॥

रहेष्मात्करयकचवकं—लितीके की त्वचा नरद्विकनी अथवा अणामार्ग मूल, शुक्च, अमरकठास घृष्ट की त्वचा छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान भाग लेकर विषिपूर्वक धूर्ण बनाकर सेवन करने से यह अगद सम्पूर्ण (स्यावर तथा ज्वरम) विषको नष्ट करता है । इन योग की आस्तीक मुनि ने निमित्त किया था ॥ ३ ॥

शृङ्खलासपद् यस्तु सितयज्ञेण घेष्टयेत् । बाहौ यद्भ्या विप हति विपं मुक्त्वा न पाधते ॥

शृङ्खलासपद् बन्धन—गिरगिट के पैर को श्वेत वस्त्र में लपेट कर बाहों में बांधने से सब प्रकार के विप नष्ट होते हैं तथा इसके प्रभाव से खाया हुआ विप भी बाधा नहीं पहुंचा सकता है ॥

याः पिबति पुण्यद्विसे चलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम् ।

तरसनिधौ न वर्षं पृथिकमुजगाः प्रसर्पन्ति ॥ ५ ॥

शुद्धिकायसारण—पुण्य नक्षत्र में श्वेत पुनर्नवा के मूल को जल के साथ पीसकर पीने से एक वर्ष तक बिच्छू तथा सप निकट में नहीं आते हैं ॥ ५ ॥

मसूरं निग्यपग्राम्यां पिबेन्मेपगते रथौ । अश्वमेक न भीतिः स्याद्विपार्तरय न सशय ॥ ६ ॥

मखरादि योग—विपार्त मनुष्य मेप के घर्ष होने पर मखर को नोम के दो पत्तों के साथ पीस कर पीवे तो नि सशय एक वर्ष तक उसे विप का भय नहीं रहता है ॥ ६ ॥

गरुडाञ्जनम्—

सूत चूर्णमगारधूमममल प्रत्येकगघाणकं धत्तूरस्य रसेन मर्दितमल पश्चात्पतं भासुरम् ।

जैपालं मरिचं चतुःशतयुतं वातारिबीजं लसत्पृष्ठं पट्टिं सुखशिव्यं दृढतरैर्जम्बीरीरैर्वरैः ॥ १ ॥

कुर्वाण्मापवदाकृतिं च घटिकां द्यायासु शृष्कीकृतां

राश्वन्ध्रं प्रहसर्पसंधिसकलं शीतज्वरं दुर्घरम् ।

सन्नेप्राञ्जनमाप्रकं च भुवने चाजीर्णदोषापह

नरयन्ति प्रबलं महागुणयुतं भीपूज्यपादोदितम् ॥ २ ॥

गरुडाञ्जन—शुद्ध पारद, चूना, गृहपूम और कपूर प्रत्येक ओपधियों को छे २ माशा लेकर एकत्र कर घट्टे के रस के साथ मर्दन कर उसमें ५० तोला कूट का चूर्ण तथा शुद्ध जैपाल बीज तथा मरिच के दाने ४०० एवं परण्वबीज ६० लेकर मलोमौति जम्बीरी नीबू के स्वरस में खरल कर बढ़द के आकृति की (प्रमाण की) बटी बनाकर छाया में सुखाकर नेत्रों में अञ्जन करने से राश्वन्ध्र (रतौषी), प्रहरोग, सपविष, सम्पूर्णं संधिरोग, शीतज्वर जो भयङ्कर हो उसे नष्ट करता है तथा नेत्र में लगाने से ही अजीर्ण दोष को भी नष्ट करता है। यह अञ्जन बड़ा प्रबल है, महान् शुणों से युक्त है तथा पूज्यपाद मशरमा का कड़ा हुआ है ॥ १-२ ॥

शूल्युच्छदिघृतम्—

अभयां रोधनां कुष्ठमर्कपुष्प तथोरपलम् । नलयेतसमूलानि सरल सुरसां तथा ॥ १ ॥

सकलिङ्गां समञ्जिष्ठाभनन्तां च शतावरीम् । शृङ्गाटकं समङ्गां च पद्मकेसरमित्यपि ॥ २ ॥

कण्ठीकृत्य पचेत्सर्विः पयो दद्याच्चतुर्गुणम् । सम्यक्पक्वेऽवसीर्णे च शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥

सर्पिस्तुपय मियक्चौद्रं कृतरश्च निधापयेत् । विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोपकृतानि च ॥ ३ ॥

स्पर्शादन्ति विप सर्वं गरोरुपहतरवचम् । सयोगभं तम कण्ठ् मांससाद विसञ्चाम् ॥ ५ ॥

नाशयेदञ्जाम्भ्यङ्गपानयस्तिपु योजितम् । सर्पकीटास्तुल्लादिदृष्टानां विपद्गरपरम् ॥ ६ ॥

शूल्युच्छदि घृत—हरद, वशलोचन, कूट, आक के पुष्प, नीलकमल, नल (नरकट) की अड़, घेत की अड़, सरलकाष्ठ का धूम, गुलसी, इन्द्रजी, मन्नीठ, अनन्तमूल, शतावरी, सिपाड़ा, मन्नीठ और पद्मकेसर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कश्क कर जितना ही उसके चतुर्गुण गोघृत तथा घृत से चतुर्गुण गोदुग्ध देकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्धकर उतार छेवे तथा शीतल हो जाने पर जितना घृत हो उसके समान प्रमाण से मधु मिलाकर परनपूर्वक रख देवे। इस घृत के सेवन से अत्यन्त कठिन विष तथा कृत्रिम विष भी नष्ट होते हैं। इसके स्पश से (शरीर पर मर्दन करने से) सभी प्रकार के गरदोष से आह्व (विकृष्ट) खचा पुन उचित रूप में हो जाती है। इससे संयोगभ विप नष्ट होता है तथा तमदोष (अंधकार दिखाई देना), कण्ठरोग, मांससाद (मांस को अवसन्ता विसंबता चेतना हीनता वा मोह) इन सभी रोगों को यह घृत अञ्जन, मर्दन, पान तथा बस्ति में प्रयोग करने से (यथावोग्य प्रयोग से) नष्ट करता है यह सर्प, कीट, शासु एवं लूतादि दंशकों के विष को नष्ट करने में अत्युत्तम है ॥ १-६ ॥

पश्यापश्वम्—

शालयः पट्टिकाधैव कोरदूष्यमियगवः । मुग्धा हरेणयस्तैल सर्पिश्चापि भव कश्चित् ॥ १ ॥

घातक कुलक घात्री जीवन्ती तण्डुलीयकम् । भोजनार्थे विपातानां हितं पट्टयु सैत्रकम् ॥  
पथ्य—शाली धान का चावल, साठो का चावल, कीदो, प्रियङ्गु ( पुष्प ), मूँग, नये तिल का तेल, ( कहीं २ नवीन घृत भी लाभकर है ) एवं बैंगन, परबल, आमला, बीवन्तो शान, चौराई शाक तथा सेंपानमक ये सब विपातों के लिये पथ्य है ॥ २ ॥

विरुद्धाभ्युदानक्रोधघृद्धभयायासमैद्युनम् । धर्जयेद्विपमुक्तोऽपि दिवास्वप्ने विशेषतः ॥ ३ ॥  
अपथ्य—विष से मुक्त हो जान पर भी विषात प्राणी को विरुद्ध भोजन, अभ्युदान क्रोध, परिश्रम करना, मैद्युन करना तथा विशेष करके दिन में शयन करना ये सब त्याग देना चाहिये ॥

इति विषप्रकरणं समाप्तम् । ।

इति पूर्वखण्डः ।

### अथोत्तरखण्डः ।

अथ बाजीकराणि, बाजीकरणद्रव्यस्य लक्षणमाह—

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्वाद्बाजीवत्सुरतश्चमम् । सद्बाजीकरणमाख्यातं मुनिभिर्मियज्ञो वैरैः ॥ १ ॥

बाजीकरण द्रव्य के लक्षण—जिस द्रव्य के सेवन से घोड़े के समान मैद्युन करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है उसे मुनियों ने तथा श्रेष्ठ वैद्यों ने बाजीकरण नाम से कहा है ॥ १ ॥

प्रसङ्गात्कैवल्यलक्षणं संख्या निदानं चाऽऽह—

कलीयः स्यात्सुरताशकस्तद्भावः कलैभ्यमुच्यते । तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥

कलैभ्य लक्षण—मैद्युन में अशक्त को कलीय ( नपुंसक ) कहते हैं, वही कलीय के भाव को कलैभ्य ( नपुंसकता ) कहते हैं । वह नपुंसकता सात प्रकार की कही गयी है, उसका निदान निम्न है ॥ २ ॥

सैस्तेर्भायैरद्वैरैस्तु रिरसोर्भनसि च्चेत् । ध्वजाः पतत्यतो मूर्णां कलैर्भ्यं समुपजायते ॥ ३ ॥

द्वैभ्यस्त्रीसम्प्रयोगाच्च कलैर्भ्यं तन्मानसं स्पृष्टम् ।

कलीय का निदान—जीमन करने की इच्छा काले पुरुष के मन में मैद्युनेच्छा होने पर अनेक कारणों से मैद्युन नहीं करने से झीम हो जाता है जिससे ध्वज ( लिङ्ग ) शिथिल हो जाता है । इसीसे मनुष्यों को नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है अथवा जिस स्त्री से देव हो अथवा प्रीति नहीं हो पसी स्त्री से मैद्युन करने से नपुंसकता हो जाती है । ऐसी नपुंसकता को मानस नपुंसकता कहते हैं ॥ २ ॥

कटुकाम्लैः सल्लवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ ३ ॥

पित्ताप्लुकचयो वृष्टः कलैर्भ्यं तस्मात्प्रजायते ।

अत्यन्त कटुरस युक्त एवं अम्लरस युक्त तथा अत्यन्त लवणरस युक्त पदार्थों के अतिसेवन से पित्त कुपित होकर शुक का नाश कर देता है जिससे नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है ॥ ३ ॥

अतिभ्यवायदाहिलो यो न च बाजीक्रियारता ॥ ४ ॥

ध्वजसङ्गमयाप्नोति स शुकचपदेतुकम् ।

जो मनुष्य अत्यन्त मैद्युन करता है तथा बाजीकरण ( वीर्य वर्द्धक ) भी नहीं खाता है उसे वीर्य के क्षय होने के कारण नपुंसकता हो जाती है ॥ ४ ॥

महता मेदुरोगेण चतुर्थो कलीयता भवेत् ॥ ५ ॥

महा लिङ्ग के रोग ( उपदंशदि ) हो जाने पर कलीयता हो जाती है ॥ ५ ॥

वीर्यवाहिशिरारप्लेद्दाम्नेहानुचतिर्भवेत् ।

वीर्यवाहो शिराओं के कटने से लिङ्ग का उत्थान नहीं होने पर नपुंसकता हो जाती है ॥

बलिनाः पुण्ड्रमनसो निरोधान्महाचर्यतः ॥ ६ ॥

पथ कलैर्भ्यं स्पृष्टं तस्य शुकस्तम्भमिमित्तकम् ।

बलवान् मनुष्य का मन मैद्युनेच्छा से शुक हो और वह महाचर्य से ( महाचर्य मग होने के भय से ) मैद्युनेच्छा का अवरोधकर मैद्युन नहीं करे तो उससे वीर्यरोधक कारण वाली नपुंसकता हो जाती है ॥ ६ ॥

जन्मप्रवृत्ति बलैर्बल्य सहजं तदि सप्तमम् ॥ ७ ॥

जन्मप्रवृत्ति ( आसेक्वादि ) नपुंसकता स्वाभाविक है उसे सातवां सहज नपुंसकता कहते हैं ॥

असाध्य बलैर्बल्यमाह—

असाध्यं सहज बलैर्बल्यं मर्मच्छेदाच्च यज्ञवेत् । साध्यानामवशिष्टानां कार्यो घाजीकरो विधिः ॥

साध्य तथा असाध्य नपुंसकता—जो जन्म से उत्पन्न आसेक्वादि नपुंसकता है वह असाध्य है तथा मर्मस्थानों के छेदन ही जाने से ( वीर्यवाही शिरा आदि के कट जाने से ) को नपुंसकता होती है वह भी असाध्य है । शेष पाच प्रकार की जो नपुंसकता है वह साध्य है तथा उसमें बाजीकरण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

बलैर्बल्यस्य चिकित्सा—

बलैर्बल्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः । मुख्य चिकित्सितं परमाग्निदानपरिवर्जनम् ॥

नपुंसकता चिकित्सा—साध्य नपुंसकता में कारण के वीररीत कार्य करना चाहिये अर्थात् जिन २ कारणों से नपुंसकता उत्पन्न हुई हो उन २ कारणों को दूर कर देना चाहिये यही उसकी मुख्य चिकित्सा है । इससे स्वयं नपुंसकता नष्ट हो आशुषी तथा पुरुषार्थ हो जावेगा ॥ १ ॥

बलैर्बल्यस्य चिकित्सायां बाजीकरणविधिमाह—

नरो घाजीकरान्योगान्मस्यबृद्धो निरामयः । ससत्यन्त प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥१॥

नपुंसक मनुष्य बाजीकरण योग से बलीमूर्ति शरीर को वमन विरेचन द्वारा शुद्ध कर तथा रोग रहित कर ( जो अपाय रोग हो उन्हें भी नष्ट कर ) सोलह वर्ष से ऊपर तथा सत्तर वर्ष पर्यन्त तक की आयु तक करे ॥ १ ॥

न चैव षोडशादूर्ध्वसप्तत्या परतो न च । आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोग कर्तुमर्हति ॥२॥

आयुष्य की कामना करनेवाला पुरुष सोलह वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के पश्चात् स्त्रियों से संयोग ( मैथुन ) नहीं करे ॥ २ ॥

अथबृद्ध्युपदर्शाद्या रोगाद्वावीव दुर्जयाः । अकालमरण च स्यात्प्रसूतक्रियमन्यया ॥ ३ ॥

बालवस्था तथा वृद्धवस्था में स्त्री सेवन से हानि—सोलह वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के पश्चात् जो मनुष्य मैथुन करता है उसे क्षय, वृद्धि तथा उपदर्शादि अत्यन्त मयकर रोग हो जाते हैं तथा अकाल मृत्यु भी होती है ॥ ३ ॥

स्त्रीभजनविधिर्विस्तरतो रात्रिचर्यायां लिखितोऽस्ति तत्र द्रष्टव्यः ।

स्त्री संभोग की विधि विस्तार पूर्वक रात्रिचर्या में लिखा गया है अतः वहीं देखना चाहिये ॥

विद्यासिनामयवतां रूपयौवनशालिनाम् । नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ ४ ॥

स्वपिराणां रिरसूनां स्त्रीणां वाक्लभ्यमिच्छताम् ।

पोषिष्यसह्रास्त्रीणानां बलीयानामवपरेतसाम् ॥ ५ ॥

हिता घाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः । एतेऽपि पुष्टदेहानां सेवया कालाघपेक्षया ॥६॥

बाजीकरण—जो पुरुष विलासी हों ( अधिक स्त्री संभोग की इच्छा करनेवाले हों ), धनवान् हों, रूप-यौवन से सम्पन्न हों तथा जिन्हें बहुत सो स्त्रियां हों अथवा जो वृद्ध हो रहे हों किन्तु मैथुन की इच्छा करते हों तथा जो स्त्रियों के प्रिय होने की इच्छा रखते हों, जो स्त्री प्रसंग करने के कारण क्षीण हो गये हों तथा जो वीर्यात्वता के कारण नपुंसक हों उनके लिये बाजीकरण योग हितकर है । बाजीकरण योग से स्त्रियों से प्रीति बढ़ती है सन्तान होती है तथा बल बढ़ता है । इस बाजीकरण योग को समयानुसार पुष्ट शरीर वाले को भी सेवन करना चाहिये ॥ ४-६ ॥

घाजीकारणमाह—भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च ।

याच्यः धोत्रामिरामाश्र स्वच स्पर्शसुखास्तया ॥ १ ॥

यामिनी सेन्दुतिलका कामिनी नवयौवना । गीतं धोत्रमनोहारि चाग्न्यूल मविरा अज्ज ॥२॥

गंधा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च । मनसश्चाप्रतीघातो घाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥

विचित्र प्रकार के ( अनेक पौष्टिक पदार्थों से सिद्ध ) भोजन, अनेक विधि से प्रस्तुत पेय, धानों की प्रिय लगनेवाली भागों को करनेवाली तथा जिनके स्पर्श से रचना को सुख प्राप्त हो ऐसी सुन्दर स्त्रियां, चांदनी रात, नवयौवना स्त्री कर्ण को मनोहर लगने वाली, गीत अथवा

तामूल मद्यण, मदिरा पान, पुष्पमाळा धारण, मन मोहक सुगन्धित द्रव्य, अनेक प्रकार के सुन्दर रूप, बाटिका भ्रमण, मन में किसी प्रकार आघात नहीं होना (प्रसन्न रहना) ये सभी वाञ्छीकरण हैं । अर्थात् इन सभी के प्रयोग से वाञ्छीकरण होता है ॥ १-३ ॥

पायसम्—

गवां विरुद्धवस्त्रानां सिद्धं पयसि पायसम् । तथा गोधूमचूर्णं च सितामधुघृताश्वितम् ॥  
शुक्लया हृष्यति क्षीर्णोऽपि वृदादारान्मज्जत्यपि ॥ १ ॥

बिस गाय के बछड़े बड़े हो गये हों ( बकैना गाय ) उनके दूध में सिद्ध पायस तथा इसी प्रकार के दूध में पकाया हुआ एवं शर्करा, मधु तथा घृत से युक्त गेहूँ का चूर्ण ( भाटा ) भोजन करके क्षीर्ण ( बूढ़ ) पुरुष भी मीधुन शक्ति को प्राप्त होता है तथा दस स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ १ ॥

रसाला—वृष्णोऽर्षाडकमीपदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रघृतेः  
प्रस्थं चौरपल पल च हविषाः शृण्ववाक्षतुर्मापकान् ।  
तद्गन्मापघतुष्टयं मरिचतः कर्पं छबङ्गं तथा  
एवा शुबलपटे शनः करतलेनोम्भय विद्यावयेत् ॥ १ ॥

मृन्नाण्डे मृगनाभिश्च दनरसस्पृष्टेऽगुरुवृक्षपिते  
कर्पूरेण सुगन्धित तद्वखिलं संलोक्य संस्थापयेत् ।  
श्चस्वार्थं मथुरेश्वरेण रक्षिता शोषा रसाला स्वयं  
भोजतु ममथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं प्रिया ॥ २ ॥

रसाला योग—बड़ी आया आदक ( दो प्रस्थ ) को किञ्चित् अम्ल हो तथा मधुर हो, शर्करास्त्रेण एक प्रस्थ, मधु एक पल, घृत एक पल, सोंठ का चूर्ण चार माशा, मरिच का चूर्ण बार माशा और लौंग का चूर्ण एक कर्प लेकर सबको एकत्र कर श्वेत बख में रखकर शनै २ हाथों से मलकर घान लेवे पर्दचाय एक मिट्टी के पात्र में कतूरी तथा अन्दन का रस लेकर लेय कर मर्दा कर तथा उस पात्र को अगर से धूपित कर पुन उपरोक्त बड़ी में कपूर मिलाकर मथकर सुगन्धित कर उस पात्र में रख देवे । इसे रसाला कहते हैं । इस रसाला को मथुरा के रामा ने अपने लिये स्वयं बनाया था । इस रसाला के सेवन करने से कामोदीपन होता है, सुख होता है तथा यह श्री को भक्ति नित्य प्रिय लगती है । अर्थात् इससे मन प्रसन्न रहता है ॥ १-२ ॥

शतावरीदिचूर्णम्—शतावरीनागयलापिहारीशिकण्डकैरामलकीफलान्वितैः ।

विचूर्णितैः पञ्चभिरकेनाः पूषण्यकल्पितैर्वा घृतमाक्षिकप्लुतैः ॥ १ ॥

इति प्रयोगाः पश्चिमे निपग्वरैरुद्धीरिताः शर्करया समन्विताः ।

नृणां मदान्धप्रमदोपसर्पिणां प्रथानघातोरतिरेककारणम् ॥ २ ॥

शतावरीदि चूर्णम्—शतावरी, नागबला ( कड़ही ), विदारीकन्द, गोखरू, आँवले का धना फल इन पाँचों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर पाँचों एकत्र पूषण् २ घन तथा मधु मिलाकर प्रयोग किया जावे तथा इसमें शर्करा मिलाकर प्रयोग किया जावे तो ये प्रयोग मरोमल स्त्रियों के भोगने की इच्छा करनेवाले पुरुषों के प्रथानघातोरतिरेककारणम् ॥ १-२ ॥

मुसल्यादिचूर्णम्—मुसलिकोक्लिन्नोष्णरघूर्णकं शिनिविलोचनराममितं पचेत् ।

पयसि प्राप्तखिलं चदि कोष्णके सितया दृक्णवटकया तु तत् ॥ १ ॥

त्रिगुणसप्तदिनं परिमलयन्हातवर्षा अपि काङ्कति कामिनीम् ।

किमिह चिद्विदितवरीभनः क्षत्तिमुष्ठीं क्षयनात्र जिहासति ॥ २ ॥

मुसल्यादि चूर्णम्—खेत मुसली १ भाग, तथा सत्ताना दो भाग और गोखरू तीन भाग लेकर चूर्णकर या पक्कट कर दूध के साथ पकाकर तथा इसमें छे दूह श्वेत शर्करा को मिलाकर तीन सप्ताह तक प्रातःकाळ कुछ उष्ण रहते सेवन करने से छी वर्ष की आयुवाला बूढ़ पुरुष भी कामिनी को इच्छा करता है । यदि इसका सेवन करनेवाला शुभा पुत्रक हय्या पर से अग्रप्रसूती की को नहीं छोड़े तो इसमें विधिवत्ता ही क्या है ॥ १-२ ॥

वानरीगुटिका—बीजासि हि कपिकच्छोः शुद्धयमितानि स्येदयेच्छुनकं ।

प्रस्ये गोमवदुग्धे हुग्ध वायद्भयेद्वाठम् ॥ १ ॥

स्वप्रहितानि च कृत्या सूषमं सम्पेपयेत्तानि । पिष्टिकाया सुषटिकाः कृत्या गध्ये पचेदाज्ये ॥

द्विगुणितशकरया सा घटिका सम्पकया लेप्याः ।

घटिका माषिकमध्ये मञ्जनयोग्येऽस्रिलाः स्याप्याः ॥ ३ ॥

पञ्चदशमितास्तास्तु प्रातः सायं च भक्षयेत् । अनेन क्षीघ्रद्रावी धो यद्य स्यारपतिसध्यज ॥

सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमति याजिवत् । नानेन सदृशं किञ्चिद्द्रव्यं बाजीकर परम् ॥

वानरी गुटिका—कविकच्छू ( केनाच ) के बीजों को एक कुद्दप छेकर एक प्रस्य गोदुग्ध में मिलाकर धीरे २ तब तक पाक करे अब तक दूध गाढ़ा ( खोया ) न हो आवे, पश्चात् उतार कर शीतल होने पर उसमें से बीजों को निकाल कर इनकी खचा ( छिलका ) को धूपकूटके मली भौंति छद्म पीस लेवे तथा गाढ़ दूध ( खोया ) को भी उसमें मिलाकर घस पिते दूध को घटिका बनाकर गोघृत में पकावे । पश्चात् भितनी घटिका दो इसके दुगुना श्वेत शर्करा का पाक करके ( पारुनी गाढ़ी करके ) घटिका में उसे छपेट देवे, पुनः इन घटिकामों को इनके पूगरूप से सूखने योग्य प्रमाण मधु में रख देवे । इसमें से पाँच टहू के प्रमाण को मात्रा से प्राप्त और साय भक्षण करे । इसके सेवन से जो क्षीघ्र द्रावी है ( जिन्हें क्षीघ्रपात का रोग है ) तथा जिनका लिंग नहीं घठता है ( नपुंसक हैं ) वे भी मैथुन कार्य में धीरे के समान सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं । इसके समान अत्यन्त बाजीकर कौर्ब द्रव्य नहीं है ॥ १-५ ॥

यस्ताण्डसिद्धे पयसि भाषितामसकृत्सिलान् । यः स्वादेत्समुपागच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ १ ॥

यस्ताण्डादि प्रयोग—बकरे के अण्डकोषों को दूध में पकाकर उसी दूध में तिल को अनेक बार भाषित कर खाने से सौ स्त्रियों को भोगने की शक्ति प्राप्त होती है तथा मत्स्यक संभोग में अपूर्वता प्राप्त होती है ॥ १ ॥

पिप्पलीलवणोपेते यस्ताण्डे घृतसाधिते । कच्छपस्याथ वा स्वादेत्सप्तु याजीकर शृशम् ॥ ३ ॥

पिप्पल्यादि योग—बकरे के अण्डकोष को घृत में सिद्ध कर उसमें पीपल का चूर्ण तथा सेंधानमक खाने से, अथवा वज्रप के अण्डकोष अथवा मांस को घृत में सिद्ध कर उसमें पीपल का चूर्ण तथा सेंधानमक मिलाकर खाने से अत्यन्त बाजीकर होता है ॥ २ ॥

शतायरीगोष्ठुरकाश्रगं चापुनर्नवानागबला मुसश्या ।

घृतेन सण्डेन तु भक्षणीयाः क्षीणा नरा नागबला भवन्ति ॥ ३ ॥

शतायरीदि योग—शतायरी, गोखरू, असगंध, पुनर्नवा, नागबला तथा मुसली ( श्वेत ) को समान छेकर चूर्ण कर गोघृत तथा शर्करा के अनुपात से भक्षण करने से, क्षीण मनुष्य भी हाथी के समान बलवान हो जाता है ॥ ३ ॥

विदारीकन्दचूर्णं तु घृतेन पयसानरं । उदुम्बरसमं स्वादग्च्छुद्धोऽपि सरुणायते ॥ ४ ॥

विदारी कन्दचूर्ण—विदारीकन्द के चूर्ण को एक उदुम्बर पल के प्रमाण को मात्रा लेकर घृत मिलाकर दूध के अनुपात से खाने से वृद्ध भी तरुण के समान सामर्थ्यवान् हो जाता है ॥ ४ ॥ सिता मधु घृत क्षीरं पलाण्डुरसंयुतम् । पिबेद्यरो भवेत्कामी बृद्धोऽपि सरुणायते ॥ ५ ॥

सितापलाण्डु रस—श्वेत शर्करा, मधु, घृत तथा पलाण्डु स्वरस को दूध में मिलाकर पान करने से मनुष्य कामी हो जाता है तथा वृद्ध सेवन करे तो वह युवा के समान हो जाता है । अर्थात् वृद्ध पुरुष इसके सेवन से युवावस्था को अनुभव करने लगता है तथा कामी हो जाता है ॥

गोष्ठुरचूर्णम्—शामयति गोष्ठुरचूर्णं छागक्षीरेण साधित समधु ।

मुक्त षपयति पाण्ड्य यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ १ ॥

गोष्ठुर चूर्ण—गोखरू के चूर्ण को बकरे के दूध में पकाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कुप्रयोगों से ( अतिमैथुन वा ब्रेवी के साय मैथुन वा अप्राकृतिक मैथुन आदि से ) उत्पन्न नपुंसकता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अष्टवज्जातक —

मखलातकामां पवनोरपितानां सरुभ्युतानां च यदात्रक स्यात् ।





गया हो (स्वर भेद हो गया हो) ऐसे कुछी तथा अत्यन्त शरीर जिसका घट्ट घटा गया हो ऐसा रोगी पुन इत प्रकार इरा-भरा स्थर्य हो जाता है जिस प्रकार झुलसे हुए मूल एवं शाखा वाला वृक्ष नवीन जल के सिञ्चन से इराभरा ही जाता है और वृद्धरूपति से भी अधिक बुद्धि वाला होकर विशाल एवं नवीन ग्रन्थ की रचना कर सकता है । बड़े २ ग्रन्थों को शीघ्र स्मरण कर सकता है तथा उसे विस्मृत नहीं होता, उसकी आयु कल्प के समान होती है तथा वह अधिक कीर्तमान होता है । इत अमृत मस्त्रातक कल्प का सेवन करता हुआ पुरुष अत्यन्त बुद्धिमान एवं सुसुपूर्वकं सो वर्षों तक जीवित रहता है ॥ ६-२२ ॥

केशरपाक—श्लेषो चातुर्जातफलत्रिक च लवङ्गकृष्णागुरुचन्दन च ।

इक्षुरपीज करहाटक च जातीफलं मर्कटिकाफल च ॥ १ ॥

शाहमन्थनिर्यासयलाश्रय घागोक्षुरपीज सुसली कृमिघ्नम् ।

समुद्रशोष विषपञ्जर च पुष्पं सुजात्युन्नयकट्टधीजम् ॥ २ ॥

सर्वं सम योज्य सुकुङ्कुम च सुचूर्णितं विनातिभागयुक्तम् ।

कस्तूरिकापोढशाभागचूर्णं खण्डं चतुर्भागयुक्तं विषकम् ॥ ३ ॥

पद्म रसेन्द्र गगन सुलोह कान्त हि ताम्र रविभागयुक्तम् ।

दलानि हेम्नो द्विशतानि वृथा सयैव धेयानि च राजतानि ।

एकत्र सर्वं विनिधाय यैद्यो जयाष्टभागं विद्धीत लेहम् ॥ ४ ॥

जातीफलप्रमाणेन भक्षयेत्प्रातरुत्थितः । धीर्यबुद्धिं कुरोत्येव सर्वभ्याधिविनाशन ॥ ५ ॥

शस च रमते खोर्णा कामतुष्टयो भवेच्चर । सर्वान्वातामयाहन्ति प्रबुद्ध वातशोणितम् ॥ ६ ॥

अस्थिरोगं शिरोरोगं सधिरोगं च नाशयेत् । अस्य सेवनमात्रेण वृद्धोऽपि सख्यायते ॥ ७ ॥

घन्य यशस्करं सम्यगायुरारोग्यवर्धनम् । काश्मीरकावलेहोऽयं यलकाम्भितिववर्धनः ॥ ८ ॥

केशर पाक—सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, ठेजपात, नागकेशर, इरद, बड़ेड़ा, आँभला, लवंग, पीपल, भगर, लालचन्दन, तालमखाना के बीज, मैनफल भयवा अकरफरा, बायफर, कपिकच्छू के फल (बीज) मोचरस, बरिभारा, असगन्ध, गोखरू के बीज, मूसली, वायविर्ढग, समुद्रशोष, विषपञ्जर, नागकेशर, चमेली और आम की गुठली के चूण प्रत्येक समान भाग लेकर उसमें काश्मीरी केशर का चूर्ण बीस भाग, कस्तूरी सोलह भाग, द्येत शर्करा (की चासनी) चार भाग, बंगभस्म, पारदभस्म वा रससिन्दूर, अन्नकभस्म, लोहभस्म, कान्ठभस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक एक २ भाग, स्वर्णदल (सोने के बर्क पत्र) दो सौ, रजतश्ल (चाँदी के बर्क) दो सौ लेकर एकत्र कर उसमें आठ भाग शुद्ध भाग का चूर्ण मिलाकर विधिपूर्वक अवलेह सिद्धकर बायफर के समान प्रमाण की मात्रा से प्रातः काल भक्षण करने से यह अवलेह धीर्य की वृद्धि करता है तथा सब रोगों को नष्ट करता है । इससे सो स्त्रियों से रमण करने की शक्ति होती है एवं वह मनुष्य कामदेव के समान हो जाता है । यह पाक सभी प्रकार के वात रोगों को नष्ट करता है, बड़े हुए वातरक्त को नष्ट करता है, अस्थि सम्बन्धी रोग, शिरोरोग एवं सधिगत रोगों को नष्ट करता है । इसके सेवन मात्र से ही बुद्ध भी तैषण के समान हो जाता है । यह धन देने वाला, यश करने वाला, आयु तथा आरोग्यता को मलीर्माँति बढ़ाने वाला तथा यह काश्मीरी (केशर) का अवलेह (केशर पाक) बल एवं कान्ति को बढ़ाने वाला है ॥ १-८ ॥

रतिवृद्धिकरो मोदकः—

गोक्षुरेक्षुरपीजानि धाजिगन्धा क्षातावरी । सुसली धानरीवीजं घटी नागयला बला ॥ १ ॥

एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाऽऽज्येन भर्जितम् । सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं धात्रीकर परम् ॥

चूर्णादष्टगुणं शीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् । सर्वतो द्विगुणं खण्डं स्वादेदग्निबलं यथा ॥ ३ ॥

धात्रीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो घृतः । तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥ ४ ॥

रति वृद्धि कर मोदक—गोखरू बीज, तालमखाना बीज, असगन्ध, शतावरी, सुसली, केशाच के बीज, जेठीमधु ककड़ी और बरिभारा को समान भाग लेकर विभिन्न चूर्ण कर सब औषधियों का चूर्ण जितना हो उसके अठगुना दुग्ध तथा चूण के समान घृत तथा सब मिलाकर जितना हो उसके दुगुना शर्करा मिश्रकर मोदक प्ररुद्ध कर अग्निबल के अनुसार मात्रा से खाना चाहिये । ,

यद् योग बहुत सी बाजीकरण औषधियों को एकत्र संग्रह करके निर्मित किया गया है, इसलिये यद् योग बहुत से अन्य योगों से भेद है ॥ १-४ ॥

रतिवस्त्रमारयपूगपाक.—

पूग दक्षिणदेशजं दशपलोन्मान शृष्टा कर्तयेत्  
 तस्विन्न जलयोगतो मृदुतरं सकृदथ पूर्णाकृतम् ।  
 तत्पूर्णे पटशोधित वसुगुणे गोष्ठद्वदुग्धे पचेद्  
 गग्यास्याङ्गलिसंयुतेऽतिनिविष्टे दद्यात्तुलाद्यो सिताम् ॥ १ ॥  
 एक तज्ज्वलमारुतिं प्रति नयेत्स्मिन्पुनः प्रक्षिपेद्  
 दद्यात्तत्तदुदीरयामि बहुला इष्टाऽऽदरासंहिताः ।  
 पृष्ठा नागबला यला सचपला जातीफल लिङ्गिता  
 जातीपत्रकपत्रपत्रकयुगं तत्र स्वचा संयुतम् ॥ २ ॥  
 विरवावीरणवारिवारिवरवा वांसी धरी वामरी  
 द्राघा सेष्टरगोष्टराऽथ महती सूर्जिका चीरिका ।  
 धान्याक सकसेरक समयुक्तं शृङ्गाटकं जीरकं  
 पृथ्वीकाऽथ यवानिका घटिका मासी मिसी मेयिका ॥ ३ ॥  
 क-द्वेष्यत्र विदारिकाऽथ मुसली ग-धर्वगन्धा तथा  
 कर्पूरं करिकेसर समरिषं चारस्य बीजं नवम् ।  
 बीजं शाण्डिलिसम्भयं करिकणाबीजं च राजीवञ्ज  
 श्वेत चन्दनमत्र रक्तमपि च क्षीसंज्ञयुष्यै समम् ॥ ४ ॥  
 सर्वं चेति पूयवृष्यवपलमितं सचूर्ण्यं तत्र क्षिपेद्  
 सूतं चङ्गमुजगलोहगगन सन्भारित श्वेच्छुष्या ।  
 कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं तथा प्रक्षिपेद्  
 यस्मादस्य तु मोदकान्विरचयेद् विश्वप्रमाणानय ॥ ५ ॥  
 तान्मुक्तावापि सदा यथाऽऽनलवर्षं मुञ्जीत भास्वं रस  
 पूर्वस्तिव्रशिते गते परिणतिं प्राग्मोक्षनाम्नयेत् ।  
 निरय श्रीरतिवपलभाष्यकमितं या पूगपाक भजेत्  
 स स्याद्भीर्यविसृष्टिहृदमद्वनो धार्जीव शक्तो रतौ ॥ ६ ॥  
 दीप्ताग्निवलयान्यली विहरते हृष्ट सुपुष्टः सदा ।  
 यूद्धो योऽपि पुयेव सोऽपि दक्षिण- पूर्णेन्दुवसुन्दरा ॥ ७ ॥

रतिवस्त्रमपूगपाक.—दक्षिणी सुपारी दस पल लेकर भलीभाँति कतर कर उठे जल के साथ

स्वेदित करके घूणकर बर में छान ले तथा बिठना पूर्ण हो उसके अठगुना शुद्ध गोदुग्ध एक अंजलि (आधामानो) देकर पकावे जब पाक पूर्ण हो जावे तब उसमें भाषा तुला (५० पल) शकरा मिलाकर पाक की विधि से अग्नि पर पोकर भासन पाक होने पर उसमें अनेक सदिताओं का निरोक्षण कर उनसे आन्तर पूर्वक संहर किये हुए बहुत से द्रव्यों के चूर्ण मिश्रित कर रहा हूँ उनको उसमें प्रक्षेप देवे—हलायवी, ककड़ी, बरिभारा, पीपल, सायपर टिबटिनी, जाविनी, लैमपान, तालीसपत्र, दालचीनी, सोंठ, यश, गुंणपवाला, नागरमोषा, हरद, बरैदा, भौबला, बसलोचन, शशावरी, केवांन के बीज, दास, ताडमत्ताना गोषक, बड़ी बटेरी, जम्बू के फल जयवा छुराहा, सिरमी, धनिया, धनेरू, मुन्डूठी, सिपाका, बीरा, बड़ी हलायवी भयवा, कुण्जबीरा, खबारन, कुसुम्भ के बीज, अटामांसी, चीरक, मेथी, विहारीकन्द, मुसली, कतगन्ध, कचूर, नागकेसर परिष, चिरीसी, सेमर के बीज, गमपीपल, कंमल के बीज, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन भीट कर्ण के द्रव्य पूर्ण हो पृष्क २ एक २ पल लेकर मिलावे, तथा उसमें इन उपरोक्त चूर्णों के साथ ही पाद मस या रसतिन्दूर, बंगमस, मागमस लोहमस, अमर मस वचन विधि से बने हुए लेकर इष्टानुकूल प्रमाण से जयवा उपरोक्त औषधियों को भाँति एक २ पल ही लेकर मिलावे एवं कस्तूरी तथा कचूर का चूर्ण भी मिश्रना ही सके जयवा एक २

पल ही मिलाकर एक २ पल ( बिल्व ) प्रमाण का मोदक बना लेवे । इस मोदक की अभिवल के अनुसार मात्रा से सेवन करने पर भोजन करना चाहिये तथा इसके सेवन करते समय अम्ल रस द्रव्य नहीं भक्षण करना चाहिये । पहले का भोजन किया हुआ पदार्थ अब पच जावे तब भोजन के प्रथम ही इसे भक्षण करना चाहिये । जो मनुष्य नित्य इस रतिवल्गम नामक पूरा पाक का सेवन करता है उसके वीर्य की वृद्धि होती है काम की वृद्धि होती है तथा मैथुन कर्म में घोड़े के समान शक्ति होती है । वृद्ध पुरुष भी इस पाक का सेवन करता है तो वह भी युवा के समान शीत अधि बाला, बलवान, बली पंडित रदित तथा दृष्ट पुष्ट अङ्गोंवाला होकर विचरण करता है तथा मनोहर पूणिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर हो जाता है ॥ १-७ ॥

पुतस्मिन् रतिवल्गमे यदि पुनः सम्यक्सुरासानिका

घत्तुरस्य च शीजमर्ककरमा पाघोधिशोपस्तथा ।

सन्माजुफलकं तथा रसफलत्वक्चापि निरुप्यते ।

चूर्णार्पा यिजया तथा स हि भवेत्कामेश्वरो मोदकः ॥ १ ॥

कामेश्वर मोदक—इसी उपरोक्त रतिवल्गम नामक पाक में यदि चूर्ण वाली भोषधियों को मिलाने के समय सुरासानी अजवारन, धतूरे का शुद्ध बीज, अकरकरा, समुद्रशोष, मानूफल, रसखस और दालचीनी का चूर्ण भी एक २ पल मिलाया जाय तथा सम्पूर्ण चूर्णों के भाषा शुद्ध मांग का चूर्ण मिला दिया जाय तो यही रतिवल्गमपाक कामेश्वर मोदक हो जावेगा यही इसके गुण भी प्राय वही है जो रतिवल्गम पाक के है ॥ १ ॥

आप्रपाकः—

पकास्य रसद्रोणे सितामाढकसंमिताम् । पूत प्रस्थमिदं दद्याद्वागरस्य पलायकम् ॥ १ ॥  
मरिच कुडवोभमान पिप्पली द्विपलोन्मिताम् । सलिलस्याऽऽढक दत्त्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥  
पचेत्तन्मृन्मये पात्रे दारुद्वयं प्रचालयेत् । चूर्णान्येषां क्षिपेत्त्र घनीभूतेऽवतारिते ॥ ३ ॥  
धान्याक जीरकं चित्र पत्रकं सुस्तकं त्वचम् । वृहज्जीरकमप्यथ ग्रन्थिक नागकेशरम् ॥ ४ ॥  
पुलां पत्री लघ्नं च पृथग्जातीफल पलम् । सिद्धपात्रे प्रदद्याच्च मधुनः कुडयह्वयम् ॥ ५ ॥  
भक्षयेद्भोजनादवापलमात्रमिदं नरः । अथवा नियता नाम मात्रा क्षादेपयानलम् ॥ ६ ॥  
मामवः श्वेनादस्य वाजिवसुरते भवेत् । समर्धो बलयान्पुष्टो हृष्टो नित्यं निरामयः ॥ ७ ॥  
प्रहर्णी नाशयेदेष चयं श्वासमरोचकम् । अम्लपिचं च पिचं तु कुष्ठं वै पाण्डुतामपि ॥ ८ ॥

आप्रपाक—एके रुप आमो का स्वरस एक द्रोण, श्वेत शर्करा एक आदक, गोहन एक प्रस्थ, सोंठ का चूर्ण आठ पल, मरिच का चूर्ण एक कुडव, पीपल का चूर्ण दो पल और अल एक आदक, केकर सबको एकत्र कर एक मिष्टी के पात्र में रखकर पाक की विधि से पकाये तथा काठ की करशुल से बछाये एवं इसमें आगे लिखे हुए द्रव्यों के चूर्णों को प्रक्षिप्त कर गाढ़ा होने पर उतार लेवे । यथा घनियों, जीरा, चित्रकमूल, तेजपात, नागरमोषा, दालचीनी, मूळ क्षीरक, पिपरा मूल, नागकेशर, श्लायची, नावित्री, लींग तथा जायफर प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल लेकर इसमें प्रक्षेप देवे, पाक सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल होने पर इसमें दो कुडव मधु मिला देवे । इसे रात को भोजन के पूर्व ही एक पल प्रमाण की मात्रा से खाना चाहिये अथवा इसकी मात्रा की कोई निश्चिती नहीं है अभिवल के अनुसार खाना चाहिये । इसके सेवन से मनुष्य मैथुन कर्म में घोड़े के समान समर्थ होता है तथा सामर्थ्य युक्त, बलवान्, दृष्ट पुष्ट एव नित्य नीरोग रहता है । इससे प्रहर्णी का नाश होता है तथा क्षय, द्वास, अरुचि, अम्लपिच, पिच, कुष्ठ तथा पाण्डुरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

कामासिंसीपन्नो मोदकः—

कर्पों रसो गन्धकमन्नक च द्विकारचित्रं लघणानि पञ्च ।

घाटी यवानीह्वयकीटहारी तालीखपत्राणि पर विषं च ॥ १ ॥

जीर चतुर्जातलघ्नजातीफल च कर्पग्रयमेवमन्वत् ।

सुहृद्सर्वं कटुग्रयं च तथा चतुष्कर्पमिदं निबोध ॥ २ ॥

धान्याकपटीमशुक कसेरु फलं पूषकपञ्चपल विदारी ।

दन्ती कणा चातिथलारमगुसाधीजं सथा गोशूरकस्य बीजम् ॥ ३ ॥

सधीजपूरेन्द्वरज समान समा सिता चौद्रयुत च सुषयम् ।

कर्षकमिन्दोरथ मोदकं च कामाग्निसन्दीपनमेनमाहुः ॥ ४ ॥

शुष्यं सथा परतर सततं सदीप्यमानं निषेभ्य मनुजः प्रमदासहयम् ।

गण्डेभ्य लिङ्गशिविल्लवमुपैति नित्य नागाधिप निजयते बलतः प्रमत्तः ॥ ५ ॥

घासानशीतिमयपित्तमवांश्व रोगान्श्लेष्मोरथविदातिरुजः परमग्निमान्धम् ।

दुर्षारकामलभग दरपाण्डुरोगान्मेहातिसारकृमिहृद्ग्रहणीविकारान् ॥ ६ ॥

कासज्वररथसनयक्ष्मकफप्रतिरयाशूलामवातसहिताश्च रुज समस्ताः ।

हत्वा गदान्बहुविधास्तदपरामकारी सर्वत्र पथ्यमत्त सर्वसुखप्रदायो ॥

बर्ष्यं बलीपलितहारि रसापन स्यान्मूल सदेव कथित परमं पवित्रम् ॥ ७ ॥

कामाग्नि सन्दीपन मोदक—गुद पारद, शुद्ध गन्धक, भद्रकभस्म, सखीसार, चित्रकमूल, पांचो नमक (पंचक २) कचूर, जवाहन, अजमोदा, वायविद्यग, ताडीतपत्र प्रत्येक एक २ कर्ष और नागकेशर, दालचीनी, ऐमपात, लवंग तथा जायफर प्रत्येक दो २ कर्ष तथा विवारा, सोंठ, मरिच और पीपल, प्रत्येक तीन २ कर्ष, धनियाँ, जेठीमधु, कसेरू तथा इरद, बहेड़ा, भौबला प्रत्येक चार २ कर्ष तथा शतावरी, विदारिकन्द, बरिआरा, इस्तिकर्ण, पलाय, नागबला, केवाच के बीज और गोसरू के बीज प्रत्येक पांच २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर ले और बीज पत्रसहित शुद्ध मर्ग का चूर्ण सब चूर्ण के समान माग ले और उसमें समान हो शर्करा, मधु, घृत की मिलावे तथा एक कर्ष कपूर का चूर्ण लेकर प्रथम पारद गन्धक को कठमली कर भद्रक मिलावे तब अन्य २ चूर्णों को मिलाकर विधिपूर्वक मोदक बनाके । इस मोदक को कामाग्निसन्दीपन मोदक कहते हैं । इसे शूष्य में परमशूष्य कहा गया है । इसके सेवन करने से मनुष्य सख्त शिथो के साथ समीग कर सकता है । नित्य मैद्युन करने पर भी शिथि में शिथिलता नहीं आती है और बल इतना बढ़ता है कि मष्ट गमराय को भी जीव सकता है तथा इसके सेवन से ८० प्रकार के बाहरीय, ४१ प्रकार के पिच्छरोग, २० प्रकार के कफरोग अत्यन्त बड़ी हुई मन्दाग्नि, कठिन कामला, मगन्दर, पाण्डु, प्रमेह, अतीसार, कृमि ह्रोग, ग्रहणीरोग, कास, ज्वर, श्रास, यक्ष्मा, कक, प्रतिहयाय, शूल तथा आमवात के सहित समस्त बोधार्थे नष्ट होती हैं तथा यह मोदक बहुत प्रकार के रोगों को मष्ट करके सन्तान देने वाला है । सर्वत्र समी अवस्थाओं में यह पथ्य है, समी सुखों को देने वाला है, बलकारक है, बलीपलितरोग को मष्ट करने वाला है तथा समी रसापनों में मूलरसापनरूप परम पवित्र है ॥ १-७ ॥

शतावरीधनम्—

पूतं शतावरीगर्भशीरे दुधागुणे पचेत् । शर्करापिप्पलीचौद्रयुतं तद्बुध्यमुष्यते ॥ १ ॥

शतावरी पूत—शतावरी का करक एक माग, मूषित्त गोघृत चार माग और गाय का दूध चालीस माग लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से पाक सिद्धकर शकरा, पीपल चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करने से यह घृत अत्यन्त बुध्य ( बौर्यवर्षक ) होता है ॥ १ ॥

लघुवायिगन्धासपि—

कृत्केन यात्रिगन्धाया विपचेद्वृष्टमुत्तमम् । चतुर्गुणमजाशीरं त्रयोदशपाय हीतले ॥

सितां समी प्रदायाद्याह्लपुष्टिविबुद्धये ॥ १ ॥

लघु वायिगन्धापूत—भसगन्ध का करक एक माग, मूषित्त गोघृत चारमाग और गोदुग्ध सोलह माग लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्धकर शीतल होने पर इसमें समागमाग शर्करा मिलाकर सेवन करने से बल, पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

पद्मनादितेयम्—

द्रव्याणि चन्दगादेस्तु चन्दम रक्तचन्दनम् । पतञ्जमथ कालीयागरुहृष्णगुरुणि च ॥ १ ॥  
धेवद्रुमाः समरलाः पचक क्रमुकोऽपि च । कर्पूरो मृगभाभिश्च हृत्ताकस्त्रिकापि च ॥ २ ॥  
सिंहकः कुङ्कुमं गन्धं जातीपलकमेव च । कातोपरी लवङ्गं च सूक्ष्मेला महती तथा ॥ ३ ॥

कङ्गोलफलकं स्वयं च पद्मक नागकेसरम् । बालक च तयोर्द्वीर मांसी दाह सितापि च ॥ ४ ॥  
 मुरा कर्पूरकषापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् । रेणुकाश्च त्रियङ्गुश्च श्रीवासे गुग्गुलुस्तथा ॥ ५ ॥  
 छात्रा नखश्च शालश्च घातकीकुसुम तथा । मन्त्रियपर्णं च मञ्जिष्ठा तगरं सिन्धुपर्कं तथा ॥ ६ ॥  
 पृतानि शाणमानानि कक्कीकृत्य शनैः पचेत् । तैल प्रस्थमित्तं सम्यगेतत्पात्रे शुभे क्षिपेत् ॥  
 अनेनाम्यकगाग्रस्य दूदोऽशीतिसमोऽपि यः । सुखी भवति दृक्काट्यं श्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥  
 वन्ध्याऽपि लभते गर्भं पण्डोऽपि सङ्गायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेद्य शरदां शतम् ॥ ९ ॥  
 चन्दनादि महातैल रक्तपिचं चयं उच्यते । दाह प्रत्येददीर्घान्यं कुष्ठ कण्डं विनाशयेत् ॥ १० ॥

चन्दनादि तैल—श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, पतंगकाठ, कृष्ण अगर ( यह दो बार लिखा गया है अथ दो भाग लेना चाहिये ) देवदारु, सरलकाठ, पदुमकाठ, पूगीफल, कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी, शिलाजीत, काशमीरीकेशर, गोरोचन, जायफल, जावित्री, लवंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कंकोलमरिच, दारुचीनी, पषाण, नागकेसर, सुगंधनाला, खस, अटामांसी, दारुचीनी, मुरामांसी, कचूर, शिलाजीत, भद्रमोथा ( नागरमोथा ), रेणुका, त्रियङ्गुपुष्प, कमल वा राल, शुद्ध गुग्गुलु, छात्र, नखी, राल, धाय के पुष्प, वच, मञ्जीठ, तगर और मोम प्रत्येक एक २ शाण ( चार २ माध्य ) लेकर विधिपूर्वक करक कर तिल के मूर्च्छित तेल एक प्रस्थ में देकर तथा तेल के चतुर्गुण जल मिलाकर मन्द अग्नि पर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध करे, तैल मात्र शेष रहने पर उतार ध्यानकर रख लेवे । इस तेल के शरीर में मर्दन करने से ८० वर्ष का वृद्ध भी सुखी एवं वीर्य से परिपूर्ण हो कर स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है । वन्ध्या स्त्री भी इसके सेवन से गर्भधारण कर लेती है, नपुंसक पुरुष भी युवा की भाँति मैथुन करने की शक्ति वाला हो जाता है, पुत्ररहित भी पुत्र प्राप्त करता है तथा सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहता है । यह महाचन्दनादि तैल रक्तपिच, क्षय, ज्वर, दाह, स्वेद को दुर्गन्धि, कुष्ठरोग तथा कण्डरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-१० ॥

महासुगन्धितैलग्—

कर्पूरागुग्गुकोक्षपत्रनलिकाशाशटीघातकीपुष्पैः सप्तदशैलवालुसरलैः शैलेयमांसीप्लवैः ।  
 प्लाकङ्कुमरोचनादमनकैः श्रीवासजातीफलैः कङ्गोलकमुकोक्षटामदमुराकान्तालवङ्गामयैः ॥ १ ॥

घालोशीरहरेणुकामलयमस्यौण्यचण्डानखै  
 लोखीकोशाकुलीरपद्मकनतैः स्पृकान्वितैः पालिकैः ।  
 छात्रावोजनवदिल्लोघ्रसलिलैस्तैल विपाच्याऽऽकं  
 तैलाम्यक्ततुर्जैरग्निपि भवेत्स्त्रीणां पर वरलभः ॥ २ ॥  
 शुक्लाक्षो घृतिमाननक्षपतनयः पण्डोऽपि रयुसुको  
 वन्ध्या गर्भवती भवेदपि तथा वृद्धाऽपि सुते सुतम् ।  
 कण्डूस्वेदविचर्चिकामलहर द्यौगन्धकुष्ठापह  
 मक्षिम्यां परिकीर्तितं बहुगुणं तैल सुगन्ध महत् ॥ ३ ॥

महासुगन्धित तैल—कपूर, अगर, दालचीनी, तेजपात, सुगंधनाला, छात्र, कचूर, धाय के पुष्प, छितवन की छाल, सुसम्बर, सरल काठ, शिलाजीत, अटामांसी, नागरमोथा, इलायची, काशमीरीकेशर, गोरोचन दोना, कमलपुष्प वा राल जायफल, कंकोलमरिच, पूगीफल, सुह आँवला या नागरमोथा, कस्तूरी, मुरामांसी, बड़ी, इलायची, लौंग, कूट, सुगंधनाला, खस, रेणुका, श्वेतचन्दन, स्त्रीण्यक वा सुनेरा, चौरा, नख, जावित्री, काकडासिंगी, पदुमकाठ, तगर तथा स्पृक्का या पिन्डिशाक नामक सुगन्धित द्रव्य प्रत्येक एक २ पल लेकर एकत्र करके और छात्र, मञ्जीठ तथा लोघ प्रत्येक का काथ तेल के चतुर्गुण तथा तिल का तेल एक भादक ( चार प्रस्थ ) लेकर उपयुक्त कक्ष सहित इन काथों को तेल में डालकर तैलपाक करे, तैल मात्र शेष रहने पर उतारध्यान कर रख ले । इस तेल के मर्दन करने से बिसका शरीर अर्जर हो गया दो वर्ष वृद्ध भी स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है तथा वीर्य से परिपूर्ण, तेज युक्त तथा बहुत पुत्रों वाला होता है, नपुंसक भी मैथुन करने के लिये उत्सुक रहता है, वन्ध्या स्त्री गर्भवती हो जाती है, तथा वृद्ध भी पुत्र को उत्पन्न करती है । इस तेल से कण्डरोग, स्वेदरोग, विचर्चिकारोग, कामला

रोग, दुर्गन्धि तथा कुष्ठरोग नष्ट होता है । इस महाशुण्ठिकारी महाशुण्ठिकृत शिर को अभिनीकुमारों ने निर्मित किया था ॥ १-३ ॥

पञ्चबाणरस — सूताश्लोहोरगावङ्गदाशुक्पर्विकारचैव समं विधाय ।

सूतार्धभागं कनकस्य दद्याद्भारमयं शिरपिभावितं तत् ॥ १ ॥

पोस्तेस्तथा भावितमेकविंशद्द्वार तथा यष्टिसुवर्णकामाम् ।

छवङ्गकाकककरपिषजातीफलत्रिक कोष्ठकचन्दनानाम् ॥ २ ॥

पुषां प्रथमैर्भावय सप्तवार पूषक्यैकं मृगनामिकायां ।

रसोऽयमुक्तः परमेश्वरेण श्रीपञ्चबाणो रतिशक्तियो नृणाम् ॥ ३ ॥

पूषस्मादधिकं च नास्ति मुयने पीयाधिकं घीमद्

मायुष्कान्तिकरं हितं वसुमतां नृणामुदारामनाम् ।

आशासिद्धमिदं रसायनवरं पर्यय धयःस्थापन

मेहप्लीहजलोदरारमरिक्कापस्मारविष्वंसनम् ॥ ४ ॥

पञ्चबाण रस—पारदमस, अन्नकमरम, लोहमस, नागमस, वंगमस, उल्लमस और कौडी

मस, प्रत्येक एक २ भाग लेकर उसमें पारद के भाषा स्वर्णमस मिलाकर सबको एकत्र रखकर ( पारदमस के स्थानपर रससिद्धर भी दिया जाता है ) दूध से तीन बार भावित करे पुन पोस्त के द्राय से २१ बार भावित करे, पश्चात् वेठीमपु और पतूरे के काप या स्वरस से पृथक् पृथक् २१ बार भावित करे, पुन खबंग, अकरकटा, सौंठ, चनेलो, भौमला, हरक, बडवा, कडुको तथा चन्दन के काप अथवा स्वरस से पृथक् २ सात बार भावित करे तथा एक बार कस्तूरी के रस में भावित कर रख लेवे । इस रसको पञ्चबाण रस कहते हैं, इसे परमेश्वर ने मनुष्यों को रतिशक्ति देने के लिये बनाया है । इससे बढकर ससार में अधिक धीर्यवर्षक बुद्धिबर्षक, आयु तथा कान्ति धर्मक धनी तथा उदार मनुष्यों के लिये दितकर अन्य भोषधि नहीं है । यह आशा सिद्ध भोषधि है वैद्य की आशानुसार सेवन करने से यह रस पूर्ण फल देने वाला है, रसायनों में श्रेष्ठ है, बल दायक है, आयुस्साधक है तथा रक्तके सेवन से प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अदमरी तथा अपरमार रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

चन्द्रोदयरसः—पल मृदु स्वर्णपल रसेन्द्रपलाष्टकं पोष्टा गार्धकस्य ।

शोणैस्तु कार्पासभवेः प्रसूनेः सर्वं विमर्षाय कुमारिकाग्निः ॥ १ ॥

शक्काचकुम्भे निहितं सुगाढ मूकपर्देस्तद्विवसप्रय च ।

पचेत्क्रमानौ सिकतावयवत्रे सतो रसः पत्रश्वरागरम्यः ॥ २ ॥

सौवर्णमेतत्सकलामपन्न सर्वेषु योगेषु च योक्षनीयम् ।

निगृह्य चैतरय पालं पछानि सत्वारि कर्पूरजरातथैव ॥ ३ ॥

जातीफल शोपगमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकायां हृह शाण एकः ।

चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽयं मायो मुक्तोऽद्विहृद्दीलमध्ववर्ती ॥ ४ ॥

मदोद्धतानां प्रमदाशतानां गर्वाभिकारवं शलययत्पयरयम् ।

मृत घनीमृतमतीव दुग्धं मृदूनि मौसानि समण्डकानि ।

मापाह्नमिष्टानि रसेजत्र पथ्यमानम्बुदापीन्यपरानि चात्र ॥ ५ ॥

चण्डीपथिनाशासनस्तुभृतां पयस्तम्भनः समस्तावदलण्डनः प्रयुरुरोगपञ्चाननः ।

मृदे च हस्तराहयं भवति यस्य चन्द्रोदया स पञ्चदारदर्वितो मृगारणां भवद्दुष्टमा ॥ ६ ॥

चन्द्रोदय रस—कीमल शुद्ध स्वर्णदल एक पल, शुद्ध पारद आठ पल और शुद्धगन्धक सोलह पल लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर उसमें स्वर्णदल मिलाकर रसक कपास के पुत्र के द्राय सरल कर पुन कुमारी के पशों के स्वरस में सरल कर इस जाने पर काप के दाब में रस कर सप्त पात्र पर गाड़ी करारिमिष्टी भदोभौनि चरके सुसाकर काष्ठका पात्र में रस कर तीन दिन तक क्रम से मन्द, मध्य एवं तीक्ष्ण अग्नि से पाक करे । इसके पश्चात् स्वर्णदीन होने पर बसमें से नये पद्व के बर्ण के समान रस बर्ण का रस निकलेगा । यह शोभा ( शोवर्ण मकरपथ ) संपूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला है, इसे सभी रोगों में देना चाहिये । १५

रस को एक पल लेकर इसमें चार पल कपूर का चूर्ण तथा जायफर का चूर्ण, मरिच का चूर्ण, लौंग का चूर्ण तथा कस्तूरी को एक २ माण ( चार २ माशा ) धूप २ लेकर मिलाकर सबको एकत्र कर भलीभाँति खरलकर रस लेव । इसको एक माशा के प्रमाण की मात्रा स पान के पत्ते में रख कर खाने से पुरुष मदी-मध सकड़ो जिन्यों के बड़े दुप गर्व को अवश्य शिथिल कर देता है । इसके सेवन करते समय आँटाकर शरयन्त गाढ़ा बिया दूआ दूध, कोमल मांस, बकरे के भण्टकोश, चन्द्र के बने पदार्थ तथा मिठाखायों पथ्य में लेना चाहिये एव अत्याय आनन्ददायक रुचिकर एवं पौष्टिक पथ्य सेवा करना चाहिये । इस रस के सेवन से बली-पलित रोग नष्ट होते है, आयुस्थापन होता है, सम्पूर्ण रोगों का नाश होता है । यह रोग समूह के लिये सिंह के समान है, भिन्न मनुष्य के पास यह रसों का राजा चन्द्रोदय रस रहता है यह काम से उमर रहता है तथा जिन्यों का प्रिय होता है ॥ १-६ ॥

दृढपुष्पधन्वा रस—

कनकहृजकान्त ताप्यर्क दृद्धिभाव द्विजकुचलययष्टीशाशमलीनागवखलपः ।

घृतभुपुष्यलण्ड पुष्पधन्वा द्विपवलो रमयति घटुकान्ता दीर्घमायुर्येष्टी स्यात् ॥ १ ॥

दृढ पुष्पधन्वारस—स्वर्णमरुम एक भाग, पारद मरुम दो भाग, कान्तलीडमरुम तीन भाग और स्वर्णमासिक मरुम चार भाग लेकर एकत्र खरल कर तेजबल के पत्तों के काथ, कमल के स्वरस, जेठीमधु के काथ, सेमर की खचा के स्वरस वा काथ तथा पान के स्वरस में धूपक् २ भावित कर रख ले । इस पुष्पधन्वा नामक रस को दो बल्ल प्रमाण की मात्रा से गोघृत, मधु, दूध तथा शर्करा के अनुपान से सेवन करने से बहुत सी जिन्यों को भोगने का सामर्थ्य होता है, दीर्घ आयु होती है तथा मनुष्य बलवान होता है ॥ १ ॥

लघुपुष्पधन्वा रस —

हरजमुअगलोहान्यभ्रक च त्रिभाग कनकविजययष्टीशाशमलीनागवखलपः ।

सितमधुघृतधुपै सेवितो धीयदृष्टि रमयति घटुकान्ता पुष्पधन्वा रसा स्यात् ॥ १ ॥

लघुपुष्पधन्वा रस—पारदमरुम वा रससिन्दूर, नागमरुम और लीडमरुम प्रत्येक एक २ भाग तथा अन्नक तीन भाग लेकर एकत्र खरलकर धतूरे के स्वरस, भांग के स्वरस, जेठीमधु के रस वा काथ, सेमर की खचा के स्वरस वा काथ तथा पान के स्वरस के साथ धूपक् २ खरल में मर्दन कर रख ले । इस रस को शर्करा मधु, घृत तथा दूध के अनुपान से सेवन करने से यह पुष्पधन्वा रस बहुत सी जिन्यों के साथ रमण करने की शक्ति देता है ॥ २ ॥

मदनकामदेवो रस—

सारं यज्रं सुवर्णं च ताम्रसूतकगंधकम् । लोह क्रमविबृद्धानि कुयांवेतानि माप्रया ॥ १ ॥  
विमर्षं कन्यकाद्रावैर्यसेखाचमये घटे । विमुद्गपिठरीमथ्ये धारयेत्सैन्धवैर्नृते ॥ २ ॥  
चद्धि धामै शानै कुयांदिनैक तु तदुद्धरेत् । स्वाङ्गपीतं च सन्धुचूर्णं भाषयेद्वर्कदुग्धकै ॥ ३ ॥  
अश्वगन्धा च काकोली धामरी मुसली पुश । त्रिघार च रसैर्भाष्यं सतावर्षाश्च भाषयेत् ॥ ४ ॥  
कस्तूरीभ्योपकर्पूरं कङ्कोलैलालघङ्गकम् । पूर्वचूर्णाद्वृष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ ५ ॥  
सर्वैः समां शर्करां च द्रव्यां शाणोमित पिषेत् । गोदुग्धद्विपलेनेव मधुराहारसेवक ॥ ६ ॥  
अस्य प्रमायासौन्दर्यं यल सेजो विवर्धते । तरुणीं रमयेद्वृद्धो न च हानिः प्रजायते ॥ ७ ॥

मदन कामदेव रस—रौप्यमरुम १ भाग, हीरकमरुम २ भाग, सुवर्णमरुम ३ भाग, ताम्रमरुम ४ भाग, शुद्ध पारद ५ भाग, शुद्ध गंधक ६ भाग तथा लीडमरुम ७ भाग लेकर प्रथम पारद गंधक की कञ्जली कर अन्य द्रव्यों को मिलाकर खरलकर कुमारी के पत्तों के स्वरस में विधि पूर्वक खरल में मर्दन कर कांच के पात्र में रखकर मुसमुद्रा करके एक हाँदी में रखकर सेवानमक के चूर्ण से भर देवे मन्दाग्नि से पाक करे अर्थात् चार पहर तक अशिराम मन्द २ अग्नि देता रहे स्वागशीत होने पर निकाल कर शीशी के ओषधि को चूर्ण कर आक के दूध, असगंध के स्वरस, काकोली के स्वरस, केवाच के बीज के काथ, मुसली के स्वरस तथा गोखरू के काथ वा स्वरस से धूपक् २ तीन २ बार भावित कर पुनः शतावरी के रस से तीन बार भावित करे । पश्चात् कस्तूरी,



सोठ, मरिच, धीपल, कपूर, ककौल मरिच, श्लायची और लौंग का समान मिलित पूर्ण लेकर उपरोक्त शीशी के पूर्ण अष्टमांश भाग मिलाकर खरल करे तथा सब मिलकर जितना हो उसके समान भाग श्वेतशकरा मिलाकर रख लेवे । इसको एक शाण (चार माशा) प्रमाण की मात्रा से दो पल गौ के दूध के अनुपात से पान करे तथा मधुर रस युक्त भोजन करे तो इसके प्रभाव से श्वदरता बल तथा वृज बढ़ता है, श्वद पुरुष भी शरणी स्त्री के साथ रमण करता है तो इसके शरीर की हानि नहीं होती है ॥ २-७ ॥

महाराजवटीरस—बीजं ब्रह्मतरोर्विधाय बहुधा खण्डं प्रियामोषितं

ध्रुगो दुग्धघरेऽथ शुष्कमप सद्रूधेन सिध्यतिना ।

युक्त काचघटीयुतं हुतमुजो योगेन च स्वान्ततः

सख सख निगृह्य काचघटिते भाण्डे सुखं स्थापयेत् ॥ १ ॥

ससैल वदलमात्र तु साम्बूलीपत्रग चरेत् । सिप्या तत्र रसं वल्लभमनुपप्रेण मर्दयेत् ॥ २ ॥

युक्त्या तां कज्जलीं युक्त्या साम्बूल क्षीलयेदनु । शाकाम्ल मापयत्कादिवर्जितं पप्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

श्वनेन योगरात्रेण पण्डोऽपि पुरुषायते । अपूर्ववच्छत गच्छेद्दैनितानां मदागणान् ॥ ४ ॥

बलीपलितविष्वसी योगोय चयकुष्ठजित् । घातपित्तकफातङ्गहस्तिपद्मानन परम् ॥

भासयनेन सम लोके किंचिद्व्यग्रसायनम् ॥ ५ ॥

महाराजवटी—पलास के बीजों को लेकर कुट्टे २ करके तीन पहर तक बरुगी के दूध में मिखावे पक्षात् निकालकर सुखा कर इसमें पन्द्रहवां भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कांच के पात्र में रखकर विधियत् कपरमिट्टी आदि करके अग्नि पर रख कर उसका तेल वा सप्त निकालकर काच की शीशी में रख लेवे । उस सत्तरुपी तेल की एक बरल प्रमाण लेकर पात्र के पत्ते पर रख कर उसमें एक बरल प्रमाण शुद्ध पारद मिलाकर अजुलो से मर्दन कर अब कबजली हो जाने तक उसे पान सहित खाकर पुन पान खावे । इसके सेवन के समय पत्रशाक, अम्लद्रव्य, माषके बटक आदि त्याग कर पथ्य का सेवन करे । इस योगरात्र के सेवन से मनुष्य पुरुष भी पुरुषत्व की प्राप्त होता है तथा मनुष्य सौ स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी शक्ति का हास नहीं होता है तथा इसके सेवन से बली पलित रोग, श्वय रोग तथा कुष्ठ रोग की नष्ट करता है, घात-पित्त एवं कफ सम्बन्धी रोग की नष्ट करने के लिये तो यह इस प्रकार है जिस प्रकार हाथियों के लिये सिंह । इसके समान संसार में कोई दूसरा रसायन नहीं है ॥ २-५ ॥

पूर्णन्दुनामा रस —

शाशमण्युष्यैर्द्रवैर्मघं पटैकं शुद्धसूतकम् । यामह्वयं पचेत्तापि वधे बद्रूप्याऽथ मर्दयेत् ॥ १ ॥

दिनैकं शाशमलीद्रावैर्मद्विरावा घटीकृतम् । वेष्टयेन्नागवत्श्याऽथ निधिपेकाचभाजने ॥ २ ॥

भाजनं शाशमलीद्रावैः पूर्णं यामह्वयं पचेत् । घालुकायन्त्रमप्ये तु श्व जीर्णं समुद्धरेत् ॥ ३ ॥

त्रिगुणं भक्षयेत्प्रातर्नागवन्नीदलान्तरे । मुसलीं ससितां शीरं पटैकं पाययेदनु ॥ ४ ॥

इस पूर्णन्दुनामाऽयं सम्यग्धीर्यकरो भवेत् । कामिनीनां सहस्रैकं नरा कामयते श्रुयम् ॥ ५ ॥

पूर्णन्दुरस—शुद्ध पारद को सेमर की त्वचा के स्वरस में पन्द्रह ग्नि तक मर्दन कर उसे बरु में बाँध कर सेमर के रस में दो पहर तक अग्नि पर पाक करे पुन मर्दन कर सेमर के रस में दिन भर (चार पहर) खरल कर बटी बना केवे पुन उस बटो की पान के पत्तों में छपेट कर कांच के पात्र में रख देवे पुन उस पात्र की सेमर के स्वरस से पूर्ण कर उसे बाजुका पत्र में रखकर दो पहर तक अग्नि पाक करे अब उसमें का द्रव पदार्थ पच जाने (धरा जावे) तक उतारकर उससे ओषधियों की निकाल कर खरल कर रख लेवे । इस कोषधि को दो रपी के प्रमाण पान के पत्ते में रखकर प्रातःकाल खावे तथा भूमण्णी का पूर्ण और शर्करा को एक पल दूध में मिलाकर अनुपात करे । यह पूर्णन्दु नामक रस शीर्य की मलीमोषि ब्रह्म करता है । इसके सेवन से मनुष्य एक सहस्र स्त्रियों के साथ भीगी की शक्ति प्राप्त करता है ॥ २-५ ॥

रसभययोग—

शपरं धारयेन्न्य सैल्यहङ्किना षण्णम् । तपस्तस्मिन्चिपोसूर्त्तं ताममार्त्तं छात्रा परम् ॥ १ ॥

घर्षयेत्सोहृदभ्यांऽथ घावज्वलति पद्मिना । खपरंस्यान्तर घट्टियंदा उपलति वेचलम् ॥२॥  
अथो वट्टि तदा मन्द विधाय घट्टयेत्पुनः । लोहदभ्यां भवेद्यावन्नस्य सत्स्फटिकोपमम् ॥ ३ ॥  
सदादाय प्रयोक्तव्य रोगेषु सकलेष्वपि । अग्निमान्द्य च पाण्ड्य च कासश्वासमर्गद्वराः ॥३॥  
यणास्य विविधाः सर्वे घलयाः पलितानि च । नश्यन्त्यनेन योगेन सत्यं शिथिलघोदितम् ॥५॥

रसमरग योग—एक मिट्टी के सप्पर में शुद्ध गन्धक ( आँबलासार ) रसकर अग्नि पर रखले, लुगमर में जब गन्धक गल कर तेल के समान हो जाये तब उसमें घसी के समान भाग शुद्ध पारद मिलाकर लोहे की कलछी से घोटता रहे तथा आँच देता रहे, अब खप्पर में ( पारद गन्धक के स्थान पर ) केवल अग्नि [जलता हुआ दिखार दे तब अग्नि मन्द करके उसे घोटता रहे जब उसमें स्फटिक के समान श्वेत भस्म हो जाये तब उसे छतार कर भस्म को लेकर इसका प्रयोग सभी रोगों में करे । इसके सेवन से मन्दाग्नि, नर्पुसकता, कास, द्वास, मगन्दर, अनेक प्रकार के मग, बली एवं मलित रोग सभी नष्ट हो जाते हैं, यह सत्य है तथा शिव जी की कही हुई बात है ॥ १-५ ॥

ध्वजवृद्धिकरणम्—

शौं च्चुदातगरमरिचै पिप्पलीसै घवाभ्यां प्रत्यङ्गुष्पीपवतिलगुडश्वेतसिद्धार्थमायैः ।  
श्लक्ष्णीभूतैर्भवति मिलितं याजिगन्धासनायैः श्लोणीधोघ्नमुजकुचशिरःशेफसां वृद्धिकारी ॥

ध्वजवृद्धिकर योग—मधु, छोटी कटेरी, तगर, मरिच, पीपल, सैपानमक, अपामार्ग मूल, जी, तिल, गुड़, श्वेत सरसों, बद्ध तथा असगन्ध की समान भाग लेकर विधिपूर्वक ादृक्षण चूर्ण करके छेप करने से, नितम्ब, कान, गुजा, कुच, शिर तथा लिङ्ग की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

सकुष्ठमातङ्गबलापलानां घचाशगघागजपिप्पलीनाम् ।

तुरङ्गशार्ङ्गोर्नयनीतयोगालेपेन लिङ्गमुदात्तवमेति ॥ २ ॥

कुष्ठादि छेप—शू, नागबला, बला, बच, असगन्ध, गजपीपल और कनेर के मूल को समान भाग लेकर विधिवत् दृक्षण चूर्ण कर मिलाकर छेप करने से लिङ्ग मूसल के समान ( स्थूल ) हो जाता है ॥ २ ॥

अङ्गमैथुनम्—

स्मरण कीर्तन केलिः प्रेक्षण गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पोऽप्यवसायश्च क्रियानिर्हृत्तिरेव च ॥ १ ॥  
पृतन्मैथुनमथाङ्ग प्रवदति मनीषिणः । विपरीतं प्रह्लाचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥ २ ॥

अष्टांग मैथुन—स्मरण ( स्त्री का स्मरण, एवं विषय वासना सम्बन्धी बातों का स्मरण ), वासना सहित नृत्यादि में प्रवृत्त होना अथवा विषय सम्बन्धी गीतादि में प्रवृत्त रहना, स्त्री से विषय सम्बन्धी बात करना, कामयुक्त दृष्टि से स्त्री को देखना, स्त्री से गोप्य सम्भाषण करना, स्त्री सम्बन्धी अनेक बातों पर विचार एवं निश्चित करना, कामवासना की छुप्पि का यत्न करना तथा मैथुन करना । ये मैथुन के आठ भेद मुनियों ने कहा है । इन आठों प्रकार के लक्षणों से निवृत्त रहना प्रह्लाचर्य कहा जाता है ॥ १-२ ॥

कामेश्वर—

जातीफलं च सौराष्ट्री कृष्णधत्तुरधीजकम् । जातीपुष्पमफेन च नागं दिङ्गुलमेव च ॥ १ ॥  
पुतानि समभागानि खसकाद्येन मर्दयेत् । गुक्षामाग्रां च घटिकां सितया सह मर्दयेत् ॥१॥  
नाम्ना कामेश्वरः प्रोक्तो रमते कामिनीशतम् ॥ २ ॥

कामेश्वर रस—जायफल, पिटिकी अथवा गोपी चन्दन, कुम्भ धतूरे के शुद्ध बीज, जावित्री शुद्ध अफीम, नागमस और शुद्ध दिङ्गुल को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्णकर खस के काय के साथ मर्दन कर एक गुक्षा के प्रमाण की बटी बनाकर शर्करा के अनुपान से भक्षण करने से यह कामेश्वर रस स्त्री स्त्रियों की भोगने की शक्ति देता है ॥ १-२ ॥

यज्ञेश्वर—

रस यज्ञसम कृत्वा चतुर्भागं च गन्धकम् । कुमारीरससंयुक्तं दिनमेकं तु मर्दयेत् ॥१॥  
मन्दमध्यमतीक्ष्णवाल्मुकिपायन्मर्गं पचेत् । अश्वगघासृत्तासारमोघारसृशतावरीः ॥ २ ॥

गोक्षरधात्री वृध्मोष्ठी चाराही पद्मभागधी । त्रिकला फकटी मुस्ता घटीमधुसमन्वितम् ॥३॥  
 सर्वसाम्य सितायुक्त चूर्णं कर्पाथसंपुतम् । गुञ्जाचतुष्टयां भात्रां गोक्षीरमनुपानतः ॥ ४ ॥  
 प्रातःशय्याय सेवेत छयणाम्ल च धर्जयेत् । षड्भुमूत्र मूत्रहृत्कृ रक्तमूलप्रमेहकम् ॥ ५ ॥  
 मधुमेहं नष्टशुक नष्टलिङ्ग च नाशयेत् । सर्वमेहप्रसामनो यज्ञेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥

यज्ञेश्वर रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध वग एक भाग लेकर वग को अग्नि पर पिपलावर पारद मिलाकर मर्दन कर उसमें शुद्ध गवक चार भाग मिलाकर मर्दन कर पुन कुमारी पत्र स्वरस में एक दिन ( चार पहर ) मर्दन करे पश्चात् काच की शीशी में कपर मिट्टी करे बाउ का पत्र में विधिपूर्वक रख कर क्रम से मन्द, मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि से चार पहर तक पकाये, स्वांगशीत होने पर उससे ओषधियों को निकाल कर रख लेये तथा असगव, गुह्व का सघ, मोचरस, शतावरी, गोक्षर, शोमला, पेठा, बाराहोक्रन्द, तैजपात, पीपल, आमला, हरद, बहेवा, ककड़ी के बीज, नागरमोथा और जेठीमधु प्रत्येक समान भाग लेकर उत्तम चूर्णकर जितना हो उसके समान भाग शर्करा मिलाकर इस मिश्रित चूर्ण में से आधा कर्प लेकर उसमें उपरोक्त प्रयुक्त रस में चार रसी मिलाकर गोदुग्ध के अनुपात से सेवन करे । इसका प्रातःकाल ही सेवन करना चाहिये तथा इसके सेवन के समय रुबण तथा अम्ल रस को त्याग दे । इसके सेवन से षड्भुमूत्र, मूत्रहृत्कृ, रक्तमेह, मधुमेह, नष्ट शुक तथा नष्ट लिङ्ग रोग नाश होता है तथा यह सभी प्रमेहों को नष्ट करनेवाला है ॥ २-६ ॥

शतावरीशयान्धा च वानरी मुशली तथा । गोकण्टो शर्करापीरं पिपेकटेन्द्रियो नरः ॥ १ ॥

शतावरीदि चूर्ण—शतावरी, असगव, केराच के बीज, मुसली और गोक्षर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर शर्करा सुकं दूध के अनुपात से नख्येन्द्रिय मनुष्य को पीना चाहिये । इससे नर्पुंसकता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिलगोष्ठरचूर्णैः साधितं छागलं पयः । पीत्वा सशर्करापीद् शीघ्रं गच्छति पण्डता ॥ २ ॥

तिलगोष्ठरादि चूर्ण—तिल तथा गोक्षर समान भाग लेकर चूर्ण कर बकरी के दूध में पका कर उसमें शर्करा तथा मधु का प्रथेय देकर पान करने से शीघ्र नर्पुंसकता नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥  
 सेपेत गोष्ठर चूर्णं छागपीरिण साधितम् । शर्करामधुसंयुक्तं दीप्त गच्छति पण्डता ॥ ३ ॥

गोष्ठरा पय—गोक्षर का चूर्ण बकरी के दूध में पकाकर शीतल होने पर शर्करा तथा मधु का प्रथेय देकर पान करने से नर्पुंसकता शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सिन्दूर कमकं पीषं विषया चरवीजकैः । जातीफल जातिपर्णी कटुद्विमुमपेगकम् ॥ ४ ॥  
 ससुमशोषसयुक्तं छपञ्चं च सधैव च । विजयारसमैर्मयं वाममेक प्रसारयेत् ॥ ५ ॥

षड्दीपीयमात्रं तु श्रीरात रमते मुश ।

सिन्दूरदि योग—शुद्ध सिन्दूर, शुद्ध भूरे के बीज, शुद्ध भांग, गोक्षर के बीज, जापवर, आवित्री, कहुभा सहिजन, शुद्ध अफीम, समुद्रशोष तथा रुबण को समान भाग छकर विषिय चूर्णकर एकत्र खरक में मर्दन कर शुद्ध भांग के स्वरस के साथ एक पहर तक मर्दा कर एक रेर के बीज के प्रमाण से लेकर भांग के रस में मिलाकर अग्नि पर मर्दन करने से मनुष्य भानन्द पूर्वक सौ क्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ४-५ ॥

अन्विशोषं च सिद्धायोषधुषण्डमितान् प्रथक् ॥ ६ ॥  
 अथशिटं च तद्दुग्ध सार्यकाके विषेधर । विन्दुपात म कुरुते पात्रीकरणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

अन्विशोषादि योग—समुद्र शोष तथा श्वेत सरसों दोनों शुद्ध १ चार १ बरत ( बारद २ रसी ) लेकर चूर्ण कर गादे दूध के साथ सार्यकाक पान करने से मीथुन के समय मनुष्य का एक मुन्द भी बीर्य नहीं गिरता है । यह उत्तम बाजीकरण है ॥ ६-७ ॥

रसमरमयोग—  
 शुद्ध सूतं द्विधा गन्ध टोहपात्रेनिर्हरिषये । आर्द्रम्यप्रोषधपकेन चालपञ्जरमतां मयेत् ॥  
 रक्तिभाप्रितयं मुक्तं रेतो पुष्टिर्हर परम् ॥ १ ॥

रसमरम योग—शुद्ध पारद एक भाग तथा शुद्ध गन्ध दो भाग लेकर एक छोटे के पान को अग्नि पर रखकर उसमें एक दूरा बरगर के कण्डा से थकाया रहे जब थकते थकते

अग्नि पर वद पारद गन्धक भरम के रूप में हो आवे तब उतार कर रख लेवे । इसे दो रशी प्रमाण की मात्रा से खाने से वीर्य अत्यन्त पुष्ट होता है ॥ १ ॥

वीर्यस्तम्भवटी—

जातीफलं लयङ्ग च जातीपत्र सकुङ्कुमम् । सूक्ष्मैला चाहिफेनं च त्वाकारकरमं तथा ॥ १ ॥  
प्रत्येक कर्षमात्राणि कर्पूरं शाणमात्रकम् । नागवल्लीदुलरसैर्वटी चणकसनिभा ॥

वीर्यस्तम्भनी द्रोपा पलपर्णाग्निदीपनी ॥ २ ॥

वीर्यस्तम्भ वटी—बायफर, लौंग, जावित्री, कान्दनीरी केसर, छोटी इलायची, शुद्ध अफीम, अकरफरा प्रत्येक एक २ कर्ष और शुद्ध कपूर, एक शाण ( चार माशा ) लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर पान के पत्र के स्वरस में मर्दन कर चने के समान बटी बनाकर सेवन करने से वीर्य का स्तम्भन होता है तथा बल, वर्ण एव अग्नि दीप्त होती है ॥ १-२ ॥

कफिकच्छूपाक —

निस्तुप यानरीधीजं शृग्या विंशत्पलानि च । त्रिंशत्पलां सितानं दत्त्वा घृतं दत्त्वा पलाएकम् ॥  
दुग्धाढकसमायुक्तं मृदुना वद्धिना पचत् । यावद्दूर्वाप्रलेपः स्यात्तन्मध्ये घृणितं द्विपेत् ॥ २ ॥  
जातीफल त्रिकटुकं त्रिगच देवपुष्पकम् । अक्वकरं जातिपत्री कोकिलापीजकेसरम् ॥ ३ ॥  
पुनर्नवा पले द्वे च मुसली साहिफेनकम् । पारद लोहचूर्णं च स्वध्नक च पलार्धकम् ॥ ४ ॥  
चन्दनागरुकस्तूरीकपूरं शाणमात्रकम् । पलार्धं भक्षयेत्सप्त क्रमाद्वीर्यघलप्रदम् ॥ ५ ॥

कफिकच्छूपाक—केवाच के बीज का छिलका निकाल कर २० पल, चीनी १० पल तथा दूध १ आदक लेकर सबको एकत्र कर मन्द अग्नि पर पाक की विधि से पाक करे जब दूध गाढ़ा होकर करछुल में लगने लगे तब आगे रखे हुए ओपधियों के चूर्ण को उसमें मिलावे बायफर, सौंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी इलायची, तेजपाठ, लौंग, अकरफरा, जावित्री, तालमखाना, नागकेसर तथा पुनर्नवा प्रत्येक दो दो पल तथा मुसली, शुद्ध अफीम, पारदभस्म वा रससिन्दूर, लोहभस्म, अन्नकमस प्रत्येक आधा २ पल और रक्तचन्दन, अगर, कस्तूरी तथा शुद्ध कपूर प्रत्येक एक २ शाण लेकर विधिवत् दृष्टव्य चूर्ण करके उपरोक्त पाक में मिलाकर रख लेवे । आपा पल प्रमाण की मात्रा के क्रम से ( बढाकर ) भक्षण करने से वीर्य तथा बल की वृद्धि होती है ।

अथ रसवैकृतियोगाऽभिहितव्यते ।

अनितविविधदाहे शीततोयामिपेको मलयजघनसारो लेपन मन्ववातः ।

तरुणवधि सितार्क मारिकेलीफलाम्भो मधुरशिशिरपान शीतमन्यश्च शस्तम् ॥ १ ॥

रस वैकृति योग—पारदादि रसों के भक्षण से जो अनेक प्रकार के दाहदि विकार उत्पन्न होते हैं उसमें शीतल जल का अभिषेक ( सिंचन ) करना चाहिये, मलयजागिरि चन्दन तथा कपूर का लेप करना चाहिये, मन्द २ वायु का सेवन करना चाहिये, तरुण ( मधुर ) दहीचीनी मिलाकर खाना चाहिये, नारियल का जल पीना चाहिये, मधुर रस युक्त तथा शीतल पेय पीना चाहिये । इसी प्रकार अन्य शीतल उपचार एवं पदार्थ का सेवन करना उत्तम है ॥ १ ॥

सौभाग्यमेघनादाङ्घ्रिसितामशुकचन्दनम् । तुपोदकेन पातम्यं सर्वस्मिन् रसवैकृते ॥ २ ॥

सौभाग्यादि योग—शुद्ध सोहागा, चौराई शाक का मूल, चीनी, गुलहठी तथा चन्दन को समान माग लेकर विधिवत् चूर्ण कर तुपोदक ( भूसी के धोये हुए जल ) से सभी प्रकार के रस विकार में पिलाना चाहिये । इससे सभी प्रकार के रस दोष ( पारद वैकृति आदि ) नष्ट होते हैं ॥  
दुर्गो चेशुरसो देयः कपित्थं वा सितान्वितम् । कुमारीगिल्लेपश्च सर्वाङ्ग्यं प्रशस्यते ॥ ३ ॥

चीरं मधुसितोपेतं छायो घाऽमृतविन्दुक । उपचारा अमी सर्वं प्रशस्ता रसतापिनाम् ॥

रसदाहे भवेत्सर्वं पित्तश्वरभिपग्जितम् ॥ ४ ॥

पारा के सेवन से ( रस के विकार से ) यदि धमन होने लगे तो रस का रस पीना चाहिये अथवा चीनी के साथ मिलाकर कष का चूर्ण सेवन करना चाहिये, कुमारी के पर्णों का स्वरस तथा जमीरी नीबू का स्वरस सर्वाङ्ग से लेप करना चाहिये । मधु तथा चीनी मिलाकर दूध पिलाना चाहिये अथवा गुरुच एवं अलपिप्पली का काथ पिलाना चाहिये । ये सभी उपचार पारा

सेवन से सन्तप्त मनुष्यों के लिये षामप्रद है । रस के कारण उत्पन्न हुए दाह ( विकार ) में पित्त  
ज्वर नाशक सभी क्रिया करनी चाहिये ॥ १-४ ॥

रससार—मुष्काविद्रुमयद्रुमूविसहितं बवलं पृथक् स्वर्गक

द्विघ्नासत्त्वगुणासितानघनित चाऽऽल्लोह्य सम्मस्येत् ।

संज्ञाते वृषि नारिकेलसलिलं सत् कालिक प्राशयेत् ।

सर्वस्मिन् रसवैहृते च शदितं ह्येतत्तद्योगामृतं ॥ १ ॥

रससार—मुष्कामरुम, मृंगाभरुम और वगमरुम प्रत्येक एक २ बरत ( १-१ रत्ती ) करके  
उसमें स्वर्गमरुम एक बरत मिलाकर मलीमौति सरल कर गुरुक के सत्त, बंशलोचन, चीनी तथा  
दूध के मक्खन यथा प्रमाण सबको मिलाकर रस लेवे । इस ओषधि के राने के पश्चात् सब दूधा  
हो सब नारियल का सदा निःसारित जलपान करे । सभी प्रकार के रस के विकार में ये योग  
अमृत के समान गुणकारी कहे गये हैं ॥ २ ॥

सर्वस्मिन् रसवैहृते हि शिशिरं स्वैच्छाम्बुपानादिकं

वेप्यं तापशामाय दाहिनतरोरप्राणि दूर्याशिकाः ।

सपेप्यामलयो दवीत च तदा स्वैच्छाम्बुतोम रयजेद्

यावत्पूर्वयत्न भवेत्पटुतर तावच्छियं न स्पृशत् ॥ २ ॥

सभी प्रकार के रस ( पारद ) के विकार में शीतल जल का इच्छापूर्वक पान करना चाहिये,  
शीतल पेय तापशामन होने के लिये देना चाहिये, भ्रनार के कोमल पल्लव, दूध की खड़ तथा  
ओषधियों के फल भी पीसकर पीना चाहिये तथा इच्छापूर्वक जब तक शरीर में पूर्ण बर से भी  
अधिक बर न हो जाये तबतक स्त्री का स्पर्श तक नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

घटीपटोलनिष्कायो मधुना मधुरीहृत् । तीक्ष्णपित्तज्वरोन्मादनादानो रसदाहजित् ॥ ३ ॥

घट्यादि योग—जेठीमधु तथा परबल के विधिपूर्वक बने काप को मधु के प्रक्षेप से मधुर  
( मीठा ) कर पान करने से तीक्ष्णपित्तज्वर के कारण उत्पन्न उन्माद तथा पारद के विकार से  
उपपन्न दाह भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

द्विघ्नापटीघनोक्षीरधान्यपरपट्टचन्दनैः । रसदाहं जयेत्कायो जण्डवशीकृतंयुतः ॥ ४ ॥

द्विनादि काप—गुरुक, जेठीमधु, गारमोषा, छस, पनियां, पित्तपापका और श्वदन को  
समान भाग लेकर विधिपूर्वक काप करके चीनी तथा बंशलोचन का प्रक्षेप देकर पान करने से रस  
के विकार से उत्पन्न दाह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चन्दनोक्षीर्यशीतैश्च कापः पण्डोपलान्घितः । रसदाहं जयापाद्य पित्तज्वरहरः परः ॥ ५ ॥

चन्दनादि कषाय—रक्तचन्दन, सुगन्धवाला तथा पित्तपापका के विधिबद्ध बने काप में मिमी  
का प्रक्षेप देकर पान करने से क्षीम ही रस के विकार से उत्पन्न दाह नष्ट होता है । यह काप परम  
पित्तहर नाशक है ॥ ५ ॥

दूर्यासोत्पलकिञ्जल्कमजिष्ठाशैलबासुकम् । सितसितमुशीरं च मुस्तं चन्दनपत्रकम् ॥ ६ ॥

तासम च भयेरपीरं पूतमस्यं विपाशयेत् । जीवकर्मकी मेदा महामेदा सधेय च ॥ ७ ॥

फाकोली शीरकाकोली गृहीका मधुकं तथा । मुद्गपर्णी मापपर्णी विहारी रक्तचन्दनम् ॥ ८ ॥

दाकैरामधुर्मयुक्तं सिद्धं विष्ठावपेद् पूतम् । रक्तपित्तविकारेषु पातरज्यादेषु च ॥ ९ ॥

शीगृह्णते प्रदातव्यं पाजीकरणमुत्तमम् । अङ्गदाहं निरोदाहं ज्वर पित्तसमुत्तमम् ॥ १० ॥

दूरीदि पूत—दूध, नीलकमल का शेर, पल्लवा का सुसम्भर, चीनी, श्वेत रास नागरभीषा,  
रक्तश्वदन और पद्मकाष्ठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक करके कर उससे पत्रगुण एक प्रस्य  
एक लहर उसमें समान भाग ( एक प्रस्य ) गीदुग्ध देकर घृतपाक की विधि से मद्ध अग्नि पर दूध  
सिद्धकर उसमें जीवक, कर्बमकी, मेदा, महामेदा, फाकोली, शीरकाकोली, सुगन्ध, मुद्गपर्णी  
मुद्गपर्णी, मापपर्णी, विशारीरन्द और रक्तचन्दन का समान मिश्रण पूर्ण, शुकटा तथा मद्ध  
मिलाकर रस दे । इस पूत का रक्तपित्त के विकार में नागरक्त रोग में तथा शीर्ष की बीमारी में  
देना चाहिये । यह उत्तम पाजीकरण है । अङ्ग के दाह, ज्वर के दाह तथा पित्तज्वर को भी यह  
पूत नष्ट करता है ॥ ६-१० ॥

विकारो यदि जायेत पारदान्मलसंयुतात् । गन्धक सेवयेत्तत्र शोभितं विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥

अशुद्ध पारद दोष की शान्ति—पारद के मलयुक्त रह जाने से यदि सेवन करनेवाले को विकार उत्पन्न हो जाये तो विधिपूर्वक शुद्ध किया हुआ गन्धक का सेवन कराना चाहिये ॥ ११ ॥

गन्धक मापयुग्मं च गागवल्लीवल्कः सह । छादेश्चेत्पारदप्रसतो दोषशान्तिस्तदा भवेत् ॥ १२ ॥

शुद्ध गन्धक दो माशा छेवर पान के पत्ते के रस के साथ खाने से पारद के कारण उत्पन्न दोष की शान्ति हो जाती है ॥ १२ ॥

अन्यथा—

छाद्यापूष्पाण्डखण्डांश्च तुलसीं शतपुष्पिकाम् । लघुङ्ग वत्सनागं च गन्धकेन समाप्रकम् ॥ १३ ॥

कर्पमात्र पयो मुक्तं सर्षपं तत्र पृथक् पृथक् । सर्षपयोगोत्तरासाध्यः सूतदोषविकारनुत् ॥ २ ॥

हाल, दूधेत कुष्माण्ड ( पेठा ), शर्करा, तुलसी, सौंफ, लवंग और शुद्ध वत्सनाम विष के यथा साध्य स्वरस एवं चूर्ण के साथ माया के अनुसार एक कर्प प्रमाण तक पृथक् २ शुद्ध गन्धक को खाकर दूध का अनुपात करने से असाध्य पारद दोष भी नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

अन्यथा—

नागायलीरसप्रस्थ भृङ्गराजरस तथा । तुलस्याश्च रसं प्रस्थं छागवुग्धसमांशकम् ॥ १ ॥

मर्दनं सर्षगाग्नेषु यामयुग्मं दिनत्रयम् । स्नानं शीतलतोयेन सूतदोषप्रशान्तये ॥ २ ॥

पान का रस एक प्रस्थ, भागर का रस एक प्रस्थ, तुलसी का रस एक प्रस्थ तथा बकरी का दूध सबके समान ( १ प्रस्थ ) मिलाकर दोषहर तक सम्पूर्ण शरीर में तीन दिन मर्दन करे तथा शीतल बल से स्नान करे तो रसते पारद विकार ( ताप-दाहादि ) नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

### अथ रसायनाधिकारः ।

तत्र रसायनस्य लक्षणमाह—

यज्जराय्वाधिविष्वसि घयसः शतम्भकं तथा । अष्टुर्ष्यं वृंहणं घृष्य भेषजं तद्वसायनम् ॥ १ ॥

रसायन के लक्षण—जो ओषधि बुढापा तथा व्याधियों का नाश करे, आयु की स्थापना करे, नेत्र को बल देवे, धातुओं को बढ़ावे तथा धीर्य में शक्ति प्रदान करे उसे रसायन कहते हैं ॥ १ ॥

रसायनस्य फलमाह—

धीर्घमायुः स्मृतिं मेघामारोग्यं तरुणं घय । वैदेहीन्द्रियबलं कान्तिं नरो विदेद्रसायनात् ॥ १ ॥

रसायन के फल—रसायन ओषधि के सेवन करने से मनुष्य को आयु की दीर्घता, स्मृति शक्ति, बुद्धि, आरोग्यता, युवावस्था, शरीर तथा शिद्रियों में बल और शरीर की कान्ति प्राप्त होती है ॥ १ ॥

तद्विधिमाह—

पूर्वं घयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् । प्रयुक्तीत भिषक्प्राज्ञः स्थिग्धशुद्धतनोः सदा ॥

रसायन विधि—वैष सदा मनुष्य की आयु के पूर्व अथवा मध्य भाग में ( १५ वर्ष से ७० वर्ष तक की अवस्था में ) प्रथम र्नेहन देकर पश्चात् वमन विरेचन से शरीर शुद्ध कर तब रसायन ओषधि का प्रयोग करावे ॥ १ ॥

नाविशुद्धदारीरस्य युक्तो रसायनो विधिः । आभाति वाससि विक्रान्ते रङ्गयोगे ह्वाऽऽहितः ॥

रसायन का दोष—जिसका शरीर र्नेहन, वमन, विरेचन से शुद्ध नहीं किया गया हो उसको रसायन ओषधि नहीं देनी चाहिये । जिस प्रकार मलिन बख पर पूर्ण रूपेण रंग नहीं आता है वसी प्रकार अशुद्ध शरीर पर रसायन का गुण पूर्ण रूप से नहीं प्रकट होता है अथवा अहित भी करता है ॥ २ ॥

तदुदाहरणानि—

शीतोष्णं पयः शौद्धं घृतमेकैकशो द्विशः । त्रिंशः समस्तमथ वा प्राक् पीतं स्थापयेद्द्वयः ॥ १ ॥

शीतल बल दूध, मधु तथा घृत की पृथक् २ अथवा दो को एकत्र मिलाकर अथवा तीन को एकत्र मिलाकर अथवा सबको एकत्र मिलाकर नित्य प्रातःकाल सेवन करने से आयु की स्थिरता होती है ॥

मण्डूकपर्णां स्वरसं प्रमाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।

रसो शुद्धस्यासु समूलपुष्पा कश्कं प्रयोज्या खलु शङ्खपुष्पाः ॥ २ ॥

आयुः प्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।

मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शक्युष्यी ॥ ३ ॥

मण्डूकपर्णादि योग—प्रातःकाल नित्य मण्डूकपर्णी के स्वरस का सेवन, जेठोमधु के चूर्ण का सेवन, गुरुच के रस का सेवन तथा मूल पुष्पसहित शङ्खपुष्पी के कसक का सेवन आयुवर्धक है, रोगनाशक है, बल, अग्नि, वर्ण, तथा स्वर को बढ़ानेवाला है, मेधाशक्ति को बढ़ानेवाला है तथा रसायन है । विशेष कर शङ्खपुष्पी अधिक मेधावर्धक है ॥ २-३ ॥

विशेषेण तुगापीयां विष्णुस्या लघणेन च । त्रिकला सितया वाऽपि युक्ता मिद्व रसायनम् ॥

त्रिकला रसायन—हरद, बड़ड़ा और आमला का समान मिलित चूर्ण रसायन है, विशेष बंशलोचन के चूर्ण के साथ अथवा पीपल के चूर्ण के साथ अथवा सेंधानमक के साथ अथवा खीनी के साथ इसका सेवन करना रसायन है, यह रसायन का सिद्ध प्रयोग है ॥ ४ ॥

सिंघूर्यशर्कराशुण्ठीकणामशुगुडैः क्रमात् । सर्पादिव्यभया प्रारया रसायनगुणैरपि ॥ ५ ॥

ऋतु हरीतकी—सेंधानमक, शर्करा, सोंठ, पीपल, मधु तथा गुड़ के साथ सर्पा आदि छे ऋतुभों में यथाक्रम से हरीतकी का सेवन करना रसायन वा गुण करने वाला है ॥ ५ ॥

श्रीष्मे सुदयगुढां सुसैधयुतां मेघावनद्वाग्यरे

सार्धं शर्करया दारुघमलया शुण्ठया तुपारागमे ।

पिप्पल्या क्षित्तरे वसन्तसमये चोद्रेण संयोजिता

राजसुक्ष्म हरीतकीमिव शदा नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ १ ॥

श्रीष्म ऋतु में हरीतकी को समान गुड़ से, सर्पाऋतु में सेंधानमक से, शरदऋतु में शर्करा से, देमन्त में सोंठ के चूर्ण से, शिशिरऋतु में पीपल के चूर्ण से तथा वसन्त ऋतु में मधु से हरीतकी के चूर्ण को सेवन करे । इस प्रकार के हरीतकी के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

पुनर्नवस्यार्धपल नवस्य विष्ट पिपेयाः पयसाऽर्धमासम् ।

मासद्वय तत्रिगुण समां प्रा जीर्णाऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ २ ॥

पुनर्नवायोग—नवीन पुनर्नवा आषाढ पौषकर दूध के साथ जो मनुष्य आषाढमास, दो मास, छे मास अथवा एक वर्ष तक पान करता है वह यदि बीर्ण शरीर वाला हो तो भी पुनर्नवीन शरीर वाला हो जाता है । अर्थात् इसके सेवन से बुद्ध भी युवा की भांति हो जाता है ॥२॥

ये मासमेक स्वरसं पिबन्ति द्विने द्विने षट्प्रातःसमुत्थम् ।

चीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समां वार्षं जीवन्मान्नुवन्ति ॥ ३ ॥

शृंगरानरस—जो मनुष्य एक मास पर्वन्त नित्य भांगरे के स्वरस का पान करता है तथा केवल दूध का पन्थ करता है वह बलवीर्य से युक्त होकर एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ॥३॥

शातावरी मुण्डिनिका गुडुची सहस्त्रिकर्णी सहताऽमुकी ।

एतानि कृत्वा समभागपुष्टान्याऽपेन किं वा मनुष्याऽबलित्वात् ॥ ४ ॥

जरास्त्रामृत्युवियुक्तद्वेहो भयेन्नरो वीर्यबलादिपुक्तः ।

विमात्ति दयप्रतिमाः स नित्यं प्रभामयो भूरिविबुद्धसुदिः ॥ ५ ॥

शतावरीदि चूर्ण—शतावरी गुण्डी, गुदूच, हरितक्यं पलाश और मूलली को समान भाग छेकर विभिपूर्वक चूर्णकर गोघृत अथवा मधु के अजुपान से चारने से बुद्धा रोग, मृत्यु (मधुगुल) आदि से रक्षित होकर मनुष्य वीर्य तथा बल से युक्त होता है तथा वह मनुष्य नित्य प्रतिभायुक्त (उत्तरवी) महाबुद्धिमान् होकर देवता के समान शोभित होता है ॥ ४-५ ॥

पीताऽश्वगन्धा पयसाऽर्धमास घृतेन सेलेन मुष्णामुना वा ।

घृतास्य पुष्टिं ययुषो दधाति नरस्य सस्यस्य यथागुदुष्टि ॥ ६ ॥

अश्वगन्धा योग—अश्वगन्ध के चूर्ण को २५ दिन दूध, घृण, सेक अथवा मुष्णोण अन्न के अजुपान से पान करने से कृष्ण (दुग्ध) मनुष्य के शरीर को इस प्रकार पुष्ट करता है कि जिस प्रकार बल की वृद्धि पान की पुष्ट करती है ॥ ६ ॥

सिन्धरे चाश्वत्थवावा कन्दचूर्णं पयोम्बितम् ।

मासमत्ति समप्याजं स हृदोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥

शिशिरऋतु में अश्वगन्धा प्रयोग—शिशिर ऋतु में अश्वगन्ध के मूल का चूर्ण दूध में मिला कर अथवा दूध में पकाकर मधु तथा घृत का प्रयोग देकर जो एक मास पर्यन्त पीता है वह ऋतु ही हो तो युवा के समान हो जाता है ॥ ७ ॥

घृतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि चः समानि शयनस्थितो मधुयुक्तानि त्वादेक्षिषि ।  
घलीपलितघर्जितस्तस्करुणनाग सुहृयो घली बृहस्पतिसम पुमान्भवति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥ ८ ॥

आमलक्यादि—गोधृत, आंवला का चूर्ण, शर्करा, तिल का चूर्ण और पलाश बीज के चूर्ण को समान लेकर मधु मिलाकर जो मनुष्य रात को सोने के समय खाता है वह शीघ्र ही बलीपलित रोग से मुक्त हो जाता है, युवा हो जाता है, हाथी के समान बलवान हो जाता है तथा बृहस्पति के समान सुदिमान हो जाता है । यह भ्रूव है ॥ ८ ॥

असिततिलविमिश्रापल्लवान्मन्त्रयेद्यः सततमिह पयोशी भृङ्गराजस्य मासम् ।

भवति च चिरजीवी व्याधिमिमुक्तदेहो भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥ १ ॥

कृष्णतिलादि योग—कृष्ण तिल तथा भांगरे के कोमल पत्ते को जो मनुष्य निरन्तर एक मास तक खाता है तथा दूध का पथ्य करता है वह व्यापिरहित शरीर वाला चिरजीवी होता है । उसके केश अमर के वन के समान कृष्ण हो जाते हैं तथा वह मनुष्य काम चारी हो जाता है ॥ १ ॥

ससितया घघयाऽऽमलकैरथ त्रिफलया खयचा घृतमिश्रया ।

कनकलोहरजः सदृलं कृत परमिद् हि रसायनमिष्यते ॥ २ ॥

सितादि योग—शर्करा के साथ बघ का चूर्ण अथवा आंवले का चूर्ण मिलाकर अथवा त्रिफला के साथ घृत मिलाकर उसमें इन योगों में से किसी योग के साथ स्वर्गमरम, लौहमरम तथा शुद्ध गन्धक समान मिलाकर सेवन करने से यह परम रसायन कहा गया है ॥ २ ॥

घाघ्रीतिलाभृङ्गरजोविमिश्रान्पे मन्त्रयेयुर्मनुजाः क्रमेण ।

ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याघयोऽप्यामरणाद्भवेयुः ॥ १ ॥

घाघ्रीतिलादि योग—आंवला, तिल तथा भांगरे को समान लेकर चूर्णकर मिलाकर जो मनुष्य नित्य मक्षण करता है उसके केश कृष्ण हो जाते हैं, इन्द्रियां निर्मल हो जाती हैं तथा मृत्यु पर्यन्त जीवन मर रोग से रहित हो जाता है ॥ १ ॥

पञ्च मरुलातकारिद्वरजा शोधयेद्विधिवज्जले । कपाय च पियेच्छीत घृतेनाच्छोष्टालुकम् ॥

पञ्चब्रह्मया पियेद्यावत्सप्ततिं दासयेत्ततः । जीर्णैऽद्याद्योदन वीतं घृतचीरोपसहितम् ॥ ३ ॥

घृतद्रसायनं मेघ्यं घलीपलितनाशनम् । कुष्ठार्शकृमिदोषघ्नं दुष्टशुक्रविशोधनम् ॥ ४ ॥

वर्षमान मरुलातक योग—पांच भिलारों को काटकर शुद्ध कर जल के साथ विधिपूर्वक काप कर जब शीतल हो जावे तब घृत से भोठ तथा ताड़ु को युक्त करके उस काप का पान करे तथा इसी भाँति पाच २ भिलारों को नित्य बढ़ा २ कर काप करता हुआ पान करे तथा नित्य पाच भिलारों तब तक बढ़ाता जावे जब तक सत्तर भिलारों न हो जावें, सत्तर हो जाने पर पांच २ भिलारों को प्रतिदिन न्यून करता जावे तथा अंत में पांच भिलारों जब हो जावे तब समाप्त कर देवे । तथा प्रतिदिन जब बचाव पच जावे तब चावल का भात शीतल कर उसमें घृत तथा दूध मिलाकर खावे । इससे मेधावृद्धि होती है, बलीपलित का नाश होता है, कुष्ठ, अर्थ तथा कृमिदोष नष्ट होते हैं तथा दूधित धीर्य शुद्ध हो जाता है ॥ २-४ ॥

गृह्यपामार्गविद्वङ्गशक्निनीघघामयाशुण्डिशतावरीः समा ।

घृतेन लीढ्वा प्रकरोति मानघ त्रिमिर्दिने श्लोकसहस्रघारिणम् ॥ १ ॥

शुद्ध्यादि योग—शुरूच, अपामार्ग, वायविहग, शक्तपुष्पी, बच, हरक सोंठ और शतावरी प्रत्येक समान लेकर चूणकर घृत में मिलाकर चाटने से यह योग मनुष्य को तीन दिन में ही सहस्र श्लोक स्मरण करने की शक्ति उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

शास्त्रीघघामयावासापिप्पस्यो मधुसैषवम् । अथ्य प्रयोगात्सत्सात्किञ्चरै सह शीयते ॥ २ ॥

शास्त्रीघघामयादि योग—शास्त्री, बच, हरक, अरुसा, पीपल, मधु तथा सेंधानमक को समान भाग लेकर चूर्णकर सात दिन ही सेवन करने से मनुष्य किन्नरों के साथ गाने लगता है वा किन्नरों के समान गाने योग्य स्वर हो जाता है ॥ २ ॥ - -



आयुः प्रदान्यामपनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनामि ।

मेघ्यानि घैतानि रसायनानि मेघ्या विशेषेण च द्रव्यपुष्पो ॥ ३ ॥

मण्डूकपर्णोदरि योग—प्रातःकाल नित्य मण्डूकपर्णी के स्वरस की सेवन, जेठोमधु के घूले का सेवन, गुरुक के रस का सेवन तथा मूल पुत्ररहित ब्रह्मपुत्री के ककक का सेवन आयुर्बर्धक है, रोगनाशक है, बल, अग्नि, वर्ण, तथा स्वर की बढ़ानेवाला है, मेधासक्ति की बढ़ानेवाला है तथा रसायन है । विशेष कर शंखपुत्री अधिक मेधाबर्धक है ॥ ३-३ ॥

विशेषेण तुगाक्षीर्षा विष्वक्का लवणेन च । त्रिफला सितया चाऽपि शुक्ला सिद्ध रसायनम् ॥

त्रिफला रसायन—हरद, बहेदा और आंवला का समान मिलित चूर्ण रसायन है, विशेष वंशलोचन के चूर्ण के साथ अथवा पीपल के चूर्ण के साथ अथवा सेंधानमक के साथ अथवा शीनी के साथ इसका सेवन करना रसायन है, यह रसायन का सिद्ध प्रयोग है ॥ ४ ॥

सिन्धुपर्णार्कराशुण्ठीकणामधुगुहैः प्रसाद्य । पर्षादिष्वभया प्रारया रसामनगुणैरिजा ॥ ५ ॥

ऋतु हरीतकी—सेंधानमक, शर्करा, सोंठ पीपल, मधु तथा गुड़ के साथ वर्षा आदि छिः ऋतुओं में अथाक्रम से हरीतकी का सेवन करना रसायन का गुण करने वाला है ॥ ५ ॥

श्रीष्मे तुह्यगुहो सुसैधयुषो मेघावाद्वाप्यरे

सार्धं पार्करया क्षारघमलया शुण्ठया तुषारागमे ।

विष्वक्का शिशिरे घसन्वसमये चाम्रेण संयोजिता

राजमुह्य हरीतकीमिव गवा नश्यन्तु से शशयः ॥ ७ ॥

श्रीष्म ऋतु में हरीतकी की समान गुरु से, वर्षाऋतु में सेंधानमक से, शरदऋतु में शर्करा से, दमन्त में सोंठ के चूर्ण से, शिशिरऋतु में पीपल के चूर्ण से तथा वसन्त ऋतु में मधु से हरीतकी के चूर्ण की सेवन करे । इस प्रकार के हरीतकी के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

पुनर्नवस्यार्धपल नवस्य विष्ट विशेषाः पयसाऽधमासम् ।

मासद्वय सभिगुण समो वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नव स्यात् ॥ २ ॥

पुनर्नवायोग—नवीन पुनर्नवा आधापल पीसकर दूध के साथ ही मनुष्य आधामास, दो मास, छे मास अथवा एक वर्ष तक पान करता है वह यदि बीने शरीर वाला हो तो भी पुनः नवीन शरीर वाला हो जाता है । अर्थात् इसके सेवन से बुढ़ भी युवा की भांति हो जाता है ॥२॥

दे माम्मेकं श्वरस विपन्ति दिने दिने मृत्तरजासमुत्पम् ।

चीराक्षिन्स्ये यल्लयीर्युक्ताः समाः शरतं जीवन्माप्नुयन्ति ॥ ३ ॥

शुंगराजस—ओ मनुष्य एक मास पर्वत नित्य मांसे के स्वरस का पान करता है तथा नैवल दूध का पशु करता है वह बलवीर्य से युक्त होकर एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ॥३॥

घातावरी मुण्डिनिका गुह्यी सहस्तिर्कर्णी सहतालुमूली ।

पुस्तानि ह्रवा समभागयुक्तान्पाज्येन किं वा मधुनाऽप्यलिङ्गात् ॥ ४ ॥

जाराज्यामृतमुष्युष्वेही भवेन्नरो वीर्यबलादिपुक्तः ।

विभ्राति देवप्रतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविहृदमुद्रिः ॥ ५ ॥

घातावरी चूर्ण—घातावरी, गुण्डी, गुरुक, हरीतकी पक्षाज और मूलकी की समान भाग लेकर विभिपूर्वक चूर्णकर गोघृत अथवा मधु के अनुपान से चरने से बुढ़ता रोग, मूषु (मरुशु) आदि से रहित होकर मनुष्य वीर्य तथा बल से युक्त होता है तथा वह मनुष्य निश्च प्रतिमायुक्त (तेजस्वी) महापुत्रिनाम् होकर देवता के समान शीघ्रित होता है ॥ ४-५ ॥

पीताऽधगाद्या ययसाऽधमासे पुनन सैलेन मुष्तागुना वा ।

पूत्रस्य पुष्टिं ययुषो द्यानि भरस्य भरपरय ययामुष्टिः ॥ ६ ॥

अधगाद्या योग—अधगान्ध के चूर्ण की २५ दिन दूध, घृत, लैट अथवा एवोला धन के अनुपान से पान करने से कृत् ( बुढ़क ) मनुष्य के शरीर की इस प्रकार पुष्ट करता है कि प्रत्येक बल की वृद्धि पान को पुष्ट करती है ॥ ६ ॥

शिशिरे चाधगद्यायाः ऋतुचूर्णं पयोनिवृतम् ।

मासमसि समप्याय्य स हृदोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥

शिशिरशुद्ध में अथवा प्रयोग—शिशिर शुद्ध में अथवा के मूल का चूर्ण दूध में मिला कर अथवा दूध में पकाकर मधु तथा घृत का प्रक्षेप देकर जो एक मास पर्यंत पीता है वह बृद्ध भी हो तो युवा के समान हो जाता है ॥ ७ ॥

घृतामलकपर्करातिलपलाशबीजानि चः समानि दायनस्थितो मधुयुतानि ग्रादेक्षिणि ।

पलीपलिसर्पजितस्तद्वृणनाग गुणयो पली वृहस्पतिसमः पुमान्मयति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥८॥

आमलक्यादि—गोघृत, आँवला का चूर्ण शर्करा, तिल का चूर्ण और पलाश बीज के चूर्ण को समान लेकर मधु मिलाकर जो मनुष्य रात को सोने के समय खाता है वह शीघ्र ही बलीपलित रोग से मुक्त हो जाता है, युवा हो जाता है, हाथी के समान बलवान हो जाता है तथा वृहस्पति के समान बुद्धिमान हो जाता है । यह भ्रूव है ॥ ८ ॥

असिततिलविमिध्मापल्लवान्मधुयेधः सततमिह् पयोशी शृङ्गराजस्य मासम् ।

भवति च चिरजीवी व्याधिभिर्मुक्तदेहो भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥ १ ॥

कृष्णतिलादि योग—कृष्ण तिल तथा भांगरे के कोमल पत्ते को जो मनुष्य निरन्तर एक मास तक खाता है तथा दूध का पच्य करता है वह व्याधिरहित शरीर बाला चिरजीवी होता है । उसके केश भ्रमर के बर्ण के समान कृष्ण हो जाते हैं तथा वह मनुष्य काम चारी हो जाता है ॥ १ ॥

ससितया वधयाऽऽमलकैरथ त्रिफलया स्वधवा घृतमिध्या ।

कनकलोहरजः सदलं घृत परमिद् हि रसायनमिष्यते ॥ २ ॥

सितादि योग—शर्करा के साथ वध का चूर्ण अथवा आँवले का चूर्ण मिलाकर अथवा त्रिफला के साथ घृत मिलाकर उसमें इन योगों में से किसी योग के साथ स्वर्गमस्य, लौहमस्य तथा शुद्ध गन्धक समान मिलाकर सेवन करने से यह परम रसायन कहा गया है ॥ २ ॥

धात्रीसिला शृङ्गरजोविमिध्याभ्ये मधुयेयुर्मनुजाः क्रमेण ।

ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्भ्याघयोऽप्यामरणाञ्जयेयु ॥ ३ ॥

धात्रीतिलादि योग—आँवला, तिल तथा भांगरे को समान लेकर चूर्णकर मिलाकर जो मनुष्य नित्य भक्षण करता है उसके केश कृष्ण हो जाते हैं, शिद्रवा निर्मल हो जाती हैं तथा मृत्यु पर्यन्त जीवन भग्न रोग से रहित हो जाता है ॥ ३ ॥

पञ्च मल्लसर्पकांश्चिद्वया शोधयेद्विधिवज्जले । कषाय च विषेच्छीत घृतेनाफोष्ठतालुकम् ॥

पञ्चवृद्धया विषेद्यवत्सप्ततिं दासयेत्ततः । जीर्णंश्चादोदनं वीतं घृतशीरोपसहितम् ॥ ३ ॥

पतत्रसायनं मेघ्यं पलीपलितनाशनम् । कुष्ठार्शं क्रिमिदोषान् दुष्टशुक्रविशोधनम् ॥ ४ ॥

वर्धमानं मल्लसर्पकांश्च योग—पांच भिलावों को काटकर शुद्ध कर मल के साथ विधिपूर्वक काथ कर जब शीतल हो जावे तब घृत से ढोठ तथा तालु को शुद्ध करके उस काथ का पान करे तथा इसी भाँति पांच २ भिलावे को नित्य बढ़ा २ कर काथ करता हुआ पान करे तथा नित्य पांच भिलावे तब तक बढ़ाता जावे जब तक सत्तर भिलावे न हो जावे, सत्तर हो जाने पर पांच २ भिलावे को प्रतिदिन न्यून करता जावे तथा अंत में पांच भिलावे जब हो जावे तब प्रमास कर देवे ।

तथा प्रतिदिन जब ब्याध पच जावे तब चावल का भात शीतल कर उसमें घृत तथा दूध मिलाकर खावे । इससे मेघाशुद्धि होती है, बलीपलित का नाश होता है, कुष्ठ, अर्श तथा क्रिमिदोष नष्ट होते हैं तथा दूषित वीर्य शुद्ध हो जाता है ॥ २-४ ॥

गुह्यपामार्गविद्वद्भ्राह्मिनीवचामयाशुषिठशतावरीः समाः ।

घृतेन लीड्वा प्रकरोति मानव त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ १ ॥

गुह्य्यादि योग—गुरुच, अपामार्ग, वायविद्यग शशुष्पी, वच, हरद, सोंठ और शतावरी प्रत्येक समान लेकर चूर्णकर घृत में मिलाकर खादने से यह योग मनुष्य को तीन दिन में ही सहस्र श्लोक स्मरण करने की शक्ति उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

प्राङ्गीवचामयावासाविष्यत्यो मधुसैन्धवम् । अस्य प्रयोगात्सप्तस्रिकर्करैः सह गीयते ॥ २ ॥

प्राङ्गीवादि योग—प्राङ्गी, वच, हरद, अरुसा, पीपल मधु तथा सैन्धानमक को समान भाग लेकर चूर्णकर साठ दिन ही सेवन करने से मनुष्य किन्नरों के साथ गाने लगता है वा किन्नरों के समान पाने योग्य स्वर हो जाता है ॥ २ ॥

हन्वदम्बलपित्तवममास्त्रिदाहमोहखालित्वमेहतिमिरामंसशुक्रदोषान् ।

सुवत्वा भर सत्त्वमामलकीरसेन धुद्रोऽपि तेन च भयेत्तृणीरिरसु ॥ ३ ॥

आमलकी रस—निरन्तर भाँचले के रस को सेवन करने से अल्पपित्त, वमन, अस्त्रि, दाह, मोह, एस्वाद्यरोग, प्रमेह, तिमिर, भर्म तथा शुक्रदोष ये सभी नष्ट हो जाते हैं । तथा धुद्र मनुष्य भी इसके सेवन से तृणी को भोगने की इच्छा करता है ॥ ३ ॥

लोहगुग्गुलु—अथः पल गुग्गुलुरग्र योज्याः पलत्रयं च्योपपलानि पञ्च ।

पलानि घाटी त्रिकलारजश्च कर्षं लिहन्प्रायमरारवमेव ॥ ३ ॥

ह्रीद् गुग्गुलु—लौहमस्र एक पल, शुद्ध गुग्गुलु ३ पल, सोंठ, मरिच और पीपल समान मिलित चूर्ण पाँच पल और दरद, बरेड़ा, भौमला का समान मिलाकर चूर्ण आठ पल, लेकर पञ्च मर्दन कर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से मनुष्य अमरत्व की प्राप्ति होता है ॥ ३ ॥

गन्धकरसायनम्—

शुद्धो षड्गोपयसा विभाष्य ततश्चतुर्जातगुह्यधिकामिः ।

पथ्यानुष्यायौषधमृगराजैर्माष्योऽष्टवार पृथगार्द्धकेण ॥ १ ॥

शुद्धे सितौ योग्ये मुख्यभागौ रसायनं च प्रकराज्यशुम् ।

कर्पोन्मितं सेवितमेति मस्यो धीर्यं च पुष्टिं हठदेहवद्विभ्र ॥ २ ॥

कण्डू च कृष्ट विषदोषमुप मासहृपेनेह जपेत्प्रयोगः ।

घोरातिसार प्रहणीपद च हरेण रक्त हठशूलयुक्तम् ॥ ३ ॥

जीर्णज्वरे मेहगणे प्रहृष्टं घातामयानां दरणे समर्पम् ।

प्रशाकरं कैशमवीय कृष्णं करोति चेत्तपति चार्धवर्षम् ॥ ४ ॥

गन्धकरसायन—शुद्धगन्धक लेकर माय के दूध से ( आठ बार ) भावित करे पथाय बाल चीनी, शलायची, तैलपात और नागकेसर के समान मिलाकर माय से भावित करे, पुन शुद्ध के स्वरस से, दरद, बरेड़ा, भौमला के माय से, सोंठ के माय से, भाँचरे के स्वरस से तथा अद्रक के स्वरस से प्रत्येक से आठ २ बार भावित करे । इस प्रकार गुह्य किये हुए गन्धक में समान भाग प्रथेक शर्करा मिलाकर रस लेवे, इसे एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से मनुष्य का धीर्य बढ़ता है, पुष्टि होती है तथा शरीर एवं अग्नि दृढ़ होनी है । इसके सेवन से कण्डूरोग, कुष्ठ, आयन्त रोग विषदोष ये सभी दो मास में ही नष्ट हो जाते हैं और कठिन अतिसार, प्रहणी तथा कठिन घाल युक्त रक्तसाह को भी यह नष्ट कर देता है एवं जीर्णज्वर, प्रमेह तथा अल्प उ कठिन घात रोगों को भी नष्ट करता है । यह रसायन मन्त्रानदायक है, केश को अत्यन्त कृष्ण करता है । इसे छै मास तक लगातार सेवन करना चाहिये ॥ १-४ ॥

रसायन पर्वतजातमपीय पाराम्बलेष्ठादिकरात्रियर्जम् ।

ससोमरोगं सहस्रपुष्कृष्टिं होष वै गन्धकराज्ययोगः ॥ ५ ॥

हरति सकलरोगान्नायकायः प्रयोगो मृतसदसनरार्णा प्राणवो धीर्यमायु ।

तदनु विहितयोगो भस्मघृत सहैव इमपति त्रिदधानां देहशक्तिं सुस्वप्नाम् ॥ ६ ॥

इस गन्धक रसायन के सेवन के समय धार, अम्ब, शेष आदि तथा ककाराहक ( बरेडा आदि ) तथा दाँरे त्याग कर देना चाहिये । सोमरोग तथा अण्डकोष बुद्धि रोग हत गन्धकराज से अक्षय्य नष्ट होते हैं । यह गन्धकराज प्रयोग सन्मूर्ती रोगों को नष्ट करता है । मृतक साइज मनुष्यों को शक्ति प्रदान करता है तथा धीर्यायु करता है । यदि इसके साथ पाद भरम ( रस सिन्दूर ) तथा स्वर्णमस्र भी मिलाकर सेवन किया जावे तो देवताओं के समान रमणीय, श्रेष्ठ तथा सुन्दर रूप कर देता है ॥ ५-६ ॥

धीर्यस्य हृदि हठदेहयश्मिणीतिपात्रान्विहित कुष्ठम् ।

प्रमेहदुष्टोद्दरोगञ्चालं विनेपत्रो हन्ति तु सन्निपातम् ॥ ७ ॥

शोकाश्वरं शम्भुं प्रमेह पाण्डुचयकासगुराह्वरादीम् ।

पन्थि रोगान्निवृत्तिं क्षीरं रसायनं ज्विपत्रमीश्वर ॥ ८ ॥

यह गन्धक रसायन बीर्य की वृद्धि करता है, शरीर तथा अग्नि को बृद्ध करता है, ८० प्रकार के वातरोग को नष्ट करता है तथा कुष्ठ, प्रमेह, दुष्ट उदर रोग तथा अन्य रोग समूहों को तथा विशेष कर सनिपात को नष्ट करता है तथा दोष ज्वर ( वातादि से उत्पन्न ज्वर ), राजरोग ( यक्ष्मा ), प्रमेह, पाण्डु, क्षय, श्वास तथा अश्वत्थ सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है । यह रसायन महादेव जी का बड़ा दुभा है ॥ ७-८ ॥

पूरण्डतैलमय निग्यफलास्थितैलमेतद्भ्रसायनमनामयकामकारि ।

उयोत्तिष्मतीफलपलाशफलोद्भवं वा तैल घळीपलितहारि भिषगप्रदिष्टम् ॥ १ ॥

तेल प्रयोग—एरण्ड का तेल अथवा नीम के बीजों का तेल रसायन तथा रोगनाशक है । मालकांगी का तेल अथवा पलाश के फल का तेल बली पलित को नष्ट करनेवाले है ऐसा भिषगाचार्यों ने कहा है ॥ १ ॥

य केवल क्षीर्षमिहाऽऽयुररनुते रसायन यो विविध निपेयते ।

गतिं स देवर्षिनिपेयितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाचयम् ॥ २ ॥

रसायन सेवन का फल—जो मनुष्य विविध प्रकार के रसायनों का सेवन करता है वह केवल दोषों से ही नहीं प्राप्त करता अपि तु देवता तथा ऋषियों की शुभ गति को प्राप्त होता है तथा अक्षय ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

इति रसायनाधिकारप्रकरणं समाप्तम्

### अथ रोगानुसारेणौषधस्यानुपानानि ।

कैरातागुदपर्पटं ज्वरगदे तक्र महण्यामथा

सीसारे कुटजः कृमौ कृमिरिपुर्नुनामकेऽहष्करम् ।

पाण्डौ किष्टमय क्षये गिरिजसु श्वासे तु भाग्यौषधं

मेहे त्वामलरात्रिके लृपि जलं सतस्रहेमान्वितम् ॥ १ ॥

शूले द्विष्टगुकरक्षमामपयने तैल ह्योर्मुंययुक्

श्रेष्ठा प्लीन्धि कणा विपे शुफतरुं कासे तु कण्टकारिका ।

वातश्याधिषु गुग्गुलुष लक्षुनः स्याद्भ्रकपित्ते वृषोऽ-

पस्मारि तु वचा सवागय गरे हेमोदरे रेचनम् ॥ २ ॥

रोगानुसार औषधि का अनुपान—ज्वर रोग में—चिरायता, नागरमोथा तथा पिष्टपापड़ा का अनुपान, ग्रहणी रोग में—तक्र का अनुपान, अतीसार रोग में—कोरैया के छाल का अनुपान, कृमिरोग में—वायिविडंग का अनुपान, अर्श में—भिलावा का अनुपान पाण्डुरोग में—मण्डूर का अनुपान, क्षय रोग में—शिलाजीत का अनुपान, श्वास में—मकदडी ( बभनेठी ) तथा सोंठ का अनुपान, प्रमेह में—आमला तथा हलदी का अनुपान, एषा में—सोने को तपाकर उखाया हुआ जल का अनुपान, शूलरोग में—शुद्ध हींग तथा करञ्ज का अनुपान, आमवात में—गोमूत्र महित एरण्ड के तेलका अनुपान, प्लीहारोग में—पीपल का अनुपान, विष रोग में—तिरिस का अनुपान, कास रोग में—छोटी कटेरी का अनुपान, वातव्याधि में—शुद्ध गुग्गुलु तथा लक्षुन का अनुपान, रक्त विष में—अरुसा का अनुपान, अपस्मार रोग में—वच तथा आक्षी का अनुपान, विष दोष में—सुवर्ण मस्र का अनुपान और उदर रोग में—रेचन वस्तु का अनुपान देना चाहिये ॥ १-२ ॥

घातास्त्रे तु शुद्धचिकाऽर्दितगते मापेण्डी मेदसि

क्षौद्राग्म प्रदरे तिर्रीटमरुचौ लुक्को मणोऽन्य पुरः ।

शोके मद्यमयाम्लविस्तरुजि तु द्राक्षाऽय कृष्णैः घरी

कृष्माण्डागु ह्यगामये तु थिफलोन्मावे पुराण धृतम् ॥ ३ ॥

वातरक्त में—शुद्धक का अनुपान, अर्दित वात में—उदक की बनी पिष्टी के बटक का अनुपान, मेद रोग में—मधु तथा जल का अनुपान, प्रदर रोग में—लोष का अनुपान, अरुचि में—बिजौर

नीच का अनुपान, मग में—मबीन गुग्गुलु का अनुपान, शीक में—मय ( मदिरा ) का अनुपान, अम्बुपिच में—शरा का अनुपान, मूत्रकृच्छ्र रोग में—शवापरी तथा श्वेत कुम्भाष्ट का अल, नेत्र रोग में—त्रिफला का अनुपान और उन्माद में पुराने घृत का अनुपान देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुष्ठे लादिरसारषार्यय पयो निद्रास्य माह्विप  
विधे वाकुषिकषयजीर्णरुजि तु श्वापो भये तोषणम् ।  
छदो लाजमपूर्व्यत्रुषिकृता नस्य सतीक्ष्णौषध  
शूले पारर्वमघे तु पुष्करजटा मूर्च्छासु क्षीतो विधिः ॥ ४ ॥

कुष्ठरोग में—शैरसार ( सदिर ) के अल का अनुपान, निद्रास्य ( अनिद्रा ) रोग में—शैत के दूध का अनुपान, श्वेतकुष्ठ में—वाकुची के फल का अनुपान, अजीर्ण रोग में—निद्रा, मय में—सन्तौष, यमन में—धान का लावा तथा मधु का अनुपान, उर्ध्वानुगत रोग में—तीक्ष्ण ओषधियों का नस्य, पार्श्वशूल में—पुष्करमूल का अनुपान और मूर्च्छा में—शीतल विधि ( सिचन भादि ) करनी चाहिये ॥ ४ ॥

कार्ये मांसरसोऽमरीषु गिरिभिद्गुणमेषु शिमूषका  
मोषोऽन्नस्य तु विदधौ जतरसैर्हिष्मासु नस्य हितम् ।  
वाहे क्षीतविधिर्मगन्दरगदे सुर्वालताश्वास्थिनी  
घृष्टे रासभल्लोहितैः स्वरगदे मध्यस्थितं पौष्करम् ॥ ५ ॥

कुष्ठरोग में मांसरस का अनुपान, अमरी रोग में—पाषाण भेद ( पपर चूर ) का अनुपान, श्रम में—सहिजन की त्वचा का अनुपान, विदधि में—रक्तमोक्षण, हिष्मा ( शिष्मा ) में—छान के रस का नस्य, वाह में—शीतल क्रिया, मगन्दर रोग में—केतुये तथा शान की अस्थि की गद्दे के रक्त से घिस कर और स्वर के रोग ( स्वरभेदादि ) में—मधु सहित पुष्करमूल देना चाहिये ॥

अनुपानगुणमाह—

षट्किञ्चिदौषध पैद्यैर्वैय रोगानुपानसः । तप्तवृणुणकर श्रेयमनुपानषट्कादिह ॥ १ ॥

अनुपान के गुण—ओ ओषधि रोगों के अनुपान के अनुसार बँद देता है वह ओषधि उसी अनुपान के अल से उस रोग को नाश करने वाले गुण की करती है ॥ १ ॥

ग्रन्थसंप्रकाररवादिषु—

यावदुषधोमनि विषममभ्यरमणेनिन्दोश्च विद्योतते  
वाक्कलस पयोषयः सगिरत्यस्तिष्ठन्ति पृष्टे भुवा ।  
यावत्षाधनिमण्डल फणिपठेरास्ते फणामण्डले  
सावत्सत्रिपत्र पटन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम् ॥ १ ॥  
इति श्रीयोगरत्नाकरः समाप्तः ।

ग्रन्थ संप्रकार का आदिषु—जब तक इस संसार में आकाश पर धरें तथा अन्तमा भग्नो ज्योति से प्रकाशित है, जब तक साशो समुद्र पर्वतो सहित इस भूमि ( पृथ ) पर स्थित हैं, जब तक भगवान् शेषनाग के फन पर वृष्णीमण्डल स्थित है जब तक सर्वत्र ही उत्पन्न भव इस योग-रत्नाकर नामक ग्रन्थ की पद्ये रहें ॥ १ ॥

इस प्रकार पण्डित श्री लक्ष्मीपति शास्त्री आनुर्वेदाचार्य विरचित रिचोदिनी सिद्धी टीका में श्रीयोगरत्नाकर ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

समाप्तम्

# प्रमुखविषयाणामकारादिक्रमसूची

विषया*	पृष्ठाङ्का	विषया	पृष्ठाङ्का:
अग्निमान्द्यनिदानम्	२६६	उदायर्त्तनिदानम्	५०८
अग्निमा-द्यचिकित्सा	"	उदावर्त्तचिकित्सा	५०९
अग्निदग्धघ्ननिदानम्	६५४	उन्मादनिदानम्	४१६
अग्निदग्धचिकित्सा	"	उन्मादचिकित्सा	४१९
अजीणनिदानम्	२६९	उपदशनिदानम्	६६६
अजीर्णचिकित्सा	२७१	उपदशचिकित्सा	६६८
अज्ञयैद्यनिन्दा	१	उरोग्रहनिदानम्	५३५
अतिसारनिदानम्	२१८	उरोग्रहचिकित्सा	"
अतिसारचिकित्सा	२२१	उर-घृतनिदानम्	३४०
अपघ्नीचिकित्सा	६२२	उर-घृतचिकित्सा	३४१
अपस्मारनिदानम्	४२६	उष्णजलगुणाः	८०
अपस्मारचिकित्सा	४२८	उष्णदुग्धगुणा	८४
अभाववर्णाः ( कस्याभावे किं देयमिति विचार* )	१४७	उस्तम्भनिदानम्	४८०
अभ्यङ्गादिविधि*	५१	उस्तम्भचिकित्सा	४८१
अम्लपित्तनिदानम्	६९९	शत्रुचर्या	७७
अम्लपित्तचिकित्सा	७०१	औषधाघ्नजीर्णोऽशस्य प्राह्याप्राह्य विचार*	१७२
अरोचकचिकित्सा	३७८	फ-दगुणा*	२१
अरोचकनिदानम्	३७७	कर्णपालीविकाराणां चिकित्सा	६५
अबुद्धिचिकित्सा	६२७	कर्णरोगनिदानम्	७६९
अर्शाचिकित्सा	२५७	कर्णरोगाणां चिकित्सा	७६५
अर्शारोगनिदानम्	२५२	काचोपक्रमः	८१९
अश्मरीनिदानम्	५५१	कालज्ञानम्	१३
अश्मरीचिकित्सा	५५३	कासनिदानम्	३४३
अष्टगुणमण्डः	३६	कामलारोगचिकित्सा	२९५
आलुविपचिकित्सा	९०४	कासचिकित्सा	३४५
आनाहनिदानम्	५१३	कुष्ठनिदानम्	६७६
आनाहचिकित्सा	५१४	कुष्ठचिकित्सा	६८२
आनूपमांसगुणा	३३	केशरनामगुणा	९९
आमवातनिदानम्	४८४	कृष्णगतरोगचिकित्सा	८२१
आमवातचिकित्सा	४८६	क्रिमिनिदानम्	२८४
आमव्याधिलक्षणम्	१६	क्रिमिचिकित्सा	२८६
आमशूलचिकित्सा	४९८	कृन्त्यचिकित्सा	९१०
आयुर्विधारः	४३	कृन्त्यलक्षणम्	९११
आरोग्यलक्षणम्	१५	शीरदोषचिकित्सा	८६९
आस्यपरीक्षा	१२	सुप्तारोगनिदानम्	७२७
इक्षुगुणा	९४	सुप्तारोगचिकित्सा	७३३
उदरनिदानम्	५८१	सुप्तारोगनिदानम्	७२७
उदरचिकित्सा	५८५	शण्डमालापचीचिकित्सा	६२३

विषया	शुद्धाङ्काः	विषया	शुद्धाङ्काः
गुह्यगुणाः	९५	दशमूलकम्	९७
गर्भनिवारणम्	८४९	दाहनिदानम्	४११
गर्भपातनविधिः	"	दाहचिकित्सा	४१२
गर्भपातस्योपद्रव्याणां चिकित्सा	८५८	दिनचर्या	४७
गलरोगाः	७४८	दुग्धगुणाः	८२
गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थसुन्दनिदानम्	६१७	दूतपरीक्षा	३
गलगण्डचिकित्सा	६२१	दृक्परीक्षा	१२
गुर्दिग्धा रोगाणां चिकित्सा	८५९	देवाः	१४
गुह्यचीसखगुणाः	१०१	दोषप्रयकमाणि	१५
गुह्यमनिदानम्	५१४	दोषप्रयशमनम्	"
गुह्यचिकित्सा	५१७	धातुवादीनां लक्षणसोधनमारणगुणाः	१०९
ग्रन्थिचिकित्सा	६२६	धाम्यादिगुणाः	२१
ग्रहणीचिकित्सितम्	२४२	नवमीतगुणाः	९०
ग्रहणीनिदानम्	२३९	नस्यादिविधिः	४९
ग्रहभ्रतपालरोगाणां चिकित्सा	८७३	नाडीपरीक्षा	१४
घृतगुणाः	९०	नाडीमणनिदानम्	६६०
घृतरूपणम्	९७	नाडीमणचिकित्सा	६६१
घ-दनम्	१००	नासासुरोगनिदानम्	७७१
छर्दिनिदानम्	३८३	नासारोगाणां चिकित्सा	७३५
छर्दिचिकित्सा	३८५	नित्यप्रभृत्प्रकारः	४६
त्रिहृत्परीक्षा	१३	नेत्ररोगनिदानम्	७९०
त्रिहृत्परीक्षाचिकित्सा	७५८	नेत्ररोगाणां चिकित्सा	८०७
ज्वरनिदानम्	१५७	पक्ष्मरोगी	९७
ज्वरचिकित्सा	१६७	पञ्चकोलम्	९९
सामगुणाः	८८	पञ्चसुगन्धिः	५०२
समाधुगुणाः	"	परिणामशूलनिदानम्	५०३
समाधुपत्रगुणाः	"	परिणामशूलचिकित्सा	३८
सालरोगाः	७४७	पर्यटगुणाः	२०५
सालरोगचिकित्सा	७५९	पाकाः	२८७
विमिरे सामान्यचिकित्सा	८१०	पाण्डुरोगनिदानम्	२८९
तृष्णानिदानम्	३९२	पाण्डुरोगचिकित्सा	२९१
तृष्णाचिकित्सा	३९५	पावृषुष्टयम्	३
सैलगुणाः	९१	पानकानि	४१
सैलानि	२०३	पानान्यपरमशुपानादीनां पानविमम	
त्रिकटु	"	निदानम्	३०४
त्रिजातचतुर्गाते	"	पानान्यपादीनां चिकित्सा	३०९
त्रिदोषगुह्ये यस्त्रादिच्छाया	५२०	शुक्रनादयः	३३
त्रिफला	९७	शामाकण्डवादीनां चिकित्सा	३९३
द्विगुणाः	८७	पायसगुणाः	३९
दन्तधावनप्रकारः	७७	विषगुह्ये-त्रिदोषपूर्णम्	५१९
दन्तरोगनिदानम्	७४७	पूज्याप्रदहृष्टचिकित्सा	८०४
दन्तचिकित्सा	७५५	पोष्टिका	३४
		प्रतिशयापप्रतीकारः	७७५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
प्रदरचिकित्सा	८३९	यूपगुणाः	३६
प्रमेहचिकित्सा	५१३	योनिक्न्दस्य निदानम्	८४६
प्रसूताया उदरस्थापरोपद्रवाः	८६४	योनिरोगाधिकारः	८४५
प्रसूतिकारोगाधिकारः	८६४	योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा	८४७
प्रसूतिकारोगनिदानम्	८६५	रक्तगुहमे शताह्वादिकृक्क	५२१
फलानां गुणकथनम्	२१	रक्तपित्तनिदानम्	२९८
यहुमूत्रमेहनिदानम्	५७६	रक्तपित्तचिकित्सा	३००
यहुमूत्रचिकित्सा	"	रत्नानां शोधमारणे	१३८
शालरोगाधिकारः	८७२	रसाला	४२
शालरोगाणां चिकित्सा	८७५	रसयैकृतियोगाः	९२५
भगन्दरनिदानम्	६६२	रसायनाधिकारः	९२७
भगन्दरचिकित्सा	६६४	रसायनविधिः	"
भग्नघणनिदानम्	६५६	रागलाण्डवाः	४२
भग्नचिकित्सा	६५८	राजयष्टमनिदानम्	३१०
भारित्यम् ( भरता )	४२	राजयष्टमचिकित्सा	३१४
भिषक् प्रशंसा	१	रात्रिचर्या	७१
भूतोन्मादनिदानम्	४२२	रूपपरीक्षा	११
भूतोन्मादचिकित्सा	४२५	रोगिणामष्टस्थाननिरीक्षणम्	४
भोजनक्रमः	५७	रोगानुस्वारेणौषधस्य नामानि	९३१
मत्स्यादिलजन्तव	३३	घटकगुणाः	३९
मधुगुणा	९३	घ-धाया गर्भप्रदभेषजम्	८४७
मधुपरीक्षा	१०	घयोषिचारः	१६
मसूरिकानिदानम्	७१८	घर्मपचमजा रोगाः	७९९
मसूरिकाचिकित्सा	७२१	घर्मपचजरोगाणां चिकित्सा	८२५
मांसगुणाः	३०	घाजीकरणवस्तूनि	९१०
मानपरिभाषा	१८	घाजीकरणानि	"
मुखरागनिदानानि	७४३	घाजीकरणस्य लक्षणम्	"
मुखरोगचिकित्सा	७५१	घातरक्तनिदानम्	४७१
मुद्गतपद्मलृष्टदारा	३८	घातरक्तचिकित्सा	४७४
मुष्काम्रयुद्धिवर्ध्मरोगनिदानम्	६१०	घातव्याधिनिदानम्	४३१
मुहुगर्भस्य चिकित्सा	८६२	घातव्याधिचिकित्सा	४४४
मूत्रपरीक्षा	८	घातशुष्कगर्भचिकित्सा	८६१
मूत्राष्टकगुणा	९६	घातशूलचिकित्सा	४९५
मूत्रकृच्छ्रनिदानम्	५३५	घाताद्विदोषप्रकोप	१४
मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	५३६	घातादिप्रकृतिः	१७
मूत्रघातनिदानम्	५४५	विद्रधिनिदानम्	६३३
मूत्राघातचिकित्सा	५४८	विद्रधिचिकित्सा	६३६
मूच्छ्रांनिदानम्	३९९	विशिष्टप्रहसुष्टानां चिकित्सा	८७४
मूच्छ्रांचिकित्सा	४०२	विसर्पनिदानम्	७०६
मेदोरोगनिदानम्	५७७	विसर्पचिकित्सा	७०८
मेदोरोगचिकित्सा	५७८	विस्फोटनिदानम्	७१२
मेहनिदानम्	५५७	विषाधिकारः	८९१
यक्ष्मदर्भ	९९	विषाणां चिकित्सा	९००



विषया	पृष्ठाङ्काः
गुदगुणा	९५
गर्भनिवारणम्	८४९
गर्भपातनविधि	"
गर्भपातस्योपद्रवाणां चिकित्सा	८५८
गलरोगा	७४८
गलगण्डगण्डमालापक्षीप्रन्थ्यर्बुदनिदानम्	६१७
गदगण्डचिकित्सा	६२१
गुर्विषया रोगाणां चिकित्सा	८५९
गुहूचीमात्रगुणाः	१०३
गुवमनिदानम्	५१४
गुणमचिकित्सा	५१७
ग्रन्थिचिकित्सा	६२६
ग्रहणीचिकित्सितम्	२४२
ग्रहणीनिदानम्	२३९
ग्रहमस्तपालरोगाणां चिकित्सा	८०३
घृतगुणा	९०
घनुरपणम्	९७
घन्यनम्	१००
घृदिनिदानम्	३८३
घृदिचिकित्सा	३८५
गिह्वापरोषा	१३
गिह्वारोगचिकित्सा	७५८
ज्वरनिदानम्	१५३
ज्वरचिकित्सा	१६७
सम्भ्रगुणा	८८
समाश्रुगुणा	३०
समाश्रुपत्रगुणा	"
सालुरोगा	७४७
सालुरोगचिकित्सा	७५९
तिमिरे सामान्यचिकित्सा	८१०
कृष्णनिदानम्	३९२
कृष्णचिकित्सा	३९५
केलुगुणा	९१
केलानि	२०३
किट्ट	"
किञ्चत्तनुशंठे	"
किदोषगुणम्	५२०
किफला	९७
क्षिगुणा	८७
दन्तधारणमन्त्रः	४०
दन्तारोगनिदानम्	७४२
दन्तचिकित्सा	७५९

विषया	पृष्ठाङ्काः
दशमूलधम्	९७
दाहनिवाहाम्	४११
दाहचिकित्सा	४१२
दिनघर्षा	४७
दुग्धगुणा	८७
दूतपरीक्षा	३
दृक्परीक्षा	१२
देशा	१४
द्वोपश्रवकर्माणि	१५
द्वोपश्रवशमनम्	"
धात्वादीनां लक्षणज्ञानमारणगुणाः	१०९
धान्यादिगुणाः	२१
नयनीतगुणा	९०
मस्यादिविधि	४९
माहीपरीक्षा	१४
माहीप्रणनिदानम्	३६०
माहीप्रणचिकित्सा	३६३
मासारोगनिदानम्	७३१
मासारोगाणां चिकित्सा	७३५
नित्यप्रवृत्तिप्रकार	४६
मेघरोगनिदानम्	७९०
मेघरोगाणां चिकित्सा	८०७
पद्मरोगी	८०३
पद्मकोलम्	९७
पद्मसुगन्धिः	९९
परिणामशूलनिदानम्	५०२
परिणामशूलचिकित्सा	५०३
पर्यटगुणा	३८
पाका	२०५
पाण्डुरोगनिदानम्	२८९
पाण्डुरोगचिकित्सा	२९१
पावणुष्टयम्	३
पानकानि	४१
पानाद्यवपरमद्यपानाजीर्णनाशविधम्	
निदानम्	४०४
पानात्ययादीनां चिकित्सा	४०९
पृथुषादयः	४३
पामाकण्डूपादीनां चिकित्सा	६९३
पापमगुणाः	३९
पित्तगुणम-प्रिक्कृत्तम्	६१९
पूतनाप्रद-बुद्धिदिग्गा	८७४
पाण्डिटा	३९
प्रतिरथादप्र-कार	७७५

विषयाः	पृष्ठाङ्कः
प्रदरचिकित्सा	८३९
प्रमेहचिकित्सा	५६३
प्रसूताया उदरस्थापरोपद्रव्या	८६४
प्रसूतिकारोगाधिकारः	८६४
प्रसूतिकारोगनिदानम्	८६५
फलानां गुणकथनम्	२१
घट्टमूत्रमेहनिदानम्	५७६
घट्टमूत्रचिकित्सा	"
घालरोगाधिकारः	८७२
घालरोगाणां चिकित्सा	८७५
भगन्दरनिदानम्	६६२
भगन्दरचिकित्सा	६६४
भग्नघणनिदानम्	६५६
भग्नचिकित्सा	६५८
भारित्यम् ( भरता )	४२
भिषक् प्रदासा	१
भूतोन्मादनिदानम्	४२२
भूतोन्मादचिकित्सा	४२५
भोजनक्रमः	५७
भस्त्रादिलजन्तवः	३३
भ्रूगुणाः	९३
मलपरीक्षा	१०
मसूरिकानिदानम्	७१८
मसूरिकाचिकित्सा	७२१
मांसगुणा	३०
मानपरिभाषा	१८
मुख्यरोगनिदानानि	७४३
मुख्यरोगचिकित्सा	७५१
मुद्गतप्लुल्लङ्घनारा	३८
मुष्कान्मृद्विचर्भरोगनिदानम्	६१०
मूत्रगर्भस्य चिकित्सा	८६२
मूत्रपरीक्षा	८
मूत्राटकगुणा	९६
मूत्रकृच्छ्रनिदानम्	५३५
मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	५३६
मूत्राघातनिदानम्	५४५
मूत्राघातचिकित्सा	५४८
मूष्ठीनिदानम्	३९९
मूष्ठीचिकित्सा	४०२
मेदोरोगनिदानम्	५७७
मेदोरोगचिकित्सा	५७८
मेहनिदानम्	५५७
यक्ष्मदर्मः	९९

विषयाः	पृष्ठाङ्कः
यूपगुणाः	३६
योनिक्न्दस्य निदानम्	८४६
योनिरोगाधिकारः	८४५
योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा	८४७
रक्त्युश्मे शताह्नविकषकः	५२१
रक्तपित्तनिदानम्	२९८
रक्तपित्तचिकित्सा	३००
रसानां शोधभारणे	१३८
रसाला	४२
रसयैकृतियोगाः	९२५
रसायनाधिकारः	९२७
रसायनविधिः	"
रागस्त्राण्डवाः	४२
राजयक्ष्मनिदानम्	३१०
राजयक्ष्मचिकित्सा	३१४
रात्रिघर्षा	७१
रूपपरीक्षा	११
रोगिणामष्टस्थाननिरीक्षणम्	४
रोगानुस्वारेणौषधस्य नामानि	९३१
घटकगुणाः	३९
घन्धाया गर्भप्रदभेषजम्	८४७
घयोविचार	१६
घर्षपचमजा रोगाः	७९९
घर्षपचजरोगाणां चिकित्सा	८९५
घाजीकरणवस्तूनि	९१०
घाजीकरणानि	"
घाजीकरणस्य लक्षणम्	"
घातरक्तनिदानम्	४७१
घातरक्तचिकित्सा	४७४
घातव्याधিনিदानम्	४३१
घातव्याधिचिकित्सा	४४४
घातशुष्कगर्भचिकित्सा	८६१
घातशूलचिकित्सा	४९५
घातादिदोषप्रकोपः	१४
घातादिकृति	१७
विद्रधिनिदानम्	६३३
विद्रधिचिकित्सा	६३६
विशिश्टप्रहसुष्टामां चिकित्सा	८७४
विसर्पनिदानम्	७०६
विसर्पचिकित्सा	७०८
विस्फोटनिदानम्	७१२
विषाधिकारः	८९१
विषाणां चिकित्सा	९००

विषया	पृष्ठाङ्काः	विषया	पृष्ठाङ्काः
विषे मन्त्रविधि	१०६	श्यामनिदानम्	३९७
शृद्धिचिकित्सा	६११	श्यासचिकित्सा	३७०
शृश्लिष्विषयचिकित्सा	१०५	पट्टसा	१९
षेसवार	४३	सद्योगनिदानम्	६४९
ष्यापाम	५०	सद्योगचिकित्सा	६५१
प्रणशोधनिदानम्	६३९	सन्धिरोगा	८०३
प्रणशोधचिकित्सा	६४३	सन्धिजानां चिकित्सा	८२०
शंन्दादिगुणाः	३४	सप्तधातुगतज्वराणां लक्षणम्	९१३
पाकुना	३	समस्तमेप्रजा रोगा	८७५
पाकुनिप्रदृष्टचिकित्सा	८८५	समस्तमेप्ररोगचिकित्सा	८९८
शब्दपरीक्षा	११	समस्तमुखरोगा	८५१
शब्दपरिभाषाकथनम्	१५६	सिद्धाद्रादिपाकगुणाः	३५
शिरोरोगनिदानम्	७८१	सूतिकारोगाधिकारः	८१४
शिरोरोगाणां चिकित्सा	७८३	सूतिकारोगनिदानम्	८६५
शर्करागुणा	९५	सूतिकारोगचिकित्सा	"
शर्करादिगुणा	२२	सूपगुणा	३७
शीतजलपुण्या	८०	सोमरोगाधिकारः	८४३
शीतपित्तोर्दृकोठनिदानम्	७९७	सोमरोगस्य चिकित्सा	"
शीतपित्तोर्दृकोठचिकित्सा	६९८	स्कन्दापस्मारमहचिकित्सा	८८४
शीतलाधिकार	७२४	स्तनरोगस्य निदानम्, चिकित्सा च	८६९
शुद्धभागजा रोगाः	७९८	स्पर्शपरीक्षा	११
शुद्धभागजरोगाणां चिकित्सा	८२४	घ्राणनिदानम्	७१६
शुद्धोपनिदानम्	६७३	घ्रानप्रकार	५२
शूलनिदानम्	४९३	स्वरभेदनिदानम्	३७४
शूलचिकित्सा	४९५	स्वरभेदचिकित्सा	३७५
शुद्धोपचिकित्सा	६७५	स्वर्गमादिनीयसन्ता	९१०
श्वेतशीतगुणा	८१	स्वप्नासुपो लक्षणानि	४४
शोपरलक्षोपनमारणानि	१३८	स्त्रीरोगाधिकार	८३८
शोधनिदानम्	५९८	स्त्रीगर्भरोगनिदानम्	८५९
शोधचिकित्सा	६०१	स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा	८५९
शोधनरोपणविधि	६९५	द्विजनिदानम्	३९२
श्लिष्वदिदानम्	६२९	द्विजचिकित्सा	३९४
श्लिष्वचिकित्सा	६३०	द्व्योगनिदानम्	५३०
श्लेष्मगुणने त्रिधादित्सेवः	५२०	द्व्योगचिकित्सा	५३१

प्रातिस्थानम्—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,

वनारस-१

